प्रथम खण्ड : जीवन-चरित

निराला की साहित्य साधना

रामविलास शर्मा

शिवपूजन सहाय की
पुण्य स्मृति को सादर समर्पित—
निराला के इन शब्दों के साथ—
"शिवपूजनजी को समर्पण
बहुत अच्छा है, बड़े सज्जन
और चारु साहित्यिक हैं।"
(२-२-४३)

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'वर्तमान धर्म' संवन्धी विवाद के सिलसिले मे मुंशी अजमेरी ने वनारसीदास चतुर्वेदी को जो पत्र लिखे थे और जिन्हे चतुर्वेदीजी ने उनकी मृत्यु के वाद प्रकाशित किया था, उनका उल्लेख छठे अध्याय में कर दिया है। अपनी एक डायरी के कुछ पन्ने पुराने कागजो में मिले। उनमे ग्वालियर-यात्रा के समय सुमन के घर पर निराला की वातचीत का विवरण लिखा हुआ था। उसे मैंने तेरहवें अध्याय मे यथास्थान सम्मिलित कर लिया है। इलाहावाद के परिवेश पर कुछ अंश पन्द्रहवे अध्याय के आरम्भ मे जोड़ा है। सोलहवे के आरम्भ मे व्यक्तित्व-विश्लेषण की मंज़िल सुगम वनाने के लिए कुछ वाते भूमिका रूप मे कह दी है। सत्रहवें अध्याय का अन्तिम अंश मैने फिर से लिखा है, मूल स्थापनाओ में कोई परिवर्तन किये विना, उन्हें अधिक स्पष्ट करने के लिए। 'उपसंहार' के अन्तिम अंश मे कुछ वातें दोहराई गई थीं; उन्हे मैंने निकाल दिया है। विष्णुकान्त शास्त्री की सूचना के अनुसार सुर्जकुमार के आठवें दर्जे को आज के तीसरे का समकक्ष मानकर मैंने आवश्यक सुधार कर दिया है। सुश्री शान्ति जोशी की पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य' मे पन्तजी ने निराला से अपनी पहली भेट का जो विवरण दिया है, उसका उपयोग मैंने उन्नीसवे अध्याय में किया है। वह पूरा अध्याय ही पन्तजी की देन है, उनके प्रति मै पुनः कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आलोचको ने पुस्तक ध्यान से पढकर उस पर जो कुछ लिखा है, साहित्यिक वन्धुओ ने पत्र लिखकर अथवा मौखिक रूप से जो कुछ मुझे वताया है, उससे मैंने लाभ उठाने का प्रयत्न किया है। इस सवके लिए मैं उन्हे धन्यवाद देता हूँ। उनकी कुछ वातों से मै सहमत नही हूँ। उनकी चर्चा मैं पुस्तक के तीसरे भाग मे करूँगा।

१२-१-७१ रामविलास शर्मा

तृतीय संस्करण की भूमिका

निराला के जीवन से सम्वन्धित कुछ समस्याओ का विवेचन मैंने इस पुस्तक के तीसरे खण्ड की भूमिका मे किया है। उस विवेचन से मेरे विवरण और विश्लेषण मे कोई फर्क नही पड़ता, इसलिए पुस्तक के इस पहले खण्ड मे मैंने कोई परिवर्तन नही किया। भाषा सम्वन्धी अशुद्धियाँ यथासम्भव दूर कर दी है। पहले अध्याय में निराला-परिवार के वारे मे जहाँ गलतियाँ थी, उन्हे ठीक कर दिया है।

२२ अगस्त, १९७८ रामविलास शर्मा

अनुक्रम

१

सुर्जकुमार तेवारी

उत्तर भारत में अति प्राचीन काल से अवध नाम का जनपद प्रसिद्ध है। यहाँ के राजा रामचन्द्र ऐसे प्रतापी हुए कि लोग उन्हे ईश्वर का अवतार कहने लगे; जिस राज में प्रजा को सब सुख प्राप्त हों, उसे राम-राज कहा जाने लगा। भारत के आदि-काव्य 'रामायण' के नायक यही राम थे; महर्षि वाल्मीकि ने उस महाकाव्य की रचना इसी अवध के एक भाग में की थी, जिसे अव नीमसारन कहते हैं। पौराणिक काल मे वह नैमिषारण्य कथावाचकों का केन्द्र था। यहाँ से अनेक व्यास और सूत कथा-वार्ता सुनाने निकले, नये-नये प्रदेशो में घूमकर उन्होने सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधा। १६वीं सदी में रायबरेली जिले के जायसग्रामवासी मलिक मुहम्मद ने अवधी में अपना प्रबन्ध-काव्य 'पद्मावत' लिखा। इसका प्रभाव दूर-दूर तक पड़ा और बँगला मे इसका अनुवाद किया गया। अकबर के समय में व्यापार, उद्योग-धन्धे, कला, साहित्य—सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई। उस युग में गोस्वामी तुलसीदास ने अवधी में अपना विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' रचा। अवध के अलावा उत्तर भारत के प्रायः सभी जनपदों मे यह काव्य पढा और गाया जाने लगा; भारत की संस्कृति पर उसकी छाप गहरी और अमिट है। अठारहवीं-उन्नीसवी सदियों में केन्द्रीय शासन कमजोर होने से अवध के नवाव बादशाह वन बैठे। नवाबी विघटन से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने अवध पर अधिकार कर लिया। अवध पर अंग्रेजो का अधिकार—अठारह सौ सत्तावन में भारत के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम का यह एक प्रमुख कारण था।

क्लाइव के जमाने से अवध के किसान रोटी-रोजी की तलाश में बंगाल जाते थे। वहाँ फौज में भर्ती होकर अंग्रेजी राज के विस्तार में सहायक होते थे। जिसे बंगाल-आर्मी कहा जाता था, उसमे बंगाल का एक सिपाही न था; ज्यादातर सिपाही पछाँह के थे, विशेषकर अवध के। अवध की बेगम, अजीमुल्ला, नानासाहब, फैजा-बाद के मौलवी, राना बेनीमाधव को साथ मिलाकर अवध के सिपाहियो ने अंग्रेजो से दो साल तक भयंकर संग्राम किया। अंग्रेजों ने इसका बदला लिया; उन्होने अवध को, जो भारत का बाग कहलाता था, उजाड़ डाला। उन्नाव, रायबरेली, इलाहाबाद,

बहराइच आदि उद्योग और व्यापार के बड़े-बड़े केन्द्रो को बर्बाद कर दिया।

अंग्रेजी राज मे अवध की प्रजा को दोहरा अत्याचार सहना पड़ता था। अंग्रेज़ो ने ताल्लुकदारों-जमीदारों को अपना चाकर बना लिया था। सूदखोर महाजनो और निर्दयी ज़मीदारों की मदद के लिए अंग्रेज़ी कानून, कचहरी-अदालत, पुलिस, ज़रूरत हो तो फौज भी, हमेशा तैयार रहती थी। सबसे ज्यादा सताए जाते थे 'नीची जात' वाले। चमारो से बेगार लेना, उनकी बहू-बेटियो को बेइज्जत करना ज़मीदारों का आम चलन था। बहुत-से गाँवो मे गरीबी के मारे ये *अपढ़-असहाय* चमार मुर्दा जानवरो का मास खाकर दिन काटते थे। अंग्रेज़ो ने अल्पसंख्यक मुसलमानो को पुलिस-कचहरी मे विशेष सुविधाएँ देकर, सरकारी काम-काज मे अरबी-फारसी से लदी हुई भाषा चलाकर यहाँ की जनता के सास्कृतिक विकास को भारी नुकसान पहुँचाया। उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण मे अंग्रेजी नीति का विरोध करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी जनता मे स्वदेश और स्वभाषा के प्रति प्रेम जगाया। इनके दो प्रमुख सहयोगी अवध के थे: एक प्रतापनारायण मिश्र जिनका गद्य भारतेन्दु के गद्य-जैसा ललित होता था; दूसरे बालकृष्ण भट्ट जो अपने युग के सबसे क्रान्तिकारी लेखक थे।

अवध का पछाँही भाग बैसवाडा कहलाता है। उन्नाव और रायबरेली जिलो के लगभग डेढ हज़ार वर्गमील के इस इलाके मे बसी हुई जनता अपनी बोली, अपनी लोक-सस्कृति, अपनी ऐतिहासिक परम्पराओ पर बड़ा अभिमान करती है। यहाँ के लोग अपने जीवट और हेकडी के लिए विख्यात हैं। भारतेन्दु ने बैसवाड़े की यात्रा करने के बाद लिखा था कि यहाँ का हर आदमी अपने को भीम और अर्जुन समझता है। इनकी भाषा भी कुछ ऐसी है कि लोग सीधे स्वभाव बात कर रहे हो तो अजनबी को लगेगा कि लड़ रहे हैं। ब्रजभाषा का गुण मिठास है, बैसवाड़ी का पौरुष। बैसवाडे का शायद ही कोई घर हो, खासकर बाम्हन-ठाकुर का, जिसमे कोई फौज मे सिपाही, हवलदार या सूबेदार न रहा हो। कसरत-कुश्ती के शौकीन, मजबूत काठी वाले, गलमुच्छ रखाए ये सिपाही किसी समय बैसवाड़े के गाँवो की शोभा थे। चौपाल मे सुर्ती मलते हुए वे देहात के लोगो को देश-विदेश की खबरें सुनाते थे। बूढ़े होने पर, फौज से अलग होने पर भी, पेन्शन मिलने के कारण ये अपने को औसत किसान से बढकर समझते थे।

बैसवाडा वर्णगत संकीर्णता का भी गढ़ था। ऊँच-नीच का भेद-भाव अलग-अलग वर्णो के बीच मे ही न था, एक ही वर्ण मे, विशेष रूप से ब्राह्मणो मे—बीघा-बिस्वा के अनुसार—यह भेद बडा प्रबल था। 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' की कहावत मशहूर है। अनेक ब्राह्मण मासाहारी होने पर भी छुआछूत के ऐसे कायल थे कि चमार का लाया ईंधन धोकर जलाते थे। बाल-विवाह, दहेज, पर्दा जैसी अनेक कुरीतियाँ 'ऊँची' जातियो मे प्रचलित थी। इतर वर्णो की स्त्रियाँ मर्दो के साथ खेतो मे काम करती, लड़ाई-झगडा होने पर एक को छोड़कर दूसरे के घर बैठ जाती; ज़रूरत होने पर उनका न्याय पंचायत करती।

चारों ओर निरक्षरता का राज था। कोसों तक प्राइमरी स्कूल के दर्शन न होते थे। जो दर्जा चहारुम पास कर ले, वह वड़ा विद्वान् समझा जाता था। मिडिल पास गिने-चुने थे। फिर भी लोक-संस्कृति दरिद्र न थी। हर गाँव में रामायण, भागवत, प्रेमसागर जैसे ग्रन्थ वाँचनेवाले दो-चार व्यक्ति जरूर होते थे। इनसे सुनकर अनपढ़ किसान भी धर्म और नीति की वहुत-सी वातें सीख लेते थे, मौके पर रामायण की चौपाई या दोहा उद्धृत कर सकते थे। गिरधर कविराय की कुंडलियाँ, घाघ-भड्डरी की कहावतें, राना वेनीमाधव की वीरता पर वैसवाड़े के ही कवियों के रचे हुए कवित्त, सूर के पद, शृंगार रस के सैकड़ों छन्द हजारो किसानो को कण्ठस्थ थे। चौपाल में आल्हा जमने पर आधा गाँव इकट्ठा हो जाता; नौटंकी देखने दूर-दूर के गाँवों से मनचले जवान टूट पड़ते। शूद्रों में कवीर के पदो का चलन खास तौर से था। मुसलमानों का सामाजिक जीवन भी सामन्ती व्यवस्था के ऊँच-नीच वाले भेद-भाव से प्रभावित था। शेख और वेहना एक-दूसरे से वैसे ही दूर थे, जैसे कुलीन और धाकर। ताजियों में हिन्दू भी शरीक होते थे। अवधी मे जव मुसलमान मर्सिये गाते थे, तव सुननेवाले धर्म की वात भूलकर काव्य-रस मे डूव जाते थे। प्रायः हर गाँव में किसी नदी, नाले या ताल के किनारे देवी का मन्दिर या शिवाला था, जहाँ फुर्सत के समय तमाखू खाने और वाते करने के लिए किसान इकट्ठे होते। पुरुप ज्यादातर हनुमान के उपासक थे क्योंकि वह वजरंग है, वल के देवता है। शाम को कनेर के लाल-पीले फूलों से जलभरे लोटे सजाकर खेतों की मेड़ से कन्याएँ देवी-पूजन को जाती।

दिवाली की रात खेतों में दिये जलाकर किसान 'धरती माता जागो' की पुकार लगाते। कतकी के पर्व पर सैकड़ो वैलगाड़ियाँ घुँघरू वजाती गंगा की ओर दौड चलती। किसान होली में नये अन्न की वालें भूनते, अलैया-वलैया गाँव की सीमा के वाहर भगाते, ढोल-मँजीरे के साथ फाग गाते हुए निकलते। कभी तकिया का मेला, कभी देवी अल्वापन का, कभी पासाखेरे की वजार, कभी पुरवा की, कभी करवा चौथ, कभी वरगदहाई, स्त्रियों-पुरुपो के मनोरंजक सांस्कृतिक कार्यक्रम आये दिन होते ही रहते थे।

गंगा, लोन, सई नदियो से सींची हुई वैसवाड़े की धरती उपजाऊ है। यहाँ की घनी अमराइयों में कोसों तक वौर महक उठते है, चाँदनी रात में सफेद धरती पर चुपचाप रसभरे महुए टपकते है, कोल्हू में ईख पेरी जाती है, कड़ाह मे रस खौलता है, चीपी, पतोई, राव की अलग-अलग मिठास की चर्चा होती है, तालों में कही लाल-सफेद कमल, रात में खिली हुई कोकावेली, भीगती हुई सनई की गन्ध, ज्वार के पेडों मे लिपटी हुई कचेलियों का सोंधापन, जौ और गेहूँ के खेतों में शान्त, वहता हुआ, पुर से निकला हुआ, कुएँ का पानी—कोई आश्चर्य नही कि यहाँ के लोगो को अपनी धरती से वड़ा प्यार है जिसे वे अक्सर तव समझते है जव उन्हें वैसवाडे से दूर कही रहना होता है।

वात गदर से कुछ साल वाद की है।

गढाकोला, जिला उन्नाव मे, बैसवाड़े का एक छोटा-सा गाँव है। ज्यादातर लोग गरीब थे। ब्राह्मण लोग हल चलाना आत्म-सम्मान के विरुद्ध समझते हैं, फिर भी गरीबी के मारे गढाकोला के ब्राह्मण खेती करते थे। गाँव के ताल्लुकदार पं० भगवानदीन दुबे छोटे-मोटे रईस थे। समाज की परवाह न करके उन्होने अपने यहाँ मुसलमान वेश्या रख ली थी। कुलीन-अकुलीन सभी ब्राह्मण उनके यहाँ खाते-पीते थे। किसी मे हिम्मत न थी कि उनकी ओर उँगली उठाये। 'समरथ को नहिं दोप गुसाईं'—कहकर लोग चुप हो जाते थे। भगवानदीन दुबे की गरीब रिआया मे एक गरीब ब्राह्मण किसान थे शिवाधारी तेवारी। संक्षेप मे लोग इन्हे सिधारी पण्डित कहते थे। चार लडके थे—गयादीन, जोधा, रामसहाय और रामलाल। किसानी से घर का खर्च न चल पाता था। काम की तलाश मे गयादीन ताल्लुकदार भगवानदीन के यहाँ गये। उन्होने सिधारी पंडित के लड़के को अपने यहाँ नौकर रख लिया। कोई बहुत बडी नौकरी न थी, फिर भी गृहस्थी की गाडी चलाने मे थोडी-बहुत मदद मिल जाती थी। दुर्भाग्य से एक दिन ताल्लुकदार के घोडे ने उनका हाथ काट लिया। भगवानदीन दुबे ने दया करके उन्हे थोडी-सी जमीन माफी दे दी। फिर भी दिन तंगी मे कट रहे थे। रामसहाय और रामलाल इन दो भाइयो का एक गुट था। ये आपस मे बाते करते—खेती मे कुछ नही धरा, बिगहपुर मे फलाने को देखो; कलकत्ता गये थे, दो साल में कमा के घर भर दिया। रामसहाय जवार के कई लोगो को जानते थे जो बंगाल मे नौकर थे। खेती मे उनका मन न लगता था। परदेस जाने के लिए वह सबसे ज्यादा उत्सुक थे। एक दिन भाइयों मे कुछ कहा-सुनी हुई। रामसहाय ने हाथ की खुरपी खेत मे गाडते हुए कहा—यह खुरपी तभी निकलेगी जब परदेस से कमाकर लौटूंगा।

सिधारी पडित के जवान लडके रामसहाय ने सत्तू-चबेना बाँधा, लोटा-डोर लिया और बंगाल के लिए पयान किया। कुछ दूर पैदल चले, बाकी रास्ता रेल मे तय किया। कलकत्ता पहुँचकर बैसवाडे के लोगो से मिले। इनमे कुछ पुलिस मे नौकर थे। बंगाल पुलिस मे पुरबियो की बडी खपत थी। रामसहाय लम्बे-तगडे जवान थे। भर्ती कर लिये गए। किसानी की हाय-हाय से पिण्ड छूटा। उन्होने रामलाल को भी बुलाकर पुलिस मे भर्ती करा दिया। उनके भाई जोधाप्रसाद का व्याह हो चुका था, पर रामसहाय की स्त्री का देहान्त हो गया था। जोधा के लड़का हुआ; नाम रखा बदलूप्रसाद। रामसहाय ने चाँदपुर, जिला फतहपुर के दुबों के यहाँ दूसरा व्याह किया। पुलिस मे नौकरी करते कुछ साल बीते थे कि रामसहाय को एक दिन मालूम हुआ कि उनके अफसर चाहते है कि अपने भाई रामलाल के साथ वह महिषादल चले जाये।

बंगाल के मिदनापुर जिले मे महिषादल नाम का देशी राज्य था। यहाँ राजा रामनाथ राज करते थे। जब इनका देहान्त हुआ, तब इनकी रानी पति का शव लेकर चिता पर चढ़ गई। राज्य का उत्तराधिकारी कोई न था। तभी वहाँ पछाँह से जिला बाँदा का रहनेवाला लक्ष्मणप्रसाद नाम का गरीब ब्राह्मण युवक भटकता हुआ जा पहुँचा। महाराज रामनाथ की पत्नी ने सती होने से पहले उसी को राज-

सिंहासन पर बिठा दिया। गदर के बाद लक्ष्मणप्रसाद के पुत्र ईश्वरप्रसाद गर्ग राजा हुए। अंग्रेजों को जैसे बंगाल-पुलिस के लिए पुरबियों की जरूरत थी, वैसे ही राजा ईश्वरप्रसाद कुछ मातवर आदमी चाहते थे जो बंगाली प्रजा को काबू मे रख सकें। उन्होंने अंग्रेज अफसरों से बात की, जिसका नतीजा यह हुआ कि सिधारी पंडित के दो पुत्र रामसहाय और रामलाल महिषादल में आ गये। काम वही सिपाहियों का था।

रामसहाय 'रामायण', 'हनुमानचालीसा' का पाठ करने वाले सीधे-सादे ब्राह्मण सिपाही थे। जिसका नमक खाना, ईमानदारी से उसकी तावेदारी करना—यही उनके जीवन का सिद्धान्त था। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें सिपाहियों का जमादार बना दिया।

राजा ईश्वरप्रसाद गर्ग के पुत्र हुआ। सती की महिमा का स्मरण करके उन्होंने उसका नाम रखा सतीप्रसाद।

गढ़ाकोला में सिधारी पंडित का देहान्त हो गया। पिता के क्रियाकर्म मे राम-सहाय और रामलाल ने काफी पैसा खर्च किया। भाइयों मे अब फिर हेलमेल हो गया था। रामसहाय गुस्सैल स्वभाव के थे, पर मन में मैल न जमने देते थे। भाइयों की बराबर मदद करते रहे। इधर ईश्वरप्रसाद गर्ग के बाद उनके पुत्र सतीप्रसाद गर्ग राजा हुए। उनसे भी रामसहाय और रामलाल की अच्छी निभती रही। रामसहाय ने कुछ पैसे जोड़ लिये थे। अपनी पत्नी के लिए कुछ गहने बनवाये; अपने लिए उन्होंने बड़ी गुरियों का कंठा बनवाया। सोने का कंठा पहने बिना गाँव मे कोई इज्जतदार न कहलाता था। रामसहाय की वह साध भी पूरी हुई। एक ही साध बाकी थी। वह चालीस पार कर चुके थे और अभी सन्तान का मुँह न देखा था। आखिर महावीर स्वामी ने वह साध भी पूरी की।

माघ शुक्ल ११, संवत् १९५५, तदनुसार २९ फरवरी, १८९९ को रामसहाय तेवारी के घर पुत्र-जन्म हुआ।[1] उस दिन मंगल था; महावीर स्वामी ने अपनी पूजा के ही दिन रामसहाय को पुत्र का मुँह दिखाया। दरवाजे पर बाजे बजे; नाई, धोबी, डोम वगैरह नेग माँगने आये। महिषादल में अवध के और परिवार भी रहते थे, कई घर बैसवाड़े के ही लोगों के थे। इन सबसे स्त्रियाँ आईं; सोहर होने लगे। थोड़ी देर के लिए रामसहाय को लगा कि वह गढाकोला में ही उत्सव मना रहे हैं। खैर, अभी न सही, जैसे ही मौका मिला, वह पुरखों की देहरी छुलाने बच्चे को गाँव जरूर ले जायेंगे।

पंडित ने जन्मकुण्डली बनाई। कहा—लड़का मंगली है, दो व्याह लिखे हैं; है बड़ा भाग्यवान, बड़ा नाम करेगा। इसका नाम रखो—सुर्जकुमार। रामसहाय ने सोचा—दो व्याह हमारे हुए, बेटा भी कुल-रीति निबाहेगा।

सुर्जकुमार पड़ोस की स्त्रियों के खिलौना हो गए। रंग-रूप देखकर कहतीं—महतारी तो साँवली है मुला बेटवा गोरा है, बाप को पड़ा है, आँखें और नाक हूबहू जमादार की-सी हैं।

रामसहाय को ढलती उम्र मे पुत्र का मुँह देखने को मिला; पर अब एक नयी चिन्ता सताने लगी। उनकी पत्नी का स्वास्थ्य ठीक न रहता था। वास्तव में सौर से निकलने के बाद फिर वह पनपी ही नहीं। सुर्जकुमार अभी बोलना सीख रहे थे, करीब ढाई साल के हुए होगे कि उनकी माँ इस ससार से विदा हो गई।

रामसहाय की सारी ममता बेटे पर केन्द्रित हो गई। अभी वह पैंतालीस के होगे। इस उम्र मे तीसरा व्याह करना कोई अनहोनी बात न थी। पर अब उनकी इच्छा व्याह करने की न थी। वह बेटे को नहलाते-धुलाते, भोजन कराते, रात को अपने पास सुलाते। पर दिन मे हमेशा अपने पास रखना सम्भव न था। नौकरी पर जाते समय वह अपने मित्र ज्वालाप्रसाद शुक्ल के दरवाजे पर आवाज देते, उनकी पत्नी निकलकर आती। सुर्जकुमार को उनके सुपुर्द करके रामसहाय काम पर चले जाते। ज्वाला-प्रसाद शुक्ल के भी एक लडका था। नाम था रामशकर, उम्र मे सुर्जकुमार से चार-पाँच साल बडा था। दोनो बच्चे साथ खेला करते। परदेस में एक ही गाँव-जवार के लोग आपस मे बडा भाईचारा मानते हैं, सुख-दुख मे एक-दूसरे का साथ देते है। सुर्ज-कुमार को हर तरफ स्नेह मिलता था, स्त्रियाँ हाथो-हाथ रखती। बाप का लाड अलग। जो खाने-पहनने को माँगते वही मिल जाता। सुर्जकुमार स्वभाव मे खिलाडी नटखट और कुछ-कुछ जिद्दी भी हो चले।

सुर्जकुमार की खेलने की जगह महल की हद से बाहर एक ताल के किनारे थी, जहाँ उनके बाप कच्चे घर मे रहते थे। दूर पर राजमहल दिखाई देता था, बहुत बड़ा, खूब शानदार, उसके सामने कच्चे घर बहुत ही तुच्छ मालूम होते थे। वहाँ राजा रहते है, हम उनके नौकर हैं, यह भेद सुर्जकुमार की समझ मे आने लगा। बाप के साथ कभी-कभी वह महल की तरफ जाते। हर तरफ हरी-हरी दूब के मैदान, सुन्दर फलो वाले पेड़ और फूल-ही-फूल दिखाई देते। कमल, गुलाब, जुही की अरघाने सुर्ज-कुमार का दिमाग तर कर देती। पर यह सब दूर से देखा जा सकता है। बाप समझा देते, यहाँ खेलना मना है।

जोधा का लड़का बदलूप्रसाद अब बारह साल का हो रहा था। उसका व्याह करना जरूरी था। इस तरह का काम-काज गढ़ाकोला मे ही हो सकता था। यह अच्छा अवसर था जब रामसहाय बच्चे को लेकर पुरखों की देहरी छुआ लाते। बदलू का व्याह करने रामलाल के साथ वह गाँव आये।

सुर्जकुमार ने पहली बार बेर और बबूल के जंगल, बड़े-बडे ऊसर, गाँव के किनारे सूखी लोन नदी देखी। आमों के बाग थे, पर वैसी घनी हरियाली यहाँ न थी जैसी महिषादल मे देखी थी। यहाँ का घर वैसा ही कच्चा, टूटा-फूटा जैसा महिषा-दल वाला था। भगवानदीन दुबे का घर पक्का था, पर राजा के महल के सामने बिल-कुल टुच्चा। सुर्जकुमार 'सहिबाला' बनकर भाई के साथ डोली मे बैठे, व्याह कितना बढ़िया तमाशा होता है, यह उन्होंने देखा!

गाँव मे भी सुर्जकुमार को अपना प्यार-दुलार करने वाले बहुत-से मिले। इनमे ताल्लुकदार भगवानदीन दुबे की पतुरिया भी थी। सुर्जकुमार को उसका व्यवहार

वहुत अच्छा लगा। वह मिठाई खिलाती, प्यार करती और गाना सुनाती। सुर्जकुमार ने गाँव की अन्य स्त्रियों को भी गाते सुना, पर इसका गला उन सबसे ज्यादा सुरीला था। कपड़े भी अच्छे पहनती है, साफ-सुथरी रहती है, वाल सुन्दर ढंग से सँवारती है। यह गाँव की दूसरी औरतों की तरह नहीं है। वे सव इसे पतुरिया कहकर हँसती हैं। क्यों हँसती हैं, यह सुर्जकुमार की समझ में न आता था, पर वह उन्हें अच्छी जरूर लगती थी।

होते-करते वदलूप्रसाद का गौना भी हो गया। घर मे रोटी वनाने की समस्या हल हो गई। दोनों भाई हाथ से ठोंककर खाते थे। अव वदलूप्रसाद की नवयुवती पत्नी महिषादल आ गईं। सुर्जकुमार को अपनी भौजाई वहुत अच्छी लगती थी; वह उनको प्यार भी वहुत करती थीं। पर चौके-चूल्हे, नहाने-धोने के नियम-कायदों की वड़ी पावन्द थीं। इधर सुर्जकुमार की समझ मे ये नियम-कायदे आते न थे। खेल-कूद में रहते थे, पढने-लिखने से अभी कोई वास्ता न था।

एक दिन शाम को सुर्जकुमार ने घर के पास हाजत रफा की। ठंढ के दिन थे, सोचा कौन ताल में सौंचने जाए। कुछ पत्तों से जगह पोछकर घर पहुँच गए। उधर इनकी भाभी खिड़की के पास खड़ी यह सव तमाशा देख रही थीं। इन्हें भूख लगी थी। सीधे रसोईघर में जाने ही वाले थे कि भाभी ने रास्ता रोक लिया और पंडित रामसहाय को सारा हाल वता दिया। रामसहाय उठे। सुर्जकुमार का हाथ पकडकर उठा लिया। टाँगे हुए ताल तक ले गए। फिर पानी में डुवो-डुवोकर कहने लगे—सौंचता जा, सौंचता जा। सुर्जकुमार ने जव सौंच लिया, तव रामसहाय ने दो-चार तमाचे और लगाए। वाम्हन का लड़का, सौंचे विना चौके में जा रहा था। सुर्जकुमार को इस वारे मे कोई स्पष्ट निर्देश न मिला था, इसलिए पिता ने जो दण्ड दिया, वह उन्हें अन्याय लगा।

सुर्जकुमार मुहल्ले के लड़कों के नेता हो गए। गोली खेलने में वह सवके उस्ताद थे। ज्यादा समय खेल-कूद में वीतता था। पर अव वह घर में ककहरा और गिनती सीखने लगे। रामसहाय कभी भजन गाते, हनुमानचालीसा पढते, या रामायण का पाठ करते। देवी-देवताओं की कहानियाँ वह सुर्जकुमार को सुनाते। सुर्जकुमार को कहानियाँ सुनने में वड़ा मजा आता था। रामसहाय ने सोचा—अव लड़के का जनेऊ कर देना चाहिए। उसके वाद इसे स्कूल मे भर्ती कराएँगे।

सुर्जकुमार पिता के साथ गढ़ाकोला आए। अव वह आठ साल के हो गए थे। लोगों से सुनते कि जनेऊ हो जाने के वाद लड़के हर किसी के हाथ का छुआ खा-पी नहीं सकते। सुर्जकुमार सोचते, आखिर जनेऊ पहनने से ऐसा क्या हो जाएगा कि मैं दूसरे का छुआ खा न सकूँगा। पतुरिया के लड़कों से दोस्ती थी। उसके यहाँ आना-जाना वन्द करना पड़ेगा। अव ताल्लुकदार भगवानदीन दुवे नहीं थे। समाज मे इस परिवार का मान घट गया था। जव ताल्लुकदार ने वड़े लड़के शमशेरवहादुर का जनेऊ किया था, तव ब्रह्मभोज में सव वाम्हन शामिल हुए थे। पर अव इन्हीं लोगों ने उनके यहाँ खाना-पीना वन्द कर दिया था। पतुरिया के छोटे लड़के फतहवहादुर ने सुर्जकुमार

से कहा, "अभी तुम हमारे यहाँ खाते हो, जब जनेऊ हो जायेगा, न खाओगे।" उन्हें यह भी याद दिलाया कि उनके ताल्लुकदार पिता ने सुर्जकुमार के बड़े चाचा को जमीन माफी दी थी। फतहबहादुर की बहन परागा ने कहा, "बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नही।" सुर्जकुमार ने तय किया कि जनेऊ के बाद भी इनके यहाँ खाएँ-पीएँगे, देखें कोई क्या कर लेता है।

भैयाचार आए। यज्ञोपवीत संस्कार पूरा हुआ। प्रथा के अनुसार सुर्जकुमार ने हठ किया कि विद्या पढ़ने जाएँगे; माँ की जगह काकी ने मनाते हुए कहा, बेटा मान जाओ, घर छोडकर मत जाओ। पडितजी ने मंत्र पढ़े। सुर्जकुमार ने जनेऊ पहना, अब वह बाकायदा द्विज हुए। पिता ने सावधान किया, "अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।" सुर्जकुमार को याद आया कि पतुरिया मुसलमान है, उसके लडके अपने को पडित समझते हैं, इसलिए माँ होने पर भी उसे भोजन दूर से देते हैं। पिता से बोले, "पतुरिया का छुआ तो उसके लड़के भी नही खाते-पीते।" रामसहाय ने कहा, "उनके हाथ का भी मत खाना।" पर सुर्जकुमार ने हुज्जत की "जब ताल्लुकदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे?" इस पर रामसहाय ने डाटकर कहा, "हम जैसा कहते है कर।"

एक दिन पतुरिया-पुत्र फतहबहादुर कुएँ पर नहा रहे थे कि उधर सुर्जकुमार निकले। इन्हें देखकर फतहबहादुर व्यंग्य से मुस्कराए। मतलब यह कि अब तुम्हारी हिम्मत नही कि हमारे यहाँ खाओ-पियो। सुर्जकुमार ने मतलब समझकर कहा, "भैया, पानी पिला दीजिए।" फतहबहादुर ने प्रसन्न होकर पानी पिलाया, गाँव के जो ब्राह्मण उन्हे अपमानित करते थे, उनसे उन्होंने इस तरह बदला लिया। ब्राह्मणो को मालूम हुआ। उन्होने जाकर रामसहाय से शिकायत की—"आपका लड़का सबके सामने पतुरिया के छोटे लडके का भरा पानी उन्ही के लोटे से पी रहा था। अभी नादान है, इसलिए इस दफ़ा माफ किए देते हैं; फिर अगर हरकत करते देखा गया, तो हमे लाचार होकर आपसे व्यवहार तोड़ना होगा।" शिकायत सुनकर रामसहाय तेवारी को बड़ा क्रोध आया, सुर्जकुमार की अच्छी तरह मरम्मत कर डाली। पर इससे पतुरिया-परिवार से सुर्जकुमार का स्नेह-सम्बन्ध टूटा नहीं। कुछ दिन बाद उन्होने फिर वैसी ही हरकत की। और यह चोरी-छिपे नही वरन् खुलकर, जिससे दम्भी विप्रवर्ग को सब-कुछ मालूम हो जाय। गाँव के मुखिया ने रामसहाय से कहा, "क्या तुम दूसरो का धर्म लेना चाहते हो? आज तुम्हारा लड़का पतुरिया के लड़के से ले-लेकर भुने चने चबा रहा था। आज से गाँव के ब्राह्मणों में तुम्हारा व्यवहार बन्द है।"

रामसहाय तेवारी के स्वभाव में क्रोध और स्वाभिमान की मात्रा बराबर थी। इसके सिवा वह सुर्जकुमार को प्यार भी करते थे; क्रोध मे आकर जब-तब हाथ छोड़ बैठते थे पर यह आवेश क्षणिक होता था। जाति-बिरादरी की मर्यादा के लिए वह अपने प्यारे पुत्र की फिर ठुकाई करें, यह असम्भव था। इस बार उनका सारा क्रोध मुखिया पर बरस पड़ा। उन्होंने डाटकर कहा, "तू हमारा पानी बन्द करेगा? तू

पासी का है, गांव में जा और पूछ, तेरी लड़की पटने में एक-दो-तीन-चार, एक-दो-तीन-चार कर रही है—हम अपनी आँखों देख आए हैं। माना कि चौधरी भगवानदीन का काम बेजा था, लेकिन उनके सामने कहते। नही, जब तक वह जिए इन्हीं लड़कों की धो-धोकर पीते रहे, अब सब छंगे के बने फिरते हो ? शहर में होते तो देखते हम, कितने आदमियों का बम्बे का पानी और डाक्टर की दवा छुड़ाते हो। यहाँ क्या नाम के करने को कौन-सा काम और गाने को छीता हरन।"

मुखिया से कुछ जवाब देते न बना। अपना-सा मुँह लेकर चले गए। रामसहाय ने बेटे का पक्ष ही नही लिया, मुखिया के विरुद्ध उसी का दिया हुआ तर्क भी इस्तेमाल किया। सुर्जकुमार ने ही उनसे पूछा था, "जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे ?" रामसहाय ने पुत्र को डाट दिया था, पर मन में उसकी तर्क-बुद्धि के कायल थे।

जनेऊ के बाद सब लोग महिषादल आए। रामसहाय ने अब सुर्जकुमार की पढ़ाई की ओर ध्यान दिया। महिषादल में हाई स्कूल था ही। उन्होंने सुर्जकुमार को उसी में भर्ती कराने का विचार किया। १३ सितम्बर, १९०७ को महिषादल स्कूल की कक्षा ८ सेक्शन-बी (अब के हिसाब से तीसरी कक्षा) मे सुर्जकुमार का नाम लिखा दिया गया। पिता और गार्जियन—रामसहाय तेवारी; निवास स्थान—गढ़ाकोला, उन्नाव; पेशा—नौकरी; 'रिमार्क्स' के खाने में हेडमास्टर जे० एन० कुन्जीलाल ने लिखा—'ऐडमिशन फ्री।' राजकर्मचारी का लडका था, भर्ती होने की फीस नही ली गई। उम्र दो साल बढ़ाकर लिखाई गई—दस साल आठ महीने। सुर्जकुमार की क्लास के दूसरे लड़के ज्योतीषचन्द्र, विभूतिभूषण आदि चौदहवें, पन्द्रहवें साल में थे; सुर्जकुमार का अभी नवाँ ही चल रहा था। कद मे लम्बे होने पर भी वह अपनी कक्षा में सबसे कम उम्र वाले लडकों में थे। अब तक घर पर कोई नियमित पढ़ाई भी न हुई थी, इसलिए दर्जे में उनका कमजोर रहना अनिवार्य था।

इस वर्ष एक महत्वपूर्ण घटना और हुई। बंगाल के लाट सर फ्रांसिस ड्यूक महिषादल पधारे। महिषादल के राजा के साथ उन्होंने फोटो खिचाया। बीच में ऊँची कुर्सी पर लाट साहब बैठे। कुर्सी इतनी ऊँची थी कि लाट साहब के पाँव मुश्किल से ज़मीन तक पहुँचते थे। उनके दाएँ नीची कुर्सी पर राजा सतीप्रसाद गर्ग बहादुर बैठे, बाएँ वैसी ही दो नीची कुर्सियों पर राजपरिवार के दो अन्य सदस्य। पीछे एक चपरासी, शेष सिपाही हाथ में तलवारें खीचे खड़े हुए। इस लाइन में गवर्नर की बाईं ओर एकदम सिरे पर रामसहाय तेवारी खड़े हुए। लाइन में खड़े हुए लोगों मे वह सबसे लम्बे थे। सिर पर कामदार गोल टोपी, गले में सोने का कंठा, भव्य दाढ़ी-मूँछें, लम्बी नाक, बड़ी आँखें, बिर्जिस पर फौजी कोट, आँखों में थकन, हाथ मे नंगी तलवार, बढ़ते हुए पेट को पेटी से कसे हुए—गढ़ाकोला-निवासी पंडित रामसहाय तेवारी, महिषादल राज मे सिपाहियों के जमादार ने लाट साहब के साथ फोटो खिचाया।

स्कूल में पढ़ते हुए सुर्जकुमार तेवारी राजा, अंग्रेज, जमादार—इन शब्दो का

अर्थ समझने लगे। गढाकोला से महिपादल कितना भिन्न है ! कहाँ वह छोटी-सी लोन नदी, कहाँ यह विशाल नद रूपनारायण ! हर तरफ़ पानी-ही-पानी दिखाई देता है, नदियाँ, नाले, तालो की तो गिनती नही। उपजाऊ धरती, हर तरफ वृक्ष, लताएँ, घास, फूल और काँटे, सब बेसँभाल बढते-फैलते हुए; क्षितिज तक फैले हुए मुनहले धान के खेत, बीच मे खेतो को चीरती हुई सडक, आस-पास और क्षितिज पर गहरे हरे रग के वृक्षो की पाँति। दृश्य सुन्दर किन्तु मलेरिया का प्रकोप, सारा क्षेत्र विषैले साँपो से भरा हुआ।

राजमहल के चारो ओर प्रशस्त उद्यानभूमि, हरी दूब वाले बड़े-बड़े पार्क, पानी से भरी हुई परिखा मे कमल, बडे-बड़े लाल गुलाबो से भरा हुआ पूरा एक मैदान; बेला, जुही, हरसिंगार, बकुल, चम्पा के ऋतु-अनुसार फूल; आम, जामुन, लीची, फालसे, अनार, कटहल के वृक्ष; जगह-जगह बाँसो के झाड; नारियल के पेड़ हर तरफ। सुर्जकुमार ने पिता के साथ उन कमरो की झलक भी देखी जिनमे जरी के काम वाले वस्त्र, जवाहरात, सोने के आभूषण, कीमती बर्तन रखे जाते थे। बड़े-बड़े सन्दूको मे राजकोष कहाँ रखा रहता है, इसका आभास भी उन्हे था। महल के हर निकास पर पहरा रहता है, यह भी उन्हे मालूम था। चौधरी भगवानदीन दुबे गढ़ाकोला मे ताल्लुकेदार कहलाते थे; महिषादल मे उनकी हैसियत एक मामूली नौकर से ज्यादा न होती। महिषादल राज्य लगभग चार सौ वर्गमील का क्षेत्र घेरे हुए था, सालाना आमदनी बारह लाख थी। तीन लाख छत्तीस हजार तो सरकारी मालगुजारी देनी होती थी।

एक दिन सुर्जकुमार ने पिता से कहा, "तुम्हारे मातहत इतने सिपाही है, तुम इस राजा को लूट क्यो नही लेते ?" रामसहाय को शक हुआ कि उनके बेटे को किसी दुश्मन ने बरगलाया है। उन्होने पूछा—किसने सिखाया है ? सुर्जकुमार ने जितना ही इन्कार किया, उतना ही उनका शक पक्का होता गया। उन्होंने लड़के को बहुत मारा, इतना मारा कि सुर्जकुमार बेहोश हो गए।

रामसहाय तेवारी वफादार सिपाही थे। जिसका नमक खाया था, उसके बारे में इस तरह की बात सुन भी न सकते थे। आखिर राजा अवध के इन सिपाहियो को नौकर क्यो रखते है ? इसलिए कि राजा का नमक खाकर बंगाली प्रजा के विरुद्ध वे राजा का हुक्म बजा लाने मे जरा भी आगा-पीछा न करते थे।

राजा ईश्वरप्रसाद ने रामसहाय को अपने यहाँ नौकर रखा था, उनके पुत्र सतीप्रसाद पर रामसहाय की सहज ममता थी। अब वह साठ के नजदीक पहुँच रहे थे। इस उम्र में राजा के खिलाफ़ बगावत ? पुत्र पर क्रोध करना स्वाभाविक था। फिर राजा क्षत्रिय न होकर ब्राह्मण थे। अलबत्ता कान्यकुब्ज न थे, सरयूपारीण ही थे, पर थे तो ब्राह्मण। पछाँह से उनका सम्बन्ध था। घर के लोग साफ़ हिन्दी बोलते थे। हर दृष्टि से सुर्जकुमार का सुझाव उन्हे किसी शत्रु का रचा हुआ षड्यन्त्र ही लगा।

सुर्जकुमार को राह पर लाने के लिए उन्होने एक काम और किया। अपने

गुरुजी के पास ले जाकर उन्हें गुरुमन्त्र दिला लाए; सुर्जकुमार और अपने भतीजे बदलूप्रसाद का भविष्य सुखी बनाने के लिए उन्होने गढ़ाकोला वाला घर नये सिरे से बनवाया। नया घर भी कच्चा था, पर काफी बड़ा था और परिवार के रहने लायक था।

सुर्जकुमार के दिन मजे में कट रहे थे। स्कूल मे भर्ती होने से उनके खेलकूद मे कोई तब्दीली न हुई थी। मुहल्ले में लडकियाँ है, उन्हे देखना अच्छा लगता है, सुर्जकुमार यह समझने लगे थे। कोर्स की किताबे अच्छी न लगती थीं पर इन्द्रजाल की पोथी पढ़कर मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के बारे में वह बहुत-कुछ जान गए थे। एक दिन इन्द्रजाल की पोथी के अनुसार उन्होंने मन्त्र सिद्ध करने का विचार किया। रात के नौ बजे होंगे। वह भाभी की कोठरी मे थे कि छछूंदर दिखाई दी। उन्होने उठकर तुरत किवाड़ बन्द किए, फिर धोती उतारकर फेंक दी; हाथ में जूता लेकर छछूंदर के पीछे दौडने लगे। उल्टे जूते से छछूंदर मारनी थी। बडी मुश्किल से मार पाए। फिर हांडी में भरकर उसे बाहर गाड़ आए। लौटकर धोती पहनी।

स्त्रियों मे चर्चा होने लगी कि सुर्जकुमार को मन्त्र सिद्ध है, उनकी झाड़-फूंक से रोगी अच्छे हो जाते है। पडोस मे सुकुलाइन नाम की युवती को यह सब ढोंग मालूम हुआ। उन्होने अपनी शंका सुर्जकुमार की भाभी के सामने प्रकट की। भाभी ने सुर्जकुमार को ललकारा—"लोग कहते हैं, तुझे जंत्र-मंत्र कुछ नही आता, तू ढोंग करता है।" सुर्जकुमार ने सिद्ध पुरुष की तरह आत्मविश्वास से जवाब दिया, "जिसको विश्वास न हो, आजमा ले।" भाभी ने कहा कि सुकुलाइन को अपनी करामात दिखाओ। सुर्जकुमार एक कनेर का फूल तोड़ लाए और बोले—"मैं मंत्र पढ़कर यह दूंगा। इसे लेना होगा। बस, इसके बाद मैं सिद्ध हूँ या नही, देख लेना।" भाभी फूल लेने से डरी; सुकुलाइन से कहा, फूल ले लो। वह बोली, "फूल लेने से क्या होगा?" सुर्जकुमार ने जवाब दिया, "मंत्र के ज़ोर से हमेशा मेरे पीछे लगे रहना होगा। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, पीछे-पीछे जाना होगा।" सुकुलाइन की हिम्मत पस्त हो गई। भाभी से बोली, "भई, मैं बहन हूँ, मैं कैसे फूल ले लूं? तुम भाभी हो, तुमको उतना दोष नही।" इस तरह कनेर का फूल दिखाने से ही सुर्जकुमार इस मारण-उच्चाटन युद्ध मे विजयी हुए।

रामसहाय तक ये बातें पहुंची हो चाहे नहीं, कुलरीति के अनुसार पुत्र का ब्याह कर देना जरूरी था। अभी उम्र बारह के आस-पास थी, ब्याह की कोई जल्दी न थी, पर गाँव मे लड़को का ब्याह इस उम्र तक कर दिया जाता था। डलमऊ में रामदयाल द्विवेदी के यहाँ बात पक्की हुई। लड़की की उम्र करीब ग्यारह साल।

रामसहाय गाँव आए और सुर्जकुमार के ब्याह की तैयारी शुरू हो गई। सात सुहागिनो ने एक साथ मूसल पकडकर धान कूटे, एक साथ दरेती का खूंटा पकडकर उडद दले। उडद की दाल भिगोई गई। रामसहाय को बूढ़ी भौजाई के साथ चौक पर बिठाया गया। दोनों की गांठ जोड़ी गई और दोनों ने दाल पीसने की रस्म पूरी की।

फिर उड़द की धोई के बड़े तले गये। गेरू से दरवाजे पर माँईं बनाई गईं; उन्हें बरा-भात खिलाया गया। हर रोज ढोलक बजती, गीत होते। नाइन सुर्जकुमार के उबटन लगाती। आखिर निकासी का दिन आया। सुर्जकुमार को हाथ-पैरों में कड़े पहनाये गए, गले में कंठा, पीली धोती, पीला जामा, पीली पगड़ी पहनाई गई। सिर पर मौर रखा गया। झैयम-झैयम करते बरात गढ़ाकोला से रवाना हुई।

डलमऊ पहुँचने पर बरातियों को मिर्चवान पिलाई गई; फिर नाश्ते के लिए पूड़ियाँ आईं। बरातियों ने हाथ-मुँह धोया, नाश्ता किया, कपड़े बदले। अगवानी हुई। हँसी-मज़ाक करते लोग फिर जनवासे लौट आए। कुछ देर बाद भाँवरों के लिए बुलावा आया। मंडप के नीचे पंडित ने मंत्र पढ़े; सुर्जकुमार और मनोहरादेवी की गाँठ जोड़ी गई। दोनों ने भाँवरें घूमीं। फिर देवताओं के सामने वर-वधू ने एक-दूसरे को दही-बताशे खिलाए। मनोहरादेवी घूँघट मारे थीं; सुर्जकुमार उनका मुँह देखने में असफल रहे। दूसरे दिन भात के समय सुर्जकुमार ने स्त्रियों को गालियाँ गाते सुना। शाम को छोटी बढ़ार और तीसरे दिन बड़ी बढ़ार के समय भी यह सिलसिला जारी रहा। ब्याह हो गया पर वहू अपने मायके ही रही। सुर्जकुमार पिता और बरातियों के साथ गढ़ाकोला वापस आए। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद सब लोग फिर महिषादल आ गए।

सुर्जकुमार महिषादल में फिर पहले जैसा जीवन बिताने लगे। खेल-कूद में ज्यादा समय पहले ही जाता था, अब पढ़ने में मन और भी कम लगता। अब वह फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी हो गये। तैरने में कुशल थे। नाटक देखने में उन्हें विशेष आनन्द आता था। महल के पास ही नाट्यशाला थी जहाँ राजा सतीप्रसाद जब-तब नाटक कराते थे। बँगला नाटक 'तरुवाला' में सुर्जकुमार ने एक 'हिन्दुस्तानी' का पार्ट किया। कुछ दिन बाद वहाँ स्टार थियेटर आया। उसके रंगमंच की चमक-दमक, अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के ठाट-बाट देखकर सुर्जकुमार को लगा—सबसे बढ़िया जीवन इन्हीं का है।

नाटक, खेल-कूद के साथ सुर्जकुमार ने अपने शरीर को सुदृढ़ और सुन्दर बनाने की ओर ध्यान दिया। महिषादल का वातावरण ही ऐसा था। हर सिपाही थोड़ी-बहुत डंड-बैठक करता था। दूसरे राजा-रईसों की तरह महाराज सतीप्रसाद गर्ग के यहाँ भी अच्छे-अच्छे पहलवान थे। स्वयं महाराज सतीप्रसाद अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थे।

एक बार कलकत्ते में कोई सरकस आया। उसमें एक पहलवान ने घुटने से लोहे की मोटी छड़ दबाकर मोड़ दी। फिर उसने चुनौती दी, जो कोई ऐसे ही छड़ मोड़ देगा, उसे एक हजार रुपया इनाम मिलेगा। राजा सतीप्रसाद के साथ उनके मित्र बंगाल के प्रसिद्ध डाक्टर और राजनीतिज्ञ विधानचन्द्र राय सरकस देख रहे थे। उन्होंने खड़े होकर अपनी ओर से ऐलान कर दिया, राजा सतीप्रसाद छड़ मोड़ेंगे। बंगाल के सम्मान का प्रश्न था। लोगों ने जोरों से तालियाँ बजाईं। राजा उठे और पहली से भी ज्यादा मोटी छड़ लेकर घुटने लगाये बिना ही दोनों हाथों से मोड़कर उन्होंने बँगला

के चार का अंक वना दिया। फिर उन्होंने कहा, जो इसे सीधा कर देगा, उसे दो हज़ार रुपये इनाम मिलेंगे। किसी ने वह चुनौती स्वीकार न की।

सुर्जकुमार कसरत करते, वादाम छानते, रामायण पढ़ते और मित्रों से गप लड़ाते। राजमहल के सामने जो वड़ी नहर थी, उस पर कलकत्ता जाने वाले स्टीमर देखते, किश्तियों में लोग माल ढोकर लाते, छोटा-सा वाज़ार, जैसा उन्होने अपने गाँव से कुछ दूर पुरवा में देखा था, स्कूल के पास ताल के किनारे वैठकर मित्रों से सुनते, कैसे इसी मिदनापुर जिले में प्रसिद्ध उपन्यासकार वंकिमचन्द्र सरकारी अफसर थे और यहाँ अपने एक-दो उपन्यास भी उन्होने लिखे थे। वंगाली जाति महान् है, वँगला भाषा के समान भारत की कोई भाषा नही है, रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, सुर्जकुमार वंगाली नहीं 'हिन्दुस्तानी' हैं, यह सव ज्ञान एंट्रेन्स परीक्षा देने से पहले ही मित्रों ने उन्हें करा दिया। सुर्जकुमार वँगला की अपेक्षा हिन्दी ही ज्यादा जानते थे। उनका मन भक्ति-साहित्य और श्रृंगार-रस की कविता, दोनों में ही रमता था। उन्होंने व्रजभाषा की काफी कविता पढ़ डाली थी। पद्माकर उनके प्रिय कवि थे। उनकी सानुप्रास शव्दावली, श्रृंगार-वर्णन में भी ओजगुण का पुट, सुर्जकुमार को विशेष पसन्द था। पद्माकर के श्रृंगार-वर्णन की चित्रमयता उनका मन मोह लेती थी। स्मरण-शक्ति अच्छी थी, दो-तीन वार पढ़ने पर छन्द कण्ठस्थ हो जाते थे। संस्कृत काव्य भी अच्छा लगता था, विशेषकर जहाँ शव्द-योजना सुन्दर हो और श्रृंगार के चित्र खीचे गये हों। सुन्दर कवि ने राजा की लड़की विद्या से प्रेम किया, राजा ने उसे प्राणदण्ड दिया। जव प्रहरी उसे सूली देने ले जा रहे थे तव वह अपने और विद्या के प्रेम-सम्वन्ध पर छन्द पढ़ता हुआ राजप्रासाद के सामने से निकला। उनमें एक छन्द यह था :

> **अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीम्**
> **फुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजिम्।**
> **सुप्तोत्थितां मदनविह्वलितां लसांगीम्**
> **विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि।**

राजा ने छन्दों पर मुग्ध होकर प्राणदण्ड की आज्ञा रद्द कर दी। सुर्जकुमार को 'विद्या सुन्दर' की कहानी वहुत पसन्द आई। 'चौर पंचाशिका' का उपर्युक्त छन्द वह खूव रस लेकर गुनगुनाते रहते।

व्याह हुए दो वर्ष वीत गये थे। सोलह के नजदीक पहुँच रहे थे। लोग कहते थे, कण्ठ फूट आया, मसें भीगने लगीं; वगलें निकल आईं, अव गौना कर देना चाहिए। सुर्जकुमार अपनी रानें देखते, वोतल जैसी ढली हुई लगतीं। कमर वालिश्त भर, सीना खूव चौड़ा, सिर पर घने काले वाल, गोरा रंग, मदभरी आँखें, सुर्जकुमार अपनी ही छवि पर मुग्ध हो जाते। साथ ही कनकचम्पकदामगौरी विद्या का चित्र भी आँखों के सामने घूम जाता। रामसहाय तेवारी ने तै किया कि लड़के का गौना कर देना चाहिए और वहू को महिपाडल ले आना चाहिए।

पुत्र को लेकर रामसहाय गढ़ाकोला पहुँचे, वहाँ से गौना लेने डलमऊ गए। सुर्ज--

कुमार की ससुराल मे इस बात की बडी चर्चा थी कि गौने के बाद बिटिया परदेस—बड़ी दूर बगाल—चली जायगी। वर-वधू की गाँठ जोडकर उनसे जब पूजा कराई जा रही थी, तब घर की एक वृद्धा ने कहा, "दामाद जवान, बिटिया जवान; परदेस ले जाते है तो ले जाने दो।" लोग उन्हे जवान समझते है यह जानकर सुर्जकुमार को विशेष प्रसन्नता हुई। गौना हुआ। बहू को बिदा कराके रामसहाय गाँव आये। दुर्भाग्य से वहाँ उन दिनो प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। लोग घरो से निकलकर बाग मे झोपड़े डालकर रहते थे। महुए के पेड के नीचे एक झोंपड़े मे सुर्जकुमार का बिस्तर लगाया गया। जीवन मे पहली बार उन्हे नारी-देह के स्पर्श का सुखद अनुभव हुआ। मनोहरादेवी कुल तेरह साल की थी।

गौना लेकर आये अभी चार-पाच दिन ही बीते थे कि सुर्जकुमार के ससुर अपनी बिटिया बिदा कराने आ पहुँचे। गाँव मे बीमारी फैली है, यह उन्हे मालूम था। बेटी को बहुत प्यार करते थे; डर था कि महामारी मे उसे कुछ हो न जाये। लड़की के यहाँ लोग खाते नही है; रामदयाल दुबे ने गढाकोला में पानी भी न पिया। बिदा के लिए जल्दी की। रामसहाय को बहुत बुरा लगा। बंगाल से इतना रुपया खर्च करके आये है; लडका पाँच दिन भी बहू के साथ न रह पाया। दुबे लडकी के स्वास्थ्य की चिन्ता के कारण इतनी जल्दी आये है, यह सोचकर उन्हे और भी क्रोध आया। आखिर महामारी का डर उनके बेटे के लिए भी है। बिटिया के लिए बडा डर लगा, दामाद के बारे मे कुछ न सोचा। क्रोधी स्वभाव के थे ही। बोले—ले जाओ अपनी बिटिया; हम लड़के का दूसरा ब्याह कर लेगे। दुबेजी कुछ ऊँचा सुनते थे। समधी की पूरी बात समझे बिना बिटिया को बिदा कराके चल दिये। पर बिटिया ने सारी बात सुनी और समझ ली थी।

जब सुर्जकुमार सोकर उठे, उन्हे पता चला कि मनोहरादेवी बहल में बैठी हुई, लोन नदी पार करके, बीघापुर स्टेशन पहुँचने वाली हैं।

मनोहरादेवी से उनकी माँ पार्वतीदेवी ने सब हाल सुना तो बहुत परेशान हुईं। मेरी दो दाँत की लडकी, उसके सामने दूसरे ब्याह की बात! उन्होने पंडित रामसहाय के नाम चिट्ठी भिजवाई, कसूर के लिए माफी माँगी, दामाद को गवही देने के लिए निमन्त्रित किया। गौना हो जाने के बाद गवही की रस्म होती है। वर ससुराल जाकर कुछ हफ्ते या महीने वहाँ रहता है। फिर बहू को बिदा कराके अपने घर आता है।

रामसहाय को प्रस्ताव पसन्द आया। लडके से ससुराल जाने को कहा। समधी से बदला लेने के लिए ताकीद कर दी, यहाँ से तिगुना खाना। सुर्जकुमार ससुराल जाने को तैयार बैठे थे। पिता की आज्ञा तुरन्त स्वीकार कर ली। कहा कि घी और बादाम की मात्रा तिगुनी कर देगे। अफसोस इस बात पर किया कि वहाँ बेदाना मिलता नही, वर्ना शरबत मे ही रोज़ तीन रुपये खर्च करा देते। रामसहाय ने सुझाया, रूह की मालिश कराना रोज़, होश दुरुस्त हो जाएँगे। बाप-बेटे घुल-घुलकर बतियाने लगे; रामदयाल दुबे को कैसे छकाये, इस बारे मे दोनो ने षड्यन्त्रकारियो की तरह

योजना बनाई। इस समय उन्हें देखकर कोई यह न कहता कि इन्ही रामसहाय ने कभी बेटे की मरम्मत भी की होगी।

गवही की तैयारी हुई। बक्से में धराऊ कपड़ों के अलावा एक जोड़ी जूते भी रख लिये। बैसवाड़े की धूल मे जूते बेआब हो जाते, ससुराल मे पहनने लायक न रहते। डलमऊ कलकत्ता न था पर गढ़ाकोला को देखते तो कस्बा था। सुर्जकुमार को अपनी नागरिक सभ्यता से ससुराल वालो को प्रभावित करना था; वह बैसवाड़े के कोई ऐसे-वैसे देहाती हूस नहीं हैं, यह बताना था। बंगाली ढंग से कीमती शान्तिपुरी धोती बाँधी, उस पर कमीज़ पहनी, छाता लिया और स्टेशन के लिए रवाना हुए। गाड़ी शाम के चार बजे आती थी पर स्टेशन दूर था; इसलिए ढाई बजे घर से निकले। बैलगाडी का इन्तजाम न था, पैदल ही स्टेशन चले। चन्द्रिका लोध को खिदमतगार बनाकर पहले ही सामान के साथ स्टेशन भेज दिया था।

जेठ-बैसाख के दिन। लू जोरों से चल रही थी। सुर्जकुमार ने सर-कान ढकने का कोई प्रबन्ध न किया। लू के थपेड़ो से मुँह लाल हो गया। रास्ते मे कंकडो से ठोकर लगने पर जूता फट गया। कोंछदार धोती उड़ती हुई बेर के काँटों में उलझ गई। हवा के तेज़ झोके से छाता उलट गया। हाथ, पैर, मुँह, बाल सब धूल से भर गये। मगड़ायर पार करके बीघापुर स्टेशन के सामने वाले ऊसर मे पहुँचे थे कि टिकौली रावतपुर से आती हुई गाड़ी का अरंहटा सुनाई दिया। घर वापस जाने का सवाल न था। जूते उतार कर हाथ मे लिये, छाता बगल मे दबाया और स्टेशन की तरफ दौड़ना शुरू किया। बीघापुर में इंजन पानी लेता है, गाड़ी से अलग होता है, फिर जुड़ता है। सुर्जकुमार को समय मिला। ऊसर की तरफ प्लेटफार्म नहीं था। चन्द्रिका इस पार मुँह बाये सुर्जकुमार की राह देख रहा था। धूल-पसीने में लथपथ जब वह गाड़ी तक पहुँच गये, उसे तसल्ली हुई। टिकट कटा लिये थे। सुर्जकुमार पहली बार पिता के बिना ससुराल के लिए रवाना हुए।

सूरज डूबते डलमऊ स्टेशन आया। चन्द्रिका से सामान उठवाकर चले तो गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक नौजवान ने पूछा, कहाँ जाइएगा? शेरंदाजपुर का नाम सुनकर उसने कहा, आइये हमारा इक्का है। किसके यहाँ जाना है, यह भी उसने मालूम कर लिया। सुर्जकुमार ने देखा, चिकनाई जुल्फों पर दुपलिया टोपी लगाये, मूँछे ऐंठे, चिकन के कुर्ते पर वास्कट पहने, हाथ में बेंत लिये गाँव का छैला जैसा लगता है। उन्होने यह भी नोट किया कि वह भी काली मखमली किनारे की कलकतिया धोती पहने है। पैरों में मेरठी जूते है। इस व्यक्ति का नाम पथवारीदीन भट्ट उर्फ कुल्ली भाट था।

सुर्जकुमार किसके इक्के पर बैठकर आये है, यह समाचार उनके ससुराल पहुँचने के साथ-साथ सास को मिल गया। गलीचा-बिछे पलँग पर बैठे ही थे कि उन्होने पूछा, क्यों भइया तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो? उन्हीं के इक्के पर आये है, बात पक्की होने पर सास ने लम्बी साँस ली। सुर्जकुमार के लम्बे लहराते बाल और कोछदार धोती देखकर बैसवाड़े के लोग यही कहते—जनाना है। वही भाव सास का था।

शरवत-पानी के वाद उन्होंने रामसहाय की तीखी आलोचना की, अगर उन्होंने सुर्जकुमार का दूसरा व्याह कर दिया तो इससे पिता-पुत्र की जो दुर्गति होगी—इस जन्म मे और उसके वाद—उसका सजीव चित्र खीच दिया। साथ ही उन्होंने अपनी पुत्री के रूप-गुण की प्रशंसा भी काफी की। दामाद को पढाते हुए कहा—मैंने तुम्हारा ही मुँह देखकर व्याह किया है, तुम्हारे पिता की तोंद देखकर नहीं।

सुर्जकुमार आज्ञाकारी दामाद की तरह सब-कुछ सुनते रहे। पिता का पक्ष लेकर उन्होंने लड़ाई करना उचित न समझा। पिता ने दूसरे व्याह की धमकी देकर ठीक किया है, ऐसा दृढ विश्वास भी उन्हे नही था। रात मे पत्नी के आने पर दिये के प्रकाश मे पहली वार उन्होंने मनोहरादेवी की छवि देखी। पर माँ की तरह वेटी ने भी सवाल किया, "तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो?"

सवेरा होते ही कुल्ली आकर सुर्जकुमार को पूछ गये। अभी वह सो रहे थे। सास ने वताया और दामाद को चेतावनी दी, उनके साथ रहने पर तुम्हारी वदनामी हो सकती है। इससे मिलो, उससे न मिलो—यह सब सुर्जकुमार को अच्छा न लगता था। गढ़ाकोला मे वाप कहते थे, पतुरिया के लड़कों से न मिला करो; यहाँ सास कहती हैं, कुल्ली से न मिलो। पर ऐसे लोगो से मिलने मे ही उन्हे विशेष आनन्द आता था। कुल्ली आये; डलमऊ के इतिहास के वारे मे वातें की। शाम को गंगा का घाट, पुराना किला वगैरह दिखाने को कहा। सास ने मना किया पर इन्होंने ज़िद की। सास ने चन्द्रिका को साथ भेज दिया।

कुल्ली ने इशारा किया कि चन्द्रिका को विदा कर देना चाहिए। सुर्जकुमार ने उसे रूह खरीदने भेज दिया। किले मे एक स्थान उन्हे वहुत पसन्द आया। काफी ऊँचाई पर वारहदरी वनी थी और नीचे गंगा वहती थी। नीचे उतरने के लिए सीढियाँ वनाई गई थी जिनमें कुछ अव भी वची हुई थीं। कुल्ली ने सुर्जकुमार से गाने को कहा। गले की तारीफ की। "पान भी क्या खूवसूरत वनाता है तुम्हे! तुम्हारे होंठ भी गज़व के हैं। पान की वारीक लकीर, क्या कहूँ, शमशीर वन जाती है।" कुल्ली के प्रशंसा-वाक्य सुनकर सुर्जकुमार प्रसन्न मन घर लौटे। रास्ते मे चन्द्रिका को समझा दिया, तुम्हारी नानी पूछे तो कहना, हम साथ थे।

सास को यह पता लगाते देर न हुई कि सुर्जकुमार किला देखने गए तव चन्द्रिका साथ न था। उन्होंने डण्डा उठाकर चन्द्रिका से कहा, "देख, दहिजार लोध! भले आदमी की तरह ठीक-ठीक वता, नही तो वह डण्डा दिया कि मुँह टेढ़ा हो गया।"

चन्द्रिका अपने मालिक सुर्जकुमार को पकड़कर रोने लगा। वोला—"वावा, मैं न रहूँगा।" पूछने पर मालूम हुआ कि चन्द्रिका को रूह लेने के वहाने अलग करने का राज़ सास को मालूम हो चुका है। सुर्जकुमार ने तै किया, दवना नही है। चन्द्रिका से रूह की मालिश करने को कहा। चन्द्रिका जव सुर्जकुमार के सीने पर रूह मल रहा था, तभी ससुर रामदयाल दुवे खुशवू के सहारे आ पहुँचे और वोले, "अरघानें उठ रही हैं वच्चा! इतना इत्र-फुलेल न लगाया करो।" सास ने आकर पूछा, रूह की मालिश से क्या होता है? दामाद ने जवाव दिया, सीना तगडा होता है। इस पर

उन्होंने बड़ा टेढ़ा सवाल किया, "तुम्हारे पिताजी तनखाह कितनी पाते है ?" तनखाह इतनी कम थी कि सुर्जकुमार सही बात कहने में शरमाये। कूटनीति का सहारा लेकर बोले, "पिताजी की आमदनी की कितनी सूरतें हैं क्या कहूँ ! उनकी आमदनी कब कितनी हो जाएगी, कहाँ से, कैसे, किससे, यह वही नहीं बता सकते।" इस पर सास रोने लगीं। रामसहाय रूह से बेटे की मालिश करायें पर उनकी बेटी के लिए चढ़ावा ऐसा मामूली लाए ! ऐमे घर मे बेटी ब्याहने पर खुद ही पछताने लगी—"अरे राम रे ! मुझे क्या हो गया, जो मैंने शादी की !"

रात को पत्नी ने विरोध किया। इत्र-फुलेल लगाना किसान-परिवारो में अच्छा न समझा जाता था। मनोहरादेवी ने कहा, इत्र की इतनी तेज़ खुशबू है कि शायद आज आँख न लगेगी। सुर्जकुमार ने चुटकुला सुनाया। एक मछुआइन को नदी से लौटते देर हो गई; रास्ते में राजा की फुलवारी पड़ती थी, उसी में सो रही, पर फूलो की महक से नीद न आई। मछली वाली टोकरी सिरहाने रखी, तब नीद आई। पत्नी ने बिगड़कर कहा, "तो मैं मछुआइन हूँ ? मैं मछली-कलिया खाती हूँ ?" सुर्जकुमार ने जवाब दिया, "अपने बाल सूँघो ? तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी-कभी मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ।" मनोहरादेवी ने और तेज होकर कहा, "तो क्या मैं रण्डी हूँ जो हर वक्त बनाव-सिंगार के पीछे पडी रहूँ ?" और वह उठकर चल दीं।

सुर्जकुमार ने गाँव में पतुरिया का शृंगार देखा था। यद्यपि वह उम्र में बहुत बड़ी थी और उसके लड़के भी सुर्जकुमार से बड़े थे, फिर भी थी तो वह पतुरिया। वह गाँव की स्त्रियों से अलग निखर-सँवर कर रहती थी। उसके अलावा महिषादल मे गायिकाओं, सुन्दर स्त्रियों की कमी न थी; उनकी प्रसाधन-कला को गँवईगाँव की स्त्रियाँ कहाँ पातीं ? मनोहरादेवी ने अपने पति की रुचि भाँपकर ही मानो कहा था, तो क्या मैं रण्डी हूँ जो बनाव-सिंगार के पीछे पडी रहूँ ?

सुर्जकुमार को लग रहा था, पत्नी उनके अधिकार में पूरी तरह नही आ रही। एक दिन उनका गाना सुना, लोगों को उनके गाने की प्रशंसा करते सुना। जिसे देखो वही मनोहरादेवी की चर्चा कर रहा था, मानो सुर्जकुमार उस घर में हो ही नहीं। मनोहरादेवी ने भजन गाया—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरणभवभयदारुणम्।

तुलसीदास की शब्द-योजना इतनी सुन्दर है, सुर्जकुमार के ध्यान में यह बात पहले न आई थी। जब मनोहरादेवी ने गाया—

कन्दर्प अगणित अमित छवि नवनीलनीरज सुन्दरम् !

तब सुर्जकुमार को लगा, गले में मृदंग बज रहा है।

मनोहरादेवी के कंठ से तुलसीदास का यह छन्द सुनकर सुर्जकुमार के न जाने कौन-से सोते संस्कार जाग उठे। साहित्य इतना सुन्दर है, संगीत इतना आकर्षक है, उनकी आँखों ने जैसे नया संसार देखा, कानों ने ऐसा संगीत सुना जो मानो इस पृथ्वी पर दूर किसी लोक से आता हो। अपनी इस विलक्षण अनुभूति पर वह स्वयं चकित

रह गए। अपने सौन्दर्य पर जो अभिमान था, वह चूर-चूर हो गया। ऐसा ही कुछ गायें, ऐसा कुछ रचकर दिखायें, तब जीवन सार्थक हो। पर यहां विधिवत् न साहित्य की शिक्षा मिली, न संगीत की।

सुर्जकुमार को पढ़ाई का ध्यान आया। बिदा कराके गांव आए, गांव में महिपादल। स्कूल जाने का क्रम फिर शुरू हुआ। अब एक कठिनाई और हो गई थी; किताब लेकर बैठते तो पृष्ठों से अक्षर गायब हो जाते और उनकी जगह मनोहरादेवी की छवि तैरने लगती। पद्माकर के कवित्तों का अर्थ अब और भी अच्छी तरह समझ में आने लगा। एन्ट्रेंस परीक्षा के दिन नजदीक आए। परीक्षा में पास न हो पायेंगे, सुर्जकुमार को निश्चय हो गया था। गणित के दिन वह कापी में पद्माकर के शृंगार रस वाले कवित्त लिखकर घर चले आये।

जैसे-जैसे परीक्षाफल निकलने के दिन पास आने लगे, वैसे-वैसे सुर्जकुमार के मन में शृंगार के बदले वैराग्य के भाव उदय होने लगे। रामायण का पाठ वह और भी मनोयोग से करने लगे। पर इससे कोई लाभ न हुआ। सफल विद्यार्थियों में कहीं उनका नाम न था। रामसहाय तेवारी ने समझ लिया, लड़का आवारा हो गया; सजा दिए बिना काम न चलेगा। बुलाकर कहा, जो कुछ पढ़ना था, पढ़ चुके; हमने अपना फर्ज पूरा किया, अब अपनी मेहरिया सँभालो और कमाओ-खाओ।

उन्होंने बहू का सारा गहना रखवा लिया, सुर्जकुमार के धराऊ कपड़े रखवा लिये। भाग्य के सहारे कमाने-खाने के लिए घर से बाहर कर दिया। सुर्जकुमार के मन को एक चोट लगी परीक्षा में फेल होने की। खैर, पास होने की तो वैसे भी बहुत आशा न थी। दूसरी चोट अब यह घर से निकाले जाने की, वह भी अकेले नहीं, पत्नी के साथ। कहां जाएं, किससे नौकरी मांगें ? महिपादल छोड़ अभी दूसरी जगह विशेष परिचय न था। कलकत्ते में इधर-उधर भटकने पर कुछ-न-कुछ काम मिल जाता पर पत्नी को लिये-लिये कहां घूमें ? एक ही रास्ता था। किसी तरह ससुराल पहुँचकर वहीं शरण लें। सुर्जकुमार दुखी मन से पत्नी को लिये डलमऊ पहुंचे। सास ने सारा हाल सुना, सहानुभूति प्रकट की। रामसहाय के व्यवहार से वह पहले ही नाराज थीं; वह जंगली हूस हैं, इस घटना से उनकी यह राय और भी पक्की हो गई। सुर्जकुमार पिता की आलोचना सुनकर चुप रहे। जिस घर में रूह की मालिश कराके उन्होंने अपनी नागरिक सभ्यता का परिचय दिया था, उसी में दीन-मलीन वेश में निठल्ले दामाद की तरह उन्हें आश्रय लेना पड़ा। अब उनसे कहने की जरूरत न थी, कुल्ली के यहां मत जाना। कुल्ली का साथ करके वह सास को नाराज न करना चाहते थे। पार्वतीदेवी काफी सहानुभूति से पेश आईं। बेटी के लिए नए सिरे से गहने और दामाद के लिए कपड़े बनवाए; और बातें दर-किनार, कस्बे में खुद अपनी इज्जत का सवाल था।

सुर्जकुमार भविष्य की चिन्ता करना छोड़कर पत्नी के साथ सुख से दिन बिताने लगे। अब उन्हें उनके बालों और वेशभूषा से कोई शिकायत न रही। उनकी पत्नी कितनी कर्मठ है और वह स्वयं कितने निकम्मे हैं, इसका बोध उन्हें होने लगा।

छह महीने वीत गए। वाप-वेटा दोनों ज़िद्दी। आखिर रामसहाय तेवारी ही झुके। खुद डलमऊ आए और वेटे-वहू को गाँव लिवा लाए।

मनोहरादेवी साध्वी महिला थी। उनकी माँ लम्वे कद, गौरवर्ण की सतेज व्यक्तित्व वाली देवी थीं। माँ के समान मनोहरादेवी सुन्दर थी। पर वह अपना समय शृंगार-प्रसाधन में न खर्च करती थी। उस समय तक गाँव में क्रीम-पाउडर की पहुँच न हुई थी। मनोहरादेवी रोटी वनाती, वर्तन माँजती, टोला-पडोस के लोगों के लिए चिट्ठी लिखती। इन चिट्ठी लिखाने वालों मे एक साँवला चमार युवक था—चतुरी। वह दहलीज़ मे वैठकर रामायण पढ़ती; वाहर चवूतरे पर सुर्जकुमार के काका राम-लाल वैठकर सुना करते। कभी-कभी वह भजन गातीं और चतुरी भी मगन मन सुनता रहता।

सुर्जकुमार को एक दिक्कत थी। मनोहरादेवी शाकाहारी थी और सुर्जकुमार को गोश्त खाने का शौक था। वैसे वह गुरुमुख हो चुके थे पर लाड-प्यार में पले वेटे ने मन की इच्छाओं का दमन करना न सीखा था। मनोहरादेवी ने कहा—"विश्राम-सागर में लिखा है कि मांस खाने से वड़ा पाप होता हैं; तुम मांस खाना छोड़ दो।" उनके कहने से सुर्जकुमार ने मांस खाना छोड दिया। मांस छोड़ने के कारण हो अथवा पत्नी के साथ रहने से हो, सुर्जकुमार वहुत दुवले हो गए। एक दिन उघारे वदन जव नहाने जा रहे थे, तव गाँव के एक वूढ़े पंडितजी ने इन्हें देखकर ताज्जुव से कहा—"तुम क्या हो गए?" सुर्जकुमार ने जवाव दिया, "मांस छोड़ दिया, इसलिए दुवला हो गया हूँ।" उन्होंने पूछा, "तो मांस क्यों छोड़ा?" इन्होने वताया, "विश्रामसागर में लिखा है, वड़ा पाप होता है, मरने पर मांसाहारी को यम के दूत वड़ा दण्ड देते हैं।" पंडितजी ने पूछा, "तुमने अपनी इच्छा से छोड़ा या किसी के कहने पर?" सुर्ज-कुमार ने वताया कि पत्नी के उपदेश से ऐसा किया है। पंडितजी ने कहा, "तो फिर तुम खाओ। कनवजियों को पाप नहीं होता। उनको वरदान है।" इन्होंने जिज्ञासा की, "कही लिखा भी है?" पंडितजी ने विश्वास-पूर्वक कहा, "हाँ, है क्यों नहीं? वंशावली में लिखा है।"

सुर्जकुमार चिकवे के यहाँ गए और आधा सेर मांस ले आए। रूमाल में खून के धव्वे देखकर मनोहरादेवी ने पूछा, "यह क्या है?" उत्तर मिला, "मांस।" उन्होंने पूछा, "तो फिर खाओगे?" सुर्जकुमार ने कहा, "हाँ, हमें वरदान है। वंशावली में लिखा है।" मनोहरादेवी ने कहा, "अपने मांस वाले वरतन अलग कर लो। जिस दिन मांस खाओ, उस दिन न मुझे छुओ और न घर के और वरतन। तीन दिन तक कच्चे घड़े न छू पाओगे।" सुर्जकुमार ने कहा, "इस समय तो रोज खाने का विचार है क्योंकि पिछली कसर पूरी करनी है।" मनोहरादेवी ने कहा, "तो मुझे मेरे मायके छोड़ आओ।" सुर्जकुमार ने जवाव दिया, "लिख दो कोई ले जाए, नही तो नाई भेज दो, किसी को वुला लाए। मैं जहाँ मांस पकाता हूँ वहाँ दो रोटियाँ भी ठोंक लूँगा।" मनोहरादेवी मायके चली गईं।

सन् '१४ की लड़ाई शुरू हो गई थी। देश में महँगाई वढ़ रही थी। राम-

सहाय बूढ़ा रहे थे पर सुर्जकुमार को अभी घर का भार उठाने की कोई फिक्र न थी। इसी साल कुँवार के महीने मे मनोहरादेवी ने मायके मे ही पुत्र को जन्म दिया। रामसहाय अब बाबा हुए। नाती के जन्म पर उन्होंने धूमधाम से उत्सव किया। सुर्ज-कुमार की ज़िम्मेदारी बढ़ गई। लेकिन जब तक रामसहाय जिए, इन्होंने घर-गृहस्थी की कोई चिन्ता न की। अब स्कूल जाना भी बन्द था। कसरत, खेलकूद, सैर-सपाटा, स्वेच्छानुसार अध्ययन—यही जीवन-क्रम था।

रामसहाय का शरीर शिथिल हो रहा था, पेट बढ़ गया था। डाक्टरों ने कहा, हार्निया है। महिषादल के अस्पताल मे उनका आपरेशन हुआ। आपरेशन सफल हुआ पर रामसहाय पूरी तरह स्वस्थ फिर कभी नही हुए। वह गाँव चले आये। सलेथू, जिला उन्नाव की एक स्त्री, जिसका परिवार महिषादल मे था, गोरी की माँ के नाम से प्रसिद्ध, गढ़ाकोला मे उनकी देखभाल करती रही। सन् '१७ मे मनोहरादेवी ने दूसरी सन्तान, कन्या सरोज को जन्म दिया। उसी वर्ष रामसहाय तेवारी का देहान्त हुआ।

सुर्जकुमार को अब अपने उत्तरदायित्व का बोध हुआ। उम्र उन्नीस साल, दो बच्चो के बाप, पिता अब नही है; उन्हे अब दूसरो के सहारे जीने का अधिकार नही है—यह सब उनकी समझ मे अपने-आप आ गया। इसके सिवा पिता के न रहने पर उन्हे ज्ञात हुआ कि बुढ़ऊ उन्हे कितना प्यार करते थे! माँ के न रहने पर माँ-बाप वह दोनो थे। जो कुछ कमाया था, वह सब सुर्जकुमार के लिए। गाँव से इतनी दूर परदेस मे और किसके लिए मर-खप रहे थे? क्रोध आने पर कई बार उन्होंने मारा भी था, पर यह भी सुर्जकुमार के भले के लिए। उन्होंने लाड-प्यार भी कम न किया था। देशी रियासत मे सिपाहियो के मामूली जमादार की हैसियत ही क्या? पर उन्होंने सुर्जकुमार को राजकुमारो की तरह रखा। कौन जनेऊ, ब्याह, गौने के लिए बंगाल से बैसवाड़े के दरिद्र गाँव मे आकर इतना पैसा खर्च करता है? गाँव मे किस नौजवान को शान्तिपुरी धोती और पम्पशू पहनने का सौभाग्य मिलता है? बादाम और बेदाना कितनो को मयस्सर होता है? उस पर इत्र-फुलेल, नाटक-तमाशे, सैर-सपाटा! यह सब रामसहाय तेवारी की बदौलत। अब वह साया उठ गया था।

बाप की सेवाओं का विचार करके राजा सतीप्रसाद गर्ग ने सुर्जकुमार को अपने यहाँ नौकर रख लिया। सिपाही के बेटे को उन्होंने सिपाहियों मे भर्ती नही किया। सुर्जकुमार बाप से ज्यादा पढे-लिखे थे। उन्हे चिट्ठी-पत्री, तहसील-वसूली, कचहरी-अदालत से सम्बन्धित काम मिल गया। तनखाह मामूली थी, पर चचेरे भाई बदलूप्रसाद भी यही नौकर थे, खर्च चल जाता था। सुर्जकुमार अब राजा के और निकट सम्पर्क में आये। एक नाटक मे सुर्जकुमार को संस्कृत श्लोक पढ़ने का छोटा-सा पार्ट दिया गया। राजा को इनका श्लोक-पाठ पसन्द आया। उन्होंने अपने यहाँ के एक राज-कर्मचारी को आज्ञा दी कि वह सुर्जकुमार को गाना सिखाया करे। सुर्जकुमार ने भी अब राजा को निकट से देखा। कद मे सुर्जकुमार से कई इंच छोटे है। रंग हल्का साँवला है, होठ मोटे है, नीचे का होठ आगे को कुछ निकला हुआ है। सुर्जकुमार से

ज्यादा सुन्दर नही हैं पर चेहरे से तेज झलकता है, और हाथ-पैर भी फौलाद के हैं। राजा ब्राह्मण हैं; नौकर-चाकर, रिआया-आसामी ज़मीन मे लेटकर, उनके चरणों में माथा टककर, साष्टांग दण्डवत् करते है—उन्होंने देखा। हुजूर कहे बिना उनसे बात करना गुस्ताखी में शामिल है। नौकरी और आत्म-सम्मान मे परस्पर क्या सम्बन्ध है, सुर्जकुमार को मालूम होने लगा।

एक दिन सुना लडाई बन्द हो गई, अंग्रेज जीत गये। स्वामिभक्त राजाओं ने उत्सव मनाये। पर लड़ाई के कारण किसानों की हालत बहुत खराब हो गई थी। अशिक्षा और निर्धनता तो थी ही, बाढ और अकाल में उनकी सहायता का कोई प्रबन्ध न था। युद्ध और महामारी में चोली-दामन का सम्बन्ध है। यूरुप में लडाई खत्म होने पर भारत में महामारी फैली।

सुर्जकुमार को तार मिला—तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, फौरन आओ। सुर्जकुमार ने तुरन्त डलमऊ के लिए कूच किया। राम-राम करते जब ससुराल पहुँचे, तब मालूम हुआ, मनोहरादेवी पहले ही चिता में जल चुकी है। फेफड़े कफ़ से जकड़ गये थे। डाक्टर ने पानी की जगह यखनी पिलाने को कहा था। पर यखनी पीना तो दूर, मनोहरादेवी ने अंग्रेज़ी दवा पीने से भी इन्कार कर दिया। कहा—दस बार नहीं मरना है; कौन धरम बिगाड़े? बड़े भाई बदलूप्रसाद उन्हें देखने आए पर खुद ही बीमार हो गए। सुर्जकुमार के पहुँचने से पहले ही वह गढ़ाकोला चले गये थे।

डलमऊ में और उसके आस-पास इतने लोग मरे कि उनकी लाशें फूँकना असम्भव हो गया। गंगा के घाटों पर लाशों के ठट लगे थे। लाशें फूलकर धीरे-धीरे नदी के दोनो किनारों की तरफ बहती थी; बीच मे थोड़ी-सी धारा दिखाई देती थी। लोग कहते थे, लाशों के सडने से गंगा का निर्मल जल भी अशुद्ध हो गया है, डाक्टरो ने जाँच करके देखा है, सेर भर पानी मे आध पाव सड़ा मांस निकलता है।

चार साल के रामकृष्ण, साल-भर की सरोज—दोनों सन्तानों को वहीं उनकी नानी के पास छोड़कर सुर्जकुमार अपने गाँव चले। अभी गाँव पहुँचे न थे कि देखा, लोग बड़े भाई बदलू की लाश लिये चले आ रहे है। सुर्जकुमार को चक्कर आ गया। राह में वहीं सिर पकड़कर बैठ गये। किसी तरह घर पहुँचे तो देखा, भौजाई बीमार हैं। उन्होंने पूछा, "तुम्हारे दादा को कितनी दूर ले गये होंगे?" सुर्जकुमार से कुछ जवाब देते न बन पड़ा। काका रामलाल भी बीमार थे, भतीजे को देखकर बोले, "तू यहाँ क्यों आया?" सुर्जकुमार ने कहा, "आप अच्छे हो जाएँ तो सबको लेकर बंगाल चलूं।"

बदलूप्रसाद के पाँच बच्चे थे—चार लडके और एक दूध-पीती बच्ची। बड़ा लड़का महिषादल में सुर्जकुमार के साथ रहता था, बाकी तीन गाँव मे थे। बडे भाई के देहान्त के तीसरे दिन भाभी भी गुजर गई। दूध-पीती बच्ची अकेली रह गई। सुर्जकुमार रात को उसे अपने पास लिटाकर सोये। घर में बिल्ली उछल-कूद मचाये थी। सुर्जकुमार को नींद न आई। सवेरे उठकर देखा तो खाट पर लेटी बच्ची का शरीर ठंडा था।

सुर्जकुमार ने बच्ची का शव उठाया। उसे नदी किनारे ले गये। गड्ढा खोद कर उसे गाड़ा, फिर घर लौटे। इसके बाद काका रामलाल का देहान्त हुआ। बदलूप्रसाद के लड़के बीमार हुए पर सौभाग्य से अच्छे हो गए। मृत्यु-लीला समाप्त हुई। परिवार मे रह गए सुर्जकुमार और उनके चचेरे भतीजे; पुत्र और कन्या ननिहाल मे थे।

जिन्दगी का यह दौर एक भयानक सपने जैसा था। सारा कुनबा ही उजड़ गया। अब सर पर किसी का साया नही। रामसहाय-रामलाल की पीढ़ी तो खत्म हो ही गई, बदलू-सुर्जकुमार की पीढ़ी मे भी अकेले सुर्जकुमार रह गये। एक आदमी की कमाई से इतने बच्चो का खर्च कैसे चलेगा ? इतनी मौतें एक साथ देखकर कोई अपने औसान कैसे कायम रखे ? कोई ऐसी पाठशाला नहीं जहाँ ऐसी परिस्थिति का सामना करने की शिक्षा आदमी को पहले से दी जा सके। फिर सुर्जकुमार के दिन लाड़-प्यार मे बीते थे। जिन्दगी के बीस साल निश्चिन्त बिताने के बाद सर पर यह आफ़त का पहाड़ ही टूट पड़ा।

सबसे बड़ा धक्का लगा, मनोहरादेवी के गुज़र जाने का। उनके विवाहित जीवन की शुरूआत अब होनी चाहिए थी पर शुरू होने के बदले उसका अन्त हो गया। मनोहरादेवी के जीवित रहते उन्होने उनकी कद्र न की। गवही के दिनों उनके बालो को लेकर ताने कसे। गोश्त खाने के पीछे गढाकोला मे अपने साथ रहना दूभर कर दिया। अपने निठल्लेपन के कारण एन्ट्रेन्स परीक्षा पास न कर पाए, इससे अपने साथ उन्हे भी अपमानित कराके घर से निकले। पर वह कितनी उदार थी ! कभी पति या ससुर के रूखे व्यवहार की शिकायत न की। कितनी कम उम्र मे संसार छोड़ गई ! अभी अठारह की भी तो न थी। कैसा सुन्दर कंठ, कैसा मृदुल स्वभाव, कैसा सात्त्विक सौन्दर्य, सुर्जकुमार ने देखा, उनके हृदय मे पत्नी के लिए अगाध प्यार है। यह प्यार अब तक क्यो न दिखाई दिया था ? किस मोह ने उनकी आँखो पर पर्दा डाल दिया था ? क्या मृत्यु ही यह पर्दा उठा सकती थी कि वह मनोहरादेवी की वास्तविक छवि देखें ?

सुर्जकुमार गढ़ाकोला से डलमऊ गए। गंगा के किनारे रात-रात भर वह श्मशान में घूमा करते जहाँ मनोहरादेवी की चिता जली थी। दिन में वह अवधूत टीले पर बैठ जाते और गंगा मे बहती हुई लाशें देखा करते। पत्नी और भाई के निधन के बाद अब मृत्यु का ऐसा कोई दृश्य न था जिससे सुर्जकुमार को भय होता। जीवन मे जो सबसे बीभत्स और भयानक है, उसे भर आँखों देखना वह सीख गए थे।

एक दिन वह अवधूत टीले पर बैठे थे; तभी कुल्ली ने आकर कहा, "मैं जानता हूँ, आप मनोहरा को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की ही जगह मार देता है, होश कराने के लिए।"

सुर्जकुमार को ब्रह्मज्ञान मिला। वह अभी तक बेहोश थे। न अपने को समझते थे, न मनोहरा को, न संसार को। दुख के अंकुश द्वारा अब ब्रह्म ने उन्हे अपना और संसार का ज्ञान कराया।

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरणभवभयदारुणम्।

कितना सुन्दर भजन ! दारुण भवभय को हरने वाला वही एक है राम। राम को छोड़ कौन ऐसे समय मन को शान्ति दे सकता है !

सुर्जकुमार महिषादल लौट आये। फिर वही तहसील-वसूली, कचहरी-अदालत। वह और भी नियमित रूप से रामायण का पाठ करने लगे। तभी एक दिन वहाँ रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द आए। स्वामी रामकृष्ण ने बंगाल के धार्मिक जीवन में अपनी साधना से एक जबरदस्त क्रान्ति कर दी थी; उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के वेदान्तज्ञान से ब्रिटेन और अमरीका चमत्कृत हो उठे थे। उन्हीं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई, साक्षात् रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द महिषादल पधारे थे।

राज्य के चीफ मैनेजर कायस्थ थे। स्वामी प्रेमानन्द भी संन्यासी होने से पहले कायस्थ ही थे। मैनेजर को गर्व था कि उनकी जाति मे इतने बडे संन्यासी पैदा हुए कि महिषादल की तमाम जनता उनके दर्शनों को उमड़ आई। एक खेत हमवार करके उसमें शामियाना लगाया गया। मंडप के द्वार पर तोरण, जल से भरे कलशों पर सेंदुर से बनाई हुई स्वस्तिका, परई में धान, आम के हरे पत्ते और कच्चे नारियल, फूल-पत्तियों से सजाया हुआ मंच, मंच पर कालीन से ढका हुआ तख्त, तख्त पर रामकृष्ण परमहंस का चित्र, चित्र के चारों ओर फूलमालाओं के ढेर। सुर्जकुमार ने स्वामी प्रेमानन्द के गले में बहुत-सी मालाएँ पहना दी। स्वामीजी ने हँसकर कहा, "तुम लोगों ने तो मुझे काली बना दिया।" कीर्तन आरम्भ हुआ। खोल-करताल की ध्वनि के साथ भक्तजन रामकृष्ण परमहंस के चित्र की परिक्रमा करने लगे।

उत्सव समाप्त होने पर मैनेजर स्वामीजी को अपने निवास-स्थान पर ले आए। वहाँ उन्होंने कबीर के पदो का बँगला अनुवाद स्वामीजी को सुनाया। राज्य के अन्य उच्च पदाधिकारी भी वहाँ उपस्थित थे। सुर्जकुमार अपनी सबसे बडी निधि तुलसीकृत रामायण भी साथ ले गए थे। स्वामीजी की आज्ञा पाकर वह पाठ करने लगे। अपने ही स्वर पर मुग्ध सुर्जकुमार को कभी स्वामीजी दिखाई देते, कभी महावीर, कभी मनोहरादेवी। स्थल वह था जहाँ सुतीक्ष्ण राम से मिले हैं—श्याम तामरस दाम शरीरम्। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरम्। सुर्जकुमार को लगा, कंठ में स्वयं सरस्वती आकर बोल रही हैं और उनका स्वर मनोहरादेवी के कंठ-स्वर से मिलता है। वह भावावेश मे पाठ करते जा रहे थे, समझ रहे थे कि सभी श्रोता भक्ति-रस के प्रवाह में निमज्जित हैं, स्वामी प्रेमानन्द ध्यानमग्न सहस्रार की छवि देख रहे हैं, तभी पूर्ण विराम वाला दोहा आने पर स्वामीजी ने पाठ बन्द कर देने को कहा।

घर के भीतर से घी में पकते हुए अन्न की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। गृह-स्वामी ने लोगों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण-कायस्थ सब एक ही पंक्ति मे बैठे। सबसे ऊँचे आसन पर स्वामी प्रेमानन्द को बिठाया गया। मैनेजर ने गर्व से कहा, "ब्राह्मणों ने हमें पतित समझा था; हमारी गिनती शूद्रों में करते थे। पर स्वामी विवेकानन्द और स्वामी प्रेमानन्द जैसे महापुरुषों ने हमें धन्य कर दिया। अब हम भी समाज में ब्राह्मणों की ही तरह सर उठाकर रहते हैं।" इस पर स्वामी

प्रमानन्द ने शान्त भाव से कहा, "संन्यासी होने पर देश-काल-पात्रता से हम दूर हो गये हैं। हमारा जीवन रामकृष्णमय है और सभी जनो के लिए है।" कुछ ब्राह्मणों ने कायस्थों के साथ एक ही पंक्ति मे भोजन करने पर आपत्ति की। स्वामीजी ने उन्हे शान्त किया। भोजन समाप्त होने पर सब लोग मदनगोपाल के मन्दिर गये। स्वामीजी ने एक कथा सुनाई। नारदजी ने एक बार विष्णुजी से पूछा, "भगवन्! मृत्युलोक मे आपका सबसे बड़ा भक्त कौन है?" विष्णुजी ने जवाब दिया, "एक किसान मेरा बडा भक्त है।" नारद भक्त की परीक्षा लेने चले। किसान हल जोतकर दोपहर को लौटा तो राम का नाम लिया। शाम को खेत से लौटा तब राम का नाम लिया। सवेरे खेत जोतने चला तब फिर राम का नाम लिया। नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऋषि-मुनि आठों याम इनका ध्यान करते है, यह किसान दिन-रात मे केवल तीन बार नाम लेता है और यह उन्हे सबसे प्रिय हो गया! विष्णु के पास जाकर उन्होने शंका प्रकट की। विष्णु ने कहा, "इसका उत्तर मिल जायेगा। इस समय एक आवश्यक काम कर डालिए। यह तेल का भरा कटोरा हथेली पर रख लीजिए और पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आइए, पर देखिए, एक भी बूंद तेल छलक कर गिरने न पाये।" नारद तेल का कटोरा लेकर चले; बडी सावधानी से कटोरा सँभाले हुए पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस आये। मन मे बड़े प्रसन्न थे कि तेल की एक बूंद भी नही गिरी और कार्य पूरा हुआ। विष्णु ने पूछा, "परिक्रमा के समय कितनी बार मुझे स्मरण किया?" नारद ने कहा, "आप ही का काम था। ध्यान तेल के कटोरे पर था। आपका स्मरण क्या करता?" विष्णु ने कहा, "वह किसान भी मेरा ही काम करता है। पर आठ पहर मे तीन बार मुझे याद करता है। इसीलिए वह मेरा सबसे प्रिय भक्त है।"

सुर्जकुमार को यह कहानी बहुत अच्छी लगी। जो गरीब है, खेत मे हल चलाता है, जो धर्म का आडम्बर नही जानता, वह भगवान् का सबसे प्रिय भक्त है। ये संन्यासी कितने महान् है! ये किसी को छोटा नही समझते; कुलीन-अकुलीन इनकी निगाह मे सब बराबर है। राजा और नौकर इनके लिए समान है। ये आदमी देखते है, आदमी की पोशाक नही। स्वामी प्रेमानन्द के मुख पर कैसी शान्ति थी! सुर्जकुमार के दुखी मन को एक सहारा मिला। शान्ति संन्यास मे है, बडा वह है जो संसार का मोह त्याग देता है जैसे स्वामी प्रेमानन्द ने त्याग दिया है। स्वामी रामकृष्ण ने तो ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा था; सुर्जकुमार को भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं?

वैराग्य के भाव मन मे और प्रबल हुए। स्वर्गीय मनोहरादेवी की छवि के साथ अब स्वामी प्रेमानन्द का भव्य मुख आँखो के सामने आता और लोप हो जाता। महिषादल मे एक सज्जन थे श्यामापद मुखोपाध्याय। वह रामकृष्ण परमहंस के बडे भक्त थे। सुर्जकुमार से उनकी मैत्री हो गई। उनके घर जाकर वह अक्सर वेदान्त-चर्चा करने लगे। स्वामी विवेकानन्द की पुस्तके लेकर पढी। स्वामी रामकृष्ण परमहस के बारे मे दूसरो का लिखा हुआ बहुत-कुछ पढा। ज्ञान का एक नया ससार सुर्जकुमार को दिखाई देने लगा। स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी—इनकी शिक्षा से ज्ञान का बरा

सम्बन्ध है ? ये सब डिगरियाँ बाँटते हैं पर सच्चा ज्ञान तो साधना से आता है। सुर्जकुमार एन्ट्रेन्स पास न कर पाए तो क्या हुआ ? साधना का द्वार तो उनके लिए भी खुला है।

तहसील-वसूली का काम अब उन्हें बिल्कुल अच्छा न लगता था। वह काम करते समय भी अपने दिवा-स्वप्नों में डूबे रहते। वह श्यामापद मुखोपाध्याय के बारे में सोचते। रामकृष्ण परमहंस की कृपा से सब-कुछ सम्भव है। श्यामापद बाबू की भाञ्जी को देखो। बहन का देहान्त हुआ तब उनकी पत्नी २५ वर्ष की थीं। बच्चा एक भी न हुआ था। श्यामापद बाबू की आठ महीने की भाञ्जी को वह स्तन पिलाने लगी। रामकृष्ण की कृपा; कुछ ही दिनों में उनके स्तनों से दूध निकलने लगा। श्यामापद बाबू कहते थे, मेरी भाञ्जी के प्रति पत्नी के हृदय मे वैसा ही भाव उदय हुआ जैसा अपनी पुत्री के लिए होता है, हृदय में स्नेह उमड़ने के साथ स्तनों मे दूध बह चला!

रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्व भी कैसा चमत्कारी था! उनके पिता रघुवीर जी की उपासना करते थे। रामकृष्ण के गर्भ मे आने से पहले ही रघुवीरजी ने उनकी माँ को स्वप्न मे दर्शन दिए थे और कहा था, हम तुम्हारे पुत्र-रूप मे अवतीर्ण होंगे। रामकृष्ण भगवान् के अवतार थे। साधना लोक-दिखावे को करते थे; सिद्ध पुरुष तो वह जन्म से थे। जब निरे बालक थे, तभी आकाश मे हंसों को उडते देखकर समाधि में लीन हो गए थे। उन्होंने व्याह किया पर वह साधारण जनों का-सा व्याह थोड़े ही था। योग दृष्टि से उन्होंने पहले ही मालूम कर लिया था कि उनकी पत्नी कहाँ है। उन्होने घरवालों को बता दिया, वहाँ चले जाओ; ऐसी-ऐसी लडकी मेरी पत्नी है, उससे सम्बन्ध पक्का कर आओ। सारदा मणिदेवी उनकी पत्नी क्या थी, साक्षात् सरस्वती थी। ब्रह्मरूप पति के साथ विद्या की ज्योति की तरह रहती थी। रामकृष्ण परमहंस के मन मे पत्नी को देखकर जरा भी काम-विकार उत्पन्न न होता था।

स्वामी विवेकानन्द सन्यासी होने से पहले जब पढ़ते थे, तब रामकृष्ण से पूछने आए थे, "क्या आपने ईश्वर को देखा है?" रामकृष्ण ने उन्हे जरा-सा छू दिया। तमाम पृथ्वी, पेड-पौधे नजर के सामने चक्कर खाने लगे। विवेकानन्द भय से चिल्लाए। रामकृष्ण ने उन्हे फिर छू दिया। तब वह अपनी पहले जैसी स्थिति में आए। पश्चिम का जड विज्ञान यह सब-कुछ नही मानता, पर भारत अपनी इस अध्यात्म-विद्या के कारण महान् है।

सुर्जकुमार को अब स्वप्न मे कभी महावीर दिखाई देते, कभी स्वामी प्रेमानन्द, कभी मनोहरादेवी। महावीर कभी गदा लिये वीर रूप मे प्रकट होते, कभी भक्त रूप मे हाथ जोड़े हुए। आकाश मे देवता के ही समान प्रकाशमान स्वामी प्रेमानन्द दिखाई देते। मनोहरादेवी साक्षात् सरस्वती के रूप में आती और माथे का सिन्दूर दिखाकर कहती: महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ। प्रिया जब सरस्वती बन गई तब काम-संस्कार भस्म हो गए; जब उसने मस्तक पर सिन्दूर के रूप में महावीर को धारण कर लिया, तब पत्नी के ध्यान और अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का समन्वय हो गया।

सुर्जकुमार आठ पहर में आध समय स्वप्न-लोक मे रहते और आधे समय प्रत्यक्ष संसार में। जिस स्वप्न-लोक मे वह महावीर-प्रेमानन्द-मनोहरादेवी को देखते थे, उससे प्रत्यक्ष संसार एकदम भिन्न था। आये-दिन प्रजा के उत्पीड़न के बारे मे कोई-न-कोई कथा सुनने को मिलती। एक दिन उन्होने सुना, नहर के किनारे किसी गांव के पुजारी को राजा के सिपाहियो ने मारा है। राजा किश्ती पर हवा खाने निकले थे। साथ में कुछ पहलवान और सिपाही थे। कुछ सिपाही नहर के किनारे-किनारे नाव के साथ पैदल दौडने लगे। अचानक उन्होंने देखा, एक पुजारी नहर के किनारे खड़ा हुआ राजा को देखकर मुंह से अजीव-सी आवाज कर रहा है। जब राजा की निगाह उस तरफ गई तो उसने पेट खलाकर हाथो से उसे मला, यानी वह भूखा है, यह बता दिया। फिर मुंह थपथपाया और हवा मे दोनो हाथो के अंगूठे हिलाए, जिसका मतलब था कि कोई सुनवाई नही, खाने को कुछ नहीं है।

राजा ने किश्ती की रफ्तार धीमी करा दी। कुछ दूर पुजारी साथ दौड़ा। तब तक पीछे से सिपाही भी आ पहुँचे। राजा का इशारा पाकर सिपाहियो ने पुजारी को पकड़ लिया। कहा, ठेंगा दिखाता है हमारे महाराज को? उसे खूब मारा, फिर उसकी दोनों हथेलियाँ और उँगलियाँ लाठी के गूले से कुचल डाली। पुजारी के घर मे सत्रह साल की विधवा बेटी, दो छोटे लडके और पत्नी थी। ये सब दाने-दाने को मोहताज हो गए। पुजारी देवी के मन्दिर मे पूजा करता था, प्रतिदिन उसे तीन पाव चावल और चार केले मिलते थे, महीने के अन्त मे तीन रुपये। उसे डेढ़ साल से यह वृत्ति न मिली थी। उसने दरखास्तें भेजी थी, कोई सुनवाई न हुई थी, तभी उसने राजा से अपनी बात कहने का यह ढँग निकाला था। अब उसे मन्दिर मे पूजा के उस काम से भी अलग कर दिया गया।

ऐसी घटनाएँ राज्य मे आये-दिन हुआ करती थी। सुर्जकुमार सुनते और सोचते—आखिर भगवान् इनके लिए कुछ क्यों नही करते? वह कमल और गुलाब के फूलो से महावीर का श्रृंगार करते और सोचते, यह प्रजा के पक्ष मे क्यों नहीं बोलते? एक दिन सुर्जकुमार ने सपने मे देखा, अँधेरे जल पर कमल खिला है; कह रहा है, मैं तो राजा का था, तुमने क्यों तोड़ा? फिर एक गुलाब सामने आ गया; बोला, मुझे छूने का तुम्हे क्या अधिकार था? सुर्जकुमार परेशान होने लगे। कहाँ से फूल लायें जो राजा के न हो, जिनसे महावीर स्वामी को सजाएँ? तभी सपने में महावीर आये। समझाया, "वत्स, यहाँ कौन-सी चीज राजा की नहीं है? यह मूर्ति किसकी खरीदी है? कौन पुजवाता है?" सुर्जकुमार की परेशानी दूर होने के बदले और बढ़ गई। फूल ही राजा के नही, जिस मूर्ति को वह फूलो से सजाते है, वह भी राजा की है। उन्होने सवाल किया, "ये गरीब मरे जा रहे है, इनका क्या होगा?" महावीर स्वामी ने कहा, "जो राजा के लिए है, वही इनके लिए। तुम अपना काम देखो।"

सुर्जकुमार को सन्तोष न हुआ। गरीब प्रजा का ध्यान सताने लगा। जर्मनी की लडाई खत्म हो चुकी थी। कुछ क्रान्तिकारियो ने जर्मनी से हथियार मँगाकर भारत में सशस्त्र विद्रोह के लिए प्रयत्न किया था, पर वे सफल न हुए। जो नेता युद्ध

में अंग्रेजों की सहायता करके बड़ी आस लगाए बैठे थे कि लड़ाई खत्म होने पर डोमीनियन स्टेटस मिल जाएगा, वे बड़े निराश हुए। अंग्रेजों ने स्वराज की मांग का जवाब रॉलट ऐक्ट और जलियाँवाला बाग से दिया। देश के नौजवान क्रोध से तिलमिला उठे। आपस में बातें करते कि अंग्रेजी राज का खात्मा किस उपाय से किया जाय। सुर्जकुमार बँगला के अखबार पढ़ते, मित्रों से देश-विदेश की चर्चा करते। कुछ नौजवान लुक-छिपकर उन्हें क्रान्तिकारियों के बारे में वह साहित्य पढ़ने को देते जिस पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा रखा था। सुर्जकुमार तेजी से राजनीति की तरफ खिंचने लगे।

सन् '२० में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया। हिन्दुओं और मुसलमानों की मैत्री के अभूतपूर्व दृश्य देखे गए। दूर-दूर देहात तक चरखे का प्रचार होने लगा। बँगला पत्रों मे सुर्जकुमार रूसी क्रान्ति और वहाँ एक नये समाज की रचना का हाल पढ़ते। महिषादल के आसपास के गाँवों मे जाते; मित्रों के साथ वहाँ किसानों, कोरियों, जुलाहों आदि का संगठन करते, उन्हें स्वदेशी का महत्त्व समझाते। हर जगह राष्ट्रीय गीतों की धूम थी। सुर्जकुमार बड़े प्रेम से ये गीत पढ़ते और गाते। उन्हें द्विजेन्द्रलाल राय के गाने विशेष रूप से पसन्द थे। उन्होंने स्वयं राष्ट्रीय गीत लिखने का विचार किया। सन् '२० के वसन्त में सुर्जकुमार ने जन्मभूमि पर एक गीत लिखा :

वन्दूँ मैं अमल-कमल,—
चिर सेवित चरण युगल—
शोभामय शान्ति निलय पाप ताप हारी,
मुक्तबन्ध, घनानन्द मुद मंगलकारी ॥
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥
मुकुट शुभ्र हिमागार।
हृदय बीच विमल हार—
पंच सिन्धु ब्रह्मपुत्र रवितनया गंगा।
विन्ध्य विपिन राजे घनघेरि युगल जंघा ॥
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥
त्रिदश कोटि नर समाज ।
मधुर-कण्ठ-मुखर आज ॥
चपल चरण भंग नाच तारागण सूर्यचन्द्र।
चूम चरण ताल मार गरज जलधि मधुर मन्द्र ॥
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥

सुर्जकुमार का नया जीवन आरम्भ हुआ—कवि का जीवन। पर उन्हें अपना नाम सुर्जकुमार तेवारी ज़रा भी कवित्वपूर्ण न लगता था। इसे शुद्ध करके यदि सूर्य-

कुमार तेवारी कर दिया जाय, तब भी गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय अथवा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नामो के मुकाबले वज़न में कुछ हल्का बैठता था। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने अपना नया नाम रखा—सूर्यकान्त त्रिपाठी। सूर्यकुमार से सूर्यकान्त नाम सुनने मे और अर्थ के विचार से भी ज़्यादा अच्छा लगा। बहुत-से तेवारी अपने को त्रिपाठी लिखने लगे थे। अब कुछ साहित्यकार अपना नाम शुद्ध रूप में लिखते थे जैसे महावीरप्रसाद दुबे अपने को महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते थे। जन्मभूमि की वन्दना मे रामसहाय तेवारी के पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपनी साहित्य-साधना आरम्भ की।

कविता लिख गई लेकिन कहाँ भेजे ? गणेशशंकर विद्यार्थी का नाम सुना था। कानपुर से उन्होंने 'प्रताप' के अलावा 'प्रभा' मासिक पत्रिका प्रकाशित की थी। सूर्यकान्त ने अपनी कविता वहीं भेजी। कविता स्वीकृत हो गई। जून १९२० की 'प्रभा' मे प्रकाशित हुई। छपी हुई कविता देखकर वह खूब प्रसन्न हुए। उनके बंगाली मित्रो को यह खबर मिलते देर न हुई कि सुर्जकुमार कविता लिखते हैं और वह छप भी जाती है पर वह हिन्दी मे लिखते हैं। काव्य-चर्चा के प्रसंग में हिन्दी और बँगला के साहित्य पर बहस छिड जाती। सन् '२० के आन्दोलन के साथ राष्ट्रभाषा का सवाल भी एक राजनीतिक समस्या की तरह लोगों के सामने आया। उस समय अनेक बंगाली विद्वान् इस बात का प्रचार करते थे कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद मिलना चाहिए। एक बार सूर्यकान्त ने स्टीमर मे यात्रा करते हुए बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् नगेन्द्रनाथ सेन की बातचीत सुनी। स्टीमर आर्मीनियन घाट से घाटाल जा रहा था। उसी पर तामलुक के एक वकील थे जो नगेन्द्रनाथ से बहस कर रहे थे कि अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषा का दबाव छात्रों पर डालना अनुचित है। सेन महाशय का कहना था कि राष्ट्रभाषा कोई विदेशी भाषा नहीं, भारत की भाषा ही हो सकती है और वह भाषा हिन्दी है।

सूर्यकान्त दोनो के तर्क ध्यान से सुनते और उन पर विचार करते रहे। उन्हें ज्यादातर साहित्यप्रेमी युवक ऐसे मिलते जो बँगला पर अभिमान करते और हिन्दी को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। सूर्यकान्त अब ज़ोरों से हिन्दी और बँगला-साहित्य के अध्ययन में जुट गए। बँगला मे काव्य, नाटक, कथा-साहित्य की अनेक पुस्तकें उन्होंने पढी। हिन्दी की पुस्तके उधर कम मिलती थी, फिर भी 'सरस्वती' वह नियमित रूप से पढते थे। उसके माध्यम से वह हिन्दी-साहित्य के विकास से काफी परिचित हो गए। 'प्रभा', 'प्रताप' आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी जब-तब पढने को मिल जाती थी। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', दूसरा उपनाम 'त्रिशूल' की राष्ट्रीय कविताएँ उन्हें विशेष अच्छी लगती थी। नाथूराम शंकर शर्मा की भाषा उन्हें बहुत पसन्द थी। बँगला के मुकाबले हिन्दी कविता उन्हे काफी पिछडी हुई मालूम होती थी, पर केवल भाषा की दृष्टि से वह हिन्दी को बँगला से श्रेष्ठ मानते थे।

राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी विवाद मे वह बंगाली मित्रो से कहते—माना कि बँगला का साहित्य श्रेष्ठ है पर भाषा के अवगुण तो देखिए। इसके उच्चारण-मार्ग पर बचपन

से जीभ न फेरी जाय तो वह कभी शुद्ध चाल चल ही नही सकती। दूसरे प्रान्त के लोग जब बँगला कविता पढ़ते हैं तो जीभ हैरान हो जाती है। ऐसी भाषा कही राष्ट्रभाषा हो सकती है ?

उनके बंगाली मित्र कहते—बँगला भाषा का माधुर्य कौन नही जानता ? किस भारतीय भाषा में ऐसी कोमलकान्त पदावली है जैसी रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में है ? उनके काव्य का रसपान करने के लिए ही अनेक देशी-विदेशी विद्वान् आज बँगला सीख रहे हैं। बँगला भाषा भारत की श्रेष्ठ भाषा है, उसके महत्व को कौन अस्वीकार कर सकता है ?

मित्रों के ऐसे तर्क सुनकर सूर्यकान्त कहते—कोमलता स्त्री का धर्म है। बंगालियों की भाषा ही क्या, उनकी वेश-भूषा, हाव-भाव, रहन-सहन—हर चीज में कोमलता दिखाई देती है। पर देश को कोमलता नही, पौरुष चाहिए। आवाज अगर बुलन्द न हो तो भाषा में गम्भीर भाव पैदा नही हो सकते। बँगला में बुलन्दपन की कमी है, इसलिए वह गम्भीर भाव प्रक नही कर सकती। जब बंगालियों को गम्भीर भाव प्रकट करना होता है तब वे हिन्दी शब्दों का सहारा लेते हैं। जैसे 'चुप कर' न कहकर कहेंगे, 'चोप राव'।

इस पर बंगाली मित्र रवीन्द्रनाथ की कविताओं से उद्धरण देकर पूछते—इसमे गम्भीर भावों की कमी है ?

सूर्यकान्त हुज्जत करते—उच्चारण अस्वाभाविक, छन्द अस्वाभाविक, भाव में गम्भीरता कहाँ से आयेगी ? बंगाली दीर्घ स्वरों का भी ह्रस्व-जैसा उच्चारण करते हैं। यह कोई आर्य तरीका है ? कविता लिखते हैं तो मात्राओं पर ध्यान नही देते, अक्षर गिनते हैं।

वनेर पाखी गाहे वाहिरे वसि वसि
वनेर गान छिल जत,
खाँचार पाखी, पड़े शिखानो बुलि तार
दोहार भाषा दुई मत।

जरा गिनिए मात्राएँ।

सूर्यकान्त अक्षर गिनाते—१४। फिर मात्राएँ गिनाते—२१। पहली पंक्ति के जोड़ की तीसरी पंक्ति—अक्षर वही १४, लेकिन मात्राएँ २२। ऐसे ही दूसरी और चौथी पक्तियों मे अक्षर नौ-नौ लेकिन मात्राएँ ११ और १३। जब मात्राएँ बराबर न होंगी तब संगीत का सहज प्रवाह भी नष्ट हो जायगा। "वनेर पाखी गाहे वाहिरे वसि वसि" को अगर यों लिखा जाय—"सकल खग कुल कहत वसि वसि" तो देखिए प्रवाह कितना स्वाभाविक हो जाता है।

इसके बाद बहस उच्चारण की वैज्ञानिकता को लेकर होने लगती। मित्र कहते—हिन्दी का कोई अपना उच्चारण नहीं, पूरब और पछाँह वाले अलग-अलग ढंग से बोलते हैं। हिन्दी लेखक उर्दू की खिचड़ी पकाते हैं। बँगला मे जैसी परिष्कृत तत्सम शब्दावली है, वैसी हिन्दी में कहाँ है ?

सूर्यकान्त उत्तर देते—आप लोगों का उच्चारण आर्य न होकर मंगोलियन है। शुद्ध 'अ' का उच्चारण आप कर ही नही सकते। गोल-गोल औकार जैसा बोलते हैं। वैसे ही 'ऐ' को 'ओइ' और 'औ' को 'ओउ' कहते है। ओइतिहासिक, ओउशध—यह भी कोई उच्चारण है? श, ष, स मे कोई भेद ही नही। शमाज, शंध्या, शावधान, शंशार—मारे 'श' के नाक मे दम। ण और व की ध्वनि ही नही। तेवारी को कहेगे तेओयारी, मेवा को मेओया! लक्ष्मी को लक्खी, ऐक्य को ऐक्क, अध्ययन को अद्धयन...

बहस मे काफी गर्मी आ जाती और झगड़ा करते हुए मित्र अलग होते। सूर्यकान्त के मित्रो मे वहाँ हिन्दी भाषा और साहित्य का कोई अच्छा जानकर नही था, उन्हे बंगाली मित्रो से अकेले ही वाक्-युद्ध करना पडता। शरीर साढ़े पाँच फुट से ऊपर, सीना तगड़ा, आवाज़ बुलन्द—वह बहस मे दबते न थे। बंगाल की हुज्जत मशहूर है। उन्होने इस कला का अच्छा अभ्यास किया। महिषादल में रहकर बंगाली मित्रों से हिन्दी आलोचना सुनने के कारण उनमे जातीय अभिमान का भाव दृढ़ हो गया। उन्होंने तै किया कि बँगला उच्चारण के बारे में उन्होने जो रिसर्च की है, उसका ज्ञान अन्य हिन्दी-भाषियो को भी कराना चाहिए। उन्होने उसी साल अगस्त मे एक लेख लिखा, 'बंगभाषा का उच्चारण'। इसमे उन्होने वे सब तर्क सजाकर रखे जिन्हे अपने मित्रो के सामने बहस के दौरान वह पेश करते थे। तै किया कि इसे 'सरस्वती' मे भेजेंगे। उन्होने द्विवेदीजी को पत्र लिखा :

श्री हरिः

Mahishadal Raj
26-8-20

परम पूजनीय
श्री १०८ महावीरप्रसादजी
द्विवेदी महाराज,
श्री चरणो मे

बाबा,

सेवा पर 'बंग भाषा का उच्चारण' शीर्षक लेख भेजता हूँ। आशा है, बंग प्रवासी एक अपरिचित सन्तान के परिश्रम को आप सफल करेंगे। इस लेख को 'सरस्वती' मे स्थान मिलेगा। इति—

आपका अपरिचित किन्तु—
आपका एकान्त सेवक
सूर्यकान्त त्रिपाठी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण कर चुके थे, पर लेख स्वीकृत हो गया। देवीदत्त शुक्ल ने जहाँ-तहाँ कुछ शब्द बदलकर लेख छाप दिया। अक्तूबर '२० की 'सरस्वती' मे सूर्यकान्त त्रिपाठी का पहला गद्य लेख प्रकाशित हुआ।

द्विवेदीजी के यहाँ आये-दिन दर्जनो होनहार लेखको के पत्र आते थे। सभी

उन्हे गुरु मानते थे, सभी दण्डवत् करते थे और लगभग सभी का उद्देश्य होता था कि उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हो जाएँ। उन्हें लगा कि यह सूर्यकान्त नाम का व्यक्ति, जो उन्हे असंख्य प्रणाम-दण्डवत् लिखता है, अवश्य उनके सहारे हिन्दी में आगे आने के उद्देश्य से उनकी खुशामद कर रहा है। सूर्यकान्त के एक पत्र के उत्तर में उन्होंने अपने इस भाव का संकेत करते हुए पूछा—आप कहाँ के रहनेवाले हैं, क्या उम्र है, कुटुम्व में कौन-कौन है, क्या व्यवसाय होता है, इत्यादि। सूर्यकान्त ने 'वावा के श्री चरण कमलों मे असंख्य भूमिष्ठ प्रणाम' निवेदित करने के वाद उन्हें सूचित किया, "आपकी इस लिखावट से मालूम हो रहा है कि मेरे पूर्व प्रेपित पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नही की गई। उस पत्र को फिर पढिए। देखिए तो, उसमें स्वार्थ का गुप्त वर्णन है या वन्धुता का विशद विवेचन ? उससे सम्वन्ध जोड़ने की आशा व्यक्त होती है या जुड़े हुए सम्वन्ध का प्रमाण।"[२]

सूर्यकान्त पहले हिन्दी-लेखक थे जो महावीरप्रसाद द्विवेदी से कह रहे थे, आपने मेरे पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नहीं की। अभी केवल एक कविता छपी थी 'प्रभा' मे और एक लेख छपा था 'सरस्वती' मे; पर तेवर ऐसे मानो सत्रह साल तक 'सरस्वती' का सम्पादन इन्हीं ने किया हो। पर सूर्यकान्त त्रिपाठी ने द्विवेदीजी के सरोप मुख पर शीतल चन्दन के छीटे भी दिये, "आप हिन्दी संसार के स्वनामधन्य पुरुप हैं। मैं आपको हृदय से पूजता हूँ। यही आपसे मेरा सम्वन्ध है। इससे अधिक मधुरता और किस सम्वन्ध मे है ?"

इस भूमिका के वाद सूर्यकान्त ने द्विवेदीजी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपना परिचय लिखा—"मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। आपका पडोसी हूँ। उन्नाव जिले के पूर्व्वा के पास का रहनेवाला हूँ। उम्र २२, शरीर पाँच फुट ११-१/२ इंच लम्बा, छाती ३९ इंच चौड़ी। हृष्ट-पुष्टांग न तु स्थूलकाय। अक्षर हूँ, न साक्षर और न निरक्षर। सगा यानी माता, पिता, भाई, बहन, चाचा, चाची, स्त्री संसार में कोई नही। सव थे किन्तु १९१८ के इन्फलुएंजा में सव गुजर गए। जीवन का लक्ष्य निरे वाल्यकाल से है परमपदलाभ। रामकृष्ण मठ के संन्यासी मुझ पर विशेप कृपा-दृष्टि रखते हैं। स्वामी प्रेमानन्द ने कहा था—तुम्हारा विचार ठीक है।

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुझ पर ईश्वर की कृपा होगी, परन्तु उपस्थित स्थिति मेरी क्रमोन्नति पर वाधा डाल रही है। मेरे सिर पर पितृमातृहीन ६ नावालक भतीजे आदि का पालन-भार अर्पित है। इसलिए अभी मैंने नौकरी करना स्वीकार किया है। लडको को सवालक करके अपने लक्ष्य पर वढूँगा। मै एक साधारण-वित्त मनुष्य हूँ। विद्वन्मण्डली के सामने मेरा परिचय मूर्खों में है।

"मेरे पिता-पितृव्य इस स्टेट में फौजी अफसर थे। गण्यमान्य थे। मेरा जन्म यहीं हुआ। शिक्षा यही मिली। हिन्दी मैंने किसी व्यक्ति-विशेप से नही सीखी। यहाँ हिन्दी का एक भी ज्ञाता नही। (आप पर भक्ति का एक कारण यह भी है।)

"महाराज महिपादल मुझ पर अत्यन्त कृपा करते हैं। महाराज दो भाई हैं। वडे राजा—सतीप्रसाद गर्ग और छोटे राजा—गोपालप्रसाद गर्ग हैं। इनके पूर्व्व पुरुप

जिला बाँदा के रहनेवाले थे। राजा रामनाथ गर्ग की रानी पति-शव को लेकर चिता पर चढ़ने के पूर्व दरिद्रवेशी—समागत—लक्ष्मणप्रसाद को, जोकि वर्तमान नरेश के आजा थे, राजासन पर स्थापित कर गई थीं। इस राज्य की गवर्नमेंट रेवेन्यू ३,३६,००० है। और वार्षिक आमदनी है १२,००,०००।"

राजा की विशद आमदनी तथा अपनी वैराग्य-भावना—दोनों से गुरुवर द्विवेदी को प्रभावित करने के बाद पत्र के अन्त मे लिखा :

"अधिक और क्या लिखूं ? संक्षेप मे आपके आग्रह को पूरा कर चुका।

"जगन्नियन्ता का नियम है कि सेवा सेव्य की आत्मा पर तृप्ति की और सेवक की आत्मा पर शुद्धि की छाप लगाकर दोनों के उन्नतिमार्ग को साफ़ करती है। मनो-राज्य के इस नियम को मैं निश्छल होकर प्रणाम करता हूँ।"

हस्ताक्षर के बाद एक वाक्य और जोड़ दिया "हिन्दी सिखाइए।" जितनी हिन्दी उन्हें द्विवेदीजी से सीखनी थी, उतनी 'सरस्वती' के अंक पढ़कर अब तक वह सीख चुके थे। यह केवल उनकी विनम्रता थी जो द्विवेदीजी से हिन्दी सिखाने के लिए कह रहे थे। जहाँ तक दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध था, वह दो-एक ज्ञान की बातें आचार्य द्विवेदी को भी सिखा सकते थे। सेवा से जहाँ सेवक की आत्मा शुद्ध होती है वहाँ सेव्य की आत्मा भी तृप्त होती है। अर्थात् सूर्यकान्त-महावीरप्रसाद सम्बन्ध एकतरफ़ा व्यापार नहीं है। इससे लाभ द्विवेदीजी को भी है। सूर्यकान्त उनसे इसलिए सम्बन्ध कायम नहीं कर रहे हैं कि उनके सहारे साहित्यिक-क्षेत्र मे आगे बढ़ चलें, जीवन का लक्ष्य साहित्य-सेवा नहीं, परमपद-लाभ है।

सूर्यकान्त कभी-कभी बेलूड़ के मठ जाते, स्वामी प्रेमानन्द के दर्शन करते, दूसरे संन्यासियों के साथ दरिद्रों की सेवा के लिए गाँवों की यात्रा करते। परन्तु उनका मन इस समय केवल धर्म-साधना पर केन्द्रित न था। राजनीति और साहित्य—दोनों उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।

एक दिन सूर्यकान्त को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उन पर आरोप यह लगाया गया कि उन्होंने मदनगोपाल के मन्दिर से गहने चुराये हैं। इस मन्दिर के बाहर संगमर्मर की सुन्दर बेंचे हैं। सूर्यकान्त अक्सर वहाँ जाकर बैठते और कभी-कभी कविताएँ लिखते। मन्दिर मे राधाकृष्ण की मूर्तियों को बहुमूल्य स्वर्णाभूषण पहनाये गये थे। एक रात ये गहने चोरी चले गये। पुलिस ने सूर्यकान्त को हिरासत मे ले लिया। राजा अथवा राज-परिवार की ओर से कोई संकेत न दिया गया था कि उन्हें सूर्यकान्त पर शक है। फिर भी पुलिस ने इन्हे गिरफ्तार कर लिया। राजा सतीप्रसाद गर्ग ने इनके चाल-चलन के बारे मे पुलिस को आश्वासन दिया और इन्हे हवालात से छुड़ा लिया।

कुछ दिन बाद एक दुर्घटना और हुई। महिषादल में एक साधु आये, पुराने ढंग के, चिमटा-धूनी वाले। राजमहल के सुपरिंटेंडेंट साधु को कुछ देना चाहते थे परन्तु सूर्यकान्त ने राजा से साधु की बुराई की और सलाह दी, "राजकोष का रुपया इस तरह नहीं खर्च करना चाहिए।" एक रात जब सूर्यकान्त राजमहल से अपने घर लौट

रहे थे, तब हाथीखाने के पास उन्हें वही सुपरिंटेंडेंट मिले। इन्हें लगा, सुपरिंटेंडेंट के मुँह से शराब की बू आ रही है। यह समाचार भी इन्होंने राजा तक पहुँचा दिया। इस पर सुपरिंटेंडेंट से पूछताछ हुई, उन्होंने इन्कार किया। इस पर राजा का हुक्म हुआ कि दोनों आदमी मदनगोपालजी के मन्दिर में कसम खाकर सच-सच बतायें कि क्या हुआ था। सूर्यकान्त ने कसम खाई कि उन्हें शराब की-सी बू आई थी; सुपरिंटेंडेंट ने कसम खाई कि उन्होंने शराब छुई न थी। बात खतम हो गई पर सूर्यकान्त को लगा कि कसम खाने के लिए मजबूर करके उनका भारी अपमान किया गया है। कसम खिलाए बिना ही राजा को उनकी बात पर विश्वास कर लेना चाहिए था। यह न करके उन्होंने सुपरिंटेंडेंट और उन्हे एक ही तराजू से तोला। सुपरिंटेंडेट बदनाम आदमी थे, शराब के अलावा उनमें और भी व्यसन थे, इस बात को राज्य के बहुत-से लोग जानते थे। इसलिए सूर्यकान्त को और भी बुरा लगा। उन्होंने राजा को लिखा, "मेरे धर्मस्थल पर हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार न था। फिर मैने सुपरिंटेंडेंट साहब की नौकरी लेने के लिए नहीं कहा था।" इसके साथ उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दाखिल कर दिया।

राजा ईश्वरप्रसाद गर्ग के समय से इस राज्य के साथ रामसहाय तेवारी के परिवार का जो सम्बन्ध चला आ रहा था, उसे सूर्यकान्त त्रिपाठी ने एक झटके से तोड दिया। कोई बहुत बडी नौकरी नही थी, फिर भी घर का खर्च चल जाता था। अपने खर्च के अलावा वह गाँव में अपने चचेरे भतीजों के लिए रुपये भेजते थे। एन्ट्रेंस फेल आदमी को नौकरी मिलना आसान नही था। राजा की नौकरी से इस्तीफा देने के बाद महिपादल में बने रहना संभव न था। गाँव मे खेती-पाती के विशेप साधन न थे। महिपादल की नौकरी से मन में एक सुरक्षा का भाव बना हुआ था। अब असुरक्षित दशा में जहाँ-तहाँ भटकना होगा, यह निश्चित था। सूर्यकान्त जल्दबाजी में कोई काम न करते थे। उनको राज्य की नौकरी वैसे ही नापसन्द थी। वहाँ रहते हुए गरीब प्रजा का उत्पीड़न उनसे देखा न जाता था। वह स्वयं अलग होने की बात सोच रहे थे। तभी मन्दिर में कसम खाने की घटना हुई। उन्होंने महिपादल छोडने का निश्चय कर लिया।

राजा ने इस्तीफा मंजूर न किया। पर मंजूरी की चिन्ता न करके सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपना सामान नीलाम किया। चचेरे भतीजो मे बड़ा भतीजा महिपादल में था। उसे साथ लेकर सन् '२१ की गर्मियों मे उन्होने गढ़ाकोला की ओर प्रस्थान किया।

२

साधना-प्रारम्भ

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक बीस वर्षों में हिन्दी का शायद ही कोई साहित्यकार हो जिसके विकास में थोड़ा-बहुत महावीरप्रसाद द्विवेदी का हाथ न रहा हो। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी मे किसी व्यक्ति का इतना सम्मान नही हुआ जितना द्विवेदीजी का। भारतेन्दु के समय से अब तक हिन्दी लेखकों और साहित्यकारों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। द्विवेदीजी का सम्मान और विरोध करनेवालो की संख्या भी भारतेन्दु के प्रशंसको और विरोधियो से कही ज्यादा थी। भारतेन्दु की प्रतिभा मुख्यत. कलात्मक थी; द्विवेदीजी की प्रतिभा मुख्यत: आलोचनात्मक। 'सरस्वती' मे प्रकाशित गद्य-पद्य की सभी रचनाओ को वह भाषा के एक ही साँचे मे ढालकर प्रकाशित करते थे। उस समय हिन्दी जनता के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के लिए यह कार्य अत्यन्त आवश्यक था। द्विवेदीजी के सम्मान का यह मुख्य कारण था। सन् '२० में जब सूर्यकान्त त्रिपाठी ने 'सरस्वती' को अपनी पहली गद्य-रचना भेजी, तब वह संपादन-कार्य से अवकाश लेकर अपने गाँव दौलतपुर में रहने लगे थे। 'सरस्वती' से अलग होने पर भी उसकी रीति-नीति पर उनका प्रभाव था। किसी साहित्यिक संस्था अथवा विश्वविद्यालय के पदाधिकारी न होने पर भी अवकाशप्राप्त सम्पादक द्विवेदीजी की बात हिन्दी संसार मे मान्य थी। सूर्यकान्त उनके प्रति जो अपार श्रद्धा प्रदर्शित कर रहे थे, वह चाटुकारिता नही थी। वह उन्हें सचमुच आधुनिक हिन्दी का निर्माता समझते थे और उनके आगे अन्य किसी व्यक्ति का ऐसा साहित्यिक महत्त्व स्वीकार करने को तैयार न थे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी और महावीरप्रसाद द्विवेदी में बहुत-सी बातें सामान्य थीं। द्विवेदीजी के पिता फौज में काम कर चुके थे। पिता के समान उनका शरीर भी स्वस्थ और पुष्ट था। अवकाश लेने पर छप्पन साल की उम्र में भी वह व्यायाम करते थे और खूब घूमते थे। उनका चौड़ा माथा, घनी भौंहे, बड़ी-बड़ी मूंछे देखकर लोग सहज ही प्रभावित हो जाते थे। सूर्यकान्त के समान द्विवेदीजी के संस्कार मूलत: बैसवाड़े के किसान के थे। वह अत्यन्त स्वाभिमानी, बातचीत और व्यवहार में अक्खड़ पर

अन्दर से कोमल वृत्ति वाले और बहुत ही भावुक थे।

कुलीन समझे जानेवाले कान्यकुब्ज उन्हें घाकर कहते थे, दौलतपुर के इस 'दुबौना' का इतना सम्मान होते देखकर उन्हें आश्चर्य होता था। अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ से ही वे समाज-सुधार के पक्षपाती थे। जब 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ न हुआ था, तब उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'विधवा-विलाप' नाम की कविता भेजी थी। पत्रिका के संपादक राधाकृष्ण ने उसे भले घरों में पढ़े जाने के अयोग्य समझकर वापस कर दिया था। कानपुर में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की सभा का अधिवेशन हुआ। द्विवेदीजी और उनके कुछ सहयोगी सभा में यह प्रस्ताव रखना चाहते थे कि सभी कान्यकुब्ज एक पंक्ति मे बैठकर खायें। पर वहाँ स्त्री-शिक्षा के विरोध मे जोरदार भाषण सुनकर द्विवेदीजी ने अपने साथियों से कहा : भैया, अब यहाँ से चलो, इस सभा में हम लोगों के लिए स्थान नही है।

जब लक्ष्मीधर वाजपेयी उनसे मिलने गये, तब द्विवेदीजी ने कहा, "आपके भोजन का क्या प्रबन्ध हो ? क्या पूडी आप मेरे यहाँ खायेंगे ? कच्ची रसोई तो आप मेरे यहाँ कैसे खायेंगे; क्योंकि मैं कनौजियों में बहुत छोटा हूँ, और बीस बिस्वावाले कनौजिया तो मेरे यहाँ पूडी तक खाने नही आते। कहते हैं, सोलह रुपये दक्षिणा दो तो खायें।" सन् '२० के आन्दोलन से प्रभावित लक्ष्मीधर वाजपेयी छूत-अछूत सबके यहाँ खा-पी लेते थे। पर ऐसे उदार ब्राह्मण अभी थोड़े ही थे।

द्विवेदीजी हर तरह की धार्मिक-साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त थे। वह परम भगवद्भक्त थे; पर पूजापाठ, संध्यावन्दन का आडंबर न करते थे। इसलिए पुरानपंथी पंडित उन्हें नास्तिक कहते थे। एक ब्राह्मण से संध्या के बारे में बहस होने पर उन्होंने कहा था, "पंडितजी, कुछ समझते भी हो, या यों ही वक्त बरबाद करते हो ? संध्या मे क्या रखा है, रोज शाम को यह पद पढा करो—क्षुद्र-सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र, वायु के झकोरे रुद्र उग्र रूप धारे हैं। परन्तु तुम तो कहोगे—'जो पुरिखन ते होत आवा है वहै होई।' हमार अस नास्तिक धाकर का बोले का कौन परोजन।"

सन् '२१ में महिपादल छोडने के बाद सूर्यकान्त जब गढाकोला आये, तब उन्होंने पहला काम यह किया कि दौलतपुर जाकर द्विवेदीजी के दर्शन किये। गाढ़े की मिर्जई, कन्धे पर दुपट्टा, देशी जूता, हाथ में डंडा, ओठों पर पान की लाली—उनकी सादगी और सरलता देखकर सूर्यकान्त खूब प्रभावित हुए। उन्होंने देखा—इन युग-निर्माता का व्यवहार रामकृष्णमठ के संन्यासियों से मिलता-जुलता है। इनमे प्रदर्शन की भावना बिल्कुल नही। अपने हाथ से पुस्तकों-पत्रिकाओं की धूल झाड़ते हैं। कोई अतिथि आ जाय तो उसके जूते तक पोंछ देते हैं। उसकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते हैं। नियम के कितने पक्के, कितने परिश्रमी, कितने अध्ययनशील, फिर भी कितने विनम्र। लोग प्रणाम करते हैं तो संकोच से आशीर्वाद तक नही देते, नमोनमः कह देते हैं। पत्नी का स्वर्गवास हो गया है। चालीस साल हो गये। सूर्यकान्त से उम्र में थोडा ही बडे रहे होंगे जब यह भी विधुर हुए। पर कैसी साधना ! अपनी सारी शक्ति हिन्दी की सेवा में लगा दी। उन्होने सूर्यकान्त को अपनाया है। परिश्रम से

जमकर हिन्दी सेवा करने को कहते है।

सूर्यकान्त ने जैसी कल्पना की थी, अपने गुरु को उससे भी भव्य पाया। बंगाल मे रहने और बँगला जानने से सूर्यकान्त अपने को अन्य साधारण हिन्दी लेखकों से कुछ ऊँचा समझते थे। पर ये द्विवेदी तो बम्बई मे रहकर मराठी और गुजराती का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर आये है, साथ ही बँगला भाषा और साहित्य से भी परिचय प्राप्त कर चुके है। सूर्यकान्त को साधारण संस्कृत आती थी। पर इनका संस्कृत ज्ञान तो अगाध है, संस्कृत मे भाषण दे सकते है, तुरन्त श्लोक बनाकर लोगों को आशीर्वाद दे डालते है। अंग्रेजी के अनेक कठिन ग्रन्थों का अनुवाद कर चुके है। व्यक्तित्व की सादगी के अलावा सूर्यकान्त के मन पर द्विवेदीजी की विद्वत्ता की गहरी छाप पड़ी।

असाढ आया। आम पके। सूर्यकान्त ने अपने बाग से बढ़िया-बढ़िया आम चुने—बिसेधा जिसकी महक से मन तृप्त हो जाता है, जोगिया—जिसका गाढा गूदा बनारसी लँगड़े को मात करता है, गोलवा, लँबुई, मिठुआ अदि अनेक पेड़ों के आम जो सूर्यकान्त को सफेदा-दशहरी, हर तरह के कलमी आम से ज्यादा पसन्द थे, सब सुतली की बुनी हुई खरिया मे भरे। गढाकोला से दौलतपुर १६-१७ मील है। सर पर आमों का बोझ लिये वह पैदल ही दौलतपुर जा पहुँचे। द्विवेदीजी इस सेवा से प्रसन्न हुए। आशीष दी। पढ़ने के लिए अपने सग्रह से पुस्तकें और पत्रिकाएँ दी।

बारह लाख वार्षिक आमदनी के राज्य मे सूर्यकान्त अब नौकर नहीं है, उनके साथ चार भतीजे है, पुत्र और कन्या डलमऊ मे है, द्विवेदीजी ने सब हाल मालूम किया। वह इनके लिए काम की तलाश करने लगे। सूर्यकान्त इस समय सचमुच कष्ट मे थे। कर्ज मे भी दबते जा रहे थे। भतीजे छोटे थे। घर का सारा काम खुद ही करते थे, यहाँ तक कि हाथ की चक्की से आटा भी खुद ही पीसते थे।

बरसात बीतने पर द्विवेदीजी ने प्रताप प्रेस वालों को खटखटाया। वह काम देने को तैयार हो गये। पर शुरू-शुरू मे बीस-पचीस रुपये से ज्यादा देने में असमर्थता प्रकट की। सूर्यकान्त ने इतने कम पैसों पर काम करना तौहीनी समझा, वैसे स्वयं द्विवेदीजी ने रेलवे की नौकरी छोड़कर 'सरस्वती' मे तीस रुपये मासिक पर काम करना शुरू किया था। पर सन् तीन को देखते सन् इक्कीस मे महँगाई बढ गई थी।

द्विवेदीजी कभी जुही (कानपुर) मे रहते, कभी दौलतपुर। सन् '२१ की तरह में उधर एक संन्यासी आये—स्वामी माधवानन्द। ये अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी के अच्छे पंडित, रामकृष्ण मिशन के प्रमुख संन्यासी थे। अद्वैत मत के प्रचार के लिए वह बँगला के साथ हिन्दी मे भी एक मासिक पत्र निकालना चाहते थे। द्विवेदीजी के नाम से परिचित थे। जुही मे उनसे पूछने गये, कौन इस कार्य के लिए ठीक रहेगा। द्विवेदीजी को सूर्यकान्त का स्मरण हुआ। वह बँगला भी जानते हैं और रामकृष्ण मिशन के संपर्क मे भी आ चुके है। उन्होंने स्वामी माधवानन्द को उनका पता-ठिकाना लिखवा दिया और अपने पत्र मे उन्हे रखने की सिफारिश की।

यथासमय सूर्यकान्त के पास स्वामी माधवानन्द का पत्र पहुँचा। उसमे लिखा था कि प्रमाणपत्र सहित अपनी योग्यता के बारे मे सूचित कीजिए। पत्र अंग्रेजी में

था। सूर्यकान्त ने इसका उत्तर बँगला में लिखा। बंगाल में रहते हुए परमहंस श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द का साहित्य पढ़ चुका हूँ, वेलूड़ मठ दरिद्रनारायण की सेवा के लिए जा चुका हूँ, महिषादल में स्वामी प्रेमानन्द को रामायण सुनाकर उनका आशीर्वाद पा चुका हूँ—ये सब बातें अपनी योग्यता के प्रमाण-स्वरूप सूर्यकान्त ने उन्हें लिख दीं। स्वामी माधवानन्द इन बातों से और सूर्यकान्त की बँगला से प्रभावित अवश्य हुए, पर द्विवेदीजी ने उनसे कह दिया था कि पचास रुपये मासिक से कम में सूर्यकान्त तैयार न होंगे। धर्म का कार्य था; स्वामीजी इतना पैसा देने को तैयार न थे।

इसी समय द्विवेदीजी ने सूर्यकान्त के लिए काशी में भी प्रयत्न किया। शिवप्रसाद गुप्त धनवान, हिन्दी-हितैषी, देशभक्त, ज्ञानमंडल संस्था और दैनिक पत्र 'आज' के संस्थापक थे। द्विवेदीजी ने उनसे बात की, हो सके तो सूर्यकान्त को ज्ञानमंडल में कोई काम दे दें। शिवप्रसाद गुप्त ने द्विवेदीजी को सूचित किया, "आपने जिन सज्जन के विषय में लिखा था, कृपा कर उन्हें आप काशी भेज दीजिए। यदि उनके योग्य कोई कार्य ज्ञानमंडल, इत्यादि में मिल सका तो मैं उन्हें अवश्य रख लूँगा, अन्यथा उन्हें आने-जाने का व्यय देकर जैसा कुछ उचित होगा, उत्तर दे दूँगा।"[1] द्विवेदीजी ने यह पत्र सूर्यकान्त के पास भेज दिया और ताकीद की, "इस चिट्ठी को लेकर आप बनारस चले जाइए। मैंने आपके विषय में सब-कुछ बाबू शिवप्रसादजी को लिख दिया है। कलकत्ते से बनारस अच्छा है।"[2]

अब जाड़ा आ गया था। सूर्यकान्त कभी कलकत्ता जाने की सोचते, कभी बनारस; कहीं मन न जम रहा था। द्विवेदीजी सोच रहे थे, ऐसे आदमी की मदद कैसे करें जो खुद अपने लिए दौड़धूप करने को तैयार नहीं है। उधर उन्हें यह भी सूचना मिली कि स्वामी माधवानन्द ने अपने पत्र के लिए किसी को रख लिया है। उन्होंने सूर्यकान्त को पत्र लिखा, "जान पड़ता है स्वामीजी ने बहाना कर दिया है। पसन्द किसी और ही को किया होगा। खैर, उनकी इच्छा। इधर बनारस जाने में भी आपने देर कर डाली।"[3]

सूर्यकान्त ने सोचा, क्यों न ऐसा धन्धा करें जिससे देश की सेवा हो, घर का खर्च भी चले। एक पड़ोसी सज्जन कानपुर जा रहे थे। उनसे कहा, एक तकुआ लेते आना, सूत कातेंगे। वह सज्जन तकुआ लाना भूल गये। तब यह गाँव के पड़ोस में कोरियों के पास गये और कहा, बुनाई का काम सिखा दो। कोरियों को विश्वास न हुआ, यह सचमुच काम सीखने आये हैं। उन्होंने कहा, "तुम महाराज होकर यह काम क्या करोगे!"

इस बीच अपने दुखी जीवन के अनुभवों को वेदान्त से मिलाते हुए उन्होंने एक कविता लिखी—जब कड़ी मारें पड़ीं दिल हिल उठा। कविता कानपुर की 'प्रभा' में छप गई।

इस बेकारी में भी अपनी कन्याओं के लिए वर तलाश करने वाले लोगों से वह घिर जाते। इनसे बचने के लिए ससुराल चले गये। सरोज अब चार साल की हो गई

थी, रामकृष्ण सात के थे। भाई-बहन में कभी-कभी लड़ाई होती ; रामकृष्ण सरोज के दो-एक चपत लगा देते। वह जाकर नानी से शिकायत करती। सूर्यकान्त उसे लेकर गंगा के किनारे घूमने निकल जाते। बालू पर बैठे हुए वह गंगा की लहरें देखते, भविष्य के बारे मे सोचते और मनोहरादेवी के ध्यान मे खो जाते। कविताएँ लिखते थे पर बहुत कम छपती थी। द्विवेदीजी चाहते तो 'सरस्वती' मे उनकी कविताएँ छपने लगती, पर उनसे कविताएँ छपाने के लिए कहना उन्हे आत्मसम्मान के विरुद्ध लगा। द्विवेदीजी को इस बात का ध्यान न था कि इनके लिए कविताओं का प्रकाशन उतना ही आवश्यक है जितना नौकरी मिलना। वह केवल उपयुक्त काम दिलाने के बारे मे सोच रहे थे।

बच्चों को देखकर वह गाँव आ गए। तभी उन्हें महिपादल से तार मिला—फौरन चले आओ। बेकारी मे दर-दर भटकने से परेशान होकर सूर्यकान्त ने तै किया कि इस जिन्दगी से वह गुलामी ही भली। स्वाभिमान के पीछे जहाँ से चले आए थे, वहाँ जाना रुचिकर न था। फिर भी जानी-पहचानी जगह थी। साहित्यिक पत्रों का संपादक कोई बनाता न था और प्रेस की प्रूफरीडरी करनी न थी। 'सरस्वती' मे द्विवेदी जी के बाद वहाँ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और देवीदत्त शुक्ल पहुँच गए थे। सूर्यकान्त भी अच्छे संपादक हो सकते है, इस पर खुद उन्हें छोड़कर औरो को विश्वास न था।

सूर्यकान्त महिपादल आ गए। फिर वही चिट्ठी-पत्री, तहसील-वसूली, कचहरी-अदालत। मन मारकर काम मे लग गए। एक कहावत उन्हें अक्सर याद आती थी—राजा जोगी अगिन जल, इनकी उल्टी रीति। राजा सामने थे, जोगी कलकत्ते मे। रामकृष्ण मिशन वालों ने कौन-सा पत्र निकाला, किसे संपादक रखा, वह हिन्दी मे बँगला से कैसा अनुवाद करता है, इन सब प्रश्नों के उत्तर जानने की उन्हे इच्छा थी। स्वामी माधवानन्द ने अपने पत्र का नाम रखा 'समन्वय'। सन् '२१-२२ का जाड़ा बीत रहा था, तभी सूर्यकान्त को 'समन्वय' के दर्शन हुए। स्वामी माधवानन्द उन्हें भूले न थे। पहला अंक प्रकाशित होते ही इनके पास भेजा, साथ ही लेख के लिए भी प्रार्थना की।

सूर्यकान्त ने बड़े परिश्रम से लेख लिखा—'भारत मे श्री रामकृष्णावतार'। अब तक उन्होने दार्शनिक विषयों पर चिन्तन करते हुए जो रहस्यभेद किए थे, उनका सारतत्त्व इस लेख मे सँजो दिया। दार्शनिक विषय पर यह पहला लेख था, संन्यासियों के पत्र मे छपने जा रहा था, इसे सूर्यकान्त की मौलिक प्रतिभा का प्रमाण होना ही था। मनुष्य का लक्ष्य है ईश्वर-प्राप्ति। जब तक भोगसुख की लालसा बनी रहती है, तब तक जीव अतीन्द्रिय सत्ता की ओर कदम नही उठा सकता। यूरुप आज भोग की ओर उन्मुख है। भोग में फँसे मनुष्य का उद्धार करने के लिए रामकृष्ण परमहंस का अवतार हुआ।

संन्यासी यह सब जानते थे; इस सब का प्रचार आवश्यक था, पर इसमे मौलिकता क्या थी ?

सूर्यकान्त ने अपने व्याकरण के सूत्र दर्शन के क्षेत्र में सिद्ध किए। लोग भारत-भारत करते हैं, भारत का अर्थ भी समझते हैं ? भारत का अर्थ है, भा अर्थात् प्रकाश में रत। इसलिए भारत अपने शब्दार्थ से ही धर्मप्राण है। ऐसे ही संसार शब्द है। इसका अर्थ है जो संसरणशील हो, बराबर चला करे।

शब्दों की व्याख्या में अपनी मौलिकता दिखाने के बाद सूर्यकान्त ने यह विचित्र दावा किया, "धर्म को मानते हुए हमें अधर्म को भी मान लेना चाहिए।" इस पर संन्यासी और धर्मभीरु जन चौंक सकते थे। सूर्यकान्त ने तर्क किया, "सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई शब्द नहीं, जिसका विरोधी गुण न हो। अमृत का गुणगान कीजिए तो विष को भी अपनी तान छेड़ते हुए देखिए। हरएक व्यक्ति—हरएक शब्द का विरोधी गुण उसकी प्रगति का निर्णय कर रहा है। प्रगति भले और बुरे के संघर्ष मे ही होती है। यदि विरोधी गुणों का त्याग और नाश कर दिया जाय तो संसार की प्रगति रुक जायगी।"

इससे यह सिद्ध हुआ कि जब तक संसार है तब तक धर्म के साथ अधर्म, त्याग के साथ भोग, पुण्य के साथ पाप भी रहेगा। सूर्यकान्त अपनी विलक्षण प्रतिभा से व्यावहारिक दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्व-सिद्धान्त लागू कर रहे थे। वह तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरितमानस' में भी द्वन्द्ववाद देखते थे--जड़-चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार। पर यह तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता क्या थी ?

सूर्यकान्त ने यह तर्क स्वयं अपने अन्तःकरण के सामने अपनी जीवन-चर्या को उचित ठहराने के लिए दिया था। महिषादल मे रामकृष्ण परमहंस के उपासक थे तो चीफ मैनेजर की तरह अनेक जन ऐसे भी थे जो संसार में आकर सब सुख भोगने में विश्वास करते थे। इस सुखभोग में सुरापान का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सूर्यकान्त अब इन लोगों के प्रभाव में आ रहे थे। मन कहता, सुरापान अनुचित है। तब वह तर्क करते, जब तक संसार है और संसार में रहना है, तब तक धर्म के साथ अधर्म भी है और इनके द्वन्द्व के बिना प्रगति सम्भव नहीं। फिर इस भोग से वह दूसरों की रोटी न छीन रहे थे। राजा को देखो। यूरप के पूंजीपतियों को देखो। इनके भोगवाद से अशान्ति फैलती है। "एक-एक मनुष्य के भोग के लिए हर रोज़ हज़ारों मनुष्यों को अपने भोजनांश का अग्रभाव दे देना पड़े, अथवा लाखों आदमियों को भूखे रहकर सिर्फ एक भोगी के भोग का सामान तैयार करना पड़े तो संसार में अशान्ति के फैल जाने में देर नहीं होती।"

सूर्यकान्त ने परमपद-लाभ का विचार अभी छोड़ा नहीं था। संसार में रहते हुए भोग का बन्धन स्वीकार करना पड़ता है। फिर भी भोग द्वारा मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता; एक दिन भोग की असारता उसे मालूम हो जायगी। सूर्यकान्त को ईश्वर-दर्शन की आशा थी, साथ ही राजनीति भी उन्हे अपनी ओर खींच रही थी। एक आदमी के भोग-सुख के लिए लाखों आदमी भूखे मरते हैं, यह भाव उन्हें व्यथित करता था।

रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों को सूर्यकान्त का लेख पसन्द आया। उन्हें

अपने हिन्दी-भाषी सहायकों से काम लेने में कठिनाई हो रही थी। ये सहायक बँगला के बहुत अच्छे जानकार न थे, इसलिए उनके काम से उन्हे सन्तोष न था। उन्होंने सूर्यकान्त को लिखा कि वह 'समन्वय' मे काम करने आ जायँ। इन्होंने सोचा, पत्र मे काम करते हुए लिखने-पढ़ने के लिए अधिक समय मिलेगा। राजा की नौकरी में समय बहुत नष्ट होता है। उन्होंने कलकत्ते जाने का विचार किया।

'समन्वय' का अंक द्विवेदीजी के पास भी पहुँचा। सूर्यकान्त का लेख उन्हे पसन्द आया। उसके पुष्ट गद्य और मौलिक चिन्तन पर उन्होने बधाई दी। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से सूर्यकान्त को विश्वास हो गया कि उनमे सिद्ध साहित्यकार की प्रतिभा है। नौकरी मे समय नष्ट करना और भी व्यर्थ जान पड़ा। दूसरी बार और अंतिम बार सन् '२२ की बरसात मे, महिपादल के राजभवन, बटम पाम की कतारें, हरी दूब के पार्क, कमलो से भरे हुए तालाब, यात्रा के रथ, नाट्यशाला और अनेक हिन्दी-बंगाली मित्रों को छोड़कर सूर्यकान्त कलकत्ता आ गये।

उद्‌बोधन कार्यालय, बाग बाज़ार मे उन्होंने डेरा डाला। महीने मे कितनी तनख्वाह मिलेगी, यह कुछ तै न हुआ था। स्वामी माधवानन्द तथा अन्य संन्यासियो के साथ वह रहने लगे, उन्ही के साथ भोजन करते, उन्ही की तरह सादा जीवन बिताते। गेरुए वस्त्र न पहनते थे, पर आचार-विचार बहुत-कुछ संन्यासियो जैसा था। 'समन्वय' का काम उन्हे पसन्द आया। वह बँगला लेखों का अनुवाद करते, टिप्पणियाँ लिखते, जब-तब 'समन्वय' में अपनी कविताएँ भी प्रकाशित करते।

सूर्यकान्त के आने से पहले ही 'समन्वय' धर्म और दर्शन के साथ साहित्य की भी सेवा करने लगा था। उसमे मुकुटधर पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय आदि कवियों की रचनाएँ छपती थी। लाहौर मे 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का बारहवाँ अधिवेशन हुआ। उसके सभापति जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का अभिभाषण 'समन्वय' मे उद्धृत हुआ। सूर्यकान्त के आ जाने पर उसका साहित्यिक रूप और परिष्कृत हुआ। सबसे पहले इन्होने आचार्य द्विवेदी से लेख भेजने की प्रार्थना की। जिन कवियो की भाषा से वह प्रभावित थे, उनमें हरदुआगंज, अलीगढ के निवासी नाथूराम शकर शर्मा का प्रमुख स्थान था। उनसे भी उन्होंने संपर्क स्थापित किया। इनके अलावा 'समन्वय' में आगे-पीछे अयोध्यासिह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, लक्ष्मणनारायण गर्दे, बदरीनाथ भट्ट, कामताप्रसाद गुरु, देवीदत्त शुक्ल आदि की रचनाएँ भी प्रकाशित हुई। पत्र का संपादन सूर्यकान्त ही करते थे, पर संपादक की जगह उनका नाम न छपता था। नाम छपता था स्वामी माधवानन्द का। 'समन्वय' मे एक धारावाहिक स्तम्भ शुरू हुआ—श्री रामकृष्णवचनामृत। बँगला मे रामकृष्ण परमहंस की जीवनचर्या से सम्बन्धित इस प्रसिद्ध पुस्तक के चार खंड प्रकाशित हो चुके थे। सूर्यकान्त ने इनका अनुवाद करना शुरू किया और वह धारावाहिक रूप से 'समन्वय' मे छपने लगा। इसके अलावा 'एक दार्शनिक' के नाम से उन्होंने कई लेख लिखे।

धर्म और दर्शन के अलावा वह भाषा और साहित्य की समस्याओ के बारे मे भी सोचा करते थे। बँगला और हिन्दी कविता की प्रवृत्ति काफी भिन्न है, बँगला में

गणात्मक छन्द नहीं होते, मात्रिक छन्द होते हैं, पर हिन्दी से अन्तर होता है। बँगला मे क्रियापदों पर उतना ज़ोर नही दिया जाता। सन् '२० में जव उन्होने बँगला-उच्चारण पर लेख लिखा था, तव बँगला में मात्रिक छन्द भी होते हैं, यह न माना था। अव स्थिति वदल गई थी। अपने विचार 'विविध विपय' स्तम्भ मे 'हिन्दी और बँगला की कविता' शीर्षक से उन्होने लिखे। लेखक के नाम के बिना ही यह लेख छपा। हिन्दी राष्ट्रभापा है, उसका रूप कैसा हो, इस विपय पर भी वह विचार किया करते थे। 'हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिये!' इस लेख में उन्होने मत प्रकट किया कि "राष्ट्रभापा की दृष्टि से हिन्दी को सरल और तेजस्वी होना चाहिए।" इसके साथ भी लेखक का नाम नही छपा। 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली' लेख उनके नाम के साथ छपा। इसमे उन्होने तत्समप्रधान शैली का विरोध करते हुए लिखा, "ऐसी संस्कृत-प्रचुर हिन्दी न किसी के मुँह से निकलती है और न वह किसी की मादरी ज़बान है।"

अवकाश के समय वह रामचरितमानस देखते थे। रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के संसर्ग से वह जो अद्वैतज्ञान कमा रहे थे, उसकी कसौटी पर तुलसी की विचार-धारा को परखते थे। वह रवीन्द्रनाथ की कविताएँ भी पढ़ रहे थे और यह तर्क लडा रहे थे कि जमीदार रवीन्द्रनाथ और गृहत्यागी तुलसीदास में सच्चा ज्ञानी कौन हो सकता है। संन्यासियों के वीच रहते हुए गृहत्यागी कवि का पक्ष लेना उनके लिए स्वाभाविक था। उन्होंने 'समन्वय' के लिए लेख लिखा, 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत-तत्व'। इसमें तुलसी का सार्वभौम महत्व घोपित करते हुए उन्होंने लिखा, "हिन्दी का सौभाग्य है कि उसके काव्यकुञ्ज की तुलसी मंजरी का जैसा सुगन्ध संसार की साहित्य-वाटिका में शायद कही नहीं।" तुलसी का यह महत्व वह बंगालियों ही को नही, हिन्दी-वालों को भी समझा रहे थे। उनका विचार था, तुलसी की आदर्श आलोचना हिन्दी में अभी लिखी ही नही गई। आदर्श आलोचना लिखने के लिए कैसी योग्यता होनी चाहिए, इस वारे में उन्होने उसी लेख में यह मत व्यक्त किया, "रामायण के अर्थ-गाम्भीर्य, भाव-माधुर्य, श्रुति-लालित्य और शब्द-योजना आदि काव्य-गुणों का ज्ञान, रामायण की श्रेष्ठता के अनुरूप, उसी को होगा जो स्वयं अच्छा कवि हो, अच्छा समालोचक हो, ईश्वरानुगामी हो और भव-वन्धनों से अलग हो।" अर्थात् सूर्यकान्त त्रिपाठी ही तुलसीदास जैसे ज्ञानी कवि के आदर्श आलोचक हो सकते हैं।

'रामकृष्णवचनामृत' का अनुवाद करने के समय वह परमहंस के ध्यान मे डूवे रहते थे। रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्व प्रभावशाली वनकर जितना ही आँखों के सामने दीप्त हो उठता, उतना ही रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व उन्हें छोटा लगता। रवीन्द्रनाथ ब्राह्मसमाजी थे। ब्राह्मसमाज और रामकृष्ण परमहंस की लागडाट पुरानी थी। ब्राह्मसमाज में धनी वर्ग के लोग ज़्यादा थे, रामकृष्ण के अनुयाइयों में निम्न मध्यम-वर्ग के लोग अधिक थे। दोनों का ही लक्ष्य सामाजिक और धार्मिक सुधार था। पर ब्राह्मसमाज वाले जमींदारी की रक्षा करते हुए निराकार उपासना में विश्वास करते थे, रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य सव-कुछ छोड़कर दरिद्रनारायण की सेवा

करने निकले थे। ब्राह्मसमाजी मूर्तिपूजा आदि को ढोंग समझते थे, रामकृष्ण हर उपासनापद्धति को ईश्वर-प्राप्ति के लिए उचित मानते थे। ब्राह्मसमाज में ज्ञान पर अधिक जोर था, रामकृष्ण मत मे भक्ति पर। सूर्यकान्त को रामकृष्ण के संस्कार तुलसीदास के संस्कारो से मिलते-जुलते लगे। इसलिए भी रामकृष्ण परमहंस को अवतारी पुरुष स्वीकार करने मे उन्हें अड़चन न हुई।

वह 'रामकृष्णवचनामृत' तथा अन्य संबद्ध पुस्तकों-लेखो मे रामकृष्ण परमहंस और केशवचंद्र सेन के बारे मे पढ़ते, दोनो के व्यक्तित्व की तुलना करते। केशवचन्द्र सेन का चेहरा सुन्दर, आँखें तेजपूर्ण, ऐसा भव्य व्यक्तित्व कि दस हजार आदमियों में भी सबका ध्यान अपनी ओर खीच लें। और क्या भाषण-कला! विलायत तक मे उनके धारा-प्रवाह भाषणो की प्रसिद्धि थी। क्या अंग्रेजी, क्या बँगला, भाषा पर ऐसा आधिपत्य कि लोग घंटो तक मंत्रमुग्ध सुना करते। उधर रामकृष्ण, देखने मे वज्र देहाती। काला रंग, दुर्बल शरीर, मँझोला कद, दाढी उलझी हुई, आँखे आधी बंद, भीड़ में हों तो लोग धकियाते निकल जाये, कोई उनकी ओर ध्यान भी न दे। बोलते थे तो हल्की तुतलाहट का आभास होता था, भाषा ऐसी जैसी देहात के लोग बोलते है। "सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है। 'मैं' जब कि हटने का ही नही तो बना रहने दो साले को 'दास मैं'।" "निर्गुण और सगुण दोनो गिरगिट की तरह है, अनेक रंग और बेरंग।" पर जब वह बोलने लगते थे तब केशवचन्द्र सेन जैसे वक्ता भी मौन होकर सुनते रह जाते। केशवचन्द्र सेन ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन बहुत करते थे। इस पर रामकृष्ण परमहंस ने कितना सुन्दर व्यंग्य किया था : "जो स्वयं ऐश्वर्य चाहते हैं, वे ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करना अच्छा समझते है।" रवीन्द्रनाथ के पास ऐश्वर्य है, रामकृष्ण और तुलसी के पास है केवल त्याग।

मिशन के संन्यासी उन्ही रामकृष्ण परमहंस की देन है। विश्वजयी स्वामी विवेकानद अब नही है पर उनके सहयोगी विद्यमान है। उन्ही में संन्यासीश्रेष्ठ सारदानद महाराज है। विशाल आकार, तेज से भरी आँखे, लोग उन्हे महावीर का अवतार कहते है। उन्हें देखकर सूर्यकान्त को डर लगता था, उनकी आँखों की ओर देखने का साहस न होता था। उनके निकट बैठने, उनकी बाते सुनने में अपार सुख मिलता था। उनके स्पर्श से सारे दैहिक-मानसिक क्लेश दूर हो जाते थे। एक दिन सूर्यकान्त के सिर मे भयानक पीड़ा थी। स्वामी सारदानंद के कमरे में जाकर उनकी कुर्सी के सामने झुककर प्रणाम किया। कहा कुछ नही पर उन्होंने समझ लिया। सूर्यकान्त का माथा थाम लिया, अँगूठे और अँगुली से दबाकर खीचा। इन्हें लगा कि दर्द चला गया और शरीर हल्का हो गया।

संन्यासियों के साथ रहते-रहते सूर्यकान्त को आभास होता कि वह भी बहुत जल्दी सिद्ध पुरुष होने जा रहे हैं। स्वप्न में महावीर पहले ही दिखाई देते थे; अब अन्य देवता भी आने लगे। एक दिन इन्होने स्वामी सारदानन्द से कहा, "सो जाने पर मेरे साथ देवता बातचीत करते है।" उन्होने हँसकर जवाब दिया, "बाबूराम महाराज से भी करते थे।" बाबूराम महाराज अर्थात् स्वामी प्रेमानन्द। इससे साबित हुआ कि

सूर्यकान्त भी उसी राह पर चल रहे हैं। देवताओं के अलावा स्वप्न में उन्हें संन्यासी भी दिखाई देते थे। एक दिन दोपहर को अपने किसी बंगाली मित्र के बिस्तर पर सो रहे थे कि देखा स्वामी सारदानंद कमलासन बैठे हुए, ऊर्ध्वबाहु, मुद्रित नेत्र, महाध्यान मे मग्न हैं। मुख पर महानन्द की दिव्य ज्योति है। स्वप्न में ही एक संन्यासी उन्हें रसगुल्ला खिलाने आया। उसी ध्यानावस्थित अवस्था में स्वामीजी ने सूर्यकान्त की ओर इशारा किया। ये गये और रसगुल्ला खिलाकर कटोरा सन्यासी को दे आये।

स्वामी सारदानंद ने संन्यासी से रसगुल्ला न लेकर सूर्यकान्त से लिया, यह सिद्ध करने के लिए कि वह संन्यासी से भी उनके ज्यादा निकट है। एक दिन स्वामी रामकृष्ण परमहंस की पत्नी स्वर्गीया सारदामणिदेवी के कमरे मे रामायण-पाठ करने के बाद स्वामी सारदानंद ने प्रसाद मे इन्हें एक के बदले दो रसगुल्ले दिलाये। केवल शंकर महाराज को एक के बदले दो रसगुल्ले मिले थे। वे सारदानंद के बड़े गुरुभाई, रामकृष्ण मिशन के प्रथम प्रेसिडेंट, स्वामी ब्रह्मानन्द के प्रिय शिष्य थे। पर उन्होंने उन दो मे से एक रसगुल्ला सूर्यकान्त को दे दिया था। ये सब घटनाएँ प्रमाणित करती थी कि सूर्यकान्त सिद्ध पुरुषों के मार्ग पर ही चल रहे है।

पूजा-उपासना वह पहले भी कम करते थे, अब वह सब बिल्कुल बंद कर दिया। उन्होंने पढ़ा था कि स्वामी रामकृष्ण भी संध्या-पूजन आदि न करते थे। एक बार स्वामी दयानंद से भेंट होने पर उन्हें संध्या करते देखकर रामकृष्ण परमहंस ने पूछा था, "संध्यावंदन से क्या होता है ?" स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया था, "लोटा रोज़ मला न जाय तो गंदा हो जायगा।" इस पर उन्होंने कहा था, "यदि सोने का लोटा हो तो ?" सूर्यकान्त सोचते, हमारे पास भी सोने का लोटा है। यदि रामकृष्ण परमहंस संध्यावंदन न करते थे, तो सूर्यकान्त त्रिपाठी ही क्यो करें ?

उनके मन पर स्वामी सारदानंद की मूर्ति छाई रहती। जब किताब पढ़ने बैठते तो लगता कि अक्षर गायब हो गये और स्वामी सारदानंद ने इनकी आँखें मूंद लीं। भीतर उनकी वाणी सुनाई देती, इस चिड़िया को पढ़ो। आँखें खोलने पर चूं-चूं करती चिडिया दिखाई देती। उनके स्वर मे उन्हे अनेक अर्थ सुनाई देते। गरुड़काकभुसुंड संवाद याद आता और वह तुलसीदास की चौपाई घोखने लगते,

इहि भक्षणकृत क्षुधा न प्यासा।
वर्ष सहसदल संसय नासा।।

सूर्यकान्त का मन कहीं इस सारे चमत्कारवाद को अस्वीकार भी करता था। देवता स्वप्न में दिखाई देते हैं। यदि देवता सचमुच कही हैं तो जाग्रत अवस्था में क्यों नहीं आते ? ये संन्यासी ज्ञानी हैं तो मूर्खों की बातें क्यों सुना करते हैं ? किताबें पढकर दर्शन बघारने वाले लोग इनका कितना समय नष्ट करते हैं। इन विद्वानों को प्रत्यक्ष अनुभूति तो कुछ है नहीं, फिर भी महाज्ञान बकबकाया करते हैं। इनके शब्द कानों को ऐसे लगते हैं जैसे भाड़ में लावा चटकते हों। ये लोग स्वामी प्रेमानंद जैसे संन्यासी से बार-बार पूछते है, यह किताब पढ़ी है, वह किताब पढ़ी है। स्वामी प्रेमानंद ने ठीक जवाब दिया—मैंने महापुरुष-चरित पढ़ा है। महापुरुष-चरित सूर्यकान्त ने भी पढ़ा

है। स्वामी सारदानंद महापुरुष है, इसमे संदेह ही क्या ! पर वे जो ज्ञान की बातें करते हैं, उन्हे तुलसीदास तो बहुत पहले ही रामायण मे लिख गये थे।

एक दिन सूर्यकान्त ने स्वामी सारदानंद से कहा, सभी महापुरुषो की बातो में समानता दिखाई देती है। ज्ञान की सारी बातें रामायण में हैं। मैं उसकी टीका लिखूँगा और महापुरुषो की उक्तियों की समता दिखाऊँगा।

स्वामी सारदानन्द ने कहा, अभी नही; अभी कुछ दिन ठहर जाओ। अभी और समझोगे।

सूर्यकान्त की समझ मे न आता था, अभी और क्या समझना बाकी है। दूसरों की बात चुपचाप सुनकर मान लेना उनकी प्रकृति मे न था। उन्होंने स्वामी सारदानंद से प्रश्न किया, "यह संसार मुझमे है या मैं इस संसार मे हूँ ?" सारदानंद ने सीधा उत्तर न देकर कहा, "इस तरह नही।" इस पर सूर्यकान्त ने हुज्जत करते हुए कहा, "तो यह प्रश्न हल भी नही हो सकता।" इस पर स्वामी सारदानंद ने कुछ नाराज होकर उत्तर दिया, "पागल क्या नही कहते !" इस तरह कभी-कभी तनाव की हालत पैदा हो जाती थी।

एक दिन वह स्वामीजी जो स्वप्न मे सारदानंद को रसगुल्ला खिलाने आये थे, सूर्यकान्त से बोले, "तुम मंत्र नही लोगे ?"

सूर्यकान्त सीढियो पर दौडकर चढ़ते हुए स्वामी सारदानन्द के कमरे मे पहुँच गये। उन्होंने पूछा, "क्या है ?" इन्होने जवाब दिया, "मंत्र लेने आया हूँ।" स्वर मे यह भाव कि मंत्रों से कुछ होता-जाता नही है, फिर भी देखें आप कौन-सा मंत्र देते हैं। स्वामी सारदानद ने कहा, "अच्छा, फिर कभी आना।" कुछ दिन बीतने पर सारदामणिदेवी के कमरे मे रामायण-पाठ करने के बाद जब सूर्यकान्त प्रसाद लिये हुए स्वामी सारदानंद के जीने की तरफ जा रहे थे, तभी उधर से स्वामीजी आ निकले। सूर्यकान्त रामायण के भाव मे डूबे हुए थे। स्वामीजी हटकर एक तरफ खड़े हो गए। इसे अपना असाधारण सम्मान समझकर सूर्यकान्त भी उन्हे रास्ता देने के लिए एक तरफ खड़े हो गए। स्वामीजी ने पूछा, "यह प्रसाद किसके लिए लिये जा रहे हो ?" इन्होंने कहा, "अपने लिए।" स्वामीजी ने कहा, "अच्छा, खाकर आओ।" प्रसाद खाने के बाद वह स्वामीजी के पास पहुँचे। वह अब भी अपने कमरे के सामने खड़े हुए थे। उन्होंने, पूछा, "उस रोज तुम क्या कहने वाले थे ?" सूर्यकान्त ने कहा, "मुझे तंत्र-मंत्र पर विश्वास नही।" उन्होने पूछा, "तुम गुरुमुख हो ?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, पर तब मैं नौ साल का था।" स्वामीजी ने कहा, "हम लोग तो श्री रामकृष्ण को ही ईश मानते है।" सूर्यकान्त ने कहा, "ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।" इसके बाद स्वामी सारदानंद निकट आये। सूर्यकान्त को लगा कि ठंडी छाँह मे डूबते जा रहे हैं। स्वामीजी ने उंगली मे गले मे कुछ लिख दिया। सूर्यकान्त ने गले मे अपना मन केन्द्रित करके मंत्र पढने का बडा प्रयत्न किया पर सफल न हुए। लड़कपन मे वशीकरण-मारण-उच्चाटन के बारे मे इन्द्रजाल वाली पोथी मे पढा था। अब लगा कि ये संन्यासी उन पर वशीकरण मंत्र सिद्ध कर रहे हैं। उन्हे आभास होता कि संन्यासी उन्हे अपनी ओर खींच

रहे हैं। एक दिन रामकृष्ण मिशन के ही एक साधु की भी वैसी ही दशा हुई। उन्होंने सूर्यकान्त से कहा, "पंडितजी, क्या आप वशीकरण जानते हैं?" इन्होने जवाब दिया, "मैं मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सब में सिद्ध हूँ।" यह साधु दर्शनशास्त्र मे एम० ए० थे। जब ऐसे शिक्षित साधु तक सूर्यकान्त की ओर खिचने लगे, तब इनके सिद्ध होने में संदेह ही क्या रह गया? ज्ञान में वह किसी से कम नहीं हैं, यह स्पर्द्धा-भाव बढ़ने लगा।

'समन्वय' कार्यालय बाग बाज़ार से उठकर २३, शंकरघोष लेन में आ गया। इस इमारत में एक प्रेस था, नाम था बालकृष्ण प्रेस और उसके मालिक थे महादेव-प्रसाद सेठ। 'समन्वय' इसी प्रेस में छपता था। उसी बिल्डिंग में किराये के कमरे लेकर ऊपर की मंजिल में 'समन्वय' के कार्यकर्त्ता भी रहते थे। मिर्ज़ापुर निवासी महादेव-प्रसाद सेठ भारतेन्दु-युग के प्रसिद्ध लेखक बालकृष्ण भट्ट के कृपापात्र थे, उनकी साहित्य-सेवा, त्यागमय जीवन और उग्र राजनीति से बहुत प्रभावित थे। उन्हीं की स्मृति में उन्होने अपने प्रेस का नाम बालकृष्ण प्रेस रखा था। वह स्वयं भी लेखक थे। 'इंदु', 'अभ्युदय', 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाशित हो चुके थे। महा-वीरप्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहन पाने वालों में एक लेखक वह भी थे। इतिहास से उन्हे विशेष प्रेम था। इतिहास की पुस्तकें खरीदने और पढ़ने मे काफी धन और समय खर्च करते थे। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, उर्दू और बँगला का भी अच्छा ज्ञान था। घर पर पत्थर का कारोबार होता था। कुछ पूंजी लेकर इन्होने कलकत्ते में प्रेस खोला था। असहयोग आन्दोलन में वह सक्रिय भाग ले चुके थे और जेल भी हो आये थे। बड़े सहृदय थे; गरीबों और भिखारियों की भरसक सहायता करते थे।

एक ही बिल्डिंग में रहने पर महादेवप्रसाद सेठ से सूर्यकान्त का परिचय हुआ। धर्म और दर्शन के अलावा अब साहित्य और राजनीति की चर्चा विशेष होने लगी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गाँधीजी की चरखेवाली नीति नापसन्द थी। सूर्यकान्त और महादेवप्रसाद सेठ दोनों स्वदेशी आन्दोलन और चरखा-नीति के प्रबल समर्थक थे। दोनों का झुकाव उग्र राजनीति की ओर था। अंग्रेज़ों को निकालना ही काफी नहीं है, भारतीय समाज का ढाँचा बदलना भी जरूरी है। द्विज-शूद्र, स्त्री-पुरुष में ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाना आवश्यक है। रूस मे बोलशेविक क्या कर रहे हैं, इसके बारे में बँगला-हिन्दी पत्रों मे आये दिन लेख प्रकाशित होते थे। महादेवप्रसाद सेठ के पास बहुत-से हिन्दी पत्र आते थे जिनमें 'प्रताप' भी था। उस समय के हिन्दी पत्रों में वह सबसे ज़्यादा क्रान्तिकारी था। सूर्यकान्त के मन में वही प्रश्न बार-बार फिर उभरने लगा जिसे उन्होंने महिषादल में अपने इष्ट देव महावीर से किया था, "ये गरीब मरे जा रहे हैं—इनके लिए क्या होगा?" संन्यासी त्यागी अवश्य हैं पर क्या संन्यास लेने से देश की गुलामी खत्म हो जायगी? उनके मन मे अद्वैत मत को लेकर जो शंकाएँ उठती थीं, वे और तीव्र हो गईं। अद्वैतवादी साधुओं के लिए तो सब संसार माया है, दरिद्र भी माया, उनका दुख भी माया। ब्रह्म के आगे हर तरह का माया-मोह व्यर्थ है। अभी तक सूर्यकान्त ने अपने सामने जो परमपद-लाभ का लक्ष्य रखा था, उससे

मन डिगने लगा।

उन्होंने एक कविता लिखी—'अधिवास'। इसमें उन्होंने अपने मन की शंकाएँ प्रकट की। ब्रह्म मे कोई गति नही होती, गति संसार मे है। दुखी जनों को देखकर हृदय में करुणा उमड आती है। करुणा से दुखियो को सहारा देना मानवधर्म है। भले ही कोई इसे माया कहे पर निश्चल ब्रह्म मे लीन होने से करुणा की इस माया मे फँसे रहना अच्छा है।

छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।

सूर्यकान्त का अधिवास छूट रहा था, परमपद-लाभ का वह लक्ष्य छूट रहा था, जिसकी प्राप्ति के लिए अभी तक वह अपनी इच्छाओ का दमन करते आये थे। अधिवास के छूटने का अर्थ यह भी था कि सन्यासियो से संबंध शिथिल हो रहे थे।

सूर्यकान्त ने कविता 'सरस्वती' मे छपने भेजी। सपादक पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी ने लिखा कि कविता के भाव समझ मे नही आते और लेखक के पास सधन्यवाद उसे वापस भेज दिया।

सूर्यकान्त की जान-पहचान अब हिन्दी-लेखक शिवपूजन सहाय से हुई। यह शाहावाद, बिहार के एक गाँव के रहने वाले थे। 'मारवाड़ी सुधार' नामक मारवाडियों के एक पत्र का संपादन करते थे। अपना पत्र वालकृष्ण प्रेस मे ही छपवाते थे। सूर्यकान्त को शिवपूजन सहाय बहुत अच्छे लगे। उम्र मे बड़े थे, पत्र के संपादक थे जिसमे वाकायदा उनका नाम छपता था, दो-चार पुस्तकें भी लिख चुके थे, फिर भी सूर्यकान्त का वडप्पन जितनी आसानी से यह स्वीकार कर लेते थे, उतनी आसानी से और कोई स्वीकार न करता था। व्रजभापा के पचीसो अनूठे छन्द इन्हे याद थे। राजनीति से भी गहरी दिलचस्पी थी। असहयोग आन्दोलन मे यह भी सरकारी स्कूल की नौकरी छोड़ चुके थे। सूर्यकान्त ने 'समन्वय' मे इनके लेख छापे। शिवपूजन सहाय को मालूम हुआ कि 'अधिवास' कविता 'सरस्वती' से वापस आ गई है; उन्होने उसे 'माधुरी' मे छपने के लिए उसके सपादक रूपनारायण पाण्डेय के पास भेज दिया।

कलकत्ते मे इन दिनो नाटक कंपनियो की धूम थी। कोरिंथियन, अल्फ्रेड, मदन थियेटर आदि पारसी नाटक कंपनियों में नारायणप्रसाद बेताव, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा आदि के नाटको की धूम थी। नाटकों की भापा उर्दू होती थी; गाने, शेर और चटपटे संवाद मुख्य आकर्पण थे। अभिनय मे स्वाभाविकता कम, वेश्याओं के नाज-नखरे ज्यादा होते थे। महादेवप्रसाद सेठ, शिवपूजन सहाय आदि मित्रो के साथ सूर्यकान्त नाटक देखने जाते। वह सवाद से लेकर अभिनय तक हर चीज की आलोचना करते, फिर भी अभिनेत्रियो का रूप और उनका गाना उन्हे अच्छा लगता। वह बँगला नाटक भी देखने जाते। बँगला रंगमच का स्तर पारसी थियेटर से बहुत ऊँचा था। शिवपूजन सहाय और सूर्यकान्त सहमत होते कि बँगला अभिनेत्रियो की कला अधिक स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्यकारो को पारसी स्टेज के कुरुचि-प्रदर्शन से क्षोभ होता; जातीय प्रतिद्वन्द्विता का भाव जोर मारता। बँगला के मुकाबले हिन्दी की नाट्यशाला होनी चाहिए।

प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि माधव-शुक्ल ने हिन्दी नाट्य परिषद् की स्थापना की; वह कवि, नाटककार, प्रभावशाली वक्ता और कुशल अभिनेता थे। साहित्य-प्रेमी रामलाल वर्मन ने हिन्दी नाट्य समिति बनाई। ईश्वरीप्रसाद शर्मा, माधव शुक्ल आदि लेखक इन संस्थाओं के लिए नाटक लिखते। सूर्यकान्त की बड़ी इच्छा थी, वह भी नाटक लिखे, संभव हो तो अभिनय भी करें। गिरीशचन्द्र घोष बँगला रंगमंच के कितने सफल अभिनेता थे, साथ ही कितने बड़े नाटककार। रामकृष्ण परमहंस के भक्त भी थे। लोग श्रद्धा से उन्हें बंगाल का शेक्सपियर कहते थे। विशेष रूप से सूर्यकान्त को उनका मुक्तछन्द बहुत अच्छा लगता। वे उनकी पंक्तियाँ अक्सर गुनगुनाया करते :

विज्ञान, विज्ञान,
नाहीं आर ज्ञान,
भावे नर संसारेर स्वामी।

सूर्यकान्त ने एक नाटिका लिखना शुरू किया :

आती है याद आज
उस दिन की प्रियतम !
जिस दिन हमारी पुष्प-
वाटिका में पुष्पराज !
बाल रवि किरणों से
हँसते नव नीलोत्पल !

निराला ने वर्णिक मुक्तछन्द में 'पंचवटी प्रसग' कविता लिखी। पंचवटी में सीता, राम, लक्ष्मण और शूर्पणखा का संवाद ! ज्ञान और भक्ति की चर्चा, लक्ष्मण के त्याग और सेवा-भाव की प्रशंसा। कुछ अंश लिख लेने के बाद उन्होने उसे महावीर-प्रसाद द्विवेदी के पास सम्मति के लिए भेजा। द्विवेदीजी छन्द देखकर चकराये, फिर भी रचना में भक्तिभाव व्यंजित किया गया था। उन्होंने प्रोत्साहन देते हुए, साथ ही किंचित् सतर्कता से, उत्तर दिया, "हिन्दीवालों मे ९० फी सदी इस छन्द को अच्छी तरह पढ़ भी न सकेंगे। पर चीज नई है। अगर इसका आदर हो तो आगे भी इसी छंद में कुछ लिखिएगा। मुझे तो रचना ललित और भावपूर्ण जान पड़ती है। अव-शिष्टांश मुझे भेजने की जरूरत नही। ठीक है। पूरी कर डालिये।"

द्विवेदीजी को रचना बहुत आकर्षक लगती तो शेष भाग भेजने के लिए जरूर कहते, पर उन्होंने बाकी कविता भेजने के लिए साफ मना कर दिया। "अगर इसका आदर हो," आदि शब्दावली से उन्होंने अपने बचाव का रास्ता भी निकाल लिया।

सूर्यकान्त ने कविता पूरी कर डाली। ज्यादातर कविता मे धर्म और नीति के उपदेश, अलंकारहीन सीधे-सादे गद्यात्मक वाक्य ही थे। पर कविता के तीसरे भाग मे शूर्पणखा के आते ही छंद, भाव, भाषा, सब जैसे एक साथ बदल गये :

देव दानवों ने मिल
मथकर समन्दर से निकाले थे चौदह रत्न;
सुनती हूँ—

रंभा और रमा ये दोनो नारियाँ भी निकली थीं;
कहते लोग, सुन्दरी है;
किन्तु मुझे जान पड़ता—
सृष्टिभर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य-भाग खीचकर विधाता ने
भरा है इस अंग मे,—
प्यार से—
अन्यथा उस बूढे विधि शिल्पी की कँपती हुई अँगुलियाँ बिगाड देतीं
चित्र यह—
धूल मे मिल जाती चतुराई चित्रकार की।

ऐसा प्रवाह अब तक की उनकी किसी रचना मे न आया था। गिरीशचन्द्र घोष की नाटकीयता और पद्माकर के कवित्तो का प्रवाह सूर्यकान्त के मुक्तछंद मे घुल-मिल गया। शूर्पणखा की भौंहों का वर्णन करते हुए उन्हे इन्द्रजाल की पोथी याद आई,

छूटते हैं जिनसे आदिरस के सम्मोहन-शर
वशीकरण-मारण-उच्चाटन भी कभी-कभी।

कलकत्ते की अभिनेत्रियो-नायिकाओ की भौंहों से कैसे सम्मोहन-शर छूटते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव उन्हे हो गया था। 'पंचवटी प्रसंग' के लक्ष्मण वह स्वयं हैं; त्याग और सेवा अब भी उनका आदर्श है। यदि वह भी शूर्पणखा के नाक-कान काट लेते तो रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के पदचिन्हो पर चल सकते। पर नारी-सौन्दर्य मे उनका मन रमता था। संन्यासियो के आदर्श मे उनकी आस्था डिग चुकी थी।

इस समय रवीन्द्रनाथ की कविताएँ उन्हे नये सिरे से आकर्षित करने लगीं। सुन्दरी उर्वशी—नग्न-कान्ति, सुरेन्द्रवन्दिता—कितनी भव्य है। विजयिनी, सरोवर मे स्नान करती हुई, स्तनों से हंसो को दुलराती हुई, स्नान के बाद सीढ़ियो पर चरण-चिन्ह आँकती हुई, सूर्य का प्रकाश उसके स्तनो पर पड़ता हुआ, लावण्यपाश मे बँधा यौवन! "रात्रे और प्रभाते" में दो प्रेमियो का मिलन, मधुयामिनी की ज्योत्स्ना, फेनिलोच्छल यौवन-सुरा, पान चुम्बनभरा सरस बिम्बाधरे। प्रात: सुप्तोत्थिता का सौन्दर्य-वर्णन, आहा जागि पोहालो विभावरी, क्लान्त नयन तव सुन्दरी। चौरपंचाशिका की सुप्तोत्थिता मदनविह्वलितालसांगी विद्या भी याद आई। और सूर्यकान्त ने निषेध भावनाएँ दूर करके एक कविता लिख डाली :

विजन में वन-वल्लरी पर, सोती थी—
सुहाग-भरी, स्नेह-स्वप्न-मगन, अमल-कोमल-तनु—
तरुणी जूही की कली,—
दृग बन्द किये,—शिथिल,—पत्राङ्क बीच।

और आगे लिखा :

सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली—
मसल दिये गोरे कपोल गोल।

नाम रखा 'जूही की कली'। यह कविता उन्होंने शिवपूजन सहाय और महा-

देवप्रसाद सेठ को सुनाई। इन मित्रों को उसमें ऐसा लालित्य दिखाई दिया जैसा उस समय की खड़ी बोली हिन्दी कविता में दिखाई न देता था। वे सूर्यकान्त की प्रतिभा के कायल हो गये। शिवपूजन सहाय ने 'जूही की कली' अपने 'आदर्श' नामक पत्र में प्रकाशित की। 'आदर्श' अपने नाम के अनुरूप धर्म और नीति के उपदेश देने वाला पत्र था। सन् '२२ के जाड़े में यह पत्र निकला था, सन् '२३ का वसन्तोत्सव देखने के बाद बन्द हो गया। कविता पत्र के उपयुक्त न थी, पर न छपने से 'आदर्श' में ही छपना अच्छा था। अप्रैल सन् '२३ की 'माधुरी' में शिवपूजन सहाय की भेजी हुई 'अधिवास' कविता भी छप गई।

सूर्यकान्त ने पहले जो कविताएँ लिखी थीं, उनकी शब्द-योजना में सादगी थी, एक कसाव था, बोलचाल के धरातल का स्पर्श था :

जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा;
पर न कर चूँ भी कभी पाया यहाँ।

विषय था जीवन का विषाद और वेदान्त। अब वह उस दुःख को भुला देना चाहते थे। निषेध की सीमाएँ तोड़कर वे जीवन का सुख भोगने की ओर अग्रसर हुए। सुख की नयी अनुभूति के साथ कविता में उल्लास का स्वर सुनाई देने लगा। वह अब शब्दों के सौन्दर्य और ध्वनि पर मुग्ध थे, जिस संस्कृत-प्रचुर शब्दावली को दूर रखते आये थे, अब पूरे वेग से उसकी ओर खिंचे। अनुप्रास, ध्वनियों के आवर्त उन्हें मोहने लगे।

'निराला' ने एक कविता लिखी 'तुम और मैं'। इसमें भाषा का जो नया मृदंग हाथ लगा था, उसे खूब जोर से उन्होंने बजाया। आधुनिक हिन्दी कविता में ऐसी गम्भीर ध्वनि वाली मधुर पदयोजना इससे पहले न हुई थी :

तुम तुङ्ग हिमालय-शृंग
    और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
    और मैं कान्त-कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान-घन-अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

ब्रह्म और जीव का रूपक, शेली की 'स्काइलार्क' और नजरुल की 'विद्रोही' रचनाओं की तरह यहाँ भी उपमानों की भरमार। सारी कविता में वक्तृत्व-कला का ऐसा प्रवाह कि सुनने वाले शब्दों की ध्वनि पर ही मुग्ध हो जायें, वेदांत-ज्ञान खोजने का कष्ट न उठायें।

पर ब्रह्म-माया की चर्चा में सूर्यकान्त शायद पहले कवि थे, जिन्होंने ब्रह्म को सुरापान-घन-अंधकार कहा था, माया को मतवाली भ्रांति। वह अपनी विचित्र द्वंद्वात्मक तर्क-पद्धति से जीवन के नये अनुभवों का वेदांत-ज्ञान से मेल करा रहे थे। ब्रह्म-सुरापान-घन-अंधकार ही नहीं था, वह मदन पंचशर हस्त भी था और माया मुग्धा नायिका। शृंगार और उल्लास के अनेक भाव उपमानों द्वारा उन्होंने कविता में गूँथ दिये थे।

इस नये साहित्यिक विकास की दिशा में सूर्यकान्त जितना ही आगे बढ़े, उतना

ही संन्यासियों से दूर होते गये। उनके व्यवहार मे उच्छृंखलता आने लगी; यह उच्छृंखलता पहले वह २३, शंकर घोष लेन के वाहर छोड़ आते थे, अव उसे अन्दर भी ले आने लगे। कलाकार पर लोक-व्यवहार के नियम लागू नही होते, जीवन मे तरह तरह के अनुभव प्राप्त किये विना कोई सच्चा कलाकार नही हो सकता, माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द्र घोष कितनी शराव पीते थे, फिर भी कितने वड़े कलाकार थे। सूर्यकान्त के मित्रो में इन वातो की वड़ी चर्चा होती थी। उनके कुछ साथी वैस-वाड़े के थे; वे व्यापारी थे, धनी थे और अपना शौक पूरा करने के लिए रुपए फूँक सकते थे; कुछ महिपादल के मित्र थे, जो अव कलकत्ते मे थे, जिनकी आर्थिक स्थिति वहुत अच्छी नही थी, पर जो सूर्यकान्त के साथ हर व्यसन मे साथ रहते थे। शिवपूजन-सहाय और महादेवप्रसाद सेठ पुराने आचार-विचार के सद्‌गृहस्थ थे। कलकत्ते मे अकेले रहते थे, छठे-छमाहे घर हो आते थे। वे सूर्यकान्त के व्यसनो को कलाकार की विशेपता समझकर तरह देते थे।

सूर्यकान्त कभी सन्यासियो के कमरे मे चप्पले पहने चले आते; कमरे मे चप्पलें उतारकर एक तरफ वैठ जाते। कोई संन्यासी चुपचाप उठकर उनकी चप्पलें वाहर रख आता। कभी अपना विद्रोही भाव जताने के लिए वह संन्यासियो के सामने सिगरेट सुलगा लेते थे और धुआँ उड़ाते रहते। कभी वह स्वामी माधवानंद से वहस करते, रवीन्द्रनाथ की रचनाओ मे दर्शन-सम्वन्धी कैसी जवर्दस्त भूलें है। वह अपनी रचनाओ का महत्त्व भी उन्हे समझाने का प्रयत्न करते। 'सरस्वती', 'माधुरी', 'प्रभा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओ में उनकी एक-एक दो-दो रचनाएँ छप चुकी थी। इसी वल पर वह संन्यासियो से कहते, मेरी प्रतिभा रवीन्द्रनाथ ठाकुर से घटकर नही है। संन्यासी हँसने लगते। इस पर सूर्यकान्त चिढकर कहते, यदि मैं भी प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर का नाती होता, तो आप लोग मानते कि मेरे अंदर महाकवि की प्रतिभा है।

वालकृष्ण प्रेस मे आने वाले एक और सज्जन से इनका परिचय हुआ। सव लोग इन्हें मुन्शीजी-मुन्शीजी कहा करते थे, नाम था नवजादिकलाल श्रीवास्तव। तेल-सावुन की एक प्रसिद्ध उद्योग-संस्था थी—भूतनाथ। मुन्शीजी इसके मैनेजर थे। उर्दू का अच्छा ज्ञान था, हिन्दी-प्रेमी थे, वँगला भी जानते थे, कारोवार मे अत्यन्त कुशल थे। महादेव सेठ से दोस्ती थी। वालकृष्ण प्रेस के लिए भूतनाथ कार्यालय से तीन-चार हजार रुपये का काम ले आते थे। दूसरे छापेखानो से कमीशन मिलता था; वह सव त्याग कर दोस्ती मे, कमीशन लिये विना ही, वह सारा काम महादेव वावू के प्रेस से कराते थे। सूर्यकान्त से उनकी भी मैत्री हुई। जितना वह इनकी कविता से प्रभा-वित हुए, उससे ज़्यादा इनके व्यक्तित्व से। सूर्यकान्त युगप्रवर्तक कवि है, यह उन्होने सहर्ष स्वीकार किया। युगप्रवर्तक कवि की एक भी कविता-पुस्तक अभी न निकली थी। सवसे आवश्यक काम यह था कि उनका कविता-संग्रह प्रकाशित किया जाय। प्रेस घर का था, कागज़ सस्ता था, प्रकाशन मे कोई कठिनाई न थी। मुन्शीजी ने कहा, प्रकाशक की जगह मेरा नाम दे सकते है, छापने का काम महादेव वावू करें। एक ही कठिनाई थी, सूर्यकान्त ने अव तक जितनी कविताएँ लिखी थी, वे एक साधारण-से

कविता-संग्रह के लिए भी काफी नही थी।

पृष्ठ-संख्या से क्या ? कविता मे वजन होना चाहिए। सूर्यकान्त ने जोड-बटोर कर नौ कविताओं की प्रेस-कापी तैयार की। काफी सोच-विचार के वाद नाम रखा 'अनामिका'। नाम की व्याख्या करने के लिए यह पद उद्धृत किया :

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे
कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावात्
अनामिका सार्थवती बभूव।

महाकवियों की गिनती शुरू हुई तो कनिष्ठिका उँगली पर कालिदास गिने गये। फिर उतना वड़ा कवि पैदा नही हुआ, इसलिए अनामिका सार्थवती हुई। ध्वनि यह कि कालिदास के वाद समान प्रतिभा वाला यह दूसरा कवि पैदा हुआ है जिसने यह अर्थवती अनामिका पुस्तक रची है।

छोटे आकार मे पुस्तिका छप गई; कुल पृष्ठ-संख्या चालीस। सूर्यकान्त ने अब तक वहुत थोड़ी कविताएँ लिखी थीं, इनमें सभी संग्रह मे प्रकाशित करने लायक उन्हें जँची नहीं। 'प्रभा' में 'जन्मभूमि' वाली उनकी जो पहली कविता छपी थी, उसे उन्होने संग्रह में न दिया। ऐसी कविताएँ कम थी जो किसी-न-किसी पत्रिका में छप न चुकी हो। 'अध्यात्म-फल' 'प्रभा' में, 'माया' और 'जलद' 'समन्वय' में, 'अधिवास', 'तुम और मैं' 'माधुरी' में तथा 'जूही की कली' 'आदर्श' में छप चुकी थी। भले ही सूर्यकान्त की इच्छानुसार उनकी कविताएँ 'सरस्वती' में न छपी हों, पर अन्य पत्र भी उन्हें नहीं छापते, यह शिकायत उन्हे न हो सकती थी। संग्रह की सबसे लंबी कविता 'पंचवटी प्रसंग' थी। यह उन्होने हाल में लिखी थी। 'सच्चा प्यार' और 'लज्जित' दो कमज़ोर कविताएं थी; कविताओं की कमी के कारण उन्हें संग्रह मे जगह दी।

महादेवप्रसाद सेठ ने भूमिका लिखी। सूर्यकान्त त्रिपाठी उनके मित्र हैं, उनके वारे में विशेष लिखना उचित न होगा, इसलिए 'पंचवटी प्रसंग' पर द्विवेदीजी की सम्मति उद्धृत करते हैं। आगे लिखा : "हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगा और दावे के साथ कहूँगा कि त्रिपाठीजी ने 'पंचवटी प्रसंग', 'अधिवास' तथा 'जूही की कली' नामक कविताओं को लिखकर हिन्दी के पद्य-साहित्य में एक अभूतपूर्व नई शैली का समावेश किया है और यदि हिन्दी का कवि-समाज इस शैली का आदर और अनुगमन करेगा तो मातृभाषा का वड़ा उपकार होगा और उसके लालित्य में एक नई बात पैदा हो जायगी।" अन्त में उन्होने गालिव का यह शेर उद्धृत किया :

अदाये खास से ग़ालिब हुआ है नुक्तः सरा
सेलाये आम है यारान नुक्तदां के लिये।

पुस्तक मे साहित्याचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मति भी उद्धृत की गई—"आपकी पुस्तक एकदम नयी है, पर उत्तम है, उक्तियां भी कही-कहीं वडी ही मधुर हैं। मैं इस पुस्तक को देखकर प्रसन्न हुआ हूँ।" २३, शंकरघोप लेन, कलकत्ता से नवजादिकलाल श्रीवास्तव द्वारा 'अनामिका' प्रकाशित हो गई।

सूर्यकान्त अब भी संन्यासियों के साथ रहते थे, 'समन्वय' के लिए भी लिखते थे, पर उनका अधिक समय महादेवप्रसाद सेठ आदि साहित्यिक मित्रों के साथ बीतने लगा। भारतीय राजनीति और हिन्दी साहित्य की गतिविधि पर अक्सर बातचीत होती। बँगला में क्या हो रहा है, हिन्दी में क्या नहीं हो रहा है, इस पर तीनों मित्रों की निगाह थी। एक साप्ताहिक पत्र के बिना राजनीति और साहित्य को नई दिशा में नहीं मोड़ा जा सकता। महादेव बाबू ने मुंशीजी से प्रस्ताव किया, भूतनाथ का काम छोड़ दीजिये, यहीं आ जाइये, प्रेस और प्रकाशन की जिम्मेदारी सँभालिये, सबके साथ मिलकर साहित्य-सेवा कीजिये। मुंशीजी के साथ बड़ा परिवार था। गरीब घर में पैदा हुए थे। डाकखाने में चिट्ठीरसा की नौकरी से शुरूआत की थी। अब 'भूतनाथ उद्योग' के मालिक किशोरीलाल चौधरी उन्हें बहुत मानते थे। कारखाने में स्याह-सफेद जो चाहे करें, मुंशीजी को पूरा अधिकार था। मित्र कहते थे, आप तेल-साबुन-इत्र के राजा हैं; वह अपने मित्रों को इसकी सौगात बाँटते जिसमें इत्र का खास हिस्सा सूर्यकान्त के लिए होता था।

भूतनाथ कार्यालय से मुंशीजी को सौ रुपये माहवार मिलते थे। उस समय को देखते बहुत थे। सूर्यकान्त को पचास रुपये पर कोई रखने को तैयार न था। भूतनाथ के अलावा मुंशीजी दूसरी फर्मों में भी अवकाश निकालकर चिट्ठी-पत्री का काम कर आते थे यानी सेठों की हिन्दी-उर्दू की चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाते और उनके जवाब लिखते। इससे कुछ अतिरिक्त आमदनी हो जाती थी। कलकत्ते से एक पत्र निकला था 'वीर भारत'। मुंशीजी इसके संपादक रह चुके थे। शिवपूजन सहाय से उनकी दोस्ती तभी की थी। दोनों एक ही बिरादरी के थे—कायस्थ; एक ही जनपद के, भोजपुरी बोलते थे। भोजपुरी क्षेत्र आधा बिहार, आधा उत्तरप्रदेश में है; शिवपूजन सहाय बिहार के थे, नवजादिकलाल उत्तरप्रदेश के; बोली दोनों की एक थी। महादेवप्रसाद सेठ की बात मानकर, अपना पुराना धन्धा छोड़कर मुंशीजी २३, शंकरघोष लेन में आकर रहने लगे। महादेव बाबू ने कुंजियों का गुच्छा उनके सामने रख दिया और कहा, लीजिये, कारोबार सँभालिये, हम अपना समय अध्ययन में लगायेंगे। मुन्शीजी ने कहा, यह चाभियों का गुच्छा हम लोगों की दोस्ती के लिए कहीं घातक न हो!

शिवपूजन सहाय और सूर्यकान्त वहाँ पहले ही रहते थे। मुंशीजी के आ जाने से महादेवप्रसाद सेठ समेत चार साहित्यकार जुट गये। पत्र निकालने की योजना बनने लगी। एक दिन मुंशीजी बाज़ार से बँगला साप्ताहिक 'अवतार' की एक प्रति खरीद लाये। यह हास्यरस का पत्र था। सोचा कि ऐसा ही पत्र हिन्दी में निकाला जाय। मुंशीजी ने नाम रखा 'मतवाला'। तै हुआ कि मुंशीजी व्यंग्य-विनोद लिखेंगे, सेठजी सम्पादकीय लिखेंगे, सूर्यकान्त कविताएँ और आलोचनाएँ देंगे, शिवपूजन सहाय गद्यलेख आदि देंगे तथा प्रूफ देखेंगे। आवरण-पृष्ठ के लिए चारुबाबू नाम के चित्रकार ने नटराज का चित्र बनाया। सूर्यकान्त ने पत्र के लिए मोटो तैयार किया—

अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।

ये पंक्तियाँ नटराज के चित्र के नीचे छपीं। रविवार, श्रावणी पूर्णिमा, २६ अगस्त सन् २३ को 'मतवाला' का प्रथम अंक प्रकाशित हो गया।

मतवाला के प्रथम अंक के मुखपृष्ठ पर दो कविताएँ छपीं; दोनों ही 'रक्षा-बन्धन' पर, पहली के लेखक 'पुराने महारथी', दूसरी के 'निराला'। पहली कविता ब्रजभाषा में थी और उस पर बंगाल के वैष्णव कवियों की पद-योजना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता था—

परिमल युत मृदुमंद मलय वह गुञ्जन छन छन मत्त मधुपगन,
उठत वीन झंकार चतुर्दिसि चढ़्यो मदन जनु करन कतहुँ रन।
घन-पिय-अधरन चूम चाँदनी, अलस चुवत तन सुधा-स्वेदकन,
प्रकृति-पुरुष कर मिलन मनोहर अति सुखकर यह 'रक्षाबन्धन'॥

'रक्षाबन्धन' के अवसर पर मदनदेव का स्मरण, प्रकृति-पुरुष के मिलन का वर्णन कुछ विचित्र अवश्य था पर कविता की शब्द-योजना सुन्दर थी।

दूसरी कविता 'निराला' नाम के साथ छपी—एक कवित्त और अन्त में द्विपदी।

बढ गई शोभा सखी सावनी सलोनी हुई
बड़े भाग्य भारत के गये दिन आये फिर!
'रक्षा' से बँधे हैं भारतीयों के कोमल कर;
मंगल मनाती क्यों न, रहा क्यो कलेजा चिर।
तारों इन सुनहलो के आगे सितारे मात
अथवा प्रकाश रहा बादल दलों से घिर?
देख करतूत ऐसी वीरवर सपूतों की
भारत का गर्व से उठेगा या झुकेगा सिर?
कङ्गालों का कत्ल अहो इस 'राखी' के रंग में छिपा,
भूत, भविष्यत, वर्तमान है दीनों का तीनों लिपा!

दूसरे अंक मे 'पुराने महारथी' की कविता फिर छपी—एक कुण्डलिया। शीर्षक 'कृष्ण महातम', भाव राजनीतिक; 'काले' हाथ पसारते हैं पर गोरों से धेला भर भी प्रेम नही मिलता। 'निराला' नाम के साथ कोई कविता न छपी। तीसरे अंक में एक कविता छपी—'गये रूप पहचान'। इसका रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध न था।

सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान।
मिटी मोहमाया की निद्रा गये रूप पहचान।

इसमें आगे यह राजनीतिक उद्बोधन था :

चूम चरण मत चोरो के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू,
झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान।

कविता के साथ नाम था—'निराला'।

चौथे अंक मे 'निराला' नाम के साथ कोई कविता न छपी; पाँचवें अंक मे उस नाम के साथ 'दिव्य प्रकाश' रचना छपी; दलितो के प्रति सहानुभूति, रहस्यवाद का स्पर्श। इसके बाद हर अंक में 'निराला' नाम के साथ उस ढंग की कविताएँ निकलने लगी जिन्हे छायावादी कहा जाता था। अठारहवें अंक (२० दिसम्बर सन् '२३ के 'मतवाला') मे 'जूही की कली' कविता छपी—फुटनोट मे सूचना कि 'अनामिका' संग्रह से उद्धृत है—लेखक का नाम प्रकाशित हुआ—पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

'मतवाला' के सम पर 'निराला' नाम रख दिया गया था, किसी विशेष विचार से नहीं, 'पुराने महारथी' की तरह यह भी एक नाम था। लेखक थोड़े थे, उन्हीं को पूरे अंक की सामग्री तैयार करनी थी। सूर्यकान्त ने 'कसौटी' स्तम्भ मे आलोचना लिखी, नाम दिया—'हथियार'। 'मतवाले की चाबुक' लिखी, लेखक का नाम दिया—श्रीमान गरगज सिंह वर्मा, साहित्यशार्दूल। एक कहानी लिखी 'क्या देखा?', लेखक का नाम दिया—जनाबआली। ग्यारहवें अंक मे 'देवि! कौन वह?' काफी गहरे रंग की छायावादी कविता छपी, पर इसके साथ सूर्यकान्त ने नाम दिया—'गौहर'। इन तमाम छद्मनामों मे एक नाम था 'निराला'। शिवपूजन सहाय, नवजादिकलाल आदि अन्य लेखक भी साधारणतः छद्मनाम से ही लिखते थे। जहाँ तीन से तेरह लेखकों का काम लेना हो—यह दिखाने के लिए कि पत्र को बहुत-से लेखकों का सहयोग प्राप्त है—वहाँ छद्मनामों के बिना काम चल ही न सकता था। 'निराला' कवि के उपनाम से अधिक छद्मनाम था।

पर कुछ ही अंको के बाद 'निराला' की अपनी शैली निखर उठी। कवित्त और गीत-रचना की पद्धति छोड़कर वह तुकान्त मात्रिक मुक्तछन्द मे कविताएँ लिखने लगे। ये रचनाएं कविताप्रेमियो को बहुत पसन्द आईं और सूर्यकान्त ने तै किया कि अब असली रूप में प्रकट हो जाना चाहिए। 'जूही की कली' के साथ उन्होंने पूरा नाम प्रकाशित कर दिया। 'निराला' अब छद्मनाम न रहकर उनका उपनाम हो गया। उनके मित्र उन्हे पण्डितजी, कुछ लोग त्रिपाठीजी, कुछ बुजुर्ग सूर्यकान्त और कुछ पुराने परिचित उन्हे सूर्यकुमार कहते थे, पर साधारण हिन्दी पाठकों मे उनका 'निराला' नाम ही सबसे अधिक लिया जाने लगा। उनके व्यक्तित्व के साथ कुछ खास उपयुक्त ढंग से यह नाम चिपक गया।

निराला की प्रसिद्धि का समय छायावादी कविता का अभ्युदय-काल था। काशी के जयशंकर प्रसाद, उम्र मे निराला से दस साल बड़े, 'इन्दु' में अपनी कुछ छायावादी रचनाएँ प्रकाशित कर चुके थे। 'सरस्वती' मे छायावादियो को जगह न मिलती थी; इसलिए प्रसाद ने 'इन्दु' पत्र का प्रकाशन आरंभ किया था। सुमित्रानंदन पंत प्रयाग में स्वदेशी आंदोलन के दिनो अपना अध्ययन-क्रम भंग करने के बाद कविताएँ लिखने लगे थे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी छायावाद की छूत से 'सरस्वती' को बचाते रहे पर पंतजी इलाहाबाद ही मे थे जहाँ से 'सरस्वती' निकलती थी। इलाहाबाद के शिक्षित जनों में पंतजी की लोकप्रियता बढ़ रही थी; इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में छात्रो के अलावा अमरनाथ झा आदि कुछ प्रभावशाली प्रोफेसर उनके प्रशंसक थे। 'सरस्वती'

में पंतजी की रचनाएँ छपने लगी।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार के साथ तरुण देशभक्तों ने अपनी संस्कृति और साहित्य पर अभिमान करना सीखा। बीसवी सदी में जिस कवि ने विश्व-साहित्य में भारत का माथा ऊँचा किया था, वह थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर। उनकी रचनाओं के अनुवाद भारत की प्रायः हर भाषा में हो रहे थे। हिन्दी के अनेक कवि-लेखक-पाठक मूल बँगला मे उनकी कविता पढ़कर उसका रस लेते थे। रवीन्द्रनाथ में बँगला के वैष्णव-कवि, कालिदास, उपनिषद्, शेली आदि अनेक भारतीय और विदेशी कवियों और चिन्तनधाराओं का प्रभाव घुलमिलकर एक हो गया था। हिन्दी कवियों पर भी उनका प्रभाव पड़ा। अब तक मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि हिन्दी के श्रेष्ठ और प्रतिनिधि कवि माने जाते थे। अब इनकी लोकप्रियता पहले जैसी न रह गई; यद्यपि वह समाप्त नहीं हुई। मैथिलीशरण 'साकेत' लिख चुके थे। एक तरह से उनका श्रेष्ठ काव्य-काल समाप्त हो चुका था। सन् '२० के राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार के साथ ही जैसे पुराने ढंग के राष्ट्रीय कवियों का युग समाप्त हो गया। इसका बहुत बड़ा कारण था रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भारतव्यापी प्रभाव।

प्रसाद का 'आँसू' अभी प्रकाशित हुआ था। सन् '२३-२४ में छायावादी कविता को प्रतिष्ठित करने वाले दो प्रमुख कवि थे—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानन्दन पन्त। अभी ऐसे लोगों की संख्या कम न थी जो समझते थे कि कविता की भाषा ब्रजभाषा ही रहनी चाहिए, जो समस्यापूर्ति और नायिकाभेद की परम्परा को काव्य-साहित्य का चरम विकास मानते थे। निराला और पन्त इन दोनो कवियों ने कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली को पूरी तरह प्रतिष्ठित कर दिया; अनेक ब्रजभाषा के प्रेमियों ने स्वीकार किया कि इनकी रचनाएँ अक्सर पुरानी कविता के टक्कर की होती हैं।

सालभर तक 'मतवाला' में निराला की कविताएँ छपती रही। इनमें बहुत-सी सामाजिक विषयों पर थीं जैसे 'भारत की विधवा', 'भिक्षुक' और 'हमारी बहू', कुछ प्रकृति-सम्बन्धी—'संध्या सुन्दरी', 'धारा' आदि, कुछ शृंगार-परक जैसे 'प्रार्थना' (बन्द तुम्हारा द्वार), कुछ रहस्यवाद का स्पर्श लिये हुए जैसे 'भर देते हो', कुछ प्रतीको के माध्यम से मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों पर कवि के भाव प्रदर्शित करती थीं जैसे 'बादल-राग' वाली छह कविताएँ। सभी कविताएँ एक ही स्तर की नहीं थीं, विशेष रूप से वर्णिक मुक्तछन्द में उन्होंने 'खँडहर के प्रति', 'दिल्ली', 'स्वाधीनता पर' आदि जो कविताएँ लिखीं, वे मात्रिक छन्दवाली रचनाओं के मुकाबले कमजोर थीं। प्रायः हर अंक में उनकी कविता छपती थी, कभी किसी अंक में दो कविताएँ भी छप जाती थी, इसलिए कविताओं का स्तर कहीं ऊँचा हो, कही नीचा, यह स्वाभाविक था।

अक्तूबर सन् '२३ मे राय कृष्णदास और मैथिलीशरण गुप्त कलकत्ते आये। निराला ने 'अनामिका' भेंट की और वर्णिक मुक्तछन्द की कुछ रचनाएँ सुनाईं। इस

भेंट का हाल निराला ने अवधी में महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखा : "८मी के दिन बाबू मैथिलीशरण ते भेंट भै, राय कृष्णदास के साथ आये रहैं। ३—४ दिन कउनव माड़वारी की कोठी मं रहे रहैं। स्वभाव के तो बड़े अच्छे हैं। एक-एक 'अनामिका' दूनौ जनेन का दीन। दुसरे दिन हियाँ प्रेस मं मैथिलीशरण आये, और छन्द का नाव पूछेन। तब पढ़िकै सुनावा। प्रसन्न खूब भे। कहेन पहिले हे रचना बड़ी अच्छी जानि परी मुलो छन्द समुझि मं नही आवा। हम कहा, हमरी समझ मं यहि छन्द ते तुम्हरे वीराङ्गना के अनुवाद के छन्द मं बहुत थ्वारै फर्क है; वह वेतुका कवित्व छन्द है औ यहि माँ कतो कवित्व छन्द की ३-४, कतों १-२, कतों १-३ लाइन आवति है। महादेव वावू हमरे परिचय मं तुम्हार संवन्ध जोरेन तो मैथिलीशरण कहेन कि हमका तो वई वनायन है। यही तना की वहुतेरी वातै होती रही। हमारि इच्छा है, अनामिका एक दई तुमका पढिकै सुनाई।"[४]

'मतवाला' में प्रकाशित रचनाओ द्वारा, कवियों और कविता-प्रेमियो के वीच अपनी रचनाओ के पाठ द्वारा तथा 'अनामिका' की विक्री और वितरण द्वारा निराला नई धारा के एक प्रतिनिधि कवि के रूप मे विख्यात हो चले थे। 'मतवाला' के पहले अक में ही 'अनामिका' का ज़ोरदार विज्ञापन निकला था, "इस कविता पुस्तक ने हिन्दी संसार में खलवली मचा दी है! क्योकि इसके प्रतिभाशाली लेखक खड़ी वोली के कवियों की तरह सनातन भेडियाधसान के पीछे नही पड़े हैं वल्कि इन्होंने अपने लिये एक ऐसा मुक्त मार्ग निश्चित किया है जिस पर केवल वही चल सकता है जो स्वभावत: भावुक कवि है और जिसके मुख से अनवरत धारावाहिक रूप से ललित भावमयी कविता निकलती है तथा स्वच्छन्द भावावेश मे मग्न होकर जो अपने साथ-ही-साथ पाठको को भी कल्पना की अगाध तरंगिणी मे दवोच देता है।" विज्ञापन-लेखक—संभवत: मुन्शी नवजादिकलाल—ने "मतवाले की वहक" के स्टाइल में आगे लिखा, "आप यदि विना हवाई जहाज़ के कल्पना के मेघमुक्त आकाश मे उडना चाहते हैं तो इस पुस्तिका को अवश्य पढिये।" महावीरप्रसाद द्विवेदी और चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मतियो के सहारे विज्ञापन-लेखक ने थोडा अतिशयोक्ति का सहारा लेते हुए लिखा, "उन विद्वानो की राय में यह पुस्तक हिन्दी मे युगातर उपस्थित करने वाली है।"

सन् '२३ की शरद् मे 'समन्वय' ने 'अनामिका' की आलोचना प्रकाशित की। साथ मे किसी लेखक का नाम नहीं प्रकाशित हुआ। मुक्तछन्द के वारे में आलोचक ने कहा, "हमे तो यह नयापन वहुत अच्छा जंचता है। आशा है कि हिन्दी के रस-मर्मज्ञ कवि और विद्वान् इस ओर समुचित ध्यान देंगे।" इसके वाद वडी सूझ-वूझ से इस आलोचक ने वँगला में मुक्तछन्द के प्रचलन का उल्लेख करते हुए कहा, "वंगाल के नाट्य-सम्राट् महाकवि गिरीशचन्द्र ने वड़ी खूवी से ऐसे छन्दो को अपनाया है, जिसमें भाव के अनुसार पंक्तियाँ तो छोटी-वड़ी होती हैं, पर पढ़ने मे सभी सुन्दर होती है और इसी से छन्दो मे एक अनोखी स्वाभाविकता पायी जाती है। हमारे हिन्दी के नाट्यकार यदि अपनी प्रतिभा के अनुसार इस ढंग से छन्दों का उपयोग करेंगे तो

एक कठिन समस्या अनायास ही हल हो जायगी। इस दृष्टि से आलोच्य पुस्तक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है।" 'समन्वय' और 'मतवाला' एक ही जगह छपते थे, एक ही जगह से प्रकाशित होते थे, दोनों के कार्यकर्ता एक ही जगह रहते थे। 'अनामिका' की आलोचना लिखने वाले ने निराला से मुक्तछन्द के वारे में जो कुछ सुना था, वह सब—नाटकों मे गिरीशचन्द्र द्वारा इसका प्रयोग, हिन्दी नाटकों में इसके व्यवहार से युगांतर की सम्भावना आदि—उसने लिख दिया।

'मतवाला' की ग्राहक-संख्या वढ रही थी, इसके साथ निराला की ख्याति चारों ओर फैल रही थी पर इससे उन्हें सन्तोष न था। 'मतवाला' आखिर हास्यरस का पत्र था; गम्भीर साहित्यिक पत्रिकाएँ तो 'सरस्वती' और 'माधुरी' थीं। इनमें 'माधुरी' ने तो निराला की दो-एक कविताएँ छापी भी थीं, पर 'सरस्वती' का दरवाजा उनके लिए वन्द था। 'मतवाला' मे उन्होंने 'सरस्वती' और 'माधुरी' के सम्पादकों की कटु आलोचना शुरू की। अभी तक द्विवेदीजी से मधुर सम्वन्ध वने हुए थे। 'मतवाला' निकलने के लगभग दो महीने बाद निराला ने उन्हें लिखा, " 'मतवाला' की कविता और समालोचना पढिकै लिख्यौ। भूल कतो होति होई तो सुधारव। 'निराला' की कविता मे कहाँ का करैक चही लिख्यौ। यह सम्मति हमरेहे लगे रही।"[5] इस विनम्रता मे शिष्टाचार अधिक था, वास्तविक विनम्रता कम। पद्य मे तो द्विवेदीजी को गुरु मानने का सवाल न था, गद्य में भी अव निराला अपने को आचार्य समझने लगे थे। 'मतवाला' में 'सरस्वती' की आलोचना पढकर द्विवेदीजी नाराज हुए। यद्यपि अव वह उसके सम्पादक न थे, फिर भी उस पर उनकी ममता थी, और वह उसकी आलोचना वर्दाश्त न कर सकते थे। उन्होंने 'मतवाला' का एक अंक रँग डाला; उसकी तमाम अशुद्धियाँ दिखाकर उसे निराला के पास भेज दिया। निराला ने 'सरस्वती' के प्रति द्विवेदीजी की ममता को अयुक्तिपूर्ण और 'मतवाला' की नीति को सही मानते हुए उन्हे लिखा :

" मतवाला कै संख्या दीख। सरस्वती सम्पादक के नोटन मं, न समुझि सकेन, भूलैं काहे नहिन। कारण लिखि देत्यो तो समुझि जाइत। अवै तो मतवाला की समालोचना के पुप्ट कारण से भूलै जानि परत है।

"सरस्वती-सम्पादक के विपय मं लिखै वैठेन तो हमहूं ५।६ पृष्ठ लिखि डारा। मुलो पीछे जव जाना कि तुम्हार समय अकारण नष्ट होई तव फारि डारा। याकन कहा, 'द्विवेदीजी का प्रत्यक्ष नहिन तो का भा सरस्वती ते परोक्ष सम्वन्ध तो है; उइ अपनी विदाई मं यह वात स्वीकार करि चुके हैं। अतएव सरस्वती क पक्ष उइ लेवे करिहैं। औ वहिका वई वनायन है तो अपने रहत कव उइ वहिकै उल्टी समालोचना देखि सकति हैं ? कुछो होय हमका युक्ति ते काम। वात युक्तिपूर्ण होई तो चित्त मं वैठि जाई, न होई, अलग ह्वइ जाई।"[6]

अगले महीने उन्होने 'सरस्वती' की आलोचना न करने का आश्वासन दिया, साथ ही यह भी वता दिया कि 'सरस्वती'-सम्पादक ने न उनकी कविता छापी, न उनके पत्र का उत्तर दिया और यह व्यवहार अपमानजनक था। यह पत्र, कुछ और औप-

चारिक ढँग से, उन्होने खड़ी बोली मे लिखा, "सेवा मे अभी-अभी जो पत्र भेजा गया, भय है, उसे पढकर आपके चित्त को व्यथा हो। मै आपको किसी तरह की चोट नही पहुँचाना चाहता। यदि आप ही बुरा मानते है तो अब मै सरस्वती की समालोचना न किया करूँगा। परन्तु उसके सम्पादक ने अकारण ही मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। कविता न छापते, जवाब तो देते। इस पर अधिक और क्या लिखूँ।"[७] हस्ताक्षर के बाद यह वाक्य और जोड दिया, "मेरे अकारण अपमान पर आपने जरा भी ध्यान नही दिया।"

'सरस्वती' की आलोचना वह इस ढँग से करते थे। अगस्त सन् '२३ की 'सरस्वती' के 'विविध विषय' स्तम्भ में एक पंक्ति छपी—"कोरम पूरा भी होता है तो भी सब न सही, अधिकांश मेंबर नही आते।" 'भी' की भरमार का मज़ाक; "सब न सही" अनावश्यक। यदि वाक्य यो लिखते : "कोरम पूरा होता है तो भी अधिकांश मेंबर नही आते"—"तो भला सम्पादन-कला की १६ नही ६४ कलाओं मे से, कितनी कलाएँ घट जाती ?" 'सरस्वती' में छपा, "तब आजकल जैसे साधन भी न थे।" निराला ने तर्क किया, साधन और आजकल मे समता दिखाना उद्देश्य नही है, फिर जैसे का प्रयोग क्यों ? "आजकल के जैसे" लिखना चाहिए था।

निराला ने 'सरस्वती' की आलोचना न करने का जो वचन दिया था, उसका पालन नही किया। मार्च सन् '२४ की 'सरस्वती' के सम्पादकीय नोट मे एक वाक्य था, "अब उनकी स्थिति इतनी उन्नत जरूर हो गई है कि उनके कहने का प्रभाव पड़ सकता है।" निराला ने आपत्ति की, दूसरे वाक्यखण्ड में इतनी बड़ी समापिका क्रिया की ज़रूरत न थी। लिखना चाहिए था, कहने का प्रभाव पड़े या पड़ सके। इस आलोचना के साथ उन्होने 'सरस्वती' और द्विवेदीजी की प्रशंसा भी की। 'सरस्वती' हिन्दी की सर्वोत्तम पत्रिका है। द्विवेदीजी के परिश्रम से वह अंग्रेजी मे 'माडर्न रिव्यू' और बँगला के 'प्रवासी' के जोड़ की हो गई थी। जब तक द्विवेदीजी उसके सम्पादक थे, तब तक उसकी भाषा आदर्श होती थी। यह सही है कि हर सम्पादक महावीर-प्रसाद द्विवेदी नही हो सकता, पर वह जिस स्थान को सुशोभित कर चुके थे, वहाँ अब पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी है। "अतएव हिन्दी संसार बख्शीजी को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। हमे यह लिखते हुए दुःख हो रहा है कि बख्शीजी की भाषा को हम हिन्दी की आदर्श भाषा नही मान सके। हमे उनकी भाषा मे, उनके पदप्रकरण मे, एक नही अनेक, यत्र-तत्र नही प्राय: सर्वत्र, दोष-ही-दोष दीख पड़ते है। संभव है, यह हमारी अल्पज्ञता का कारण हो; और यह भी सम्भव है कि सी० पी० (मध्य-भारत) की हिन्दी भी कुछ ऐसी ही होती हो।"

द्विवेदीजी से 'सरस्वती' के सम्बन्ध का विचार करके निराला उसकी आलोचना मे शिष्टता का ध्यान रखते थे, पर 'माधुरी' की आलोचना करते समय ऐसा कोई तकल्लुफ न था। 'माधुरी' के सम्पादको ने लिखा— 'कड़ी परिश्रम"; निराला ने टिप्पणी की—लखनऊ मे हीजड़ो की भरमार, फिर लिंग-निर्णय कैसे हो ? 'माधुरी' में लाहौर पर लेख छपा। पहला वाक्य—"पुरातन काल से चली आने वाली पंजाब की राज-

यानी लाहौर ने जितने परिवर्तन देखे हैं······।" टिप्पणी : "श्रीमती लाहौर के पैर बड़े मजबूत हैं, क्योंकि वे पुरातन काल से चलती ही आ रही हैं।" 'माधुरी' की सम्पादकीय टिप्पणियों में छपा, "आप स्वदेश को गये थे", "आपको योरप में भेजा था"; निराला ने इन वाक्यों में 'को' 'में' के प्रयोग का मजाक उड़ाया। 'माधुरी' के दो सम्पादक थे, दुलारेलाल भार्गव और रूपनारायण पाण्डेय। इनमें निराला की कृपादृष्टि पाण्डेयजी पर विशेष थी। उनके नाम पर भी उन्होंने व्यंग्य किया। " 'रूप-नारायण' शब्द का प्रथम अक्षर अगर गलती से न लिखा जाय तो अवशिष्ट अक्षरों के अर्थ में कैसा अनर्थपात हो जाता है, इसका विचार पाठक स्वयं करके देखें।"

'सरस्वती', 'माधुरी' आदि के साथ निराला ने 'प्रभा', 'शारदा' आदि अन्य पत्रिकाओं और उनके सम्पादकों की खबर ली। जिन-जिनसे उन्हें शिकायत थी, जिन्होंने भी उनकी कविताएँ न छापी थीं, उनकी ख़ासी मरम्मत निराला ने 'मतवाला' मे कर डाली। वह दिमाग की एक खिड़की खोलते थे तो गम्भीर कविताएँ निकलती थीं, दूसरी खिड़की खोलते थे तो व्यंग्य के तीर छूटते थे। ये परस्पर विरोधी-सी लगने वाली क्रियाएँ वे एकसाथ प्राय: प्रति अंक में प्रति सप्ताह सम्पन्न करते थे। पत्रिका-सम्पादकों पर इस चौमुखी हमले में कुछ कविगण भी मारे गये जिनकी रचनाएँ इन पत्रिकाओं मे छपती थी। 'शारदा' मे प्रकाशित एक कविता की पैरोडी करते हुए निराला ने लिखा :

तुकबन्दी के लिए तुम्हें
हम धन्यवाद देते कविराज।
किन्तु प्रार्थना, कविजी ! रखना
भाषा भावों की भी लाज॥

निराला ने अपने व्यंग्य-शर उन्ही पर नही छोडे, जो उन्हें नाराज करने वाली पत्रिकाओं में छपते थे। चलते-फिरते दो-चार बाण वह जब-तब रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ओर भी छोड़ देते थे। यह सब छद्म-वेष में। प्रकट में वह रीतिवादियों के मुकाबले रवीन्द्र-नाथ की श्रेष्ठता का बखान करते थे। 'कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र' में उन्होंने इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की श्रेष्ठता का निदर्शन कराया। पद्मसिंह शर्मा उस समय के प्रसिद्ध आलोचक और बिहारी की काव्यकला के प्रबल समर्थक थे। दोहों के साथ उनकी व्याख्या उद्धृत करते हुए निराला ने अप्रत्यक्ष रूप से, बिहारी के साथ, पद्मसिंह शर्मा की भी आलोचना की।

'छायावाद' शब्द अब तक काफी प्रसिद्ध हो चुका था। निराला ने जहाँ किसी को नयी कविता की नुक्ताचीनी करते पाया कि उस पर दुहत्था वार किया। लतीफे और चुटकले उन्हें खूब याद थे। इनका उपयोग बड़े कौशल से करते थे। किन्ही स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने छायावादी कविता का मजाक उडाया था। निराला ने उन्हे आड़े हाथों लिया, " [illegible] पर आपने जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर हमें एक देहाती कहावत [illegible] किसी लड़के ने अपने पिता से कहा था, मैं भी 'फफीम' खाऊँगा [illegible] दिया, बेटा, पहले नाम सीख

'फफीम' खाना ।"

निराला की निगाह इस समय हिन्दी की हर प्रसिद्ध पत्रिका पर थी। कहाँ क्या निकला, छायावाद के पक्ष मे क्या लिखा गया, विरोध मे क्या, यह सब कुशल नेता की तरह वह चौकन्ने होकर देखते थे। प्रसाद वाद-विवाद से दूर रहते थे। पन्त अभी उभर रहे थे। गद्य वैसे भी न लिखते थे। केवल 'निराला' ललकार-ललकार कर शत्रुओं का वध करने मे लगे थे। पर जो साहित्य की सेवा कर रहे थे अथवा नयी कविता को सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे, उनके प्रति वह आदर और स्नेह भी प्रकट करते थे।

फरवरी सन् '२४ मे वह दिल्ली गये। साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन मे भाग लिया। वहाँ इन्होंने अधिवेशन के आरंभ मे गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' की रचना 'वन्दे-मातरम्' गाकर सुनाई। निराला किसी दूसरे की रचना पढकर सुनायें, यह उनकी ओर से कवि का काफी बडा सम्मान था। रचना साधारण कोटि की थी—

अद्‌भुत सुन्दर मात हमारी अनुपम गुणमय मात।
नमैं नमैं हम तुझको तेरी संतति भारतमात॥

साहित्य-सम्मेलन मे साहित्यकारो से अधिक राजाओं की पूछ होती थी। बडौदा-नरेश सभापति थे। उनके आने पर निराला ने "गूंथे तप्त अश्रुओं के मैंने कितने ही हार" आदि अपनी 'विफल वासना' कविता गाकर सुनाई।

सम्मेलन मे कवि नाथूराम 'शंकर' शर्मा भी आये थे। 'समन्वय' मे काम शुरु करते ही निराला ने उनसे सम्पर्क कायम कर लिया था। उनकी अनेक रचनाएँ 'समन्वय' मे प्रकाशित की थीं, 'मतवाला' के कई अंकों मे 'शंकर' और 'निराला' की कविताएँ एक साथ छपी थीं। यह दो युगो का विचित्र मिलन था। शंकरजी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से केवल आठ वर्ष छोटे थे। वे भारतेन्दु के परम भक्त, उस युग के वातावरण से पूरी तरह प्रभावित, द्विवेदी-युग मे खडीबोली के उन्नायको मे थे। जिन कवियो की रचनाएँ पढ़कर निराला ने तीन-चार साल पहले पद्य लिखना सीखा था, उनमे शंकरजी भी थे।

निराला को देखकर शंकरजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्हे स्नेह ने पास बिठाया। फिर 'मतवाला'-'माधुरी' की छेडछाड़ का ज़िक्र करते हुए कहा, "मतवाला से मैं बड़ा प्रेम करता हूँ और माधुरी के साथ सम्बन्ध हो जाने पर तो यह दम्पती मुझे और भी अधिक अच्छी लगती है।" फिर मुस्कराते हुए आशीर्वाद-रूप मे तुरन्त यह दोहा बनाकर सुना दिया :

धन्य माधुरी को मिला, मतवाला भरतार।
सुख भोगे फूले फले, हे शंकर करतार॥

निराला वहाँ अन्य साहित्यकारो से मिले। इनमे रूपनारायण पाण्डेय भी थे। वह दिल खोलकर न मिल सके। 'मतवाला' में 'माधुरी' की सख्त आलोचना छपी थी, उसे याद करके लोग निराला और पाण्डेय को साथ देखकर जुगल-जोड़ी का जिक्र छेड़ देते थे।

नाथूराम शंकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त आदि पुराने कवियों से बिगाड़ न करके निराला यथाशक्ति उनकी सहानुभूति लेते हुए आगे बढ़ रहे थे। महावीरप्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त चन्द्रशेखर शास्त्री, कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक सकल-नारायण शर्मा आदि विद्वानों से भी उन्होंने स्नेह-सम्बन्ध जोड़ा था। नये लोगों में उनकी निगाह पंत पर थी। उनकी राय में ऐसी मधुर कविता आधुनिक हिन्दी में किसी ने न लिखी थी। यद्यपि 'सरस्वती' में निराला की कविताएँ न छपी थीं, पंत की छपी थीं, फिर भी इसके लिए कवि को दोषी न ठहराकर उन्होंने उसे प्रोत्साहन देने का विचार किया। उन्होंने लेख लिखा 'कविवर श्री सुमित्रानंदन पंत'। वह हिन्दी में पंत पर पहला प्रशंसात्मक लेख था। लेख ३ मई सन् '२४ के 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ।

आरम्भ में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की चार पंक्तियाँ उद्धृत कीं—

मग्न बने रहते हैं मोद में विनोद में,
क्रीड़ा करते हैं कल-कल्पना की गोद में,
सारदा के मन्दिर में सुमन चढ़ाते हैं,
प्रेम का ही पुण्य पाठ सबको पढ़ाते हैं।

यह उद्धरण दिया केवल बड़ों के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए। लेख में कहीं इस बात की झलक भी न आने दी कि मैथिलीशरण गुप्त ने भी खड़ीबोली में अच्छी कविता की है। कवि की प्रशंसा में कई उपमान सजाने के बाद उन्होंने "ठोंके-पीटे कवियों की गढ़ी हुई कविताओं" की निन्दा की और उन सहज कवियों की प्रशंसा की जो प्रकृति का अद्भुत चमत्कार हैं। आधुनिक हिन्दी कविता पर उन्होंने यह राय ज़ाहिर की—"हिन्दी में जब से खड़ीबोली की कविता का प्रचार हुआ तब से आज तक उसमें स्वाभाविक कवि का अभाव ही था।" यह मैथिलीशरण आदि प्रसिद्ध कवियों पर आक्रमण था। ठीक है, उन्होंने साहित्य-सेवा की, पर वे निराला की निगाह में साहित्य का पौधा सींचने वाले माली थे; उसके फूल नहीं। बेशक खड़ीबोली के प्रचारकों और कवियों ने बहुत गालियाँ खाईं पर पौधे में फूल समय पर ही आते हैं। खड़ीबोली का "स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है, और हिन्दी का वह गौरव-कुसुम श्री सुमित्रानंदन पंत है।"

पंत इस पर फूल न उठें, अहंकार में पथभ्रष्ट न हो जायें, इसलिए उन्होंने उन्हें सावधान भी कर दिया, "यह कुसुम अभी पूर्ण विकसित नहीं हुआ, हाँ पंखुड़ियाँ खोलने लगा है। इसके परागों में सुरभि की अभी मादकता नहीं कि रास्ते का हर एक पथिक सुगन्ध से खिंचकर बाग में आ जाय। अभी दो ही चार भौंरे उसके अर्द्ध विकास की रागिनी गाने लगे हैं।"

अन्त में उनके मंगलमय भविष्य के लिए अपनी शुभकामना व्यक्त करते हुए लिखा: "खड़ीबोली में प्रथम सफल कविता आप ही कर सके हैं। आपसे हिन्दी को बहुत कुछ आशा है। प्रार्थना है, हमारे इस अधखिले फूल [पर] परमात्मा की शुभ दृष्टि रहे। इसका परागमय जीवन उनके विराट् रूप की ही सेवा के लिये है।"

'निराला' जो आलोचनात्मक निबंध लिख रहे थे, वे छायावादी आंदोलन को आगे बढाने और उसे शक्ति प्रदान करने वाले थे। तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ, बिहारी, पन्त आदि पर अब तक उन्होंने जो कुछ लिखा था, उससे उनकी गहरी पैठ का पता चलता था। छायावादी कवियो मे अभी किसी ने आलोचना के क्षेत्र मे ऐसी पैनी सूझ-बूझ का परिचय न दिया था। अपने नाम से भाषा, साहित्य और दर्शन पर लिखे हुए लेखो के अलावा उन्होने दूसरे नामो से या कोई नाम दिये बिना ही इन विषयो पर बहुत-सी टिप्पणियाँ लिखी। 'सरस्वती' और 'माधुरी' की तीखी आलोचना के पीछे व्यक्तिगत कारण अवश्य थे; फिर भी यह आलोचना लेखको को भाषा-सम्बन्धी प्रयोगों के बारे मे सतर्क करने वाली, द्विवेदी-परम्परा की अगली कडी थी। निराला की कविता के साथ ही छायावादी आलोचना का भी जन्म हुआ। निराला के हाथ मे आलोचना एक अस्त्र थी जिससे एक तरफ़ वह विरोधी चिन्तन को छिन्न-भिन्न करते थे, दूसरी ओर नवीन विचारधारा और भावबोध को प्रतिष्ठित करते थे। अपने साहित्यिक कार्यक्रम मे निराला ने गद्य को उतना ही महत्त्व दिया था जितना पद्य को। 'समन्वय' मे उन्होने लिखा था, "कविता की भाषा से मनोरंजन तो होता है परन्तु वह जीवन-संग्राम के काम की नही होती।" जीवन और साहित्य के संघर्ष मे गद्य बडे काम का है, निराला अपने व्यवहार से सिद्ध कर रहे थे।

आलोचना के साथ उन्होने 'मतवाला' मे दो-एक कहानियाँ भी लिखी—'क्या देखा ?' 'जनाबआली' के नाम से, 'प्रेमपूर्ण तरंग' अपने नाम से। इनमे उनका व्यंग्य, उनका यथार्थ चित्रण का रुझान, अपने अनुभवों-कल्पनाओं को रंग-चुनकर प्रस्तुत करने की कला के दर्शन हुए। पर यह अभी उनके गद्य साहित्य का कमज़ोर पहलू था।

'निराला' और 'मतवाला' का सम्बन्ध कुछ विचित्र-सा था। 'मतवाला' लोगों का मनोरंजन करने वाला हास्य-व्यंग्य का पत्र था। 'निराला' की कविताएँ भाव-गम्भीर, ललित-पदावली युक्त, अधिकाश पाठको के लिए दुरूह होती थीं। 'मतवाला' जैसे पत्र द्विवेदी-युग मे कम थे पर भारतेन्दु-युग मे अधिकांश पत्र इसी ढंग के निकलते थे। 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण'—इन सभी पत्रो मे हास्य-व्यंग्य होता था और इन्ही मे गम्भीर रचनाएँ भी छपती थीं। 'मतवाला' का जन्म इसी वंश-परम्परा मे हुआ था। जिस समय द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण किया, उस समय हिन्दी-संसार भारतेन्दु-युग की आभा से दीप्त था। स्वयं द्विवेदीजी बालकृष्ण भट्ट के मित्र और कृपापात्र थे। 'मतवाला' के सम्पादक-सञ्चालक-लेखक भारतेन्दु-युग की महिमा से अच्छी तरह परिचित थे। महादेवप्रसाद सेठ साहित्य और राजनीति मे बालकृष्ण भट्ट को अपना आदर्श मानते थे। नवजादिकलाल श्रीवास्तव अपने मित्रों और सहयोगियों को बालमुकुन्द गुप्त और गोविन्दनारायण मिश्र के किस्से बड़े प्रेम से सुनाया करते थे। शिवपूजन सहाय ने काशी मे अम्बिकाप्रसाद वैद्य से 'प्रेमघन' की चर्चा बहुत सुनी थी। भारतेन्दु-युग का उत्कट हिन्दी-प्रेम, समाज-सुधार और राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना, हास्य-प्रियता और जिन्दादिली 'मतवाला' मे नया अवतार लेकर जनता के सामने आई।

'मतवाला' मे राजनीति, समाज-व्यवस्था, साहित्य—सभी पर ज़ोरदार टिप्प-णियाँ होती थीं। 'मतवाला' अँगरेजी राज का विरोधी और सामाजिक रूढिवाद का कट्टर शत्रु था। सन् २० के स्वाधीनता-आंदोलन के साथ देश में जो जागृति फैली, 'मतवाला' उसका प्रतिनिधि था। उसकी राजनीतिक चेतना गांधीवाद की सीमाएँ लांघ कर देश और समाज की परिस्थितियों में और गहरे पैठती थी। वह बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का सही उत्तराधिकारी और गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' का योग्य जोड़ीदार था। 'मतवाला' दूर-दूर तक पहुँचता था। जहाँ हिन्दी-प्रेमी थे, वहाँ 'मतवाला' था। लोग पढते थे, अंक सँभालकर रख लेते थे। वाचनालयों में 'मतवाला' पढ़ने के लिए भीड़ लग जाती थी। 'मतवाला' का हर अंक ध्यान से पढनेवाले उसके एक प्रेमी पाठक कवि और नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' भी थे।

'मतवाला' का जो गम्भीर साहित्यिक पक्ष था, उसके एकमात्र निर्माता निराला थे। कविताएँ औरों की भी छपीं पर संख्या और गुण दोनों की ही दृष्टि से कवि-रूप मे 'मतवाला' पर केवल निराला छाये हुए थे। 'मतवाला' के हास्य-व्यंग्य वाले अंश को भी रचने-सँवारने मे निराला का बड़ा हाथ था। भाषा और साहित्य से सम्बन्धित आलोचना वही लिखते थे। इस आलोचना को अपने हास्य और व्यंग्य से वह 'मत-वाला' का प्रमुख आकर्षक बना देते थे। यह हिन्दी-पत्रकार-कला का स्वर्ण-युग था जब महादेवप्रसाद सेठ, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपने सम्मिलित प्रयास से 'मतवाला' को हिन्दी का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र बना दिया था।

'मतवाला' के प्रकाशन से पहले सूर्यकान्त त्रिपाठी को कवि-रूप में जानने वाले व्यक्ति उँगलियों पर गिने जा सकते थे। 'मतवाला' निकलने के साल-भर बाद शायद ही कोई हिन्दी-प्रेमी हो जो निराला नाम से अपरिचित रह गया हो। ऐसी व्यापक प्रसिद्धि इतने कम समय में अब तक हिन्दी में किसी कवि को न मिली थी, उन कवियों को भी नहीं जिनकी रचनाएँ स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में छापी थी।

एन्ट्रेन्स-फेल सुर्जकुमार ने अपनी प्रतिभा और पौरुष से युगप्रवर्तक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की इस भव्य मूर्ति का निर्माण किया था। आँखो में चकाचौंध पैदा करने वाली अपनी छवि पर कुछ विस्मित, कुछ मुग्ध, वह उचित ही गर्व कर सकते थे।

३

'मतवाला'-मण्डल

महादेवप्रसाद सेठ के परिवार मे मिर्जापुरी पत्थरो का कारोवार होता था। साहित्य मे पैसा लगाना उनके घरवाले व्यर्थ समझते थे। महादेवप्रसाद चतुर आदमी थे। तरह-तरह के वहाने करके रुपये ले ही आते थे। कलकत्ते मे उन्होंने अपना प्रेस जमा लिया था। 'समन्वय' वही छपता था। सावुन-तेल की फर्म भूतनाथ की सारी छपाई उन्ही के यहाँ होती थी। 'समन्वय' के संन्यासियों से लेकर भूतनाथ के मैनेजर मुशी नवजादिकलाल तक हर तरह के आदमी महादेवप्रसाद सेठ के मित्र थे। वह राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग ले चुके थे। इसलिए कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमी, स्वदेशी के समर्थक मारवाडी व्यापारी उनसे स्नेह करते थे, और उनके लिए वहुत-सा काम जुटा देते थे।

प्रेस जम गया था; 'मतवाला' निकालने में विशेष कठिनाई न हुई। महादेव-प्रसाद सेठ आदमी पहचानते थे। खुद काम कम करते थे, दूसरो से काम लेना खूब जानते थे। उन्होंने देखा, मुंशी नवजादिकलाल भूतनाथ वालो की मैनेजरी वड़ी चुस्ती और मुस्तैदी से करते है। उन्होने वालकृष्ण प्रेस और 'मतवाला' के प्रवन्ध का सारा भार उन पर डाल दिया। अपना समय वह इतिहास की पुस्तकें पढ़ने और हुक्का पीने मे लगाते। उर्दू शायरी से उन्हे विशेप प्रेम था; वात-वात में शेर उद्धृत करते। जव मिशन स्कूल मे पढ़ते थे, तव खुद भी 'रज़ा' नाम से शेर कहते थे। अपने उर्दू के उस्ताद एक मौलवी साहव से इस्लाह लेते, गज़लें दुरुस्त कराते थे। ग़ालिव उनके प्रिय कवि थे; उनका एक शेर वह अक्सर दोहराते थे—

मय से गरज़ निशात है किस रू सियाह को।
इक गूना वेखुदी मुझे दिन-रात चाहिये।

मय के वदले वह भाँग के प्रेमी थे। संध्या समय भाँग छानना अहोरात्र का सवसे महत्वपूर्ण कार्य था। कसेरू, वेल, फालसे, अंगूर, सन्तरे, आम—नित नये फलों के रस के साथ वह भाँग का सेवन करते थे। 'मतवाला'-मंडल के सभी सदस्य बड़ी आत्मीयता का अनुभव करते हुए इस सुखद कृत्य में उनका साथ देते थे।

भाँग पीने के बाद वह उकड़ूँ बैठकर बड़े मनोयोग से हुक्का गुड़गुड़ाते। मुंशी नवजादिकलाल लोगों को सावधान करते—कोई बोलना मत; गोपालकृष्ण गोखले बजट पर स्पीच की तैयारी कर रहे हैं। महादेवप्रसाद सेठ हुक्के की नली से जोर से कश लेकर धुआँ उड़ाते हुए कहते :

मारा चिलम पै दम तो शरारे निकल पड़े,
एक बुर्ज आतशीं से सितारे निकल पड़े।

महादेवप्रसाद सेठ सौन्दर्य-प्रेमी व्यक्ति थे। फ़िटन मे जुते हुए अच्छे कोतल घोड़े को दौड़ते देखते तो सड़क पर खड़े ही रह जाते। कनौती उठाये दौड़ने की अदा की तारीफ़ करते। चिड़ियाघर में चितकबरे साँप उन्हें विशेष पसन्द थे। आकाश में घटाएँ उठते देखकर मिर्जापुर की कजली गुनगुनाने लगते। वह निराला के सौन्दर्य के, विशेष-कर उनकी मोहक बड़ी-बड़ी आँखों के भी प्रशंसक थे। उनकी कद्रदानी की दाद देते हुए मुंशी नवजादिकलाल कहते—"एक तो महाकवि बिहारीलाल की नायिका भौहों में हँसती थी, दूसरे हमारे निरालाजी भौंहों मे हँसा करते हैं। बल्कि ये तो बिहारी की नायिका के भी कान कुतर चुके हैं। इनकी पलकें हँसती हैं, बरौनियाँ हँसती हैं, आँखों के कोए हँसते हैं, अजी इनकी नसें और मसें हँसती हैं।" निराला का नख-शिख-वर्णन सुनकर महादेवप्रसाद सेठ अपनी घनी काली मूँछों में मुस्कराते; मुँह पर शीतला के हल्के दाग हँसी की लाली में छिप जाते।

निराला 'मतवाला'-मंडल की शोभा थे। वह कविता लिखने, कविता के बारे में बातें करते, कविता के ध्यान में डूबे रहते। अपनी धुन में मस्त कभी वह तमाखू मलते हुए नंगे पैर ही मछुआ बाजार से कार्नवालिस स्ट्रीट तक पहुँच जाते। कविता की चर्चा छिड़ने पर वह गिरीशचन्द्र घोष के 'रावणवध' या 'बुद्धदेव चरित' का कोई संवाद बड़े नाटकीय ढंग से सुनाते, कभी अभिनय की कुशल भावभंगी के साथ 'पंचवटी प्रसंग' के किसी अंश का पाठ करते। चन्द्रशेखर शास्त्री मुग्ध होकर कहते—"अजन्ता की कोई प्रतिमा सजीव होकर हिन्दी संसार में आ गई है।" हिन्दी-संस्कृत-बँगला की बीसों कविताएँ उन्हे याद थीं; महादेवप्रसाद सेठ उनकी स्मरणशक्ति देखकर चकित रह जाते थे।

काव्य-चर्चा के साथ जब-तब 'मतवाला'-मंडल में तेज बहस भी हुआ करती थी। उन दिनों हिन्दी के हर साप्ताहिक पत्र के दफ्तर मे शब्दों के प्रयोग को लेकर विवाद छिड़ा रहता था। महावीरप्रसाद द्विवेदी और बालमुकुन्द गुप्त के 'अनस्थिरता'-सम्बन्धी महाभारत को खत्म हुए अभी ज्यादा दिन न हुए थे। मुंशी नवजादिकलाल उर्दू-ज्ञान के बल पर अपने को भाषा के मामले में अधिकारी विद्वान् मानते थे। निराला अपना अंग्रेजी व्याकरण का ज्ञान हिन्दी प्रयोग में सिद्ध करते। महादेवप्रसाद सेठ दोनों महारथियों को भिड़ाकर चुपचाप हुक्का पीते रहते। असमापिका क्रिया और केस इन अपोजीशन का रहस्य समझाते हुए निराला का स्वर मध्य से तार सप्तक तक पहुँच जाता।

राजनीति का प्रसंग छिड़ता। निराला क्रोध से अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन करते; हिन्दू-समाज में अछूतों पर अत्याचार, किसानों पर जमींदारों के उत्पीड़न का

सजीव चित्र खींच देते। व्यावहारिक वेदान्त के बल पर वह देश मे क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता समझाते। शिवपूजन सहाय को लगता, वह किसी उग्र साम्यवादी का भाषण सुन रहे है।

महादेवप्रसाद सेठ रईस आदमी थे। साहित्यकारो का सम्मान करने मे उन्हे आनन्द आता था। बाहर से जो साहित्यकार आता, एक बार 'मतवाला'-मंडल मे उसका आदर-सत्कार अवश्य किया जाता। बाहरवालों के सिवा कलकत्ते के साहित्यकारो का एक अड्डा शंकरघोष लेन में २३ नम्बरवाला मकान था। अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गर्दे, मूलचन्द अग्रवाल, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, चन्द्रशेखर शास्त्री, रामगोविन्द त्रिवेदी, सकलनारायण शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, माधव शुक्ल आदि अनेक पत्रकार, कवि, नाटककार और हिन्दी-संस्कृत के विद्वान् वहां एकत्र होते। निराला ध्यान से भाषा और साहित्य के बारे में इनकी बाते सुनते, कहां से क्या लेना है, मन मे नोट करते जाते। सकलनारायण शर्मा हिन्दी लेखको की असावधानी की चर्चा करते, लोग एक ही पंक्ति मे 'ही' के साथ 'भी' का भी प्रयोग करके वाक्यो को दूषित कर देते है। निराला दूसरों का गद्य पढते समय ही-भी की तलाश में रहते। अपनी नम्रता से, कविता-पाठ से, संस्कृत-बँगला काव्य-चर्चा से वह बुजुर्ग साहित्यकारों को बहुत जल्दी प्रभावित कर लेते। बीच-बीच मे मुशी नवजादिकलाल फुलझडियाँ छोडते रहते, शंकरघोष लेन का वह मकान हिन्दी साहित्यकारो की हँसी मे गूँज उठता।

रामगोविन्द शास्त्री को निराला का परिचय देते हुए मुशीजी कहते, "हमारे यहां एक क्रान्तिकारी कवि हैं। उनको आपने देखा है? पद्म पलाश लोचन, आजानुबाहु, काकपक्षधारी, वृषभस्कन्ध और कोकिल-कंठ है। उनकी उँगलियाँ अजन्तागुहा के चित्रो की छवि छीनती हैं। उनकी मासपेशियाँ ग्रीस-रोम की मूर्तियो की याद दिलाती है। सुए की टोट-सी उनकी नासिका और अनारदाने-से उनके दांत देखकर आप घपले मे पड जायँगे। जब वे भुजदंड ठोककर अपने प्रशस्त वक्षःस्थल का विस्तार दिखाते हैं, बुद्धि पगुरी करने लगती है। डीलडौल पंजाबी, बोलचाल बैसवाड़ी, खान-पान बंगाली, रहन-सहन वेदान्ती। जनेऊ को साबुन लगाकर धूप मे रख देते है। जब तक कोई उसकी याद न दिलाए, तब तक अपनी धुन मे मस्त रहते है। 'सजीव रसगुल्ले' के बड़े प्रेमी है। केंचुआ छन्द के आदिकवि हैं। उनकी शंखध्वनि से हिन्दी-जगत् मे हडकम्प छा गया है।"

कभी-कभी बाहर से आनेवाले लेखको से निराला की गर्मागर्म बहस हो जाती। हिन्दी के उदीयमान लेखक इलाचन्द्र जोशी रवीन्द्रनाथ के बड़े भक्त थे। निराला से बोले—'मैं उन्हे संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ।' निराला ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में पूछा—'क्या आप उन्हे शेक्सपियर से भी बड़ा कवि मानते है?' इलाचन्द्र ने निराला के बलिष्ठ शरीर की चिन्ता न करके कहा—'जी हाँ, मैं उन्हे शेक्सपियर से भी कई बातो में बडा मानता हूँ?' निराला ने स्वर ऊँचा करते हुए पूछा—'कालिदास से भी बड़ा मानते है?' इलाचन्द्र ने भी स्वर ऊँचा करके कहा—'जी हां।' निराला

नें सामने बैठे हुए दुबले-पतले युवक को घूरते हुए फिर प्रश्न किया—'तो क्या आपकी राय में रवीन्द्रनाथ तुलसीदास से भी बड़े हैं ?' इलाचन्द्र ने जान पर खेलते हुए जवाब दिया—'जी हाँ, मैं उन्हें कुछ बातों में तुलसीदास से भी बड़ा मानता हूँ।' इस पर निराला ज़ोर से ठठाकर हँस पड़े। अर्थ यह कि सामने बैठा व्यक्ति असाध्य है।

निराला स्वयं रवीन्द्रनाथ के प्रशंसक थे पर वह उन्हें विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि मानने को तैयार न थे। शेक्सपियर और कालिदास से चाहे कोई रवीन्द्रनाथ को बड़ा कह दे, पर यदि वह उन्हें तुलसीदास से भी बड़ा कहे, तो वह उसे माफ़ न कर सकते थे। रवीन्द्रनाथ के बंगाली प्रशंसक तुलसीदास को भक्तकवि कहकर कभी-कभी उनका अनादर करते, रवीन्द्रनाथ को ब्रह्मज्ञान में उनसे श्रेष्ठ बतलाते। निराला पूछते—परमाणु में जो गति है, उसे चलानेवाला कौन है, बता सकते हैं ?

भव भव विभव पराभव कारिणि।
विश्व विमोहिनि स्ववश विहारिणि।।

इसका मतलब समझते हैं ?

रवीन्द्रनाथ के ब्रह्मज्ञान की कमजोरियाँ दिखाना निराला की साहित्यिक चर्चा का प्रमुख विषय होता था। वह हिन्दीवालों को खास तौर से समझाते थे कि तुलसीदास जितने बड़े भक्त थे, उतने ही बड़े ज्ञानी थे। प्रमाण देते : ज्ञानहि भक्तिहि नहि कछु भेदा। कलकत्ते के साहित्यप्रेमियों ने तुलसी-जयन्ती का आयोजन किया। रायबहादुर बद्रीदास के घर पर सभा हुई। अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गर्दे, सकलनारायण शर्मा, झाबरमल्ल शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, राधामोहन गोकुलजी, नन्दकुमारदेव शर्मा, माधव शुक्ल, मनोरमा-सम्पादक महावीरप्रसाद मालवीय आदि साहित्यप्रेमी सज्जन एकत्र हुए। इस सभा में निराला ने तुलसीदास के सम्बन्ध में कहा—वे सिद्ध महात्मा थे। द्वैतभाव की पुष्टि तो वह कर ही न सकते थे। अद्वैत ही सबसे उच्च तत्त्व है।

सेवहिं लखन सीय रघुवीरहिं।
जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं।।

इससे अद्वैत मत की ही पुष्टि होती है। 'रामचरितमानस' एक सरोवर है। वह अद्वैत का ही रूपक है। सात सीढ़ियाँ योगियों के सात चक्र हैं।

निराला अभी तक मुख्यतः दो महाकवियों को घोखते रहते थे : एक तो रवीन्द्रनाथ, दूसरे तुलसीदास। इनके साथ अब एक तीसरा नाम जुड़ गया—ग़ालिब। ग़ालिब की रचनाएँ वे महादेवप्रसाद सेठ से सुनते, कुछ शेर याद कर लेते, फिर वेदान्त की कसौटी पर उन्हें परखते, अपने ढँग से उनकी व्याख्या करते।

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता,
डुबाया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता।

आदि-अन्त में ब्रह्म ही है। संसार मिथ्या है। तुलसीदास में भी यही भाव है : जेहि जाने जग जाय हेराई। और कबीर ने भी कहा था :

सूर परकास तहँ रैन कहँ पाइये
रैन परकास नहिं सूर भासैं।

ग़ालिब, तुलसी और कबीर मे भाव-साम्य दिखाने के साथ-निराला राजनीतिक निष्कर्ष निकालते कि वेदान्त की भूमि पर ही हिन्दुओं-मुसलमानो मे सच्ची मैत्री कायम हो सकती है।

'मतवाला'-मंडल मे निराला के ज्ञान को चुनौती देने वाला कोई नही था। व्याकरण के मामले मे नवजादिकलाल उनसे भिड़ सकते थे पर दार्शनिक क्षेत्र मे निराला वहाँ सभी के आचार्य थे। वैसे ज्ञान मे वह अपने को किसी संन्यासी से कम न समझते थे पर एक जगह—अपने मन मे—उनसे कमजोर पडते थे। संन्यासी दृढ-चरित्र थे, निराला ब्रह्म को मदन-पंचशर-हस्त के रूप मे देख चुके थे। छोटे-मोटे संन्यासियो की तो कोई वात नही, पर स्वामी सारदानन्द जैसे महावीर को देखकर उन पर छुटपन सवार हो जाता था। 'मतवाला'-मंडल में सभी वरावर थे। उम्र मे वड़े होने पर भी महादेवप्रसाद, मुशी नवजादिकलाल और शिवपूजन सहाय वड़प्पन न जताते थे। 'पंडितजी' कहकर वे उनका आदर करते थे, आदर से ज्यादा उनको प्यार करते थे। निराला उनसे आदर पाकर खुद उनकी वडी इज्जत करते थे। महादेवप्रसाद सेठ, शिवपूजन सहाय निराला के साथ फोटो खिचाने गये: निराला ने उन्हे कुर्सियो पर विठाया। खुद शिवपूजन सहाय के पीछे खडे हुए। उनका हृदय प्रेम का भूखा था। पंडित रामसहाय और मनोहरादेवी के वाद निराला का दुलार करनेवाला न रह गया। यहाँ दूर-देश वंगाल मे अकेले रहने वाले ये एक ही उद्देश्य से प्रेरित हिन्दी साहित्यकार हृदय का सारा स्नेह एक-दूसरे पर उंडेल देते थे। वे निराला को प्यार ही न करते थे, उन्हे यह दृढ विश्वास भी हो गया था कि निराला अत्यन्त प्रतिभाशाली युगप्रवर्तक कवि है। संन्यासियो के सामने जव निराला अपने को रवीन्द्रनाथ का समकक्ष कवि घोपित करते, तव वे लोग हँस देते थे। पर इन मित्रो के सामने जव वह तुलसीदास के ज्ञान की व्याख्या करते, रवीन्द्रनाथ की दार्शनिक कमजोरियाँ दिखलाते, मृदु गम्भीर कण्ठ से अपनी कविताएँ सुनाते तव उनके अग्रज वन्धुओं की आँखें प्रशंसा के अदम्य तेज से चमक उठती, वे निराला के सामने और पीठ-पीछे उनके गुणों का वखान करते अघाते न थे।

मुशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव महादेवप्रसाद सेठ की तरह रईस न थे। देहात के एक साधारण परिवार मे जन्म लेकर डाक का थैला ढोने के वाद वडे परिश्रम से साहित्य की दुनिया मे घुस पाये थे। 'मतवाला'-मंडल के प्रत्यक्ष सूत्रधार वही थे। 'मतवाला' की विक्री से लेकर आटे-दाल तक हर चीज का ध्यान रखते थे। तरकारी कौन-सी वनेगी, भाँग के लिए कौन-से फल आयेंगे, वागवाजार से रसगुल्ले कितने आयेंगे, इन सब महत्वपूर्ण प्रश्नो का निर्णय मुशीजी ही करते थे। इतवार के दिन वह घर की सफाई मे जुट जाते। सफाई के वाद वह झाड़ू को सुखाते, दवात की स्याही वदलते, कघी, चाकू, चश्मा तक सावुन से धोते, जूते पोंछते और कुर्सियों से खटमल निकालते। वीच-वीच मे निराला को अपने ज़िला वलिया के किस्से भी सुनाते जाते।

एक साहव ताल के किनारे हाजत रफा करने जाते थे। किसी दिन ठंढ ज्यादा लगी तो रज़ाई ओढ़कर गए। आवदस्त के लिए बैठे तो वायाँ हाथ ठीक जगह तक पहुँचा नहीं। परेशान होकर वोले—हथवँ छोट वा कि—यँ दूर वा।

निराला ज़ोर से हँसते और देर तक हँसते रहते।

मुंशीजी फिर अपने काम में लग जाते।

'मतवाला' में भूतनाथ तेल का विज्ञापन देना था। मुंशीजी को सूझा कि गद्य के वदले पद्य में तेल का फडकता हुआ विज्ञापन दिया जाय। उन्होंने निराला से प्रार्थना की और उन्होंने कविता तैयार कर दी :

> वजा दमामा जिस दम इसका तेल हजारों मात हुए।
> हुआ वरावर फतहयाव जव-जव युद्धो मे घात हुए।
> एकछत्र हो वादशाह जैसा करता है राज यही।
> नहीं सामने रही किसी भी तेलों की अव कोई सही।

मुशीजी विज्ञापन देखकर प्रसन्न हुए।

'मतवाला'-मंडल में निराला की सवसे ज्यादा पटरी वैठती थी शिवपूजन सहाय के साथ। वाक्य-रचना और शब्दों के प्रयोग के वारे में शिष्यवत् निराला का आचार्यत्व वही स्वीकार करते थे। कचहरी में नकलनवीसी से शुरुआत करने के वाद वड़े भाग्य से 'मतवाला'-जैसा पत्र मिला था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, जव तक तन में प्राण हैं, तव तक 'मतवाला' की सेवा करते रहेंगे। 'मारवाड़ी सुधार' तो यों ही समाज-सुधारक पत्र था, 'आदर्श' से उन्हे वडी-वडी आशाएँ थी। पाँच अंकों के वाद उसे भी वन्द कर देना पड़ा। वह निराला से अपना दुख कहते—"निःसतान होकर रहना अच्छा है, पर पुत्रशोक अच्छा नहीं है। किसी लेखक को ऐसे पत्र का सम्पादन हाथ मे न लेना चाहिए जिसका भविष्य उज्ज्वल न हो। भविष्य उज्ज्वल उसी पत्र का हो सकता है जिसके प्रकाशक के पास पूँजी हो, साहित्य के प्रति अटल अनुराग भी हो।"

शिवपूजन सहाय को लगता था, अव ऐसा ही प्रकाशक मिल गया है। महादेव-प्रसाद सेठ उनकी टिप्पणियों की, प्रूफ पढ़ने की योग्यता की प्रशंसा करते। वास्तव में 'मतवाला'-मंडल के लेखकों में हिन्दी लिखना सवसे पहले उन्ही ने शुरू किया था; पत्र-सम्पादन का व्यावहारिक ज्ञान भी उन्हे सवसे ज्यादा था। दूसरों का वड़प्पन वह आसानी से ओढ़ लेते थे; लोग उनकी सरलता और सज्जनता पर वलि-वलि जाते। शिवपूजन सहाय कवि न थे पर कविता के पारखी जरूर थे। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के वहुत-से छन्द उन्हें याद थे। 'रामचरितमानस' का पाठ वह वड़े भक्तिभाव से करते थे। मित्रो के साथ भाँग छानते, थियेटर देखने जाते, मुंशीजी के साथ कहकहे लगाते पर कभी-कभी अकेले मे उनका मन उदास हो जाता था। मन की वात किससे कहे, कैसे कहे, समझ में न आता था। अव तक जितने पत्रों में उन्होंने काम किया था, उनमें हर महीने उन्हें वँधी हुई तनखाह मिल जाती थी। यहाँ हर काम भाईचारे में होता था। 'मतवाला' की ग्राहक-सख्या वढ़ रही थी। उसकी लोक-प्रियता के कारण प्रेस को और ज्यादा काम मिलने लगा था। मुंशी नवजादिकलाल

आमदनी और खर्च का हिसाब ही न रखते थे, किस मद में कितना पैसा खर्च हो, इसका फैसला भी करते थे। शिवपूजन सहाय या निराला को मासिक वेतन देने का सवाल न था; उनकी जरूरत के लिए उन्हें कब कितना रुपया दिया जाय, यह कारोबार की हालत देखकर मुशीजी तय करते थे। कानून के अनुसार पत्र और प्रेस पर स्वामित्व महादेवप्रसाद सेठ का था, दैनिक व्यवहार मे गद्दी के मालिक मुंशीजी थे। शिवपूजन सहाय को खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, भाड़े-किराये की कोई चिन्ता न थी। पर वह गृहस्थ आदमी थे, घरवालो को पैसा भेजना होता था। इस तरह साहित्य-सेवा से कैसे चलेगा ?

कलकत्ते मे शिवपूजन के मित्र और गुरु एक लेखक और थे—पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा। आरम्भ मे इन्ही के प्रोत्साहन से शिवपूजन सहाय ने हिन्दी-सेवा का व्रत लिया था। कुछ दिन तक आगरे मे एक साथ रहकर दोनो आदमी 'धर्माभ्युदय' पत्र मे काम कर चुके थे। ईश्वरीप्रसाद शर्मा हास्य-व्यंग्य के उस्ताद, फक्कड़ो के बादशाह, 'मतवाला'-मण्डल के सहयोगी थे। दफ्तर कभी वक्त मे न जाते थे। मित्रो से कहते थे—त्यागपत्र हमेशा जेब मे रखता हूँ। अनुवाद से लेकर व्यापारियो के लिए विज्ञापन लिखने तक जब जैसा काम मिला, वह आनन-फानन कर डालते थे। कलकत्ते की किन दुकानो मे कौन-सी मिठाई सबसे अच्छी मिलती है, इसकी जानकारी उनसे ज्यादा किसी दूसरे को न थी। स्वादिष्ट भोजन करना, आये दिन थियेटर देखना, मित्रों के साथ गप लगाना, दूसरों को काम न करने देना—यही उनका दैनिक कार्यक्रम था। कविताएँ सैकड़ो याद थी। सस्कृत, बँगला, हिन्दी, उर्दू, जब जिस भाषा की जैसी कविता की जरूरत हुई, सुनाने लगते थे। थियेटर देखने के शौकीन तो थे ही, अभिनय करने मे भी एक ही थे। 'सत्य हरिश्चन्द्र' में डोम का पार्ट इतना बढ़िया किया था कि शिवपूजन सहाय हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए थे।

ऊपर से निठल्ले और हँसोड़ लगने वाले ईश्वरीप्रसाद शर्मा सूझ-बूझ के आदमी थे, काव्य के साथ इतिहास के भी पंडित थे। सन् '२२ मे उन्होंने गदर का इतिहास लिखा, गदर को भारत का स्वाधीनता-संग्राम कहा था। शिवपूजन सहाय उनके इतिहास-ज्ञान से भी प्रभावित थे। दोनों का जन्म एक ही क्षेत्र मे हुआ था, उसी शाहाबाद के कुंअरसिंह ने अंग्रेजो से वीरतापूर्ण संग्राम किया था। उनकी जीवनी के लिए सामग्री बटोरते हुए अपने मित्रो के साथ शिवपूजन सहाय ने गाँवों की काफी खाक छानी थी।

शिवपूजन सहाय अपने गुरु ईश्वरीप्रसाद से इतना प्रभावित थे कि लिखावट मे भी उनका अनुसरण करते थे, उन्ही के-से स्वच्छ, सुडौल अक्षर बनाने का प्रयत्न करते थे।

बनियो से पैसा वसूल करने की कला मे पडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा कलकत्ते के हिन्दी लेखको के आचार्य थे। 'मतवाला'-मंडल के साहित्यकारों की मैत्री को वह बड़ी तटस्थ दार्शनिक दृष्टि से देखते थे। शिवपूजन सहाय को समझाते, सीधी उँगली से घी नही निकलता। पेशगी रुपया मांगो; मिल जाय तो कहो, बकाया वसूल पाया।

शिवपूजन सहाय यहीं कमजोर थे। खुलकर महादेवप्रसाद सेठ या मुंशी नवजादिकलाल से कुछ कह न पाते थे। कई महीने तक घुटते रहने के वाद उन्होंने तै किया कि 'मतवाला' छोड़ देंगे। पर 'मतवाला' छोड़ने से पहले किसी दूसरी जगह का प्रवन्ध कर लेना जरूरी था। उन्होंने 'माधुरी'-कार्यालय से लिखा-पढी शुरू की। 'मतवाला' 'माधुरी' की तीखी आलोचना करता आया था; उसका एक स्तम्भ उसे छोड़कर 'माधुरी' में आना चाहता है, यह जानकर 'माधुरी' वालों को सहज प्रसन्नता हुई। शिवपूजन सहाय अपनी संपादन-योग्यता के लिए काफी विख्यात भी हो चुके थे। उन्हें 'माधुरी' के संपादकीय विभाग मे काम मिल गया।

शिवपूजन सहाय ने महादेवप्रसाद सेठ से कहा, "मुझे रुपयों की जरूरत है, घर जाना है।" महादेवप्रसाद ने स्वयं हाँ-ना कुछ न कहकर मुन्शीजी को रुक्का लिख दिया। 'मतवाला' घाटे में चल रहा है, आजकल हाथ वहुत तंग है, सेठजी इतिहास की किताबों पर इतना रुपया फिजूल खर्च कर देते है—आदि बातें मुन्शीजी ने शिवपूजन सहाय को समझाईं। इन्होने मुन्शीजी को अपनी घर की स्थिति वताई। आखिर दो सौ रुपये मुन्शीजी ने इन्हे दिए। 'मतवाला' मे काम करते हुए शिवपूजन सहाय को करीव छह महीने हो गये थे। ये दो सौ रुपये इसी काम का मेहनताना थे। शिवपूजन सहाय को लगा कि महादेवप्रसाद और दूसरे प्रकाशकों मे ज्यादा अन्तर नही है। मेहनत की कद्र करना कोई नही जानता। जान लड़ा दो लेकिन पैसे वाले को आदमी नही, पैसा ही दिखाई दिया। अव पेट की चोट खाकर यहाँ से भी जाना पड़ा। मुन्शीजी की भी निगाह वदल गई है। हैं कलम-नवीस पर बातें ऐसे करते हैं मानो गद्दी के मालिक यही हों।

शिवपूजन सहाय ने महादेवप्रसाद सेठ और मुन्शी नवजादिकलाल के व्यवहार की शिकायत इधर-उधर की; फिर सवको नमस्कार करके लखनऊ चल दिये। उनकी शिकायत की वात निराला तक पहुँची। निराला ने महादेवप्रसाद से कहा—शिवपूजन सहाय आपके और मुन्शीजी के व्यवहार से वहुत दुखी होकर गये है। महादेवप्रसाद ने पूछा—यह आपको कैसे मालूम हुआ? निराला ने कहा—इससे क्या? मैं जो वात कह रहा हूँ, सच है।

पूछताछ करने पर महादेवप्रसाद सेठ को मालूम हुआ कि निराला से ये वातें उनके मित्र रामलाल गर्ग ने कही। रामलाल गर्ग को शिकायत की वात शिवपूजन सहाय के वन्धु वृजकिशोर से मालूम हुई। वृजकिशोर ने रामलाल के अलावा भूतनाथ के मालिक कनका वावू को भी शिवपूजन सहाय की शिकायत का हाल वता दिया था। यह सव जानकर महादेवप्रसाद सेठ को काफी दुःख हुआ। शिवपूजन सहाय का व्यवहार उन्हें अपने प्रति सरासर अन्याय लगा। दुनिया भर में कहते फिरे, आखिर हम से कहने में इतना संकोच क्यों था? 'मतवाला' का प्रकाशन मुनाफ़े के लिए तो किया न गया था। यहाँ मालिक और नौकर का सम्वन्ध तो था नहीं, सव लोग मिलकर भाइयों की तरह काम करते थे।

महादेवप्रसाद सेठ ने क्षुव्ध होकर शिवपूजन सहाय को पत्र लिखना शुरू किया।

Matwala
23, Shanker Ghose Lane,,
Calcutta.
२६-३-१९२४

भाई शिवपूजन,

तुम मुझे अपने पत्रो मे बराबर 'पूज्य' और 'आदर प्रणाम' आदि शब्दों से संबोधित करते रहे हो। यह पूज्य और आदर-प्रणाम का प्रयोग मुझे आज के पहले तक कितना संकुचित और लज्जित करता रहा है यह कहकर नहीं जताया जा सकता। परन्तु आज इस पत्र में मैं तुम्हारे लिए 'त्वंकार' का ही प्रयोग करता हूँ। इससे बहुत सम्भव है, तुम्हें कुछ आश्चर्य होगा, पर मैंने उक्त शब्दो के प्रयोग के द्वारा प्राप्त अपने अधिकार को काम मे लाना ठान लिया है। मेरे ऐसा करने का एक खास कारण है। आज, ज़रा देर पहले श्री निराला महाराज की जुबानी यह खबर पाकर कि तुम मेरे और मुन्शीजी के व्यवहार—निष्ठुर व्यवहार—से दु खित और असतुष्ट होकर यहाँ से गए हो, मुझे अनिर्वचनीय दुःख हुआ। पहले तो त्रिपाठीजी ने यह बतलाने मे स्पष्ट इनकार किया कि उन्हे यह खबर कैसे लगी परन्तु हम लोगो के विशेष पीड़ा-पीड़ी करने पर उन्होंने कहा कि उनसे रामलाल ने कहा और रामलाल से पूछने पर पता लगा कि उनसे वृजकिशोर ने कहा और इतना ही नही वृजकिशोर ने अपने आफिस मे कनका बाबू आदि से भी कहा था। खैर, वृजकिशोर से पूछा गया तो पता लगा कि तुमने वृजकिशोर से कहा था कि तुम्हे आशा थी कि तुमको घर जाने के समय ३००) तो अवश्य ही दिये जाएँगे। पर मैंने तुमारी इस आशा के विपरीत केवल २००) के लिये मुन्शीजी को लिखा और तुम्हे वणिक् प्रेस को अनकरीब १००) देने थे, वह तुम न दे सके। इससे तुम्हारी घरवाली (यह स्त्रीलिंग प्रयोग मैं अपनी ओर से कर रहा हूँ, उन्होने 'घरवाले' कहा था) नाराज़ होगी और शायद तुम्हे यहाँ आने की आज्ञा न मिलेगी। यह खबर पाकर मुझे कितनी आत्मग्लानि हुई यह कह नही सकता—'सुनाऊँ दर्द दिल ताक़त अगर हो सुनने वाले मे'। खैर, इस पत्र मे हृदय और उसके भावों के विवेचन की आवश्यकता नही। उचित और उपयुक्त भी नहीं; क्योकि किसी के हृदय पर सन्देह हो जाने पर चाहे वह लाख सफाई दे परन्तु उसका विशेष फल नही होता। अतएव मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देने के विचार से तुमारे सामने एक प्रश्नमाला रखता हूँ। इनका स्पष्ट उत्तर दो। और फौरन दो।

(१) क्या आज तक तुमारे साथ मैंने कभी कोई ऐसा व्यवहार किया है जिससे तुम्हे यह विश्वास हुआ कि ये २००) तुम्हे मासिक वेतन के हिसाब से दिए गए है ?

(२) क्या तुम इतने दिनो तक हम लोगो के साथ रहकर यह नही समझ सके थे कि 'मुन्शीजी' का और आपका अधिकार मैंने [मैं] अपने से भी अधिक समझता था ?

(३) जब तुम यह जान चुके थे कि मैंने २००) का प्रबन्ध कर देने को लिखा है तब तुमने अपनी आवश्यकता मुझे क्यों नही जताई ?

(४) तुमसे मुन्शीजी ने जब कहा कि 'महादेव बाबू' के लिखने से यह न समझिए कि आवश्यकता होने पर मैं (मुन्शीजी) सौ-दो सौ का प्रबन्ध और न कर दे सकूँगा; आप अपनी आवश्यकता बताएँ, तब तुमने उनसे वणिक् प्रेस की बात क्यों न कही ?

(५) मेरे पत्र (private) को पढने पर क्या तुम यह न समझ सके कि अभाव के कारण ही मैंने उपस्थित २००) का प्रबन्ध करने के लिए लिखा था ?

(६) मेरा तुम्हारे प्रति जो प्रेम भाव था उसे क्या तुम समझ नहीं सके या समझकर भी तुम यह अनुमान न कर सके कि मैं तुम्हारे जैसे मित्रो के लिए क्या कुछ कर सकता हूँ ?

खैर इन प्रश्नों का उत्तर तुम दो और मेरा बयान मुझसे सुनो—

(१) मेरी नीति सदा से हिसाबे दोस्ताँ दर्दे दिल रही है।

(२) मेरा हृदय कभी किसी को अपन (अपना) नौकर समझने की धृष्टता करने का साहस नही करता।

(३) स्पष्ट व्यवहार— निस्संकोच व्यवहार ही पसन्द करता हूँ। अधिक इस समय क्षोभवश लिखा नही जाता, इसलिए अब बस।

अन्त में तुम्हें अपने-आप की हुई उस प्रतिज्ञा की ज़ोरदार याद दिलाता हूँ जो 'मतवाला' के सम्बन्ध में तुमने की थी। आशा है उसे भूले न होगे।

उत्तर दो और यह सूचित करो कि कब तक आते हो। एक प्रस्ताव भी लिखता हूँ। तुम मतवाला का काम कितने रुपये मासिक पर करना चाहते हो यह अब स्पष्ट और निस्संकोच सूचित करो। पर यह विश्वास रखो कि यह प्रस्ताव मैं हार्दिक प्रसन्नता के साथ नहीं वरन् बृजकिशोर से कही हुई तुम्हारी बातों को सुनकर लिख रहा हूँ।

महादेवप्रसाद सेठ ने पत्र आवेश में लिखा। कई जगह 'तुम्हारी' के स्थान पर 'तुमारी' लिख गये। अन्त मे हस्ताक्षर करना भूल गये। उनकी समझ मे न आ रहा था कि ऊपर से एकदम भोले बाबा लगने वाले यह शिवपूजन सहाय भीतर से इतने घुटे हुए कैसे निकले। सबके साथ खाते-पीते, हँसते-बतियाते थे। मन की बात मन में डाले रहे। 'मतवाला' से जो आमदनी होती है, वह 'मतवाला' के लिए है, पुस्तक-प्रकाशन के लिए है, लेखकों के लिए है, अकेले महादेवप्रसाद के लिए नही है। हिसाब-किताब सब मुन्शीजी के हाथ में है। पहले मरते दम तक काम करने की प्रतिज्ञा की, फिर छह महीने में ही भाग खड़े हुए। दुनिया के लोग एक ही संबन्ध समझते हैं— मालिक और नौकर का। अच्छा, वही सही। बताये कितनी तनखाह पर आयेंगे।

पर वह कितनी तनखाह पर आयेंगे, यह कहने को शिवपूजन सहाय न आज तैयार हुए, न कल। लखनऊ पहुँचकर वह 'माधुरी'-कार्यालय में काम करने लगे। यहाँ का वातावरण बिलकुल दूसरा था। 'मतवाला'-मंडल में शामिल होकर वह नौकर-मालिक का सम्बन्ध भूलने लगे थे। उसकी याद यहाँ फिर ताजा हो गई। संपादक रूपनारायण पांडेय उनसे स्नेह करते थे, पर 'माधुरी' के स्वामी थे भार्गव लोग। उनके परिवार

से दुलारेलाल भार्गव का घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'माधुरी' के प्रमुख सूत्रधार दुलारेलाल ही थे। स्वाभिमानी शिवपूजन सहाय उनकी धौंस सहने को तैयार न थे। तभी लखनऊ में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। सन् बीस के असहयोग आन्दोलन की लहर अब तक बैठ चुकी थी। वह फिर न उठे, इस इरादे से अंग्रेज शासक साम्प्रदायिक नेताओं को बढ़ावा दे रहे थे। शिवपूजन सहाय जान लेकर भागे।

रूपनारायण पाण्डेय ने उन्हें फिर बुलाने की कोशिश की। बड़े आग्रह से लिखा, "दुलारेलालजी अभी बाल्यावस्था के प्रभाव से उत्तीर्ण नहीं हो पाये हैं। अतः उनकी ओर से आपको कोई शिकायत न होनी चाहिए।"[1] पर शिवपूजन सहाय को लखनऊ लौटने की कोई जल्दी न थी।

उधर कलकत्ते में गुरु ईश्वरीप्रसाद शर्मा, 'मतवाला' ने किस लेखक के कितने रुपये दबा लिये हैं, इसका हिसाब लगाये बैठे थे। चन्द्रशेखर शास्त्री का हवाला देते हुए उन्होंने शिवपूजन सहाय को सलाह दी, "शास्त्रीजी अपनी घात में हैं—'मतवाला' वाले अपनी में। तुम अपनी घात में रहो और मैं अपनी (में), फिर तुम देखोगे कि कैसा मजा आता है। ये केवल लेखक बेचारों को धोखा देना जानते हैं···सत्यवादी हरिश्चन्द्र बनने का काम नहीं। यह दुनिया मकर की है—सफाई का यहाँ कुछ भी मोल नहीं है।"[2] शिवपूजन सहाय के सामने उन्होंने यह प्रस्ताव भी रखा; वह आकर ईश्वरीप्रसाद की जगह काम करने लगें, तनखाह आधी-आधी बाँट लेंगे। कलकत्ता आकर 'मतवाला' से रुपये ज़रूर वसूल करें पर उसमें काम न करें, न और कहीं काम करने का प्रतिज्ञापत्र लिखें।

शिवपूजन सहाय को यह प्रस्ताव भी बहुत पसन्द न आया। वह न कलकत्ते गये न लखनऊ। कुछ दिन के लिए उन्होंने अपने गाँव में डेरा डाला। उनके अलग होने से 'मतवाला' की लोकप्रियता में कोई कमी न आई। ग्राहक-संख्या बढ़ती गई और बढ़ते-बढ़ते दस हजार तक पहुँच गई। 'मतवाला' हिन्दी के नये-पुराने लेखकों को साथ लेकर आगे बढ़ रहा था। उसने कुछ कवियों-संपादकों की तीखी आलोचना की थी तो बहुतों को सराहा भी था। निराला के साथ नाथूराम शंकर शर्मा की रचनाएँ अक्सर उसमें छपी थीं। जब-तब मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ भी उसमें प्रकाशित हुई थीं। नई पीढ़ी के प्रतिभाशाली कवियों में 'मतवाला' ने सुमित्रानन्दन पन्त की कविताएँ ही न छापी थीं, उन पर एक जोरदार प्रशंसात्मक लेख भी छापा था जिसके लेखक थे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।

फिर भी बहुत-से आचार्य 'मतवाला' से रुष्ट थे। वे देव-बिहारी की चटसार से विद्या पढ़कर आये थे। रवीन्द्रनाथ उन्हें फूटी आँखों न सुहाते थे, पर इस समय सारी दुनिया में उनका नाम हो रहा था, भारत के तमाम नये साहित्यकार उन्हें पूजते थे। आचार्यों का मत था कि रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ही हिन्दी के नये लेखक साहित्य की खेती चरे जा रहे हैं। कहाँ बिहारी की वह कारीगरी, कहाँ यह ऊबड़-खाबड़ बेतुके छन्द की कविता! 'मतवाला' के माध्यम से यह नयी कविता रीतिवादी कविता को ही नहीं, धार्मिक-नैतिक-राष्ट्रवादी कविता को भी मैदान से खदेड़ रही थी। इस कार्य

में प्रमुख भूमिका थी निराला की।

'मतवाला' की लोकप्रियता बढ़ी, इसके साथ उस पर हमले भी शुरू हुए। इन हमलों का खास लक्ष्य थे—निराला।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी कलकत्ते के सम्मानित साहित्यकार थे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व कर चुके थे। अधिकांश चतुर्वेदी घर में ब्रजभाषा बोलते हैं। ब्रजभाषा कविता पर उनकी विशेष ममता होना स्वाभाविक है। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी निराला से स्नेह करते थे, 'मतवाला' कार्यालय में आकर उनका अभिनय देखते थे, कविताएँ सुनते थे, स्वयं तरह-तरह के रोने की नकल करके सबका मनोरंजन करते थे। पर निराला की काव्य-शैली कौतुक की चीज़ न होकर संक्रामक रोग की तरह फैलती जा रही थी। उन्होने निराला के मुक्तछन्द की पैरोडी लिखी और उसे 'शिक्षा' पत्रिका में छपवाया। यदि उन्होंने उसे 'मतवाला'-संपादकों के पास भेजा होता, तो वे उसे सहर्ष प्रकाशित कर देते। जब वह 'शिक्षा' में छपी, तो मुन्शी नवजादिकलाल ने 'मतवाला' का एक पूरा पृष्ठ भरके उसे पुनर्मुद्रित कर दिया। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का परिचय मोटे अक्षरों मे छापा, मुक्तछन्द की पैरोडी साधारण टाइप में :

द्वादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन
के

सभापति, सुप्रसिद्ध हास्यरस-रसिक हिन्दी के 'मौजी' लेखक कविवर श्रीमान् पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का, हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'-लिखित 'अनामिका' पुस्तक के

विषम छन्दों में प्रथम
प्रयास
अनामिका!

आयी अनामिका अद्भुत,
धन्यवाद देता हूँ,
करूँ क्या आलोचना मैं
और दूँ क्या सम्मति भी।
देखा पढा सोचा किन्तु
समझ मे न आया कुछ
अद्भुत है आविष्कार
रचना भी नयी है।
कविता है,
छन्दोबद्ध; किन्तु नही
गद्य है न पद्य है
दोनों का मिश्रण है
अजब अनूठी यह अकथ कहानी है

क्षम्य है बेतुका छन्द
बोली बोलचाल की भी
किन्तु अमाजेनीय [अमार्जनीय ?] है
छन्दच्युत पदावली
स्वेच्छाचारी अनुचित है
आदर के योग्य नही
नियम विरुद्ध कार्य
नूतन भी निषिद्ध है ।[३]

कविता समझ में नही आती, छन्द बेतुका है, पदावली छन्दच्युत है, इस तरह की कविता नियमविरुद्ध स्वेच्छाचार है—छायावाद के सम्बन्ध मे इस तरह के विचार प्राय: सभी रूढिवादियो के थे। चतुर्वेदीजी ने बडे व्यवस्थित ढंग से उन्हे अपनी नकल मे प्रस्तुत किया। नकल छापकर 'मतवाला'-मंडल ने निराला के प्रति अपनी दृढ आस्था का परिचय दिया, लेकिन यह तो शुरूआत भर थी।

प्रयाग से एक पत्रिका निकली थी 'मनोरमा'। उसने एक संपादकीय नोट लिखा, 'हिन्दी कविता की गति'। इस नोट में हिन्दी कविता को बँगला और अंग्रेजी की नकल बताया गया। "जिन दिशाओं से यह नूतन लालिमा दृष्टिगोचर हो रही है वह बँगला और अंग्रेजी है···हमारे अधिकांश परिवर्तनवादी कवि बँगला के उत्कृष्ट कवियो की प्रतिभा से प्रतिभा-युक्त, तपस्या से तपस्वी, और साधना से साधक बन रहे हैं।"[४] इस आलोचना का लक्ष्य निराला थे, यह इस बात से स्पष्ट हो गया कि नोट में निराला की कविता 'सिर्फ एक उन्माद' से उद्धरण दिया गया था। और भी स्पष्ट रूप से निराला और 'मतवाला' का मजाक उडाते हुए 'मनोरमा' मे कविता छपी—'भंगी की मौज'।[५] इसमे कहा गया था—

ब्रजभाषा कविता उन्मूलन, जिस प्रकार सत्वर हो जाय।
बजे हमारी विजय-दुन्दुभी, नव प्रतिभा-महिमा अधिकाय।
टाँग तोडने मे कविता की, मैं ही सुभट निराला हूँ।
मित्र सदा मैं भंग-रंग मे, मग्न हुआ मतवाला हूँ॥

'मतवाला' के लिए उत्तर देना आवश्यक हो गया। मुन्शी नवजादिकलाल ने लेख लिखा 'अन्ध परम्परा'। निराला की कविताएँ समझ मे नही आती, यह कहने वाले को उन्होने समझाया कि उनके भाव व्यापक, भाषा संयत और व्याकरणसम्मत होती है, थोडा ध्यान देने से कविता समझ मे आ जाती है। मुक्तछन्द के बारे में लिखा, "जब कविता का वेग स्वभावत: अबाध गति से निकलता रहता है तब उसकी गति विषम हो जाती है।" मुन्शीजी ने निराला की कविता के लिए ऊँचा दावा पेश किया, "निरालाजी की कविताएँ उस हिन्दी की सम्पत्ति है जो हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी। आपके भावो मे कही भी प्रान्तीयता नही है।···हिन्दी साहित्य मे निरालाजी का स्थान कितना ऊँचा है, यह वही समझते है जो उनकी कृतियो को ध्यान लगाकर पढते है और जो हिन्दी तथा दूसरी भाषाओ के धुरन्धर विद्वान समझे जाते हैं।"[६]

नयी कविता बँगला और अंग्रेजी की नकल है, इस आक्षेप का उत्तर देते हुए मुन्शीजी ने कुछ अनावश्यक चुनौती के स्वर में कहा, "अच्छा होता यदि आप एक ही उदाहरण अपने वाक्य की पुष्टि मे रख देते, बँगला की कविता और 'निराला' जी की कविता मे साम्य दिखला देते। मैं हिन्दी संसार से अनुरोध करता हूँ कि वह 'निराला' जी की मौलिकता में प्रमाण देकर त्रुटि दिखलावे, इससे हिन्दी संसार का वडा लाभ होगा। अन्यथा एक मौलिक और युगप्रवर्तक कवि पर इस तरह आक्षेप करने से लेखक की ही क्षुद्रता प्रमाणित होगी।"

निराला की गरिमा की और भी उदात्त घोपणा करते हुए, उनके और 'मतवाला' के सम्बन्ध पर जोर देते हुए मुन्शीजी ने लिखा, " 'निराला' जी क्या हैं, क्या नहीं, उनका स्थान ऊँचा है या नीचा, यह समय खुद जाहिर कर देगा। मैंने उन्हे देखा है, उनकी कवित्वशक्ति और उनकी भावुकता के मुझे यथेष्ट प्रमाण मिल चुके है, और ऐसे युगप्रवर्तक कवि को प्राप्त करके 'मतवाला' अपने को धन्य भी समझता है। हम [मैं] पहले भी लिख चुका हूँ और अब भी लिखता हूँ कि 'निराला' जी किसी समाज या किसी प्रान्त के कवि नही, वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम महाकवि है।"

लेख नवजादिकलाल श्रीवास्तव के नाम से छपा; उसमे दी हुई युक्तियाँ निराला की थीं।

'मनोरमा' को जवाव मिल गया। पर इस जवाव मे जो चुनौती थी, वह न केवल रीतिवादी कवियों को बुरी लगी, वरन् जो खडी वोली मे धार्मिक और राष्ट्रीय कविता करते थे, उन्हें भी अखरी। 'मतवाला' कह रहा था, निराला राष्ट्रभापा हिन्दी के प्रथम महाकवि है! मानो इनसे पहले खड़ी वोली के दूसरे कवि घास छीलते रहे हैं! खड़ी वोली के इन पुराने कवियों में अनेक हिन्दी-उर्दू-संस्कृत के साथ बँगला के भी अच्छे जानकार थे। वे 'मतवाला' में निराला की रचनाएँ ध्यानपूर्वक पढ रहे थे। ये एक प्रतिद्वन्द्वी की रचनाएँ है, वे अच्छी तरह समझ रहे थे। मौके की तलाश मे थे कि ऐसा दवोचें कि युगप्रवर्तक महाशय जमीन से फिर न उठ पायें। उन्हें निराला की दो ऐसी रचनाएँ मिल गईं जो रवीन्द्रनाथ की कविताओ के आधार पर लिखी गई थीं। जहाँ-तहाँ वहुत मामूली परिवर्तन किये गये थे। 'मतवाला' ने चुनौती दी थी कि जो समझता हो कि निराला ने बँगला से भाव उधार लिए है, वह प्रमाण-सहित मैदान मे आये।

राष्ट्रवादी दल ने चुनौती स्वीकार की। निराला और रवीन्द्रनाथ के भावसाम्य पर एक लम्वा लेख 'प्रभा' मे प्रकाशनार्थ उसके सम्पादक वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के पास पहुँच गया। 'नवीन' जी का एक पैर राष्ट्रवादी खेमे मे था, दूसरा छायावादी खेमे में। लेख मे जो वाते कही गई थी, उन्हे सत्य लगी। पर वह 'मतवाला' के प्रशंसक थे, प्रभा' में निराला की कविताएँ छप चुकी थी। उन्होने तय किया कि 'मतवाला' को पहले से वता देना चाहिए कि 'प्रभा' मे निराला पर ऐसा लेख छपने जा रहा है।

मुन्शीजी के पास 'नवीन' का पत्र पहुँचा। उन्होने पत्र निराला को दिखाया। निराला को यह न मालूम था कि कौन-सी कविताओं मे 'प्रभा' के लेखक ने भावसाम्य

दिखाया है, पर यह तो वह जानते ही थे कि उन्होंने कई कविताएँ रवीन्द्रनाथ की रचनाओ के आधार पर लिखी है। उन्हे यह भी विश्वास था कि इस तरह की दो-चार कविताओ से उनकी मौलिकता पर आँच नही आ सकती। उन्होंने मुंशीजी को समझाया, कुछ कविताएँ रवीन्द्रनाथ को पढ़ने के वाद लिखी थी, जहाँ-तहाँ कुछ भाव आ गये होगे पर अधिकांश कविताएँ मौलिक ही हैं। मुंशीजी आश्वस्त हुए। उन्होने 'नवीन' को पत्र लिखा कि लेख 'मतवाला' मे छपने भेज दीजिए; वह विरोधी आलोचना से डरता नही, उसे सहर्ष स्थान देगा। पर 'नवीन' लेखक का नाम गुप्त रखना चाहते थे; उन्होने लेख 'मतवाला' मे भेजना उचित न समझा। लेख मार्के का था; छपने पर खूब चहल-पहल रहेगी, 'प्रभा' का नाम होगा। उन्होने मुंशीजी को सूचित किया कि लेख प्रेस मे जा चुका है, उमे 'मतवाला' में छपने भेजना संभव नहीं है। मुशीजी ने विचार किया कि 'प्रभा' मे लेख छपने से पहले ही 'मतवाला' मे भाव-साम्य का स्पष्टीकरण प्रकाशित हो जाना चाहिए। निराला स्वयं इस सम्वन्ध मे कुछ लिखें। निराला ने 'मतवाला' मे प्रकाशनार्थ मुशीजी के नाम पत्र लिखा :

"श्रद्धेय मुंशीजी,

मतवाला के गत किसी अंक मे आपने मेरे सम्वन्ध मे जो कुछ लिखा है उस पर मैं आप से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आशा है, आप मेरा पत्र 'मतवाला' में प्रकाशित करा देंगे।

मेरे कुछ मित्रो का आग्रह है, अपनी कविता की मौलिकता और अमौलिकता के सम्वन्ध मे मैं स्वयं कुछ लिखूं, अतएव स्वतन्त्र रूप से विशेप कुछ न लिख कर मैं आपके पत्र मे ही उनके सम्वन्ध मे कुछ निवेदन करूँगा।

आपके पत्र मे मेरी जितनी कविताएँ प्रकाशित हो चुकी है, उनमे मौलिक कघिताओ की संख्या ही अधिक है। उन अधिक-संख्यक कविताओं का नामोल्लेख मैं निष्प्रयोजन समझता हूँ। अतएव मै केवल उन्ही कविताओ का उल्लेख करूँगा, जिन्हे मैंने पहले डाक्टर टैगोर की कविताएँ पढ लेने पर, दो भिन्न रूपो के चित्रण मे सादृश्य देखने के अभिप्राय से, लिखा था। मेरी 'क्यों हँसती हो, कहाँ देश है' कविता की ४३ लाइनों मे ७-८ लाइनें डाक्टर टैगोर की है। मेरी 'प्रिय से' और 'क्षमा-प्रार्थना' में डाक्टर टैगोर के ही भाव अधिक है। कविवर की 'जीवन-देवता' का उद्देश्य दूसरा है, मेरा दूसरा, उनकी कविता मे वही भाव दूसरी ओर झुकाए गये हैं, मेरी मे दूसरी ओर। मेरी यह कविता उन्ही के भावो पर लिखी गई है। 'तट पर' मे चार-पाँच लाइने महाकवि की है। 'ज्येष्ठ' के भाव मे उनके वैशाख के कुछ भाव आए है। सम्भव है, और किसी कविता मे उनका कोई भाव आ गया हो, परन्तु उसके लिए मैं कुछ कह नही सकता। इस सम्वन्ध मे वहुत कुछ लिखने की इच्छा थी। परन्तु किसी विशेप कारण से आज यही तक।

एक वात और। मेरी 'अनामिका' पुस्तिका की 'लज्जिता' कविता को सुना, लखनऊ के कोई साहित्यसेवी मेरे एक मित्र से रविवावू की कविता का अनुवाद या ऐसा ही कुछ वतलाते थे। सौभाग्य से 'केन जामिनी ना जेते जागाले ना नाथ वेला होलो मरी

लाजे' में भी गाता हूँ। मैंने अपने मित्र को दोनों के पद सुनाये। न जाने क्यों, उन्होंने उसे न अनुवाद माना और न भावापहरण।

'कवीन्द्र' मे मेरी एक कविता निकली है, मुझे उसका नाम याद नहीं। कोई सज्जन उसमें भी रविवाबू के काव्य की छाया पाते हैं। कलकत्ते मे मेरे एक मित्र से उन्होंने कहा भी था—यह चोरी मेरी समझ मे नही आई। रविवाबू की कविता के साथ उसका उद्धरण करने से, सम्भव है, मेरी समझ में आ जाय।

विनीत—
सूर्यकान्त"[७]

३० अगस्त के 'मतवाला' में निराला का पत्र छप गया। साथ मे सम्पादक ने यह नोट दिया, "यह पत्र निरालाजी ने मुंशी नवजादिकलाल को लिखा था। पत्र का सम्बन्ध उनके लेख से है, इसलिए प्रकाशित किया गया।"

अगले हफ्ते 'प्रभा' का सितम्बर वाला अंक आया। लेख का शीर्षक था—'भावों की भिड़न्त'; लेखक—'श्रीयुत भावुक'। निराला की मौलिकता के लिए जो दम्भपूर्ण-सा लगने वाला दावा किया गया था, 'भावुक' ने उसे प्रमाण-सहित तहस-नहस कर दिया था। *खास बात यह कि 'मतवाला' को जवाब उसी शैली में मिला था,* जिसमे वह 'माधुरी', 'सरस्वती' आदि की आलोचना किया करता था।

लेख के आरम्भ में भावुक ने भाव-साम्य के अनेक प्रकार बताये और ऐसी गम्भीरता से उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया मानो नया लक्षण-ग्रन्थ रच रहे हो। "छन्द की कैद नही; भावों पर ही दार-मदार नहीं; भाव, शब्द, पद, अनुप्रास जो कुछ लेते बने—सभी लिया जा सकता है! हाँ, थोडी-सी तोड़-मरोड़ की आवश्यकता अवश्य रहती है। करना चाहे तो यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी कर सकते हैं। सबसे बड़ी खूबी इसमें यह होती है कि अर्थ-संगति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नही रहती!"

भाव-साम्य के प्रति लोगों के विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा करते हुए भावुक ने लिखा, "भावों की इस भिड़न्त, लड़न्त या टक्कर का वर्णन लोग भिन्न-भिन्न भाँति से किया करते हैं। सीधे लट्ठमार लोग कहते हैं—यह चोरी है, डाकेजनी है। शान्ति-प्रिय लोग इतना ही कह देते हैं कि इस कविता का भाव अमुक कविता से मिलता-जुलता-सा है। और जिन्हें आलोच्य कविता के कवि से प्रेम और उसकी कविता के प्रति पक्षपात होता है, वे चतुर जन कहते हैं कि उस कवि से—जिसका भाव लिया गया है—यह बात इस तरह कहते नही बनी जिस तरह इसने कही, जिस बात को कहने के लिए उसने इतना बडा पद्य बनाया उसे इसने इतने छोटे पद्य मे कर दिया; यह ले उड़ा, उसने उससे मज़मून छीन लिया! इत्यादि।"

इस भूमिका के बाद 'भावुक' ने दो कविताएँ ली। एक 'बँगला के विश्व-विख्यात कवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की' और दूसरी 'कलकतिया' 'मतवाला' के शब्दों में—'हिन्दी के युगप्रवर्तक श्रीसूर्यकान्तजी त्रिपाठी निराला की'। पहली कविता का नाम है 'विजयिनी', दूसरी का नाम है 'तट पर' जो २ फरवरी सन् '२४ के 'मतवाला' मे प्रकाशित हुई थी। दोनों कविताओं से काफी अंश उद्धृत करने के बाद भावुक ने

लिखा, "रविवाबू की कविता मे आच्छोद सरसी का वर्णन है; निराला की कविता मे क्षीणकटि तटिनी है। बँगला-कविता मे रमणी सुनील-वसना है; हिन्दी कविता मे वह वसन्ती रंग के कपड़े पहने है। अन्य उपकरण एक-से है, वसन्त का वर्णन, सुखद वायु, शिलाखण्ड, सारस का जोडा, रमणी का स्नान के वाद सजल चरण-चिन्ह रखना, लावण्यपाश मे वँधा यौवन इत्यादि। बँगला-कविता मे सूर्य का प्रकाश रमणी के नग्न अगो पर पडता है; हिन्दी कविता मे वायु उसके विभिन्न अंगो को पोछ देती है। बँगला कविता मे कामदेव अपना पुष्प-धनु-वाण रमणी के चरणो मे रख देता है, हिन्दी-कविता में वसन्त अपना मुकुट रखता है।"

इसके वाद 'भावुक' ने ३ मई सन् '२४ के 'मतवाला' मे प्रकाशित 'क्यों हँसती हो ?—कहाँ देश है ?' कविता और रवीन्द्रनाथ की 'निरुद्देश्य यात्रा' मे साम्य दिखाया। मूल वँगला कविता मे ८४ पंक्तियाँ है, हिन्दी कविता मे ४३ ! "परन्तु इन थोडी ही पंक्यिो मे मज़मून साफ़ छीन लिया गया है ! गागर मे सागर इसी को कहते है।" रवीन्द्रनाथ और सूर्यकान्त इन दोनों नामो के अर्थसाम्य की ओर सकेत करते हुए 'भावुक' ने लिखा, "दोनो कविताओ मे से अधिक पक्तियाँ उद्धृत न करके केवल उतनी ही उद्धृत की गई है जितनी रवि और सूर्य की भाँति एक ही मालूम होती हैं।" दोनों कविताओं मे कुछ छोटे-मोटे भेद भी दिखा दिये जिससे यह मालूम हो कि भाव-साम्य छिपाने के लिए लेखक ने कारीगरी की है। इसके वाद अत मे वडी शालीनता से भावुक ने लिखा, "इस प्रकार मीलान करने से यह मालूम हो गया कि 'हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि' श्रीसूर्यकान्तजी त्रिपाठी की 'तट पर' और 'क्यो हँसती हो ? कहाँ देश है ?' ये दोनो कविताएँ श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'विजयिनी' और 'निरुद्देश यात्रा' नाम की कविताओं की टक्कर की है ! क्या हिन्दी संसार, हिन्दी की इस गौरव-वृद्धि के लिए, श्री त्रिपाठीजी महाराज को ववाई या धन्यवाद न देगा ? और क्या कोई भव्य भावुक इस वात का अन्वेपण न करेगा कि इसी प्रकार उनकी और कविताएँ भी रविबाबू या अन्य किसी की कविताओ से टकराती है या नही ?"

'प्रभा'-सम्पादक वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लेख का महत्व जताने के लिए उस पर एक सम्पादकीय नोट भी लिख दिया। उसमे मुशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव को शिक्षा दी कि पंक्तियाँ उद्धृत करके मौलिकता का दावा गलत सावित करने की चुनौती न देते तो अच्छा था। मुशीजी को ललकारते हुए तार दिया, लेख का जवाव दीजिए।

'प्रभा' का अंक आने के वाद 'मतवाला'-कार्यालय मे सन्नाटा छा गया। महादेवप्रसाद सेठ और मुंशी नवजादिकलाल अव तक निराला की मौलिकता के प्रति आश्वस्त थे। वालकृष्ण शर्मा के पत्र और निराला की वातचीत से इतना ही समझे थे कि रवीन्द्रनाथ के भावो से मिलते-जुलते दो-चार भाव कही आ गये होंगे। निराला ने कई कविताएं पूरी की पूरी रवीन्द्रनाथ की रचनाओ के आधार पर लिखी हैं, इसका उन्हें गुमान न था। खैर, 'प्रभा' के लेखक को जवाव तो देना ही था। निराला से अधिक 'मतवाला' की इज्ज़त का सवाल था। निराला से सलाह-मशविरा करने के वाद मुशीजी ने लेख लिखा—'निराला वनाम रवीन्द्र'।

मुंशी नवजादिकलाल एक बात बखूबी समझ रहे थे। निराला की मौलिकता के सम्बन्ध में उन्होंने दावा किया था ९ अगस्त के 'मतवाला' में; निराला का स्पष्टीकरण छापा था ३० अगस्त के अंक में। अपने सम्बन्ध मे निराला को जो कुछ कहना था, उसके लिए वे तीन हफ्ते रुके क्यों रहे? इस सवाल का जवाब देते हुए मुशीजी ने लिखा, "हिन्दी संसार से जहाँ मैंने 'निराला' जी की मौलिकता में त्रुटि दिखलाने का अनुरोध किया है, वहाँ, पहले निरालाजी का नोट जिसे पत्राकार दो बार छापना पड़ा है, छापने के लिए प्रेस में दिया था, परन्तु छोटा-सा चुटका न जाने किसके भ्रम से कम्पोज होने के पहले ही खो गया।"[८]

बचाव के लिए इतनी नाकेबन्दी करने के बाद मुंशीजी ने भावुक से पूछा, "आप मौलिकता का क्या अर्थ लगाते हैं?" यह प्रश्न इस विचार से किया था कि मौलिकता के दार्शनिक-विवेचन मे 'भावुक' जी फँस जायँ। फिर यह प्रस्ताव किया कि 'भावुक' मौलिकता का जो भी अर्थ करेंगे, उसी को कसौटी मानकर 'मतवाला' पचास से अधिक निराला की मौलिक कविताएँ देगा।

यहाँ लेख की शैली में किंचित् आवेश आ गया। फिर भी लेखक ने 'प्रभा'-सम्पादक को ही सावधान किया कि आवेश मे मै नही, 'तुम' हो! वह आवेश में थे, इसके अनेक प्रमाण दिये। 'नवीन' ने पत्र लिखा था मुशीजी को, पर सम्पादकीय नोट में कहा कि पत्र निराला को लिखा था! फिर तार दिया। निराला के बारे में 'मतवाला' मे लिखने को आमन्त्रित किया था, सम्पादकीय नोट में इसका जिक्र नही किया। "यदि आप आवेश में नही आए तो क्या आप इस लेख को महीने-भर अप्रकाशित नही रख सकते थे?"

'प्रभा'-संपादक आवेश में थे, यह सिद्ध करने के बाद निराला की मौलिकता के बारे मे मुंशीजी ने व्यक्तिगत जानकारी तथा बँगला और हिन्दी के विद्वानों के मतों का उल्लेख किया। "निरालाजी की मौलिकता के सम्बन्ध में मुझे अनेक प्रमाण मिल चुके हैं। आप १५ साल की उम्र मे संस्कृत-कविता करते थे। स्थानाभाव है, फिर कभी उन कविताओं को प्रकाशित करूँगा। मैंने अपनी आँखों देखा है, कई पुस्तकों के प्रणेता—संसार का भ्रमण करने वाले—अंग्रेजी और बँगला के पत्रों के संपादक—बाबू यामिनी मोहन घोष के दूसरे विवाह मे, कहने के साथ ही 'निरालाजी' ने बँगला मे कविता लिख दी और बंग-समाज मे उसका आशातीत आदर हुआ। तब से यामिनीबाबू-जैसे बंगभाषा के आचार्य जब कोई कविता लिखते है तो 'निरालाजी' को अवश्य दिखाते है। मैंने देखा है, निरालाजी ने किसी मित्र के विवाह मे हिन्दी और बँगला दोनों भाषाओं में कविताएँ लिखी, हिन्दी की कविता लोगो की रुचि का विचार करके लिखी गई थी, इसलिए उसके भाव बँगला की कविता तक पहुँच नही सके। पढ़कर कई बंगाली-सज्जनो (ने) आपसे बँगला लिखने का अनुरोध किया। इस पर आपने अपनी दोनों कविताएँ पूज्यपाद विद्यावयोवृद्ध श्रीमान् पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी की सेवा मे भेजकर बँगला में कुछ लिखने की आज्ञा-प्रार्थना की। मुझे विश्वास है, कमर्शल प्रेस के पास रहने के कारण प्रभा-संपादक को मालूम होगा, 'निरालाजी'

द्विवेदीजी महाराज के पवित्र स्नेह के पात्र हैं। अस्तु, द्विवेदीजी महाराज ने हिन्दी मे ही लिखते रहने की आज्ञा दी। यद्यपि आपने उनकी बँगला कविता को ही हिन्दी की अपेक्षा अच्छी बतलाया। मैंने देखा है, अंग्रेजी पर भी 'निरालाजी' का उतना ही अधिकार है जितना अवगत अन्य भाषाओं पर।"

मौलिकता के समर्थन मे इतने प्रमाण देने के बाद कविताओं मे सादृश्य का कारण बताया। वह इस प्रकार : "निरालाजी के रवीन्द्रबाबू की कविताओं का अनुरूप खीचने का उद्देश्य भी मुझे मालूम है। आप हिन्दी और बँगला में सादृश्य देखना चाहते है। बंगालियो के सामने जिस आदर्श के रखने से उनके लिए हिन्दी की शिक्षा सुगम होगी—हिन्दी पढने मे उत्साह बढेगा, उसकी चेष्टा करते है, परन्तु इसमे कोई यह न समझे कि वे हिन्दी को बँगला बनाना चाहते है या बँगला उनका आदर्श है। 'निरालाजी' की हिन्दी की प्रशंसा द्विवेदीजी महाराज जैसे स्पष्ट वक्ता भी कर चुके है।" मुन्शीजी ने हिन्दी के प्रति बगालियो के उपेक्षाभाव का उल्लेख किया। उन्हे हिन्दी की ओर खीचने के लिए ही निराला ने रवीन्द्रनाथ के कुछ प्रतिरूप प्रस्तुत किए। फिर यह दावा दोहराया कि उनकी मौलिकता सिद्ध करने के लिए पचासो कविताएँ पेश की जा सकती है।

लेख मुन्शीजी ने लिखा, उसमे युक्तियाँ निराला की दी। मौलिकता का अर्थ पूछने वाला दाँव निराला का था। स्वय आवेश मे आने पर विरोधी पर आवेश का आरोप लगाना उन्ही की कला थी। पन्द्रह साल की उम्र से ही वह संस्कृत मे कविता करने लगे थे, अपने बारे मे यह जानकारी निराला ने ही मुन्शीजी को दी। मेरी विद्वत्ता का प्रमाण मेरा संस्कृत-ज्ञान है, मैं बँगला मे कविता ही नही कर लेता, हिन्दी से मेरी बँगला कविता ही अच्छी होती है, द्विवेदीजी की आज्ञा से मैं हिन्दी में लिखता हूँ, वर्ना अब तक बँगला का प्रतिष्ठित कवि होता, वंग-भाषा के आचार्य भी इस्लाह के लिए मुझे अपनी कविताएँ दिखलाते हैं—यह सारी तर्क-योजना हिन्दी मे अपने विरोध से चिढे हुए निराला की थी।

हिन्दी का युग-प्रवर्तक कवि अपनी मौलिकता प्रमाणित करने के लिए विवाहादि अवसरो पर लिखी कविताओ का हवाला दे, बीते युग के वृद्ध आचार्य के स्नेह और सम्मति की दुहाई दे—इसमे न उसका गौरव था, न 'मतवाला' का। 'मतवाला' का व्यंग्य आक्रामक होता था, अभी तक वह दूसरो की खिल्ली उड़ाता रहता था। 'भावो की भिड़न्त' के प्रकाशन के बाद लोग उसकी खिल्ली उड़ाने लगे। 'मनोरमा' ने मुन्शीजी के लेख पर मजाक करते हुए 'चोरी की सफाई' प्रकाशित की। मुन्शी नवजादिकलाल के नाम का रूपान्तर किया—हालपैदालाल निराला का अनोखेजी और 'मतवाला' आफिस का पागल-आफिस।

अनोखेजी की चोरी का भडाफोड़ हुआ तो उन्हें यह हिकमत बतलाई गई :

"साहित्यिक चोरी के मामले मे सबसे पहली बात तो यह करनी चाहिए कि उसे उच्च उद्देश्यो द्वारा प्रेरित कुछ इस प्रकार का प्रयत्न बतलाना चाहिये जो अपनी गरीबी या अमौलिकता के कारण नही बल्कि किसी भाषा के हित में किया गया है।

अनोखेजी के सम्बन्ध में अब आप जब कभी समर्थन-लेख लिखें तब उसमें यह लिखिये—अनोखेजी हिन्दी और बँगला में सादृश्य देखना चाहते हैं···लेकिन यह याद रहे कि मौलिकता के दावे मे ज़रा भी शिथिलता आने देना ठीक न होगा। मौके पर असर डालने और काम निकालने के लिए 'अनोखे कवि' जी को संस्कृत और फारसी आदि भाषाओं का मर्मज्ञ कवि कहने में नैतिक दृष्टि से कुछ भी बुराई नही है। मेरा तो खयाल यह है कि जिस तरह आपद्धर्म्म मे मनु महाराज ने चनड़े के वेग मे रखकर रोटी खाने को बुरा नही कहा, उसी तरह चौर-कर्म के भण्डाफोड़ के समय आप उक्त कविजी की जितनी प्रशंसा करें, उस पर नीति-शास्त्र कोई भी आपत्ति नही कर सकता। मैंने श्रीयुत हालपैदालालजी को निम्नलिखित ढंग पर लिखने की सलाह दी—'अनोखेजी की मौलिकता के सम्बन्ध में मुझे अनेक प्रमाण मिल चुके हैं। आप १५ साल की उम्र मे संस्कृत कविता करते थे···" इत्यादि।[९]

१३ सितम्बर, सन् '२४ के 'मतवाला' में 'निराला बनाम रवीन्द्र' लेख छपा। २० सितम्बर के अक मे 'तिरती है समीर सागर पर'—'बादल राग' वाली कविता छपी। २७ सितम्बर के अंक मे 'दीन' कविता छपी। इसके बाद 'मतवाला' में निराला की कविताएँ छपना बन्द हो गया। इस समय उनका मानवीय करुणा और विद्रोह वाला काव्य-स्वर पूरी तरह सधा हुआ था, रूपान्तरकार वाली भंगिमा समाप्त हो गई थी। 'भावों की भिड़न्त' के प्रकाशन के बाद निराला और 'मतवाला' का सम्बन्ध पहले जैसा न रहा। निराला के व्यक्तित्व से, वार्तालाप और काव्यपाठ से उनके मित्र प्रभावित हुए थे। उनके काव्य की मौलिकता की थाह लेना उनके बस की बात न थी। 'भावुक' की बात सही मालूम होती थी, जवाब में वकील की तरह भले ही बहुत-सी दलीलें दी जाएँ।

महादेवप्रसाद सेठ ने शिवपूजन सहाय को लिखा, "एक बात और जानने की प्रबल आकाक्षा है और आप वह जानते हैं। यद्यपि बात private and confidential है तथापि जान लेने पर भी उस जानकारी को उपयोग मे न लाने की प्रतिज्ञा करता हुआ पूछता हूँ कि प्रभा में भावों की भिड़न्त के लेखक का नाम क्या है?"[१०]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपना संपादकीय कर्तव्य बड़ी खूबी से निबाहा। किसी को उन्होंने कानोंकान ख़बर न होने दी कि 'भावों की भिड़न्त' का लेखक कौन है। शिवपूजन सहाय को भी मालूम न था, महादेवप्रसाद सेठ को बतलाते क्या? यह अफवाह जरूर उड़ी कि चिरगाँव में मुन्शी अजमेरी ने यह लेख लिखा है। पर लेख में जिस विद्या का प्रमाण था, वह मुन्शी अजमेरी के पास न थी।

लेख का शीर्षक 'भावों की भिड़न्त'।

लेखक का नाम भी 'भावुक'।

अनुप्रासों की छटा देखने लायक थी।

"भिन्न भाषा या स्वभाषा का भेद नहीं।"

भावो की भिड़न्त या लड़न्त का वर्णन लोग 'भिन्न-भिन्न भाँति से' किया करते हैं।

"क्या कोई भव्य भावुक इस बात का अन्वेषण न करेगा..."

हठात् 'भारत-भारती' और

'भगवान भारतवर्ष मे गूँजे हमारी भारती' का स्मरण हो आता है।

'भारत-भारती' के लेखक हास्य और व्यंग्य के उस्ताद थे। इस हुनर को वह अपने कवि-कर्म से दूर रखते थे पर सामान्य जीवन मे मित्रो और परिचितो को अवसर उसका ज्ञान करा देते थे। उनका व्यग्य मर्म-भेदी होता था, साथ ही वह शालीनता की सीमा न लाँघता था। वह संस्कृत-बँगला-उर्दू काव्य के पंडित थे। हाली के मुसद्दस से प्रभावित होकर उन्होने 'भारत-भारती' लिखी थी; माइकेल मधुसूदन दत्त के 'वीरांगना' काव्य का हिन्दी अनुवाद कर चुके थे।

ज्यादा अच्छा होता कि राष्ट्रवादी कवि छायावादियो के साथ मिलकर नायिका-भेद और समस्यापूर्ति वाली परम्परा का मूलोच्छेद करते। पर उन्हे लग रहा था कि छायावादी कवि उनकी गद्दी छीने ले रहे है। उन्होने रीतिवादियो के साथ मिलकर छायावाद पर आक्रमण किया। 'भावों की भिडन्त' छायावादी कविता पर एकागी आक्षेप था। उसमे छायावादी कविता के पक्ष मे कुछ भी न कहा गया था। उससे 'मनोरमा' जैसी पत्रिकाओ को वल मिलता था जो सारी नयी कविता को बँगला-अग्रेज़ी की नकल कहकर बदनाम कर रही थी। सत्य का आभास देने वाला यह लेख निराला के प्रति भी अन्याय था। भावापहरण की बात सही थी पर इस सही बात से यह गलत नतीजा निकाला गया था कि निराला का समस्त कवि-कर्म बँगला की नकल है, युगप्रवर्तन का दावा ढोंग है, उनकी मौलिकता की चर्चा धोखा है।

निराला को एक तेज झटका लगा। उन्हे अपने मित्रो की निगाह बदली हुई दिखाई दी। शायद उनकी प्रतिभा के विकास के लिए यह झटका जरूरी था। वह हिन्दी-भाषियो मे अपने को बँगला का अद्वितीय पडित मानते थे। उनके मन मे यह भ्रम पैदा हो गया था कि उनकी रूपान्तर-कला किसी की पकड मे न आयेगी। अब उन्हे मालूम हो गया कि बँगला जानने वाले और भी हिन्दी लेखक है। भले ही वह बँगला के अद्वितीय पडित न हो किन्तु वे उनके रूपान्तर का मूल रूप ढूँढ़ सकते है, यह वह समझ गये। रूपान्तर द्वारा बंगाली बन्धुओ को हिन्दी की ओर आकर्षित करने का वह तरीका छोडना आवश्यक था। निराला के बँगला-पाण्डित्य का एक परिणाम यह हुआ था कि गद्य मे तो वह महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपना गुरु कहते थे पर पद्य मे भी उन्हे दूसरो से कुछ सीखना है, यह वह न मानते थे। 'भावो की भिड़न्त' ने उन्हे हिन्दी कविता को अधिक आदर की दृष्टि से देखना सिखाया।

कुछ समय के लिए हर तरफ 'भावो की भिड़न्त' की ही चर्चा रही। छायावाद के विरोधी बहुत ही प्रसन्न थे। नयी कविता के खोखलेपन का इससे बडा सबूत उनकी समझ मे दूसरा न हो सकता था। अभी तक वह टेढे-मेढ़े छन्दो और दुरूह शब्दावली की शिकायत करते थे; अब उनके हाथ एक मंत्र और लगा—यह सब बंगालियो की नकल है। छायावाद और निराला पर व्यंग्य-कविताएँ रची जाने लगी। रीतिवादियो की सरस्वती मुखर हो उठी।

निराला को यह सब घोर अन्याय मालूम होता था। दो-चार कविताओं में रवीन्द्रनाथ के भाव आ गये तो ऐसा क्या आसमान फट पड़ा। खुद रवीन्द्रनाथ ने कबीर, कालिदास और शेली का माल हजम नहीं किया? पर वह ठहरे प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर के नाती! उन्हें कोई कुछ थोड़े ही कहेगा। स्वयं तुलसीदास ने नानापुराण निगमागम सम्मतम् के साथ क्वचिदन्यतोपि कहकर सभी कवियों के लिए रास्ता साफ कर दिया है। बड़े-बड़े कवियों का तो यह हाल है, ये मौलिकता बघार रहे है! 'मतवाला' में पचीसों कविताएँ और छपी हैं; बतायें जरा, उनमें भाव कहाँ से लिये गये हैं। विवेकानन्द का अनुवाद किया है; 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ है। उसके साथ नोट छपा है कि वह स्वामी विवेकानन्द की कविता का अनुवाद है। रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' वगैरह के आधार पर जो कविताएँ लिखी, वे अनुवाद नहीं, रूपान्तर हैं। उनके साथ यह नोट नहीं छपा कि वे रूपान्तर हैं लेकिन 'प्रभा' का अंक निकलने से पहले 'मतवाला' में स्पष्टीकरण छप तो गया। तब और क्या चाहिए?

महादेवप्रसाद सेठ इस तर्क-पद्धति से संतुष्ट न थे। निराला को लेकर कलकत्ते मे न जाने कितनों से वैर मोल ले चुके थे। अभी तक चुनौती देकर कहते थे, जिसमें हिम्मत हो दिखाये, निराला ने भाव कहाँ से लिये हैं। 'मतवाला' की हेकड़ी मशहूर थी। अब लोग निराला पर, 'मतवाला' पर, महादेवप्रसाद सेठ पर हँसते थे।

महिषादल के बाद निराला ने कलकत्ते मे जो एक स्नेह की दुनिया बसाई थी, वह जैसे अचानक उजड गई। कल तक जो उन्हें महान् प्रतिभाशाली और युग-प्रवर्तक कवि मानते थे, अब उन्हें सन्देह की निगाह से देखने लगे। 'मतवाला' के लिए गद्य, पद्य, आलोचना, व्यंग्य, कहानी क्या नहीं लिखा। कम्पोजीटर मैटर के लिए सामने खडा है; मशीन की घड़घड़ाहट के बीच निराला ने मुखपृष्ठ के लिए जल्दी से कविता पूरी करके दी। निराला ने अपनी मेहनत का सौदा नहीं किया। दोस्त की तरह काम किया। जितनी इज्जत पाई, उससे ज्यादा महादेवप्रसाद को दी। शिवपूजन सहाय इसी मे मारे गये। अब निराला की बारी है।

'मतवाला' मे काम करते निराला को लगा था, और सब हिन्दी लेखक उनके कन्धे तक है, उनका सर सबके ऊपर है। वह ऊँचा सर क्या इन मित्रों को अब नहीं दिखाई देता? कहते थे, निराला को पाकर 'मतवाला' अपने को धन्य समझता है। अब क्या हो गया? यह वही युग-प्रवर्तक निराला है या कोई दूसरा? कोई बात नहीं।

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

बहुत-सा काम करना है। लेकिन अब 'मतवाला' के लिए कविताएँ न लिखेंगे। पर 'मतवाला' के लिए न लिखें तो लिखें किसके लिए?

निराला मुन्शी नवजादिकलाल के पास आये। चालीस रुपये लिये और गढ़ाकोला के लिए रवाना हो गये।

४

नये संघर्ष

कलकत्ते से निराला गढाकोला आये। १९२४ मे अवध मे भूमि-संवधी नया वन्दोवस्त हुग्रा। निराला ने कचहरी मे अपने वाग और खेतो के रेकार्ड दुरुस्त कराये। उसके वाद वह कानपुर आये। द्विवेदीजी उस समय जुही मे थे। यद्यपि निराला पर उनका पहले जैसा कृपाभाव न था, फिर भी निराला अपनी ओर से शील-विनय प्रकट करने मे कमी न आने देते थे। द्विवेदीजी के दर्शन करने के वाद वह 'प्रभा' के दफ्तर पहुँचे और नवीनजी से भेट की। इन दोनो कवियो की यह पहली भेट थी। नवीनजी ने तुरन्त देख लिया कि उनमे और निराला मे भाव-विचार-सम्वन्धी साम्य अधिक है, वैपम्य कम। नवीन उस कविता का स्वप्न देख रहे थे जिससे संसार मे उथल-पुथल हो जाय। निराला वादल-राग मे क्रान्ति के गीत गा चुके थे, अपनी वज्र हुंकार से आतङ्क अङ्क पर धनी वर्ग को कँपा चुके थे, साहित्य-संसार मे तो उनकी रचनाएँ उथल-पुथल मचा ही रही थीं। नवीन मे क्रान्तिकारी उत्साह के साथ सौन्दर्य के प्रति प्रवल आकर्पण भी था। अपने और निराला के वीच उन्हे सामान्य भावभूमि काफी विस्तृत लगी। जव तक उन्होंने निराला को देखा न था, उनके वारे मे अनेक तरह की कल्पनाएँ की थी। पर यह कवि भेद खुल जाने से पराजित या पश्चात्ताप की भावना से पीड़ित दिखाई नही देता। साहित्यकारों से मुँह छिपाकर दूर-दूर रहने के वदले वह सर ऊँचा किये उनके वीच घूमता है। जिस 'प्रभा' मे उसके विरुद्ध ऐसा घातक लेख छपा था, उसी के दफ्तर मे वह संपादक से मिलने आया है। ऐसा तेजस्वी व्यक्तित्व उन्होंने कवियो मे और किसी का न देखा था। नवीन प्रभावित हुए। निराला की कविताएँ सुनी, अपनी सुनाईं। तै किया कि इस कवि के सम्वन्ध में भ्रम दूर करने के लिए 'प्रभा' में कुछ और लिखना चाहिए। उन्होंने निराला की प्रशंसा में एक संपादकीय टिप्पणी लिखी। पर निराला अपनी प्रशसा मे लेख छपाने न आये थे। वह वालकृष्ण शर्मा नवीन को अपने मौलिक कवि-व्यक्तित्व के दर्शन कराने आये थे। वह कार्य सम्पन्न हुआ। निराला को अपने साथ प्रेस ले जाकर नवीन ने अपना संपादकीय नोट दिखाया। निराला ने कहा—आपका नोट केवल प्रशंसात्मक है; इसके सिवा

संपादकीय मैटर भी बढ़ रहा है; आप यह नोट निकाल दीजिए।

कानपुर से वह ससुराल आये। रामकृष्ण अब दस साल के हो गये थे। पढ़ने की कोई अच्छी व्यवस्था न थी। इस बार कलकत्ते जाकर वह रामकृष्ण को अपने पास बुला लेंगे, उनकी पढाई की ठीक व्यवस्था करेंगे, यह आश्वासन उन्होंने अपने मन को और सास को दिया। इस बार भी वर की खोज करने वाले उन्हे घेरते रहे। घेरने के अलावा वे इनकी सास पर भी दबाव डालते थे; कहते थे कि जब कवि महाशय गृहस्थी के खूंटे से बँध जाएँगे तब अपने पुत्र और पुत्री की ओर ज़्यादा ध्यान देंगे। मैं मँगली हूँ, मेरे साथ विवाह करना कन्या के लिए अशुभ होगा—इस तर्क से निराला उन्हें टालते रहे। एक सज्जन कुछ अधिक प्रगतिशील विचारो के थे। उन्होंने लड़की को एन्ट्रेन्स तक पढ़ाया था और वह एन्ट्रेन्स-परीक्षा में पास भी हो गई थी। उन्होंने निराला की सास से कहा, लड़की अठारह की, वर छब्बीस के, बड़ा अच्छा जोड़ा रहेगा। कुंडली मँगाकर देखी और दूसरे दिन आने का वचन देकर विदा हुए। निराला कुंडली हाथ मे लिए फाटक के बाहर मोढ़े पर बैठे थे। कुंडली मे दो विवाह लिखे है, यह भाग्य का लेख है। भाग्य क्या है, भाग्य का निर्माता कौन है, निराला के दो विवाह होगे, यह निश्चय करने वाला निराला के अलावा दूसरा कौन है—इन प्रश्नों पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि रामकृष्ण, सरोज और अपने कवि-जीवन के भविष्य-चित्रो मे कहीं खो गई। तभी सरोज वहाँ हँसती हुई आई और पिता के पास खेलने लगी। इसके लिए दूसरी माँ लाऊँगा? इस विचार के आते ही भविष्य-चित्रों में खोई हुई निराला की दृष्टि कठोर हो गई। यदि भाग्य मे दो विवाह लिखे हैं तो निराला इस भाग्य-लेख को मिटा देगा। उन्होने दुलार से सरोज को गोद में उठा लिया। कुण्डली उसके हाथ में दे दी और कहा—लो, इससे खेलो। सरोज ने खेल-खेल में कुण्डली फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। दूसरे विवाह की समस्या हल हो गई।

निराला कलकत्ते लौट आये। पर वह 'मतवाला' आफिस न गये। बाजार में काम तलाश करना शुरू किया। बँगला पुस्तकों के अनुवाद की माँग थी। प्रकाशक ने कहा, अनुवाद आप कीजिए, चवन्नी पेज देंगे, पर अनुवादक की जगह नाम आपका न छपेगा। निराला ने कहा, मंजूर है। दिन-रात जुटकर काम पूरा करने लगे। भतीजों के खर्च के लिए गढाकोला रुपये भेजे। किताब छपी, अनुवादक बनने की कीर्ति दूसरों को मिली। निराला की तात्कालिक आवश्यकता पूरी हुई। दवाइयों के विज्ञापन लिखने से लेकर विवाहादि के अवसर पर पद्य रचने तक निराला को जो काम मिला, उन्होने समेट लिया। कुछ समय के लिए काव्य द्वारा युगप्रवर्तन का विचार उन्होंने छोड़ दिया।

शिवपूजन सहाय अब तक 'मतवाला' में लौट आये थे। दुलारेलाल ने बहुत पटाया, पुस्तकों की पाण्डुलपि सुधारने के बदले 'माधुरी' का सारा काम उन्हे सौंप देने को कहा, बहाने से क्षमा माँगते हुए लिखा, "मैं आपसे नाराज नही हुई (हुआ) हूँ। हाँ, आपके कलकत्ते चले जाने पर मुझे बुरा अवश्य लगा।"[1] पर शिवपूजन सहाय ने

लिख दिया, घर वाले नही मानते; इसलिए कलकत्ते जा रहा हूँ। तनखाह तै किये बिना पहले की ही तरह भाईचारे के आधार पर 'मतवाला' में वह फिर काम करने लगे। महादेवप्रसाद सेठ ज़रा निश्चिन्त होकर मिर्ज़ापुर चले गये। वहाँ उन्हे समाचार मिला कि निराला कलकत्ते पहुँच गये है पर 'मतवाला' से रूठे हुए है। उनकी कविताओ के विना 'मतवाला' सूना है, यह वात पाठको की प्रतिक्रिया सुनकर महादेवप्रसाद अच्छी तरह समझ रहे थे। उन्होंने शिवपूजन सहाय को लिखा, "निरालाजी आ गये जानकर प्रसन्न हुआ। उनकी सेवा मे सप्रेम प्रणाम निवेदन कीजिएगा।" फिर शिकायत के स्वर मे लिखा, "उनके कलकत्ता मे मौजूद रहते उनकी कविता 'मतवाला' मे नही रहती यह वड़ी ही लज्जा की वात है।"[२]

सन् '२५ के वसन्त मे महादेवप्रसाद सेठ कलकत्ता लौट आये पर निराला ने 'मतवाला' से सहयोग न किया। यह वात नही थी कि वे कविताएँ लिख ही न रहे हों; वहुत दिन तक कविता लिखे विना वह रह न सकते थे। पर वह महादेव वावू के व्यवहार से अभी रुष्ट थे। 'मतवाला'-मंडल के सम्मिलित प्रयत्न से वह मान गये; एक बार फिर उस पत्र को अपनी कविताएँ देने लगे।

जुही की कली का वसन्त अव वीत चुका था। वह उल्लास, वह उमंग जो 'मतवाला' निकलने के समय थी, अव खत्म हो गई थी। यह एक दूसरा निराला था जिसकी रचनाएँ सन् '२५ की वर्षा से 'मतवाला' में फिर छपना शुरू हुई। इस कवि के जीवन में काफी तिक्तता आ गई थी, उसका मन विषादग्रस्त था, कविता मे आवेग के वदले संयम अधिक था। वह मन की उन गहराइयों मे पैठ रहा था जिनकी झलक वड़े-वडे कवियों को ही मिलती है। निराला के जीवन मे विषाद की कमी पहले भी न थी पर उसे तपाकर काव्यरूप मे ढालना निराला ने तव न सीखा था। "जव कडी मारें पडी दिल हिल उठा"—जहाँ-तहाँ उसकी झलक-भर दिखाई दी थी। 'मतवाला' के प्रथम वर्ष मे मित्रो के स्नेह और प्रशंसा की तरंग मे वहता हुआ निराला का मन कुछ समय के लिए विषाद की वात भूल गया था। सन् '२४ की शरद में नयी ठेस लगने से पुरानी पीड़ा उभर आई; जीवन के नये तिक्त अनुभव उसके साथ और जुड़ गये। निराला ने सन् '२५ के वसन्त मे पहला गीत लिखा:

> मृत्यु-निर्वाण प्राण-नश्वर
> कौन देता प्याला भर-भर ?

मृत्यु का अर्थ पराजय नही। मृत्यु को देखकर ही मनुष्य विजयी हो सकता है, मरकर भी अमर हो सकता है।

> मृत्यु की वाधाएँ वहु द्वन्द्व
> पारकर कर जाते स्वच्छन्द
> तरंगों मे भर अगणित रंग
> जंग जीते, मर हुए अमर।

निराला मे जीवन की आकांक्षा ज़रा भी कम न हुई थी। पर यह आकांक्षा वेदना से आँखे चुराकर सौन्दर्य के सपने देखने वाली आकांक्षा न थी। यह जंग जीतने, मरकर

अमर होने, संसार की तरंगों में रंग भरने की आकांक्षा थी। ऐसा गीत हिन्दी में इससे पहले किसी ने न लिखा था। निराला के दुख मे जितनी गहराई थी, शब्द और छन्द में उतना ही संयम था।

वहने दो,
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है,
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है ?

इस आवेग के वदले उनकी नयी रचना में एक संयत भावगरिमा थी जो शब्दो के साधारण अर्थ से परे मन को वहुत दूर खीच ले जाती थी।

नियमित छंद मे वँधी हुई कविता लिखना निराला के लिए वहुत कष्टकर था। छोटी-सी कविता पर वेहद परिश्रम करना पड़ता था। उन्होने अपनी नयी जीवन-दृष्टि के अनुरूप मात्रिक मुक्त छन्द मे एक प्रयोग किया। हरे-भरे बसन्त का वह दिन याद किया जव लगा था कि ज्योति के सामने वढ़ते चले जा रहे हैं, आलोचनाओं से जटिल भविष्य का पथ भी याद आया। काफी झटके खाये, कितना काम आगे कर सकेंगे, कुछ निश्चित नही। निराला को परमपद लाभ की आकांक्षा वाले दिन याद आये। मृत्यु के वाद क्या होगा ? एक अन्तहीन प्रवाह में वहते रहेंगे किन्तु कोई भय नही यदि "नारायण मिलें हँस अन्त मे।" पर यह मुक्त छन्द की रचना उन्हें शिथिल लगी। प्रयोग से असन्तुष्ट होकर उन्होने फिर तुकान्त छन्द पकड़ा। पिछले साल वरसात मे उन्होने सानुप्रास छन्द में 'यमुना के प्रति' लंवी कविता लिखी थी, वैसे ही इस वरसात में उन्होने 'स्मृति' पर एक लंवी कविता लिखी, छन्द के नियमो का पालन करते हुए पर भाववोध में अधिक गहराई लिये हुए।

निराला ने अपने जीवन का कनक प्रभात याद किया, उसे निद्रित अतीत में वन्द पाया। जीवन का शतदल प्रकाश में खिलता-मुस्कराता नही, हवा के थपेड़े खाता दिखाई दिया। प्रकाश से जगमगाते पथ के वदले अन्धकार में यात्रा :

न हैं वे कुसुम, न वह परिमल,
न हैं वे अधर, न है वह लाज !
तिमिर-ही-तिमिर रहा कर पार
लक्ष-वक्ष.स्थलार्गलित द्वार !

निराला के अनेक प्रशंसकों को लगा—न हैं वे अधर, न है वह लाज ! कैसी सुन्दर शव्द-योजना है। उसके वाद यह कर्कश—लक्ष-वक्षःस्थलार्गलित द्वार ! पूरी पक्ति मुँह से निकालने में कितना श्रम करना पड़ता है ! कोमल ही कोमल लिखते तो कितना अच्छा था ! निराला जिस गहरी अनुभूति से प्रेरित होकर कविता लिख रहे थे, वह शब्दों के साधारण अर्थ से व्यंजित न होती थी। वह अव अधिकाधिक शव्दो की ध्वनि, ध्वनि की उदात्त-अनुदात्त भंगिमाओं से अपनी उस अव्यक्त अनुभूति को रूपायित करना सीख रहे थे।

'स्मृति' में उन्होने जो कुछ विस्तार से कहा था, वह सव नौ पंक्तियों के एक

गीत मे फिर समेट लिया। निराला को सूर का पद याद आया—

जा दिन मन पंछी उडि जैहै।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहै॥

गीत लिखा—

विकल डालियों से
झरने ही पर है पल्लव-प्राण—
हमारा डूब रहा दिनमान !

उधर कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के पल्लव-वाल सुमनों के सौरभ-हार सजा रहे थे, और

खिल उठी रोओं से तत्काल
पल्लवो की यह पुलकित डाल !

इधर निराला के पल्लव-प्राण विष-जर्जर हो रहे थे—

मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हो गरल-अनल
जलता यह जीवन असफल।

रहस्यवादी कवि के प्रकाश के वदले यहाँ यथार्थ जीवन का गहन अँधेरा था। जो प्रकाश मिला, वह जलते हुए असफल जीवन की ज्वाला का था।

निराला को दिखाई दे रहा था, जीवन में केवल श्रम है, केवल अन्धकार।

जीवन की गति कुटिल अन्धतम जाल,
जहाँ हाय, केवल श्रम, केवल श्रम
केवल श्रम, कर्म कठोर······
केवल अन्धकार, करना वन पार
जहाँ केवल श्रम घोर।

निराला की कविताएँ फिर 'मतवाला' मे प्रकाशित होने लगी, निराला फिर 'मतवाला'-मंडल मे शामिल हुए। मन तात्कालिक अर्थ-चिन्ताओं से मुक्त हुआ। और निराला ने फिर सुना, रमणी का सौन्दर्य पुकार रहा है। कलियों मे मधुर मद-उर यौवन-उभार आया, आकाश मे चन्द्रमा की छवि देखकर यामिनीगन्धा ने सुगन्ध के भंडार खोल दिये। चकोर चन्द्रमा को निहारता रहा, डाल पर पपीहा गाता रहा, ओस से भीगे हुए फूल झुक गये, रमणी पुकारती रही—

शयन-शिथिल बाँहे
भर स्वप्निल आवेश मे
आतुर उर वसन मुक्त कर दो।

पर कवि का पुरुषत्व सोता रहा। उसे लगा, दो-चार महीने नही,

ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने ही हजार !

शृंगार-भावना मन को गुरुत्वाकर्षण मे बाँधती रही, तिक्त वेदना उसका प्रतिरोध

करती रही।

निराला की श्रृंगार-भावना ऐसी विषादग्रस्त कभी नही हुई थी। प्रिया के अधरों पर सुरा का स्वर लहराया, निराला को जुही के वदले पल्लव-पर्यङ्क पर शेफ़ाली दिखाई दी। मलयानिल द्वारा झकझोरे जाने के वदले कली पर शिशिर से गगन के चुम्बन झरते रहे। प्रेमी के हृदय मे यह साध वनी रही कि

शोक-दुःख-जर्जर इस नश्वर संसार की

क्षुद्र सीमा

वह किसी तरह पार कर जाय।

निराला एक ओर अपने मानसिक संघर्ष, श्रृंगार के आकर्षण और वेदना की तिक्तता को कविता मे रच रहे थे, दूसरी ओर वह वाह्य संसार की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधि को भी सतर्क दृष्टि से देख रहे थे।

गाँधीजी के असहयोग-आन्दोलन और चरखा-अभियान से अनेक उदारपन्थी विचारक चिन्तित हो गये थे। वे भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध तोड़ने के पक्ष में न थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर भारत को 'डोमीनियन' या अर्द्ध-उपनिवेश वनाने का स्वप्न देख रहे थे। रवीन्द्रनाथ राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन के नये उभार का समर्थन न करके पूर्व और पश्चिम को सांस्कृतिक धरातल पर मिलाने का प्रचार कर रहे थे। इसके लिए उनकी आलोचना वंगाल में भी होने लगी थी। खद्दर और चरखे की ओर से उदासीन होने के लिए आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने दो-चार खरी-खोटी रवीन्द्रनाथ को सुना दी थीं। इस पर रवीन्द्रनाथ ने 'सवुज पत्र' में 'चरखा' शीर्षक एक लेख लिखा, गाँधीजी पर आरोप लगाया कि वह सभी भारतवासियों को एक ही ढर्रे पर चलाना चाहते हैं। इस पर 'श्रीकृष्ण सन्देश' में रवीन्द्रनाथ की आलोचना करते हुए निराला ने एक लम्बा लेख लिखा।

जैसे वह सहज भाव से वोलते थे, वैसे ही धाराप्रवाह उन्होने यह लेख लिखा। 'मतवाला' में 'सरस्वती' और 'माधुरी' पर उनकी टिप्पणियों से इसका स्तर भिन्न था। उनकी इधर की कविताओं में जैसे एक नया स्वर सुन पडा था, वैसे ही उनके गद्य मे एक नयी परिपक्व मेधा के दर्शन हुए। विवाद यहाँ भी था, हास्य-व्यंग्य की फुलझड़ियाँ भी थी पर यहाँ उनकी केन्द्रवद्ध दृष्टि विषय के मर्म तक पैठती चली गई थी। पाठक से हँसते-वोलते हुए उन्होने धर्म, दर्शन, राजनीति की अनेक समस्याओं पर वड़ी सूझ-वूझ की वातें कही। निराला महिषादल में चरखा-आन्दोलन की झलक देख चुके थे। वेकारी की दशा में स्वयं सूत कातने और खादी वुनने की योजना वना चुके थे। रवीन्द्रनाथ ने चरखे का विरोध किया तो निराला को लगा, महाकवि स्वाधीनता-आन्दोलन का ही विरोध कर रहे है।

लेख लिखते समय निराला के मन में हिन्दी-वंगाली जातियों की नित वढती हुई प्रतिद्वंद्विता का भाव भी था। महिषादल में ही वह हिन्दी जातीयता के प्रति सजग हो चुके थे, अनेक वंगाली वुद्धिजीवियों की अहम्मन्यता उन्हे खलती थी। गाँधी-रवीन्द्रनाथ का संघर्ष उनके लिए एक तरह से गुजरात-वंगाल का संघर्ष था। सरलादेवी

चौधरानी ने "बंगाल और गुजरात के संघर्ष मे, रवीन्द्र-गाँधी समर मे" रवीन्द्रनाथ का, बंगाल का समर्थन किया। सरलादेवी के मत का खंडन करते हुए निराला ने प्रान्तीयता के प्रसंग मे लिखा, "मैं यह विरोध हरगिज न करता अगर यू० पी० में रहकर अपने दूसरे शिक्षित भाइयों की तरह मैं भी प्रान्तीयता-वू-विवर्जित हो गया होता; परन्तु नही, भाग्य में तो बंगाल का रहना बदा था, यू० पी० का सौभाग्य कहाँ से प्राप्त होता ? बंगाल में रहने के कारण एक उन्नति मेरी ज़रूर हुई। बंगालियो के संसर्ग से प्रान्तीयता का ज़हर मेरी नसो मे खूब फैल गया और नशे मे बेहोश कर देने की जगह बेतरह मुझे सजग कर देने लगा—हर वक्त—बंगालियो की एक-एक चाल में। बंगालियों से फायदा मुझे यही हुआ। उनकी हर एक पेचीदा बात आसानी से सुलझा लेने लगा।"

रामकृष्ण मिशन और ब्राह्मसमाज का पुराना वैर-भाव भी निराला के मन को प्रेरित कर रहा था। शंकर, रामानुज और कबीर के साथ उन्होंने रामकृष्ण परमहंस को परमात्मस्वरूप कहा, ब्राह्मसमाज और रवीन्द्रनाथ के ब्रह्मज्ञान पर खूब फब्तियाँ कसी।

अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध जनता का असन्तोष बढ़ रहा था। अंग्रेज़ देख रहे थे कि दूसरी बार आन्दोलन छिड़ सकता है, शायद पहले से भी अधिक शक्तिशाली। वे पुलिस और कचहरी मे अल्पसंख्यक मुसलमानो को बढ़ावा देकर बहुसख्यक हिन्दुओं के विरुद्ध उन्हे उकसा रहे थे। मस्जिद के सामने बाजा न बजे, आसपास कही शंख की आवाज न सुनाई दे, यह सब एक प्रमुख राजनीतिक समस्या बन गया था। कांग्रेसी नेता कुछ समय के लिए संघर्ष के रास्ते से हट गये थे। अनेक राजनीतिज्ञ हिन्दुओ के उचित अधिकारो की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये थे। अंग्रेज पीछे छूट गया, उचित अधिकारो की लड़ाई सामने आ गई। जो लोग स्वदेशी-आन्दोलन मे सक्रिय रूप से भाग ले चुके थे, जेल जा चुके थे, वे भी अधिकारो की इस नई लडाई मे सिमट आये। अब कांग्रेस के अलावा एक नया राजनीतिक संगठन हिन्दुओ का विशेष प्रतिनिधि बनकर सामने आया। मुस्लिम लीग अपने को मुसलमानो का एकमात्र प्रतिनिधि कहती थी, हिन्दू महासभा अपने को हिन्दुओं का। इस नये संगठन की ओर जो अनेक राजनीतिक कार्यकर्ता और साहित्य-सेवी खिंचे, उनमे महादेवप्रसाद सेठ भी थे।

'मतवाला' ने मुखपृष्ठ पर लेख छापा 'हिन्दू'! मोटे-मोटे अक्षरो मे ऊपर स्वामी विवेकानन्द के ये शब्द छपे—"आप अपने को हिन्दू कहने के अधिकारी उसी अवस्था मे हो सकते हैं जब 'हिन्दू' शब्द मात्र से आपकी नसो मे बिजली दौड़ जाय।"[३] महादेवप्रसाद सेठ ने शिवपूजन सहाय को ताकीद की—"हिन्दू महासभा के विरोधियो का मुलाहज़ा करने की जरूरत नही।"[४] मुन्शी नवजादिकलाल विशेष रूप से हिन्दुओं के पक्ष मे उग्र लेख लिखने लगे। इस सबके साथ 'मतवाला' साम्यवाद का प्रचार भी कर रहा था। उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन, रूसी राज्यक्रान्ति और नयी सोवियत व्यवस्था के पक्ष मे अनेक लेख छापे। जैसे स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं मे हिन्दू राष्ट्रवाद, वेदान्त और साम्यवाद के स्वर घुल-मिल गये थे, वैसे ही

'मतवाला' के लेखों में उस समय के अनेक राजनीतिज्ञों-साहित्यकारों की विचारधारा बहुरंगी रूप में प्रकट हो रही थी।

'मतवाला' के लेखकों में सबसे सजग, सबसे क्रान्तिकारी लेखक निराला थे। वह दो वर्ष पहले बादल-राग मे हिन्दू-मुसलमान के बदले धनी-निर्धन के वर्ग-भेद को प्रमुख मान चुके थे। कलकत्ते में रहते हुए उनका परिचय कुछ साम्यवादी नेताओं से हुआ। इनमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुज़फ़्फ़र अहमद भी थे। मुज़फ़्फ़र अहमद से उनका परिचय कराया राधामोहन गोकुलजी ने। भारतीय साम्यवाद अभी छिटपुट औद्योगिक केन्द्रों में मजदूर वर्ग तक सीमित था। निराला के राजनीतिक दृष्टि-कोण की विशेषता यह थी कि वह भारत के स्वाधीनता-संग्राम में सन् '२० से ही किसानों की भूमिका का महत्त्व समझ रहे थे।

राधामोहन गोकुलजी तेजस्वी वक्ता और लेखक थे। क़द मे वह निराला की कमर से कुछ ही ऊपर पहुँचते थे पर निराला उन्हें मास्टर साहब कहकर उनसे बड़े ही आदर से पेश आते थे। राधामोहन गोकुलजी निराला के कविकर्म को खूब प्रोत्साहन देते थे। वह 'मतवाला'-मंडल में अक्सर आते थे, वहाँ की साहित्यिक-राजनीतिक चर्चा में भाग लेते थे। 'मतवाला' के अनेक लेखको की तरह वह भारतेन्दु-युग के साहित्य से प्रभावित थे। कानपुर में वह प्रतापनारायण मिश्र से साहित्य-सेवा की दीक्षा ले चुके थे। बीस वर्ष की आयु में अंग्रेज अफसर से खटपट हो जाने पर उन्होने नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में वह मजदूरों के आदि संगठन-कर्ताओं में थे। मजदूर संगठन का कार्य उन्होने आगरे में किया था। इसके लिए सालभर की सजा काटी थी। उनका एक पैर जेल में और एक जेल के बाहर रहता था। छूटने पर अधिकारियों से कहते जाते—हमारा स्थान सुरक्षित रखना, हम फिर आयेंगे। जब मुन्शी नवजादिकलाल 'वीर भारत' के संपादक थे, तब राधामोहन गोकुलजी उसमें बड़े जोशीले लेख लिखा करते थे। वह विधवा-विवाह और अछूतोद्धार के साथ शुद्धि-आन्दोलन के भी समर्थक थे। वह साम्यवाद और हिन्दू-संगठन दोनो का प्रचार करते थे।

निराला ने अब तक ऐसा कुछ न लिखा था जिसे हिन्दू-संगठन के समर्थक अपने पक्ष में इस्तेमाल करते। महादेवप्रसाद सेठ, राधामोहन गोकुलजी, नवजादिकलाल श्रीवास्तव सभी का आग्रह था कि निराला ऐसा कुछ लिखें जो सोते हुए हिन्दुओ के खून में जोश पैदा कर दे। निराला ने खोजना शुरू किया। रवीन्द्रनाथ ने ऐसा क्या लिखा है जहाँ से 'आइडिया' लेकर आज की परिस्थिति के अनुकूल कुछ लिखा जा सके? रवीन्द्रनाथ की प्रसिद्ध कविता 'बंदी वीर' याद आई—

पंचनदीर तीरे
वेनी पाकाइया शिरे

उन्होने गुरु गोविन्दसिंह को लेकर एक कविता लिखी—जागो फिर एक बार। इसे इच्छानुसार हिन्दू संगठन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था, अंग्रेजी राज के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए भी।

पश्चिम की उक्ति नही
गीता है, गीता है—

आदि पंक्तियो मे उन्होने अहिंसावादी आन्दोलन से सन्तुष्ट न रहकर संघर्ष के अन्य तरीके अपनाने की ओर संकेत किया।

इसी समय 'श्रीकृष्ण संदेश' नाम के पत्र मे मिर्ज़ा राजा जयसिंह के नाम शिवाजी के पत्र का गद्य मे अनुवाद छपा। रवीन्द्रनाथ शिवाजी पर एक कविता लिख चुके थे। निराला ने उस पत्र को पद्यबद्ध कर डाला, अपनी ओर से वेदान्त के भाव जोड़े, हिन्दू समाज मे शूद्रो पर अत्याचार का उल्लेख किया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष और भारत की स्वाधीनता का उल्लेख किया। पंचवटी प्रसंग के वाद वर्णिक मुक्तछद मे लिखी हुई निराला की यह सवसे लवी कविता थी। 'मतवाला' के पाँच अंको मे वह छपी। निराला मित्रो के वीच वडे ओजपूर्ण ढंग से इसका पाठ करते, ध्वनियो के आवर्त्त, वक्तृता का अजस्र प्रवाह श्रोताओ को मोह लेता।

जितने विचार आज
मारते तरगें है
साम्राज्यवादियो की भोगवासनाओ मे,
नष्ट होगे चिरकाल के लिए।
आयेगी भाल पर
भारत की गई ज्योति,
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे।

निराला ने जान-वूझकर दोनो कविताएँ औरंगज़ेव के समय को लेकर लिखी। औरंगज़ेव की धार्मिक कट्टरता जग-जाहिर थी। उसका विरोध न्याय-संगत ही माना जाता। साथ ही कविताओं से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष चलाने का निष्कर्ष भी निकलता था।

साम्प्रदायिकता की आग सुलगती रही। आखिर सन् '२६ मे ज्वालाएँ फूट पडी। इनकी लपेट मे निराला भी आ गये। कलकत्ते मे दंगे हुए। मछुआवाज़ार और आसपास के इलाके मे मुसलमानों की घनी आवादी थी। दंगे की सरगर्मी यहाँ ज्यादा थी। निराला यहाँ दंगाइयो के वीच घिर गये। उन पर ईंटो और पत्थरो की वर्षा होने लगी। निराला ऊपर आते हुए रोड़ो से वचते हुए, ईंटो के वडे टुकड़े गेंद की तरह कभी लोकते हुए, महिषादल मे गेंदवाज़ी के अभ्यास से लाभ उठाकर इन टुकडों को विरोधियो पर ज़ोर से फेंकते हुए कूद-फाँदकर वच निकले।

'मतवाला' मे मुन्शी नवजादिकलाल ने मुसलमानो के खिलाफ़ और भी उग्र लेख लिखे। उधर वँगला मे 'सुल्तान' पत्र हिन्दुओ के विरुद्ध विप-वमन कर रहा था। साम्प्रदायिकता भड़काने और शान्ति भग करने के अपराध मे दोनो के संपादको को सजा हुई। 'मतवाला' के संपादक रूप मे नाम महादेवप्रसाद का ही छपता था, इसीलिए मुन्शीजी के वदले जेल उन्ही को जाना पड़ा। जेल मे उनकी मुलाकात 'सुल्तान'

के संपादक से हुई। ये सज्जन मुस्लिम संस्कृति के बड़े समर्थक थे, लेकिन उर्दू शायरी से अपरिचित थे। महादेवप्रसाद सेठ ने उन्हें गालिब के शेर सुनाये, बँगला मे उनका अर्थ समझाया। दोनों मे दोस्ती हो गई। जेल से छूटने पर 'मतवाला'-प्रेमियो ने महादेवप्रसाद का भव्य स्वागत किया। स्वागत करने वालों में निराला भी थे।

जिस समय 'मतवाला' में हिन्दू-संगठन पर लेख निकल रहे थे, उसी समय निराला ने 'समन्वय' में एक लेख लिखा—"साहित्य की समतल भूमि"। इसका उद्देश्य हिन्दुओं-मुसलमानो के बीच बढ़ते हुए तनाव को दूर करना था। एकदेशीय संकीर्णता का विरोध करते हुए अपना उद्देश्य उन्होने इस प्रकार प्रकट किया, "इस लेख मे हम यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि साहित्य की समतल भूमि कैसी है और रीति-रिवाजो मे हिन्दुओ से संपूर्णतः पृथक् मुसलमान जाति भी साहित्य और ज्ञान की भूमि मे हिन्दुओं के समान ही है।" कबीर और तुलसी के साथ नजीर, गालिब और मीर की रचनाओं स उद्धरण देकर निराला ने निष्कर्ष निकाला कि वेदान्त द्वेष की नही, विश्व-मैत्री की शिक्षा देता है।

निराला का यह लेख सन् '२६ मे 'समन्वय' की श्रावण संख्या मे प्रकाशित हुआ। कलकत्ते के विषाक्त वातावरण मे वैसा लेख लिखना बड़े साहस का काम था। इसके मुकाबले मछुआबाजार की पत्थरबाजी से बच निकलना आसान था, दंगो के समय निराला के वेदान्त की कठिन परीक्षा हुई; इस परीक्षा मे वह खरे निकले।

'मतवाला' में फिर से काम करते निराला को एक वर्ष हो रहा था। पहले जैसा उत्साह और भाईचारे का वातावरण इस बार नही था। शिवपूजन सहाय फिर 'मतवाला' से अलग हो गये थे। 'मतवाला' की नीति और महादेवप्रसाद सेठ के व्यवहार से निराला सन्तुष्ट नही थे। 'मतवाला' से सबन्ध शिथिल होने पर वह 'समन्वय' और रामकृष्ण मिशन के संन्यासियो की ओर अधिक खिंच आये। उसमे स्वयं लेख लिखे, स्वामी विवेकानन्द की रचनाओ के अनुवाद प्रकाशित कराये। प्रयत्न करके उन्होंने 'समन्वय' के लिए प्रेमचन्द, सुमित्रानन्दन पन्त, शिवपूजन सहाय, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', मोहनलाल महतो, रामशकर त्रिपाठी, श्यामसुन्दर खत्री आदि नये-पुराने लेखकों की रचनाएँ प्राप्त की। निराला के सहयोग से 'समन्वय' दार्शनिक से अधिक सुन्दर साहित्यिक पत्र बन गया। पर इससे निराला की आर्थिक समस्या सुलझने वाली नही थी।

अपने खर्च के लिए, खास तौर से भतीजो को पैसे भेजने के लिए उन्हे बाजार का काम करना पड़ता था। 'मतवाला' से निश्चित आय न थी। यह कमी महादेवप्रसाद सेठ निराला की प्रशंसा करके, उनके प्रति आदर-भाव जताकर बहुत-कुछ पूरी कर देते थे। पर इस आदर-भाव में कमी होने लगी थी। इसका मुख्य कारण यह था कि निराला का आदर-स्थान अब पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने ले लिया था। महादेवप्रसाद सेठ की निगाह मे वह निराला से भी अधिक प्रतिभाशाली लेखक थे।

'उग्र' नरक से ऊपर उठते हुए 'मतवाला' तक पहुँचे थे। बाप पुजारी थे। जजमानी से काम चलता था। भाई आवारा थे। रामलीला में अभिनय करने का शौक

था। पिता का देहान्त होने पर वड़े भाई घर के मालिक हुए। गाँजा-चरस, शराव और जुए में उन्होने स्त्रियों के गहने, घर के पोथी-पत्रा तक वेच डाले। विरोध करने पर माँ और पत्नी को जूतो और लातो से मारते। आठ साल के 'उग्र' ने जुल्फों मे फूल-चिडी वनाना, रामलीला में सीता का अभिनय करना सीखा। महन्त भागवतदास की रामलीला-मंडली के साथ उन्होंने लाहौर, अमृतसर और वन्नू-कोहाट तक की यात्रा की, यात्रा के दौरान महन्त-मण्डली मे अप्राकृतिक व्यभिचार की जानकारी प्राप्त की।

सन् '२० के आन्दोलन मे उग्र ने गाँवो में जाकर किसानो के वीच भाषण किये। 'आज' मे वावूराव विष्णु पराड़कर की शागिर्दी करके वह पत्रकार वने। शचीन्द्र-नाथ सान्याल के संपर्क मे आने से उनका झुकाव क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर हुआ। गोरखपुर के 'स्वदेश' मे अंग्रेज़ो के विरुद्ध तेज लेख लिखने के अपराध में उन्हे नौ महीने की सज़ा हुई। उग्र उर्दू न पढ़ पाते थे पर सुनकर ही उन्होने वहुत-कुछ सीख ली थी। निराला के विपरीत उनकी भाषा वहुत सरल होती थी। वह भरसक वाज़ार मे वोली जाने वाली भाषा को अपने गद्य मे सँवारते थे। उर्दू शव्दो का वेधड़क प्रयोग करते हुए अनुप्रासों के सहारे वह अपनी शैली मे शोखी और चुलवुलापन पैदा करते थे। रामलीला के मंच पर थिरकते हुए किशोर अभिनेता की तरह 'मतवाला' के पृष्ठो मे ठुमकती-थिरकती हुई उग्र की शैली भी पाठको का मन मोह लेती थी। निराला की तरह उग्र ने महादेवप्रसाद सेठ से गालिव-प्रेम की दीक्षा ली। निराला की तरह वह भी तुलसीदास के भक्त थे, निराला की तरह खान-पान मे वह भी मुसलमान-अछूत का भेदभाव न करते थे। निराला के विपरीत गाली देने की कला मे कलकत्ते के समस्त हिन्दी-संसार मे उग्र का सानी नही था।

महादेवप्रसाद सेठ पर उग्र का प्रभाव वढ़ता गया। उन्होंने उग्र की कितावें छापी और वे खूव विकी। महादेवप्रसाद सेठ के घरवालो को मालूम हो गया कि कितावो का धन्धा पत्थरो के रोज़गार से वुरा नही है। सुन्दर भोजन, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर इत्र-फुलेल, सुन्दर नाज़-नखरे—महादेवप्रसाद सेठ सवका भार वहन करते, उग्र की गालियाँ सुनते और उनकी खुशामद करते। निराला की ऐसी खातिर जव वह गवहीं लेने डलमऊ गये थे, तव भी न हुई थी। महादेवप्रसाद सेठ ने 'अनामिका' के वाद उनकी एक भी किताव न छापी थी। "खूव विकती है उग्रजी की पुस्तकें। 'दिल्ली का दलाल' डेढ महीने मे ११०० विक गया।"[1]—निराला यह व्यापार ध्यान से देख रहे थे। 'मतवाला' मे निराला का फोटो न छपा था, उग्र का छपा। थियेटर-सैर-सपाटे से लेकर अंगूर खाने तक हर जगह उग्र की ही आवभगत सवसे ज्यादा होती थी। महादेवप्रसाद सेठ जुल्फो से लेकर कलम के जादू तक उग्र को सराहते अघाते न थे।

उग्र देख रहे थे कि निराला भीतर-भीतर कुढ़ रहे है। उन्हे जलाने मे उग्र को मज़ा आता था। वडे आये थे युगप्रवर्तक कवि वनकर। साहित्य वह जिसे पढकर साधारण आदमी भी फड़क उठे। इनकी कविता—घोखा करो; वड़ी मेहनत के वाद दो-चार लाइने समझ मे आ जायँ तो वडे भाग्य! निराला को आश्चर्य होता, यह

ढाई पसली का छोकरा, कमर तक भी नहीं आता, अपनी चटक-मटक से सबकी आँखों मे धूल झोंक रहा है। महादेव बाबू बड़े साहित्य-पारखी बनते थे, उग्र की ऊपरी चमक-दमक पर लट्टू हो गये। साहित्य वही टिकाऊ होगा जिसमें भाव और विचार की गंभीरता हो। पर अभी तो उग्र का साहित्य ही बिकता है। क्या वह उग्र की तरह लिखें ? बाजार में वैसे ही माल की खपत है। उग्र निराला के सामने डींग हाँकते—मैं मिडिलफेल बाजारसम्राट् हूँ, हिन्दी-लेखकों मे अकेला रेस खेलता हूँ, स्टेट्समैन पढता हूँ, विलायती शराब पीता हूँ।

निराला ने एक दिन ह्विस्की की बोतल मे ठर्रा भरकर उसमें केसरिया रंग मिलाया और उग्र को पिला दिया। उग्र के बनारसी मित्र विनोदशंकर व्यास उन दिनों तफरीह के लिए कलकत्ता आये थे। निराला ने उनसे कहा—देखा उग्र को, बहुत बढ-बढ़कर बातें मारते थे, अभी ह्विस्की और ठर्रे का फर्क भी नही मालूम। विनोदशंकर ने उग्र से कहा। उग्र ने सफाई दी—मैं पीते ही समझ गया था; पर यह तो वैसा ही मजाक हुआ जैसे किसी को जहर मिलाकर दे दो और बाद में कहो, इन्हे तो जहर की पहचान भी नही है!

निराला और उग्र के बीच का फासला बढता गया। अब महादेवप्रसाद सेठ उग्र के थे, 'मतवाला' उग्र का था। उग्र और निराला के बीच फासला बढने का मतलब था, 'मतवाला' और निराला के बीच फासला बढ़ रहा था। उन्होने 'मतवाला' के भरोसे न रहकर बाजार में काम ढूँढना शुरू किया। इस कार्य मे शिवपूजन सहाय ने उनकी मदद की। पुस्तक भंडार, लहेरियासराय से उनका संपर्क था ही। छात्रों के लिए निराला रस-अलंकार पर एक पुस्तक लिख डालें और वह पुस्तक भंडार से प्रकाशित हो, इसका प्रबन्ध उन्होने किया। निराला ने अप्रैल में पुस्तक शुरू की। रसों, भावों, विभावों, अनुभावों के उदाहरण इकट्ठे किये। इस बात का ध्यान रखा कि उदाहरणों मे शृंगार की ऐसी बातें न आ जायें जो छात्रों के पढ़ने लायक न हों। इसी विचार से उन्होंने नायिका-भेद पर कुछ न लिखा। वह संक्षेप मे सारी बातें कहने का प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी पुस्तक बढती जा रही थी। उनके सामने लाला भगवानदीन की 'अलंकार मंजूषा' थी जिसमें अलंकारों का विवेचन था। विवेचन बहुत विस्तृत न था, फिर भी ढाईसौ पृष्ठों को घेरे हुए था। निराला सौ पृष्ठों में रस और अलंकार सब-कुछ कैसे समेट लें ? उन्होंने शिवपूजन सहाय को लिखा, "आप समझिये कि २५१ पृष्ठ रंग डाले है लालाजी ने सिर्फ अलंकार लिखकर, सो भी बहुत विस्तृत नहीं। यदि दो-एक फार्म बढ जायँ तो क्या कोई हानि होगी ? आज १०१वाँ पृष्ठ लिख रहा हूँ (मेरा एक पृष्ठ कुछ कम आपका एक पृष्ठ होगा)। रस तो ६० के कोठे मे पूरे हो गये थे, परन्तु अलंकार अभी आधा भी नहीं हुआ। जनाब एक-एक अलंकार के आठ-आठ बच्चे हैं। ऐसे १०० से भी ज्यादा अलंकार हैं।...मुझे विश्वास नहीं कि पुस्तक के बढ़ने पर उन्हें कोई एतराज होगा जबकि ऐसी दशा है।"[६]

मई के अन्त तक निराला ने किताब पूरी कर डाली। शिवपूजन सहाय के पास पांडुलिपि भेज दी। लिखा कि गढ़ाकोला के पते पर उनके भतीजों के लिए पचीस रुपये

भिजवा दें। साथ ही-प्रकाशकों से और काम जुटाने को कहा। शिवपूजन सहाय की पत्नी अस्वस्थ थीं, फिर भी उन्होंने निराला के लिए काम ढूंढने का वादा किया। निराला कोई बड़ी चीज़ लिखने, महाकाव्य जैसा कुछ रचने का विचार कर रहे थे। इसकी सूचना भी उन्होंने शिवपूजन सहाय को दी। शिवपूजन सहाय ने उत्तर लिखा:

"दण्डपाणि भैरव, (काशी),
मुहल्ला, काल भैरव
Benares City
19/5 [१९२६]

मान्यवर निरालाजी,

सादर सप्रेम प्रणाम।

आपका कृपापत्र और रस-अलंकार नामक ग्रन्थ मिला। धन्यवाद। मेरी स्त्री जबसे आई, सख्त बीमार है। बहुत परेशान हूँ। चित्त स्थिर नही है। चिन्ता और चंचलता के कारण समय पर आपको उत्तर न दे सका। क्षमा चाहता हूँ।

आपके घर २५) रुपये भेजने के लिये लहेरियासराय पत्र लिख दिया है। आप भूमिका आदि भेज दीजिये। पुस्तक शीघ्र ही प्रेस मे जायगी। प्रूफ़ भेजूंगा। बेनी-पुरीजी घर गये हैं—बीमार होकर। यहीं से ज्वरग्रस्त होकर गये थे। शान्तिप्रियजी सदा मिलते है। आपको प्रायः स्मरण करते है। मैं स्त्री की बीमारी से कही आ-जा नही सकता। बड़े संकट मे जी पडा है। पत्रो में देर होने से आप कोई दूसरी बात न समझे। आपके लिये काम की कोशिश कर रहा हूँ। हाथ मे आते ही भेजूंगा। आप प्रकाशकों और हिन्दी-ससार की हालत जानते ही है। अधिक क्या लिखूं। मुन्शीजी को एक पत्र लिखा था। उत्तर नही मिला। मतवाला के केस का हाल सुना। वह एक निश्चित होनी थी। आखिर होकर ही रही। विश्वास है कि मतवाला विचलित नही होगा। बनारसी लोग तो ऐसी ही चर्चा करते है। मैं जब से आया, मतवाला के किसी अंक के दर्शन नही हुए। 'ॐ शान्तिः' वाला एक अंक भेजने को कह दीजियेगा। ज़रा स्वस्थ चित्त होकर कुछ लिखूंगा। रूपनारायणजी आये थे। आपको पूछते थे। बिहारी सम्मेलन के समय (२२ जून) तक स्त्री को कुछ आराम हुआ तो लहेरियासराय जाऊंगा और आपके महाकाव्यों के विषय मे बातें करूँगा। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, कोई कसर न रखूंगा। आइन्दे हिन्दी का भविष्य!! यहाँ आने के बाद से तीमारदारी मे इस कदर फँस जाना पड़ा है कि जिसका पैसा खाता हूँ उसका कुछ काम नही हुआ। बड़े संकोच और सकट मे जान पड़ गई है। शुरू में मुन्शीजी के आने की प्रतीक्षा करता रहा। फिर मामले का हाल सुनकर समझ गया कि अभी देर है। ब्रजकिशोर और बबुनी का समाचार लिखियेगा। यहाँ के एक सज्जन रामचन्द्र कपूर पूछते थे कि रवीन्द्र-गाँधी संबन्धी निरालाजी का लेख 'कृष्ण सन्देश' मे कब पूरा होगा। मैंने कह दिया कि निरालाजी अस्वस्थ है। क्षमा कीजियेगा।

आपका कृपाकांक्षी
शिवपूजन

२५ रुपये आपके घर चले जायेंगे उसी पते पर जो आपने लिखा है। वहाँ से पत्र आने पर सूचना दूंगा। शिव०"

शिवपूजन सहाय ने तो यों ही 'श्रीकृष्ण सन्देश' के पाठकों को टालने के लिए कह दिया था, पर निराला सचमुच ही अस्वस्थ हो गये थे। लहेरियासराय से रस-अलंकार वाली पुस्तक के प्रूफ़ न आये। पाठ्यपुस्तक ही न छपी, महाकाव्य छापने की बात तो दूर थी। निराला को पैसों की सख़्त ज़रूरत थी। वह दो-एक मारवाड़ी सेठों के यहाँ गये, उनके लड़कों की ट्यूशन कर ली। शिक्षक बनने, दूसरों को पढ़ाने में निराला को मज़ा आता था, पर परीक्षा पास करने के लिए उतावले विद्यार्थी को निराला की बातें बहकी-बहकी लगतीं। उनका एक मारवाड़ी छात्र ऐसा भी था जिसे न परीक्षा की चिन्ता थी, न ज्ञानप्राप्ति की। वह पिता के सन्तोष के लिए पढ़ता था। इतना जानता था कि निराला बहुत प्रसिद्ध लेखक हैं, उनसे मैत्रीभाव जताकर वह दुनियादारी की बातें किया करता था। निराला ने उसे अपने जीवन की ऐसी बातें भी बताईं जिन्हें अन्य जन गोपनीय समझते हैं।

निराला के छात्रों में ऐसे लड़के भी थे जो स्नेह के कारण उनके पास आते-जाते थे, उनसे जब-तब कुछ पढ़ते भी थे पर सब अनियमित। पैसे देने का सवाल न था। इनमें बैसवाड़े के दो युवक प्रमुख थे—दयाशंकर बाजपेयी और शिवशेखर द्विवेदी। हिन्दी और बँगला के अच्छे जानकार ये दोनों युवक निराला को होनहार लेखक भी लगे। वे अपने लेख, कविताएँ आदि निराला को दिखाते, उनसे प्रोत्साहन पाते।

निराला पैसों का जोड़-तोड़ कर रहे थे तभी एक घटना घटी। मुंशी नवजादिक लाल ने उनसे कमरे का किराया माँगा। 'मतवाला'-कार्यालय २३ नंबर से उठकर ३६ नंबर शंकरघोष लेन में चला आया था। जब तक निराला 'मतवाला' में लिखते रहे, तब तक भाड़े का सवाल न था। अब उन्होंने 'मतवाला' के लिए लिखना बंद कर दिया था। उनके साथ पत्रकार रामशंकर त्रिपाठी भी रहते थे। दोनों मित्रों ने सलाह की कि भाड़ा न देंगे। नतीजा यह हुआ कि मुंशीजी ने अल्टीमेटम दे दिया, या तो भाड़ा दीजिए या कमरा खाली कीजिए। लाचार निराला ने अपर चितपुर रोड पर कमरा लिया और जुलाई के अन्त में मित्र के साथ वहाँ उठ आये।

निराला इधर-उधर काम ढूंढ़ने लगे। इस कार्य में सहायता के लिए उनके मन मे एक विचार आया। क्यों न कुछ प्रसिद्ध विद्वानों और साहित्यकारों से अपनी योग्यता के प्रमाणपत्र ले लिये जायें। शायद इनके सहारे किसी पत्रिका के सम्पादन-विभाग में काम मिल जाय। वह सबसे पहले मराठी-भाषी हिन्दी पत्रकार लक्ष्मणनारायण गर्दे के पास गये। गर्देजी निराला के संन्यासीवाले भावों से परिचित थे। उन्होने प्रमाणपत्र में लिखा, "श्री पं० सूर्यकान्त त्रिपाठीजी साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कुछ ऊँचे पर रहते हैं। सृष्टि के बाह्य रूप में उसके अन्तरंग का विशेष अनुसंधान करते हैं। ऐसे मनुष्य संसार में थोड़े होते हैं। इन्हीं में प्रतिभा होती है और यदि परिस्थिति इन्हे प्रापंचिक चिन्ताओं के परे कर दे तो इनसे साहित्य का बड़ा उपकार हो सकता है।" यद्यपि एक अनुभवी पत्रकार का दिया हुआ यह प्रमाण-पत्र एन्ट्रेन्स के सर्टिफिकेट से

अधिक मूल्यवान था, फिर भी कलकत्ते के मारवाड़ी सेठों के लिए उसका विशेष उपयोग न था।

पन्द्रह दिन बाद निराला जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के पास पहुँचे। यद्यपि चतुर्वेदीजी निराला के मुक्त छन्द का विरोध कर चुके थे, फिर भी प्रमाणपत्र में उन्होंने सहृदयता से लिखा, "आप हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ हैं। आपके निराले ढंग के पद्यों ने हिन्दी-संसार में युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया है। आपकी गद्य-रचना भी प्रौढ़, पुष्ट और पाण्डित्यपूर्ण होती है।" सकलनारायण शर्मा ने भी निराला के गद्य की प्रशंसा की, "दार्शनिक गद्य ऐसे सरल होते हैं जिन्हें हिन्दी भाषा का थोड़ा भी ज्ञान है वे उन्हें भली-भाँति समझ सकते हैं।" निराला के सन्यासी वाले भाव को लक्ष्य करके उन्होंने एक व्यक्तिगत अनुभव का हवाला देते हुए लिखा, "मैंने एक बार इनसे वेदान्त-विषयक एक संस्कृत-ग्रंथ के सम्बन्ध में बातें की थीं तो मालूम हुआ कि आपके हार्दिक भाव विरक्त साधुओं के से हैं।" अगले महीने उन्होंने बालमुकुन्द डागा नाम के किन्हीं हिन्दी-प्रेमी व्यापारी से एक प्रमाणपत्र प्राप्त किया।

इन प्रमाणपत्रों से निराला को कोई तात्कालिक लाभ न हुआ; उन्हें किसी पत्रिका के संपादकीय विभाग में नौकरी न मिली। कलकत्ते की पोपुलर ट्रेडिंग कंपनी में बच्चों के लिए कुछ किताबें लिखने का आर्डर जरूर मिल गया। भक्त ध्रुव, भक्त प्रह्लाद और भीष्म पर उन्होंने तीन छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं। भक्त ध्रुव लिखते समय उन्हें कलकत्ते के हिन्दू-मुस्लिम दंगे याद आये। बच्चों में साम्प्रदायिकता के भाव न पनपें, इस विचार से पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा, "साथ ही, ईश्वर-प्राप्ति-विषयक गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन भी कर दिया गया है ताकि धर्म के मार्ग से घातक कट्टरता इस देश से लोप हो जाय, बच्चे हर प्रान्त और हर जाति के बालकों से सहानुभूति रखना सीखें।"

'भीष्म' लिखते समय उनका मन एक ओर जहाँ भीष्म की दृढ़ प्रतिज्ञा और वीरता पर मुग्ध हुआ, वहाँ दूसरी ओर यह सोचकर व्यथित भी हुआ कि उस भयानक जन-संहार में न जाने कितनी स्त्रियाँ विधवा और अनाथ हुई होंगी। प्रस्तावना में युद्ध के बर्बर पक्ष का चित्र खींचते हुए उन्होंने लिखा, "महाभारत का परिणाम स्त्रियों के लिये बड़ा भयानक हो गया। करोड़ों की तादाद में असूर्यंपश्या कुलबालाएँ अकालहत कलियों की तरह वैधव्य की विकट ज्वाला से झुलसने लगीं। उनके आर्तनाद से भारत का आकाश विदीर्ण होने लगा।"

बच्चों के लिए इस तरह की किताबें लिखना निराला को खल रहा था। पुस्तकें जल्दी लिखनी थीं, पैसे के लिए। बच्चों के लिए कलात्मक साहित्य रचने का अवसर न था। इनमें भी जहाँ-तहाँ वह अपनी गंभीर करुणा और मानवीय सहानुभूति की झलक दिखा देते थे। बाजारू काम होने पर भी इनमें उनका नाम जाता था। पर दूसरों की पाण्डुलिपियाँ शुद्ध करने के लिए उन्हें कोई श्रेय न मिलता था। पुस्तक के संपादक-रूप में उनका नाम न दिया जाता था। इससे घटिया बात यह कि पैसे के पीछे कभी-कभी वह दूसरों के लिए लिखते; किताब लिखते निराला, लेखक-रूप में

उस पर नाम छपता दूसरे का। अन्य साहित्यकारों से वह होड़ में पिछड़ जा रहे हैं, यह सोचकर मन ग्लानि से भर जाता। सन् '२९ खतम होने को आया। पाँच साल कलम घिसते हो गये। न अपने खाने-पीने का ठीक, न बच्चों को साथ रखने, उन्हें पढ़ाने-लिखाने की व्यवस्था हो पाई। 'दिल्ली का दलाल' जैसी पुस्तकों की खपत है, निराला की कविता के लिए बाज़ार नहीं।

सन् '२६ में सुमित्रानन्दन पंत का 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। सुन्दर सज्जा, कवि का नयनाभिराम चित्र, अनेक रंगीन चित्र, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग। हर जगह नयी कविता के प्रेमी पंत की कोमलकान्त पदावली पर लट्टू हो रहे थे। पंत अपने पत्रों मे कैसी मीठी-मीठी बातें करते थे। क्या यह सब छल था? 'पल्लव' की एक प्रति भी अपनी ओर से निराला के पास न भेजी!

निराला पंत के स्नेहपूर्ण पत्र फिर से उलटने लगे। इसी वर्ष वसन्त में पन्त का लिखा हुआ पत्र:

"३ म्योर रोड
प्रयाग
३१ मार्च '२६

प्रियवर निरालाजी,

आप मुझे पत्र क्यों नहीं लिखते? मैंने एक बार श्रीयुत मतवाला-संपादकजी से आपका पता भी पूछा था, पर तब आप अपने गाँव में थे।

कल श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदीजी मुझे मिले (;) उन्होंने आपके विषय में चर्चा की। मैं बहुत चाहता हूँ कि आप मुझे अपने कृपापत्रों से बराबर आभारी करते रहें। आपके पुराने पत्र कल मैंने पढ़े, वे कैसे स्नेहपूर्ण हैं! क्या आप अब मुझसे नाराज हैं। मैंने ऐसा क्या अपराध किया, निरालाजी? क्या आप मुझे बतलायेंगे? यदि मुझसे अनजान में कुछ हो भी पड़ा तो क्या आप मुझे क्षमा न करेंगे?

पिछले वर्ष मेरा मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा, अब भी अधिक अच्छा नहीं, इसीलिए मैं आपको न लिख सका—मैंने कोई नवीन कविता भी परिवर्तन के बाद नहीं लिखी।

श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदीजी कहते थे कि आपका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता, आप बहुत दुबले हो गये हैं। आप क्यों अपने स्वास्थ्य को नहीं सुधारते? खूब तनदुरुस्त तथा सुन्दर बन जाइये निरालाजी, अपना खूब यत्न कीजिये। आप कभी प्रयाग भी नहीं आते, आपके दर्शन कब होंगे?

मैं एप्रिल के अन्तिम सप्ताह तक यहाँ हूँ (,) फिर अलमोड़ा चला जाऊँगा, अगस्त में फिर लौट आऊंगा। आजकल इण्डियन प्रेस में मेरी कविताओं का एक संग्रह छप रहा है, नाम 'पल्लव' है। एप्रिल के अन्त तक प्रकाशित हो जायगा।

आप आजकल क्या करते हैं? स्वास्थ्य आपका कैसा है? आप मेरे पत्र का उत्तर तो देंगे? मुझे अवश्य पत्र लिखा कीजिए निरालाजी (।) आप बड़े अच्छे पत्र लिखा करते थे, न जाने फिर क्यों नाराज़ हो गए?

आपका पत्र पाकर मैं बड़ा प्रसन्न रहूँगा, आप अवश्य लिखिए, शीघ्र ही लिखिए —आपकी कविताएँ कभी-कभी 'मतवाला' मे पढ़ने को मिल जाती हैं—क्या आप ही के शब्दों मे लिखना पड़ेगा—"जागो फिर एक बार!"

आप वैसे ही स्नेहपूर्ण, कृपापूर्ण पत्र मुझे लिखा कीजिए, मुझे उनकी बड़ी जरूरत है। मैं सदैव आपका कृतज्ञ रहूँगा।

अपना यत्न कीजिए—पत्र अवश्य दीजिए।

और आपको क्या लिखूँ—मुझे विश्वास है आप मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे—

मैं अच्छा हूँ

आपका

सुमित्रानन्दन पन्त"

पत्र पढ़ते हुए निराला के मन मे फिर गुदगुदी हुई। पन्तजी उन्हें "जागो फिर एक बार" की नायिका की याद दिला रहे हैं—"कब से मैं रही पुकार"! सचमुच प्रेम की भीख ही तो माँग रहे थे। निराला के स्वास्थ्य की उन्हें कितनी चिन्ता थी! खूब तनदुरुस्त और सुन्दर बन जाइये निरालाजी। कितनी आत्मीयता, कितना स्नेह! निराला को याद आया, वह मान किये बैठे रहे थे; पत्र का उत्तर न दिया था। पन्त ने फिर लिखा था :

"३, म्योर रोड

प्रयाग

१६-४-२६

प्रियवर निरालाजी,

आपको एक पत्र लिखा था, उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते हार गया—क्या आप मुझे शीघ्र पत्रोत्तर देकर आभारी नही कीजिएगा?

पत्र अवश्य दीजिएगा निरालाजी, मैं बड़ा उत्सुक हूँ। आजकल मुझे खूब लंबे-चौड़े पत्र अच्छे लगते हैं [।] अभी खूब बड़ा सा पत्र लिखिएगा—आशा है आप मुझे हताश न करेंगे—

सविनय—आपका

सुमित्रानन्दन पन्त"

इस पत्र का उत्तर निराला ने दिया था। शिकायत की थी कि पन्त के यहाँ उनके पत्र गायब हो जाते हैं, वह उनका उत्तर नही देते। इसके साथ 'पल्लव' के प्रकाशन पर बधाई भी दी थी। पंत ने निराला के आक्रोश का उत्तर स्नेह से दिया था :

"प्रयाग

१-५-२६

प्रियवर निरालाजी,

प्रिय-पत्र आपका मिला, जुकाम से बेचैन था [,] इसलिए विलंब से उत्तर दे रहा हूँ [।] क्षमा कीजिए—

आपने अपनी लेखनी की नोंक पूरी ताकत से मेरे हृदय में चुभा दी, क्या आपको

यह अच्छा लगता है ? भला बतलाइये तो कौन से वे पुराने नियम है जिनके दलदल में आपके पत्र गायब हो गए ?

केवल एक पत्र को छोड़कर—जो शायद आपका अन्तिम था—और जो मेरे बड़े भाई साहब के मेज़ की दराज में ३ महीने तक पड़ा रहा, वे मुझे देना भूल गए—और कौनसा पत्र आपका कब गायब हुआ ? उस पत्र मे आपने मेरी कविताओं की आलोचना की थी, जो अशुद्धियाँ बतलाई थी मैंने ठीक कर लीं (।) उन दिनों मेरा मानसिक स्वास्थ्य इतना खराब था कि मैं आपको यह सब न लिख सका—आप ही बतलाइये क्या इसी बात को लेकर आपको रुष्ट हो जाना चाहिए था ? खैर, misunderstanding हो ही जाती है, मैं आपसे अपने जाने-अनजाने अपराध के लिए बार-बार क्षमा माँगता हूँ—मुझे आशा है भविष्य में आप मुझ पर वैसा ही स्नेह रखेंगे—मुझे विश्वास भी है—

अब आप मुझ पर कभी अपने व्यंग्य-बाण न छोडिएगा—"पल्लव" के लिए जो आपने बधाई दी धन्यवाद। अभी प्रकाशित नही हुआ, शायद मई के अन्त तक हो जाय।

अपना यत्न कीजिए, पत्र अवश्य प्रदान कीजिए—

आपका

सुमित्रानन्दन पन्त"

निराला को थोड़ा आश्चर्य हुआ। वही पत्र मेज में रह गया जिसमें पंतजी की कविताओं की आलोचना थी। मानसिक स्वास्थ्य खराब था पर कविताओ मे जो अशुद्धियाँ थीं, उन्हें ठीक कर लिया, केवल निराला को पत्र लिखने का समय न मिला। खैर क्षमा माँग ली; व्यंग्य-बाण अब न छोड़ेंगे। पर 'पल्लव' क्यों नही भेजा ?

निराला ने बाज़ार में 'पल्लव' देखा था, छपाई देखी थी, चित्र देखे थे, पढ़ा नहीं था। जेब में पैसे न थे। किताब खरीदें कैसे ? एक उदार मित्र उनकी परेशानी देखकर उन्हे 'पल्लव' की एक प्रति खरीदकर दे गये। निराला ने कविताओं पर एक निगाह डाली। फिर 'विज्ञापन' पढ़ा। इसके बाद मनोयोग से 'प्रवेश' पढना शुरू किया। ब्रजभाषा, देव, बिहारी, केशव, सूरदास, खड़ीबोली की कविता, हिलोर-लहर, भ्रू-भौंह, शब्द-विचार, फिर हिन्दी-संगीत की चर्चा। हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में व्यक्त हो सकता है। मालिनी, प्लवंगम, अरिल्ल, रूपमाला के संगीत की प्रशंसा। कवित्त छन्द हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्य-पुत्र है। निराला ने नोट किया, मुक्त छन्द का प्रवर्तक पंत ने खुद अपने को माना है। सन् '२१ मे उनकी कृश लेखनी से 'उच्छ्वास' यक्ष के कनकवलय-सा निकल पड़ा था। सम्मेलन-पत्रिका में निगमजी ने उस बीसवीं सदी के महाकाव्य की प्रशंसा करते हुए उसके छन्द को स्वच्छन्द कहा था। पंत के अनुसार उस वामन ने ऐसी टाँगें फैला दीं कि हिन्दी में सर्वत्र स्वच्छन्द-छन्द ही की छटा है। फिर आचार्य की तरह उपदेश : मुक्तकाव्य मात्रिक संगीत की लय पर ही सफल हो सकता है। गवैया जैसे तानपूरे से स्वर मिलाता है, वैसे ही मुक्तछन्द को मात्रिक संगीत से मिलना चाहिए। कवित्त के आधार पर लिखा छन्द तो बेसुरा हो

जायगा। इसके बाद निराला का नाम आना ही था। "उदाहरणार्थ मेरे मित्र हिन्दी के भावुक सहृदय कवि 'निरालाजी' को लीजिए।"

मात्रिक संगीत वाले छन्दों की तारीफ़, पर निराला के "कुछ छन्द बँगला की तरह अक्षर-मात्रिक राग पर" चलते है, वे हिन्दी के लिए अस्वाभाविक हैं। उदाहरण दिया रवीन्द्रनाथ की शाहजहाँ कविता से—

हे सम्राट् कवि,
एइ तव हृदयेर छवि,
एइ तव नव मेघदूत,
अपूर्व अद्‌भुत
छन्दे गाने
उठियाछे अलक्खेर पाने

पंतजी की राय मे बँगला उच्चारण से पढ़ने पर यह छन्द अच्छा लगता है, हिन्दी के ढँग से पढ़ो तो सूखी नदी में रोड़े विछे हुए दिखाई देते हैं। पंत ने उदाहरण दिया निराला की 'पंचवटी-प्रसंग' कविता से :

देख यह कपोत कंठ—
बाहु-वल्ली कर सरोज—
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितंबभार—चरण सुकुमार—
गति मन्द मन्द;
छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियो का,
देवों-भोगियों की तो बात ही निराली है।

पंत ने वे पंक्तियाँ उद्धृत की थी जिनमे छन्द का निर्वाह अत्यन्त सफल हुआ था। पर छन्द की असफलता दिखाने के लिए पंत ने उन्हीं को चुना! 'अधिवास' के मात्रिक मुक्त छन्द की तारीफ भी की, पर मुख्य बात यह थी कि उन्होंने वर्णिक मुक्तछन्द का विरोध किया था, उसे बँगला की तर्ज़ पर लिखा हुआ बताया था। रवीन्द्रनाथ की कविता के कुछ अंश उद्धृत करके संकेत किया था कि निराला ने रवीन्द्रनाथ की नकल की है। कवित्त-मात्र को हिन्दी के लिए अस्वाभाविक कह दिया था।

बहुत दिनो से निराला के मित्रों की इच्छा थी कि उनकी कविताओ का एक अच्छा-सा संग्रह निकले। 'पल्लव' के प्रकाशन के वाद निराला के लिए यह और भी आवश्यक हो गया कि वह भी अपना कविता-संग्रह लेकर मैदान मे आयें। काशी से उनके मित्र शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा, "पंतजी का 'पल्लव' निकलने के बाद मेरी और अन्य मित्रों की उत्कट अभिलाषा हो गई है कि आपकी सम्पूर्ण रचनाओ का भी एक सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र संकलन निकले। एक दिन वातों-ही-वातों में मैने अपनी यह धारणा भावमयी 'साधना' के आदरणीय लेखक श्रीमान राय कृष्णदासजी से प्रकट की। इतना कह देना चाहता हूँ कि रायसाहव ने आपकी कविताओं के गूढाशय और आपके मर्मस्थल को जितना स्पन्दित किया है उतना शायद ही दूसरा कोई। खैर।

"रायसाहब चाहते हैं कि यदि आप अपनी सुकृतमयी कृतियों को ग्रन्थ-रूप में प्रकाशित करने का अधिकार उन्हें दे दें तो वे उसे अनेक भावमय मौलिक चित्रों द्वारा अलंकृत कर 'पल्लव' से भी कई गुने सजधज के साथ प्रकाशित करें। मैं भी इतना अवश्य कहूँगा कि वे आपकी रचनाओं का जितना सुन्दर संस्करण निकाल सकते हैं उतना शायद ही कोई हिन्दी-प्रकाशक। व्यवसायी प्रकाशक और भावुक लेखक का अन्तर आप स्वयं समझ सकते हैं। मैं आपके हृदय की जिस प्रकार पूजा कर रहा हूँ चाहता हूँ कि उसके अनुरूप ही आपका काव्य-ग्रन्थ देखूँ।

"समस्या यही है कि आप अपनी कृतियों को कम-से-कम कितने पुरस्कार पर दान दे सकते हैं? आपकी कृतियों के साथ ही उस उत्कृष्ट कवि-हृदय को कोई पुरस्कार तो क्या देगा पर रायसाहब 'पत्रं-पुष्पं-फल' से सेवा करने के लिए प्रस्तुत हैं। उनका प्रकाशन-कार्य अभी नया है अतः पुरस्कार के मामले में वे एकाएक कलकत्ता और बम्बई के प्रकाशकों का मुकाबिला नहीं कर सकते [,] फिर भी आप जो पुरस्कार उचित समझते हों, लिखें। अविलंब। किन शर्तों पर आपकी कृतियों का अधिकार मिल सकता है। अवश्य लिखिये।"[७]

निराला इस पर चुप रहे। कुछ दिन बाद शान्तिप्रिय द्विवेदी ने उन्हें फिर लिखा। पहले निराला को पंत से श्रेष्ठ बताकर उन्हें प्रसन्न किया। "वेदनाओं ने आपको बहुत प्यार किया है और आपके हृदय ने करुण-रस को, विश्व के व्यथित मात्र को। यही अदृश्य प्रभावोत्पादक प्रणय ही तो आपको अगली शताब्दियों के लिये अमर कर देगा—पन्त को नहीं। क्योंकि पन्त को आकांक्षाओं और सुख की मीठी दर्दभरी वासनाओं ने हिलमिल कर प्यार किया है—यही उनके गीतों की लय है—वह लय जो हृदय को स्पंज की तरह देर तक पकड़ नहीं सकती [,] आपकी चिरकाल तक। सृष्टि में वेदना का अंश अधिक और अनन्त है अतः सम्पूर्ण सृष्टि की वेदनाओं के साथ सहानुभूति रखने वाले कवि ही अमर हैं। पंतजी की कवितायें अपने-आप तक परिमित हैं आपकी निस्सीम। आप अपने जीवन को सराहिये जिसने 'विधवा', 'खँडहर', 'भिक्षुक' 'दीन' जैसे गीतों का प्रणयन किया। आपकी अस्वस्थता और वेदना से मेरा इतना ही निवेदन है कि वह अपना प्यार सीमा के बाहर न जाने दे।"

इसके आगे कविता-संग्रह की बात :

"यदि आपकी 'मतवाला' में छपी सभी कविताओं का अधिकार मिलना दुरूह हो तो सेठजी से इतना अनुरोध कर दीजिये कि वे उनमें से केवल ३० कविताएँ चुन लेने दें। इसके अतिरिक्त ६० कवितायें आप अपनी अप्रकाशित कविताओं में से दीजिये। अच्छा होगा कि तत्काल आपकी ३० रचनाओं का एक सचित्र संस्करण निकल जाय। समयानुकूल इसकी बड़ी आवश्यकता भी है। इस प्रकार यदि एक बार रायसाहब से आपका प्रकाशन-सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो वे यथासमय आपकी सभी प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओं का प्रकाशन-भार अपने ऊपर ले लेंगे।

"यदि आप अपनी ६० कविताओं का एक संकलन रायसाहब को देने की चेष्टा करें तो मैं उनसे आपको तत्काल पुरस्कार देने की बात करूँगा—सफलता के साथ।

पहले पत्र का उत्तर आने पर रायसाहब ने आपको पत्र लिखने का विचार किया है।"[6]

निराला ने अब भी कविता-संग्रह छपवाने की उत्सुकता न दिखाई। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने उन्हें फिर याद दिलाया : "मैंने पिछले पत्र में लिखा था कि यदि आप अपनी अप्रकाशित तथा प्रकाशित रचनाओं में से चुन कर कुल ६० कविताओं का संग्रह प्रकाशित करने का अधिकार दें तो मैं रायसाहब से तत्काल पुरस्कार दे देने की बात कहूँ। उत्तर दीजिए। आपका पत्र आने पर रायसाहब स्वयं आपको लिखेंगे।"

इस पर भी निराला ने न कविताओं का संग्रह तैयार किया, न उसे राय कृष्णदास के पास भेजा। जिन दिनों काशी में निराला के कविता-संग्रह को प्रकाशित करने के लिए शान्तिप्रिय द्विवेदी उद्योग कर रहे थे, उन्हीं दिनों प्रयाग में रामनरेश त्रिपाठी 'कविता-कौमुदी' के दूसरे भाग के लिए निराला की कविताएँ पाने का उद्योग कर रहे थे। उन्होंने निराला को लिखा, "'कविता-कौमुदी' के दूसरे भाग में मैं आपकी जीवनी और चुनी हुई कविताओं का संग्रह देना चाहता हूँ। आशा है, इस काम में मुझे आपसे काफी सहायता मिलेगी। आपकी जो जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हों कृपया उन्हें वी०पी०पी० से भेजवा दीजिए और जो कविताएँ जो अप्रकाशित हों उन्हें भी कृपया नकल करके भेजवा दीजिये। जीवनी किसी मासिक पत्र में प्रकाशित हुई हो तो कृपया उसका वह अंक भी वी०पी०पी० से भेजवा दीजिये। न प्रकाशित हुई हो तो कृपा करके किसी मित्र से लिखवाकर भेजवा दीजिये।......कविता-कौमुदी प्रेस में जा चुकी है। कृपया जीवनी जल्दी भेजवाइयेगा।"[7]

काफी अच्छा प्रस्ताव था। 'कविता-कौमुदी' में जीवनी और कविताएँ छपने का मतलब था, हिन्दी-संसार की दृष्टि में उनका प्रतिष्ठित-कविरूप में स्वीकार होना। पर निराला को कविताएँ या जीवनी भेजने की कोई जल्दी न थी। जल्दी में इस तरह का कोई काम उन्हें पसन्द न था। एक पत्र के जोर से सामग्री भेज देने का यह भी मतलब होता कि वह प्रशंसा के भूखे हैं। फिर कविता-कौमुदी में कविताएँ छपने से निराला को ख्याति के अलावा क्या मिलता? ख्याति उन्हें काफी मिल चुकी थी। उनके नाम से कविता-कौमुदी की शोभा होगी, कविता-कौमुदी से उनकी शोभा न बढ़ेगी। पुस्तक से जो अर्थ प्राप्त होगा, वह रामनरेश त्रिपाठी के पास रहेगा। निराला की कोई जीवनी कहीं प्रकाशित न हुई थी। लिखवायें तो किससे? कौन झंझट में पड़े। कविता पुस्तक के नाम पर छोटी-सी 'अनामिका'। उसकी वी० पी० क्या भिजवाते! उन्होंने लिख दिया कि वह जीवनी और कविताएँ न भेज सकेंगे; अभी बहुत काम करने को बाकी है, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता।

पर रामनरेश त्रिपाठी आसानी से छोड़ने वाले जीव न थे। उन्होंने इस बार निराला के क्षुब्ध हृदय पर प्रशंसा का चन्दन लगाते हुए लिखा, "आप हिन्दी कविता में एक नये युग के प्रवर्तक हैं। आपका यथेष्ट वर्णन हुए बिना वर्तमान कविता का इतिहास अधूरा ही रह जायगा। आपकी जीवनी और कविताएँ 'कविता-कौमुदी' में न जायँगी तो सचमुच मुझे हार्दिक दुःख होगा।"[8] निराला प्रसन्न हुए पर कविताएँ

और जीवनी फिर भी न भेजी। रामनरेश त्रिपाठी ने तार दिया, तार के बाद फिर पत्र लिखा। सितम्बर सन् '२६ से लगातार प्रयत्न करते रहने पर जनवरी सन् '२७ के पहले हफ्ते मे वह निराला से उपयुक्त सामग्री पा सके।

निराला के लिए आवश्यक था कि वह कोई ऐसा काम करें जिससे तुरत द्रव्य की प्राप्ति हो। मुन्शी नवजादिकलाल ने उनका परिचय प्रकाशक निहालचंद वर्मा से कराया था। वह उनके पास गये और रवीन्द्रनाथ पर एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखने की योजना उनके सामने रखी। इस तरह की पुस्तक हिन्दी में अभी थी नही। रवीन्द्रनाथ की चर्चा सब तरफ हो रही थी। प्रकाशक की समझ में आ गया, किताब बिकेगी। चवन्नी पेज की लिखाई तै हुई। निराला को रस-अलंकार वाली पुस्तक से कुछ न मिला था। वह इतना इन्तजार न कर सकते थे कि पुस्तक लिख जाय, छपे, बिके, तब रुपये मिलें। उन्होने प्रस्ताव किया कि वह महीने-महीने मैटर देते जायेगे और उसके लिए उन्हें तुरत पैसे मिलते जायेगे। प्रकाशक ने स्वीकार किया।

निराला ने अपनी इस पहली आलोचना-पुस्तक के लिए काफ़ी परिश्रम किया। बँगला पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में रवीन्द्रनाथ-संबन्धी जो सामग्री निकली थी, उसे पढा। वह रवीन्द्रनाथ के जोड़ासाङ्कों वाले घर भी गये और वहाँ उनके जीवन के बारे में तथ्य संग्रह किये। पुस्तक धीरे-धीरे लिखी जाने लगी। निराला को इस तरह सामग्री बटोरकर पुस्तक लिखने का अभ्यास नही था। जो लिखाई मिलती थी, उससे उनका काम मुश्किल से चलता था। फिर भी जब वह बचा पाते, पन्द्रह-बीस रुपये भतीजों के पास गढाकोला भेज देते।

रवीन्द्रनाथ पर पुस्तक पूरी हो गई। पूरी होने तक जो पैसा मिला वह खर्च भी हो गया। शिवपूजन सहाय निराला के लिए काम की तलाश में थे। उन्होंने लिखा कि पूर्णिया मे गढ बनेली के राजा बडे साहित्य-प्रेमी हैं। उनके पास जाने से काम मिल सकता है। निराला ने एक बार वहाँ भी तकदीर आजमाने का विचार किया। भागलपुर होते हुए गंगा पार करके वह पूर्णिया पहुँचे और वहाँ से गढ़ बनेली आये। एक मारवाड़ी ब्राह्मण के यहाँ ठहरे। सवेरे नौ बजे साफ कपड़े पहनकर राजा से मिलने चले। होली नजदीक थी। गढ के नौकरों ने उनके स्वच्छ कपड़ों से होली खेल डाली। वह उदासमन मारवाड़ी के यहाँ लौट आये। शाम को कपड़े बदलकर राजा से मिलने फिर गए। मुलाकात हुई लेकिन राजा साहब के पास इस समय उन जैसे योग्य साहित्यकार के उपयुक्त कोई काम न था। निराला कलकत्ते लौट आये।

बहार के दिन और मुफलिसी। 'उग्र' ने तफ़रीह में मदद करने का वचन दिया। निराला को सोनागाछी मे एक घटिया जगह ले गए। निराला को बहुत जल्दी मालूम हो गया कि उन्हें भोग के पुरस्कार में रोग मिला है। उग्र ने ह्विस्की की बोतल में ठर्रा पिलाने का बदला ले लिया। बात कलकत्ते के मित्रों में इधर-उधर फैली। निराला के दुरूह काव्य के साथ उनके चरित्र की चर्चा होने लगी। निराला कोई बात छिपाते न थे। जो मारवाड़ी युवक परीक्षा-फल की चिन्ता किये बिना उनसे हिन्दी पढ़ता था, उसने अपना ज्ञान अनेक पत्रकारो तक पहुँचाया। स्वयं 'उग्र' बीभत्स मुद्राएँ

प्रदर्शित करके अन्तरंग जनों में निराला की स्थिति का वर्णन करते। हर तरफ काना-फूसी, हर तरफ शक की निगाहें। निराला के लिए कलकत्ते का वातावरण विष की ज्वाला के समान असह्य हो उठा। उन्होंने तै किया, कुछ दिन के लिए कलकत्ता छोड़ देना उचित होगा। जब तक निरोग न हो जायं तब तक लौटकर न आयेंगे। निराला कलकत्ते से काशी आये।

निराला काशी आये, अपने मित्रों के बीच आये। शिवपूजन सहाय के यहाँ ठहरे। विनोदशंकर व्यास को पता लगा तो वह निराला को जयशंकर प्रसाद के यहाँ ले आये। प्रसाद शैव थे, उनके यहाँ कापालिक अघोरी भी आते थे, पर निराला-जैसा अतिथि उनके यहाँ कोई न आया था! गर्मी के दिन, कमर में गमछा लपेटे, शेष शरीर दिगम्बर, रोग-पीड़ित, फिर भी साहित्यिकों के बीच सिर ऊँचा करके बैठने वाला, साहित्य-चर्चा में भाग लेने वाला, अपनी पीड़ा चुपचाप पीता हुआ, अधिकांश समय काव्य-चर्चा में बिताने वाला अद्भुत व्यक्तित्व था निराला का।

जयशंकर प्रसाद ने अपने यहाँ निराला के रहने की व्यवस्था की। उनके औषध-उपचार का प्रबन्ध किया।

एक दिन निराला बेनियाबाग से गोवर्धनसराय के पास की सड़क से जा रहे थे। अपने एक मित्र के साथ युवक लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र ने निराला को देखा और देखते रह गये। 'मतवाला' में निराला की रचनाएँ पढ़कर वह भी मुक्तछन्द में कुछ लिख चुके थे। क्या यही वह निराला है? कमर में तेल से भीगा बनारसी अँगोछा, मेहनत से कमाया हुआ सुगठित शरीर। युवक-लेखक मिश्र की निगाह निराला की सुदृढ़ मासपेशियों से फिसलती हुई एक क्षण के लिए उनकी आँखों पर ठहरी और फिर झिझककर सड़क पर आ गई। वे आँखें ऐसी थीं जैसे चौंककर चारों ओर घूमती हुई सब-कुछ देख रही हों। उन्हें लगा कि निराला की आँखों में इतना तेज है कि उनसे निगाह मिलाना मुश्किल होगा। चेहरा ऐसा लगा कि जैसे अपनी निर्भय मुद्रा से यमराज को भी स्तम्भित कर देगा। मिश्र ने यह भी नोट किया कि निराला के चौड़े कन्धों पर कहीं यज्ञोपवीत का सूत्र नहीं है। निराला सड़क छोड़ गली में घुसे तो अपने मित्र के साथ लक्ष्मीनारायण मिश्र भी पीछे हो लिये। निराला ने एक बार मुड़कर पीछे देखा, दो युवक आ रहे हैं। आगे बढ़ते गये। दूसरी बार मुड़कर देखा। वे युवक अब भी पीछे चले आ रहे थे। कुछ दूर चलने पर निराला ने तीसरी बार मुड़कर देखा, वे दोनों अब भी पीछे-पीछे आ रहे थे। फिर निराला ने उधर ध्यान न दिया।

प्रसाद मसनद के सहारे बैठे थे। निराला के साथ लक्ष्मीनारायण मिश्र भी पहुँच गये। प्रसाद ने परिचय कराया। निराला दाहिने हाथ का सहारा लेकर नीचे पैर लटकाये बैठ गये। प्रसाद ने उनसे पालथी मारकर आराम से बैठने को कहा। निराला ने कहा—जी नहीं, बड़ा कष्ट है। सब फोड़े और घाव से भर गया है। दो दिन में ही फिर कलकत्ते चले जाना है। काशी आकर बिना आपसे मिले चले जाना भी न होता। प्रसाद ने पूछा—ऐसी दशा में आप आये क्यों? निराला ने कहा—कलकत्ते

की भागीरथी वैसी पतितपावनी नही जैसी काशी की गंगा। सोचा वही चलकर गंगा की धार में इस पाप को धो दूँ।

विनोदशंकर व्यास प्रसाद के स्वभाव से परिचित थे। उन्होंने सोचा, प्रसाद कहेंगे कुछ नही, पर निराला के वहाँ रहने से उन्हें कष्ट होगा। हमारे यहाँ आपको ज्यादा सुविधा होगी, यह कहकर निराला को अपने यहाँ ले आये। प्रसाद निराला से करीब दस साल बड़े थे; विनोदशंकर व्यास निराला से पाँच साल छोटे थे। निराला प्रसाद का अदब करते थे, विनोदशंकर के साथ बराबर की दोस्ती का व्यवहार था।

तुलसीदास के समय से लेकर वर्तमान युग तक बनारस हिन्दी साहित्य का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। इसी नगर मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आधुनिक हिन्दी का शिलान्यास किया था। बीसवी सदी में यहाँ एक ओर पुरानी संस्कृति दम तोड़ रही थी, दूसरी ओर स्वाधीनता-आन्दोलन के साथ नया जीवन कसमसा रहा था : एक तरफ पंडे-पुरोहित, राजा-रईस, वेश्याएँ और भाँड, दूसरी ओर ज्ञानमंडल, 'आज' और प्रेमचन्द।

बनारस का अपना एक रंग है, रईसी ठाट-बाट के साथ सादगी और मस्ती है। घाट पर गमछा पहने घूमना असभ्यता में शामिल नही है। यहाँ की लम्बी तंग गलियों मे गरीब-अमीर बीच में ज़्यादा फ़ासला रखकर चल ही नही सकते। शहर पर देहात का असर है, जगह-जगह भोजपुरी सुनाई देती है, लोग खड़ीबोली बोलते हैं तो उस पर भी भोजपुरी का रंग रहता है। मेले-ठेले, सैर-सपाटा, सैलानियो के मनोरंजन के अनेक साधन हैं। बुढवा मंगल के मेले मे रईसो के बजरो पर संगीत और सौन्दर्य की छटा गंगा की धारा पर उतराने लगती थी।

लार्ड हार्डिंग ने हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया था, प्रिन्स आफ वेल्स ने उद्घाटन किया था। प्रतापनारायण मिश्र के सहयोगी मदनमोहन मालवीय ने देश के चुने हुए विद्वानों से विश्वविद्यालय को सजा दिया था। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी थी। श्यामसुन्दर दास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, भगवानदीन 'दीन', रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी विभाग की शोभा बढा रहे थे। ये सभी विद्वान् छायावादी कविता के विरोधी थे। नये साहित्यिक आन्दोलन के केन्द्र विश्वविद्यालय की प्रशस्त भूमि के बाहर थे। बनारस मे छायावादी कविता के सूत्रधार थे जयशंकर प्रसाद और नये कथा-साहित्य के प्रमुख सर्जक थे प्रेमचन्द। यद्यपि प्रसाद और प्रेमचन्द के भावबोध मे अन्तर था, फिर भी दोनो मे मैत्री थी, दोनों ही रूढिवाद के विरोध में भाईचारा निबाहते थे।

बचपन में बुलाक और लड़कपन मे शेरवानी और लाल-हरी चुँदरी की लट्टूदार पगडी पहननेवाले जयशंकर प्रसाद ने साहित्यिक और समाजिक क्षेत्रों में लम्बा रास्ता तै किया था। उनका जन्म रईस परिवार में हुआ था। सुँघनी साव की दुकान अपनी तम्बाकू और सुँघनी के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। प्रसाद के एक चाचा अनार के रस में भाँग तैयार कराने के बाद उसमें अफ़ीम घोलकर पिया करते थे। प्रसाद के बडे भाई टमटम भगाते हुए दूसरे की सवारी से टकराकर उसे गिरा देने में अपनी शान समझते थे। कवि, गवैये, पहलवान, ज्योतिषी, साधु, व्यापारी—तरह-तरह के लोगों का जमघट उनकी दूकान पर रहता था। वारवनिताओं के झरोखे दूर नहीं

थे। भाई के असमय निधन के बाद कर्ज, मुकदमेबाज़ी, विरोधी दल के गुंडों से निपटते हुए कसरत-कुश्ती के शौकीन, राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित युवक प्रसाद ने एक ओर घर का व्यापार सँभाला, दूसरी ओर नाटक, कहानियाँ और कविताएँ लिखी। सन् '२७ मे उनकी प्रतिभा अपने चरम विकास पर थी। 'आँसू' निकल चुका था। 'कामायनी' लिखने का वह उपक्रम कर रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' महाकाव्य के रूप मे काफी विख्यात हो चुका था; प्रसाद की इच्छा थी कि वह छायावादी शैली मे एक महाकाव्य लिखें।

'मतवाला' निकलने के समय से ही प्रसाद निराला की गतिविधि ध्यान से देखते रहे थे। काशी में उनके जितने मित्र थे, वे सब निराला के प्रति भी सहानुभुति रखते थे। राय कृष्णदास रईस, लेखक, प्रसाद के मित्र, निराला का काव्य-संग्रह छापने की उत्सुकता प्रकट कर चुके थे। शान्तिप्रिय द्विवेदी, रईसो के बीच निर्धन पर महत्त्वाकांक्षी युवक, मुच्छन नाम से विख्यात, हास्य-विनोद के सार्वजनिक आलंबन, छायावादी आलोचकों मे सबसे अच्छा गद्य लिखने वाले, निराला के परम प्रशंसक थे। कृष्णदेव प्रसाद गौड़ छायावाद के समर्थन में रूढिवादियो से मोर्चा ले रहे थे; रामनाथ लाल 'सुमन', अपने यूरोपियन साहित्य के ज्ञान से मित्रों पर रोब डालने का प्रयास करने वाले, छायावादी काव्य की प्रगति के लिए उद्यमशील गद्यलेखक थे। छायावादी कहानी-लेखक के रूप मे प्रसाद और निराला के बन्धु विनोदशंकर व्यास भी हिन्दी साहित्य मे विख्यात हो रहे थे।

विनोदशंकर व्यास का जन्म एक प्रसिद्ध साहित्यिक परिवार मे हुआ था। इनके दादा रामशंकर व्यास ने ही हरिश्चन्द्र को भारतेन्दु की उपाधि देने का प्रस्ताव किया था। अपनी मंडली के साथ स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके यहाँ होली खेलने आते थे। रंग और अबीर से गली में कीच हो जाती थी। विनोदशंकर व्यास जब तीन-चार साल के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। दादा ने बड़े लाड़-प्यार से पाला, पर जब विनोदशंकर युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे, तभी दादा का भी स्वर्गवास हो गया। पतंग और कबूतरो के प्रेमी विनोदशंकर का लालन-पालन बिगड़े रईस के लड़के की तरह हुआ। सन् '२० के असहयोग आन्दोलन में युवक विनोदशंकर ने दादा की कीमती कामदार टोपी जला दी, 'उग्र' के साथ गाँवों में किसानो के बीच भाषण दिये, गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' से राजनीति का पाठ पढ़ा। निराला कलकत्ते से आकर शिवपूजन सहाय के यहाँ ठहरे तो विनोदशंकर उनसे मिलने गये। शिवपूजन सहाय ने उन्हे पहली बार देखा और देखकर मुग्ध हो गये। गोरा रंग, स्वस्थ शरीर, बडी-बडी आँखें, लम्बे बाल, चुनी हुई धोती, पंप शू, हाथ में पतली छडी, अलबेली सूरत, खुलासा तबियत, बोलते कम, मुस्कराते ज्यादा—ऐसे थे विनोदशंकर व्यास जो निराला को प्रसाद के यहाँ से अपने गंगातट वाले आलीशान भवन में लिवा लाये।

मूँग की खिचडी खाकर निराला कुछ दिन परहेज़ से रहे। बनारसी साहित्यकारो के सखा उदीयमान कहानी-लेखक वाचस्पति पाठक प्रसाद के निर्देश से उनके लिए

दवा का प्रबन्ध कर रहे थे। अनियमित रूप से निराला दवा भी लेते रहे। एक दिन विनोदशंकर उन्हें अकेला छोडकर किसी काम से वाहर चले गये। लौटने पर देखा, निराला की आँखें नशे से लाल है। अपनी आँखों की ओर विनोदशंकर को सन्देह से निहारते देखकर निराला ने कहा—देखते क्या हैं ? मैंने आपकी जिन वाली वोतल साफ कर दी है। विनोदशंकर ने कहा—यह आपने क्या किया ? उसमे आधी वोतल से अधिक थी। निराला ने जवाव दिया—परहेज करते-करते जी घवड़ा उठा था। जो होगा, भोगूँगा; चिन्ता नही।

निराला अपनी असामान्य शक्ति से रोग की यंत्रणा के साथ वह सारा विप हजम कर गये। वह विनोदशंकर से अपनी पीड़ा के बारे मे कुछ न कहते। हँसी-मजाक, गाने-वजाने, कविता-पाठ में समय कट जाता था। निराला और विनोदशंकर व्यास की प्रतिभा और साहित्यिक अभिरुचि में वड़ा अन्तर था, पर निराला दूसरों पर अपने वड़प्पन का वोझ न डालते थे। इसलिए स्वाभिमानी विनोदशंकर बड़ी सहृदयता से निराला के प्रति अपनी मैत्री निवाहते रहे।

निराला के लिए ये कठिन परीक्षा के दिन थे। जिस रोग से वह पीडित थे, उसके नाम से समाज के प्रतिष्ठित जन नाक-भौ सिकोडते थे। वनारस के मित्रो ने उन्हे समाज में लांछित व्यक्ति का अकेलापन महसूस न होने दिया। साथ ही वे निराला को भरसक अधिक संयत जीवन विताने के लिए प्रेरित भी करते रहे। पर स्वयं कुछ काम किये विना निराला मित्रों पर भार वनकर रहना पसन्द न करते थे। कभी प्रसाद, कभी शिवपूजन, कभी विनोद के यहाँ—आखिर इस तरह कितने दिन चलेगा ? एक दिन मित्रो को सूचित किये विना ही निराला काशी से गढ़ाकोला चले आये।

मित्रों को दुख हुआ; निराला औपध लिये विना ही चल दिये थे। वाचस्पति पाठक ने उलाहना देते हुए लिखा, "कल यकायक आपके यहाँ जाने पर पता लगा कि आप चले गये, मुझे आपके यों जाने का अत्यन्त दुःख हुआ। इधर मै आपकी दवा एक विशेपज्ञ से तैयार करवा रहा था, इसलिए आपसे न मिल सका, और इधर आप काशी ही से चले गये। इमे (इससे) आप स्वयं समझें मुझे कितना दुःख हुआ। खैर, यदि अभी आवश्यक हो तो लिखिये मैं दवा भेज दूँ (।) मुझे पूर्ण विश्वास है कि ३-४ दिन में ही रोग समूल नष्ट हो जायगा।"[१२]

गाँव पहुँचने पर निराला की पीड़ा और वढ गई। प्रसाद को यह समाचार मिला तो उन्होने कुछ सहानुभूति प्रकट करते हुए, कुछ आवश्यक उपदेश देते हुए लिखा, "यह जानकर दु.ख हुआ कि काशी से जाने पर आपकी वीमारी बढ़ गई। अपने स्वास्थ्य का विशेप ध्यान रखिये। संयम से रहिये। इस अवस्था मे यदि अत्यन्त आवश्यक हो तभी और झमेलों में पड़ना चाहिए।"[१३]

विनोदशंकर ने प्यार से डाँटते हुए लिखा, "आप भी विचित्र पुरुप हैं, परहेज तो करते नहीं, मनमानी करते है। वहाँ कोई कहने वाला भी नहीं है (,) इसलिए आपको समझकर काम करना चाहिए।"[१४]

निराला पर इस समय जो वीत रही थी, वही जानते थे। गाँव में मित्र और

परिचित उनकी पीड़ा से अनभिज्ञ थे। रामसहाय के बनवाये उस कच्चे घर मे निराला अकेले रोग से लड़ते रहे। कभी-कभी उनका मन विषाद से भर जाता था। जीने में जब इतना कष्ट हो, तब आदमी जीकर क्या करे? इस जिन्दगी से मौत अच्छी।

निराला ने विनोदशंकर व्यास को लिखा, "यहाँ रोग-ग्रस्त जीवन दु:सह हो रहा है। आप लोगो के पत्रों से ही बचा हूँ।"[१५]

इन्ही दिनो उन्होंने पन्त के 'पल्लव' की आलोचना भी लिखी।

५

आलोचना-प्रत्यालोचना

सुमित्रानन्दन पन्त निराला से दो साल छोटे थे। कुमाऊं क्षेत्र के कोसानी गाँव में उनका जन्म हुआ था। पिता चाय के बगीचों मे मजदूरों से काम लेनेवाले ठेकेदार प्रदेश के धनी व्यक्ति थे। विशेष त्योहारों पर मजदूर युवक, युवतियों के साथ उनके पिता के सामने आकर, नाचते-गाते थे। कुमाऊं के लोग साधारण बैसवाड़े के किसानों से भी निर्धन और पीड़ित थे। पन्त जब गाँव छोड़कर अल्मोड़ा पढ़ने गये, तब वहाँ पिता के विशाल भवन में रहने लगे; इससे उन्हें विशेष गौरव का अनुभव हुआ। उन्होंने अपना घरेलू नाम गोसाईंदत्त बदलकर सुमित्रानन्दन रखा। वह अपने सुन्दर वस्त्रों और अंगो को प्यार करते थे; कोई उन्हें छूकर मैला न करे, इस बात का ध्यान रखते थे। सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उन्होंने लंबे बाल रखाये। लड़कपन में उन्होंने नाटकों में ज्यादातर स्त्रियों का अभिनय किया। रौलट ऐक्ट और जलियाँवाला बाग के दिनों मे बनारस रहते हुए उन्होंने देव, बिहारी, मतिराम आदि रीतिवादी कवियों की रचनाएँ खूब घोखीं; रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताएँ अंग्रेजी अनुवाद मे पढ़ी, कुछ बंगाली मित्रों से सुनीं। प्रयाग आकर जब वह इंटर मे पढते थे, उन्होंने स्वयं बहुत-सी कविताएँ लिखीं; संग्रह पर अपना नाम लिखा, 'नन्दिनि'। सन् '२१ में गाँधीजी का भाषण सुनने के बाद भाई के संकेत पर उन्होने कालिज छोड़ दिया; भाई ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया, पंत उससे दूर रहे। सन् '२३-२४ मे उनकी कविताएँ 'सरस्वती' मे छपी। सन् '२६ में उनका कविता-संग्रह 'पल्लव' प्रकाशित हुआ।

कुछ अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों, कुछ रवीन्द्रनाथ, कुछ कालिदास और बहुत-कुछ ब्रजभाषा के रीतिवादी कवियों के प्रभाव से पन्त के कवि-संस्कारों का निर्माण हुआ। खड़ीबोली में भी मधुर कविता हो सकती है, पन्त ने यह चमत्कार प्रत्यक्ष दिखा दिया। ब्रजभाषा के बड़े-बड़े धनीधोरी पन्त की कोमलकान्त पदावली का लोहा मान गये। वह हिन्दी में सौन्दर्य के अप्रतिम कवि के रूप में सामने आये। उनकी सौन्दर्य-प्रेमी आँखें कुछ प्रकृति पर, कुछ शब्दों पर, कुछ अपने ऊपर मुग्ध थीं। 'पल्लव' की रचनाओं को पौरुष की परुषता से उन्होंने बचाया; असहयोग आन्दोलन के गर्द-

गुवार से उन्हें दूर रखा। अन्य साहित्य-प्रेमियों के साथ निराला भी पन्त-काव्य पर मुग्ध हुए; खड़ीबोली के पिछले कवियों की साधना उन्हे हेठी लगी।

'पल्लव' निकलने से पहले निराला के मित्र शान्तिप्रिय द्विवेदी पन्त से मिल चुके थे। उन्हे अपनी कविताएँ सुनाई थीं, पन्त से यह सुनकर उन्हें सुखद आश्चर्य भी हुआ था कि उन कविताओं पर शेली और बायरन का प्रभाव है क्योंकि शान्तिप्रिय द्विवेदी इतनी अंग्रेज़ी न जानते थे कि उन कवियों की रचनाएँ पढ़ सकते। पन्त से वह काफी घुल-मिल गये थे; पन्त ने जो रहस्य निराला को न बताया था, वह शान्तिप्रिय के सामने प्रकट कर दिया। उन्होंने 'पल्लव' के प्रवेश मे निराला की आलोचना की है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने तुरन्त निराला को लिखा, "परसों मैं इलाहाबाद गया था—पन्तजी के शुभ दर्शन हुए। दरअसल वे दर्शनीय है। उनकी कविताओं का वृहत् संकलन 'पल्लव' नाम से इण्डियन प्रेस से अप्रैल तक निकल जायगा। इसकी भूमिका में पन्तजी ने आपकी शैली पर जो आलोचना की है—विचारणीय है।"[1]

निराला ने कलकत्ते से वापस आते समय बनारस मे शान्तिप्रिय द्विवेदी क सूचित कर दिया था कि वह पन्त की आलोचना लिखेंगे। पर यह काम वह टालते जा रहे थे। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने जल्दी स्वास्थ्य लाभ करके पन्त की आलोचना मे जुट जाने को कहा। "आपसे फिर-फिर अनुरोध है कि, आप व्यर्थ के झमेलों मे न पड़कर, इस समय एक मात्र 'स्वास्थ्य' की सेवा करें, इस सेवा के फूल श्री नंदिनीदेवी (पंतजी) की शब्दावली को अर्पित करने के लिये। 'पल्लव' के इन्द्रजाल का पर्दाफाश अवश्य हो जाना चाहिये। इसके बिना बात का बतंगड़ हो रहा है।"[2] इस पर भी निराला ने आलोचना लिखने मे कोई तत्परता न दिखाई तो शान्तिप्रिय द्विवेदी ने विचार किया कि वह स्वयं प्रयाग जाकर पंत को उनकी साहित्यिक चोरी का ज्ञान करायें। अर्थात् उन्हे बतायें कि निराला उनके बारे मे क्या लिखने वाले हैं। इस कार्य मे उन्होंने निराला की सहायता चाही। लिखा, "आप पंतजी की हस्तलाघवता के नमूने तो अवश्य भेजिये, समालोचना यथासमय लिखियेगा। मैं पंतजी से प्रयाग मे मिलने का विचार कर रहा हूँ, यदि आप समालोचना न भी लिख सकें तो मैं उनकी हस्तलाघवता उनके सम्मुख उपस्थित करूँगा। बड़ी इच्छा है।"[1]

पंत की आलोचना लिखने मे निराला को दो कारणों से देर हो रही थी। पहला यह कि उनका स्वास्थ्य ठीक न था, दूसरा यह कि उन्हें आलोचना लिखने के औचित्य पर संशय था। पंत उनके मित्र थे। पंत ने मित्र की तरह व्यवहार नहीं किया। निराला ने उनकी कविताओं मे जो अशुद्धियाँ बताई थीं, उन्हे पंत ने ठीक कर लिया पर 'पल्लव' के प्रवेश में इसका जिक्र न किया। मुक्तछन्द की आलोचना लिखने से पहले निराला से सलाह-मशविरा कुछ न किया। इसके साथ ही यह बात भी सच थी कि पंत की कविताएँ निराला को अच्छी लगती थीं। छायावादी कवियों पर चौतरफा हमले हो रहे थे; ऐसी हालत में पंत-निराला का विवाद विरोधियों के हित में होगा। पर यह प्रतिभा का द्वंद्व है; मित्र का लिहाज करने से निराला मारे जायेंगे।

भावों की भिड़न्त से निराला जितना वदनाम हुए, उतना ही पंत को नेकनामी मिली। यह दिखाना अत्यन्त आवश्यक है कि पन्त ने भी चोरी के माल मे अपनी दुकान सजाई है।

जो कार्य भावुक ने निराला के साथ किया, वही कार्य निराला ने पन्त के साथ किया। काफी विस्तार से पहले कैफियत दी कि आलोचना उन्हें क्यों लिखनी पड़ी, फिर वँगला कवियों और पंत की रचनाओं से भाव-साम्य और शब्द-साम्य के उदाहरण दिये। आलोचना की पहली किस्त जव 'माधुरी' मे प्रकाशित हुई, तव निराला के अनेक मित्र अप्रसन्न हुए। विनोदशंकर व्यास ने लिखा, "मैं तो समझता हूँ कि आप अपना अमूल्य सम्य एक छोटे से विषय पर नष्ट कर रहे हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप कोई काव्य की अथवा कोई भी मौलिक पुस्तक लिखें।"[४] शिवपूजन सहाय तक ने दवी ज़वान से कहा, "समालोचना में कुछ कटुता आ गई है। मैत्री का पुट दे कर दोष-दर्शन कराते तो रंग जम जाता।"[५]

स्वयं पंत ने अपनी आलोचना साहस और शालीनता से सहन की। यदि उन्हें क्षोभ हुआ तो उसे उन्होंने दवा दिया। निराला की आलोचना में कितनी सचाई है, इस पर वह चुप रहे। पूर्ववत् स्नेहभाव प्रदर्शित करते हुए, साथ ही जहाँ-तहाँ व्यंग्य से निराला को कुरेदते हुए, उन्होंने पत्र लिखा।

29, Beli Road
Alld
(U. P.)
11-X-'27

प्रियवर निरालाजी,

आपकी 'पंतजी और पल्लव' शीर्षक आलोचना 'माधुरी' में पढ़ने को मिली। इसका समाचार श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी से पहिले ही मिल चुका था, मैं उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहा था—

अच्छा ही हुआ, वहुत दिनों से आप हज़रत नाराज़ थे, अव शायद जी की जलन निकल जाने पर कुछ शांत हो जाएंगे। 'जलन' मैंने कुछ आपको चिढ़ाने के लिये भी लिख दिया। न जाने क्या आपको सूझी कि आपने चट से आलोचना, वह भी खूव कड़ी, छपवा ही तो दी। अच्छा साहव, यह सव कुछ तो हुआ—आप वनारस तक कई वार आते-जाते हैं,—केवल प्रयाग ही पर इतने नाराज़ क्यो हैं? मैं कई वार शान्ति-प्रियजी को लिख चुका हूँ, लेकिन सदैव आपके दर्शनों को तरसता रहता हूँ—जैसा कि कहा करते हैं।

आपने तो जान पड़ता है खूव दर्शनशास्त्रो का अध्ययन कर लिया है—आलोचना के सिवा वैसे भी मुझे दो-एक वार खवर मिली थी, और यह भी सुनता हूँ कि आपका स्वास्थ्य आपकी मानसिक उन्नति के साथ ही साथ अवनत होता जा रहा है। वाह भाई! अच्छा, अव अगर गुस्सा मिट गया हो, पंत को उसके १ से १००तक और शायद इससे भी अधिक अपराधों का दंड वहुत-कुछ आप दे चुके हों तो एक वार प्रयाग

आकर दर्शन दीजिए—आपसे किसी प्रकार लड़ाई-झगड़ा तो मुझे करना नहीं है, केवल मनोविनोद रहेगा। यदि आपको प्रयाग में ठौर-ठिकाना न मिलने का डर हो तो मेरी कुटी मे आप सदैव अपनी ही समझ कर (जैसा कि शिष्टाचारवश लोग कहते है) आ सकते है।

और आपको क्या लिखूं, आप 'तुङ्ग-हिमालय शैल शृङ्ग' जो ठहरे! कहीं क्या जाने कोई बात कलम से ठीक न निकली तो नाराज़ हो जाएँगे!

आना तो आपको एक बार यहाँ अवश्य चाहिए—यदि जल्दी हो तो और भी अच्छा। क्या आ सकेंगे? अब भी क्या नाराज़ ही है? आइए। मैं अब बहुत होशियार हो गया हूँ—चौर्य-कर्म मे नही जैसा आप लिखते है—और कई तरह, यहाँ आने पर मालूम होगा। सुनता हूँ, यहाँ लोग आपको Tit for tat उत्तर देने की ज़ोर-शोर से तय्यारी कर रहे है—करने दीजिए—वे लोग क्या जानें कि आप 'तुङ्ग-हिमालय शैल शृङ्ग' है।

पत्रोत्तर अवश्य दीजिए। बडी प्रसन्नता मुझे होगी, और मेरी प्रसन्नता का मूल्य थोडा नही—सचमुच, अवश्य उत्तर दीजिए, चाहे नाराज होकर दीजिए चाहे प्रसन्न होकर, दीजिए जरूर—

मै अच्छा हूँ—पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करूँगा—नही देंगे तो दूसरा पत्र लिखूंगा—उसके बाद जैसा होगा—

सलाम—

आपका

सुमित्रानन्दन पंत

निराला पर पंत की शालीनता और मित्रों की सलाह का असर हुआ। आलोचना के शेष भाग को उन्होंने भरसक नर्म बनाया। प्रसंगवश उन्होंने छायावाद के विरोधियो पर भी कुछ लिखना आवश्यक समझा। कविता मे विचारधारा और भावबोध को लेकर संघर्ष तेज हो रहा था। छायावाद का लगातार विरोध होने पर भी उसकी लोकप्रियता बराबर बढ रही थी। इसलिए जिन कवियों को 'सरस्वती' ने पाल-पोस कर बड़ा किया था, उनकी रक्षार्थ स्वयं भीष्म पितामह ने अस्त्र उठाया। उन्होने 'सुकवि-किंकर' के नाम से 'सरस्वती' में 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' शीर्षक लेख लिखा।[६] यद्यपि 'पल्लव' इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हुआ था और द्विवेदीजी का सम्बन्ध इस संस्था से बड़ा घनिष्ठ था, फिर भी वह 'पल्लव' के प्रकाशन से नाराज थे। उनका विचार था कि छायावादी कविता साधारण पाठको के लिए तो लिखी नही जाती क्योंकि उनकी समझ मे नही आती; छायावादी कवि अपने लिए ही कविता करते है। यदि ऐसा है तो कविता का प्रकाशन क्यों करते है? प्रकाशन भी कैसा? "मनोहर टाइप मे, बहुमूल्य कागज़ पर, अनोखे-अनोखे चित्रो से सुसज्जित, टेढी-मेढी ऊँची-नीची पंक्तियों मे रंग-बिरंगे बेलबूटों से अलंकृत।" संकेत 'पल्लव' की ओर स्पष्ट था।

द्विवेदीजी उपनामधारी कवियो पर भी कुपित थे। "शुद्ध लिखना तक सीखने के

पहले ही वे कवि वन जाते हैं और अनोखे-अनोखे उपनामों की लांगूल लगाकर अनाप-शनाप लिखने लगते हैं।"

'मनोरमा' ने 'अनोखे' उपनाम का प्रयोग करके निराला का मजाक उड़ाया था। द्विवेदीजी ने उसी 'अनोखे' शब्द का वैसे ही प्रसंग में प्रयोग किया।

निराला ने अपनी आलोचना के अगले अंश में द्विवेदीजी पर व्यंग्य करते हुए रूपक बांधा। मैथिलीशरण जैसो की कविता हुई लंका। उसे छायावाद की मलिनता से बचाने का भार उठाया सुकवि-किंकर ने। छायावादी कवि उनकी सोने की लंका के कँगूरे ढहाते थे। अपने कर्णकटु शब्दों से उन्हे हैरान करते थे, "और सबसे बड़ा पाप, सोते समय उनकी नासिका के छिद्र में लागूल करके उन्हें जगा देते थे।"

गुरु को चिढ़ाने में निराला को मजा आ रहा था। उनकी नासिका से लांगूल का संबंध स्थापित करने के बाद उन्होंने कवित्त को हिन्दी का सहज छन्द सिद्ध किया, अपने मुक्तछन्द को उसके आधार पर रचा हुआ बताया। पन्त को कवित्त छन्द अच्छा नही लगता, इसका कारण उनके स्वभाव में स्त्रीत्व गुण की प्रधानता है। कवित्त में निराला ने एक विलक्षण विशेषता और ढूंढ निकाली, वह निर्गुण आत्मा की तरह "पुरुष भी बनता है और स्त्री भी।"

निराला को यह भी सिद्ध करना था कि मुक्तछन्द के आदि-स्रष्टा पंत नहीं वह स्वयं है। पंत ने लिखा था कि उनके 'उच्छ्वास' की रचना सन् '२१ में हुई थी। निराला ने लिखा कि जब वह १६-१७ साल के थे, तभी मुक्तछन्द की सृष्टि कर चुके थे। 'जुही की कली' मुक्तछन्द के कारण द्विवेदीजी ने वापस कर दी थी, वर्ना वह 'उच्छ्वास' से बहुत पहले छप गई होती।

निराला ने ब्रजभाषा और सूर आदि भक्त कवियो पर पंत के आक्षेपों का विस्तार से उत्तर दिया और अंत मे पंत की कविताओ की प्रशंसा भी की। पूरी आलोचना छप जाने पर छायावाद के अनेक समर्थक दुखी हुए। इनमें रामनाथ लाल 'सुमन' भी थे। इस तरह की आलोचनाओ से छायावाद की दीवारें ही कमजोर होती हैं। विरोधी कहते है, एक चोर तो पहले निकल गया था; दूसरे की यह हालत है! नये स्कूल के सभी कवियों को कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर खडे होना चाहिए।

'सुमन' ने नेक सलाह दी थी पर अन्तर्विरोधों को दबाने से कोई आन्दोलन शक्तिशाली नही होता। पंत को न कवित्त पसंद था, न सवैया, न ब्रजभाषा शब्दों का माधुर्य पसन्द था, न सूर के पद। बौद्धिक स्तर पर वह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के अंग्रेजियत-पसन्द वातावरण से प्रभावित थे। पंत और निराला का अंतर्विरोध छायावाद का अपना आन्तरिक विरोध था। निराला और पंत की टक्कर बैसवाड़े के किसान और इलाहाबादी इंटलेक्चुअल की टक्कर थी।

'पंतजी और पल्लव' हिन्दी आलोचना के विकास में एक युगान्तरकारी चरण था। सांस्कृतिक विकास, भाषाशास्त्र, दार्शनिक ऊहापोह, तुलनात्मक अध्ययन, कलात्मक गठन—ज्ञान के विभिन्न स्तरों पर निराला ने बडी गहराई से समस्याओं का विवेचन किया। लेख के पीछे आत्मगत भावनाएँ, कहीं-कहीं उलझी हुई भावग्रन्थियाँ

भी थी पर इससे लेख का महत्त्व कम नही होता। निराला की आलोचना से पंत रूठे नही; आपस का स्नेह-व्यवहार पहले जैसा बना रहा।

सन् '२७ की बरसात ख़त्म होने तक निराला प्राय: रोगमुक्त हो गये। शरद के आरंभ मे काशी होते हुए वह फिर कलकत्ता पहुँचे। 'मतवाला' के दफ्तर वह न गये; अपने महिषादल के साथी रामशकर शुक्ल के यहाँ ठहरे। काम की तलाश मे वह गंगा पुस्तकमाला लखनऊ से पत्रव्यवहार कर रहे थे। उन लोगों ने निराला के 'क्वालिफिकेशन' पूछे थे। निराला ने पहले तो उनसे क्वालिफिकेशन शब्द की व्युत्पत्ति पूछी। फिर यह सोचकर कि इस तरह काम मिलता भी होगा तो न मिलेगा, वह पत्र फाड़ डाला। दूसरे पत्र मे अपने संस्कृत, बँगला, अंग्रेज़ी, हिन्दी के ज्ञान का उल्लेख किया, 'समन्वय'-संपादन का हवाला दिया। वेतन सौ रुपये माँगा। सौ रुपये वेतन कुछ ज्यादा न था। इन्ही दिनो रामनाथ लाल 'सुमन' सौ रुपये मासिक पर 'मारवाडी-अग्रवाल' के संपादक होकर बंबई गये थे। शिवपूजन सहाय ने भी निराला की सिफा-रिश करते हुए गंगा पुस्तकमाला वालो को लिखा था पर इसका भी असर कुछ न हुआ। निराला को काम न मिला। शिवपूजन सहाय निराश न होकर उनके लिए 'आज' मे कोशिश करने लगे।

महादेवप्रसाद सेठ को जब समाचार मिला कि निराला कलकत्ते मे है, तब उग्र को साथ लेकर वह खुद उनसे मिलने आये। निराला के प्रति विनम्रता प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कहा, कोई अपराध हुआ हो तो आप क्षमा करें। निराला ने मन मे सोचा, इस क्षमा-याचना में भी जरूर कोई व्यापार वाला पेंच है। महादेवप्रसाद ने निराला को चुप देखकर छेडा, सुना आप माधुरी जा रहे है? निराला ने कहा—'है' नही 'था'; जगह भर गई।

निराला ने वास्तव मे 'माधुरी' नही, 'सुधा' में काम पाने का प्रयत्न किया था। पर उन्होंने महादेव सेठ को टोका नही, 'माधुरी' हो या 'सुधा', क्या फर्क पड़ता है जब काम मिला ही नहीं। महादेवप्रसाद सेठ ने उन्हे 'मतवाला' मे फिर आ जाने का निमन्त्रण दिया; यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह उन्हे साठ रुपये मासिक से ज्यादा न दे सकेंगे। निराला ने लखनऊ के प्रकाशक से सौ रुपये माँगे थे; यहाँ ये कलकत्ते में साठ रुपये दिखा रहे हैं। पर और कही काम न मिल रहा था। उन्होंने स्वीकार कर लिया।

उन्होंने एक कविता लिखी—

> मेरा अन्तर वज्र कठोर,
> देना जी भरसक झकझोर,
> मेरे दुख की गहन अन्ध-
> तम-निशि न कभी हो भोर,
> क्या होगी इतनी उज्ज्वलता—
> इतना वन्दन—अभिनन्दन?
> जीवन चिरकालिक क्रन्दन।

निराला ने बाज़ार की लिखाई के दो आर्डर प्राप्त किये और शिवपूजन सहाय को लिखा कि जयशंकर प्रसाद से दवा लेकर उनके पास भेज दें। शिवपूजन सहाय ने निराला को 'मतवाला' में फिर से पैर जमाने की सलाह देते हुए लिखा, "अब कुछ दिन जमकर एक जगह रहिये। आसन जमाकर बैठिये। मन को स्थिर और शान्त कीजिये। चेष्टा कीजिये कि आपकी सभी कविताएँ सुन्दर सजीले ढंग से हिन्दी संसार के सामने आवें—पुस्तकाकार। 'अनामिका' उसी में अन्तर्भुक्त। इसका बड़ा प्रभाव और लाभ नजर आयेगा।"[1] शिवपूजन सहाय स्वयं 'मतवाला' में जम न पाये थे; उन्हें पत्र में आसन जमाने की सलाह देने के साथ ही उन्होंने इधर-उधर निगाह दौड़ाई; निराला को और कहीं काम मिल जाय, इस प्रयत्न में लगे रहे।

लहेरियासराय वालों के लिए काम करते हुए शिवपूजन सहाय का परिचय गुलाबराय से हो गया था। इनकी रससम्बन्धी पुस्तक वहीं से छपी थी। इस समय वह महाराज छतरपुर के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। शिवपूजन सहाय ने निराला की योग्यता के बारे में उन्हें लिखा और उनके उपयुक्त कोई वहाँ काम हो, तो बताने को कहा।

छतरपुर रियासत के महाराज सर विश्वनाथसिंह जू देव ब्रजभाषा काव्य के प्रेमी थे। अनेक साहित्यकार उन्हें अपना अन्नदाता मानते थे। विख्यात आलोचक मिश्र-बन्धुओं में एक बन्धु शुकदेवबिहारी मिश्र वहाँ दीवान के पद पर आसीन थे। महाराज ने बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव कवि चंडिदास के पद सुने थे। 'ब्रजबुलि' से प्रभावित बँगला के वे पद महाराज को बहुत रुचे थे। वह स्वयं गौड़िया सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनकी इच्छा हुई कि उनका अनुवाद ब्रजभाषा में करायें। उन्होंने प्राइवेट सेक्रेटरी को आज्ञा दी कि वह ऐसा विद्वान् ढूंढ़ निकालें जो अच्छा कवि हो और जिसकी बँगला-ब्रजभाषा दोनों में अच्छी गति हो।

बाबू गुलाबराय को शिवपूजन सहाय के पत्र का स्मरण हुआ। उन्होंने अपना सरकारी लेटरपैड निकाला जिस पर दो सारसों वाला राज्यचिह्न अंकित था और प्राइवेट सेक्रेटरीज आफिस, छतरपुर बुन्देलखण्ड अंग्रेजी में छपा था। उन्होंने निराला को पत्र लिखा :

७-१०-२७,

श्रीमन्,

लाला शिवपूजन सहाय से ज्ञात हुआ कि आप बँगला भाषा और ब्रजभाषा के अच्छे ज्ञाता हैं और ब्रजभाषा में कविता भी करते हैं। श्री महाराज साहिब को एक एसे [ऐसे] ही विद्वान की आवश्यकता है। वह श्री चंडीदासजी के ग्रन्थों का पद्यानुवाद कराना चाहते हैं [।] कृपया तार द्वारा सूचित कीजिए कि आप यहाँ आ सकते हैं या नहीं और आ सकते हैं तो कब और कृपया यह भी लिखिये कि यहाँ आने के लिए आपके क्या terms होंगे। उत्तर बहुत शीघ्र देने की कृपा कीजिये।

भवदीय
गुलाबराय
प्राइवेट सेक्रेटरी

निराला ने तार से उत्तर दिया कि वह छतरपुर ग्रा सकते है।

चंडिदास की कुछ रचनाएँ वह पढ चुके थे और वे उन्हे पसन्द आई थीं। गुलाव-राय का पत्र पाने के बाद उन्होंने वसुमती साहित्य मंदिर वाली सस्ते कागज़ पर डवल कालम मे छपी चंडिदास तथा अन्य वैष्णव कवियो की ग्रन्थावलियाँ खरीदी। 'मत-वाला' मे मुश्किल से महीने-भर काम किया होगा कि फिर अलग हो गये। कलकत्ते से वाहर निकले पर सीधे छतरपुर न जाकर वह गढ़ाकोला आये। उधर गुलावराय का पत्र लेकर उनसे मिलने हरेकृष्ण मुखोपाध्याय नाम के सज्जन कलकत्ता पहुँचे। वह उसी वीरभूम जिले के निवासी थे जिसमे कई शताब्दियो पहले भक्तशिरोमणि चंडिदास का जन्म हुआ था। कलकत्ते के थियोसौफिकल हाल में उन्होने चडिदास पर कुछ व्याख्यान भी दिये थे। वैष्णव कविता-प्रेमियो की तलाश मे वह छतरपुर पहुँच गये थे। गुलावराय का पत्र लेकर वह निराला से मिलने इसलिए गये थे कि वँगला से अनुवाद करने मे वह निराला की मदद करें। जव निराला न मिले तो मुखोपाध्याय ने उन्हे अग्रेजी मे पत्र लिखा और सूचित किया कि इस कार्य के लिए जो कवि सुलभ थे, उनमे आपको चुना गया है, आप नमूने के तौर पर कुछ पदो का अनुवाद हिज़ हाइनेस के पास भेजे। आगे चंडिदास के महत्त्व पर लिखा कि वह विश्व-प्रसिद्ध गीत-कार है। निराला को ऐसे विश्वकवि के अनुवादक होने का गौरव प्राप्त करना चाहिए। कविता का मर्म समझने मे उन्हे सहायता दरकार हो तो मुखोपाध्याय महाशय इसके लिये सहर्ष प्रस्तुत है।

निराला को यह सव विलकुल अच्छा न लगा। वह जो अपने को रवीन्द्रनाथ का समकक्ष समझते थे, चंडिदास का ग्रनुवादक वनने में गौरव का अनुभव क्या करते! वह जो रवीन्द्रनाथ की कलात्मक वारीकियाँ दिखाने मे अपने को हर वंगाली विद्वान् से वीस समझते थे, चंडिदास का मर्म समझने के लिए वीरभूम के इन मुखोपाध्याय की सहायता क्या लेते! उन्होने उनके अंग्रेजी पत्र का उत्तर वँगला मे लिखा और इस ढँग से लिखा कि मुखोपाध्याय महाशय समझ जायँ कि निराला को उनकी सहायता की ज़रूरत नही है। पर मन मे वह डाले रहे कि छतरपुर मे काम मिल गया तो महा-राज से मुखोपाध्याय की सहायता के लिए भी कहेगे।

दिन वीतते जा रहे थे और निराला को जैसे छतरपुर जाने की जल्दी न थी। गुलावराय ने उन्हे फिर याद दिलाया कि उन्हे छतरपुर आना है; महाराज की स्वी-कृति के लिए वह अनुवाद का नमूना भेजें। निराला ने सोचा, एक वार लखनऊ जाकर तकदीर आज़मायें। लखनऊ मे वह रूपनारायण पाण्डेय से मिले। पाण्डेयजी प्रसाद के मित्र थे, उनके साथ वनारस में रह चुके थे। उसी नाते वह निराला से वड़े स्नेह से मिले, 'मतवाला' मे अपनी कटु आलोचना का जिक्र न आने दिया। दुलारेलाल भार्गव से भी वातचीत मैत्रीपूर्ण रही पर निराला को अपने यहाँ रखने मे उन्होने असमर्थता प्रकट की। निराला गढाकोला लौट आये। हारकर उन्होंने चंडिदास ग्रंथावली उठाई। कुछ पदों का अनुवाद कर डाला। कलकत्ते मे स्टार थियेटर का चंडिदास नाटक उन्हे वहुत पसन्द आया था। कहानी याद थी। चंडिदास पर कुछ लेख 'प्रवासी' आदि

बँगला पत्रो मे पढ़े थे। उन्होंने लगे हाथ चडिदास पर एक लेख भी लिख डाला।

इस वर्ष एक दुर्घटना यह हुई कि निराला के परम मित्र और हितैषी शिवपूजन सहाय छत से गिर पडे और उनके पैर मे वड़ी चोट आई। प्रसाद ने निराला को लिखा, "शिवपूजनजी ने स्थान वदलने जा कर अपना पैर तोड़ डाला था, अव धीरे-धीरे अच्छे हो रहे हैं।"[८] निराला ने मित्र की कुशलक्षेम पूछते हुए उन्हे पत्र लिखा और छतरपुर वाले काम के वारे में उन्हें सूचित किया, "हाँ सेक्रेटरी छतरपुर के पास ब्रजभाषा मे चंडिदास के एक पद्य का अनुवाद करके भेज चुका हूँ उनकी आज्ञानुसार। भई, वहुत ठोंक-वजा रहे हैं।" निराला को वहुत आशा न थी कि छतरपुर मे पटरी वैठेगी। इसलिए उसी पत्र में यह भी लिखा, "आपका वहाँ क्या रंग है, पुस्तकें निकलती है या नही, रामायण की टीका कोई लिखवाना चाहते है या नही, और जो नई वातें हो लिखिये।"[९] पत्र के अन्त मे दो पंक्तियाँ प्रसाद के लिए लिखी—"मेरी तवियत अच्छी है। वीमारी क्रमशः अच्छी हो रही है। पैर का घाव अभी तक वैसा ही है।"

छतरपुर जाने से पहले ही निराला रामायण की टीका लिखने की वात सोच रहे थे। शिवपूजन सहाय को लगा कि निराला या तो वहाँ जायेंगे नही या गये तो वहाँ टिकेंगे नही। उन्होने फिर वड़े स्नेह से उन्हे समझाया, "वह राजदरबार है; मेरी राय है कि आप वहाँ कुछ दिन रहें, कोई गारन्टी तो है नहीं, जव तक दाना-पानी साथ दे। मुझे विश्वास है कि आप वहाँ रहना चाहेगे तो साहित्य का वड़ा उपकार होगा। मेरी आन्तरिक इच्छा यह है कि आप वहाँ पहले आसन जमावें, फिर पैर फैलावें, उसके वाद आराम से सोवें या चाहे जो करें। आप तो एक दरबार में लडकपन से बहुत दिन तक रह चुके हें; आपको मैं नही वता सकता कि राजदरवार में कैसे रहना चाहिये। इस विषय में आप ही भलीभाँति सोच सकते हैं।"[१०]

छतरपुर जाने से पहले निराला एक चक्कर डलमऊ का लगा आये। वहाँ से उन्होने प्रसाद को लिखा कि गढाकोला जाते ही छतरपुर के लिए रवाना हो जायेंगे पर स्पष्ट ही उन्हें जाने की कोई जल्दी न थी। उन्होने सुना कि डलमऊ में अहीरों की अखिल भारतीय सभा होगी; उसे देखने के लिए तीन दिन और रुक गये! बनारस से किसी ने एक नयी पत्रिका निकाली थी, एक अंक निराला के पास भेजा था, रचना माँगी थी, पत्रं-पुष्पं भेंट करने का वादा किया था। निराला ने एक लेख प्रसाद के पास भेज दिया, यह कहते हुए कि "यह लेख मुद्रा के लोभ से मुद्रण-यंत्र में जाना चाहता है।"[११] वह ऐसे विनोद कर रहे थे मानो संसार में उनसे अधिक निश्चिन्त व्यक्ति दूसरा न हो। वनारस वाली पत्रिका थोड़े से पृष्ठो की साधारण ही निकली थी। निराला ने उसका वर्णन किया, "मासिक के रूप से दरिद्र निकली हुई—भविष्य की अपनी स्थूलता का विश्वास दिलाती हुई।" पत्र के ऊपर डलमऊ, रायवरेली लिखने के बाद तारीख की जगह लिखा—

"मंगलवार तारीख याद नही
—२७-२८ होगी।"

निराला के मन में अव भी कहीं थोड़ी-बहुत मस्ती वची हुई थी। बच्चों को

दुलराते, सलहज से मज़ाक करते, गंगा में तैरते, कुल्ली से ज्ञान-चर्चा करते निराला ने अपना दुख ठेलकर मन के एक कोने मे डाल दिया था।

तीन महीने तक लगातार टालने के बाद आख़िर निराला जनवरी सन् '२८ के आरंभ में छतरपुर पहुँचे। गुलाबराय ने उनके ठहरने की व्यवस्था की। छतरपुर में फूस के झोपड़ों के बीच राजभवन सर ऊँचा किये वैसे ही खड़ा था जैसे महिषादल में महाराज सतीप्रसाद गर्ग का राजमहल। निराला ने अपना मन समझाया—यह वीर छत्रसाल की कर्मभूमि है, जैसे वह पराक्रमी थे वैसे ही उदार थे। भूषण ने उचित ही उनकी प्रशंसा की थी। जब वह चलने लगे थे तो छत्रसाल ने उनकी पालकी में कंधा लगा दिया था।

छत्रसाल के उत्तराधिकारी, छतरपुर के महाराज अंग्रेजों के वैसे ही कृपापात्र थे, जैसे महिषादल के राजा। इसी साल उन्हें अंग्रेज सरकार की वफ़ादारी के उपलक्ष मे के० सी० आई० ई० का खिताब मिला था। निराला जब छतरपुर पहुँचे तब वहाँ उत्सवों की धूम मची थी। सरस्वती-सदन पुस्तकालय में सभा होगी; निराला को भी उसमें कुछ कहना होगा—महाराज के सम्मान मे। निराला ने सोचा, और लोग तो गद्य मे भाषण देंगे, महाराज की प्रशंसा में एक पद्य रचा जाय तो धाक जमेगी। ब्रज-भाषा में लिखा जाय तो और भी अच्छा; इससे महाराज को कवि के ब्रजभाषा-ज्ञान का परिचय भी मिल जायगा। राजाओं की प्रशंसा में कविता लिखना है तो अनुचित, पर उसमें छत्रसाल और विगत गौरव का उल्लेख कर दिया जाय तो चाटुकारिता का दोष मार्जित हो जायगा।

सभा मे राज्य के प्रतिष्ठित गण्यमान्य जन एकत्र हुए। दीवान रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र ने अध्यक्षता की। निराला ने अपना पद्य गाकर सुनाया :

नयननि उमडि आयो सिन्धु।
गगन जस-थल विमल-किरननि
धनि लख्यो नव इन्दु॥
बहि चली रसधार नव मति
कुमुदिनी उघरी।
पाय कविता-दरस परसत
पग, परागन-भरी॥
दियो वर हँसि, बसि रही उर,
मधुर भो मो प्रान।
प्रात होइहि, करहु भारत—
भजन - गुन - गन - गान॥
लख्यो नरपति-विश्वनाथहिं
द्वार स्मृति के खडो।
छत्रसाल - महीप - महिमा को
नवल रवि कढो॥

श्रोता निराला की स्वर-माधुरी पर मुग्ध हुए; अर्थ बहुत साफ न समझने पर भी महाराज की प्रशंसा में गीत रचा गया है, यह सोचकर वाह-वाह की।

छतरपुर मे निराला का मन लग गया। गुलाबराय और उनके साथी रामनारायण शर्मा उनके कविता-पाठ और व्यंग्य-विनोद पर निछावर हो गये। निराला अक्सर इन मित्रो के साथ मंदिर के पास खेतों की सैर को निकल जाते। नाज की बालों और पत्तियों पर ओस की बूँदे देखकर "श्रमकन झलकन बारि"—यह पंक्ति रामनारायण के मुँह से निकली। निराला से उन्होंने समस्यापूर्ति का आग्रह किया। निराला ने दोहा कहा—

> लख्यों विजन वन गहन मे, श्रमकन झलकन वारि;
> खरी मोतियन लर जरी, परी हरी वर नारि।

भाँग छानना, काव्य-चर्चा करना, रामनारायण शर्मा से लेकर पुस्तकें पढना कुछ दिन यह कार्यक्रम चला। अपने स्वभाव के अनुसार निराला ने रामनारायण शर्मा को हिन्दी लिखने के लिए उत्साहित किया, उनकी रचनाएँ छापने की सिफारिश करते हुए शिवपूजन सहाय को लिखा, "हिन्दी लिखते हैं और अनुप्रासाशी खूब है। नौजवान, प्रसन्न, मधुरभाषी। आप बालक के लिये इनसे प्रबन्ध लेकर अपनी प्रचलित प्रथानुसार अपनाइये —छापिये।"[१२]

दो दिन शुकदेवविहारी मिश्र के यहाँ साहित्यिक गोष्ठी हुई। राज्य के बड़े आफिसर एकत्र हुए। निराला ने गाना गाया और कविता-पाठ किया। अवध का एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण इतना सुन्दर गाना गा लेता है, यह सोचकर रायबहादुर शुकदेव बिहारी मिश्र ने प्रशंसा मे कुछ कहा। निराला को लगा, कह रहे है—आप जीनियस हैं। निराला ने यह भी मालूम किया, दीवान का पद सुशोभित करने के लिए मिश्रजी को प्रति मास तेरह सौ मिलते हैं।

महाराज तक निराला की प्रशंसा पहुँचती रही। उन्होंने निराला को बुलाया। बातचीत अंग्रेजी में हुई। उन्हें निराला का छन्द पसन्द नही था। पूछा, "आप ललितकिशोरी के छन्दो मे अनुवाद कर सकेंगे?" निराला ने कहा—"हाँ, मैं कर सकता हूँ।" "तो उन्ही मे करके दिखाइये"—महाराज ने आज्ञा दी। निराला नमस्कार करके चले आये।

महाराज मितव्ययी थे; उनके निजी सचिव उनसे अधिक मितव्ययी। पारिश्रमिक की बातचीत गुलाबराय के मार्फत हुई। निराला ने अनुभव किया कि छत्रसाल के वंशज अपने पूर्वज की तुलना मे काफी अनुदार हैं। सोने-चाँदी से कवि को लाद देने के बदले डबल कालम वाले पेज के अनुवाद का मेहनताना एक रुपया देना चाहते हैं। इससे तो गद्य की लिखाई अच्छी। निराला ने हिसाब लगाया। चंडिदास-ग्रन्थावली 'माधुरी' से कुछ ही छोटी साइज की किताब होगी। हर पृष्ठ मे दो कालम; कुल पृष्ठ संख्या ३५०। इसके लिए कुल चार सौ रुपये देने को कहते है यानी एक रुपया प्रति पेज, फी कालम अठन्नी! पद्यानुवाद का यह पुरस्कार! ढाई रुपये पेज तो 'सुधा'-'माधुरी' से गद्य की लिखाई मिलती है। निराला ने निश्चय किया कि कम-से-कम

पाँच रुपये पेज मिलना चाहिए। यह भी घाटे का सौदा था। एक वार अनुवाद कर देने से छुट्टी नही। इसे यो वदलो, त्यों वदलो। दिन-भर मे एक पेज से ज्यादा का अनुवाद न हो पायेगा। दूसरे कवि वला टालने के लिए कुछ भी लिखकर दे सकते थे, निराला जब तक अनुवाद से संतुष्ट न हों, उसे माँजते रहेंगे। जो ईमानदारी से कविता लिखता है, वही जानता है, कवि-कर्म कितना कठिन है।

निराला ने महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा प्रस्तुत शर्तो पर अनुवाद करने से इन्कार कर दिया। इसके वाद उन्हे वुखार आ गया।

मलेरिया के लिए विख्यात मिदनापुर ज़िले से कुछ कीटाणु वह अपने साथ ले आये थे जो छठे-छमाहे उन्हे खाट पर पड़ रहने को मजवूर कर देते थे। सत्रह दिन तक उपवास करते हुए निराला तीव्र ज्वर से जूझते रहे। एक समय उनकी हालत इतनी खराव हो गई कि उन्हे जीने की आशा न रही। उन्होंने प्रसाद को अपनी समझ मे अपना अंतिम पत्र लिखा, "सव अपराधों और सव त्रुटियों के लिये क्षमा" माँगी और लिखा, "जीवन रहा तो दूसरा पत्र लिखूंगा।" गुलावराय ने वड़ी सेवा की; उपचार की उचित व्यवस्था की। कहा—"कीमती जीवन है, रक्षा होनी चाहिये। इनसे हिन्दी को वडा लाभ होगा।" गुलावराय के शब्द सुनकर वीमारी में भी निराला का मन पुलकित हो उठा।

मित्रो ने वीमारी का हाल सुना तो सहानुभूति प्रकट की। छतरपुर मे काम न मिला, न सही; हिन्दी-संसार तो निराला की कद्र करता है। प्रेमचन्द ने वड़े स्नेह से लिखा, "मीयादी वुखार क्या इसीलिए आपकी ताक मे वैठा था कि घर से निकलें तो धर दवाऊँ। किसमत ने वहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। इस वीमारी ने तो आपको घुला डाला होगा। पहले ही ऐसे कहाँ के मोटे-ताजे थे। ईश्वर आपको चंगा कर दे।"

निराला सचमुच घुल गये थे। राज्य का एक सिपाही उन्हे कानपुर तक छोडने आया। चलते समय महाराज ने सौ में पच्चीस कम करके पचहत्तर रुपये विदाई के दिये। निराला मन मे छत्रसाल से वर्तमान नरेश की और भूपण से अपनी स्थिति की तुलना करते रहे। शिवपूजन सहाय ने वडा जतन करके छतरपुर मे लासा लगाया था पर काम वना नही। न वैठने को जगह मिली, न पैर फैलाने को। रस-अलंकार वाली किताव के पैसे भी न मिले। शरीर कमजोर हो गया अलग से। मन की निराशा को वलपूर्वक दवाते हुए निराला ने शिवपूजन सहाय को लिखा, "मेरी तवियत अभी वहुत साफ़ नही हुई। कमज़ोरी वहुत है। अपने समाचार दीजिए। कोई काम हो तो कोशिश कीजियेगा।—order के लिये। नौकरी अभी नही कर सकूंगा। आपके वहाँ से मेरे जो रुपये मिलने थे, न मिले; न पुस्तक ही छपी। रामायण की टीका के वारे मे कहते थे, अगर लहेरियासराय वाले करावें तो कोशिश कीजिये—शायद कोशिश करने पर कुछ कामयावी हो। रामायण की अच्छी टीका हिन्दी मे एक भी नही है। क्या कहें, कोई मालदार कराता टीका, तो उसके लिए भी हमेशा के फायदे की एक चीज़ तैयार हो जाती। और क्या लिखें—उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणा मनोरथाः। खैर। गोली मार दीजिए—हम लोग भी साहित्य के वादशाह हैं—अन्धे क्या जानें—

अच्छा सप्रेम। विवाह में ले चलियेगा कि नही ?[१३]

ये दुर्दिन बीत जायँगे। केवल साहित्य रहेगा। तब इतिहास फैसला करेगा, बड़ा कौन है, तेरह सौ पाने वाले दीवान या वह जिसे अनुवाद के लिए अठन्नी कालम दे रहे थे। तुम छतरपुर के महाराजा हो तो हम भी साहित्य के बादशाह हैं। पद्माकर ने कहा था,

> आप जगदीश्वर ह्वै जग में विराजमान
>
> हौं हूँ तो कवीस्वर ह्वै राजत रहत हों।

अन्धे इस रहस्य को क्या समझें ?

शिवपूजन सहाय की दूसरी पत्नी का देहान्त हो गया था, अब तीसरे व्याह की तैयारी थी। वह लड़की देख आये थे, व्याह पक्का हो गया था, पैर की चोट से कुछ दिन के लिए टल गया था। निराला ने मित्र के सुख में अपना दुख घुला देने का प्रयत्न करते हुए उन्हें लिखा था—विवाह में ले चलियेगा या नही। शिवपूजन सहाय का पैर अभी तक ठीक न हुआ था। उन्होने लिखा, "इधर हफ्तों वर्षा और सर्दी के कारण बड़ा कष्ट हुआ। शादी बैशाख में होने वाली है। अगर पैर दुरुस्त न हुआ, तो आषाढ़ में होगी। आपको सादर निमंत्रण भेजूँगा। आप अगर सम्मिलित होने की कृपा करें तो मेरा अहोभाग्य। बनारस की मण्डली चलेगी। छतरपुर का सब हाल मालूम हुआ। आपके आर्डर के लिए ताक मे हूँ; पर हिन्दी वालों की दशा आप जानते हैं। टीका के लिए अभी मालदार कोई नही सूझता। स्वस्थ होकर आप काशी मे नौकरी कीजिये। कुछ दिन कहीं पैर जमे तो बड़ा लाभ हो। बहुत काम होगा। आपके रु० के लिए स्पष्ट उत्तर माँगा है। सूचना दूंगा।"[१४]

इधर निराला के पैर में भी चोट आ गई थी। लड़को को फुटबाल खेलते देखा, महिषादल के दिन याद आये, खुद भी लड़को के साथ खेलने लगे। "छूटी आदत शौक चर्राया। फुटबाल हो रहा था, मैं भी back के लिये तैयार हो गया। फिसला एक शॉट, दाहिना foot पीड़ा हो गया। चारपाई से न उठ सकने वाली अवस्था ३६ घंटे, लट्ठ [की] सहायता से चलने वाली ७ दिन अब चल लेता हूँ खूब, पर कसक है। पहले से यानी छतरपुर से अब बहुत अच्छी हालत मे हूँ। विवाह में अवश्य चलूँगा।"[१५]

उसी दिन उन्होने एक पत्र अपनी सास को लिखा :

गाँव—गढ़ाकोला
डाकखाना—मगरायर
जिला—उन्नाव
२२/२/२८

श्री अम्मा, चरणस्पर्श।

आपका कृपा-कार्ड मिला। अबकी आपके नुकसान से तबियत उदास हो गई। अब मेरा पैर अच्छा हो गया है। चल लेता हूँ। जरा जरा कसकता है। शायद इधर मुझे लखनऊ से बनारस तक जाना पड़े। इस समय आपके वहाँ न जा सकूँगा। कवी के मेरे एक मित्र कलकत्ता से घर आने वाले हैं, परसाल वे यहाँ मेरे घर हो गये है,

इसलिये जल्दी मुझे उनके घर जाना पड़ेगा। लेकिन अन्त चैत तक जाऊँगा। तब तक लखनऊ में ही आप होंगे। रामचरण बाक्स से कुछ रुपये निकाल कर भग गया है। और सब कुशल है।

सविनय

—सूर्य्यकान्त

[सादे कार्ड के एक ओर बगल में]

आप लखनऊ आवें तो वहाँ से अपने आने की सूचना जरूर दें।

—सूर्य्यकान्त

[सादे कार्ड के दूसरी ओर किनारे]

आपका पूरा पता भूल गया हूँ। अन्दाज देखूं कहाँ तक लड़ती है।

—सूर्य्यकान्त

[पता]

Shreejut
Ramdhani Dube
C/o Pdt. Bhairon Prasad Munim
Bazar Sarai } Atarra—P. O.
(Banda)

लखनऊ में निराला के मित्र 'माधुरी' के संपादकीय विभाग में उनके लिए कोशिश कर रहे थे। निराला के पास 'माधुरी' से पत्र आया, "यदि, आपको 'माधुरी' के सम्पादन विभाग में सहायक की भांति कोई स्थान मिल सके तो क्या आप उन जिम्मेदारियों को निभा सकेंगे ? आपकी हिंदी-अंग्रेजी आदि किन-किन भाषाओं की योग्यता है ? प्रूफ-रीडिंग का कैसा अभ्यास है ? विवरण सहित लिखिए। कम-से-कम क्या वेतन आप स्वीकार कर लेंगे ? प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण कर दीजिए। ताकि पत्रव्यवहार में व्यर्थ समय न जावे।"[1] निराला ज़हर का घूट पीकर रह गये। हर प्रकार योग्यता के बारे में जांच-पड़ताल। अभी उन्हें मालूम ही नहीं, निराला कौन है ? प्रूफ रीडिंग का अभ्यास पूछ रहे हैं। मन की ग्लानि मन में दबाकर निराला ने अपनी योग्यता, वेतन आदि के बारे में एक पत्र लिख दिया—संयत भाषा में, जैसा उन्होंने गंगा पुस्तकमाला कार्यालय को लिखा था। यथासमय उसका उत्तर भी आ गया—जैसा ही जैसा गंगा पुस्तकमाला से आया था—"इन शर्तों पर अभी आपको न बुला सकेंगे। आशा है, कष्ट के लिए क्षमा करेंगे।"[2]

निराला ने मन को एकाग्र करके कलमघिसाई शुरू की। कलकत्ते के उमादत्त शर्मा से एक किताब के लिए आर्डर प्राप्त हुआ था। उनकी पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी के लिए निराला ने हिन्दी-बंगला-शिक्षा पुस्तक लिखी। 'सुधा', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं के लिए लेख लिखना शुरू किया। कलमघिसाई से अर्थकष्ट कुछ दूर हुआ। इधर वह कविताएँ न लिख पा रहे थे, फिर भी पुरानी कविताओं के बल पर उनकी ख्याति

दिन-पर-दिन फैलती जा रही थी। छात्र और युवक निराला के सबसे बड़े प्रशंसक थे। डी० ए० वी० कालेज कानपुर के छात्रों ने कवि-सम्मेलन किया। समस्यापूर्ति और कवित्त-सवैया विशेषज्ञों के गढ़ कानपुर में सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए उन्होंने निराला को बुलाया। निराला ने 'जीवन के सम्मोहन मन के वन के', 'मुग्ध मनोहर लुब्ध क्षुब्ध उद्वेलित सक्रिय' आदि सानुप्रास पदरचना से श्रोताओं को मुग्ध कर लिया।

निराला प्रसन्न मन लौटे। उन्होंने एक गाय खरीदी। गाय का दूध पीने से स्वास्थ्य सुधरने लगा। जाडा बीत रहा था। खेतों में दाने पक रहे थे। निराला वैष्णव कवियों की शृंगारी कविता पढ रहे थे। उनका मन अपनी सहज प्रसन्नता की स्थिति मे फिर लौटने लगा। उन्होंने अपने साले रामधनी द्विवेदी को पत्र लिखा :

गढाकोला, मगरायर, उन्नाव
२७ फरवरी, १९२८

चिरंजीव बड़े मियाँ,

जिस दिन हमने तुमको चिट्ठी लिखी, उसी दिन तुम्हारी भी चिट्ठी आई। अम्मा का हाल उनके पत्र से मालूम हो चुका था। कालीचरण लखनऊ भग गया था, वहाँ से घर आया तो हमने घर में नही रहने दिया, वह कुछ रुपये लेकर भगा था, दूसरे दिन फिर कही चला गया, सुनते है कि किसुनपुर जाने को कहता था। अब केशव को घर मे अकेले बहुत काम करना पड़ता है। हमारी गाई बियानी है। दूध का अभाव अब नही रहा। और सब कुशल है। हम जल्द ही बाहर जाने वाले है। अम्मा का आना कब तक होगा सो लिखो। बिटिया को जगन्नाथ भैया पढाते है या नही यह भी जाहिर करो। तुम्हारी शिवरात कैसी रही, इसका हाल तुमने नही लिखा। फागुन का महीना है, बबुआजी अब कैसे करी ?

तुमको व रामकृष्ण को आसीस। दोनों बिटिया को स्नेह। जगन्नाथ भैया को नमस्कार। तुम्हारी बीबी को २७ फरवरी। अब तो जी भर गया होगा? क्या कबीर भी सुनियेगा [?]

—सूर्य्यकान्त

बंगाल के वैष्णव कवि भक्त थे, साथ ही शृंगार रस के परिपाक मे अद्वितीय थे। उनके सौन्दर्य-वर्णन में अश्लीलता जरा भी नही आने पाई है।

कंचन कमल पवन उलटायल ऐछन वदन सँचारि।

नग्न युगल उरोज, जैसे हवा ने कचन के कमल उलट दिये हो। नायिका अपनी इच्छा से नगी नही होती; हवा के झोके से उसका बदन नंगा हो जाता है :

छन छन आँचर कुचकन काचल झाँपइ घन घन हेरि।

बार-बार लाजभरी चितवन से हेर कर अपने स्वर्ण-शिखर जैसे स्तनो को आँचल से ढँकती है मानो नीले बादल पर्वत-शृग के चारो ओर घिर आये हो।

निराला का वेदान्ती मन शका करता—परमपदलाभ के लिए यह शृगार-चिन्तन बाधक न होगा ? निराला का ससारी मन उत्तर देता—वीर रस को विरोधी शृगार ही जगाये रखता है। वीर्य की आवश्यकता होती है भोग के लिए; भोग के

बिना वीर्य नही बढ़ सकता। राम सीता के श्रृंगार पर मुग्ध न होते तो रावण से युद्ध करने क्यो जाते? पाण्डव द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध न होते तो महाभारत का युद्ध क्यो होता ? अमरसिंह ने घर पर छुट्टी से कुछ ज्यादा दिन न गुज़ार दिये होते तो शाही दरबार मे वीरत्व प्रदर्शन कैसे करते ? जो वीर है, वह भोगी अवश्य होगा !

निराला ने वैष्णव कवियो की श्रृगारवर्णना पर लम्बा लेख लिखा। यौनविज्ञान मे अपने अनुसन्धान के कुछ निष्कर्ष भी उन्होने प्रस्तुत कर दिये। पुरुष के लिगमूल मे सूक्ष्मरूप से योनि का अस्तित्व रहता है। यहाँ के कुछ साधक अपने भीतर नारीत्व की कल्पना करके ब्रह्म की साधना करते है। साधना के घनीभूत होने पर उनके शरीर मे मासिक धर्म के लक्षण ज़ाहिर होने लगते है।

वैष्णव कवियो के प्रसग मे रवीन्द्रनाथ के ज्ञान की चर्चा करना भी आवश्यक था। रवीन्द्रनाथ ने वैष्णव कवियो से इतना ऋण लिया है जिसका ठिकाना नही है। ब्याज मे किसी को एक कौड़ी भी नही दी। उन पर एक कविता ज़रूर लिख दी। बँगला को मधुर बनाने का श्रेय वैष्णव कवियो को है और उन पर ब्रजभाषा का काफी प्रभाव है। रवीन्द्रनाथ ने यूरुप को खूब चराया है लेकिन हिन्दुस्तान को नही चरा सकते। नकली कविताओ का बाजार बहुत दिनो तक गर्म नही रहता। सिहासन के ऊपर से ही त्याग की कुल क्रियाएँ सिद्ध होती तो न जाने कितने शंकराचार्य पैदा हो गये होते। बडे-बड़े तत्त्व वर्षो की रगड के बाद निकलते है। किताबें पढ़ने से वेदान्त नही आता। यथार्थ अनुभव के बिना जहाँ बोलने लगे, वहीं तमाम शब्द वेदान्त हो गये—पोपले! मेरी-तेरी तेरी-मेरी ना बनेगी श्याम—की तरह उनके फसादी वाक्य भी मेरी-तेरी करने लगते हैं। यहां मेरी-तेरी के फसाद मे बड़े-बड़े सिर के बल खड़े कर दिये जाते है। है ही यहाँ की ऐसी कसौटी। तभी तो कहा है—मैं अरु मोरि तोरि मैं माया। अब ये सब कविवर अगर मायामुक्त होने की कविता अलापें तो कसौटी क्या कहेगी ? छोड देगी बिना कसे हुए ? पंत कहते है, तुम्ही मे निराकार साकार। साकार भले ही किसी मे हो पर निराकार किसमे समायेगा ? वैष्णव कवियो की साधना अच्छी थी। सौन्दर्य की ऐसी अविश्राम वर्षा ऐन मौसम में और कहीं नही है। हाय रे ज़माना ! अब घोर हलाहल अमृत सिद्ध किया जा रहा है। एम० ए० बी० ए० की पूँछ से बाँधकर पटकने की कोशिश कर रहे है। ज़रूर दुम टूट जायगी क्योंकि इधर वज़न ज़्यादा है।

पद्माकर ने भी श्रृंगार का अच्छा वर्णन किया है। महाराज जगतसिंह की 'ओयलिग' ज़रूर की पर अनेक छन्द अत्यन्त सरस बन पड़े हैं :

सुन्दर सुरंग नैन सोभित अनग रंग
अंग अंग फैलत तरंग परिमल के।

अनुप्रासो की बहार और राजकुलागना की नज़ाकत की तारीफ़ नहीं की जा सकती। शेली की बन्दिश याद आ जाती है :

Like a high-born maiden
In a palace-tower

Soothing her love-laden
Soul in secret hour
With music sweet as love, which overflows her bower.

"भोर उठि आई केलि मंदिर दुवार पर"—यह छन्द भी अच्छा है। गोविन्ददास का "कवरी भार मुक्त हारावलि", रवीन्द्रनाथ की देर से उठी नायिका—"जामिनी जेते जागाले ना केनो, वेला होलो मरी लाजे" और विद्या की छवि—सुप्तोत्थितां मदन-विह्वलितालसाङ्गीम् आदि सब एक साथ याद आ जाते हैं।

निराला ने पद्माकर पर लेख लिखा, चंडिदास के अलावा गोविन्ददास के पदों का अनुवाद किया, उन पर लेख लिखा, विद्यापति और चंडिदास का तुलनात्मक अध्ययन किया। मन शृंगार मे डूबा हुआ था, रसनिष्पत्ति के लिए शिवपूजन सहाय का कार्ड मिला, सुन्दर काले अक्षरों पर हल्दी के छीटे, विवाह का निमंत्रण।

C/o Agrawala Press, Benares Cantt
13/5

मान्यवर पण्डितजी, सादर सप्रेम प्रणाम—

एक कार्ड आपको भेज चुका हूँ। यह मेरे शुभ विवाह का सादर सप्रेम निमंत्रण है। कृपया सहर्ष स्वीकार करके सोत्साह पधारिये। ता० २० मई को १२ बजे दिन की गाड़ी से बनारस छावनी स्टेशन पर काशी की मित्रमण्डली प्रस्थान करेगी। उसी दिन शाम को ७-८ बजे छपरे पहुँचेगी और १० बजे रात को मसरख स्टेशन पर पहुँचेगी, जहाँ रात भर विश्राम कर प्रातःकाल ता० २१ को बिलासपुर के लिए प्रस्थान करेगी। सवारी का इन्तज़ाम है। दो कोस की दूरी पर बिलासपुर है। स्टेशन से आमद-रफ्त की सवारी मिलेगी। आप से सादर निवेदन है कि आप अवश्य आइये। पहले भी प्रार्थना कर चुका हूँ। सम्मेलन की तिथि बढ गई। मुहर्रम की छुट्टियों में होगा। विश्वास है, आप दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे।

दर्शनाभिलाषी—भवदीय
शिवपूजन

एक पत्र गंगा पुस्तकमाला से आया। 'सुधा' की साहित्य-संख्या के लिए लेख और फोटो माँगा। गाँव मे फोटो कहाँ खिचाते? लखनऊ गये, मातादीन शुक्ल के यहाँ ठहरे, फोटो खिचवाया। फोटो देखकर समझे, पहले से दुबले हो गये हैं। कलकत्ते में महादेवप्रसाद सेठ के साथ जो फोटो खिचाया था, उसमे गर्दन तगड़ी थी। पर ये बड़ी-बडी आँखें, किसी कवि की आँखें ही हो सकती हैं, छिपी हुई आग फोटो तक में झलकती है।

निराला शृंगारी कविता का आनन्द लेते, लेख लिखते, फोटो खिचाते, आम खाते आनन्द से दिन बिताते रहते यदि साहित्य-संसार का कोलाहल उन तक न पहुँचता। गढ़ाकोला में रहते हुए भी उन्हें शोर सुनाई देता था, जब लखनऊ आते थे, तब स्वर कान फाड़ने लगता था, शोर करने वालों की शकलें भी दिखाई देने लगती थीं। कोलाहल मे छायावाद और निराला ये दो शब्द बार-बार सुनाई दे रहे थे। कोई

कविता सुना रहा था—

हे डटा छायावादी, लिये लेखनी न पूछो
व्यान अज्ञात में, शरीर पृथ्वीतल पर।
बात कर रहा है खड़ा खड़ा अपने आप ही
ज्ञात नहीं होता है कि मिट्टी है कि औलिया।[18]

'पाखंड प्रतिपेध' के कवित्त लखनऊ के अनेक काव्य-प्रेमियों ने याद कर लिये थे और बड़ा रस लेकर मित्रमंडली में सुनाते थे।

काव्य मे 'रहस्य' कोई 'वाद' है न ऐसा, जिसे
लेकर निराला कोई पंथ ही खड़ा करे।
यह तो परोक्ष रुचि-राग ही की झाईं है, जो
पड़ती है व्यक्त में अव्यक्त विवता धरे।
दृष्टि जो हमारी कर देती है लीन किसी
धुँधली सी माधुरी में लोक-काल से परे,
किन्तु जो उसी के सदा झूठे स्वांग रचे, उसे
हांक दो, न घूम-घूम रेती काव्य की चरे।

एक अन्य कवित्त मे निराला और 'मतवाला' के सम्बन्ध को लक्ष्य करके कहा गया था :

भाषा है, न भाव है, न भूति भांपने की आँख
शिक्षा की सुभिक्षा भी न पाई कभी एक कन,
गांथते हैं गर्वभरी गुरु ज्ञान-गुदड़ी वे
चुने हुए चीथड़ों से, किये ब्रह्मलीन मन।
कहीं बंग-भग-पद चकती चमक रही,
कहीं अँगरेजी अनुवाद का अनाड़ीपन;
ऐसे सिद्ध साइयों की मांग मतवालों में है,
काव्य में न झूठे स्वांग खींचते कभी हैं जन।

छायावादी कविता मे अध्यात्मवाद होता है ? कहाँ का अध्यात्मवाद, विशुद्ध वासना का प्रदर्शन होता है !

कहाँ का अध्यात्म ? अरे ! कैसी ब्रह्मलिप्सा यह—
वासना का लम्बा-चौड़ा रूप विकराल अति;
देह के मलों का यह सागर अपार !
कायवृत्तियों का झंझावात, झूठ की प्रचंड गति !
'अये' 'अये' भड़ता की कैसी है पुकार यह ?
जड़ता से जड़ी हुई कैसी यह मोटी मति ?
अंधाधुन्ध कैसी ! यह भेड़ियाधसान कैसी !
नकल-नवीसी कैसी ! कितनी अज्ञान-रति ?[19]

'पाखंड-प्रतिपेध' के लेखक थे आलोचक रामचन्द्र शुक्ल। उन्हें कवित्तों में ही

उत्तर मिला :

काव्य का अनन्त व्योम रोम रोम में है व्याप्त,
क्या है अब भी न प्राप्त, इसमें भी शंका है;
लेकर विवाद एक, कैसा है 'रहस्यवाद',
यह बकवास वाद का ही शेष डंका है।
किन्तु वह देखो जरा तुलसी 'शशी' की ओर,
'अलख', 'अनादि' मे ही जिसका अतंका है;
यह क्या रहस्य, इसे जाने वह कैसे भला,
जानता जो इतना ही रावण की लंका है।
देखते शिला हो जिसे, सत्य ही नही है वह,
नवनीत-सुकुमार मार-रूप माला है;
खून का घड़ा है अरे, भागो न सभीत मीत,
धोके मुँह देखो यह शैशव उजाला है।
नंग, अरधंग, भंग-गंगधारी शंकर के,
पद की विभूति बनी जैसे एक बाला है;
वैसे ही अकथ कवि का भी है रहस्यवाद,
अंग अंग चतुरंग यकता, निराला है।[20]

रामचन्द्र शुक्ल को कवित्तो में उत्तर दिया था मातादीन शुक्ल ने।

गद्य में भी आक्रमण हो रहे थे। हास्यरस के लेखक, नाटककार, लखनऊ विश्वविद्यालय मे हिन्दो अध्यापक, विनोदशंकर व्यास के चाचा बदरीनाथ भट्ट ने लेख लिखा, "हिन्दी लेखकों के बँगला-प्रेम का भयानक परिणाम।"[21] उन्होने छायावादियो को स्वार्थी और धनलोलुप साहित्यद्रोही कहा। निराला की ओर संकेत करते हुए लिखा, "एक बंगाली कवि के भावों की छाया को चुराकर" कवि-शिरोमणि बन गये। "बँगला की कृपा से इन हिन्दी लेखकों का मस्तिष्क यहाँ तक बिगड गया कि इन्हे अपने तो पराये लगने लगे और पराये अपने।"

'सुधा' के व्यंग्य-विनोद स्तंभ में मायावादी नाम से कोई सज्जन निराला और छायावाद पर आये दिन आक्षेप करते रहते थे। "निरालाजी ने अपनी एक अप्रकाशित काव्य-पुस्तक का नाम 'रेखा' इसलिये रखा है कि वह बेमेल, गतिहीन, 'स्वच्छन्द' छन्दो में हतभागिनी हिन्दी-कविता की भावी की रेखा खीचना चाहते हैं।"[22] 'सुधा' इस समय छायावाद पर आक्रमण करने मे सबसे आगे थी। विख्यात और अज्ञात सभी तरह के लेखक इसमें छायावाद और निराला पर चोट कर रहे थे। किन्ही ललितकिशोर सिंह बी० ए० ने राय जाहिर की, "असंबद्ध भावों अथवा प्रलापों को किसी प्रकार अस्तव्यस्त रूप मे एकत्र कर डालने ही को लोग छायावाद कहते हैं।"[23]

छायावाद के समर्थन मे भी लेख निकल रहे थे, अवध उपाध्याय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, शान्तिप्रिय द्विवेदी, रामनाथलाल 'सुमन' आदि लेखक मोर्चे पर डटे हुए थे पर इस समय ज्यादा आवाज विरोधियों ही की सुनाई दे रही थी। साहित्य-सम्मेलन

के कर्णधार, विश्वविद्यालयो के अध्यापक, राष्ट्रवादी और रीतिवादी कवि, पत्रकार और संपादक छायावाद के अभिमन्यु को अपने चक्रव्यूह में फँसाकर चारों ओर से उस पर टूट पड़े थे।

गदर मचा हुआ है। कहाँ ? हिन्दी साहित्य मे। जाने कहाँ-कहाँ के वाद ढूंढ निकाले हैं, छायावाद, कायावाद, मायावाद। जबसे द्विवेदीजी की लेखनी ने विश्राम लिया, तबसे साहित्य-क्षेत्र मे और भी धाँधली मची हुई है। आवश्यकता है एक साहित्य-शासक, लिटरेरी डिक्टेटर की।

यह हाहाकार मचा रहे थे 'विशाल भारत' मे उसके अराजकतावादी संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी। छायावाद के क्लीव काव्य और उग्र के घासलेटी साहित्य के विरुद्ध उन्होने एक साथ अभियान आरंभ कर दिया था।

बिहारी सतसई के प्रशंसक और उसके टीकाकार पद्मसिंह शर्मा को 'पल्लव' की भाषा बेहद कर्णकटु लगती थी। उन्होने इन नवयुवक कवियो को समझाया : "कविता-वल्लर को प्रतिभा के वारि से सीचकर 'पल्लव' निकालिए, खुशी से उसकी छाया मे बैठकर 'वीणा' बजाइये; पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षो की जड़ पर—चन्दन, चम्पक और सहकार आदि के मूल पर—कुमति कुठार न चलाइये। यह अत्याचार असह्य है। आपको इनकी गन्ध नही भाती, शिकायत नही, आपकी पसन्द, अपनी रुचि—'कीजै कहा करता से न चारो।' पर इनकी महक के मतवाले मधुप भी है, उन वृक्षों पर न सही, इन पर ही दया कीजिए—'पल्लव' के नोकीले और ज़हरीले काँटे इनके दिल मे न चुभोइये, वीणा मे सोहनी के स्वर छेड़िये, 'मारू राग' न बजाइये।"[४]

छायावादी कवियो मे प्रसाद विरोधी आलोचना सुनकर चुप रह जाते थे। उनका विचार था कि इस तरह की आलोचना का सबसे अच्छा उत्तर कृतित्व है। पन्त ने 'पल्लव' की भूमिका मे रीतिवादियो की आलोचना की थी पर उनके आक्रमण की लपेट मे रीतिविरोधी कवि भी आ गये थे। 'वीणा' की भूमिका मे उन्होने रीति-वादियों के अलावा महावीरप्रसाद द्विवेदी की भी तीखी आलोचना की। भूमिका छपने से पहले पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने उसके आपत्तिजनक अंशो मे निशान लगा दिये। वे अंश भूमिका मे छपे नही। कटे-छँटे रूप मे छपने पर भी उसमें द्विवेदीजी को रुष्ट करने वाली बातें काफी थी। उन्होने इंडियन प्रेस के स्वामी को लिखा, "आप मेरे अप-यश से धन कमाना चाहते है, इसीलिए ऐसी भूमिका प्रकाशित की है।" इंडियन प्रेस वालो ने पुस्तक का वितरण बन्द करा दिया; जिनके पास वी० पी० से प्रतियाँ पहुँच गई थी, उनसे वापस कर देने को कहा। भूमिका के शेष आपत्तिजनक अंश भी निकाल दिये गये; तब पुस्तक बाजार मे वितरण के लिए भेजी गई।

यथासमय निराला को इस संबन्ध मे शान्तिप्रिय द्विवेदीजी से सूचना मिल गई थी।

"पन्तजी की एक नई किताब 'वीणा' निकली है। उसमे उनकी १९१८-१९ की कविताओ का संग्रह है। मैंने खरीद ली है सिर्फ पन्तजी के चित्र के लिए। एक रहस्य की बात सुनिये। 'वीणा' जब पहले-पहल बाजार में बिकने आई, तो दो-एक रोज बाद

इंडियन प्रेस वालों ने उसे वापस मँगा ली [लिया]। कारण, पन्तजी ने उसमें जो भूमिका लिखी थी, उसके द्वारा द्विवेदीजी (सुकवि किंकर) के 'सरस्वती' वाले लेख की अच्छी तरह चुटकी ली थी। इंडियन प्रेस वाले [वालों ने] उतने अंश को निकाल कर अब फिर 'वीणा' को बाजार में भेजा है। शायद इसी रंज में पन्तजी ने 'सरस्वती' में लिखना बन्द कर दिया है। वे उदासीन हो गये हैं।"[२५]

छायावाद के विरोधी दिग्गज आचार्यों की आलोचना करके हिन्दी साहित्य में पैर जमाये रहना आसान काम नहीं था। जब पन्त पद्मसिंह शर्मा से मिले तो उनसे बोले, "ब्रजभाषा का विरोध करने के लिए मुझसे खास तौर पर कहा गया था, इसी से वैसा लिखना पड़ा" और शर्माजी ने बनारसीदास चतुर्वेदी को अपने ८-४-३० के पत्र मे यह भी सूचित किया कि " 'पल्लव' की भूमिका में जो पहले कवियों के विषयों में अंट-शंट, अनाप-शनाप, ऊल-जलूल लिख गये हैं उसे वापस लेने को कहते थे।"

पुरानी पीढ़ी के लेखकों के अलावा कुछ नई पीढ़ी के लेखक भी, जो अंग्रेजी और बँगला के जानकार थे, छायावाद की तीव्र आलोचना कर रहे थे। इनमें हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी ने निराला का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। इन्होंने 'सुधा' मे एक लेख लिखा "साहित्य-कला और विरह"। हेमचन्द्र प्रेमचन्द की भर्त्सना कर चुके थे, अब उन्होने निराला पर दृष्टिपात किया। इलाचन्द्र कलकत्ते मे निराला से भिड़ चुके थे। 'माडर्न रिव्यू' में लेख लिखकर छायावाद का विरोध कर चुके थे। "साहित्य-कला और विरह" में जोशी-बन्धुओ ने विरहवाद की अद्‌भुत प्रतिष्ठा की। "जब आनन्द के कम्पन ने अव्यक्त को द्विधा करके व्यक्त प्रकृति को परिस्फुटित किया, तब सृष्टि के रोम-रोम में विरह का भाव व्याप्त था। इसलिए सृष्टि के आदि से अव्यक्त पुरुष और व्यक्त प्रकृति इस पारस्परिक विरह के द्वारा ही आनन्द का रस लूट रहे हैं।"[२६]

बड़ी उमंग से अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली में निराला ने लेख लिखा—"कला के विरह में जोशी-बन्धु।" शुरूआत यों की—"कभी सोचा था, दलबन्दी के दलदल में न फँसूंगा, मार का जवाब प्यार से दूंगा, परन्तु 'आपन चेती होय नहिं, हरि-चेती तत्काल' की आफत का पहाड हरि की इच्छा से मुझी पर आ टूटा। जिस रोज मैंने साहित्य के खाते में नाम लिखाया, उसी रोज से हिन्दी-साहित्य के आचार्यो ने पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया कि जब तक जियो, अपने हाथों अपनी नाक काट कर दूसरो का सगुन बिगाडते रहो, बस, साहित्य-सेवा के यही माने हैं।"

लेख की भूमिका मे उन्होंने छायावाद के विरोधियों को अपने व्यंग्य-विनोद के बाणों से बेध डाला। उनके विरोधी जितना ही दाँत पीस रहे थे, निराला उन पर उतना ही हँस रहे थे, उन्हें और भी चिढ़ा रहे थे। जैसे कोई बड़ा पहलवान किसी नौसिखिये को खिला-खिलाकर अखाडे में पटकता है, वैसे ही निराला ने जोशी-बन्धुओं को उछाला और फिर दे पटका। उनके अनर्गल शब्दजाल को अपनी तीक्ष्ण तार्किक दृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया।

निराला ने एक लेख "हिन्दी कविता-साहित्य की प्रगति" पर लिखा। उन्होंने भक्ति-काव्य और रीति-काव्य में सत्-असत् जैसा भेद दिखाया, खड़ीबोली के कर्कश

कवियों को राष्ट्र के उष्ट्रमार्का कवि कहा, "जिनकी प्रतिभा के प्रखर प्रवाह से शब्दों के गले में 'त्राहिमाम्' करने की शक्ति भी न रही।" मैथिलीशरण, सनेही आदि कवियों की जहाँ-तहाँ प्रशंसा भी की पर निष्कर्ष यह निकाला कि हिन्दी कविता मे कर्कशता ही अधिक है; "गरियार बैल से हल चलवाने की चेष्टा की तरह ही खड़ीबोली के शब्दों से कविता की ज़मीन पर संसरण का गुरुकार्य कराया गया है।" निराला ने इस लेख में उन राष्ट्रवादी कवियो पर हल्का-सा आघात किया जो रीतिवादियो के साथ मिलकर छायावाद पर आक्रमण कर रहे थे। इतना काफी नही था।

एक और लेख लिखा—"साहित्य की नवीन प्रगति पर"। खड़ीबोली की पुरानी कविता है मरीज। मर्ज़ लगा है छायावाद का। वैद्यराज सुकवि किंकर ने जवाब दे दिया। तब अन्य आचार्य मकरध्वज लेकर आये। मियादी बुखार अपने वक्त से ही उतरता है। छायावाद ने मकरध्वज देने वाले वैद्यराज से कहा, मैं मियादी बुखार हूँ, अपना वक्त पूरा किये बिना उतरूँगा नही चाहे आप मकरध्वज नहीं, मृतसंजीवनी पिला दें। 'विशाल भारत' के संपादक को भी कुछ मौलिकता पैदा करनी थी, घासलेट के खिलाफ आन्दोलन छेड दिया। अब छायावाद के पीछे पड़े हैं। "यदि चतुर्वेदीजी एक लेख महात्माजी से इसी संबन्ध मे लिखा ले, विशेष रूप से खंडनात्मक, तो शायद उन्हे इतना हैरान न होना पड़े।"

इसी लेख में रामचन्द्र शुक्ल के दो छायावाद-विरोधी कवित्त उद्‌धृत करने के बाद लिखा, "साहित्य मे इस तरह की आवाज, प्रचार आदि यद्यपि इस समय असभ्यता और गँवरपन का परिचय देते है, परन्तु हमारे लिये इसको स्वीकार करने के सिवा दूसरा उपाय ही क्या है? अतएव शुक्लजी गद्य में लिखें, हम उन्हे उत्तर देने के लिये तैयार हैं। अवश्य पद्य मे इस तरह की बकवास करना हम नही जानते।"

काशी विश्वविद्यालय में आने से पहले शुक्लजी मिर्ज़ापुर में ड्राइंगमास्टर थे। निराला ने उनसे अपनी छिपाई हुई जबर्दस्त डिगरी जाहिर कर देने को कहा। उनके एक कवित्त मे गतिभंग, यतिभंग का अक्षम्य अपराध भी दिखाया। ब्लेक पर शुक्लजी के आक्षेपों का उत्तर विस्तार से देते हुए निराला ने वेदान्त की भूमि पर उसे "अपने समय का युगप्रवर्तक" कवि सिद्ध किया।

इसी लेख में उन्होने पद्मसिह शर्मा को भी स्मरण किया। नयी कविता के समर्थन मे जो लेख निकले है, उन पर शर्माजी ने ध्यान नही दिया, "यह शायद इसलिये कि ये लोग अंग्रेजी और हिन्दी आदि के विद्वान् है और शर्माजी सस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी आदि के।" 'पल्लव' का समर्थन करते हुए निराला ने लिखा कि शर्माजी ने शायद उसकी भूमिका पढकर ही उस पर कटाक्ष किया है। पंत की दो रचनाओ से उद्धरण दिये, चार पंक्तियाँ प्रसाद की उद्‌धृत की, अपनी रचनाओं से न कोई पंक्ति उद्‌धृत की न उनकी चर्चा की। व्यक्तिगत रूप से पद्मसिह शर्मा निराला को बहुत अच्छे लगते थे। यह लेख पढकर उनका हृदय दुखेगा, यह सोचकर निराला ने अपनी सफाई दी, "शर्माजी जैसे संस्कृत-साहित्य के पारदर्शी विद्वान्, सरल, मधुरभाषी, प्रसन्नमुख, स्नेहशील, सहृदय, यथार्थ काव्यमर्मज्ञ के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा है, देखकर जी चाहता

है, उनकी सेवा करूँ, उन्हें प्रसन्न करूँ। उनकी तरह विना किसी कारण के स्नेह करने वाले आचार्य हिन्दी में दो ही चार मुश्किल से होंगे। उनके प्रतिकूल लिखकर मैं दुखी हुआ हूँ।"

धीरे-धीरे निराला ने लखनऊ के साहित्यकारों और वहाँ की पत्रिकाओं को छायावाद का समर्थक वना दिया। 'माधुरी' आरंभ में ही प्रसाद और निराला की रचनाएँ छापती रही थी। उसके एक संपादक कृष्णविहारी मिश्र से रूढ़िवादी काव्य-प्रेमी इसलिए नाराज थे कि वह छायावाद का विरोध न करके उसे प्रोत्साहन दे रहे थे। मिश्रजी देव की कविता के प्रशंसक, व्रजभाषा के कवि थे पर वह राष्ट्रीय विचारों के आलोचक थे और कट्टर रूढ़िवादियों से दूर थे। वड़ी मनुहार से वह निराला से रचनाएँ मँगवाते—

करहु कृपा समरथ वड़े उचित भाव नहिं अन्य;
कविता दै अपनाइये होहि माधुरी धन्य।[13]

निराला जव-तव लखनऊ आकर उनके यहाँ ठहरते भी थे। "पन्तजी और पल्लव" वाली लंबी लेखमाला, "वंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगारवर्णना", गोविन्ददास के पदों के अनुवाद आदि 'माधुरी' में छपे। कृष्णविहारी मिश्र 'माधुरी' के अलावा एक सुन्दर आलोचनात्मक पत्र 'साहित्य समालोचक' का संपादन-प्रकाशन भी करते थे। उस पत्र में "साहित्य की नवीन प्रगति पर", पद्माकर पर लेख छपे।

'सुधा' के संपादकीय विभाग में कुछ दिनों तक नंदकिशोर तिवारी रहे। वह निराला से वहुत असन्तुष्ट थे। उन्होंने अपने एक मित्र को निराला के वारे में कुछ अशोभन वातें लिखीं जिनका इधर-उधर प्रचार हुआ। तिवारीजी के अनुसार निराला ने उनसे पूछा—आप हमारी कविताओं को कैसी समझते हैं ? इन्होंने उत्तर दिया—Mr. Nirala, excuse me, you are no poet to me. (निरालाजी, क्षमा करें, मेरी समझ में आप कवि नहीं हैं।) इस पर निराला ने कहा, आप समझा कीजिए, मेरे प्रशंसकों का एक अलग समुदाय है—मेरे समर्थकों की एक अलग श्रेणी !

निराला ने 'सुधा' में भी अपने लिए जगह वना ली। "हिंदी कविता साहित्य की प्रगति", चंडिदास और विद्यापति पर लेख, "कला के विरह में जोशीवन्धु" 'सुधा' में ही छपे। 'विशाल भारत', 'सरस्वती' जैसी पत्रिकाएँ विरोध में थीं पर निराला ने 'सुधा' और 'माधुरी' में अपने आलोचनात्मक लेखों द्वारा विरोधियों को समर्थ उत्तर दिया, अनेक लेखों में अपनी तर्कयोजना से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि रीतिवादी आलोचना से छायावादी आलोचना वहुत ऊँचे स्तर पर है।

उनके प्रशंसकों का एक अलग समुदाय वनता रहा था। इनमें प्रमुख थे विश्व-विद्यालय में शिक्षा पाने वाले हिंदी-प्रेमी छात्र। इन्हीं में थे नन्ददुलारे वाजपेयी, गढ़ाकोला के पास ही मगड़ायर के निवासी, गौरवर्ण, तेजस्वी, कुलीन कान्यकुब्ज, काशी विश्वविद्यालय में शिक्षाक्रम पूरा कर रहे थे।

वीर वंश के वीर अंश हो।
विजयी वनना विघ्न-ध्वंस हो।

भूलो मत समुचित उत्साह।
मत विचलित हो आधी राह।

वाजपेयीजी उस समय इस तरह की उपदेशात्मक राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखते थे। निराला पर उन्हें शेली का प्रभाव विशेष दिखाई देता था और वह पूछते थे—क्या आपने शेली का अपेक्षाकृत विशेष अध्ययन किया है ?

काशी के मित्र निराला को बुला रहे थे। वहाँ आये दिन साहित्य-समारोह होते रहते थे। मैथिलीशरण और अजमेरी आये; अच्छा जमघट रहा। प्रसाद और विनोदशंकर व्यास दोनों की इच्छा थी कि निराला काशी आयें। नन्ददुलारे वाजपेयी स्वागत की तैयारियाँ भी करने लगे। वह निराला को इसलिए भी बुलाने को उत्सुक थे कि उनके वहाँ पहुँचने से बैसवाड़े की धाक जमेगी। पर दीर्घसूत्री निराला टालते जा रहे थे। मित्र निराश होने लगे। नन्ददुलारे वाजपेयी ने चिन्तित होकर पूछा, "बताइये, आने का विचार कब तक का है—है भी या नहीं। यहाँ पर्चे बँट चुके, 'आज' में नोटिस निकल चुकी। क्या सबकी आशाओं पर पानी फिर जायगा ?"[२८]

बरसात बीतने पर निराला काशी आये। आर्य भवन में नन्ददुलारे के साथ ठहरे। अमरूदों का बगीचा, हरे-भरे खेत, कुछ दूर पर महिला छात्रावास; निराला को जगह पसंद आई। वह छात्रों में घुलमिल गये। उनके साथ बैठे वह घंटों ताश खेलते। विश्वविद्यालय में हिन्दी समिति की ओर से निराला के भाषण का आयोजन किया गया। नंददुलारे वाजपेयी पहले हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्यामसुन्दर दास के पास गये, उन्होंने स्वयं किसी बात की ज़िम्मेदारी न लेकर कहा—उपाध्यायजी और शुक्लजी को राजी कर लो। शुक्लजी ने व्यस्तता का बहाना करके टाला। अन्त में वह अयोध्यासिंह उपाध्याय के पास गये। वह नंददुलारे पर विशेष कृपालु थे, उनके आग्रह पर सभा की अध्यक्षता करने को तैयार हुए।

प्रसाद ने कहलाया, भाषण के दिन सब लोग उन्हीं के यहाँ पहुँच जायँ; साथ ही चलेंगे। यथासमय निराला और नंददुलारे वाजपेयी प्रसाद के यहाँ पहुँचे। प्रसाद ने रायकृष्णदास की मोटर मँगवा ली। निराला को इत्र से खूब सुवासित किया। काफी तैयारी के बाद छायावादी दल विश्वविद्यालय पहुँचा।

निराला ने भाषण के लिए नोट्स तैयार किये थे पर बोलने खड़े हुए तो भावावेश में कागज पर जो लिखा था, वह ठीक-ठीक न तो दिखाई दिया, न समझ में आया। उन्होंने पहले हिन्दी कविता के विकासक्रम की चर्चा की। फिर उन्हें अचानक विश्वविद्यालय के वे आलोचक याद आये जो 'सुधा' में उन पर कवित्त लिख चुके थे। उन्होंने कहा—तीसरे दर्जे का विद्यार्थी एम० ए० का कोर्स क्या समझेगा ? रहस्यवाद समझने के लिए अध्ययन और मनन आवश्यक है।

निराला ने एक लतीफा सुनाया। किसी गाँव में एक सधऊ काका थे। भतीजे से पूछा—अस्सी मन का लकड़ा, उस पर बैठा मकड़ा, रत्ती-रत्ती खाय तो कित्ते दिन में खाय ? भतीजा सोम दर्जे में पढ़ता था। उसने हिसाब लगाकर बता दिया। सधऊ काका को विश्वास न हुआ; बोले—चल-चल, कल का जोगी चला पुजाने।

निराला ने निष्कर्ष निकालते हुए कहा—इसी तरह आजकल हिन्दी के सधऊ काका कम उम्रवाले लड़कों के रहस्यवाद से प्रसन्न नहीं होते, प्रसन्न हों तो उन्हे कौन पूछे ? कबीर ने कहा—नैया-विच नदिया डूबी जाय। मतलब न समझो तो यह भी रहस्य है। अध्यापकों का काम है, उल्टा-सीधा अर्थ करके लडकों को समझा देना। इसी से उनकी जीविका चलती है। वे बडी चतुराई से विच का सबन्ध नदिया से जोड़कर कहते हैं—नैया बिच-नदिया डूबी जाय ! नाव नदी के बीच डूब रही है !

साफा बाँधे, दाढी के बालों के कारण और भी गंभीर दिखते हुए, नाटे कद के उपाध्यायजी कुर्सी पर बैठे हुए काफी देर से बेचैनी का अनुभव कर रहे थे। निराला भरी सभा में छात्रों के सामने अध्यापकों का मजाक उडा रहे है। श्यामसुन्दर दास सुनेगे तो क्या कहेगे ? उन्होने नंददुलारे से कहा, मुझे आवश्यक कार्य से जाना है, सभा की अध्यक्षता तुम करो।

निराला समझा रहे थे—नाव है शरीर, नदी है ज्ञान :--the stream of knowledge, truth and bliss, तब तक उपाध्यायजी सभाभवन से बाहर हो गये।

अध्यापक दल निराला से पहले ही असंतुष्ट था, अब और रुष्ट हो गया। पर निराला ने अपने भाषण, कविता-पाठ और सबसे अधिक अपने आत्मीय व्यवहार से छात्रों को मोह लिया। यह कवि जो युगप्रवर्तक है, जिसका नाम लेते ही विद्वान् उत्तेजित हो जाते हैं, जो हिन्दी-साहित्य मे वाद-विवाद का मुख्य विषय बना हुआ है, जिसकी वाणी एक साथ इतनी मधुर और ओजपूर्ण है, वह उनके साथ हँसता-बोलता है, उनके पढ़ने-लिखने से लेकर घरवालों तक के बारे में पूछता है, उनका सौभाग्य है कि वे उसे देखते हैं, उसके साथ घूमते है, बातें करते है। उनकी किशोर-आँखे भावुकता के रंगीन प्रकाश में निराला की छवि देखकर उस पर बलि-बलि जाती।

"पूज्य निरालाजी ! जब-जब मै यह सोचता हूँ कि आप मुझे याद रखते है तो मेरा मन-मयूर नाच उठता है, और आपकी साँवली सूरत आँखों के सामने नाचने लगती है और न जाने तब मैं क्या-क्या सोचने लगता हूँ।

"एक बात और कहूँ ? कहने दीजिए—आप मुझे भले ही भूल जाएँ, पर मै आपको कब भूलने वाला हूँ ? भूलना तो दूर रहे, मै तो आपको प्यार करता हूँ। वह कैसा प्यार ? यह भी सुन लीजिए—नही, इसबार रहने देता हूँ।"

यह गद्य-काव्य नंददुलारे वाजपेयी के एक सहपाठी वन्धु अवधविहारी श्रीवास्तव ने लिखा था। निराला को यह सब देख-सुनकर प्रसन्नता होती थी। विश्वविद्यालय के द्वार उनके लिए बन्द रहे, नाम के साथ एम० ए०, डी० लिट्० जैसी डिगरियाँ लगाने को न मिली, कोई बात नही। जो ये डिगरियाँ पा रहे है, वे निराला का सम्मान करते हैं, इतना ही नही, अपने अध्यापको पर हँसते है, निराला को ज्ञान मे उनसे श्रेष्ठ मानते है। क्या किया जाय ? जीवन मे डिगरियो का महत्त्व है। जब लोग क्वालिफिकेशन पूछते है तब निराला को डिगरियों का अभाव बहुत अखरता है। वह रामकृष्ण और सरोज के भरणपोषण और शिक्षण की उचित व्यवस्था न कर पाये थे।

सरोज अब बारह साल की हो रही थी। इस उम्र तक उसकी माँ व्याही जा

चुकी थी। उसकी नानी उसके व्याह के वारे मे चिन्ता करने लगी थी। उन्होंने रामकृष्ण का जनेऊ कर दिया था; अव सरोज के लिए वर देखना, व्याह करना निराला का काम था। उन्होने दामाद से कहा—भैया, पाल-पोस कर वडा कर दिया, अव आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। अपने साथ ले जाओ, घर मे रखो, अच्छा-सा वर ढूँढो। जव वह नीकी घडी-साइत आयेगी तव जो वन पड़ेगा, हम भी करेगे।

निराला से कोई उत्तर देते न वना। अपनी और भतीजों की ही चिन्ता थी, ससुराल का वडा सहारा था, अव वच्चो की देखभाल भी करनी होगी। आमदनी का कोई निश्चित साधन न था पर सास की उस उक्ति के वाद वच्चो को वहाँ रखना संभव न था। वह पुत्र और पुत्री को गढाकोला लिवा लाये।

विशेपाकों के लिए निराला की कविताएँ माँगी जा रही थी। 'वर्तमान' और 'प्रताप' के सपादको ने कविताएँ माँगी थी। कानपुर मे निराला का विरोध बुझ-सा गया था। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', ग्राम हडहा, जिला उन्नाव 'सुकवि' पत्र निकालने जा रहे थे। उन्होंने भी कविता माँगी यद्यपि उनकी शिष्यमंडली छायावाद के विरोध में थी। कानपुर मे कान्यकुब्ज ब्राह्मणो का सम्मेलन होने जा रहा था; एक कवि-सम्मेलन भी होगा, उसमे आने के लिए 'सनेही' जी ने आमंत्रित किया। कानपुर में एक नये ढंग के कवि-सम्मेलन का भी आयोजन हो रहा था। समस्या और विपय कुछ भी निर्धारित न किया जायगा, अपनी इच्छानुसार कवि अपनी रचनाएँ सुनाएँगे। कानपुर मे एक सज्जन सुमित्रानन्दन पंत को बुलाने गये। प्रसाद और निराला को भी बुलाने के प्रयत्न हो रहे थे। पंत सोच रहे थे कि निराला जायँ तो वे भी चलें। एक कवि-सम्मेलन काशी मे हो रहा था; वहाँ के लोग भी निराला को वुला रहे थे। इन सब निमंत्रणो से गढ़ाकोला के गलियारो मे धूलि-धूसर निराला का महत्त्व प्रकट होता था पर कविता लिखना प्राय. वन्द था, निरन्तर गद्य की लिखाई से खर्च चल पाता था, वह भी वड़ी कठिनाई से।

इस समय ७३ वर्प की अवस्था मे पंत के पिताजी का स्वर्गवास हो गया। निराला कानपुर कवि-सम्मेलन से प्रयाग पंत को ढाढ़स वँधाने गये। मन की उद्विग्नता दूर करने के लिए निराला ने उन्हें एक उपाय वताया—जव मन दुखी हुआ करे तव मेरा ध्यान किया करो। पंत ने वैसा ही किया और उनकी उद्विग्नता कुछ दूर हुई। इलाहावाद से लौटने पर निराला गढ़ाकोला में खुद वीमार हो गये और इतने वीमार हुए कि एक वार फिर जीने की आशा छूट गई। 'नौवत गोदान कराने तक की पहुँची'— उन्होने १७ नवंवर '२८ के पत्र मे प्रसाद को सूचित किया।

हालत सुधरने पर वह वनारस पहुँचे। वहाँ से सान्त्वना देते हुए पंत को फिर पत्र लिखा। कृतज्ञ भाव से पंत ने उत्तर दिया, "हाँ, अव भगवान की कृपा से तथा आपकी कृपा से मेरा चित्त कुछ-कुछ शान्त हो गया है। मैं आपके जाने के वाद से वड़ा उद्विग्न रहा। आपका उपकार मै कभी नही भूलूँगा।...आपके कहने के अनुसार मैं वार-वार आपको याद करता रहा जिससे मुझे विशेष लाभ हुआ। आशा है आप सानन्द हैं तथा मेरा चित्त शीघ्र ही शात करने में सहायता करियेगा।"[१९] पन्त ने यह

भी आग्रह किया कि जब उनका चित्त स्वस्थ हो जाय, तब निराला कुछ दिन के लिए उन्हें अपने पास काशी बुला लें।

निराला के पास अपने लिए ही कोई निश्चित ठीहा न था; पंत जैसे अभिजात कवि को कहाँ टिकाते? प्रसाद के यहाँ सुँघनी और तमाखू का व्यापार जमा हुआ है, आराम से नाटक-कविताएँ लिखते जा रहे हैं; विनोदशंकर के पास हवेली है, कुछ हिस्सा किराये पर उठा दिया है, जौनपुर में थोड़ी-सी जमींदारी भी है, ठाट से छत पर सिद्धेश्वरीदेवी का गाना सुनते हैं। राय कृष्णदास की रईसी के क्या कहने हैं? चाँदी के बर्तनों में भोजन करते हैं। शिवपूजन जैसे यशस्वी गद्य-लेखक कभी इस प्रकाशक के यहाँ, कभी उस प्रकाशक के यहाँ मारे-मारे घूमते हैं। निराला का महत्त्व केवल शिवपूजन समझते हैं। कहते हैं—आप बहुत कुछ कर सकेंगे, आप में जो कुछ है, उसे मुझसे अधिक बहुत कम लोग जानते होंगे। आप हिन्दी की धरोहर हैं।

हिन्दी की धरोहर हैं, यह तो ठीक पर खायें क्या? उग्र की पुस्तक चंद हसीनों के खतूत, चाकलेट, चिनगारी—एक के बाद दूसरी निकलती जा रही हैं। निराला के कविता-संग्रह के गाहक नहीं हैं। यहाँ इतनी मेहनत से गद्य लिखने पर जो कुछ मिलता है, कलकत्ते में उतना जरा-सा अनुवाद करने या दो-चार विज्ञापन लिख देने से मिल जाता है। क्या करें? फिर कलकत्ते चलें?

निराला गढ़ाकोला आकर फिर गद्य-साधना में जुट गये। जिन दिनों अपने गद्य-लेखन से वह हिन्दी आलोचना में युगान्तर उपस्थित कर रहे थे, उन्हीं दिनों 'मतवाला'-मंडल में कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ हो रही थीं। उग्र महादेवप्रसाद सेठ के बटनहोल में गुलाब की तरह सुशोभित थे। शिवपूजन सहाय जब-तब कुछ भेज देते थे, वैसे थे अलग ही। महादेवप्रसाद सेठ को भी लग रहा था, 'मतवाला' में अब वह तेज नहीं रहा। शिवपूजन सहाय को उन्होंने लिखा, "ऐसे notes यदि आप प्रति सप्ताह एक पेज लिख दिया कीजिए तो बेचारे मतवाला की चलायमान prestige को स्थिर होने का साधन मिल जाय। यथाशक्ति पत्रं-पुष्पं में आनाकानी न करूँगा।"[३०]

मुन्शी नवजादिकलाल समझते थे कि महादेवप्रसाद सेठ उन्हें बड़े भाई की तरह मानते हैं, बड़े भाई के नाते उग्र की किताबों के मुनाफे में वह भी हिस्सा बँटायेंगे। पर उग्र को प्रकाशन-व्यापार में मुन्शीजी की दखलंदाजी खलती थी। एक दिन दोनों में कहा-सुनी हो गई। उग्र ने महादेवप्रसाद सेठ से शिकायत की। कहा—जो मेरा अपमान करेगा, उसे मैं किताबों में हिस्सा न लेने दूँगा। अगर उन्हें हिस्सा देना है तो मेरा हिसाब कर दो।

महादेवप्रसाद सेठ ने उग्र का पक्ष लिया। उन्होंने कहा—अब तक उग्र की पुस्तकें सुलभ ग्रन्थ प्रचारक मंडल से निकलती रही हैं, आगे से हम उनका प्रकाशन बीसवीं सदी पुस्तकमाला से करेंगे। उनके हानि-लाभ में केवल उग्र और महादेवप्रसाद सेठ का हिस्सा होगा, और किसी का नहीं। मुन्शी-महादेव विवाद का मजा लेते हुए उग्र ने शिवपूजन सहाय को लिखा, "यदि इन्हीं में मुन्शीजी को हिस्सा न मिलेगा, तो क्या वह झख मारेंगे? उनकी और सेठजी की ऐसी-ऐसी बातें हुईं जिनका यहाँ न लिखना

ही अच्छा है। मुन्शीजी ने सेठजी को, बारह बरस की दोस्ती के बाद, बेईमान भी कहा।"[३१]

उग्र 'मतवाला' को कलकत्ते से मिर्ज़ापुर उठा ले जाने की योजना बना रहे थे। उग्र मिर्ज़ापुर के, महादेवप्रसाद सेठ मिर्जापुर के; 'मतवाला'-मंडल मे जब यही दो रह गये थे तब उसे कलकत्ते से निकालते रहने मे कौन-सा लाभ था ? मुन्शी नवजादिक लाल ने शिवपूजन सहाय को 'मतवाला' के संभावित स्थान-परिवर्तन के बारे में लिखा, "सेठजी अपना कारबार मिर्जापुर ले जाते है। 'मतवाला' शायद चन्द रोज़ का मेहमान है। इसलिए मैंने भी इसके जीवनभर इसका साथ दे देने का विचार कर लिया है।"[३२]

मुन्शीजी साथ देने को तैयार थे पर सवाल यह था कि 'मतवाला' के वास्तविक स्वामी उन्हे साथ लेने को तैयार भी हैं या नही। स्पष्ट ही मुन्शीजी 'मतवाला' के भरोसे न रह सकते थे। वह फिर भूतनाथवालों के यहाँ आये पर इस बार इत्र-साबुन का कारोबार सँभालने के बदले उन्होने एक पत्र निकालने की योजना उनके सामने रखी। पत्र का नाम रखा—'सरोज'। उनका विचार था, उसे कहानी-प्रधान मासिक का रूप देने से बिक्री ज्यादा होगी। उसमें प्रतिमास किसी कलाकार का चित्र और चरित्र छापने का आयोजन भी किया। निराला से उन्होंने पत्र के लिए मोटो माँगा, रचनाएँ भेजने का आग्रह किया, उनकी यथासाध्य सेवा करने का वचन दिया, उनका चित्र और चरित्र छापने की इच्छा भी प्रकट की।

निराला ने 'सरोज' के लिए मोटो लिखा :

काव्यामोदी-मधुपमय, सरस-तरंगित-ओज ।
साहित्यामृत भरित, यह, सुरभित, सुरुचि 'सरोज' ।

'सरोज के प्रति' मुक्तछन्द मे उन्होंने एक कविता लिखी। कमज़ोर नाल पर टिका रहने पर भी अपने विश्वास के सहारे कमल सारे प्रहार सह लेता है, दुख की रात बीत जाती है जब भगवान भुवन-भास्कर उसे जगाते हैं।

मुन्शीजी ने निराला को सूचित किया, कनकाबाबू पुस्तके भी प्रकाशित करना चाहते है। निराला नाटक लिखेंगे ? क्या लिखाई लेंगे ? अपना चित्र और चरित्र भेजने के लिए उन्होने फिर याद दिलाई। निराला टालते रहे। चरित्र लिखना है तो प्रसाद का लिखें, अपना क्या लिखे ? कितनी वीरता से आलोचको के प्रहार सहते हुए मौन अपने साधना-मार्ग पर आगे बढ़ते जाते हैं ! कितनी सहृदयता से पिछले दिनों उन्होने निराला को अपनाया, उनके उपचार में सहायता की !

निराला ने प्रसाद, पंत तथा अन्य हिन्दी कवियों की चर्चा करते हुए 'सरोज' के लिए लेख लिखा, 'सौन्दर्यदर्शन और कविकौशल'। इसमे उन्होने प्रसाद के बारे मे लिखा, "जब तक मैंने 'प्रसाद' जी का पूरा संग्रह नही देखा था, मैं कल्पना भी नही कर सका था कि दस-बारह वर्ष पहले भी हिन्दी के हृदय-पट पर इतनी मार्जित, इतनी कोमल रेखाएँ खींची जा चुकी हैं···सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि जिस समय खड़ीबोली के लिए विशेष साधन उपलब्ध न थे, उस समय 'प्रसाद' जी ने कैसे इतने मार्जित और मनोहर शब्दो के आभूषणो से अपनी कविता को अलंकृत किया।" निराला

का विचार था कि पंक्ति के बीच में वाक्य समाप्त करके पूर्णविराम देने का रहस्य उन्ही को मालूम है, "परन्तु मेरे क्षुद्र अहंकार को" प्रसाद के रचनाकौशल ने नष्ट कर दिया।

गढाकोला मे रहते निराला को साल-भर हो गया। इतने दिन एकसाथ वह गाँव में पहले कभी न रहे थे। मुन्शीजी बुला रहे थे। जाड़ा वीत रहा था। निराला काशी आये। कुछ समय तफरीह में विताया।

एक रात नशे की हालत में वह कलकत्ते के लिए रवाना हुए। उनके मित्र चिन्तित हुए कि रास्ते में किसी से मारपीट न हो जाय। किसी प्रकार वह सकुशल कलकत्ता पहुँच गये। इस वार वह 'मतवाला'-कार्यालय में ही ठहरे। बहुत जल्द कुछ रुपये गाँव भेजे, उनकी अनुपस्थिति में गृहस्थी की गाड़ी कैसे चलती रहे, इसके लिए निर्देश भी किया।

श्री

३६, शंकरघोप लेन,
कलकत्ता
वसन्तपंचमी

चिरंजीव केशव, कालीचरण, रामकृष्ण व सरोज

हम अच्छी तरह से हैं। अपने समाचार देना। इधर १५) खर्च भेजा, वह मिला होगा। रामधनी वगैर: चाँदपुर में है। सरोज को अभी न ले जाना। कालीचरण अकेले उसी तरह चले आवें जैसा चिट्ठी मे लिखा है। डलमऊ में किसी तरह घर मे रात काट लें। रामकृष्ण को भी जल्द बुला लेंगे या हमी चले जायँगे। चैत तक किसी तरह मकान में पढते रहें। गयाप्रसाद को आसीस।

तुम्हारा काका
सूर्यकान्त

वहुरिया को तकलीफ न हो। काम-धाम करती रहे।

जाड़ा वीत गया। वसन्त के दिन आये। निराला ने कालीचरण और रामकृष्ण को कलकत्ते बुला लिया। कालीचरण को उनके भाई रामगोपाल के पास भेज दिया। वह वंगाल में ही नौकर थे। रामकृष्ण को अपने पास रखा और उन्हे पढ़ाने लगे। उनकी पुत्री सरोज उनके ननिहाल चली गई थी। केशवलाल को उन्होने लिखा कि उसे गढ़ाकोला बुला लें। पचपन रुपये उनके नाम भेज कर ताकीद की, उसमें से चालीस रुपये कर्ज की अदायगी मे मन्नी पंडित को दे दें, हिसाव वह खुद आकर करेंगे।

विद्यासागर कालेज के हिन्दी छात्रो ने अपनी समिति का वार्पिकोत्सव मनाया। सभापतित्व के लिए महामना मदनमोहन मालवीय को आमन्त्रित किया। समारोह में अंग्रेजी के अध्यापक जे० एल० वनर्जी ने वँगला-साहित्य की समृद्धि की प्रशंसा की, हिन्दी-साहित्य का मखौल उड़ाया। निराला श्रोताओं मे पीछे खड़े थे। उन्होने सभापति के पास कागज के टुकड़े पर अपना नाम लिखकर भेजा और भापण की अनुमति माँगी। बुलाये जाने पर निराला ने कहा, राष्ट्रभापा वही भापा हो सकती है जिसका उच्चारण शुद्ध हो। वँगला में काठियावाड़ कैसे लिखेंगे ? काठियाओयाड़ ? वंगला का

उच्चारण विशुद्ध आर्य नही, बहुत-कुछ मगोलियन है। बँगला के प्राचीन साहित्य पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। प्राचीन साहित्य में हिन्दी बँगला से आगे है, आधुनिक साहित्य मे भी वह बँगला से बहुत पीछे नही है।

सभापति पद से भाषण करते हुए मालवीयजी ने निराला की बातो का बहुत-कुछ समर्थन किया।

'मतवाला' के लिये उन्होने तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तुलना करते हुए एक लबा लेख लिखा। शुद्ध साहित्य मे रवीन्द्रनाथ का महत्व स्वीकार करते हुए उन्होने दिव्य भावो के चित्रण में तुलसीदास को श्रेष्ठ ठहराया। तुलसीदास का तत्त्वज्ञान ही आज का रहस्यवाद या छायावाद है, यह कहकर उन्होने काव्य की नई धारा से तुलसी का संबंध दृढ किया। तुलसीदास के त्याग के सामने रवीन्द्रनाथ के वैभव को क्षुद्र मानते हुए उन्होंने लिखा ' मसनद भी न छूटेगी, तकलीफ भी सहनी नहीं, और मुक्ति भी हाथो-हाथ। एक हाथ मे पूँजीवाद और दूसरे मे अखंड तत्त्वज्ञान। एक आँख से बीबी-बच्चो को स्नेह और प्यार भी कर लेंगे और दूसरी से ब्रह्म भी देख लेंगे।

गेरुए वस्त्र न पहनने पर भी निराला मन मे अपने को गृहत्यागी संन्यासी ही माने हुए थे।

इन दिनों नंददुलारे वाजपेयी कलकत्ते आने का विचार कर रहे थे। 'युवक' मे नजरुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' पर प्रशसात्मक लेख छपा था। उसे देखकर उनके मन मे इच्छा हुई कि कलकत्ते जाकर निराला से बँगला सीखें। वह एम० ए० की परीक्षा दे चुके थे। प्रश्नपत्रो मे जो कुछ पूछा गया था, उनकी समझ में उससे परीक्षकों का अज्ञान ही प्रकट होता था। वह रहस्यवाद पर लेख लिखना चाहते थे, निराला से सलाह करना चाहते थे। निराला ने उन्हें वर्तमान कविता पर लिखने की सलाह दी। "मैं स्वयं एक कवि के नाते समालोचना लिख नही सकता और लिखते समय अपना उल्लेख भी नही कर सकता, और न करना ठीक भी नहीं—इतिहास के विचार से।"

गाँव मे नाच हुआ। नंददुलारे वाजपेयी के मित्र आनन्दमोहन वाजपेयी भी देखने गये। "नारी-समागम कवित्व से भरा है ही, फिर आनन्दमोहनजी कैसे अपने को कवित्व-रस-ग्राहिता-शून्य साबित करते ? बीच मे बैठे होंगे डटकर ? कौन आई थी 'श्मशान'-वाली ? 'सितलन-मुँहदाग', 'बित्ता भरे के बारन कै पातरि चोटी—जैसे खोपरी भरे मैं डियारो लाग होय'—नाटी नाटी—कारि भुजैल—वहै न ?"[३३]

नंददुलारे वाजपेयी रिसर्च करना चाहते थे, कविताएँ भी लिखते थे। निराला को लगा, रिसर्च स्कालर होकर कविता लिखना कुछ हास्यास्पद-सा है; प्रोफेसरी ही ठीक है।

महादेवप्रसाद सेठ के एक चचेरे भाई का देहान्त हो गया था। अन्त्येष्टि क्रिया के लिए वह मिर्जापुर गये थे। उग्र कलकत्ते से बाहर थे। अप्रैल (सन् '२९) मे वह कलकत्ता आये। विनोदशंकर व्यास भी संसार-सुख के लिए वहाँ पहुँच गये। इन सबके आने का समाचार सुनकर महादेवप्रसाद सेठ समय से कुछ पहले ही लौट आये। और निराला फिर गाँव लौटने की बात सोचने लगे।

निराला ने नंददुलारे वाजपेयी को पत्र लिखना शुरू किया :

36, Sankerghose Lane
Calcutta
10-4-29
11 P.M.

प्रिय वाजपेयीजी,

आपका पत्र मिला।

आपके

इतना लिखकर रख दिया। मन पुरानी समस्याओं से उलझ गया। निराला किसी का क्या बिगाड़ता है ? लोग क्यों उसके पीछे पड़े हैं, क्यों उसे काम नहीं करने देते ? उन्हें अंग्रेजी की एक पंक्ति याद आई। "आपके" वाला वाक्य वैसा ही अधूरा छोड़कर उन्होंने वह अंग्रेजी का वाक्य लिखा :

From me no danger
be to ought that
lives to those that
dwell on high

अंग्रेज़ी लिखने-बोलनेवालों को ही सम्मान मिलता है। हिन्दी में लिखने का मतलब है, दर-दर ठोकरें खाना। आलोचक एक-से-एक उजबक; कौन कितने पानी में है, थाह लेना जानते ही नहीं। निराला ने पत्र में जो कुछ लिखा था, काट दिया। नये सिरे से पत्र अंग्रेजी में लिखना शुरू किया।

Dear Bajpeye je,

I receive your 2nd letter today by the evening mail. Just a few hours before I have posted an answer to the lst letter. Perhaps you will receive both the letters by the same mail. [At] the present time I am awfully busy in writing a novel. Fancy. Sorry I cannot meet you within the time you expect. Past a few days, a vagabond indeed I had been here to look after the press works and the Matwala. The Editor went to Mirzapur to perform the funeral ceremonies of his dead cousin. He came back after the ceremony done but before the time fixed, by the cause of coming of Ugraje & Vinodje.

अंग्रेजी में पत्र लिखने से लाभ ? हरेकृष्ण मुखोपाध्याय को बँगला में पत्र लिखा था, उन्हें यह समझाने के लिए कि बँगला आती है, चंडिदास के अनुवाद के लिए सहायता की जरूरत नहीं है। नंददुलारे वाजपेयी हिन्दी के एम० ए० हैं, अंग्रेजी आती है उन्हें समझाने से लाभ ? निराला ने यह पत्र भी उठाकर रख दिया और बिस्तर पर लेट गये।

दूसरे दिन वह काम की तलाश मे निहालचंद्र वर्मा के पास गये। पिछले साल इन्ही के यहाँ से निराला की पहली आलोचना-पुस्तक 'रवीन्द्र कविता कानन' निकली थी। भूमिका मे प्रकाशक ने लिखा था—"मुझे इस ग्रन्थ की एक-एक लाइन साहित्य-रस से भरी हुई प्रतीत हुई।" पुस्तक तो साहित्य-रस से भरी हुई थी लेकिन लिखाई मिली थी वही चार आने पेज। निहालचन्द्र वर्मा ने शकुन्तला पर एक नाटक लिखने को कहा। निराला ने तीन हफ्ते मे नाटक लिख डाला और लिखाई वसूल करके काम चलाया। फिर निहालचन्द्र वर्मा ने प्रस्ताव किया कि वह बँगला मे लिखी 'वात्स्यायन कामसूत्र' नामक पुस्तक का अनुवाद कर डाले। वह अनुवाद देते जायँ, आधी लिखाई उन्हें तुरत दे दी जायगी, शेप पुस्तक छपने के वाद मिलेगी। निराला ने अनुवाद करना शुरू कर दिया।

निहालचन्द्र वर्मा हिन्दी नाट्य समिति के मन्त्री थे। उन दिनो रामेश्वर बिड़ला के विवाह को लेकर वडा विवाद चल रहा था। विवाह कोलवार विरादरी में हुआ था जिससे माहेश्वरी विरादरी वाले नाराज़ थे। अनेक लेखक भी इस विवाद मे शामिल थे। निहालचन्द्र वर्मा ने निराला से इस विपय पर एक प्रहसन लिखने को कहा। निराला ने 'समाज' नामक एक छोटा-सा प्रहसन लिख डाला। वह मंच पर खेला गया और उसमे निराला ने रामेश्वर बिडला का अभिनय किया।

निराला एक अनुवाद की कापी लेकर निहालचन्द्र वर्मा के पास गये। कापी देकर उनसे रुपये माँगे। निहालचन्द्र ने कहा—मेरे पास इस समय रुपये नहीं हैं। निराला ने कहा—मेरा काम कैसे चलेगा? इस पर वात वढ़ी और निराला को उत्तेजित होते देखकर निहालचन्द्र अपनी दूकान के ऊपर हिन्दी नाट्य समिति के दफ्तर मे पहुँच गये। वहाँ उनके भाई दयाराम वेरी भी थे। निराला उनके पीछे पहुँचे, वादे के अनुसार रुपया देने को कहा। भाई को अलग करके दयाराम वेरी उनसे उलझ गये। गर्मागर्मी वढने पर कुछ और लोग वहाँ आ गये। दयाराम वेरी ने दीवाल पर टँगी हुई तलवार उतार ली। यह नाटक मे काम आने वाली काठ की तलवार थी। उसे म्यान से खीचकर उन्होंने पीछे से निराला की पीठ पर प्रहार किया। निराला ने देखा कि वह घिर गये है। धक्कम-धक्का करते हुए वह वाहर निकल आये और सीधे 'विश्वमित्र' कार्यालय पहुँच कर मूलचन्द्र अग्रवाल से सव हाल कहा। इसके वाद वह 'मतवाला'-कार्यालय आ गये और वहाँ उग्र, महादेवप्रसाद सेठ आदि से सव वाते वताई।

लोग वीच-वचाव कराने की कोशिश कर रहे थे कि एक दिन दयाराम वेरी उग्र की पुस्तकों के लिए आर्डर देने 'मतवाला' कार्यालय आये। दयाराम वेरी ने महा-देवप्रसाद सेठ से आर्डर के वारे मे वातें की और वापस चले। जव वह कार्यालय से निकल रहे थे तव उग्र ने निराला को उकसाते हुए कहा—मार, गनीमी निकला जाता है, तुम भी ऐसे ही रहे। निराला ने उग्र की मेज़ से छुरी उठाई और दयाराम वेरी पर झपटे। उन्होंने दौड़कर दयाराम को पकड़ लिया और उठाकर पटक दिया। फिर चाकू निकालकर कहा—अभी नाक काटता हूँ। शोर सुनकर और लोग दौड़ते

हुए आये। महादेवप्रसाद सेठ ने दोनो को अलग किया।

निराला ने एक कार्ड लिया जिस पर 'मतवाला' का पता छपा था। 'मतवाला'-कार्यालय से आखिरी कार्ड उन्होने केशवलाल को लिखा।

चिरजीव केशव,

तुम्हारी सब चिट्ठियाँ मिली हैं। रामगोपाल ने हमको लिखा था कि हम १४) भेजा है। लेकिन तुम आठ ही रुपये लिखते हो। रामगोपाल को और रुपये भेज देने को हमने लिखा है। जल्द ही तुमको रुपये मिलेंगे। बाग वेच डालना। तकलीफ मत सहना। हम अच्छी तरह हैं। रामकृष्ण मजे मे है :

तुम्हारा काका

हमको इस पते पर चिट्ठी न लिखना। हम दूसरी जगह जाते है। तुमको फिर हाल देगे। रामकृष्ण का प्रणाम। सरोज को स्नेह।

तुम्हारा काका
सूर्यकान्त[३४]

गृहस्थी चलाने में रामगोपाल अब निराला का हाथ बटाने लगे थे पर इससे आर्थिक स्थिति सुधरी न थी। गाँव में अब सरोज भी थी और बाग वेचने की नौवत आ चुकी थी। निराला घर के बर्तन तक वेचने की सलाह दे चुके थे। दयाराम बेरी वाली घटना को लेकर महादेवप्रसाद सेठ और निराला मे खूब कहा-सुनी हुई। सेठ ने कहा—मेरे यहाँ कोई बिजनेस करने आयेगा तो आप उसे मारेंगे? यह मैं बर्दाश्त नही कर सकता।

यह महादेवप्रसाद सेठ है जो निराला के विरुद्ध दयाराम का पक्ष ले रहे हैं। दोनो बिजनेसमैन। निराला पर उसने पहार किया, उससे इन्हे जरा भी क्षोभ नही। निराला ने मतवाला के लिए क्या नही किया? कविता से लेकर गद्य लेख तक सब-कुछ लिखा। 'मतवाला' हिन्दी पत्रों का सिरमौर बना निराला के बल पर। अब है तो उसमें उग्र। बड़े तीसमारखाँ बनते हैं। फिर 'मतवाला' की हालत डाँवाडोल क्यों है? उग्र के पीछे महादेवप्रसाद सेठ ने मुशीजी, शिवपूजन सहाय को धता बताई। इतने वर्षो की साधना का यह अन्त? साहित्यिक बन्धुओं को छोड़कर संसार में निराला का और कौन है? धैर्य की भी सीमा होती है। झगड़ा हुआ, सुलह हुई; फिर मिले। मगर कब तक कोई बर्दाश्त करे? यह दुनिया ही ऐसी है; मुँह मे कुछ, मन मे कुछ और। जब भाग्य मे ही अपमानित होना लिखा है तब दूसरों को दोष क्या दें?

रामकृष्ण को लेकर निराला अपने युवक मित्र शिवशेखर द्विवेदी के यहाँ आये। उनके दो और युवक मित्र दयाशंकर वाजपेयी और परमानन्द शर्मा पहले से मौजूद थे। रामकृष्ण को उन युवक मित्रों के हवाले करते हुए निराला ने कहा, रामकृष्ण को अपने पास रखना, दो-चार रोज मे इसे घर भेजने की व्यवस्था कर देना। मतवाला वालो से मेरा झगड़ा हो गया है। अब मैं वहाँ नहीं रहूँगा। आज मैं सन्यास ले रहा हूँ। तुम लोग काली घाट तक मेरे साथ चल सकते हो।

रामकृष्ण को घर पर छोड़कर सब लोग कालीघाट गये। निराला ने सर मुँड़ाया, स्नान किया, कपड़े भिखारियों को दे दिये, जनेऊ उतारा और संन्यासियों के वस्त्र पहने। फिर मित्रों को विदा करके एक ओर चल दिये।

कुछ घंटे निराला अपने ब्रह्म के साथ रहे। मानो भवसागर उन्होंने पार कर लिया हो, दुख और अविवेक की लहरें पीछे छूट गई हों, वह एक नये छायावन में आ गये हों जहाँ उनके सिवा और कोई न हो। पर इस वन में प्रकाश के बदले निराला को साँझ का झुटपुटा दिखाई दिया। पक्षियों का कलरव नहीं था, हर तरफ मौत का सन्नाटा बहुत स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

वसन्त बीत चुका था। गर्मी आ गई थी, फिर भी दखिना पवन लगने से वसन्त का भान होने लगता था। कलकत्ते की लम्बी सड़कें, हर तरफ भीड़-भाड़, कोलाहल। फिर भी निराला उस निस्तब्ध वन में—जहाँ पक्षियों का कलरव नहीं था—अकेले चले जा रहे थे। वह भवसागर पीछे छोड आये थे पर वह जितना ही आगे बढ़ रहे थे, उतना ही भवसागर उनके पीछे बढ़ता चला आ रहा था।

सरोज, रामकृष्ण, केशवलाल—ये सब किसका मुँह देखकर जियेंगे? पिता के रहते ही अनाथ होकर दर-दर भटकेंगे? सास ने कहा था, सरोज का व्याह करना है। डलमऊ वाले कहेंगे, जहाँ बेटा-बेटी का भार पडा, भाग खड़े हुए संन्यासी बनकर। किसने लिखा था—मेरा अन्तर वज्र-कठोर? एक ही झटके में डगमगा गये? साहित्य में युगान्तर स्थापित किया है निराला ने या महादेवप्रसाद सेठ ने? ये जो तमाम छोटे-छोटे दिये टिमटिमा रहे हैं, सब बुझ जायेंगे; युग का साहित्य एक सूर्यकान्त के प्रकाश से चिरदीप्त रहेगा।

रात को ताराचन्द दत्त स्ट्रीट वाले मकान की छत पर शिवशेखर द्विवेदी अपने मित्र दयाशंकर बाजपेयी और परमानन्द शर्मा से निराला के संन्यास के बारे में बातें कर रहे थे। पास ही रामकृष्ण लेटे थे। ग्यारह बजे होंगे कि दरबान ने शिवशेखर द्विवेदी को आवाज़ दी; कहा—नीचे कोई आपको पूछ रहे हैं। द्विवेदीजी नीचे गये। देखा, संन्यासी वेश में निराला खड़े हैं। साथ लेकर ऊपर आये। एक बिस्तर और बिछाया। निराला ने गेरुए वस्त्र उतार डाले। कल रामकृष्ण को लेकर गाँव जायेंगे—यह कहकर वह चुपचाप बिस्तर पर लेट गये।

६

'परिमल' और 'वर्तमान धर्म'

कलकत्ते से निराला रामकृष्ण को लेकर काशी आये। यहाँ से रामकृष्ण को गढ़ाकोला भेजा और खुद लखनऊ पहुँचे। वहाँ दुलारेलाल भार्गव से अपने कविता-संग्रह के प्रकाशन की बात पक्की की और फिर गाँव आये। यहाँ लोगों ने केशवलाल के व्यवहार की शिकायत की। काका से दंड पाकर केशवलाल उनके सन्दूक से कुछ रुपये निकालकर घर से भाग निकले। दूसरे भतीजे बिहारीलाल रंगून में थे, उनकी स्त्री गढ़ाकोला मे थी। निराला ने उन्हे कई पत्र लिखे थे पर उनका कोई उत्तर न आया था। अन्त मे उन्होंने तै किया कि बिहारीलाल की स्त्री को उसके मायके छोड आना ठीक होगा। कानपुर वाली गाडी के जनाने डिब्बे में उन्होने बहू को बिठाया। रास्ते मे बिहारीलाल की साली का घर पड़ता था। ससुर मे कुछ कहे-सुने बिना बहू उतरकर अपनी बहन से मिलने चली गई। निराला जब कानपुर में उतरे तो बहू का कहीं पता न था। बहुत ढुँढाई की, आखिर परेशान होकर दूसरी गाडी से गाँव लौट आये।

इस मानसिक स्थिति में उन्होने प्रेस के लिए कविताओं का संग्रह तैयार किया और जल्दी-जल्दी एक भूमिका लिखी। बक्से मे रेल के भाड़े लायक रुपये न थे; पैदल ही करीब बीस मील का सफर तै करके लखनऊ आये। संग्रह दुलारेलाल को सौंपा और उनसे ढाई सौ प्राप्त करके वापस गढाकोला आये। ये ढाई सौ उनकी दस साल की काव्य-साधना का फल थे।

सरोज अभी तेरह साल की न हुई थी। ब्याह के लिए ऐसी कोई जल्दी न थी पर उसकी माँ का ब्याह इस उम्र में हो गया था और उसकी नानी चाहती थीं कि उसका ब्याह जल्दी हो जाये। निराला ने कई जगह लडके तलाश किए, पर कही बात पक्की होती न दिखाई दी। जो कुलीन और शिक्षित थे, वे दहेज मे लम्बी रकम माँगते थे। निराला को अपने मित्र और शिष्य शिवशेखर द्विवेदी का ध्यान आया। उन्होने दयाशंकर बाजपेयी को पत्र लिखा कि वह उनसे सरोज के ब्याह के बारे में बात करें। बाजपेयीजी ने तुरत अपनी ओर से निराला को लिख दिया कि वह तैयार हैं। बाद

को शिवशेखर से कहा, सरोज से तुम्हारा व्याह पक्का हो गया है। निराला ने तार देकर शिवशेखर को गढ़ाकोला वुलाया।

विवाह की तैयारी शुरू हो गई। निराला ने स्वयं घर मे झाड़ू लगाई, पिंडोर घोलकर दीवाले पोती, गोवर से आँगन और खमसार लीपे। व्याह सावन मे हो रहा था। पंडित कहते थे, लगन नही है। गाँव-जवार के ब्राह्मणों ने विवाह का विरोध किया। एक तो दान-दहेज कुछ नही, फिर अनवनते का व्याह। कही से वरात न आ रही थी। वर स्वयं श्वसुर के घर उपस्थित थे। निराला ने नाते-रिश्तेदारो को भी निमंत्रण न भेजा। केवल नन्ददुलारे वाजपेयी, आनन्दमोहन वाजपेयी आदि साहित्यिक मित्रो को वुलाया। गाँव के निम्न वर्ग ने गाजे-वाजे से पूरा सहयोग किया। वर-वधू को खादी के कपड़े पहनाये गये। घंटे-डेढ़ घंटे मे विवाह संस्कार पूरा हो गया। निराला ने आगन्तुक वन्धुओं को पेड़े खिलाकर विदा किया।

और काम सव ठीक हुए पर व्याह के दिन शिवशेखर द्विवेदी की कुछ चीजे गायव हो गई। निराला के रूढि-विरोधी व्यवहार से उनके कुछ प्रशंसक और मित्र भी रुष्ट हो गए, उन्होने कुछ ऐसी वाते कही जिनके लिए उन्हे वाद में पश्चात्ताप हुआ।

मगडायर पहुँचकर नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला को लिखा, "प्रिय रामकृष्ण की वहन के विवाहोपलक्ष मे मेरे सर्वथा अननुमोदनीय ढंग की मुझे सवसे अधिक ग्लानि है, शिवशेखरजी की कई चीज़ों के खो जाने तथा स्वयं आपके साथ अपव्यवहारो की तो उतनी चिन्ता नही। मैं उन वातो को क्या लिखूँ—लिखने से वे फिर तो आएँगी नही। साधारण शिष्टता का भी परित्याग कर परिस्थितियों के चक्र में पड़ अपनी आत्मा को न जाने कैसे दवा, साधारण शिष्टता का भी पालन न कर सकना, सम्भवत: मुझसे ही हो सकता था। दुनिया तो वाह्य रूप ही देखेगी, हृदय की तह तक पहुँचने की वह आवश्यकता ही नही समझती। इस मामले में आपकी सहृदयता ही मेरा साथ दे तो दे, नही तो खो तो मै सव कुछ चुका हूँ।"[1]

व्याह के वाद विटिया-दामाद को गाँव में छोड़कर निराला लखनऊ आये और यहाँ अपने कविता-संग्रह के प्रूफ देखने लगे। संग्रह का नाम रखा था—'परिमल'।

सुन्दर सुरंग नैन सोभित अनंग रंग
अंग अंग फैलत तरंग परिमल के।

वही परिमल, निर्गन्ध पल्लवों से एकदम भिन्न। वहुत सँभालकर सँजोये हुए 'मतवाला' के पुराने अंको से उन्होंने कविताएँ नकल की थी, जो कविताएँ उनकी या मित्रो की निगाह मे उत्कृष्ट न थी, उन्हे संग्रह मे न दिया था। मेरा अन्तर वज्रकठोर वाला गीत नन्ददुलारे वाजपेयी को साधारण लगा था, उसे उन्होने संग्रह मे न दिया। रवीन्द्रनाथ की रचनाओ के आधार पर उन्होंने जो कविताएँ लिखी थी, जिन पर भावो की भिड़न्तवाला आन्दोलन चला था, उन्हें भी अलग रखा। 'अनामिका' की कुछ कमजोर रचनाएँ, विवेकानन्द के अनुवाद भी संग्रह मे न दिये। कविता की प्रतिद्वंद्विता मे इस संग्रह के वल पर ही उन्हें विजयी होना था। जितनी कविताएँ लिखी थी, उनमे लगभग एक-तिहाई छोड दीं। इसमें उत्कृष्ट रचनाएँ ही संकलित की। मुक्तछन्द का

विरोध हुआ था; संग्रह के आरम्भ में उन्होंने तुकान्त रचनाएँ दीं, मुक्तछन्द वाली कविताएँ अन्त में। पंत ने अपने संग्रह की लम्बी भूमिका लिखी थी। निराला के मित्र चाहते थे, वैसी ही लम्बी भूमिका हो, पुस्तक भी पूरी सजधज से निकले।

मामूली कागज़, मामूली छपाई, कोई चित्र नहीं, न कवि का, न किसी सुन्दरी का, न प्राकृतिक दृश्य का। अगस्त सन् '२९ में निराला का कविता-संग्रह प्रकाशित हो गया। काशी के विद्वानों ने कहा—कवि ने शब्दाडम्बर में पड़कर भावों की अवहेलना की है, छन्दों का तिरस्कार करके कवि ने कविता के मूल पर कुठाराघात किया है।

निराला ने एक प्रति सुमित्रानन्दन पंत के पास भेजी। यथासमय उन्होंने पुस्तक-प्राप्ति से अपनी प्रसन्नता सूचित की। निराला ने शालीनता को कवि मित्र का हार्दिक उल्लास समझकर प्रशंसा के प्रति अपने को वीतराग सिद्ध करते हुए लिखा :

"परिमल आपको पसन्द आया, यह उसका सबसे बड़ा पुरस्कार है। मैंने आपको कार्यारम्भ करने के समय ही बुलाया था, आपको स्मरण होगा। आपने सहयोग नहीं किया। आपने मेरी प्रशंसा नहीं की, इससे मुझे बिलकुल अन्यमना मत समझिये। बल्कि मुझे हर्ष होता था कि मुझे एक रत्न मिला और रहस्यजनक धोखे से।

"आपकी तुलना थोड़ी ही देर के लिए, सीजन फ्लावर के सौन्दर्य की तरह, अजान के सूँघने से पहले तक अच्छी लगी। इतनी बड़ी तुलना, इतनी शीघ्रता से, ७०/८० मील की स्पीड से चलती हुई गाड़ी को एकाएक रोक देना है जिससे हानि की ही शंका है और गाड़ी के हमेशा के लिए रुक जाने की। प्रशंसा की बला जब-जब, जहाँ-जहाँ आई, मैंने आपके सिर टाल दिया। छिपकर रहने में कितनी शक्ति है, यह शायद मुझसे अधिक बहुत कम लोगों को मिली होगी। आप शक्तिभंग भी कर रहे हैं।

" मेरे मित्र पंतजी के 'पल्लव' की परी दिन-रात मेरे पलंग पर रहती है, पर 'परिमल' तो कभी-कभी वसन्त ही में मिलता है। 'पल्लव' से कोई हानि नहीं, भय भी नहीं, बल्कि आनन्द ही है; पर 'परिमल' कभी-कभी, किसी-किसी वन्य झाड़ के जिस चटखारे से निकलता है, दिमाग ही फूँक जाता है, अस्वस्थ भी कर देता है।...

" 'पल्लव' हिन्दी के भाल पर चन्द्रबिन्दु है। हताश होते हैं आप ?—आपकी रचनाएँ अपराजित हैं। ..

" एकबार, इच्छा होती है, आपके स्वरों में भी अपना सितार बाँधूँ। पर आपके फिर उतरने पर ही ऐसा करूँगा।"[२]

वर्षा समाप्त हो गई थी। निराला लखनऊ में पैर जमाने का प्रयत्न कर रहे थे। ऋतु-परिवर्तन के समय उन्हें ज्वर हो आया। शिवशेखर द्विवेदी गाँव में थे। दामाद की खातिर में किसी तरह की कोताही न हो, इसकी फिक्र बीमारी में भी बनी हुई थी। उन्होंने शिवशेखर को लिखा, "अगर वहाँ तकलीफ मिलती हो तो बरदाश्त करना [।] पानी की दिक्कत पड़ती होगी। नाऊ से भरा लेना। हम आकर उसकी मिहनत दे देंगे।"[३]

घर-गृहस्थी के काम से छुट्टी पाकर निराला 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में

काम करने लगे। वह कुछ दिन लखनऊ रहते; फिर गाँव चले आते। 'सुधा' से इतने पैसे न मिलते थे कि रामकृष्ण के साथ लखनऊ में रह सकें। पत्रिका के लिए वह घर पर सामग्री तैयार करते। महीने भर के परिश्रम के बाद बड़ी मुश्किल से चालीस रुपये मिल पाते। उन्होंने सौ रुपये माँगे थे; जब कहीं सहारा न रहा, तब जो मिल जाय, वही ठीक, यह सोचकर 'सुधा' मे लिखना स्वीकार किया था।

निराला ने 'सुधा' को हिन्दी की श्रेष्ठ साहित्यिक-सामाजिक पत्रिका बना दिया। इन दिनो जैसी सम्पादकीय टिप्पणियाँ 'सुधा' मे निकली, वैसी दूसरी पत्रिका मे नही। वे सुन्दर अलंकृत गद्य के नमूने थी, अपनी कलात्मक भंगिमा के कारण वे औसत सम्पादकीय लेखों से भिन्न थी। 'सुधा' ने डटकर रीतिवाद का विरोध किया, विश्वविद्यालयो को ललकारा कि नये साहित्य के लिए वे अपने द्वार खोलें। 'सुधा' मे निराला ने आमूल सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, प्रतिपादित किया कि पराधीन देश मे केवल शूद्र रहते हैं, पुरानी वर्णव्यवस्था से चिपके रहना व्यर्थ है, विशेष रूप से ग्रामीण जनता की शिक्षा और संगठन अति आवश्यक है, स्त्रियों की प्रगति के बिना राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। 'सुधा' में निराला ने राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने, अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषाओ का व्यवहार करने, बँगला-साहित्य के समानान्तर हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अनवरत संघर्ष किया।

'समन्वय' और 'मतवाला' की तरह यहाँ भी सम्पादक रूप में निराला का नाम न छपता था।

'सुधा' के व्यंग्य-विनोद मे निराला ने 'मतवाला' की झलक दिखाई। कभी-कभी वह अपने मित्रो को भी लेकर परिहास कर बैठते थे। छायावादियो मे प्रसादजी का घोड़ा तेज़ जा रहा है। दिक्कत सिर्फ एक है; घोडा नाज़ुक है, प्रसादजी स्थूल। पंत महादेवप्रसाद सेठ को लिखने वाले है, अपना पुराना मोटो बदल दीजिए, तुग हिमालय शैल शृग मुझे लिखिए, चंचल गति सुर सरिता निराला को। उग्र की प्रतिभा का गैस उड़ गया है, वह लाला भगवानदीन के पास गये है कि पंप करके फिर साहित्य-ससार मे छोड़ दें। कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ने बहुत सोचकर प्रसाद-प्रशंसा की सोल एजेन्सी ली थी, पर अभी तक विशेष फायदा नही हुआ।

निराला ने रामचन्द्र शुक्ल पर कविता लिखी :

जब से एफ० ए० फेल हुआ,
हमारा कालेज का बचुआ।
नाक दाबकर संपुट साधै
महादेवजी को आराधै,
भंग छानकर रोज रात को
खाता मालपुआ।
वाल्मीकि को बाबा मानै
नाना व्यासदेव को जानै,

चाचा महिषासुर को, दुर्गा
जी को सगी बुआ।
हिंदी का लिक्खाड़ बड़ा वह,
जब देखो तब अड़ा पड़ा वह,
छायावाद रहस्यवाद के
भावो का बटुआ।
धीरे-धीरे रगड़-रगड़ कर
श्री गणेश से झगड-झगड़ कर,
नत्थाराम बन गया है अब
पहले का नथुआ।
हमारे कालेज का बचुआ।

निराला के जीवन में सब-कुछ व्यंग्य-विनोद नही था। कभी इस होटल में, कभी उस होटल मे, कभी किसी मित्र के यहाँ, कभी गंगा फाइन आर्ट प्रेस में, कभी गाँव में, कहीं आसन जमाकर साहित्य-साधना का अवसर न मिल रहा था। इस पर उनके विरोधी बात समझने की कोशिश न करके उलटा-सीधा लिखे चले जा रहे थे। निराला ने राष्ट्रीय एकता दृढ़ करने के विचार से हिन्दू और मुसलमान कवियो के विचार-साम्य पर लेख लिखा। कानपुर के 'मनसुखा' पत्र में रमाशंकर अवस्थी ने उनके लेख की आलोचना की; कहा, निराला गालिब के शेर का मतलब ही नहीं समझे। निराला ने पहले शेर का अर्थ समझाया; फिर विरोधी को चुप करने के विचार से तीखे शब्दो से उसे बेधते हुए लिखा, "अरे अवस्थीजी, आप और फिलासफी! आपको किसी बहाने मेरी तरफ भूँकना था, सो भूँक चुके। इस तरह आप दूसरों को प्रसन्न कर सकते हों, तो कीजिये, पर मैं कहूँगा, कुछ काटना भी सीखिये। आपने अपने चुभीले शब्दों का भण्डार बिलकुल खाली कर दिया है, और कुसूर मेरा कुछ भी नहीं; पर खैर, मै मुर्गियाँ नही हलाल करता फिरता। यहाँ इतना ही कहूँगा कि वह लेख आप जैसो के लिए नहीं लिखा गया। मैं भैंस के आगे बीन नही बजाता। आप पर मैने कई सफे रँग डाले थे, पर आप बेचारे! मेरे अन्तर के आइने मे जितनी आग है, आप मे सहने की उतनी ताब है? मैं अगर हिन्दी के मैदान से खदेड़ा हुआ मनुष्य हूँ, तो राष्ट्रभाषा के स्वयंवर के समय प्रादेशिक महारथियों के मुकाबले मे अक्षय शब्दास्त्र-विद्या के बल पर मत्स्य-लक्ष्य का वेध करने वाला दूसरा है कौन?"

निराला ने अपने ऊपर, हिन्दी पर आक्षेपो का उत्तर दिया, वेदान्त, राजनीति, साहित्य पर लेख लिखे, पुस्तकों की समीक्षा की और उन्हे कलकत्ते के दिन याद आये जब लोग हाथोंहाथ लेते थे, प्रशंसा की दृष्टि से उन्हे देखते थे, जब निराला 'मतवाला'-मंडल के सम्राट् थे। यहाँ गंगा पुस्तकमाला के सम्राट् थे दुलारेलाल भार्गव जो हिन्दी में अपने को सर्वश्रेष्ठ संपादक और प्रकाशक मानते थे। जो उनके यहाँ काम करे, उसके लिए उनकी हिन्दी-सेवा का महत्त्व स्वीकार करना अनिवार्य था। सन् '३० की वसन्तपंचमी को उन्होंने गंगा पुस्तकमाला का महोत्सव किया। उनका जन्म वसन्त-

पंचमी को हुआ था; इसी दिन उन्होंने अपनी स्वर्गीया पत्नी गगादेवी की स्मृति में गंगा पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया था। अव तक इस पुस्तकमाला में १०८ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी थी, अंतिम पुस्तक थी वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास 'गढ़-कुडार'। महोत्सव मे नगर के प्रमुख साहित्यिक वदरीनाथ भट्ट, रूपनारायण पांडेय, भगीरथप्रसाद दीक्षित, रमाशंकर मिश्र श्रीपति, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' आदि सम्मिलित हुए।

निराला से कहा गया कि वह गंगादेवी, गंगा पुस्तकमाला और दुलारेलाल भार्गव का परिचय देते हुए निवन्ध पढ़ें। निराला ने मन के भाव दवाकर निवन्ध लिखा। दुलारेलाल की प्रशंसा मे कहा कि उनके यश के प्रभातकाल का पद्म मध्याह्न की मरीचियो से प्रखर, पूर्ण-विकसित, हिन्दी की दसों दिशाओ को अपनी अमन्द सुगन्ध से परिप्लावित कर रहा है। उन्होने उन प्रमुख पुस्तकों के नाम गिनाये जिन्हे दुलारे-लाल ने प्रकाशित किया था और निष्कर्ष रूप मे कहा कि इतना वड़ा हिन्दी का प्रकाशन, इतने थोड़े समय मे, आज तक किसी भी कार्यालय से नही हुआ। 'माधुरी' और 'सुधा' के योग्य सपादन की प्रशंसा करते हुए कहा कि दुलारेलाल ने नवीन लेखकों को वरावर प्रोत्साहन दिया और कितनी ही महिला-लेखिकाएँ तैयार की। इस तरह लखनऊ जैसे उर्दू के किले में उन्होने हिन्दी का विशाल प्रासाद खड़ा कर दिया। इन तमाम कार्यो की प्रेरणा उन्हे अपनी स्वर्गीया पत्नी से मिली जो तिरोधान के पश्चात् पति की आभा मे मिलित हो गई।

इस अवसर पर महोत्सव में शामिल होने वालों का फोटो लिया गया। वीच में वैठे दुलारेलाल भार्गव, एक किनारे वदरीनाथ भट्ट और उमाशंकर वाजपेयी के वीच निराला। इस समय अपने लंवे वाल कटाकर उन्होने छोटे करा दिये थे। हल्की मूँछें, वड़ी-वड़ी आँखे, साधारण कुर्ता-धोती—वह सवसे अलग तेजस्वी कवि मालूम होते थे। उनके चौड़े सीने से वदरीनाथ भट्ट और उमाशंकर वाजपेयी ढक न जायें, इसलिए वह टेढ़े होकर वैठे।

ठण्ढ अभी काफी थी। सव लोग गर्म कपड़े पहने थे। केवल निराला पर एक साधारण खादी का कुर्ता था।

वसन्तपंचमी। यह प्रकाशक इस पर्व पर अपना जन्म-दिवस मनाता है। क्या निराला इसी तरह, इसी तिथि को, अपने जन्म-दिवस का उत्सव नही मना सकते? दुलारेलाल की साहित्य-सेवा? इसमें साहित्यकारो का कितना सहयोग है, इस सहयोग से दुलारेलाल को कितना आर्थिक लाभ हुआ है, इसका उल्लेख कोई नहीं करता।

सचमुच वे दिन सुन्दर थे जव महादेवप्रसाद सेठ निराला को हाथोंहाथ लेते थे, जव नवजादिकलाल, शिवपूजन सहाय आदि मित्रो की प्रशंसात्मक निगाहे निराला को घेरे रहती थी। वह युग समाप्त हो गया, महादेवप्रसाद के अज्ञान के कारण। अव वह उग्र के हो गये। 'मतवाला' अव भी आता है, मानो निराला को पुरानी वाते याद दिलाकर चिढ़ाने के लिए। उन्होने महादेवप्रसाद सेठ से कुछ रुपये उधार लिये थे। शायद उस ऋण की याद दिलाने के लिए भी वह 'मतवाला' भेजते है।

निराला ने महादेवप्रसाद सेठ को एक पत्र लिखा :

गढ़ाकोला, मगड़ायर, उन्नाव
२५-२-३०

प्रिय सेठजी,

आपका अमूल्य पत्र 'मतवाला' बराबर मेरे पास आ रहा है। इस कृपा के लिए आपका कृतज्ञ हूँ। पर कृपा इतनी ही मेरे लिए यथेष्ट हुई। अब आप मेरा नाम काट दीजिए। पत्र लौटाने की अशिष्टता करते हुए संकोच होता है। आशा है, आप मुझे ऐसा न करने देंगे।

आपके जो १२५) एक सौ पच्चीस रु० के लगभग प्राप्य है, उनके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ। विश्वास है, शीघ्र ही आपके ऋण से मुक्ति मिलेगी। मैंने अन्दाज़ा लिखा है, सत्य जो हो, आप भेज दें तो और कृपा होगी। किताब प्रकाशक के पास भेज रहा हूँ, वहीं से उक्त रुपये आपको भेज देने के लिये लिख दूँगा।

सविनय—निराला

प्रकाशक के पास भेजने को उनके पास कोई किताब नहीं थी। महादेवप्रसाद सेठ का ऋण चुकाने के लिए वे नई पुस्तक लिखने का विचार कर रहे थे। कविताओं के संग्रह से जो मिलना था, मिल चुका था और अब तक उसे फूंक-तापकर वह बराबर कर चुके थे। निबन्ध काफी हो गये थे, पर इनकी माँग न थी। निराला ने उपन्यास लिखने का विचार किया। विनोदशंकर व्यास कई साल से कह रहे थे—निरालाजी, आप उपन्यास लिखिए। उनका विचार था, एक कविता-संग्रह में जितना समय लगता है, उतने में दस उपन्यास लिखे जा सकते हैं और जितना पैसा कविताओं से मिलता है, उससे बीस गुना पैसा उपन्यासों से मिलेगा। पैसे के अलावा निराला अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने के लिए भी उपन्यास लिखना चाहते थे। रवीन्द्रनाथ ने उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, निबन्ध, नाटक—सब-कुछ लिखा था। तब निराला के लिए उपन्यास लिखना कौन-सी अनहोनी बात थी ?

किस तरह का उपन्यास लिखें ? किसको आदर्श मानकर चलें ? शरत्चन्द्र और प्रेमचन्द कवि नहीं थे। कवि उपन्यासकार तो अकेले रवीन्द्रनाथ ठाकुर थे। क्या अलंकृत शैली, सौन्दर्य के कैसे भव्य चित्र ! यहाँ यू० पी० का सामाजिक जीवन एकदम पिछड़ा हुआ, चित्र दें तो कहाँ के ? निराला के सौन्दर्य-स्वप्न कलकत्ते से जुड़े हुए थे। उनकी कथाभूमि कलकत्ता ही होगी। अवश्य उनकी नायिका कोई रूढ़िवादी गृहलक्ष्मी न होगी, समाज में जो अस्वीकृत है, उसे स्वीकृत दिखाकर वह अपने उपन्यास से कथा-साहित्य में वैसा ही युगान्तर उपस्थित कर देंगे जैसा काव्य-जगत् मे कर चुके थे।

नायिका—वेश्यापुत्री जो माँ का व्यवसाय नहीं करती, केवल गायिका है, अत्यन्त सुन्दर, साहित्य-प्रेमी है, विशेष रूप से छायावादी कविता उसे बहुत पसन्द है, उच्च शिक्षा प्राप्त है, अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास है, माँ के पास लाखों की सम्पत्ति है, मोटर, नौकर, आलीशान कोठी, सोने के गहने, जवाहरात, हारमोनियम, बैंक में चार लाख रुपये। छोटा-सा, सुन्दर-सा नाम है—कनक।

नायक—कवि, कुश्ती-कला में प्रवीण, देशभक्त, अभिनेता, स्वयं निर्धन, कमरे मे बीड़ियो का ढेर, पर धनी युवक उसके मित्र है, उच्च शिक्षा प्राप्त, अंग्रेजी फर्राटे से बोलता है, राजघराने मे पैदा नही हुआ, पर गुण उसमे राजकुमारो के है, वैसा ही नाम—राजकुमार।

खलनायक—एक कुंवर साहब, दुबले-पतले, सूखी डाल की तरह हाथ-पैर, मुंह सीप जैसा। इनके महल के चारो तरफ खाई है, पीछे घना जगल है जैसा महिषादल के राजप्रासाद के पीछे था।

राजकुमार कथा के आरंभ मे ही एक गोरे सारजेंट को उठाकर दे मारता है। कुंवर साहब जैसो से निपटना उसके लिए कठिन नही है। पुलिस अफसरो को चकमा देने मे कनक बडी चतुराई का परिचय देती है। सिहासनवत्तीसी की नायिकाओं की तरह वह हैमिल्टन को अपने यहाँ धोती पहनाकर नचाती है।

राजकुमार के लिए कनक को प्राप्त करना कठिन नही है। पर वह उसे पाकर भी जैसे परास्त हो जाता है। हारकर वह उससे आँखें नही मिलाता। प्रेम के नाटक मे सूत्रधार नटी से परास्त हो जाता है। कनक भौंरे की तरह राजकुमार के चारों ओर मँडराया करती है, उसकी निगाह 'पूरी वेहयाई' से राजकुमार के हृदय मे चुभ जाती है। वह उससे खेलती है जैसे कोई शिकारी जानवर अपने शिकार से खेलता है। राजकुमार का मन कहता है, वह स्त्री से हार गया है।

हारे चाहे जीते, सवाल यह है कि राजकुमार कनक से प्रेम करे तो देश की सेवा कौन करेगा ? सेवा के लिए राजकुमार का मित्र है, चन्दन, उसके व्यक्तित्व का ही जैसे दूसरा खण्ड, देखने में भी राजकुमार जैसा लगता है। चन्दन जेल जाता है, राजकुमार प्रेम करता है, साहित्य रचता है। स्वभावत: उसके मन मे ग्लानि उत्पन्न होती है। उसे लगता है, जेल में चन्दन उस पर हँस रहा है, उस पर व्यंग्य करता है—साहित्य की सेवा करते हो न मित्र ? मेरी माँ थी जन्मभूमि, तुम्हारी माँ भाषा। देखो, आज माता ने एकान्त में मुझे अपनी गोद में छिपा रखा है, तुम अपनी माता के स्नेह की गोद मे प्रसन्न हो न ?

राजकुमार का धैर्य छूटने लगता है। सैकड़ो आँखें उसी को देख रही है। कह रही है—यही है वह, यही है जिसने देश-सेवा का व्रत लिया था। देखा, इसके कुल अंग गल गये है। लोग इसे देखकर घृणा से मुंह फेर लेते है।

राजकुमार कनक को झटककर उससे दूर चला जाता है। घटना-क्रम दोनो को फिर मिला देता है। चन्दन जेल से छूटता है और फिर जेल चला जाता है। बड़ा सौभाग्यशाली है राजकुमार। रहने को सुन्दर भवन, प्रेम करने को सुन्दर स्त्री, संगीत के लिए हारमोनियम, अभिनय के लिए कोहनूर कम्पनी का स्टेज, अन्त में देश-सेवा के व्रत से मुक्ति देकर उसे साहित्य-साधना की ओर प्रेरित करनेवाला त्यागी मित्र चन्दन। मानो यह सब स्वर्ग जैसी सुखद कल्पना हो, निराला ने उपन्यास का नाम रखा—अप्सरा।

बडे परिश्रम से रच-रचकर निराला ने यह उपन्यास लिखा। कनक को विभिन्न

मुद्राओं, विभिन्न वेशों में सजाकर प्रस्तुत किया। उसके और राजकुमार के मुख पर कहीं सुवह की किरणें, कहीं विजली का प्रकाश डालकर दोनों को भर-आँखों निहारा। सौन्दर्य-स्वप्न अधूरा ही रहता यदि कनक मे मनोहरादेवी की छवि न दिखाई देती। उन्होंने उसका कायाकल्प किया, उसे कुलवधू वनाया और उससे गवाया—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुनम्।

"एक-एक शब्द से कनक अपने शुद्ध हृदय से भगवान श्री रामचन्द्रजी को अर्घ्य दे रही थी। चन्दन गम्भीर हो रहा था, तारा और नन्दन रो रहे थे।"

निराला ने 'अप्सरा' में भीतरी मन के वे पर्त खोले जो अव तक उनकी किसी रचना में न खुले थे। वैसे ही भाषा को सँवार कर उन्होने अलंकृत गद्य के अनोखे नमूने पेश किये। उन्हें विश्वास हो गया, हिन्दी कथा-साहित्य में उनका उपन्यास अद्वितीय है, विश्व-साहित्य में स्थान पाने योग्य हिन्दी का यह पहला और अकेला उपन्यास है। उन्होने भूमिका में पूर्ण आत्मविश्वास से लिखा, "इन वडी-वड़ी तोदवाले औपन्यासिक सेठों की महफिल में मेरी दंशिताधरा अप्सरा उतरते हुए विलकुल संकुचित नही हो रही। उसे विश्वास है वह एक ही दृष्टि से इन्हें अपना अनन्य भक्त वना लेगी।"

'अप्सरा' के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य मे ऐसा कोई परिवर्तन न हुआ। लोग अपनी राह चलते गये। निराला ने कोई उपन्यास लिखा है, उन्होने सुन लिया। निराला को लगा, दो-एक समझदारों को छोड़कर हिन्दी पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि वहुत गिरी हुई है।

'अप्सरा' के रंग में उन्होने कुछ कहानियाँ लिखी। नायिकाओं के चन्द्रमुख पर षोडश कला की शुभ्रचन्द्रिका अम्लान खेलती दिखाई। ज्यादातर ये सव एम०ए० पास, अंग्रेज़ी मे, पति या प्रेमी भी उच्च शिक्षित, प्रतिष्ठित, एकाध विलायत से वैरिस्टर वनकर लौटे हुए, यहाँ आकर देश-सेवा का व्रत लेनेवाले। रूढ़ियों को तोड़कर प्रेम और विवाह। वैसे ही अनेक गीत उन्होने लिखे। विरहवृन्त पर खिली हुई अपलक कुन्दकली, प्रणयश्वास से हिलती दृगों की कलियाँ, परिमल की मृदुल तरंग वहानेवाली कल्पना के कानन की रानी, मलय की गन्ध, मेघों की अलकावलि, किरणों के वसन-वाली नायिका जिसने सीखा केवल हँसना, केवल हँसना—निराला विभिन्न नारी-चित्रों के सौन्दर्य से मन वहलाते रहे। एकाध गीत में उन्होने शृंगार के अपने मांसल अनु-भव मूर्त रूप में ढाल दिये। चौरपंचाशिका, वैष्णव कवियों, रवीन्द्रनाथ और पद्माकर के अलस सौन्दर्य को, गाढ़े रंगों में, एक ही जगह चित्रित करते हुए, ध्वनि की अपूर्व भंगिमा के साथ—

यामिनी जागी।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-तरुण-अनुरागी।

शृंगार के अधिक यथार्थ स्तर पर वासना-दृप्त वारांगना का केलि-विलास—

मौन पान करती अधरासव,
कण्ठ लगी उरगी।

ये नये ढँग के गीत थे। ऐसा उदात्त स्वर, शृंगार के ऐसे भव्य चित्र हिन्दी गीतो मे इससे पहले देखे-सुने न गये थे। निराला मुखपृष्ठ के गीत से लेकर 'सुधा' के अन्तिम पृष्ठो मे संपादकीय टिप्पणियों तक पत्रिका को अपने कृतित्व मे रँग रहे थे, फिर भी अर्थ की ओर से मन निश्चिन्त नही था। उन्होने दुलारेलाल भार्गव को सुझाया कि रामायण का वृहद् सचित्र संस्करण निकालें, टीका निराला लिखेंगे, स्थायी मूल्य की चीज़ होगी, वड़ा लाभ होगा। भार्गवजी ने उनका प्रस्ताव मान लिया। पर टीका का काम वालकांड के प्रारंभिक अंशों को छोड़कर आगे न वढा।

निराला एक ओर 'अप्सरा' के कल्पना-लोक मे विचर रहे थे, तो दूसरी ओर लखनऊ और गढाकोला के चारो ओर लहराते हुए नये सामाजिक जीवन को भी ध्यान से देख रहे थे। कैसरवाग लखनऊ मे अवध के ताल्लुकदार पुलिस के पहरे मे साइमन कमीशन से मुलाकात करने आये है। लोगो ने कनकउए उड़ाये हैं जिन पर लिखा है—साइमन लौट जाओ। कमीशन के न्योता खाते समय कनकउए कटकर टेविल के नज़दीक ही उड़ते हुए गिरे हैं। पुलिस ने लखनऊ की निहत्थी जनता पर डंडे बरसाये हैं। निराला कहते हैं—स्त्रियो और वच्चो के अंगो पर डंडों की मार और घावों मे वहते हुए रक्त को देखकर अंग्रेज़ सरकार के लिए हमारे कोश में उपयुक्त शव्द नही हैं; मुमकिन है, पीछे गढ लिये जायें।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार के दिन। अठारह सौ सत्तावन के वाद वैसवाड़ा फिर जाग रहा है। उन्नाव, विगहपुर, मगड़ायर, पुरवा, नेवन्ना, पड़री, गढ़ाकोला—हर तरफ़ नयी चेतना, नया उत्साह दिखाई देता है। निराला उन्नाव जाते हैं, विश्वंभर दयाल त्रिपाठी से मिलने। पुरवा मे सभा होगी। त्रिपाठीजी को उसमे वोलना है। इसके वाद गढ़ाकोला में सभा होगी। निराला के हाथ मे फोड़ा हो गया है, वुखार मे पड़े है, पर कहाँ सभा होगी, कौन वोलेगा, वह सव किताव-हिसाव दुरुस्त कर रहे हैं।

२७-७-३०

प्रिय नारायण दीन को सूर्यकान्त त्रिपाठी का नमस्कार। आगे हाल यह है कि हम उन्नाव मे सभापति त्रिपाठीजी से मिलकर लखनऊ आये और आते ही वीमार पड़ गये। हमे ३ दिन से वुखार आ रहा है और वायें हाथ में एक वहुत वडा फोड़ा निकला हैं। इससे हम परसों इतवार को शायद गांव न जा सकें। यहाँ हम किसी से मिल भी नही सके। पुरवा मे २ अगस्त को रविवार के दिन सभा होगी। त्रिपाठीजी उसमें जायेंगे। इसके वाद वाले इतवार को गांव मे सभा की उनसे वातचीत हुई है। उन्होंने आने के लिए पूरा-पूरा वादा किया है। अव विना अच्छे हुए कुछ ठीक नही कह सकते।

—सूर्यकान्त

श्रीयुत

नारायणदीन अवस्थी

मु० गढ़ाकोला

डाकखाना मगड़ायर

(उन्नाव) Unao

किसानों की सभाएँ होती है, बाहर से वक्ता आते हैं, अंग्रेज़ी राज क्या है, सुराज कैसे मिलेगा, किसानों को समझाते हैं, निराला स्वयं भी भाषण देते हैं, नंददुलारे वाजपेयी उनके साथ होते हैं। निराला के भाषण उत्तेजक और ज़ोरदार हैं, अंग्रेज़ी राज में किसानों की दुर्दशा का सजीव चित्र खींच देते हैं, आर्थिक पक्ष पर बल देते हैं। नंददुलारे को लगता है, यह कोई छायावादी कवि नहीं कट्टर वस्तुवादी बोल रहा है। उन्हें आश्चर्य होता है, उनके युवक मित्र तो मौखिक रूप से देशप्रेमी बने रहे, निराला गाँवों में किसानों का संगठन कर रहे हैं।

झूठे प्रदर्शन और लफ्फाज़ी से निराला को सख्त चिढ़ है। लखनऊ में युवकों का प्रान्तीय सम्मेलन होता है। वहाँ की कार्यवाही देखकर निराला को लगता है, इनके नेता बातूनी आदर्शवादी और बगुलाभगत हैं। वह युवकों को समझाते हैं—गाँव में आकर किसानों का संगठन करो। देखो, कितना कठमुल्लापन है। जहाँ किसी ब्राह्मण पुत्र ने जनेऊ छोड़ा, वहीं धर्म के ठेकेदारों के पेट मे दर्द शुरू हुआ। जहाँ किसी मियाँ की दाढ़ी मुँड़ी, वहीं मुल्लों ने वावैला मचाया। अब की जो सामाजिक क्रान्ति हो, उसमें शास्त्रों की ठेकेदारी खत्म करनी होगी।

गढ़ाकोला छोटा-सा गाँव है। निराला को गर्व है कि छोटा होने पर भी राजनीतिक कार्य में वह पुरवा डिवीजन में सबसे आगे है। निम्न जाति के किसानो के असहयोग से परेशान होकर ज़मीदार पुलिस बुलाता है। दरोगा तहकीकात के लिए आता है। महावीर स्वामी के मंदिर के अहाते में तिरंगा झंडा लगा है। वर्षा मे धुलकर अब साफ़ हो गया है। ज़मींदार दरोगा से झंडा उखाड़ने को कहता है। दरोगा किसानों के तेवर देखकर समझ जाता है कि झंडा उखाड़ने से उत्पात हो जायगा। सर मुँडाये, लुंगी बाँधे, साधु की-सी मुद्रा में निराला आते हैं। अंग्रेज़ी बोलकर दरोगा को प्रभावित करते हैं। वह विश्व-सभा के सदस्य हैं, नोवेल प्राइज पाने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर वगैरह बड़े-बड़े आदमी उस सभा के सदस्य हैं। दरोगा चला जाता है। ज़मींदार किसानों को मुकदमे में फँसाता है। निराला उन्नाव पैरवी करने जाते हैं। वह चतुरी चमार के लड़के अर्जुन को अपने घर पढ़ाते हैं। रामकृष्ण त्रिपाठी उसे चिढ़ाते हैं। निराला उन्हें डलमऊ भेज देते हैं। कालिका धोबी उनके लिए मियागंज से गोश्त लाता है। ब्राह्मणों ने उनके घड़े का पानी पीना छोड़ दिया है। सदियों से सताये हुए नीची जाति के लोगों के लिए निराला देवता है।

निराला के मन में नये छायाचित्र बनते-बिगड़ते रहे, नयी अनुभूतियाँ सँजोये बिना ही बटुरती रही, गहरे उपचेतन में पकती-सँवरती रही, पुराने संस्कारों से टकराती-जूझती रही। निराला के साहित्य में ढलकर वे नये रूप ग्रहण करेंगी पर जरा विलम्ब से।

सरोज फिर नानी के यहाँ है। पति का पत्र आये तो उत्तर कैसे लिखे? रामकृष्ण से लिखना सीख ले। होली के दिन हैं। साले का आग्रह है, डलमऊ आये। नहीं, इस साल लखनऊ की होली देखेंगे। बरसात के दिन, मकान छवाना-छोपाना है, कहीं जल गिरा तो बैठ जायगा, निराला कहीं जा नहीं सकते, काम बहुत ज्यादा है, साँस

लेने का वक्त नही। सरोज को गाँव ले जायेंगे, द्विवेदीजी को भी वही रखेंगे। एक किताव महीने भर मे छपकर निकल जायगी। दूसरी लिख रहे हैं। ऊपर से 'सुधा' का कुल काम देखना पडता है। कतकी मे गंगा नहाने, डलमऊ आने का विचार था, पर सीतापुर चले गये, कृष्णबिहारी मिश्र के यहाँ। डलमऊ नही जा सके। अम्मा वहाँ बीमार है। लखनऊ से दवा लेकर भेज रहे हैं। जाड़ा वीत गया है, जुकाम है थोड़ा-सा, बुखार भी आ गया है। दो-एक दिन मे ठीक हो जायगा।

पतजी का पत्र आया है, सुन्दर ब्रजभापा पद्य मे।

क्षमहु वन्धु ! अपराध !
रूसन की कछु वान तुम्हें, पै
हमे मनावन साध।
व्याध भयो तव रोप, मौनचिर
लागत शर सो ज्ञात,
मो उर को कुरंग तुम समुझत,
पै यह कोमल गात।
दुर्वल मेरो मानव-मन,
जग-जीवन, अगम, अगाध।
कौन स्नेह सो पार लगैहै
मो लगि साँच असाध।
क्षुद्र हृदय को नारो मेरो,
अहंकार भयो वाँध,
कैसे मिलिहै प्रेमसिंधु में,
वहि-वहि मुक्त, अवाध !
तुम्हे मनावन वन्धु ! पठाई
मृदु व्रजवाला आज,
चतुर वतावत सव जग याको,
समुझत दूती काज !
पाती पाइ तुम्हारी देहों
याको आदर-दान,
देखो, या जुग की राधा को
मिटा पाइहै मान।

निराला पन्त से कहते थे—तुम राधा, मैं कृष्ण। उसी भाव से पन्त ने—"या जुग की राधा" ने—कृष्ण का मान मिटाने के लिए व्रजभापा मे रची कविता—दूती रूप मे—भेजी।

निराला ने अपनी वियोग-व्यथा का चित्रण वँगला पद्य मे किया :

भालोवासी, भालोवासिया छो,
नूतन किछुइ करो नाइ,

आमि मने-मने जपियाछि
द्वारे तुमि आसियाछो ताइ ।
सहियाछि आमि जत व्यथा,
तोमाय वसिते गिया भालो,
तोमार हृदये उठिया छे
ततोइ होइया ताहा कालो ।
आमि करि नाइ कृपणता—
तोमाय करिते सव दान,
जानियाछि यदि ओ जीवने—
मोर चेये तुमिइ महान'।
तोमार नयने राखि आँखी
जीवनेर सुधा करि पान,
छाड़ाये सकल दिक-सीमा
तोमाते मिलाये जाके [जावे ?] प्राण ।
पथ जाहा जानी आमि वोली,
आगुन द्विगुण मने जालो;
जतोइ जलिवे देह-मान,
ततोइ पाइवे तुमि आलो ।
गाहिया उठिवे तव प्राण
प्रभातेर आलोकेर गान,
सकलेर जीवनेर धारा
तोमाते लभिवे अवसान ।

वन्धु,

आमि एइ भाषाय प्रथम कविता लिखियाछिलाम,
ताइ इहातेइ तोमार अभिनन्दन करिलाम ।

तोमार—सूर्यकान्त

स्नेह की सरिता मे दोनों मित्रों की नावे समगति से वहती जा रही थी ।

'सुधा' में काम करते निराला को साल-भर से ऊपर हो गया था। कलकत्ता फिर याद आ रहा था । साहित्य-सम्मेलन का वीसवाँ अधिवेशन था। व्रजभाषा के कवि रत्नाकर सभापति निर्वाचित हुए थे । अधिवेशन की विशेषता यह थी कि इसमें अनेक वँगला-भाषी विद्वानों और सामाजिक कार्यकर्ताओ ने भी भाग लिया। साहित्य प्रदर्शनी का उद्घाटन प्रसिद्ध कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया। उन्होंने अपना संक्षिप्त भाषण हिन्दी मे दिया। २६ मई सन्, '३१ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सेनेट हाल में जव सभापति पद के लिए रत्नाकर का नाम प्रस्तावित हुआ, तो उसका अनुमोदन जे० एम० सेनगुप्त ने किया । उनका भाषण भी हिन्दी मे हुआ । मंच पर रामानन्द चटर्जी, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या आदि विद्वान् विराजे ।

रत्नाकर ने अपना लम्बा भाषण पढ़ा। हिन्दी के एक बीते युग की आवाज सेनेट हाल मे गूँजती रही। उन्होने हिन्दी की उत्पत्ति की चर्चा की, इस बात पर खेद प्रकट किया कि पद्य-रचना में विप्लव हो रहा है। उर्दू मे लोग स्थिर परिपाटी का विरोध नही करते। हिन्दी पद्य के चरण बराबर नही होते, प्रसाद गुण का अभाव है, कविगण व्रजभाषा से उदासीन होते जा रहे है, लगता है, भविष्य मे खडीबोली कविता का ही सौभाग्योदय होने वाला है।

यद्यपि रत्नाकर अपना भाषण खड़ीबोली मे दे रहे थे, फिर भी पद्य मे वह व्रज-भाषा के ही पक्षपाती थे। आधुनिक हिन्दी काव्य का सारा विकास उनकी समझ मे न आता था, दुख की बात यह थी कि उस विकास को रोकने के सारे प्रयास विफल हो रहे थे। कलकत्ते का रूढिवादी दल रत्नाकर के भाषण से प्रसन्न हुआ; नयी पीढी वाले जगह-जगह उनकी नकल करते, उनके भाषण पर फब्तियाँ कसते। हिन्दी के लोकप्रिय पत्र 'विशाल भारत' के सम्पादक का कहना था, देश-भक्ति और भारतोद्धार की बेतुकी कविता पढते-पढते तबियत ऊब गई थी। अनन्त मे लीन होने की सामर्थ्य अपने में है नही, न उसके लिए विशेष उत्सुकता है। धन्य भाग जो रत्नाकर जैसे व्रजभाषा-प्रेमी कलकत्ता पधारे।

निराला बँगला साहित्यकारो के सम्मेलन से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की तुलना करते रहे, मन मे कुढ़ते रहे। दूसरी भाषा के साहित्यकारों के सामने सम्मेलन की हँसी होती है। लोग सम्मान, पदमर्यादा के लिए रोते हैं, दूसरों की उच्चता नही देखते। दूसरे प्रान्तो मे बहुत काम करना है पर सम्मेलन के कर्णधारों की अज्ञता, हठधर्मी और अहम्मन्यता के कारण कुछ नही हो पाता। हिन्दी वाले पहले तो साफ हिन्दी बोल नही पाते, बोलते है तो देहाती संस्कार तुरत प्रकट हो जाते है। शिक्षित लोग अंग्रेज़ी बोलने मे गर्व का अनुभव करते है। त्यागी कार्यकर्ताओ का अभाव है। राजे-महाराजे उदासीन है। स्वतन्त्र देशो मे लेखकों की आमदनी राजा के मुकाबले की होती है। उनकी प्रतिष्ठा बड़े-बड़े राजपुरुष करते है। विदेशों से निमंत्रण आते है, प्रतिष्ठित घरानो के मनुष्य स्वागत करते है। पर हमारे साहित्यकारों की दशा इतनी गिरी हुई है कि उसका वर्णन नही हो सकता। दूसरे देशो से इज्ज़त प्राप्त करना तो दरकिनार, वे घर मे भरपेट भोजन भी नही पाते, अपनी ही भाषा के बोलने वाले लोग उन्हे अवज्ञा की दृष्टि से देखते है। हिन्दी लेखको का परिवार किसी किसान के परिवार से भी बदतर है। जाड़े मे वस्त्र नही, धूप से बचने को छाता नही, वर्षा में छत टपकती है, लडके अशिक्षित, शिक्षा के लिए अर्थ नही, कन्या बीस साल तक अविवाहिता, ब्याह करने को दहेज नहीं। कहाँ तक कहे, बीमारी मे इलाज हो, इसके लिए भी पैसे नही। किसी तरह कलम की कमाई से परिवार का पेट चला रहे हैं। यह है राष्ट्रभाषा के सेवकों का हाल।

कालेज स्ट्रीट मे निराला के साथ चलते हुए सहृदय युवक मित्र दयाशंकर वाजपेयी उनका धाराप्रवाह भाषण सुनते, रोष से उनका चेहरा तमतमा उठता, वह अच्छी तरह समझते थे कि किसान परिवार से बदतर किस लेखक का परिवार है, कौन

अपनी कन्या के इलाज की उचित व्यवस्था नही कर पाता।

सेनेट हाल में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने जोरदार शब्दों में राष्ट्रभाषा पद के लिए हिन्दी का समर्थन किया। उन्होने कहा—हमारी बंगाली जाति के लिए यह बडे अफसोस की बात है कि हिन्दी ऐसी भाषा से यथोचित शक्ति और आनन्द को प्राप्त नहीं कर सके। दुनिया के अव्वल दर्जे की अन्तर्जातीय भाषाओं में हिन्दी का स्थान है। संख्या के विचार से अंग्रेजी और उत्तरी चीनी के नीचे हिन्दी का स्थान है। कबीर के पद और तुलसीदास की रामायण हमारे नित्य के पाठ्य-ग्रन्थ है।

सभा ने गद्गद् होकर करतलध्वनि की।

कलकत्ते की हिन्दी नाट्य परिषद् ने उग्र के नाटक 'महात्मा ईसा' का प्रदर्शन किया।

बँगला साहित्यकारो ने प्रेमभाव से साहित्य सम्मेलन में भाग लेनेवाले लेखकों और कवियों को बंगीय साहित्य परिषद् में आमंत्रित किया। निराला ने वहाँ बँगला में भाषण दिया, रत्नाकार का नाम लिये बिना उनके भाषण की काट करते हुए उन्होने बँगला-भाषियों के सामने हिन्दी मे युग-परिवर्तन का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। युग-प्रवर्तकों में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, प्रसाद और पंत का नाम लिया, अपना कही उल्लेख न किया। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने उनकी प्रशंसा में कहा कि इन्होने हिन्दी में युग-प्रवर्तन किया है। धन्यवाद देने वाले बंगाली सज्जन ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि हिन्दी में युग-प्रवर्तन करनेवाली किरणें कलकत्ते से ही फूटकर निकली थी।

निराला प्रसन्नमन गढाकोला वापस आये।

उनकी प्रसन्नता थोड़े ही दिन रही क्योंकि जुलाई सन् '३१ की 'सरस्वती' में उन्होंने छायावाद के और अपने ऊपर चन्द्रवली पांडे का तीखा आक्रामक लेख देखा। 'सरस्वती' ने मानो छायावाद के विरोध का बीड़ा उठाया था। पंत को वह वख्श देती थी; प्रसाद और निराला उसके विशेष कोपभाजन थे। जनवरी के अंक में किन्ही देवशंकर त्रिवेदी ने छायावादी अनर्थ रोकने की अपील की। मार्च के अंक मे श्रीनाथ सिह ने प्रसाद के 'कानन कुसुम' की भाषा, भाव, शिल्प सवको खोटा सिद्ध करते हुए कहा, राह चलते लोगों के मुँह से जैसी बाते निकलती रहती है, बस वैसी ही सुनी-सुनाई बाते इस पुस्तक मे स्थान-स्थान पर मिलती हैं। प्रसाद को सिर्फ इस बात से सन्तोष है कि उनके मित्र उन्हे हिन्दी का प्रकाशस्तम्भ कहते हे।

चन्द्रवली पांडे संस्कृत-फारसी के विद्वान् तसव्वुफ के विशेषज्ञ थे पर छायावाद के प्रति उनके वही भाव थे जो पद्मसिह शर्मा के। उन्होने लिखा कि हिन्दी साहित्य मे कुछ विश्वामित्रों का उदय हो गया है। गुत्थियाँ सुलझाने के बदले वे विलक्षण रचना करते हैं। छायावाद का विरोध न किया गया तो पाखण्ड की उपासना चल पड़ेगी। आजकल कुछ कविताएँ 'जूही की कली', 'संध्यासुन्दरी' आदि नामो पर चलती-फिरती दृष्टिगोचर होती हे। उनमे प्रकृति-चित्रण के बदले 'उन्मत्त यौवन का उद्धत विलास' गोचर होता हे। जूही की कली की सारी देह झोकों की झडियों से झकझोरी जाती है,

संध्यासुन्दरी जीवों को अपने अंक पर सुलाती है। यह संध्या एक नायिका है "और कवि एक कामातुर जीव" जिसको वह अपने अंक पर सुलाती है। ये कवि छन्द, अलंकार, सरस भाषा की जड़ काटते है। "अन्य साहित्यो के वमन से ये हिन्दी साहित्य को जीवन-मुक्त बनाना चाहते है।"

छायावाद का समर्थक और रूढ़िवाद का विरोधी एक महत्त्वपूर्ण पत्र था—अर्द्ध साप्ताहिक 'भारत'। उसी नगर से प्रकाशित होता था जहाँ से 'सरस्वती' निकलती थी। सम्पादक थे निराला के मित्र नन्ददुलारे वाजपेयी। जो लोग छायावाद का अनर्गल विरोध करते आये थे, वाजपेयीजी ने गिन-गिनकर उनकी धुनाई की। विशेष रूप से 'विशाल भारत' के सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी को उन्होंने बारम्बार याद किया। कलाभवन का प्रसंग, हंस के आत्मकथांक की आलोचना, भवानीदयाल सन्यासी लिखित गणेशशकर विद्यार्थी के सस्मरणों की चर्चा, पद्मसिंह शर्मा, रामजी लाल, श्यामसुन्दर दास सम्बन्धी सस्मरण-विवाद—वाजपेयीजी ने अनेक सदर्भों मे चतुर्वेदीजी को स्मरण किया। पाँच-छह लेख तो उन्होने शिवशेखर द्विवेदी के ही छापे। रामनाथलाल 'सुमन' आदि अन्य लेखकों से भी चतुर्वेदीजी पर लिखाकर बहुत-कुछ छापा। 'विशाल भारत' सम्पादक 'भारत' की शरारतों के नमूने इकट्ठे करते रहे।

छायावाद का समर्थक एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पत्र निकला—'जागरण'। पैसा लगाया विनोदशंकर व्यास ने, सम्पादन का भार लिया शिवपूजन सहाय ने। 'जागरण' मे प्रसाद की कविताएँ, कहानियाँ, 'तितली' उपन्यास, निराला के गीत और लेख, पंत की कविताएँ, उनका चित्र, शिवपूजन सहाय की टिप्पणियाँ छपीं। 'जागरण' ने विनोद-शंकर व्यास, वाचस्पति पाठक, बेढब बनारसी आदि उन लेखकों की रचनाएँ तो छापी ही, जो प्रसाद-मण्डल के सदस्य थे, इसके अलावा प्रेमचन्द, राहुल साकृत्यायन, बदरी-नाथ भट्ट, गुलाबराय, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि की रचनाएँ भी प्रकाशित की। सम्पादकीय नीति काफी उदार थी, फिर भी यह पत्र छायावाद के विरोधियों पर कभी-कभी तीव्र व्यंग्य कर बैठता था। एक लेख छपा—'चतुर्वेदीजी का विवाह', लेखक बेढब बराती। चतुर्वेदीजी खद्दर का घाँघरेदार जामा पहने ऊँट पर बैठे। ऊँट की नकेल पकड़े आगे-आगे पैतरा बदलते हुए चले 'विशाल भारत' में उनके सहयोगी व्रजमोहन वर्मा। चतुर्वेदीजी की गोद मे बैठे शान्तिप्रिय द्विवेदी। लखनऊ मे बरात की अगवानी रत्नाकर और दुलारेलाल भार्गव ने की। रामनरेश त्रिपाठी ने सोहर गाये। जनवासे मे निराला और पत ने गायन किया। इनके गायन के समय रामदास गौड़ पर सत्य-नारायण कविरत्न की आत्मा उतर आई। पद्माकर ने पद्मसिंह शर्मा से कहा कि और खुलकर खड़ीबोली की कविता का विरोध किया करें। विनोदशंकर व्यास ने विवाहो-पलक्ष मे वर को भग-घोटना भेट किया।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने इसका बदला लिया निराला से। 'विशाल भारत' मे साहित्य-सेवियो के आदर्श पर उन्होंने एक नोट लिखा। निराला के युवक मित्र का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा, "अभी कुछ दिन पहले एक मारवाड़ी कार्यकर्ता ने हमसे कहा—'हिन्दी के अमुक कवि को हम बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे, पर एक दिन

उन्होंने हमें अपनी चरित्रहीनता की वात सुनाई, और जब हमने पूछा कि ऐसा आपने क्यों किया तो वह वोले, 'कवियों के लिये सब प्रकार के अनुभव की आवश्यकता है, नही तो उनकी कविता सर्वांगपूर्ण नहीं बन सकती ।' उनका यह तर्क हमारी समझ मे नही आता और सच पूछो तो उस दिन से हमारे हृदय मे उनके प्रति जो श्रद्धा थी, वह जाती रही ।' "

निराला इस समय वेकारी की दशा मे थे । सरोज बीमार हो गई थी । इधर यह चरित्र को लेकर नया प्रसंग छिड़ गया । निराला ने 'जागरण' में 'चरित्र' पर लेख लिखा, बनारसीदास को जवाब दिया । चरित्र, नेता आदि शब्दो का अर्थ समझाने के बाद शालीनता के नाम पर नंगपन छिपाने की आलोचना की । चतुर्वेदीजी के संकेत को स्पष्ट करते हुए लिखा, "इस तरह की एक दुर्घटना मेरे साथ भी हुई थी···मित्रवर, जिसने अपने चरित्र की एक इतनी बड़ी वात अम्लान कह दी, मित्र समझकर बराबर आसन देने के लिए, उसे आप कितना बड़ा समझते है·· एक वात अपनी चरित्रहीनता की सरेबाजार कह आइये और नेता बने रहिये । मेरा कवि सदा निरपराध है । मै क्या कहूँ, वह क्या क्या करता है ।" भारतीय संस्कृति के कर्णधारों का जी दुखाने के लिए निराला ने प्रसंगवश यह भी लिख दिया, "एक दफा लखनऊ मे एक मुसलमान सज्जन के साथ मैं पुलाव, कबाब और रोगन जोश आदि खा रहा था।"

जितना लिखित विरोध था, उससे ज्यादा मौखिक था । गढ़ाकोला से लखनऊ और लखनऊ से कलकत्ते तक छायावाद, नये साहित्य की चर्चा मे निराला का नाम वारवार आता था । यही है वह जो चमारों, धोवियो, मुसलमानो के साथ खाता है, पीता भी है, जनेऊ उतारकर फेंक दिया है, और राम जाने क्या-क्या करता है, छुट्टा घूमता है, तमाम नौजवानों को विगाड रहा है । निराला यह कानाफूसी सुनते-सुनते ऊबने लगे थे । सडक पर चलते हुए उन्हे लगता था, लोग उन पर हँस रहे है, आपस मे उन्ही के वारे में वाते कर रहे हैं ।

सरोज रायबरेली के अस्पताल मे भर्ती करा दी गई थी । निराला वेकार थे । हेमचन्द्र जोशी ने 'माधुरी' मे निराला पर व्यंग्य करते हुए लिखा, "असल वात यह है कि इस धींगाधींगी तथा 'तुम हो कविकुल चूड़ामणि पर मैं हूँ कविकुल केसरिकन्त'··· के समय मे मुँह खोलते डर लगता है ।" जोशीजी के अनुसार हिन्दी के छायावादी मंडूक कुएँ को सागर से बड़ा मानकर टर्रा रहे थे ।

निराला ने हेमचन्द्र का मजाक किया । हेम क्या है ? हेमा या गौरवर्ण गंगा यानी बड़े भाई साहिबा हेमचन्द्र । इला क्या है ? श्यामा यमुना यानी छोटे भाई साहिबा इलाचन्द्र । वीच में क्या है ? ज्ञान-राशि सरस्वती, जो न थी, और अब होगी जैसी, ऐसी फिर न होगी । जैसे दिल्ली का भाड़ झोंकना, ज्ञान नही, ज्ञान है ।

ये छायावादियों को ज्ञान समझाने आये हैं, उन्हें कूपमंडूक कहते है । निराला के लिए सत् और असत्, देवता और दैत्य दोनो आवश्यक हैं । अब हे कपि, कहो असुर वड़ा है या सुर ? माता कहती है, मेरे दोनो लड़के हैं, दोनों वरावर, दोनों वर्र वर्र, टर्र टर्र । कहो मेढक, कौन मेढक है, हम या तुम ?

निराला को नींद नहीं आती थी। आधी रात को टहलते रहते। सर घुटा रखा था। हेमचन्द्र जोशी को ज्ञान का रहस्य समझाते हुए उन्होंने लेख लिखा—'वर्तमान धर्म'। लेख 'भारत' में छपा। बनारसीदास ने उसे सँभाल कर रख लिया।

शिवपूजन सहाय 'हंस' के लिए निराला का फोटो माँग रहे थे। निराला ने लिखा, "मेरी लड़की सख्त बीमार है। चार महीने से रायबरेली अस्पताल में पड़ी है। बड़ी संकटमय अवस्था है। स्वस्थ समय का फोटो मैंने लिया नहीं। अब तो कृश हो रहा हूँ। बाल भी कटवा दिये। कविचित्र ८-१० महीने बाद मिल सकेगा। अभी मैं निकलवाना भी नहीं चाहता। कुछ लिख लूँ। तब शोभा भी देगा।"[४]

रामलाल गर्ग तथा निराला के कुछ अन्य मित्रों ने कलकत्ते से एक साप्ताहिक पत्र निकालने की योजना बनाई। उनका विचार था, निराला के संपादन में 'मतवाला' की तरह उनका पत्र 'रंगीला' भी लोकप्रिय हो जायगा। निराला से पूछे बिना उसका डिक्लेरेशन दे दिया, संपादक रूप में उनका नाम विज्ञापित किया। इस समय निराला से हास्य-व्यंग्य लिखने के लिए कहना उन पर सरासर अत्याचार करना था। 'मतवाला' में लिखनेवाले जहाँ अनेक लेखक थे, वहाँ 'रंगीला' के संपादक-लेखक-प्रूफरीडर अकेले निराला थे। भिन्न-भिन्न नामों से एक ही लेखक की सामग्री पत्र में दी गई।

बैंगनी कागज पर राधाकृष्ण का चित्र छपा। बाँसुरी बजाते कृष्ण को देखकर 'मतवाला' के नटराज का भ्रम हो जाता था। निराला ने अपने वेदान्ती मन को स्थिर करके मोटो लिखा :

पुरुष प्रकृति तम-ज्योति दिवस-निशि कल्प-तल्प पर
एक 'रँगीला'-रूप, खिला सब विश्व चराचर।

पहला अंक ४ जून, १९३२ को प्रकाशित हुआ। कीमत एक आना। मुखपृष्ठ पर प्रसाद का गीत—बीती विभावरी जाग री।

निराला ने पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएँ भेजनेवालों से कहा कि जोंक का ज़रूर खयाल रहे जो बेमालूम बैठती और बहुत ज्यादा चूसती है; नाग और बिच्छू लेख नहीं छपेंगे जिनमें जान को खतरा है।

'जागरण' में चतुर्वेदीजी का विवाह निकला था। निराला ने 'रंगीला' में 'कृष्ण जी का विवाह' लिखा। जब से वर्तमान हिन्दी साहित्य का निर्माण हुआ तब से कृष्ण जी रँडुवे हो गये। व्रजभाषा ने रत्नाकर को गोद लिया, फिर सती हो गई। कृष्णजी कलकत्ते में प्रकट हुए; उन्होंने मदनानन्द मोदक खाया और नागरियाँ त्राहिमाम् करने लगीं। व्रजभाषा का अवतार ईरान में हुआ। उसकी खबर लेने रवीन्द्रनाथ पहुँचे। जब वह विश्वप्रेम का पाठ पढ़ाने जा रहे थे तब असमत जान ने मुँह फेर लिया। कृष्णजी की बरात चली। उमर खय्याम की कब्र की बगल में डेरा डाला। विवाह संपन्न हुआ। बरात भारत लौट आई। बरात में दुलारेलाल भार्गव से लेकर बनारसीदास चतुर्वेदी तक सभी गुटों के लेखक गये थे। अंग्रेजियत के समर्थक हिन्दी साहित्यकार, व्रजभाषा दलवाले, हिन्दुस्तानी के समर्थक, हिन्दुस्तानी एकेडमीवाले, उर्दू द्वारा राष्ट्रभाषा की समस्या हल करने वाले ईरानी परंपरा के भक्त, विश्वप्रेम के प्रचारक

रवीन्द्रनाथ—इन सभी पर निराला ने गूढ़ व्यंग्य किया।

निराला ने दो गीत प्रकाशित किये—'रे अपलक मन' और 'मेघ के घन केश'। पढ़कर विश्वास न हो, जिसने कृष्णजी का विवाह लिखा है, उसी ने ये गीत लिखे होंगे।

'मजलिस' स्तम्भ में बहुतों पर फब्तियाँ कसी। 'दहाड़' स्तम्भ पर सिंह का चित्र छापा, औरों के साथ रवीन्द्रनाथ को याद किया, उन पर पेपर की उड़ाने का अभियोग लगाया 'जैसे प्रलाप के समय' सभी समझदार उनके शब्दो के जाल मे फँस गये हो। निराला ने अपनी कहानी 'श्यामा' भी प्रकाशित की।

साधारण पाठकों ने कहा—हमारे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। निराला ने मित्रों से कहा—हाँ, पहला अङ्क बाजार की निगाह से ऊँचा गया है।

अगले अङ्कों में 'रँगीला' को अधिक सुबोध बनाने का प्रयास किया। लेख लिखा—'हुमा को कब चुगद पहचानता है।' काव्य की स्थिति के बारे में कहा, "काव्य क्या है, कल्पना की दुम है। अपने-अपने मित्रों को देखकर पं० बनारसीदास जी जैसे सत् समालोचक खूब लटके, खूब बढाई, पर वह निगाह मे गधे की सीग ही रही।" 'परिचय' नाम की एक कहानी प्रकाशित की, लेखक का नाम दिया के० पी० श्रीवास्तव। नायक खेलकूद में फर्स्ट रहता है, क्रमशः उन्नति करता हुआ मदन थियेटर मे सफल अभिनेता बन जाता है। स्त्री-पुरुष दोनों का पार्ट करता है। उसके नाज़-नखरे देखकर लोग उस पर फिदा हो जाते हैं। बाल घुँघराले, बदन एकहरा, अँधेरे मे खड़ा हो जाय तो दीपक की जरूरत न हो। रेशमी कोरवाली धोती, रेशमी कुरता और पंपशू पहनकर जिस गली-कूचे से निकलता था, उसी मे आफत कर देता था। उसका नाम है दिवाकर, सूर्यकान्त का पर्याय।

निराला ने बड़ी मेहनत से तीन अङ्क निकाले, उसके बाद थककर बीमार हो गये। शिवपूजन सहाय को लिखा, "अकेला बड़ी परेशानी में हूँ। पहला अंक बाजार की समझ से ऊँचा कहा गया। दूसरा ठीक। पूरे कुल कालम भिन्न-भिन्न दूसरे [नामों] से मैंने ही भरे। पहला तो स्पष्ट ही है। तीसरे में अस्वस्थ होकर गिरा दिया। चौथा सँभालने का विचार है। क्या आपका वह खून बिलकुल पानी हो गया? हाथ बटाइये। चल गया तो ठीक है। नहीं तो 'मस्तराम के सोटे से'। कलकत्ता अब वह नहीं, बहुत गिरा है, समय भी वैसा है। आलोचना कर दीजिएगा। व्यक्तिगत राय भी भेजिए। शिकस्त हो गया हूँ। बहुत होता है एक आदमी के लिये।"[५]

बारह साल से अनवरत संघर्ष। चाहे जितना परिश्रम करो, पारिश्रमिक इतना नहीं कि भले आदमी की तरह कोई जिन्दगी बसर कर सके। गिरा हुआ स्वास्थ्य, घरेलू चिन्ताएं। इतनी मुसीबतें न पडनी चाहिये थी। बहुत होता है एक आदमी के लिये।

उसी दिन इसी आशय का पत्र प्रसादजी को लिखा। "बीमार रहकर लिखा है"—इसलिए तीसरे अंक को देखकर सम्मति न दें, यह प्रार्थना की। वह मित्रों से नाराज थे कि उन्होने 'रँगीला' के झंझट मे फँसा दिया। हाथ बँटानेवाला कोई नही। "अकेला हूँ, सब विषय हर हफ्ते अकेला कहाँ तक पूरे करूँ? छापे की गलतियाँ

भी होती हैं, प्रेस अपना नहीं, प्रेस की अपनी मशीन नहीं···अपनी इच्छा की मैंने प्रतिकूलता की, मित्रों के अनुकूल होने के लिये।"[६]

निराला कलकत्ते से लौट आये। 'सुधा' के संपादकीय विभाग मे उन्होने फिर काम शुरु किया। उनके चरित्र को लेकर कानाफूसी-मुहीम चालू थी। उन्होंने 'सुधा' में चरित्र पर एक टिप्पणी लिखी, सोचा कि चरित्र के प्रश्न को ऊँचे दार्शनिक स्तर पर ले जाकर अपने विवेचन से विरोधियो को अवाक् कर दे। केवल उत्थान नही हो सकता, उसके साथ पतन लगा हुआ है। सूक्ष्म रुप से विचार किया जाय तो संसार देखना ही चरित्रहीनता है, चरित्रहीनता के विना मनुष्य को संसार का वोध ही नही होता।

निराला अपने मन को वहलाते। लोग दुश्चरित्र कहते है, पर वेलूड़ मठ के संन्यासियो से ज्यादा चरित्रवान तो ये लोग हैं नही। वे संन्यासी निराला को क्या समझते थे? स्वामी सारदानद संसार-प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उनमें साक्षात् महावीर की विभूति थी। उन्होने निराला को अपना ज्ञान दिया, उन्हे अपना यंत्र वनाया। वह निराला की आँखें मूंद लेते थे। अन्धकार मे अपनी सरस्वती के दर्शन कराते थे। उनकी सरस्वती निराला मे परिणत होकर कहती थी: वही तुम्हारी विद्या है, इस चिड़िया को पढ़ो। चिड़िया चूँ-चूँ करती हुई उड़ जाती थी। निराला को छोड़कर उसका अर्थ कौन समझता था?

इस अर्थ को कोई नही देखता, लोग बाह्य अर्थ को देखते है, धन के पीछे दौडते है। निराला वैराग्य के भावो से अर्थ-कष्ट भूलने का प्रयास करते, स्वामी सारदानन्द से अपने संपर्क की कहानी लिखते, पर संसार इतनी आसानी से पिंड छोड़नेवाला न था। हिन्दी भारतीय भाषाओ की वड़ी वहन है, पर उसका साहित्य दरिद्र है, क्योकि उसके सेवक अपनी गरीवी में मुरझाए हुए हैं। हिन्दी वोलनेवालों मे जितने वड़े-वडे राजे-महाराजे, ताल्लुकदार सेठ और धनी जन विद्यमान है, उतने और किसी भाषा के वोलनेवालो मे नही हैं, पर वे हिन्दी को अपना सहयोग देने को तैयार नही है। निराला को दूसरा उपन्यास लिखना चाहिये। 'सरस्वती' में सूर्यनारायण दीक्षित ने 'अप्सरा' की अच्छी प्रशंसात्मक समीक्षा की थी।

'सरस्वती' मे चन्द्रवली पांडे ने फिर उनका विरोध किया, इस वार कविता का नहीं, कहानी-कला का। निराला ने 'भारत' मे उसका प्रतिवाद प्रकाशित कराया। चंद्रवली पाडे ने उस पर फिर लेख लिखा और निराला को कहानी-कला से नितान्त अनभिज्ञ सिद्ध किया। पर यह सव घमासान लडाई मे तोपो की गड़गडाहट से पहले वंदूको की छिटपुट गोलियो की-सी आवाज़ थी।

वनारसीदास चतुर्वेदी का प्रतीक्षाकाल समाप्त हो गया। उन्होने निश्चय किया, अव अवसर आ गया है, 'भारत'-सपादक नंददुलारे वाजपेयी और निराला से एक साथ निपटना चाहिए। उन्होने अक्तूवर, १९३२ के 'विशाल भारत' में लेख लिखा "साहित्यिक सन्निपात"। दिन-भर दफ्तर मे काम करते-करते थक गये थे। तभी उनकी निगाह पत्र मे एक लेख पर गई। पढ़ा, समझ मे न आया। अपने सहसपादक

को पढकर सुनाया। वह भी न समझे। फिर कई प्रतिष्ठित लेखकों को पढ़कर सुनाया। कोई भी अर्थ न लगा सका। तव उन्होंने तै किया कि उसे 'विशाल भारत' में छापें, लोगों से उसका अर्थ लगाने को कहें और जो अर्थ लगा दे, उसे पच्चीस रुपये का पुरस्कार दिया जाय। उन्होंने पत्र और लेखक का नाम दिये विना 'वर्तमान धर्म' 'विशाल भारत' के उस अंक में छाप दिया। लेख की प्रतियाँ सम्मति के लिए अनेक लेखकों के पास भेजी, महावीरप्रसाद द्विवेदी और निराला के पास भी एक-एक प्रति भेजी।

लोगों ने सम्मतियाँ भेजी। चतुर्वेदीजी के अनुसार उनका सारांश यह था कि 'वर्तमान वर्म' 'विक्षिप्त का वर्णना', 'पागल का प्रलाप' या effusions of a diseased mind (विकृत मस्तिष्क का उद्‌गार) है। शिकार खेलने में मनुष्य की कोई आदिम हिंसक वृत्ति तुष्ट होती है। यह आदमी का शिकार था। लोगों ने खूब मजे ले-लेकर ढेले फेके, सब का लक्ष्य एक ही था—जिसने ऐसा लेख लिखा है, उसे पागल करार देकर साहित्य के मैदान से वाहर कर दो। रामदास गौड ने राय दी—" 'वर्तमान धर्म' नामक प्रलाप साहित्य-हत्या का उदाहरण है।" मोहनलाल महतो वियोगी ने लिखा—"किसी विकृत मस्तिष्क का परिणाम है।" नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के मंत्री, साहित्यरत्न भंडार के स्वामी महेन्द्र ने, यह याद करके कि आगरे में पागलों का इलाज होता है, सम्मति दी—"मेरी समझ मे नही आता कि इस लेख के लेखक सोठ की मंडी जाना चाहते हैं या वहाँ से भाग निकले है, नही तो ऐसा लेख, और कौन लिख सकता है?" उदीयमान कवि वालकृष्ण राव ने कहा—"लेख विकृत मस्तिष्क की उपज है।" सूर्यनाथ तकरू, चंद्रदत्त गुप्त (साहित्यरत्न भंडार, आगरा), नरोत्तमदास (चिकित्सक, हैदरावाद) आदि की सम्मतियाँ भी चतुर्वेदीजी ने छापी। यद्यपि ये लोग साहित्य-सेवा के लिए विशेप विख्यात न थे, फिर भी उनकी राय देने से सम्मतियो की संख्या प्रभावशाली हो गई।

वनारसीदास चतुर्वेदी ने समाचारपत्रों और मासिक पत्रो के संपादको से अपील की कि "वे इस वीमारी (साहित्यिक सन्निपात) से जनता को सावधान कर दे। आखिर प्लेग और हैजा फैलने पर वे ऐसा करते ही हैं। यदि कोई आदमी कुओं में हानिकारक पदार्थ डालता फिरे और इस वात की खवर पत्र-संपादकों को लग जावे, तो उनका कर्त्तव्य होगा कि वे जनता को सूचना दें और सरकार का भी ध्यान इस वेजा हरकत की ओर आकर्पित करें।" उन्होने इस प्रश्न को साहित्य-सम्मेलन के सामने पेश करने की धमकी दी।

विश्वंभरनाथ जिज्जा ने लिखा कि "पच्चीस रुपये का पुरस्कार कम है; अर्थ करने वाले को वह पाँच सौ रुपये का इनाम देगे।" मुक्तछंद की पैरोडी करनेवाले जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा, "जिसे कलम पकड़ने का शऊर नही, वह भी साहित्य-शिरोमणि और कवि-सम्राट् वन वैठा है। इसका कारण आप संपादकों की अकर्मण्यता तथा सहनशीलता है।" और भी तीव्र आक्रमण करने के लिए वनारसीदास चतुर्वेदी को उकसाते हुए जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा, "इन सबके दिमाग में खलल है। इनका

इलाज जल्द होना चाहिए, नही तो रोग असाध्य हो जायेगा। फस्द खोलना ही वस इनका इलाज है। आज्ञा हो तो औज़ार ठीक करूँ।"

'विशाल भारत' के अलावा कलकत्ते के दैनिक 'लोकमान्य' में छायावादियों को ललकारते हुए वनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा, "अव वक्त आ गया है कि इस वीमारी का निदान और इलाज किया जाय। यार लोगो ने हिन्दी-साहित्य को विधवा खाला का घर समझ लिया है, जहाँ कोई धनी-धोरी ही नही। जो जिसके मन मे आता है, ऊटपटाँग लिख मारता है। पब्लिक के समय और पैसे का मानो कोई मूल्य ही नही।"

लोगो ने 'वर्तमान धर्म' की नकल उतारी। 'विशाल भारत' मे 'भावी धर्म', 'ऊटपटाँग धर्म' के रूप मे 'वर्तमान धर्म' की पैरोडी छपी। चतुर्वेदीजी का विचार था कि जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' मे भी "कही-कही सन्निपात की लटक स्पष्टतया दीख पडती है।" उनकी राय मे वर्तमान धर्म' की पैरोडी और प्रसाद के गद्य का स्तर एक ही था। "जव 'कंकाल' जैसा नावेल एम० ए० के कोर्स में मुकर्रर हो सकता है, तो 'ऊटपटाँग धर्म' ने ही किसी का क्या विगाडा है?" पर 'आकाशदीप' या 'कंकाल' मे तो सन्निपात की लटक कही-कही थी, निराला के 'वर्तमान धर्म' की हर पंक्ति सन्निपात का नमूना थी। एक वार निराला को धराशायी कर दिया जाय, फिर प्रसाद जैसो से निपटना मुश्किल न होगा।

नंददुलारे वाजपेयी ने 'भारत' मे लिखा कि वनारसीदास चतुर्वेदी ने 'वर्तमान धर्म' छपने के आठ-दस महीने वाद यह आन्दोलन खड़ा किया। अर्थ जानने के लिए तीन पैसे का कार्ड न डालकर पच्चीस रुपये के पुरस्कार की घोषणा कर दी। 'वर्तमान धर्म' छापने के लिए वह जिम्मेदार थे; सवसे पहले उनसे लिखकर पूछना चाहिए था। 'माधुरी' में हेमचन्द्र जोशी ने हिन्दी साहित्य पर घृणित आक्षेप किये थे। निराला ने उन्ही का उत्तर दिया था। वनारसीदास चतुर्वेदी ने नंददुलारे वाजपेयी की टिप्पणी 'भारत' से 'विशाल भारत' मे उद्धृत कर दी।

४ अक्तूवर '३२ को निराला ने वनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा, "आपका प्रूफ मिला। आपने अपने मनोभाव वहुत अच्छी तरह, आकर्षक ढंग से प्रकट किये है। देखूँ, कैसी-कैसी सम्मतियाँ हिन्दी के हितैषी विद्वानो से आपको मिलती है। फिर न हो कही कुछ लिखूँगा। आप तो विना समझे कुछ छापेगे नही। निवन्ध यदि नही समझ में आया, तो राय तो अवश्य ही समझ मे आ जायगी। इस तरह की चहल-पहल से मुझे भी काफी दिलचस्पी रहती है। समझने और सीखने लायक वहुत-सा मसाला मिलता है। आपने अपने आक्रमण का प्रूफ भेजा, यदि चाहते तो प्रवन्ध की टीका करने का निमंत्रण भी दे सकते थे; तव इतना आकर्षक कुछ जरूर न रहता, पर गुत्थी सुलझ जाती। मुमकिन है, अन्त तक आप ही वदनाम हों। सच वतलाइयेगा, विना कोष देखे, पूछे, सन्निपात की व्युत्पत्ति जानते है आप? यह पत्र भी छापिये।"

चतुर्वेदीजी ने ७ अक्तूवर को उत्तर दिया, "कृपापत्र मिला। आप प्रवन्ध की टीका लिख भेजिए। छाप दूँगा।" पर उन्होने निराला का पत्र 'विशाल भारत' मे न छापा। निराला ने १७ अक्तूवर को उन्हे फिर लिखा, "मैं आक्षेप हो चुकने के वाद,

आपके पास साहित्यिकों की सम्मतियाँ आ चुकने के बाद अक्षर-अक्षर टीका लिखूँगा। देखना है सन्निपातग्रस्त कौन है। न भेजा हो तो महात्माजी और रवीन्द्रनाथ के पास भी एक प्रूफ और अनुवाद भेज कर सम्मति अवश्य-अवश्य लीजिये।"

चतुर्वेदीजी ने अक्तूबर, नवंबर, दिसंबर, 'विशाल भारत' के किसी अंक में न तो निराला का कोई पत्र उद्धृत किया, न इस बात का कहीं उल्लेख ही किया कि निराला ने उन्हें पत्र लिखे हैं। रायकृष्णदास, शान्तिप्रिय द्विवेदी, मुन्शी अजमेरी आदि अनेक साहित्यकार वर्तमान धर्म संबन्धी विवाद बंद करा देने के पक्ष में थे। मुन्शी अजमेरी लखनऊ में निराला के बारे में जो कुछ सुनकर आये थे, उससे बहुत चिन्तित हो उठे थे। उन्होंने एक लम्बा पत्र निराला के समर्थन में चतुर्वेदीजी को लिखा। बनारस से २६ नवंबर '३२ के पत्र में उन्होंने चतुर्वेदीजी को सूचित किया, "मुझे श्री दुलारेलालजी से मालूम हुआ कि निरालाजी आजकल बहुत दुखी हैं। हाथ बहुत तंग है और उनकी एकमात्र कन्या बहुत बीमार है। इत्यादि। यही बातें यहाँ शान्तिप्रियजी ने सुनाईं। ऐसे दुखी मनुष्य पर इस समय चारों ओर से साहित्यिक वार भी हो रहे हैं। तब उसका मस्तिक कैसे ठीक रह सकता है? इस समय वे बहुत घबरा गए हैं और इसी-लिए बौखला भी गए हैं। ऐसे समय में उन्हें सहानुभूति की आवश्यकता है। नहीं तो ऐसा आदमी कि जिसके—जोड़ू न जाँता, खुदा से नाता—है, ऐसे संकट के समय में मताया जाकर पर-घात और आत्म-घात जैसे कुकर्म भी कर सकता है—आरत काह न करहि कुकरमू। और, रहत न आरत के चित चेत। उनकी दशा देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया और शान्तिप्रियजी ने तथा श्रीमान् रायसाहब ने भी मुझसे कहा, इसलिए मैंने वह बड़ा पत्र आपको लिखा है जो इस पत्र के साथ है। अब कृपा करके इस झगड़े को समाप्त कर दीजिये। मेरी यह प्रार्थना है और श्रीमान् रायसाहब की भी यही राय है। मेरा वह पत्र अगले ही अंक में—विशाल भारत में—छाप देने की कृपा कीजिए। ऊपर लिख दीजिए—मुन्शी अजमेरी का पत्र।"

चतुर्वेदीजी ने 'विशाल भारत' में मुन्शी अजमेरी का पत्र तो न छापा किन्तु दिसंबर के अंक में बड़ी उदारता से लिखा, "हमारी समझ में अब 'वर्तमान धर्म' और श्री निरालाजी का पिंड छोड़ देना चाहिए। जब निरालाजी उत्तर नहीं दे रहे हैं, तो सब लोगों का उन पर टूट पड़ना अन्याय है, अत्याचार है।"

उन्होंने विस्तार से कैफियत दी कि "असह्य उत्तेजना मिलने पर ही हमने उत्तर देने का विचार किया था।" नंददुलारे वाजपेयी ने दस-बारह बार मौके-बेमौके उन पर आक्षेप किये थे जिससे उन्हें "काफी मानसिक पीडा" हुई थी। निराला ने भी 'माधुरी', 'भारत' आदि में उनके विरुद्ध लिखा था। 'वर्तमान धर्म' उन्होंने दस महीने पहले कम्पोज़ कराके डिस्ट्रीब्यूट करा दिया था। पद्मसिंह शर्मा ने इस सहनशीलता के लिए उन्हें डाँटा था। उन्होंने बदला लेने की नीयत से यह आन्दोलन नहीं छेड़ा। "पर हम मनुष्यता को संपादन-कार्य से उच्चतर वस्तु समझते हैं। जब निरालाजी पर चारों ओर से आक्रमण होने लगे हैं, और वे चुपचाप सहन कर रहे हैं, हमारा कर्तव्य है कि अब उनके विषय में एक शब्द भी न लिखें।"

निराला पर चारों ओर से आक्रमण जरूर हो रहे थे, पर इन आक्रमणों के संचालक और संगठनकर्ता बनारसीदास चतुर्वेदी ही थे। बहुत-से पाठको की सहानुभूति निराला के प्रति थी, इसलिए मनुष्यता को संपादन-कार्य से उच्चतर दिखाना आवश्यक हो गया था।

निराला लखनऊ मे थे। सोते-जागते उनके मन मे एक ही विषय घुमड़ता था—'वर्तमान धर्म' को लेकर मस्तिष्क-विकार का आक्षेप। कौन-कौन-सी युक्तियाँ देंगे, किन तर्कों से सम्मतिदाताओ का व्यूह भेद करेंगे, कहाँ-कहाँ से प्रमाण जुटायेंगे, अपने जवाबी हमले के दाँवपेंच सोचने मे उनका सारा समय खर्च होता। लखनऊ मे अपने परिचितों और मित्रो को वह पौराणिक गाथाओं का रहस्य समझाते, चूहे पर चढने वाले गणेश के रूपक मे ब्रह्म का दर्शन कराते। विशेष रूप से लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृतज्ञ तरुणो—उमाशंकर वाजपेयी, वासुदेवशरण अग्रवाल आदि को पौराणिक गाथाओ मे निहित अद्वैत तत्त्व का ज्ञान कराते। चतुर्वेदीजी ने 'विशाल भारत' मे उनका पत्र न छापा तो उन्होंने 'सुधा' के दिसबर अंक में अपना वक्तव्य प्रकाशित कराया।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने तीन पैसे का कार्ड न लिखकर पच्चीस रुपये का पुरस्कार घोषित कर दिया। उनका उद्देश्य अर्थ जानना नही, निराला की हँसी उड़ाना, उसके विरुद्ध आन्दोलन करना था। निराला के लिखने पर ४-५ महीने तक वह 'विशाल भारत' भेजते रहे, पर जब से 'रँगीला' का संपादन छोड़कर वह घर आये, उन्हे 'विशाल भारत' नही मिला। फलतः उनकी पुरस्कार-सूचना का पता न था। "पुनः 'भारत' मे 'वर्तमान धर्म' के प्रकाशित होने के कई महीने बाद भी कलकत्ते मे मैं चार-पाँच बार चतुर्वेदीजी से उनके आफिस तथा डेरे पर मिल चुका हूँ, पर उन्होंने मुझसे 'वर्तमान धर्म' का अर्थ कर देने के लिए नही कहा।" निराला चतुर्वेदीजी से मिले, इसके लिए गवाहो के रूप मे उन्होंने श्रीराम शर्मा, विष्णुदत्त शुक्ल और 'विशाल भारत' के सहायक संपादक के नाम लिये।

निराला ने शिकायत की, चतुर्वेदीजी ने न तो सन्निपात की व्युत्पत्ति बताई, न 'विशाल भारत' मे उनका पत्र छापा। जो लोग 'वर्तमान धर्म' का अर्थ जानने को उत्सुक थे, उन्हे निराला ने आश्वासन दिया, "साहित्यिक जन धैर्य धारण करें, उत्तर मैं उन्ही के पास छपने के लिए भेज रहा हूँ। मै अब तक इसी विचार से चुपचाप था कि आक्षेप हो चुकने पर उत्तर लिखूँगा।" सम्मतिदाताओ का मज़ाक उड़ाते हुए निराला ने लिखा, "वे और चतुर्वेदीजी बतायें कि गणेशजी हाथी के आकार के होकर चूहे पर कैसे चढ़ते थे; कृष्णजी का गेद क्या मलाई का लड्डू था जो कालियानाग ने पकड लिया? नाग गेद क्यों लेगा? क्या कृष्णजी गेंद खेलते समय सूजा भी साथ ले गये थे या सूजा कालियानाग के घर मे मिला था? क्या साँप भी बैल की तरह नाथा जाता है? या तो इनका मतलब समझाइये या प्रपितामहों की अक्ल के खिलाफ़ प्रोपेगेंडा शुरू कीजिए। तब मैं भी समझूँ आप दमदार आदमी हैं। मैंने इन्ही का मर्म समझाया है, जो आप लोगो के स्निग्ध मस्तिष्क मे नही प्रवेश कर सका। अब आप

भी समझाउंगे। आप क्या लेते-देते हैं?"

निराला के वक्तव्य के साथ दुलारेलाल भार्गव का सम्पादकीय नोट छपा। निराला ने अपना लेख हमारे पास छपने को भेजा था, हमने कहा, 'विशाल भारत' भेजें। उन्होंने स्वीकार कर लिया। उस विवाद पर जरूरत समझेंगे तो हम अपने विचार आगामी किसी संख्या में देंगे।

'सुधा' का संपादन निराला ही कर रहे थे पर सम्पादकीय नीति निर्धारित करने वाले थे दुलारेलाल भार्गव। 'वर्तमान धर्म' के उस विवाद में वह पड़ना न चाहते थे, विशेष रूप से इसलिए भी कि निराला के लेख को वह उतना ही समझे थे जितना बनारसीदास चतुर्वेदी। 'सुधा'-संपादक अपना दूसरा विवाह करना चाहते हैं, उसके लिए उन्होंने टाई बाँधकर बढ़िया फोटो खिंचवाया है, उसे आर्ट पेपर पर छापा है—इस तरह की चर्चा हिन्दी साहित्यकारों में जहाँ-तहाँ मनोविनोद का साधन बनी हुई थी। निराला के मित्र नन्ददुलारे ने दुलारेलाल के ब्याह को लेकर 'भारत' में विनोद किया। निराला ने उन्हें लिखा कि वह यह सब न किया करें। वाजपेयीजी ने कहा, विवाह अवश्य एक व्यक्तिगत बात है पर दुलारेलालजी का विवाह तो बहुत-कुछ public interest की वस्तु हो गई है। फिर भी अब मैं उनके सम्बन्ध में कुछ ऐसी बात नहीं छपने दूंगा जिससे उन्हें कष्ट हो।

दुलारेलाल भार्गव को इसकी खबर न थी कि निराला उनका पक्ष लेकर नन्द-दुलारे वाजपेयी से कुछ कह चुके हैं। बहरहाल इस आड़े समय 'सुधा' ने निराला का साथ न दिया। निराला अपना प्रत्युत्तर 'विशाल भारत' भेजते, यह भी सम्भव न था। जैसा कि उन्होंने अपने लेख के आरम्भ में कहा, "जिस 'विशाल भारत' ने मेरा एक छोटा-सा पत्र लिखने पर भी नहीं छापा, वह अपने प्रोपेगैंडा का उचित उत्तर क्यों छापेगा?"

निराला को लग रहा था, उनके साथ सरासर बेईमानी की जा रही है। वाद-विवाद से कतराने की बात न थी; सवाल यह था कि उनकी बात पाठक तक पहुँचे कैसे। वह जमकर उत्तर देना चाहते थे। इतने लोगों की सम्मतियाँ बटोरी गई थीं; लेख को विकृत मस्तिष्क की उपज कहा गया था। वह लेख कितना सार्थक है, वर्तमान धर्म के सम्बन्ध में उनकी मान्यताएँ कितनी सटीक हैं, यह सिद्ध करने के लिए परिश्रम से उन्होंने " 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म'?" लेख तैयार किया। उसमें वैदिक मन्त्रों की व्याख्या, पौराणिक रूपकों की आन्तरिक सार्थकता, शब्दों के गूढ़ अर्थों की मौलिक उद्भावना, सुनियोजित तर्कशृंखला, सब-कुछ ऐसे बौद्धिक स्तर पर था जो हिन्दी के लिए नया था। उनकी टीका सही है या नहीं, इसके निर्णय के लिए उन्होंने 'समन्वय'-सम्पादक स्वामी माधवानन्द, लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापक आद्यादत्त ठाकुर तथा लखनऊ के चार अन्य विद्वानों के नाम—रामदत्त शुक्ल, वासुदेव-शरण अग्रवाल, सत्याचरण वर्मा और उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'—प्रस्तावित किए।

निराला की लेखमाला 'माधुरी' में प्रकाशित हुई। बनारसीदास चतुर्वेदी और उनके सम्मतिदाता दल ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की। निराला यदि उन्हें अपने लेख

का अर्थ समझाना चाहते थे तो यह उनका विफल प्रयास था। 'विशाल भारत' के लिये यह सब वकवास थी, उसकी चर्चा करना समय का अपव्यय था। फिर भी निराला की गम्भीरता से उत्तर देने की नीति सही थी। जो लोग तटस्थ रहकर उनकी बात समझना चाहते थे, उन्हे सोचने-समझने के लिए बहुत सामग्री मिली। विचारधारा के संघर्ष मे बहुत कम लोगो ने इतने धैर्य से विरोधियों को अपनी बात समझाने का प्रयत्न किया होगा। जो लोग 'वर्तमान धर्म' की शैली से असहमत थे, उन्होने भी स्वीकार किया कि पौराणिक गाथाओ के बारे मे निराला के विचार अत्यन्त तर्कसंगत है। इन लोगो ने निराला से एक स्वाभाविक प्रश्न किया, आपने 'वर्तमान धर्म' इतने सीधे ढँग से क्यो न लिखा? निराला ने उत्तर दिया, उतने कम मे उतना अधिक इस तरह नही लिखा जा सकता था, मैं नही समझता था, हिन्दी की कुल रास लवाब है, मैं समझता था, हिन्दी मे समझ वाला युग आ गया है, पर अब मेरा भ्रम दूर हो गया।

अच्छा होता, निराला विरोधियो की बातो पर ध्यान न देते; 'जुही की कली' या ऐसा ही कुछ लिखकर हिन्दी काव्य-साहित्य को समृद्ध करते। पर उनके लिए यह सम्भव न था। मस्तिष्क-विकार से सम्वन्धित प्रचार उनकी रोज़ी पर हमला था। कौन रखेगा ऐसे आदमियो को अपने यहाँ जिनका दिमाग ठीक न हो? निराला हिन्दी पाठकों की अदालत मे हलफ उठाकर कह रहे थे, मुझे मस्तिष्क-विकार नही है, मै जरायमपेशा लेखक नही हूँ। " 'विशाल-भारत' मे हिन्दी के कुछ अच्छे लेखको ने भी मुझ पर मस्तिष्क-विकार का दोष लगाया है। विज्ञ पाठकगण देखे, इसमे कोई बात विशृंखल, मस्तिष्क-विकार की परिचायिका है भी, या वह पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा उनके विचक्षण सम्मतिदाताओ के ही अपार पाण्डित्य का प्रदर्शन करती है।"

निराला ने बहुत संयत होकर उत्तर लिखा, पर सन् '३२ की शरद मे जब से सन्निपात आन्दोलन शुरू हुआ था, तब से लगभग छह महीने तक उनके मन की जो दशा थी, उसे वही जानते थे। अगली बरसात मे उन्होने 'सुधा' मे नोट लिखा, बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रोपेगैंडा-वृत्ति का विश्लेषण किया। पहले उग्र के बारे मे लिखा, "चुभती सरल साहित्यिक भाषा 'उग्र' जी से अच्छी लिखने वाला हिन्दी मे दूसरा नही। जिस साहित्यिक मे इतने गुण है, हम चतुर्वेदीजी से पूछते हैं, आपने उसके खिलाफ़ ज्यादा लिखा या तारीफ मे?"

इसके बाद अपने प्रसंग मे लिखा: "आपने पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी 'निराला' के खिलाफ भी आन्दोलन किया। कभी रहस्यवाद का रास्ता नही देखा, उस पर चलने वाले के विरुद्ध अकड़कर खडे हो गए। उससे पूछा भी नही कि यह जो लिखा है, इसका मतलब क्या है। बस अपना प्रोपागैंडा शुरू कर दिया, और जो लोग रहस्यवाद का 'र' तक नही जानते, उनकी सम्मतियाँ छापने लगे, आबाल-वृद्ध-वनिता सबकी रायें छापने की घोषणा कर दी, और बात की बात मे एक भले-चगे मनुष्य को पागल बना डाला। जब उसने कैफियत तलब की, प्रमाण-प्रयोगों से उत्तर दिया, प्रश्न किये, विषय पर उतर कर विवेचन कर लेने के लिए बुलाया, तब आप बगले झाँकने लगे। यह सब इसलिए हुआ कि 'विशाल भारत' हिंदी का सर्वश्रेष्ठ पत्र है, और उसके सम्पादक हिन्दी

में सब सम्पादकों से अधिक उत्तरदायी। हम पूछते हैं, चतुर्वेदीजी ने श्रीयुत श्रीनारायसिंह जी के अपूर्ण लेख का तो छूटते ही जवाब लिख दिया, और जनता के मस्तिष्क से भ्रम का भी निराकरण कर दिया, पर 'निराला' जी के सम्बन्ध में उन्हें अभी तक कुछ लिखने की फुर्सत क्यों नहीं हुई, जब कि उत्तर पूरा पा चुके ? उन्होंने उनके उत्तर पर किसी पुरस्कार की भी तो घोषणा की थी।"

बनारसीदास चतुर्वेदी निराला को तो 'सुधा' से नहीं निकलवा पाये पर नन्ददुलारे वाजपेयी को, बालकृष्णराव के पिता सर सी० वाई० चिन्तामणि पर जोर डलवाकर 'भारत' से अवश्य निकलवा दिया। वाजपेयीजी बेकार हुए, नयी धारा के एक प्रबल समर्थक का मुँह बन्द कर दिया गया।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण विनोदशंकर व्यास ने 'जागरण' प्रेमचन्द को सौंप दिया। शिवपूजन सहाय भी बेकार हुए। प्रसाद, निराला, पंत की रचनाओं से मंडित हिंदी का यह अनुपम पाक्षिक अपने पूर्व साहित्यिक रूप में अस्त हो गया। अपने भाग्य पर हँसते हुए 'जागरण' के अन्तिम अंक में शिवपूजन सहाय ने लिखा, "हमारे खुरारविंद की ऐसी महिमा है कि जहाँ जाते हैं, चौपट कर डालते हैं। पहले-पहल 'मारवाड़ी-सुधार' का बंटाढार किया। फिर 'आदर्श' और 'उपन्यास-तरंग' का छत्रभंग किया। यदि 'बालक' और 'गंगा' को न छोड़ते, तो उन्हें भी ले बीतते। और, यदि 'जागरण' को प्रेमचन्दजी अपना पोसपुत्तर न बना लेते, तो शायद इसकी भी खैर न थी। पर अब किसी की मिट्टी खराब नहीं करेंगे। हमने बहुत से पापड़ बेले हैं, अब एकतारा लेकर केवल यही भजन गाया करेंगे—

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
रामकृपा भव-निसा सिरानी, 'जागे' फिर न डसैहौं।"

निराला ने दो सुहृदों की दशा देखी। मन संयत किया और अपना दूसरा उपन्यास लिखना आरम्भ किया।

७

गंगा पुस्तकमाला और 'सुधा'

निराला ने दूसरा उपन्यास लिखा—'अलका'। उनका एक पैर 'अप्सरा' के कल्पना-लोक मे था तो दूसरा गढ़ाकोला मे। उन्होने अपनी कथा-भूमि के लिए ऐसा गाँव चुना जिसमें शूद्रों की संख्या अधिक है, गरीब ब्राह्मण बकरियाँ चराते हैं, बकरियों के बच्चे कसाइयो के हाथ बेच देते हैं। अन्य ब्राह्मण खेती करते हैं। अलका और उसके पति विजय दोनो के परिवार महामारी में नष्ट हो चुके हैं। ससुराल से गाँव जाते विजय को खबर मिलती है कि उसके घरवाले नही रहे। पत्नी का देहान्त नही होता पर वह घर मे नही है, कही चली गई है। उपन्यास के आरम्भ में निराला ने गंगा मे बहती लाशो का भयानक चित्र खीचा।

विजय और उसका मित्र अजित किसानों का संगठन करते है। दोनों बी० ए० पास है, एन्ट्रेस मे फेल होता है खलनायक मुरलीधर। विजय का दूसरा नाम प्रभाकर है, दिवाकर की तरह सूर्यकान्त का पर्याय। वह स्पोर्ट्‌स चैम्पियन है, यूरोप-रिटर्न्‌ड जज-पुत्र तेजनारायण को टेनिस मे हरा देता है। खेलने से पहले यह जरूर कहता है, बहुत दिनो से अभ्यास छूटा हुआ है। विजय और अजित कुछ समय के लिए सन्यासी वेश भी धारण करते है। अजित इन्द्रजाल के करतब भी जानता है, गाँव की मनिहारिन उससे काफी प्रभावित होती है। अजित के पिता क्रोधी स्वभाव के है; क्रोध मे आकर पुत्र को घर से निकाल देते है। अजित प्रचलित धर्म, ईश्वर, सामाजिक रस्म-रिवाज को नहीं मानता। उसका विचार है—"ईश्वर की बातचीत खाते-पीते हुए सुखी मनुष्यो का प्रलाप है।" हवन मे घी जलाना व्यर्थ है, व्याहता स्त्री के लिए सेंदुर-चूड़ी आवश्यक नही है।

गाँववाले संगठित होते हैं, मार खाते हैं, टूटते है, अपने नेता विजय के ही खिलाफ गवाही देने खड़े हो जाते है। विजय जेल से छूटने पर गाँव न जाकर शहर मे कुलियो का संगठन करता है। उसकी पत्नी को डिप्टी-कमिश्नर स्नेहशंकर के यहाँ आश्रय मिला है। वह खाते-पीते ज़मीदार है; उन्होने किसानों की कमेटियाँ बनाकर उन्ही के हाथ मे सारे अधिकार सौप दिये है। वह साहित्यकार भी है। हिन्दी के अलावा

अग्रेजी में भी किताबें लिखते है। अलका उर्फ शोभा को वह अंग्रेजी-हिन्दी की पूरी शिक्षा देते है। उनकी कृपा से गाँव की वह अनाथ लड़की मोटर पर चढ़ी घूमती है, समाज के उच्चतम वर्गो के लोगो से उसकी मैत्री है। अलका और विजय फिर मिलते हैं। नाटक भी देखने जाते है; कथावस्तु का गठन, संपादको की रुचि उन्हें पसंद नही आती।

बुधुवा ने मार खाई। "प्रहार से पीठ फट गई, मुख से फेन वह चला, वही पृथ्वी की गोद में वह वेहोश हो लुढ़क गया।"

इसके साथ अनावृत मुख, शुभ्र कुन्दकलिका-सी निष्कलंक, तुपारहतवाष्पाकुल-कमलनेत्र, ज्योत्स्ना रात की स्निग्ध शुभ्रवसना, सरोज-दृग, पद्म-दृष्टि, पुलकित प्रवा-लोज्ज्वल आँखें, गुच्छों मे खुली अधखुली किरणो की कलियों-सी युवती।

वसन्त के दिन आये। नये बौरो की गन्ध से निराला की अमराई महक उठी। हर वर्ण, हर गन्ध मनोहरादेवी की स्मृति से मन झकझोरने लगी। उन्होंने भाव-विभोर होकर गीत लिखा—

रँग गई पग-पग धन्य धरा।
हुई जग जगमग मनोहरा।

निराला का मन उमगों से भरा था। वह साहित्य और समाज में कोई बड़ा काम करने की योजना वना रहे थे। समाज मे क्रान्ति होगी तो उसका वीजारोपण पहले साहित्य मे होगा। साहित्य का सवसे लोकप्रिय रूप नाटक है। हिन्दी में रंगमंच की दुर्दशा है। पारसी कंपनियों के नाटक निहायत घटिया है, प्रसाद के नाटक निकाल दिये जाये तो आँसू पोंछने को भी कुछ न रह जायगा। सुमित्रानन्दन पंत ने 'ज्योत्स्ना' नाटिका लिखी है। यह कल्पना के विराट पट पर अंकित एक भव्यतम रेखाचित्र है। परन्तु नाटको की चरम सिद्धि यही है कि वे अभिनीत हो। निराला ने निश्चय किया कि वह एक नाटिका लिखेगे, नाम होगा—ऊपा। कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह, मंत्री 'ऊपा'-समिति, भार्गव मैजेस्टिक होटल, हीवेट रोड, लखनऊ की ओर से 'सुधा' में विज्ञप्ति प्रकाशित कराई। विज्ञप्ति मे कहा गया :

निराला हिन्दी मे रंगमंच के अन्यतम विशेषज्ञ है। बीसियों बार वह कलकत्ते मे हिन्दी और वँगला के रगमंच पर उतरे है और प्रशंसनीय सफलता पाई है। इस नाटिका में उनके मुक्तछन्द की साधना फलवती होगी। वे स्वयं अपने अनुकूल ही किसी भूमिका में सामने आयेंगे। कविवर पंतजी ऊषा की भूमिका मे उतरेंगे, कविवर प्रसाद जी प्रारंभिक गायन का प्रणयन करेंगे। नाटिका पहले लखनऊ मे अभिनीत होगी। तारीख की सूचना वाद में दी जायगी। जनता और विद्यार्थियो को ध्यान मे रखकर नाटिका वनारस, इलाहावाद, कानपुर आदि नगरो मे भी खेली जायगी।

अभिनय मे भाग लेनेवालो के नाम भी प्रकाशित कर दिये गये। दुलारेलाल भार्गव, मातादीन शुक्ल, उमाशंकर वाजपेयी, वलभद्रप्रसाद दीक्षित, रामेश्वर शुक्ल अंचल, रामरतन भटनागर 'हसरत', भगीरथप्रसाद दीक्षित आदि सोलह नाम—निराला और पंत के अलावा।

इस योजना की एक विशेषता यह थी कि इसमें छायावाद के तीनों महाकवि सहयोग करनेवाले थे। प्रसाद प्रारंभिक गायन रचते, पंत अपनी भूमिका का निर्माण स्वेच्छानुसार करते। शेष नाटिका निराला लिखते। यह स्पष्ट नहीं था कि नाटिका मे कवित्त छन्दवाला मुक्तछंद रहेगा या उसके साथ पंत के 'उच्छ्वास' वाला मात्रिक वृत्त भी रहेगा।

प्रसाद से सहयोग की प्रार्थना करते हुए निराला ने उन्हे लिखा, "पंतजी के साथ मैंने निश्चय किया है, एक ड्रामा अच्छा-सा लिखकर खेला जाय...पंतजी ऊषा का पार्ट खेलेंगे, शायद मुझे अनिरुद्ध बनकर उतरना पड़े। आज एक ठाकुर साहब बी० एस-सी०, एल-एल० बी० बाण की भूमिका पूरी करनेवाले तगड़े मिल गये है। खेलनेवाले सभी साहित्यिक, चार-पाँच एम० ए० भी है। ऊषा का अंश मेरा लिखा होने पर भी पंतजी इच्छानुसार सुधार कर लेंगे, ऊषा के गीत उन्हीं से लिखवाऊँगा। कुछ पात्रों की भाषा मेरे ब्लैक वर्स में रहेगी जैसे अनिरुद्ध, बाण आदि की। मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। आप अभी, मई तक opening song दीजिये, फिर अपर सहायता लूंगा। ऐसा ही लिखवाकर आपके नाम के साथ मैंने विज्ञापन कर दिया है, अर्थात् हम तीनों की मदद से नाटक तैयार हो रहा है। गुप्तजी से भी एक song लूंगा।"[१]

होता यह एक दिलचस्प प्रयोग जिसमे तीनों प्रमुख छायावादी कवि अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाते। तीनों का सहयोग संभव है—यह सूझ निराला की थी। उनके निकटतम सहयोगी इस समय सुमित्रानन्दन पंत थे जो ऊषा की भूमिका मे उतरने को तैयार हुए थे। सारी योजना के सूत्रधार निराला थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से भी एक गीत लेकर वह ऊषा को हिंदी कवियो की प्रतिनिधि रचना बना देना चाहते थे। बाण का पार्ट खेलनेवाले ठाकुर साहब गोपालसिंह थे। शिक्षित युवकों के सहयोग से निराला हिन्दी रंगमच को प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहे थे।

दुर्भाग्य से योजना कार्य-रूप मे परिणत न की जा सकी। लेकिन निराला के मन मे वह बहुत दिनो तक बनी रही और कई बार उसे सफल बनाने का प्रयत्न उन्होंने किया।

निराला ने लखनऊ मे आसन जमा लिया था। हीवेट रोड पर भार्गव मैंजेस्टिक होटल का एक कमरा उनका निवास और लखनऊ के साहित्यकारो का अड्डा था। यहाँ अपनी सुन्दर वेशभूषा मे कवि सुमित्रानन्दन पंत, निराला के अस्तव्यस्त कमरे और उनके ध्वस्त वेश की चिन्ता न करके, उनसे सस्नेह काव्य-चर्चा करते। निराला की कमर में दर्द होता, वह पेट के बल लेट जाते। पंत से कहते, ज़रा कमर पर खडे होकर पैरो से चाप दो। पंत अपने कोमल चरणो से निराला की कठोर कमर चापते। फिर निराला हाथो के बल थोड़ा उठते। पैरो के पजो पर जोर देते। फिर उनकी कमर उठती और उस पर खड़े सुमित्रानन्दन पंत ऊपर उठते चले जाते। निराला डंड लगाते।

पंत कूदकर नीचे आ जाते। देखते, उनका बोझ उठाकर डंड लगाने से निराला

का चेहरा नीला पड़ गया है।

पंत राधा; निराला कृष्ण। निराला नाटिका लिखेंगे। पंत ऊषा; निराला अनिरुद्ध।

नाटिका-समिति के औपचारिक संयोजक कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह दुबले, छरहरे, भक्त, वैष्णव, छात्रजीवन बिता रहे थे। निराला को उनके नाम के साथ कुँअर शब्द बहुत अच्छा लगता था। कम-से-कम एक कुँअर उनका भी समर्थक था जैसे कालाकाँकर के कुँअर सुरेशसिंह पंत के समर्थक थे। वह उनके नाम का उच्चारण संस्कृत नियमानुसार 'चन्द्रप् प्रकाशसिंह' करते थे। कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह के पिता सीतापुर जिले मे धनी किसान की हैसियतवाले कुँअर थे। एक अन्य कुँअर थे, गोपालसिंह बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, बड़ी-बडी मूँछें, कुश्ती के शौकीन, निराला को ताजी ताड़ी पिलाकर बडे मगन होकर उनसे शिवाजी का पत्र सुनते थे। बलभद्रप्रसाद दीक्षित कसमंडा राज्य मे राजा के सेक्रेटरी थे। रियासती ठाट छोड़कर उन्होंने खद्दर का कुर्ता, धोती-टोपी धारण की थी। सुन्दर गद्य लिखते थे, लडकों के शिक्षण मे मौलिक प्रयोग करते थे, अवधी में 'पढीस' नाम से कुछ गम्भीर, कुछ व्यंग्यपूर्ण कविताएँ लिखी थी। निराला ने उनके संग्रह की भूमिका लिखी। गंगा फाइन आर्ट प्रेस में वह छपा। दीक्षितजी की मूँछे काफी बडी थी। जब उन्होंने सुना कि पंतजी ऊषा का पार्ट खेलने में आनाकानी कर रहे है, तब उन्होंने निराला को आश्वासन दिया कि वह स्वयं मूँछ मुडाकर ऊषा का पार्ट करेंगे। वह राजपरिवारों की अनेक घटनाएँ निराला को सुनाते; इनके आधार पर निराला ने एकाध कहानी भी लिखी।

भार्गव मैजेस्टिक होटल के सामने की कोठी मे निराला के मित्र हर्षवर्धन नैथाणी रहते थे। वह लेखक न थे पर निराला-साहित्य के परम प्रशंसक थे। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' युनिवर्सिटी मे पढ रहे थे। कविताएँ लिखने लगे थे। उनके पिता मातादीन शुक्ल निराला के अभिन्न मित्र थे ही। निराला और अंचल ऊपर से मित्र थे, पर भीतर से दोनो मे कही तनाव भी था। निराला ने 'सुधा' मे चंचलजी होनहार महाकवि का खाका खीचा, उन्हे एक कोरस, गधो के गीत का रचयिता दिखाया :

मा हम तेरे बाहन विशाल—
तेरे मृदंग के चार ताल।

सुमित्रानन्दन पंत के निकट सम्बन्धी गिरीशचन्द्र पंत, सुन्दर तेजस्वी युवक 'अनंग' नाम से कविता करते थे। रामरतन भटनागर 'हसरत' निराला के मित्रो मे सबसे छोटे आकार के, कुछ हिन्दी के कवि, कुछ उर्दू के, कुछ विज्ञान के छात्र, कुछ साहित्य के, निराला के परम स्नेहपात्र, कालिका भंडार के रसगुल्लों पर अपना विशेष अधिकार समझते थे। कवयित्री चकोरी के पति लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण', वर्तमान धर्म की सार्थकता मे विश्वास करनेवाले व्रजभाषा के कवि संस्कृतज्ञ उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' आदि अनेक युवकजन भार्गव मैजेस्टिक मे जमते, निराला के साथ हीवेट रोड, लाटूश रोड या शहर के बाहर गोमती के किनारे घूमते दिखाई देते।

निराला के अधिकाश नये मित्र युवक थे पर सभी युवकों का व्यवहार उन्हें

पसन्द न था। एक रात वह एलफिस्टन पिक्चर पैलेस में दुलारेलाल भार्गव के साथ 'मिस १६३३' देखने गये। सेकेंड शो था, फिर भी बड़ी भीड़ थी। महिलाएँ थीं, अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, फिर भी लड़के आवाज़ाकशी, खिड़कियों पर धक्का-मुक्की कर रहे थे। एक रुपये और दो रुपये के टिकटवालों के लिए हाल मे जाने का दरवाजा एक ही था। इस दरवाजे पर वेहद भीड़ थी। दुलारेलाल के साथ निराला दूसरे वन्द दरवाजे के पास पहुँचे और वोले—दूं एक लात जो दरवाज़ा फट जाय, फिर जो होगा, होगा। दुलारेलाल ने उन्हे रोका। दो रुपयेवाले टिकट वापस करके कन्सेशन मे तीन रुपयेवाले टिकट लिये और तव ज़ीने से ऊपर जाकर तमाशा देखा।

निराला युवको को वार-वार ललकार रहे थे कि वह सामाजिक रूढियों को तोडें, किसानो मे जाकर शिक्षा-प्रचार करें, डिगरियो के पीछे न पड़े। उन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा, "वीरो, छोटों को अपने वरावर कर लेने से वडा धर्म और कौन-सा है ? जो वडा है, वही दूसरो को विद्या देकर, धन देकर, सहानुभूति देकर अपने वरावर कर सकता है। जो स्वयं छोटा है, वह क्या करेगा ?···इसलिए तोड़कर फेंक दीजिए जनेऊ, जिसकी आज कोई उपयोगिता नहीं, जो वड़प्पन का भ्रम पैदा करता है, और समस्वर से कहिए कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं, जितनी आपका नीच-से-नीच पडोसी, चमार या भंगी रखता है।" इस तरह की क्रान्तिकारी वातें उस समय केवल 'सुधा' मे प्रकाशित होती थीं। निराला का मन रचनात्मक उत्साह से भरा था। उन्होने स्वामी सारदानन्द से अपनी मुलाकात का वृत्तान्त लिखा, उनके प्रभाव से जो सपने देखे, उनका चित्रमय वर्णन किया। ज्योतिर्मय समुद्र, श्यामा की वाँह पर मस्तक, वह लहरो मे हिल रहे हैं। रामायण के कुछ अंशो की टीका की, 'सुधा' मे व्यग्य-विनोद लिखा, कई कहानियाँ लिखी।

इस वर्प इलाहावाद मे महावीरप्रसाद द्विवेदी का भव्य अभिनन्दन हुआ। महामना मदनमोहन मालवीय और गंगानाथ झा ने द्विवेदीजी का सम्मान किया। द्विवेदी जी ने सम्मान के उत्तर मे भापण किया, भावुकतापूर्ण, विनोदपूर्ण। "आपने कहा होगा—वूढा है, कूलद्रुम है, आधिव्याधियो से व्यथित है, नि:सहाय है, सुत-दारा और वन्धु-वान्धवो से रहित होने के कारण निराश्रय है। लाओ, इसे अपना आश्रित वना ले।" गुरु का अभिनन्दन देखने निराला भी पहुँचे। किसी ने उनसे भापण देने को न कहा। यह उनका अपमान है, इसका उन्हें ध्यान न रहा। उनका कवि-हृदय वृद्ध आचार्य मे हिन्दी-सेवा को मूर्तिमान देख रहा था। वह उस दिन कैसे भव्य लगते थे ! कभी उनके मुख-मंडल पर वृहस्पति का पाण्डित्य प्रतिविंवित हो उठता था, कभी स्वयं सरस्वती की प्रतिभा। सहस्रो साहित्य-सेवियो के वीच वह भोले-भाले, दम्भहीन, विनयशील महापुरुप हीरे की तरह चमक रहे थे। हिन्दी भापा के सर्वश्रेष्ठ संपादक, समालोचक और लेखक हैं, आधुनिक हिन्दी के निर्माता है, विधाता है, राष्ट्रभापा हिन्दी के मूर्तिमान स्वरूप है।

निराला ने 'सुधा' मे द्विवेदीजी के अभिनन्दन पर एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण नोट लिखा।

उधर काशी में कुछ साहित्यकारों ने जवाहरलाल नेहरू का सम्मान किया। निराला पर इसकी प्रतिक्रिया बिलकुल उलटी हुई। काशी की रत्नाकर-रसिक मंडल नाम की संस्था ने नेहरू को मानपत्र दिया। उत्तर मे उन्होंने कहा, "हिन्दी में अभी तक दरवारी ढंग की कविता होती है; स्वराज्य होने पर सरकार का फर्ज होगा कि तीन-चार सौ अच्छी-अच्छी पुस्तकें दूसरी भापाओं से हिन्दी में अनुवादित कराये।"

उस सभा में रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, कृष्णदेवप्रसाद गौड आदि काशी के साहित्यकार मौजूद थे। जवाहरलाल नेहरू ने अपने साहित्य-सम्वन्धी अज्ञान पर खेद प्रकट करने के वदले हिन्दीवालों को उपदेश देना शुरू किया। निराला बारह साल से काव्य-साधना कर रहे थे, यह सुनने के लिए कि हिन्दी मे दरवारी कविता का वोलवाला है!

निराला ने 'सुधा' में, संयत भापा मे पर चोट करनेवाला, नोट लिखा। "प० जवाहरलालजी उस जगह रहते हैं, जहाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन है, जहाँ की केवल 'सरस्वती' हिन्दी-साहित्य का वहुत-कुछ युगान्तर इतिहास कह सकती है। पर पंडित जी को राष्ट्र के निर्माणोद्देश मे इतनी तल्लीनता रही कि राष्ट्रभाषा की कभी याद भी न हुई—उसकी शिक्षा राप्ट्र के लिए आवश्यक प्रतीत हुई ही नहीं। हमारे विचार से, राष्ट्र के लिए निकली हुई पंडितजी की जो प्रतिभा राष्ट्रभापा के सेवकों की समझ मे कम आई है, वही अगर राष्ट्रभापा के रूप से कुछ पुस्तकों में निर्गत हो, तो साहित्यिक अच्छी तरह समझ जाएँगे; पुन. पंडितजी को भी मालूम हो जायगा, जिन्हे वह कुछ देना चाहते हैं, उन्हीं से प्राप्त करने की गुंजायश है, और राष्ट्र के मैदान में वह अपने को उनसे कितने आगे समझते है, राष्ट्रभाषा के मैदान मे वे उनसे और दूर तक पहुँचे हुए हैं या नही।"

निराला ने हिन्दी-प्रेमियो को सावधान किया कि अपमान से वचना हो तो इस सत्य को याद रखो—जो दूसरो को वड़ा मानता है वह दूसरे से छोटा समझा जाता है।

जवाहरलाल नेहरू के वारे मे दो ही वर्प पहले निराला ने 'सुधा' मे लिखा था—"वह नम्र तथा स्फटिक की तरह स्वच्छ हैं, और उनकी सत्यवादिता संदेह के परे है। उनके हाथों से जाति के स्वार्थ की किसी प्रकार हानि नही हो सकती।" अव वह हिन्दी-प्रेमियों की ओर से, हिन्दी की सम्मान-रक्षा के विचार से उन्ही जवाहरलाल नेहरू को चुनौती दे रहे थे। नेहरू की तरफ निराला की निगाह केवल हिन्दी-साहित्य के प्रति उनके अज्ञान-प्रदर्शन के कारण न वदली थी। वह सारे कांग्रेसी नेतृत्व को संशय से देखने लगे थे। सन् '३३ भारतीय राजनीति और हिंदी-साहित्य मे व्यापक परिवर्तन का वर्प था। सन् '३० में स्वाधीनता-आंदोलन के दूसरे उभार के समय जो उत्साह, जो उमगें जनता के मन मे उठी थीं, वे चूर हो गई थीं। कांग्रेसी नेतृत्व स्वाधीनता की लडाई चलाने के वदले साम्राज्यवाद से सुलह-समझौते की वाते कर रहा था। कांग्रेस के अन्दर जमींदार और पूँजीपति एक ओर जनता का शोपण करते थे, दूसरी ओर उसे सत्य और अहिंसा के मोहक उपदेश दे रहे थे। हिन्दी कथा-साहित्य में एक नया यथार्थवाद जन्म ले रहा था जिसकी विशेपता यह थी कि वह पूँजीवादी

नेतृत्व की ढुलमुल नीति की भी खरी आलोचना करने लगा था। प्रेमचन्द 'गबन' और 'गोदान' में इस आलोचना को बहुत स्पष्ट रूप दे रहे थे। कांग्रेस के अन्दर वामपक्ष संगठित हो रहा था; स्वाधीनता-आन्दोलन के साथ समाजवादी विचारधारा का सम्बन्ध दृढ़ होता जा रहा था। छायावाद के अग्रणी जयशंकर प्रसाद 'कंकाल' से भिन्न विचारभूमि पर 'तितली' लिख चुके थे। निराला सन् '२९-३० से ही समाज में व्यापक क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर दे रहे थे। सन् '२३-२४ मे वह समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होकर विप्लव के बादल का आह्वान कर चुके थे। सन् '३३ की परिस्थितियों मे कांग्रेसी नेतृत्व को सशय से देखना उनके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। उन्हे स्वाधीनता-आन्दोलन की कमजोरियो का ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान था, जैसा हिन्दी मे बहुत कम लेखको को था। उनकी तरह गाँव के निम्नतम जनो से दृढ़ भाईचारा न किसी लेखक ने कायम किया था, न राजनीतिज्ञ ने। इसीलिए वह जवाहरलाल नेहरू से कह सकते थे, जिन्हे आप कुछ देना चाहते है, जरा देखिए तो, उन्ही से प्राप्त करने की कितनी गुजाइश है।

हीवेट रोड पर भार्गव मैजेस्टिक होटल के सामने फुटपाथ पर एक पगली भिखारिन बैठी रहती थी। साँवला रंग, मैले-कुचैले वस्त्र, गोद मे एक बच्चा, उम्र २५-२६ से ज्यादा न होगी, पर लगती थी चालीस की। पानी बरसने पर वह पीछे की कोठी के बरामदे मे चली जाती थी जिसमे निराला के मित्र हर्षवर्धन नैथाणी रहते थे। निराला को पगली की बड़ी चिन्ता रहती थी। उनके कहने से होटल का नौकर संगमलाल बचा-खुचा अन्न उसे दे आता था। पर संगमलाल का कहना था, पहले यह हिन्दू थी, बाद को मुसलमान हो गई; उसका बच्चा भी किसी मुसलमान का है।

पगली गूँगी थी। लडके उसे छेडा करते थे। निराला जब-तब आकर उन्हें भगा देते थे। वह उसे स्वय पैसे देते थे, मित्रों से दिलाते थे। रात को बदमाश उसके पैसे छीन ले जाते थे। लोगो ने उड़ा रखा था, उसके पास बडा धन है जिसे उसने मिट्टी मे गाड रखा है। एक सज्जन को मसखरी सूझी, उससे दो रुपये उधार माँगने पहुँचे। पगली ने कमर से तीन पैसे निकालकर उनकी ओर बढा दिये।

एक दिन पानी बरस रहा था। पगली बरामदे मे बच्चे को सुलाकर कहीं चली गई थी। निराला अपने मित्रो के साथ ताश खेल रहे थे। बच्चा बरामदे से लुढ़ककर नीचे आ गिरा। उसका रोना सुनकर साथी खिलाड़ी उठे नही। बोले—जान पडता है, पगली है नही, कही गई है। होटल मे रहनेवाले एक धनी सज्जन ने सगमलाल को आवाज़ दी—देख रे, पगली कही हो तो बुला दे।

निराला को जैसे किसी ने गरम लोहे से दाग दिया हो। वह ताश फेककर उठे और दौड़कर बच्चे को उठा लिया। एक मित्र ने चेतावनी दी—वह गन्दा है, गू मे पड़ा रहता है। उसकी बात पर ध्यान न देकर निराला बच्चे को गोद मे लेकर हिलाने लगे। बच्चा थोडी देर मे चुप हुआ और सो गया।

एक रात जब जोर की ठंढ थी, निराला ने सड़क पर कूँ-कूँ की आवाज सुनी। होटल के बोर्डर, नौकर-चाकर सब सो गये थे, केवल निराला जग रहे थे। निकलकर

बाहर आये। देखा, जमीन पर ओस से भीगी कथरी है, उस पर एक पतला कम्बल ओढ़े पगली लेटी है। हाड़ छेदनेवाली हवा से ठिठुरकर कूं-कूं कर रही है। निराला ने सोचा—यह कम्बल इसे पड़ोस के बंगाली परिवार ने दिया होगा; उस घर की महिलाएँ बड़ी भली हैं, कभी-कभी पगली के बच्चे के लिए अंग्रेजी ढँग के फ्राक दे देती हैं। पतला कंबल जाड़ा दूर करने को काफी न था। निराला के पास जो ओढ़ना था, वह उन्हीं के लिए कम था। उनका बड़ा कुर्ता ढीला होने पर भी मथुरा नाम का नौकर पहनकर सोता था। उनकी एक धोती अपनी धोती से मिलाकर संगमलाल ओढ़ता था। राखी बाँधकर किसी महाराज ने कम्बल माँगा था, निराला दे न पाये थे। ईश्वर ने मुझे केवल देखने के लिए पैदा किया है—यह सोचकर दुखी मन से वह लौट आये।

कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह के मामा निराला से पगली का हाल सुनकर एक सुन्दर-सा कम्बल ले आये। निराला ने कम्बल वापस करके एक मोटी रजाई ले आने को कहा। एक दिन वह पगली को रजाई उढ़ा आये।

होटल के मैनेजर के व्यवहार से विद्यार्थी असन्तुष्ट थे। होटल छोड़कर चले गये। होटल टूटने की नौबत आ गई। निराला ने नारियलवाली गली में किराये पर मकान लिया और वहाँ आकर रहने लगे। एक दिन हर्षवर्धन नैथाणी ने आकर निराला को बताया—पगली अस्पताल भेज दी गई। डाक्टर का कहना है, उसे डबल निमोनिया हो गया है। बचेगी नहीं। उसका बच्चा 'श्री दयानन्द अनाथालय' भेज दिया गया है। पगली बच्चे को छोड़ती न थी। पगली को ले जानेवाले एक्के की बगल से निकलती हुई मोटर के धक्के से एक स्वयंसेवक के पैर में सख्त चोट आ गई है, इसी ने सबसे पहले गन्दगी से न डरकर पगली को उठाया था।

निराला ने पगली भिखारिन पर एक कहानी लिखी—'देवी'। यह बिलकुल नये ढँग की कहानी थी जिसमें अपने या किसी नायिका के भव्य चित्र बनाने के बदले उन्होंने पगली के दैन्य और उसके संघर्ष का चित्रण किया, उसके पार्श्वभाग में पहले स्वयं खड़े होकर अपने ऊपर व्यंग्य किया, फिर गोरी फौज से लेकर समाज के धर्म-पतियों तक का सारा मुलम्मा उतार दिया। "बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा"—यहाँ से शुरूआत की। फाकेमस्ती में वह परियों के ख्वाब देखते रहे। वह सोचते थे, साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहे हैं। फल उलटा हुआ। उनकी दुनिया उनसे दूर होती गई। अब उन्हें लगता है, वह दुनिया एक लाश है जिसे वह मौत के बाद दूसरे लोक से देख रहे हैं। मित्र निराला को देखकर हँसते हैं; उनकी कविता खुराफात है, उसे छोड़कर रति-शास्त्र और वनिता-विनोद पर किताबें लिखनी चाहिए। बगल में 'चौरासी आसन' दबाये बीवी के हाथ मे 'सीता', 'सावित्री' देनेवाले कहते हैं, निराला ने भारतीय संस्कृति को बिगाड़ा है। लोग बड़प्पन देखते हैं। बडा राज्य, बड़ा ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप, तलवार, गोले-बारूद, बन्दूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टारपीडो, माइन, सबमेरीन, गैस, पल्टन, पुलिस, अट्टालिका, उपवन—जिससे कि छोटे समझें, वे कितने छोटे हैं! चन्द्र-

सूर्य से लेकर ब्रह्मा-विष्णु-महेश तक ईश्वर के यहाँ भी छोटे-बड़े का हिसाब लगा हुआ है।

वड़े होने के खयाल से ही निराला की नसे तन गईं, नाममात्र के अद्भुत प्रभाव से आरामकुर्सी पर रीढ सीधी करके वह वैठ गये। "सड़क की तरफ वड़े गर्व से देखा, जैसे कुछ कसर रहने पर भी वहुत-कुछ वड़ा आदमी वन गया होऊँ।" तभी उनकी निगाह सड़क पार फुटपाथ पर पगली की ओर गई। प्रकृति की मारो से लड़ती हुई वह मुरझा गई थी, फिर भी लड़ रही थी। "उसे देखते ही मेरे वड़प्पनवाले भाव उसी मे समा गए, और फिर छुटपन सवार हो गया।"

निराला को कोई वड़ा आदमी परास्त न कर सकता था। दूसरो को वड़प्पन जताते देखकर उनका अहंकार सुरसा के सामने महावीर के समान विराट रूप धारण करता था। पर यहाँ अहंकार का नाम न था। वह वड़े भी हो जायँ पर इस स्त्री के लिए कोई उम्मीद न थी। निराला सोचने लगे—इसकी किस्मत पलट नही सकती। सहते-सहते अव दुख का अस्तित्व इसके पास न होगा। पेड़ की छाँह या खाली वरामदे में, दोपहर की लू में, एकटक कभी-कभी आकाश को देख लेती होगी। उसके वच्चे की हँसी शायद उस समय उसे ठंढक पहुँचाती हो। आज तक कितने वर्षा-शीत-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नहीं! लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं; पर यह कितनी वड़ी शक्ति है, कौन सोचता है!

निराला का अहंकार चूर हो गया। "मेरी वडप्पनवाली भावना को इस स्त्री के भाव ने पूरा-पूरा परास्त कर दिया।" परी की वात वह अव भी सोच रहे थे, लेकिन दूसरे ढग से। "ऊपर के धुएँ के नीचे दीपक की शिखा की तरह पगली के भीतर की परी इस संसार को छोडकर कही उड़ जाने की उड़ान भर रही थी।"

हीवेट रोड पर नेता का जलूस निकला। हजारों आदमी इकट्ठे हुए, जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। भीड़ मे पगली का वच्चा कुचल गया और रो उठा। नेता दस हज़ार की थैली लेकर गरीवो का उपकार करने चले गये।

रामायणी समाज के भक्तगण पाठ सुनने के वाद पगली के पास से गुज़रते हुए कहते हैं: कर्म के दण्ड है; सकल पदारथ है जग माही, कर्महीन नर पावत नाही।

हीवेट रोड पर हिन्दू-मुसलमान, वड़े-वड़े पदाधिकारी, राजा, रईस पगली को देखते हुए निकल जाते। निराला समझ गये, इन्हे अपने को देखने-दिखाने की आदत पड गई है, ये दूसरो की तसवीर देखते है, भाव नही। "जिन्दा को मुर्दा और मुर्दा को ज़िन्दा समझना भ्रम भी है और ज्ञान भी।" ये नेता, ये भक्ति और देश-भक्ति का प्रदर्शन करनेवाले लोग मुर्दा हैं। इन्हे पगली में महाशक्ति नही दिखाई देती, उसके वच्चे में भारत का सच्चा रूप केवल निराला देखते है।

सड़क पर गोरी फौज का प्रदर्शन हुआ। सिपाही दर्प से पृथ्वी को दहलाते हुए चले। निराला के लम्वे वाल देखकर वे हँसते थे। पगली उन्हे देखकर हँसती थी। "मैंने सोचा, मेरा वदला इसने चुका लिया।" गोरों से ही नही, पगली के माध्यम से निराला ने भारतीय संस्कृति के उपासको, नेताओं और प्रदर्शनकारियों से भी वदला चुका लिया।

निराला ने शब्दों के ऊपर से छायावादी रंगीनी धो दी थी। सीधे-सादे शब्द नये अर्थ से दमक उठे। 'वर्तमान धर्म' के गूढ़ व्यंग्य के बदले उन्होंने ऐसी वक्रोक्तियों का सहारा लिया कि दंडी-पाखंडी तिलमिला उठें। निराला ने यह सिद्ध करते हुए कि उनका व्यावहारिक वेदान्त क्रान्तिकारी है, कहानी का नाम रखा 'देवी'। कहानी १ फरवरी सन् '३४ की 'सुधा' में प्रकाशित हुई। वे जो निराला की दुरूह कल्पना से परेशान थे, उनके मस्तिष्क-विकार का ढोल पीटकर उन्हें साहित्य के मैदान से खदेड़ने का भागीरथ प्रयास कर चुके थे, चुप रहे मानो 'देवी' जैसी कहानियाँ रोज पत्रिकाओं में छपती हों, अथवा यह भी निराला की नई बकवास हो जिस पर ध्यान देना समय का अपव्यय हो।

निराला ने इसी मनोदशा में एक दूसरी कहानी लिखी—'चतुरी चमार'। न कोई कथानक, न कोई घटनाक्रम का ऊहापोह। गाँव के चतुरी और निराला—यही दो पात्र, पर इन्हीं दो को और उनके परिवेश को लेकर निराला ने सन् '३०-'३३ के भारत की झलक दिखा दी, वह भारत जो हजार साल के सामन्ती चौखटे को तोड़ने के लिए हाथ-पैर फेंकने लगा था। भाषा में वही वक्रता।

चतुरी का घर गढ़ाकोला में उस जगह था जहाँ निराला, रामसहाय और सिधारी पंडित के मकान के पिछवाड़े पनालों का, बरसात और दिन-रात का, शुद्धाशुद्ध जल बहा करता था। उम्र में वह निराला के चाचा से कुछ ही छोटा था पर चमार होने से वह निराला का भतीजा था! वह कबीर के पद गाता था, अर्थ करता था, निराला ने चरस मँगाकर अपने दरवाजे बैठक लगवाई। निराला ने चतुरी-पुत्र अर्जुन को पढ़ाना शुरू किया, चतुरी उनके लिए बाजार से गोश्त ले आता था। "गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारों का ब्रह्मभोज भी चलता रहा।" किसानों और जमींदार के संघर्ष की कहानी निराला ने इस रेखाचित्र में लिख डाली।

इसके भी प्रकाशित होने पर 'वर्तमान धर्म' के आलोचकों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की। निराला ने उसी रंग में महिषादल में राजा के अत्याचार याद करके पुजारी ब्राह्मणवाली घटना पर कहानी लिखी—राजासाहब को ठेंगा दिखाया।

नेताओं का काम है दूसरों को उपदेश देना। दूसरे क्या कर रहे हैं, वे यह नहीं देखते। उनके भक्त संपादक और पत्रकार भी इसी नीति पर चलते हैं। 'देवी' के प्रकाशन के दो महीने बाद बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' में हिन्दी लेखकों को उपदेश दिया कि उन्हें अपना साहित्य जनसाधारण के लिए लिखना चाहिए। निराला ने 'सुधा' में लिखा, कला का उत्कर्ष जनसाधारण के अहित के लिए नहीं होता, उन्हें ऊपर उठाता है; फिर यदि श्रमिक जनता के पक्ष पर ही जोर हो "तो क्या आप कह सकते हैं कि हिन्दी के आधुनिक कलाकारों का उधर ध्यान नहीं गया? आप जो इस भाव की धारा को हिन्दी में बहाना चाहते हैं, क्या आपको हिन्दी का आधुनिक साहित्य देखकर यह समझने का समय नहीं मिला कि यह धारा हिन्दी में नए युग के प्रारंभ से बह रही है?"

दूसरों की सम्मतियाँ छापना आसान है; काव्य-साहित्य पढ़कर यह तै करना, इतना जनसाधारण के लिए है, इतना असाधारण के लिए, कष्टसाध्य है। 'विशाल भारत' चुप रहा।

साहित्य-सम्मेलन के प्रान्तीय, अखिल भारतीय अधिवेशनों मे कांग्रेस के छोटे-बड़े नेताओ की माँग बढ रही थी। कुछ कर्णधार यह समझते थे कि कांग्रेस अखिल भारतीय सस्था है, सम्मेलन मे इसके नेता आयेंगे तो हिन्दी बहुत जल्दी राष्ट्रभाषा बन जायगी। नेता आकर सबसे पहले हिन्दी-साहित्य के दिवालियेपन का राग अलापते, पत्रकार संपादकीय स्तंभ मे ठेका देते। जौनपुर के जिला साहित्य-सम्मेलन मे सभापति-पद से सपूर्णानन्द ने हिन्दी कविता की आलोचना करते हुए कहा, संस्कृत शब्दो के समूह और ऊट-पटांग छन्दो से भावो के अभाव को मिटाने का काम लिया जाता है, और जो लोग गंभीर विचार नही कर सकते, उनसे पर्याप्त साधुवाद भी प्राप्त हो जाता है। अंग्रेजी और बँगला के मुकाबले हिन्दी की दरिद्रता के लिए लेखको और कवियो को फटकारते हुए उन्होंने कहा, "महाकवि टेनिसन 'चार्ज आफ दि लाइट ब्रिग्रेड' भी लिख सकता था। रविबाबू ने बंगाल के पुराने आन्दोलन के समय स्वर्गीय शक्ति-युक्त कविता की रचना की है। उनके

यदि तोर डाक सुने केओ ना आसे,
तबे एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे—

ने लाखो हृदयों मे जान फूंक दी है। उसके जोड़ की हिन्दी-रचना कहाँ है ?"

'सरस्वती' ने ठेका दिया, हिन्दी कविता मे दरअसल कुछ नही है। निराला ने 'सुधा' मे जवाब दिया। जिला सम्मेलन के सभापति और 'सरस्वती'-संपादक पर फुल-झड़ियाँ छोडते हुए कहा, "तब तक, हाय-हाय न करके, आप ही लोग कुछ कदम आगे क्यो न बढे—जरा चाल तो देखी जाय कि नेताओ के पदों की ताल पर कैसी तुलती है, फिर न हो गुप्तजी से वैसा ही कुछ करके दिखाने के लिए जोर लगाया जायगा।"

निराला की कहानियाँ एक संग्रह-भर को हो गई थी। दुलारेलाल भार्गव ने कहानी-संग्रह छापने का वादा किया। निराला ने नाम रखा—'लिली' और उसे "प्रिय श्री दुलारेलालजी के दक्षिण यशोवर्धन साहित्य-कर को" समर्पित किया। एक संग्रह-भर को उनके निबन्ध हो गये थे। 'पंतजी और पल्लव' तथा 'सुधा' में प्रकाशित अपनी कुछ टिप्पणियो को मिलाकर 'प्रबन्ध पद्म' तैयार किया। संग्रह लायक गीत भी हो गये थे। दुलारेलाल ने 'गीतिका' छापने का भार लिया, निराला से गीतो का अर्थ भी लिख देने को कहा। साधारण पाठको के लिए निराला ने गद्य में 'महाभारत' लिखने की योजना बनाई। 'ऊषा' नाटिका लिखनी थी; एक उपन्यास और लिखेंगे—'उच्छृंखल'। इसमे नायक प्रचलित उपन्यासों के नायको से सब काम उलटे करेगा। उन्होंने एक नये उपन्यास के कुछ अध्याय लिख भी डाले पर यह 'उच्छृंखल' न था। इसका नाम था 'निरुपमा'। बंगाली लडकी, उसका प्रेमी हिन्दुस्तानी युवक, जिला उन्नाव का रहनेवाला, रूढियो को तोड़नेवाला, बूट पालिश करके श्रम के महत्त्व का आदर्श प्रतिष्ठित करता है, डी० लिट्० है, इत्यादि।

"सन् '३३-३४ में निराला गीत, कहानियाँ, उपन्यास, संपादकीय लेख—बड़े वेग से लिखते चले जा रहे थे। गंगा पुस्तकमाला में जरा-सा सहारा मिलते ही उनकी सरस्वती जैसे एकबारगी मुखर हो उठी थी। फिर भी उनकी प्रगति मे बार-बार झटके लग रहे थे, समतल भूमि पर सरपट भागने जैसी बात न थी। इतना बड़ा आन्दोलन हुआ, फिर भी निराला का लिखना बन्द न हुआ; उलटा और तेजी से लिखता जा रहा है और इसे अपनी किताबें छापनेवाला भी मिल गया है—यह सोच-सोचकर उनके विरोधी कुढ़ रहे थे। पर निराला के दो-एक समर्थक भी खूब उदात्त स्वर मे उनकी प्रशंसा करने लगे थे।

नलिनविलोचन शर्मा ने निराला की प्रशंसा में एक लेख लिखा जैसा अब तक किसी ने न लिखा था। उन्होंने 'वर्तमान धर्म' और 'पंतजी और पल्लव' की प्रशंसा की, इस बात पर खेद प्रकट किया कि 'अप्सरा' की आलोचना नहीं हुई। कविता में हरिऔध की तरह प्रेमचंद आउट-आफ-डेट हो गये है। 'अप्सरा' नाम ही सुन्दर है; नाम का महात्म्य कम नहीं होता। प्रसाद के 'कंकाल' में पात्रों की भाषा कृत्रिम है। निराला के पात्रों की भाषा स्वाभाविक है। हार्डी के पात्र आदर्श चरित नही है, इसलिए उसे नोवेल प्राइज नही मिला। 'उग्र' के चाकलेट में यही कमी है; उसे पढ़कर लगता है हम नरक में आ गये हैं। यह आदर्शवाद ही निराला को औपन्यासिकों मे अग्रगण्य बनाने को काफी है। हिन्दी साहित्य भी अब विश्व-साहित्य के योग्य वस्तुएँ सृजन करने लगा है। निराला जानसन की तरह कर्मठ और अध्यवसायी, लार्ड बायरन से उद्भट प्रत्यालोचक, कीट्स और टैगोर की तरह सुकवि और तालसताय, ह्यूगो और शॉ की तरह निर्भीक, उत्क्रान्तिकारी औपन्यासिक हैं।

किसी ने इंगलैण्ड और यूरुप के इतने नाम एक साथ जोडकर अब तक निराला की प्रशंसा न की थी। निराला अपने बारे में जितना सोचते थे, यहाँ उससे कुछ अधिक ही कहा गया था। कई महीने तक उन्हें लेख का नशा रहा। निराला ने प्रेमचन्द के आदर्शवाद की आलोचना की थी, नलिनविलोचन शर्मा ने निराला के आदर्श पात्रों की प्रशंसा की थी। पर लेख के मादक प्रभाव में निराला ने इन छोटी-मोटी बातों पर ध्यान न दिया।

'अप्सरा' की एक कटु आलोचना प्रेमचन्द के 'हंस' मे छपी। लेखक थे कोई जगमोहन गुप्त। कथानक अस्वाभाविक और अस्पष्ट, निराला को पुलिस की दफ़ाओं का ज्ञान नही। बदमाशी की दफा ११० है; इसके अन्तर्गत चालान करने के लिए जरूरी है कि दस भले आदमियों की रिपोर्ट पुलिस की डायरी में दर्ज हो। निराला ने यह सब नही दिखाया। सेकेंड क्लास का डिब्बा रिर्जव करा दिया। रेलवे टाइमटेबल पढ़ें जिससे ऐसी भद्दी भूलें न हों। दरोगा ने थियेटर देखने के लिए टिकट खरीद लिया; पुलिसवाले कही टिकट खरीदते हैं? भाषा अशुद्ध, असंबद्ध और शिथिल। पात्र मानो किसी प्रहसन के चरित्र हो। कनक की माँ का भाषण, मानो जान स्टुआर्ट मिल की तकरीर! निष्कर्ष: "निरालाजी महाराज, उपन्यास लिखना, रबड़ छंद लिखने के समान नहीं है कि नेत्र बन्द किये और कोष की पंसेरियाँ लुढकाने लगे। उपन्यास

लिखने के लिए चतुर्दिक ज्ञान (general knowledge) की आवश्यकता है।"

अंत में आलोचक ने 'अप्सरा' के प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव को सलाह दी, "मुझे आश्चर्य है कि उन्होंने ऐसी भद्दी तथा उपन्यास का नाम बदनाम करने वाली पुस्तक कैसे प्रकाशित कर दी। गंगा पुस्तकमाला अच्छी तथा साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु यदि उसमें ऐसी निकम्मी पुस्तकें प्रकाशित होने लगी और उनकी प्रशंसा में ऐसे लम्बे-चौड़े विज्ञापन और लेख निकलने लगे, जैसे कि 'अप्सरा' के संबन्ध में 'सुधा' में निकल रहे हैं, तो वह दिन दूर नही है, जब गंगा पुस्तकमाला की साख समझदार आदमियो की दृष्टि मे गिर जायगी और उसका महत्त्व तोता-मैना का किस्सा प्रकाशित करनेवाले प्रकाशको से अधिक नही रह जायगा।"

जगमोहन गुप्त की आलोचना स्पष्ट ही नलिनविलोचन शर्मा के लेख की प्रतिक्रिया मे लिखी गई थी। शर्माजी ने प्रेमचन्द को आउट-आफ-डेट करार दे दिया था, 'हंस' मे प्रकाशित आलोचना मे सिद्ध किया गया कि निराला को उपन्यास लिखने का शऊर ही नही है। प्रकाशक से अपील की गई थी कि उनके उपन्यास आगे न छापे। निराला के लिए यह सन्देह करना स्वाभाविक था कि उस लेख मे प्रेमचन्द का हाथ है। कुंअर चन्द्रप्रकाशसिंह द्वारा लिखित 'सुधा' में प्रकाशित उत्तर में यह सन्देह व्यक्त हुआ। लेख की तर्कयोजना इस प्रकार थी :

प्रेमचन्द ने निराला को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर उन्हे गिराने के लिए खुद ही जगमोहन गुप्त के नाम से लेख लिखा। प्रेमचन्द ने ही 'जागरण' मे निराला के चरित्र पर आक्षेप छापा था। जहाँ किसी पत्रिका मे निराला की तारीफ में कोई लेख छपा, उसकी विरोधी प्रतिक्रिया 'हंस' मे तुरत दिखाई दी। प्रेमचन्द का युग समाप्त हो गया है। निराला के ४०० पृष्ठ प्रेमचन्द के १०,००० पृष्ठो से बढ़कर है। साहित्य की गति गूढ और गम्भीर है; "समझ लीजिए, निराला ऐसे समर्थ लेखक पर कलम चलाना आप ऐसे अबोधो का काम नही है।"

प्रेमचन्द के बारे मे निराला का सन्देह दूर करने का प्रयत्न उस समय के प्रसिद्ध कहानी-लेखक और उपन्यासकार विश्वंभर शर्मा कौशिक ने किया। जगमोहन गुप्त फर्जी नाम नही है; 'विशाल भारत' और 'हंस' में उनकी कहानियाँ छपी है। नलिनविलोचन शर्मा ने 'सुधा' मे 'अप्सरा' पर जो कुछ लिखा था, उससे बहुत पहले जगमोहन गुप्त अपना लेख लिख चुके थे। किसी पत्रिका में छपने भेजा था पर संपादक ने लेख छोटा कर देने को कहा था। इस पर उन्होंने उसे 'हंस' मे भेजा था। प्रेमचन्द कई महीने तक टालते रहे, आखिर बहुत दबाव पड़ने पर उन्होंने उसे छापा था। प्रेमचन्द पर घृणित आक्षेप करने से कोई बडा न होगा। जिसे प्रेमचन्द के बराबर बैठना हो या उनसे भी ऊँचा आसन पाना हो, वह कलम का ज़ोर दिखाये। जहाँ तक स्वयं कौशिकजी का प्रश्न है "ईश्वर की दया से मुझे टाल्स्टाय, स्काट अथवा विक्टर ह्यूगो बनने का खब्त नही है।"

कौशिकजी ने यह न बताया कि जगमोहन गुप्त ने अपना लेख 'सुधा' की प्रतिक्रिया मे न लिखा था तो उन्होंने उन लेखों का हवाला कैसे दिया जो "'अप्सरा' के

संवन्ध में 'सुधा' में निकल रहे हैं।" स्पष्ट ही कौशिकजी कुछ जरूरत से ज्यादा सफाई दे गये थे। 'अप्सरा' पर उस निम्न स्तर का लेख 'हंस' में छापना अनुचित था, विशेपकर इसलिए कि निराला 'हंस' को वरावर सहयोग देते रहे थे। आलोचना छापना और वात है, गंगा पुस्तकमाला से निराला की कितावें न छापने की अपीलें प्रकाशित करना और वात।

कौशिकजी ने इस वात का भी उत्तर न दिया कि प्रेमचन्द ने 'जागरण' मे निराला के चरित्र पर आक्षेपवाला लेख क्या सोचकर छापा था।

निराला के मन में गाँठ वनी रही। प्रेमचन्द ने 'हंस' मे जव 'अलका' पर किन्ही चन्द्रशेखर तिवारी वी० ए० का लेख छापा, तव वह गाँठ ज़रा ढीली हुई। लेखक ने निराला की प्रशंसा की कि वह विरोधी आलोचना से डरे नहीं, वरन् ज्यादा सावधानी से दूसरा उपन्यास लिखा। 'अप्सरा' की जितनी अलोचनाएँ निकलीं, सवमें दोप ही दिखाये गये, नलिनविलोचन शर्मा का लेख आलोचना नहीं था। आलोचक पूछ रहे थे, निरालाजी, कविता छोड़कर उपन्यास-क्षेत्र में क्यों आये? " 'अप्सरा' के अलोचकों की प्रवल इच्छा थी—निरालाजी को दवा देना।" और कोई साधारण लेखक होता तो उसे हिंदी साहित्य से घृणा हो जाती पर निराला पर इन समालोचकों का रत्तीभर प्रभाव न पड़ा। 'अलका' के कथानक, चरित्र-चित्रण और उसकी भाषा में अनेक दोष हैं पर "हिंदी साहित्य में ऐसे ही साहसी और अटल विश्वासवाले लेखकों की आवश्यकता भी है जो साहित्य के सिर पर वरावर विजली गिराते रहें।"

साहित्य के सिर पर नही तो साहित्यकारों के सिर पर वह जरूर विजली गिरा रहे थे। समालोचकों का रत्तीभर प्रभाव न पड़ा हो, यह वात सही न थी। मन में हिन्दी से घृणा उमड़ रही थी पर निराला उसे दवा रहे थे। 'हंस' में प्रकाशित इस लेख का असर उन पर अच्छा पड़ा। प्रेमचन्द की नीति उन्हे गिराने की होती तो उन्हें उपन्यास लिखने का वढावा देनेवाला ऐसा लेख कभी न छापते।

'सरस्वती' और 'हंस' में उनकी कविता और कथा-साहित्य पर जो आक्षेप हुए थे उनमें वहुत ज्यादा विप न था। निराला वह सव देखते-सुनते साहित्य-रचना के मार्ग पर आगे वढ़ते जा रहे थे। सन् '३४ में वह 'ऊपा' नाटिका, 'उच्छृङ्खल' उपन्यास, गीतों के अलावा कुछ लम्वी कविताएँ लिखने की योजना वना रहे थे।

'पंतजी और पल्लव' का आघात झेलकर पंत ने अपने मित्र से पहले-जैसा स्नेह-सम्वन्ध कायम कर लिया था। पंत से मिलने निराला कभी-कभी कालाकाँकर राज्य मे उनके 'नक्षत्र' लोक हो आते; अक्सर पंत लखनऊ आते, निराला से मिलते, कभी उनके घर पर, कभी दुलारेलाल भार्गव के यहाँ। उनकी नाटिका 'ज्योत्स्ना' गगा पुस्तकमाला से प्रकाशित हो रही थी। पंत ने निराला से इसकी भूमिका लिखने को कहा। थोड़ी-सी आनाकानी के वाद निराला तैयार हुए।

उन्होने छोटी-सी 'विज्ञापिका' लिखी, उसमें पंत की तुलना गुलाव से करते हुए, गुलाव के साथ काँटे भी होते हैं, इस तथ्य का उल्लेख कर दिया। अपने मुक्तछन्द की आलोचना करनेवाले के वारे में निराला ने लिखा :

"काव्य के चारु चरणों से हिन्दी के दारुपथ को पार कर प्रांजल-श्री श्री सुमित्रा-नन्दन काव्योपवन के साजलि खिले हुए प्रकाश-दृष्टि सुन्दर गुलाव है। आज उन्ही की प्रतिभा के रूप-रंग, मधु-गंध और भावोच्छ्वास की प्रशंसा से प्रति मुख मुखर है। अव वह 'ज्योत्स्ना' में मनोहर नाट्यकार के शुचि-रूप हिन्दी संसार के सामने आ रहे है। मै गुलाव को देखता हूँ उसके काँटों को नही। 'ज्योत्स्ना' में उनका पहला प्रिय, भावमय, श्वेत वाणी का कोमल कवि-रूप ही दृष्टिगोचर होता है जिसकी सुख-स्पर्श रश्मियों की तीव्रगति हलकी थपकियाँ युग-जागृति का सर्वोत्तम साधन हैं।"

निराला वड़े हैं या पंत—अनेक साहित्य-प्रेमी इस प्रश्न पर विवाद करते थे। निराला से प्रभावित लखनऊ के अनेक तरुण उनके काव्य का अनुकरण करते हुए उनकी प्रतिभा का जयघोप करते थे। उधर पंत से प्रभावित इलाहावाद का तरुणदल उनके काव्य का अनुकरण करता हुआ उनकी प्रतिभा का जयघोप करता था। पर यह विवाद अधिकतर मौखिक और शालीनता की सीमा मे रहता था। इस विवाद से लाभ उठा-कर प्रौढ़ पत्रकार ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' ने 'अभ्युदय' में निराला पर वड़े घृणित आक्षेप किये। 'पंत, प्रसाद और निराला' लेख में उन्होने मानो यह सिद्ध करने का वीड़ा उठाया कि सम्मतियाँ वटोरने मे वह वनारसीदास चतुर्वेदी से कम प्रवीण नही हैं, न उनकी लेखनी मे ओज की मात्रा ही किसी से कम है। निराला पर व्यक्तिगत आक्षेप करने मे उन्होने वाद-विवाद-प्रतियोगिता मे नया कीर्तिमान स्थापित किया।

पंत छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका टेस्ट वहुत ऊँचा है। वे द्वेपभाव से वहुत परे है, निन्दा-अपमान चुपचाप सह लेते है। वनारसीदास चतुर्वेदी जैसे काव्य-मर्मज्ञ पंत की कविताएँ समझ लेते हैं पर प्रसाद और निराला की नही समझ पाते। इससे सावित होता है पंत की रचनाएं कितनी लोकप्रिय हैं। "सचमुच इनकी कविता भावपूर्ण होते हुए भी सार्थक होती है, सन्निपातिनी नही।"

'निर्मल' जी का लेख सन्निपात-शृङ्खला की अगली कड़ी था। नन्ददुलारे वाज-पेयी ने प्रसाद, निराला और पंत को छायावाद की वृहत्त्रयी के रूप मे प्रतिष्ठित किया था। 'निर्मल'जी ने पंत को निराला और प्रसाद से अलग किया; मुख्य लक्ष्य निराला को वनाया, चलते-फिरते दो हाथ प्रसाद पर भी झाड़ दिये।

प्रसाद कुशल व्यवसायी होते हुए भी 'विकट लिक्खाड़' है। सज्जन है, पर इनके प्रचारक इनके अमर कलाकार होने का ढिंढोरा पीटते हैं। उन पर किन कवियो का प्रभाव पड़ा है यह वताने मे उन्हे संकोच होता है। उनके नाटक द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों से कई जगह मिलान खा जाते हैं। इस वारे मे वह चुप रहते है।

'निर्मल' ने ठाकुर श्रीनाथसिंह की सम्मति का हवाला दिया; उस सम्मति में किसी अन्य अज्ञात-नाम समीक्षक की सम्मति का हवाला दिया गया था।

"ठाकुर श्रीनाथसिंह जी का कहना है कि 'प्रसाद' जी की कृतियों की समालोचना करते हुए एक समीक्षक ने लिखा था कि वह प्राचीन हिन्दी-संस्कृति [हिन्दू संस्कृति] के पुनरुद्धार की कामना से नाटको की रचना करते हैं। ऐसी दशा मे यदि हम उन्हें 'कम्यूनलिस्ट', सांप्रदायवादी [संप्रदायवादी] कहें तो अनुचित न होगा।"

फिर एक अन्य अज्ञात-नाम मित्र की सम्मति ।

"हमारे एक मित्र ने एक बार लिखा कि 'जागरण' का श्री विनोदशंकर व्यास के समय में जन्म ही इसलिए हुआ था कि प्रसादजी की कृतियों का प्रोपेगेंडा उसके द्वारा किया जाय।" 'आँसू' अच्छी रचना है पर प्रसाद का प्रोपेगेंडा बहुत किया गया है। इसलिए अब उनकी "कृतियों की बखिया उधेड़ी जाती हुई दीख पडती है।"

एक और सम्मति प्रसाद के व्यक्तित्व पर।

प्रसाद ऊपर से बड़े गंभीर रहते हैं "परन्तु हमारे एक साहित्यिक मित्र का कहना है कि भीतर से उनकी यह इच्छा जो स्वाभाविक ही है, शायद ऐसी रहती है कि उनके लिए प्रोपागेंडा किया जाय।"

यह सब उस समय लिखा जा रहा था जब 'कामायनी' के अनेक अंश 'सुधा' में प्रकाशित हो चुके थे। पर यह तो लेख की भूमिका थी।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी के अच्छे कवियों मे हैं। जब से उन्होंने 'मत-वाला' में बादल-राग अलापना आरंभ किया था तभी से इनकी ख्याति हुई।

अब मुंशी नवजादिकलाल की सम्मति।

"एक दिन मुंशीजी ने हमसे कहा—'मतवाला' में निरालाजी की रचना हमने खासतौर से छापी, यद्यपि संपादक श्री महादेवप्रसाद सेठ उसका विरोध करते थे। वे कहते थे कि ये कविता समझ में भी आती है या छपती ही हैं। परन्तु हमने कहा कि हाँ मेरी समझ में आती है लेकिन यदि मैं आपको समझाऊँ तो आपकी समझ मे न आयेंगी। यद्यपि मैं स्वयं भी उन्हें नहीं समझता था परन्तु हमने यह ख्याल किया कि वे एक नवयुवक साहित्यिक हैं इन्हें प्रोत्साहन देना बहुत अच्छा है।"

दूसरों के कथन या सम्मतियाँ, जिनका 'निर्मल' ने हवाला दिया, अधिकतर अलिखित और अप्रकाशित थीं। किसी ने 'निर्मल' से कहा या उनके मित्र से कहा; लिखी-पढ़ी से कही-सुनी बातों का भरोसा उन्हें ज्यादा था।

निराला के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ है। "वे एक उत्तेजक व्यक्ति है।" उत्तेजक शब्द का अर्थ है: "उनमें उत्तेजना बहुत जल्दी आती है।"

इसके अलावा निराला गुरुडम के पक्षपाती है। बँगला जानते हैं, दर्शनशास्त्र और संगीत पर भी थोड़ा दखल है, पर रचनाएँ क्लिष्ट होती हैं, गले के नीचे मुश्किल से उतरती हैं। पंत इनके ताने सुनकर चुप रहते हैं। "सब तरह की अपने स्वभावानुसार फूहड बातें भी कह जाते है।" कठिन काव्य लिखने में उनका सानी नहीं है। "शायद वे स्वयं उसका अर्थ नहीं कर सकते।" यह सही है कि वे हिन्दी की हेठी नहीं सह सकते, हिन्दी के हित के लिए खरी-खोटी भी सुना डालते है, "परन्तु ऐसे अवसर पर जो कुछ वे लिखते हैं वे 'वर्तमान धर्म' नामक लेख ही के कोटि के होते है।"

निराला ने पंत पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव दिखाया था, "परन्तु 'भावों की भिडन्त' लिखकर जिसने इनके 'बादल-राग' आदि कविताओं का रवीन्द्रबाबू की कविता से ज्यों-का-त्यों साम्य दिखलाया था उसके प्रकाशित होने पर बड़ा सुखप्रद भंडाफोड हुआ। उसी समय पं० रूपनारायण पांडेय ने 'सुकवि' में और पं० जगदम्बाप्रसाद हितैषी ने

'वंग-कवियों की जूठी पत्तलें समेटा कर' लिखकर इनका मनोरंजन किया था।"

निरालाजी के विरुद्ध प्रकाशित लेख 'निर्मल' ने शायद पढ़े न थे, उनके बारे मे सुना ही था; वर्ना 'भावो की भिन्ड़त' मे 'बादल-राग' की आलोचना का जिक्र न करते। इसके अलावा "स्वर्गीय पंडित पद्मसिह शर्मा इन्हे 'अहम्मन्यता की मूर्ति' उपाधि से विभूषित करते थे।"

निराला यह लेख पढकर स्वभावतः उत्तेजित हुए। भगवतीचरण वर्मा उन दिनो लखनऊ मे थे। निराला ने उनसे कहा—निर्मल से कह देना, तुम्हारे लिए चमरौधा भिगो रखा है। भगवतीचरण वर्मा ने यह संदेश इलाहाबाद जाकर 'निर्मल' तक पहुँचा दिया।

उत्तेजना कुछ शान्त होने पर निराला ने 'अभ्युदय' के लिए प्रत्युत्तर लिखा—'समालोचना या प्रोपेगेडा?' उन्होने पहले समालोचना और मिथ्या प्रचार का भेद बताया। पंत की प्रशसा मे 'निर्मल' ने कुछ लिखा था, उसका मखौल उड़ाते हुए कहा, "इस प्रशंसा से ब्रह्म की प्रशसा भी घटकर ठहरती है।" प्रसाद के और अपने व्यक्तित्व की कालिमा के बारे मे लिखा, "प्रसादजी का हिस्सा पन्द्रह आने स्याह है, और मेरा पन्द्रह आने ग्यारह सही निन्नानवे बटे सौ पाई।"

छायावादियो मे पंत ही की ज़्यादा तारीफ हुई है। पंत-काव्य कोमल है, लोगो को अच्छा लगता है। उनकी लोकप्रियता का कारण उनके प्रशंसको का काव्य-विषयक अज्ञान, सौदर्य-सम्बन्धी अदूरदर्शिता भी है। आलोचना के धक्के से पंत को चोट लगेगी, हिन्दी साहित्य की क्षति होगी। "इसीलिए, इधर डेढ़-दो वर्षो के अन्दर कई प्रहार मिलने पर भी, मैंने चुपचाप अपमान बरदाश्त कर दिया [लिया]।"

निराला यह समझ रहे थे कि 'निर्मल' का लेख पंत की प्रेरणा से लिखा गया है। उसका उद्देश्य पंत को उठाना, निराला और प्रसाद को गिराना है। इसीलिए उन्होंने 'निर्मल' को एक तरफ हटाकर पंत की आलोचना आरम्भ की।

"पतजी के सम्मान की कोई त्रुटि नही हुई; हम लोगों के जितने उल्लेख हुए हैं, उनमे वही ज्यादा चमके है। इस पर मुझे प्रसन्नता ही है। मैंने अपने लेखों मे भी उनके दागों की तरफ न देख कर सफाई ही की तरफ निगाह डाली है। 'ज्योत्स्ना' की 'विज्ञापिका' मैंने अपने अस्तित्व को भूल कर लिखी है। केवल 'पंतजी और पल्लव' में उनकी उचित आलोचना मैने की थी, पर तब जब 'पल्लव' के 'प्रवेश' में वह मेरे सम्बन्ध में गलतियाँ कर चुके थे। मैं 'पंतजी और पल्लव' को पुस्तक-रूप मे प्रकाशित नही करवाना चाहता था, पर जब पल्लव के दूसरे संस्करण मे मेरा हिस्सा ज्यो-का-त्यों प्रकाशित हुआ, तब 'प्रबन्ध-पद्म' मे उस आलोचना को भी निकलवा देना मैने उचित समझा। इस तरह मै बराबर पतजी से बाजू बचाकर चला। हिन्दी साहित्य के ज्ञाता इस बात से परिचित होगे कि पतजी की सर्वश्रेष्ठता को मैने स्वयं कम सहायता नही पहुँचाई। मुझे अगर वह वास्तव मे सर्वश्रेष्ठ जँचते तो मै उनका पहला समर्थक होता, क्योकि ऐसे सर्वश्रेष्ठत्व का भार मस्तिष्क को और हल्का करता है। दुःख है, जिस कला को केवल कृतियो द्वारा विकसित करने का मैंने निश्चय किया था, उसका उपयोग पंतजी

की रचनाओं पर आलोचना द्वारा भी मुझे करना होगा, और यदि ईश्वर की निष्करुणता के कारण वह पंतजी के प्रशंसकों की समझ में आ गई तो छायावाद-साहित्य के एक उज्ज्वल रत्न का प्रकाश मन्द पड़ जाएगा। पहले जब-जब मुझे नीचा दिखाया गया, मैं यह सोच-सोचकर चुप रहा कि मेरी आलोचना की चोट भक्तों से पहले उनके भगवान् पर ही होती है। पर अब मेरी भी इच्छा तमाशा देखने की है; जरा देखूं पंतजी के प्रशंसकों की कलाबाजी कितनी ऊँची उडान लेती है।"

निराला के लिए शब्दों की कोमलता ही सब-कुछ नही थी यद्यपि कोमल शब्दावली का प्रयोग वह भी जब चाहते थे, मजे में कर लेते थे। वह शब्दों के पीछे भाव की गरिमा देखते थे, भाव के साथ विचार का तेज न हुआ तो कविता उनके मेधावी कलाकार को तुच्छ लगती थी। निराला शब्द-शिल्पी ही नही, काव्य-शिल्पी भी थे। वह कविता रचते थे, बहाते नहीं थे। आतरिक संगति, चित्र की पूर्णता और भाव का तर्क-सम्मत विकास ही कला की दृष्टि से रचना को श्रेष्ठ बना सकता था। इन सबके अभाव में भी लोग पंत को निराला से श्रेष्ठ कवि कहते थे तो यह उनका अज्ञान था।

निराला ने 'गुंजन' से कविता उद्धृत की—

झर गई कली, झर गई कली···
रे कूद सलिल में गई चली।

सवाल यह है कि वह कूदकर चली कैसे गई? "डंठल महाशय जब तक उसे मजबूती से पकडे हुए हैं तब तक उसका कूद जाना कदापि सम्भव नहीं, फिर अधखिली कली का, जिसकी पकड और मजबूत है।" फिर लहरी चुंबन करने आई। "औरत को चूमने और औरत के अधरों पर अधर रखने में औरत को कौन-सा प्राकृतिक लाभ है, जिसके लिए कली कूद गई?" फिर मोतियों से उसका मुँह क्यों भरा गया? कही किसी स्त्री का मुँह मोतियों से भरा जाता है? तिस पर कविता मे उपदेश और नैतिकता की भरमार! रवीन्द्रनाथ की 'निर्झरेर स्वप्न भंग' में कली का वर्णन कितना सार्थक है!

पंत काव्य में शब्द-माधुर्य और बिंब-सौदर्य के पीछे वैचारिक शून्य का आभास देने के बाद निराला ने मुंशी-सेठ प्रसंग लिया। 'निर्मल' का कहना था, 'मतवाला' मे उनकी कविताएं स्वयं न समझते हुए, महादेवप्रसाद सेठ के विरोध करने पर भी, मुशी नवजादिकलाल ने छापी थी। निराला ने जवाब दिया, "यह सोलहों आने झूठ है। मुझे विश्वास नही, मुशीजी ऐसा कहेंगे। 'मतवाला'-संपादक श्री महादेवप्रसाद सेठ ने 'मतवाला' के दूसरे साल के पहले अंक में मेरे सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला है। पुनः, 'मतवाला' के निकलने के पहले से महादेवबाबू मेरे पद्य के प्रशंसक रहे है।" इसका प्रमाण यह कि उन्होने शिवपूजन सहाय से लेकर 'अधिवास' कविता 'माधुरी' में भिजवाई थी। 'मतवाला' का मोटो निराला का लिखा हुआ था।

" 'मतवाला' द्वारा प्रोत्साहित होने की मुझे लालसा न थी। तब मैं 'समन्वय' का कार्यकारी सम्पादक था।" 'अनामिका' की महादेवप्रसाद सेठ-लिखित भूमिका से उद्धरण देकर उन्होने इस बात की पुष्टि की कि 'मतवाला'-संपादक उनकी कविता के प्रशंसक थे।

'भावो की भिडन्त' के सिलसिले में लिखा : "मालूम होना चाहिये कि 'बादल-राग' शीर्षक मेरी छः रचनाओं मे किसी का भाव बाहर से नही लिया गया। ये छहों कविताएँ 'परिमल' मे है। 'भावों की भिडन्त' से पहले 'मतवाला' मे मेरा पत्र प्रकाशित हुआ था।" रवीन्द्रनाथ के भावों के आधार पर रचनाएँ यह दिखाने के लिए की थी कि "वे कैसे चमकती हैं।" अपने पत्र में उन्होंने उन कई रचनाओं का नाम लिया था जो रवीन्द्रनाथ की कविताओ के आधार पर लिखी गई थी। 'भावो की भिड़न्त' मे केवल दो का उल्लेख था। भाव-साम्य कालिदास-रवीन्द्रनाथ तक की रचनाओं में है और यह न हो तो कला का विकास न हो। जो कविताएँ लिखी थी, उनमें ९५ फी सदी मौलिक थी।

पद्मसिह शर्मा और अपनी अहम्मन्यता के प्रसंग में उन्होने लिखा—"श्री पद्मसिंह जी जब हिन्दुस्तानी एकेडमी मे आये थे, तब उन्होंने मुझे बुलाया था। संवाद पाकर मैं श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के साथ लूकरगंज से दारागंज उनसे मिलने के लिए गया था। तभी श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी के उनके निवास-स्थान पर मैंने पहले-पहले दर्शन किये थे, उन्हे याद होगा, श्री पद्मसिह शर्माजी अपने डेरे पर नही मिले। दोपहर हो जाने के कारण वहाँ से चलकर हम लोगों ने गंगास्नान किया। यह मामूली अहंमन्यता न थी।"

अन्त में पंत-काव्य का अर्थ समझाने का आग्रह करते हुए उन्होंने लिखा, "आलोचकजी से प्रश्न है, छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि की कविता कैसी भावपूर्ण रही ?—सन्निपातिनी हुई या नही ?"

'निर्मल' ने जवाब मे दूसरा लेख लिखा—

"'निराला' जी की काव्य कहानी
कितना दूध है कितना पानी ?"

भगवतीचरण वर्मा से उन्हे सँदेसा मिल गया था कि निराला ने चमरौधा भिगो रखा है। 'निर्मल' जानते थे, निराला के पास कभी-कभी चप्पलें भी नही होती और वे नंगे पैर घूमा करते है। उन्होंने व्यंग्य किया, "यह जानकर मुझे अपार आनंद हुआ कि अब निरालाजी जूता भी पहनने लगे हैं। कुछ दिन पहले तक आप नंगे पैरो ही रहा करते थे।"

पत शालीन है, निराला के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहते, निराला उन्हें गिराने के लिए लेख लिखते है। 'झर गई कली' वाली कविता की व्याख्या 'वर्तमान धर्म' की व्याख्या की तरह बेबुनियाद है। निराला अपना किया हुआ भाष्य खुद ही न समझे थे। 'ज्योत्स्ना' की भूमिका अपने अस्तित्व को भूलकर लिखी थी ? झूठ ! भूमिका उन्होने जबरदस्ती लिखी। पंत से कहा, मेरी 'ऊपा' नाटिका की भूमिका लिखना, मैं 'ज्योत्स्ना' की लिखूंगा। 'ऊपा' रह गई बट्टे-खाते मे, "'ज्योत्स्ना' मे जबरदस्ती आपने भूमिका लिख ही डाली।" पंत जैसा शीलवान कवि विरोध कैसे करता ? निराला-काव्य कर्कश और दुरूह है। "केवल दार्शनिकता की आड़ मे वह अपने काव्य की नगड़िया बजाने का पूरा ज़ोर लगाते है, परन्तु सुनाई भी तो पडे !" अब

गीत लिखने लगे हैं, वे "और भी ऊबड़-खाबड़" हैं। गा ज़रूर लेते हैं पर गाने में भी उस्ताद नहीं हैं। 'भावों की भिड़न्त' के बाद वे नकली छन्द 'परिमल' में नज़र न आये। निराला के गद्य पर रामचन्द्र शुक्ल ने निशान लगाकर दिखाये थे और कहा था, यह कहाँ का गद्य है ?

निराला की कविता के प्रशंसक न महादेवप्रसाद सेठ थे, न मुन्शी नवजादिक लाल। निराला ने मुन्शीजी से "वार-वार अपने तथा अपनी कविताओं के सम्बन्ध में सम्पादकीय लेख लिखने के लिए 'मतवाला' में जिद की थी।" (शायद मुन्शीजी पर इस ज़िद का कोई असर न हुआ, इसलिए) निराला ने स्वयं अपने ऊपर लेख लिखकर मुन्शीजी के नाम से छपवाया।

'निर्मल' ने प्रश्न-शरों की वर्षा करते हुए निराला का अंग-प्रत्यंग वेध डाला। "क्या यह सत्य नहीं है कि श्री निरालाजी ने अपनी तथा अपनी कविताओं की तारीफ़ में स्वयं लेख लिखा था और मुन्शीजी को दवाकर और परेशान करके उनके नाम से छपवाया था ? क्या यह सत्य नही है कि जव 'प्रभा' में 'भावों की भिड़न्त' लेख प्रकाशित हुआ था, तव श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने मुन्शीजी को उसके जवाव के लिए तार दिया था ? क्या यह सत्य नही है कि निरालाजी ने 'प्रभा' में 'भावों की भिड़न्त' लेख छपने की सूचना पाकर उसे रुकवाने के लिए कानपुर का धावा किया था ? क्या यह सत्य नहीं है कि 'प्रभा' में उस फर्मे के छप जाने के कारण वहाँ से निरालाजी निराश होकर लौटे थे ? यदि निरालाजी में हिम्मत हो तो वह उक्त वातों की सत्यता जाहिर करें !"

निराला मुन्शीजी से पूछे विना ही चुपचाप चल दिये थे। मुन्शीजी ने 'निर्मल' से कहा, मालूम होता यह जा रहे हैं तो मैं रोक लेता। शिवपूजन सहाय निराला की ९० फी सदी कविताएँ नही समझते। अगर समझते हों तो चुनौती है, 'परिमल' की तीन-चौथाई कविताओं की व्याख्या करें। शिवपूजन सहाय भले आदमी हैं पर असहाय हैं ! निराला को अन्तिम चुनौती—इल्ज़ाम का माकूल जवाव दो, जूते और गाली-गलौज से निराला के काव्य-साहित्य की परख वन्द न होगी।

आलोचना में दादागीरी की यह अनोखी मिसाल थी। निराला जव तक एक अस्त्र व्यर्थ करें, तव तक वह दस नये गढ़कर उन पर फेंक देते थे। शिवपूजन सहाय निराला के घनिष्ठ मित्र हैं, उनकी कविताएँ समझते हों तो व्याख्या करें ! वहुत-सा समय और शक्ति खर्च करके यदि शिवपूजन सहाय 'निर्मल' का काव्यज्ञान वढाने के लिए यह दु:साध्य कार्य कर भी डालें तो वह दो पंक्तियों में यह कहकर उसे ध्वस्त कर देंगे कि सारी व्याख्या स्वयं निराला की लिखी हुई है और वह स्वयं उसे नही समझते; 'वर्तमान धर्म' के भाष्य की तरह वह निरर्थक है !

मुशी-सेठ-निराला के कैसे संवंध थे, किसने किससे क्या कहा, निराला कानपुर कव किसलिए आये, कौन जाने ? 'निर्मल' जव इतने जोर से अपनी वात कह रहे हैं, तव उसमें कुछ-न-कुछ सचाई तो होगी ही ! यह निराला के चरित्र पर दूसरी दिशा से आक्रमण था, उन्हें जरायमपेशा लेखक सिद्ध करने का नया प्रयास था। निराला

के चुप रहने का लोग यही अर्थ लगाते कि आक्षेप सत्य है। उन्हे साहित्य-रचना छोड़ कर अपनी शक्ति इस कीचड को धोने मे खर्च करनी पड़ी। पर सारे विवाद मे उन्होंने स्वयं 'निर्मल' के चरित्र पर एक शब्द भी नही लिखा।

मुन्शी नवजादिकलाल ने किससे कब क्या कहा, यह वही बता सकते थे। निराला लखनऊ में थे, मुन्शीजी इलाहाबाद मे। निराला ने उनसे पत्र लिखकर पूछा। मुन्शीजी ने उत्तर दिया, "अभ्युदय मे छपा हुआ निर्मलजी का लेख पढा। उन्होंने मेरा कहा हुआ जो कुछ उद्धृत किया है यह आपादमस्तक मिथ्या है। लेख छपने से पूर्व मुझसे और निर्मलजी से आपके सम्बन्ध मे कभी कोई बातचीत नही हुई।" 'निर्मल' और मुन्शी नवजादिकलाल दोनों इलाहाबाद मे थे। 'निर्मल' चाहते तो अपनी बातों के समर्थन मे मुन्शीजी से वक्तव्य लेकर छाप सकते थे। पर यह सब करना उन्होंने उचित न समझा।

निराला ने व्यग्य किया, आक्षेपो के उदात्त स्वर का क्या कहना है! 'निर्मल' कह सकते है, यह पत्र भी जाली है! जो भी चाहे निराला के पास आकर पत्र देख सकता है, मुंशीजी के हस्ताक्षरों का मिलान कर सकता है!

'निर्मल' ने इसका प्रमाण माँगा था कि मिश्रबन्धुओं के अनुसार पंत 'गुंजन' में कुछ गिर गये है। निराला ने कहा—सब प्रमाण हमी से लोगे, तुम्हारी बातें निष्प्रमाण भी सच हैं! लेकिन 'मिश्रबंधु-विनोद' के पृष्ठ ३३२ पर लिखा है, "सुमित्रानन्दन पंत ने केवल 'पल्लव' में साहित्यिक गौरव का चमकता हुआ उदाहरण दिखलाया है।" इस 'केवल' का अर्थ क्या है? 'गुजन' मिश्रबन्धुओं के पास मंगलाप्रसाद पारितोपिक के लिए आया था। 'निर्मल' लखनऊ आकर मिश्रबन्धुओ से स्वयं पूछ सकते हैं। "हम लोगों से उन्होंने ऐसा ही कहा है, प्रमाण भी दिया जा सकता है।"

निराला ने पत की कविता का जो अर्थ लिखा वह 'निर्मल' के लिए बेबुनियाद है। अपना विशद अर्थ क्यों नही लिखा? 'ज्योत्स्ना' की भूमिका ज़बरदस्ती लिखी? निस्संदेह, बहुत पुष्ट तर्क है। पर कहिए तो पंतजी से ही इसका प्रमाण दिलाया जाय कि पहले मैंने विज्ञप्ति लिखने से इन्कार किया था। पंतजी से मैंने कहा था, "जब आप भी पाँच सवारो मे एक है, मुझसे भूमिका के तौर पर कुछ न लिखाइये, इससे आपकी इज्ज़त घटेगी। मैं होता तो न लिखाता। मैं समर्पण करना अच्छा समझता हूँ, भूमिका लिखना बुरा। पंतजी इन्कार इसलिए नही कर सकते कि उस समय श्री दुलारेलालजी भार्गव भी थे, वह गवाह है। यह ज़रूर है कि पंतजी का मुझसे कुछ लिखाना उनकी सहृदयता का सूचक है। लोगों को मेरा 'टोन' अच्छा नही लगा, शायद इसलिए कि मैंने गुलाब के काँटों का जिक्र किया था। पर 'लीडर' और 'अभ्युदय' में जो आलोचनाएँ निकली है, उनमें तो कांटे ही ऊपर हो रहे हैं। केवड़ा के जैसे सूंघते ही नाक छिदती है। मैंने तो उन्हे गुलाब के नीचे रखा था।"

'ज्योत्स्ना'-प्रसंग के बाद उन्होंने 'प्रभा' के लेख और कानपुर जाने की घटना के बारे मे लिखा—"भगवन्! मैं कलकत्ते से आक्षेपवाली 'प्रभा' के निकल जाने के बाद रवाना हुआ था। जब मैंने स्वयं अपनी कविताओं के संबन्ध में पत्र प्रकाशित करा

दिया तब 'प्रभा' में रुकवाने से मुझे लाभ क्या होता? कलकत्ते मे चलने का कारण यह था कि उसी साल, १९२४ ई० में, एक सेटलमेंट (settlement) अवध में हुआ था। मेरी भी थोड़ी-सी ज़मींदारी हक़वाली जमीन और बागात हैं, इनका रेकार्ड दुरुस्त करवाना था। इनका मैं ही मालिक था और हूँ। हम लोग बीघापुर स्टेशन उतरने के लिए पहले कानपुर जाते हैं, फिर वहाँ से बीघापुर। प्रयाग से भी रास्ता है, पर तब ऊँचाहार और डलमऊ दो जगह गाड़ी बदलनी पड़ती थी। (अब डलमऊ-ऊँचाहार वाली लाइन बन्द हो गई है) देर हो जाती थी, हैरानी ऊपर से होती थी। अस्तु, कानपुर से गाँव जाकर गाँव से मैं कानपुर गया था। विद्यार्थीजी के समय तक मैं बराबर नवीनजी से कानपुर जाने पर मिलता रहा हूँ। मुमकिन है, वह नवीनजी से मिलने का पहला मौका रहा हो। कानपुर मैं खासतौर पर इस उद्देश्य से गया था कि आचार्य द्विवेदीजी उस समय जुही में थे, उनके दर्शन करने थे। गाँव आने पर मैं दो-एक बार द्विवेदीजी के दर्शन करने जाया करता था। मुंशीजी को मेरे चलने की खबर नही हुई, यह बिलकुल गलत है। मैं चालीस रुपये मुन्शीजी ही से खर्च लेकर चला था। यह रकम अब भी 'मतवाला' के कैशबुक में दर्ज होगी। उस समय महादेवबाबू मिर्जापुर थे। 'प्रभा' तब कमर्श्यल प्रेस, जुही, में छपती थी। द्विवेदीजी बगल ही में रहते थे। नवीनजी के साथ एक ही एक्के में द्विवेदीजी के आवास को गया था। इसी यात्रा में इससे पहले भी मैं एक बार जा चुका था। नवीनजी ने बादवाली 'प्रभा' मे मेरी तारीफ़ में एक नोट लिखा था जिसे प्रेस में ले जाकर उन्होंने मुझे दिखाया था। नोट केवल प्रशंसात्मक था, इसलिये मैंने नवीनजी से निकाल देने का अनुरोध किया था। नवीनजी से यह मालूम कर कि सम्पादकीय मैटर भी बढ़ रहा है, मैंने उस नोट को निकाल देने पर और जोर दिया था। इस प्रकार आक्षेप के बाद वाले अंक की तारीफ निकाली थी। जरा नवीनजी से भी पूछा जाय। इन दोनों बातों में किसे सच कहते हैं। इसके प्रमाण की कोई गुंजाइश रही नही, नवीनजी का कहना कहना है। फिर भी मैं यह प्रमाण दे दूँगा कि आक्षेपवाली 'प्रभा' के निकलने के बाद मैं कलकत्ते से चला था।"

इस रक्षात्मक संग्राम में निराला तिल-तिल भूमि के लिए लड़ रहे थे। नाजुक मौकों पर धैर्य से काम लेते हुए वह शत्रु का प्रहार व्यर्थ कर रहे थे।

'निर्मल' ने आरोप किया था कि निराला ने अपने बारे मे खुद लेख लिखकर मुन्शी नवजादिकलाल के नाम से छपवाया। निराला ने कहा, "इसका उत्तर मुन्शीजी से लिखाया जाना चाहिये।" और पूछा, "आप ऐसा किस आधार पर लिख रहे है ?" इसके बाद कलकत्ते में अपने भाषण और सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या द्वारा अपनी प्रशंसा का उल्लेख किया। गवाही में उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम पेश किया। "श्री बनारसीदासजी ही से पूछा जाय, मैंने अपनी क्षुद्रता का ज्ञान वहाँ भी रक्खा था—मैंने अपने अधूरे भाषण में यह श्रेय नहीं लिया, बल्कि 'जाँरा जुग-परिवर्तन कोरेछेन' कहकर गुप्तजी, प्रेमचन्दजी, प्रसादजी, पंतजी, आदि, जो-जो इसके लिए उम्मेदवार खड़े हो सकते हैं, उन्हें बाँट दिया था।" उन्होने यह भी याद किया कि

धन्यवाद देनेवाले बंगाली सज्जन ने यहाँ तक कह डाला कि युगप्रवर्तन करनेवाली किरणो का कलकत्ते ही से फूटकर निकलना सम्भव है। "सब लोग सुनकर कान फट-कारते चले आये थे।" निराला ने चेतावनी दी कि अभी उनका एक वटा दस साहित्य समझा गया है, तब यह हालत है, जब पूरा समझ में आ जायगा, तब बड़ी खराब हालत हिन्दी की हो जायगी, विशेषतः हिन्दी के कवि और लेखकों की। "मेरी जन्म-भूमि बंगाल है"—युक्तप्रान्त की नाक की चिन्ता हो तो सचेष्ट हो जायँ।

निराला को इस समय लग रहा था, 'निर्मल' नही समस्त हिन्दी-भाषी जनता, तमाम हिन्दी साहित्यकार उनके विरोध मे उठ खड़े हुए है। उन्हें हिन्दी से, हिन्दी साहित्यकारो से घृणा हो रही थी। हिन्दी के लिए उन्होने किस-किस से संघर्ष नही किया, उसके साहित्य का स्तर ऊँचा करने के लिए कितना श्रम नही किया! उसका यह फल! हिन्दी-भाषी जाति मे जन्म लेना ही सबसे बड़ा अभिशाप है। मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध के सहारे करें विश्वसाहित्य का मुकाबला! निराला युक्तप्रान्त का नही, उसकी जन्मभूमि बंगाल है।

पंत-प्रसंग छूटा जा रहा था। अलोचक ज़रा ये दो पंक्तियाँ समझा दें—

जलद-पट से दिखला मुख चन्द्र,
पलक पल-पल चपला के मार।

चपला कहाँ है? चद्र मे? पलक कहाँ है? जलद-पट में! कैसी सूरत बनती है?

इस विवाद के अन्त में 'निर्मल' का उत्तर छापकर संपादक ने उसकी समाप्ति की घोषणा कर दी, साथ ही यह सुझाव भी दिया कि सहित्य-जगत् मे यह फैसला करने के लिए वोट ले लिये जायँ कि पंत-प्रसाद-निराला मे सबसे लोक-प्रिय कवि कौन है!

'निर्मल' ने लिखा कि निराला ने किसी आरोप का जवाब नहीं दिया, सिर्फ़ अपनी प्रशंसा की है। 'मिश्रबंधु-विनोद' का हवाला दिया पर जब तक मिश्रबंधु स्वयं नही लिखते तब तक इन बातों पर विश्वास नही किया जा सकता। पंत से प्रतिद्वंद्विता है, फिर मित्रता का दावा क्यों? सुनीतिकुमार ने की होगी तारीफ़, अपनी-अपनी राय है। निराला ने भावापहरण किया और कविता दुरूह होती है, यह अकाट्य तथ्य है। और मुन्शीजी ने कहा और फिर कहा। अब वह बच निकलना चाहते है तो झूठ की ज़िम्मेदारी उनके सिर।

तीन महीने तक यह विवाद चलता रहा। जब तक विवाद समाप्त न हो जाय, तब तक और किसी काम मे मन लगाना संभव न था। तीन महीने तक निराला का साहित्य-रचनाक्रम बन्द रहा। गरीब लेखक न लिखे तो खाये कहाँ से? निराला ने प्रत्युत्तर मे दो लम्बे लेख लिखे थे; इनसे पारिश्रमिक मिलने का सवाल न था। संपादक ने उन्हे छाप दिया, यही क्या कम था! विवाद की शुरूआत 'निर्मल' ने की थी, समापन-वक्तव्य का अधिकार भी उन्ही को मिला। विवाद से निराला और हिन्दी-साहित्य को जो हानि-लाभ हुआ, उसके लिए जितना 'निर्मल' जिम्मेदार थे, उतना ही 'अभ्युदय'-संपादक। विवाद पर हिन्दी आलोचक चुप रहे। निराला को स्वयं ही आक्षेपो का उत्तर देना पड़ा।

उनके मन मे कभी-कभी भयंकर ऊब उठती थी। साहित्य रचना व्यर्थ है। क्या रखा है इस हाय-हाय में ? किसके लिए लिखें ? साहित्य की वृद्धि व्यापक सहयोग चाहती है। साहित्य का निर्माण समष्टि के लिए होता है। जो संपन्न व्यक्ति हैं, वे अपने वैभव-विलास पर हज़ारो खर्च करते है, लेखकों के यहाँ फाके हाते है। निराला ने 'सुधा' मे अपने दिल के फफोले फोड़ते हुए लिखा, "हम नाम लेकर नही लिख रहे, पर हिन्दी के प्रतिभाशाली अनेक लेखकों और कवियों को जानते हैं, जो इसी कारण ऊबकर अब लिखना बन्द करनेवाले है; यों भी, उनसे जितनी आशा की जाती थी, उतनी नहीं पूरी हुई, कारण, उनकी रचना बिकी नहीं, इसलिए प्रकाशक को दूसरी कृति लेने की हिम्मत नही हुई, न अच्छे दाम न मिलने के कारण, अच्छा निर्वाह न हो सकने की वजह उन्होंने कुछ लिखा।"

१३ अगस्त सन् '३४ के 'अभ्युदय' में ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' का समापन-वक्तव्य छपा। इस मास के अन्त में निराला ने टिप्पणी लिखी—'साहित्य तथा हमारे लेखकों का संकट'। वह 'सुधा'-संपादक की ओर से तमाम लेखकों के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे थे पर अगस्त सन् '३४ में हिन्दी से ऊबकर जो प्रतिभाशाली कवि लिखना बन्द करने की बात सोच रहा था, वह निराला को छोडकर दूसरा और कोई नही था।

इस वर्ष एक दुर्घटना और हुई। निराला नारियलवाली गली मे रहते थे; रामकृष्ण भी उनके साथ थे। एक दिन वह कोई तस्वीर मढ़ने दे आये थे। तस्वीर मढनेवाले से कहा-सुनी हो गई। तस्वीरोंवाली गली में दोनों तरफ तस्वीरें मढ़ने वालों की दूकानें थी; पतली तंग गली अमीनाबाद की मुख्य सड़क की ओर खुलती थी। निराला तस्वीरवाले के यहाँ गये। उसने इनका वेश देखकर अपमानजनक ढंग से बात की। निराला ने उसे डाँटा। इस पर वह उठकर खड़ा हो गया और गालियाँ देने लगा। निराला ने उसका हाथ पकड़कर नीचे घसीट लिया और ज़मीन पर दे पटका। इस पर गली के दूसरे दूकानदार कूदकर निराला पर झपटे। निराला घिर गये। आगे-पीछे से लोग प्रहार करने लगे। वह उन्हें धक्का देते, गिराते, घूँसों से पीछे ठेलते बाहर निकल आये।

८

५८ नंबर, नारियलवाली गली

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय से जरा आगे श्रीराम रोड पर किताबो की एक छोटी-सी दूकान थी— सरस्वती पुस्तक भंडार। दूकान के मालिक रामविलास पाण्डेय के यहाँ निराला अक्सर घूमते हुए तमाखू खाने और कुछ देर बैठकर इधर-उधर की बातें करने आ जाते थे। सरस्वती पुस्तक भंडार ने स्वामी विवेकानन्द की कुछ पुस्तको के हिन्दी अनुवाद छापे थे। उन्होने वे अनुवाद निराला को दिखाये। जहाँ-तहाँ पृष्ठों पर निगाह दौड़ाने के बाद निराला ने कहा—पुष्ट गद्य है, कौन है अनुवादक ? पाण्डेयजी ने कहा—मेरे नामराशि है, यही युनिवर्सिटी मे पढते है।

एक दिन मैं सरस्वती पुस्तक भंडार में बैठा था कि निराला आये। रामविलास पाण्डेय ने परिचय कराया—इन्हीने विवेकानन्द का अनुवाद किया है। निराला ने सर हिलाया; कुछ इधर-उधर की बातें की, फिर चले गये। दो-एक बार इसी तरह और मुलाकात हुई। परिचय बढाने या बात करने की न उन्होने कोई उत्सुकता दिखाई, न मैंने। उन दिनों मै बी० ए० ऑनर्स फाइनल का छात्र था। अगले साल एम० ए० की परीक्षा के बाद मै 'परिमल' खरीदने के विचार से सरस्वती पुस्तक भंडार गया। पुस्तक लेकर मै चलनेवाला था कि इतने मे निराला आ गये। मैं बैठ गया। उन्होने पूछा—यह किताब आप क्यो खरीद रहे है ? मैंने कहा—इसलिए कि मैं इसे पढ़ चुका हूँ। उन्होने आँखो मे कुछ ताज्जुब भरकर कहा—तब ? मैंने जवाब दिया—मैं बहुत कम किताबे खरीदता हूँ; इसकी कविताएँ मुझे अच्छी लगती है। उन्हे जब इच्छा हो तब पढ सकूँ, इसलिए खरीद रहा हूँ।

मेरे हाथ से किताब लेकर पीछे के पन्ने पलटते हुए उन्होने कहा—शायद ये बाद की [मुक्तछन्द की] रचनाएँ आपको पसन्द न हों। मैंने कहा—वही तो मुझे सबसे ज्यादा पसंद है; पता नही आपने तुकान्त रचनाएँ क्यो की ? इसके बाद वह मिल्टन, शेली, ब्राउनिंग आदि अंग्रेज कवियो के बारे मे मुझसे खोद-खोदकर सवाल करते रहे। बाते ज्यादा मैने की, वह अधिकतर सुनते रहे। मेटाफिजिकल कवियो का प्रसंग छिड़ा। मैंने कहा—उनकी कविता मे विट (wit) होती है, कोरी भावुकता नही।

आपकी रचनाओं में केवल भाव नहीं हैं, बौद्धिक शक्ति है।

यह बात उन्हें अच्छी लगी। रामविलास पाण्डेय से उन्होने कहा—'विट', यह है असली चीज; 'विट' के बिना साहित्य क्या ?

मुझसे उन्होने पूछा—आपने 'अप्सरा' पढ़ी है ? मैंने कहा—हाँ। उन्होंने प्रश्न किया—कैसी लगी ? मैंने उत्तर दिया—अच्छी नहीं लगी; किसी नौसिखिए की-सी रचना लगती है।

उनके चेहरे से प्रसन्नता का भाव गायब हो गया, पर उन्होने बड़ी नर्मी से कहा—आप उसे फिर पढ़िए।

मैंने स्वीकार किया। वह गंगा पुस्तकमाला गये और वहाँ से 'अप्सरा' की प्रति लाकर दी। मैंने तीन दिन बाद वही उसी समय मिलने का वादा किया। घर आकर मैंने 'अप्सरा' दोबारा पढ़ी; कागज पर अपनी आलोचना के मूल सूत्र लिख लिये। निश्चित दिन और समय पर वह आये। दूकान के भीतरी भाग में हम दोनों बैठे। करीब घंटे-भर तक मैं 'अप्सरा' की आलोचना करता रहा; कुछ बाते उन्होने मानी, पर अधिकतर वह मेरे तर्को का खंडन करते रहे। मेरी आलोचना का मुख्य सूत्र यह था कि उपन्यास में परिवेश का चित्रण बहुत कमजोर है; कलकत्ते के प्रसंग में यह नहीं मालूम होता कि हम किसी बड़े शहर के भीतर घूम रहे है। लगता है, अपने सीमित व्यक्तिगत अनुभव को लेखक ने कथा का रूप दिया है।

निराला ने मेरा तर्क स्वीकार न किया, न मैंने 'अप्सरा' को सफल उपन्यास माना। उन्होंने कहा—आपने 'देवी' पढ़ी है ? मैंने कहा—नही। उन्होने दूसरे दिन 'सुधा' के दो अंक लाकर दिये जिनमें 'देवी' और 'चतुरी चमार' कहानियाँ प्रकाशित हुई थी। अब हम दोनों रोज ही मिलते थे और अक्सर साथ घूमने निकल जाते थे। मैंने कहा—ये कहानियाँ तो बहुत ही अच्छी हैं; ऐसा गद्य हिन्दी मे मैंने नहीं पढ़ा।

गद्य की विशेषता बताने के लिए मैं शब्द ढूँढ़ रहा था कि उन्होने प्रसंग बदल दिया मानो अपनी प्रशंसा सुनना उन्हें पसंद न हो। 'चतुरी चमार' पढकर मुझे मालूम हुआ कि वह उन्नाव ज़िले के रहनेवाले हैं। पता नही कब खड़ीबोली छोड़कर वह मुझसे बैसवाड़ी में बातें करने लगे। अब चुपचाप सुनते रहने की मेरी बारी थी। सड़को पर चलते हुए, रात को अमीनाबाद पार्क में बैठे हुए वह बाते करते थे और मैं सुनता था। कभी वह आधी दूर मुझे घर तक छोड़ने आते, मैं कहता, आप अकेले क्या जायँगे, मैं उन्हें अमीनाबाद तक छोडने आता। कभी पार्क मे बैठे उन्हें देर हो जाती, वही कुछ फल वगैरह लेकर मेरे साथ खा लेते और फिर काव्य-चर्चा मे लग जाते। उनकी बातचीत से लगता था, बैसवाड़े का ठेठ किसान बोल रहा है जो पढ-लिख गया है और जो कविता का असाधारण प्रेमी है। उनकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। उन्हे सैकड़ों कविताएँ पूरी-की-पूरी या आंशिक रूप में कण्ठस्थ थी। वह वैष्णव कवियो के पद सुनाते, जहाँ-तहाँ हिन्दी में भाव समझा देते। मैं बँगला पढ लेता था, कुछ रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ पढी भी थीं। वह अधिकतर पाठ करते जाते, उनकी उँगलियों के इंगित से, मुख के भावों से कविता का आशय स्पष्ट हो जाता। अधिकतर वह रवीन्द्रनाथ

की कविताएँ सुनाते, 'प्रभात संगीत', 'चित्रा', 'मानसी', 'कथा ओ काहिनी' संग्रहों की रचनाएँ जिनमें प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य अधिक था, अध्यात्म और रहस्य का स्पर्श बहुत कम।

एक दिन दुखी मन से उन्होंने 'अभ्युदय' का वह अंक दिखाया जिसमें 'निर्मल' ने उनके काव्य को कर्कश और दुरूह कहकर निन्दा की थी। मैंने कहा—यह सरासर अन्याय है। क्या हिन्दी आलोचना का यही स्तर है? निराला चुप रहे।

मैंने 'परिमल' पर एक लेख लिखा। निराला की कविता में जीवन-सौन्दर्य के कैसे अनुपम चित्र हैं, यह सिद्ध करने के लिए मैंने उसे उद्धरणों से भर दिया। मुंशी नवजादिकलाल 'चाँद' के संपादक थे। उन्होंने मेरा लेख प्रकाशित किया। 'चाँद' की प्रति लिये हुए निराला दुलारेलाल भार्गव के यहाँ आये। वह चलते जा रहे थे और लेख पढ़ते जा रहे थे। उन्होंने लेख दुलारेलाल के सामने बढ़ा दिया। कहा— "देखिए, 'परिमल' की प्रशंसा में लेख छपा है; ही हैज़ टेकन दि एसेंस ऑफ परिमल!"

दुलारेलाल ने बड़ी उदासीनता से 'चाँद' का अंक निराला के हाथ से ले लिया। उन्हें शिकायत थी कि 'परिमल' बिकता नहीं है, इसलिए उन्हें विश्वास नहीं था कि कोई निष्पक्ष भाव से उसकी तारीफ करेगा। उन्होंने कहा—आपके किसी चेले का काम होगा। निराला ने कहा—यह लेख इनका है, ये अंग्रेज़ी के एम० ए० हैं, रिसर्च स्कालर हैं।

दुलारेलाल भार्गव ने एक निगाह मुझपर डालकर कहा—यह क्रिटिसिज्म तो है नहीं, तारीफ़ ही तारीफ़ है। निराला ने सहमत होते हुए कहा—हाँ, ऐप्रीसिएशन है, क्रिटिसिज्म होती तो धज्जियाँ उड़ा देते।

शायद वह 'अप्सरा' पर मेरी कही हुई बातें याद कर रहे थे। मैंने कहा—कविताओं में दोष न होंगे तो क्या जबरदस्ती दिखाये जायेंगे? कविताएँ सचमुच प्रशंसा के योग्य हैं। हिन्दी में कौन इतनी सुन्दर कविताएँ लिखता है?

निराला ने पूछा—आपको कौन-सी कविताएँ ज्यादा अच्छी लगीं? किन-किन में निशान लगाये?

मैंने कहा—निशान लगाने बैठा तो देखा, सभी में लगाता चला जा रहा हूँ। इसलिए निशान लगाना छोड़ दिया। जागो फिर एक बार, शेफाली वाली कविता और जड़े नयनों में स्वप्न निशा के उर की खिली कली वाला गीत—ये सब बहुत पसन्द हैं।

निराला ने दुलारेलाल से कहा—सुनते हैं? इन्हें 'परिमल' की इतनी कविताएँ पसन्द हैं कि इन्होंने निशान लगाना छोड़ दिया।

दुलारेलाल ने द्रवित होने का भाव जरा भी न दिखाया। उनका यही भाव रहा: 'परिमल' बिकता नहीं है; कोई उसकी तारीफ करता है तो जरूर उसमें कोई षड्यंत्र है। निराला दुलारेलाल को यह समझाने गये थे कि 'परिमल' महान् कृति है और अंग्रेज़ी में उच्च शिक्षाप्राप्त युवक यह स्वीकार करते हैं। पर गंगा पुस्तकमाला के संचालक अन्यमनस्क बने रहे। वह अपनी मेज़ के सहारे बैठकर कागज़-पत्तर देखने लगे और हम दोनों उन्हें नमस्कार किये बिना बातें करते फाटक से बाहर आ गये।

निराला की कविताएँ मैंने पाँच साल पहले शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वारा संपादित कविता-संग्रह 'परिचय' में देखी थीं। मैं तब झाँसी में पढता था। अपने सहपाठी मित्र बालनारायण पेंढरकर की कृपा से शेली, कीट्स, बायरन की बहुत-सी रचनाओं, बँगला में रवीन्द्रनाथ की अनेक क़विताओं और मराठी मे गडकरी के गीतों से परिचित हो चुका था। मिल्टन का 'पैराडाइज लॉस्ट' एक दिन कालेज की लायब्रेरी में मिल गया। मैं उसके प्रारम्भिक अंश एक ही सपाटे मे पढ़ गया। समझा बहुत कम पर मिल्टन के स्वर की उदात्त गरिमा ने मुग्ध कर लिया। अन्य कवि हेठे मालूम हुए। तभी 'परिचय' देखने को मिला। मुझे लगा—मिल्टन की स्वर-शक्ति केवल निराला में है, हिन्दी के अन्य सभी कवि निराला से हेठे हैं। शहर के पुस्तकालय से ढूँढकर मै पतली-सी 'अनामिका' लाया और उसे कई बार पढ गया।

लखनऊ विश्वविद्यालय में अपने हिन्दी अध्यापक बदरीनाथ भट्ट से मैंने पूछा—क्या आप निरालाजी को जानते हैं? उन्होने हँसते हुए कहा—हाँ, जानता हूँ; क्या आप उनसे मिलना चाहते है? मैंने कहा—नही! मैं रामगोपाल विद्यान्त रोड पर एक कमरे मे रहता था। कभी-कभी निराला को जाडे मे टोपा लगाये रुई के सलूके पर कुर्ता पहने सबदलबाग की खिड़की से निकलते देखता था। यहाँ अब सुन्दरबाग की कोठियाँ हैं। तब सबदलबाग के पुराने मकान थे; एक छोटा दरवाजा रामगोपाल विद्यान्त रोड की ओर खुलता था। साइकिल पर युनिवर्सिटी आते-जाते हीवेट रोड या लाटूश रोड पर मैं अक्सर उन्हें देखता था। वह कभी दुलारेलाल भार्गव के यहाँ से हाथ मे प्रूफ के कागज लिये हुए निकलते, कभी सुमित्रानन्दन पंत के साथ हीवेट रोड पर चलते हुए दिखाई देते। पंत अपने खास डिजाइनवाले कोट-पैंट पहने, निराला सादे कुर्ता-धोती में। दोनों के बडे-बडे बाल, पंत के सँवारे हुए, माथे पर विशेप सावधानी से साधी हुई छल्लेदार लट, निराला के बाल घने, अस्तव्यस्त, तगडी गर्दन के आसपास कंधों पर लहराते हुए। युनिवर्सिटी में अध्ययन करते हुए 'परिमल' मै पढ चुका था। निराला शेली, बायरन से घटकर नहीं, अंग्रेजी के श्रेष्ठ कवियों के समकक्ष हैं, यह धारणा दृढ़ हो गई थी।

भट्टजी ने जब पूछा—क्या आप उनसे मिलना चाहते हैं, तब मेरे मन मे उनसे मिलने की जरूर इच्छा थी। पर अपनी ओर से किसी बड़े आदमी से जाकर मिलना मैंने आत्मसम्मान के विरुद्ध समझा। इसलिए भट्टजी से कहा—नही। उन्होने समझा इसे निराला के प्रति कोई आकर्पण नही है। उन्होने निराला पर रामचंद्र शुक्ल का एक कवित्त सुनाया—काव्य मे रहस्य कोई वाद है न ऐसा जिसे लेकर निराला कोई पंथ ही खडा करे। कवित्त सुनाने के बाद वह उसका रस लेते हुए देर तक हँसते रहे।

इसके बाद अकस्मात् निराला से भेंट हो गई।

वह अपनी बात तूल देकर कहते मानो उन्हें कही जाने या काम करने की जल्दी न हो। विशेप रूप से तुलसीदास का महत्व समझाते। कभी खड़ीबोली, कभी बैसवाडी, कभी थोड़ी-सी अंग्रेजी मिलाकर वह विस्तार से अपनी बात समझाते। अंग्रेजी और बँगला के अनेक कवियों के नाम गिनाने के बाद एक दिन बोले—इन सब बड़ेन क

पढ़ित है तो ज्यू जरूर प्रसन्न होत है पर जब तुलसीदास क पढ़ित है तो सबका अलग धरि देइत है। वी सेट रहै। हमार स्वप्न यहै सदा रहा कि गंगा के किनारे नहाय कै भीख माँगि कै रही औ तुलसीदास क पढ़ी। जद्यपि खुराफात बहुत कीन है और अबै अपनि फील्ड छाँड़ि कै भागा नही चहित पर जीवन क संस्कार ऐसै है।

इसके बाद आनन्द-विह्वल होकर 'वर दंत की पंगति कुन्द कली' वाला सवैया सुनाया। सात काण्डो के रूपक की व्याख्या करके उन्होंने तुलसीदास के ज्ञानपक्ष का महत्व समझाया। उन्होने एक बंगाली मित्र का किस्सा सुनाया। निराला ने कहा था—तुलसीदास भारत के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि है। मित्र ने कहा था—वह तो भक्त थे। निराला ने पूछा था—जब भक्त सब-कुछ भगवान को दे दे, तब उसके पास क्या बचेगा ? यह अद्वैत नही है ?

तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ की तुलना करते हुए उन्होंने कहा—अभी मेरी छोटी आवाज है, नही तो रवीन्द्रनाथ की पोल खोलता। और जो पचास बर्स तक जियेन तो तुलसीदास औ रवीन्द्रनाथ पर याक तुलनात्मक स्टडी इनका चापर करै के बरे छाँडि जाब।

मैंने कहा—आप तुलसीदास पर एक किताब लिख डालिए। उन्होंने कुछ उत्ते-जित होकर कहा—तुलसीदास पर किताब तो लिखी पर याको पढ़इया होई बहिका हिन्दी मा ?

उनकी बातें सुनकर कभी-कभी लगता, वह सभी हिन्दीवालो को अपना शत्रु समझते है, मानो अकेले उनसे युद्ध कर रहे है। सरस काव्य-चर्चा के बीच अचानक उत्तेजना में कहे हुए वाक्य सुनकर मैं चकरा जाता। यह किससे लड़ रहे है, क्यो नाराज है, मेरी समझ मे न आता। मुझे चुनौती-सी देते हुए बोले—मारु नही खाय सकित। फटीचर हन मुला जो हिन्दीवाले चहै कि हम गदहा बनाय लेई, तौनु नही ह्वै सकत। हिन्दीवाले समुझतेहे नहिन। ज्यू भरिकै लिखै नही पाइत।

एक हिन्दी-प्रेमी मित्र का किस्सा सुनाया। मित्र बोले—'रंगभूमि' और 'गढ़ कुडार' मे, समझ मे नही आता, किसे बड़ा बताऊँ ? निराला ने कहा—उत्तर सरल है। तेईस बटा सौ गढ कुडार को, चौबीस बटा सौ रंगभूमि को। मित्र ने पूछा—किसी को तेतीस भी देते हो ? निराला ने जवाब दिया—हाँ, तेंतीस 'अलका' को। मित्र ने कहा—किसी और को भी ? निराला हँसकर बोले—पछत्तर 'अप्सरा' को, अस्सी 'लिली' को।

मैंने कई उपन्यासकारो के बारे में उनसे राय पूछी। कोई उन्हे पसन्द न था। वह बीस-बाईस से ज्यादा नम्बर किसी को न दे रहे थे। मैंने पूछा—वृन्दावनलाल वर्मा के बारे मे आपकी क्या राय है ? उन्होंने कहा—वृन्दावनलाल वर्मा क जो उपन्यासकार कहै सो महाचूतिया।

उपन्यास-चर्चा छोडकर कवियों मे बडे-छोटे का हिसाब लगाया जाने लगा। रवीन्द्रनाथ के बारे मे बोले—टैगोर एक अच्छे घर मे पैदा हुए थे। धन-दौलत थी। फरक उनमे मुझमे इतना ही है।

शाम को घूमकर लौटे। मैं उनके साथ नारियलवाली गली में उनके घर तक आया। दरवाज़ा खोलकर भीतर गये। नीचे अँधेरा था। मैं आँगन में खड़ा रहा। जीने में चढ़ते हुए उन्होंने आवाज़ लगाई—सरोज, घड़े में ठंढा पानी है? सरोज ने ऊपर से उत्तर दिया—हाँ, है। निराला ने फिर पूछा—केवड़ा पडा है उसमे? सरोज ने कुछ अधीरता से जवाब दिया—हाँ, हाँ, परा है। निराला ने ऊपर ले जाकर मुझे केवडे से सुवासित ठण्ढा पानी पिलाया।

कुछ दिन बाद मैं युनिवर्सिटी से दोपहर को साइकिल पर सीधा नारियलवाली गली पहुँचा। नीचे का दरवाज़ा भेड़ दिया गया था, कुंडी न लगी थी। मैंने आँगन में साइकिल रखी। ऊपर गया तो देखा निराला खाट पर बुखार में पड़े हैं। सरोज चली गई थी। घर में कोई न था। दो दिन से उन्होंने कुछ खाया न था। मैंने दवा ला देने को कहा। उन्होने मना किया। कहा, अपने-आप ठीक हो जायगा। मैं कुछ देर चुप-चाप बैठा रहा। वह आँखें बन्द किये लेटे रहे।

एक दिन फिर मिलने गया। दरवाज़े में धक्का दिया। भीतर से बन्द था। मैंने जोर से आवाज़ दी—निरालाजी! वह नहा रहे थे। वैसे ही भीगे हुए गीली धोती पहने दरवाजे तक आये। मुझे देखकर कहा—अच्छा आप है; मैं कहूँ, कौन बड़ी डाँट से पुकार रहा है।

मैं ऊपर जाकर बैठ गया। वह नहाकर आये। भीगे बालों मे कंघी किये बिना ही वह रवीन्द्रनाथ का 'गल्पगुच्छ' लेकर बैठ गये और गाँव के बारे में एक कहानी पढकर सुनाने लगे। कहानी लम्बी थी। आधी पढ़कर रख दी। बोले—बाकी कल सुनायेंगे। कल तक रुकने का मुझमें धैर्य न था। मैने कहा—पुस्तक दे दीजिये, कल पढकर लौटा जाऊँगा। उन्होंने कहा—इसकी बँगला समझ न पाओगे। मैंने कहा—मेरे पास डिक्शनरी है; उसकी सहायता से समझ लूँगा। उन्होने अपनी बात पर अड़ते हुए कहा—डिक्शनरी से यह बँगला न समझ पाओगे। चाहो तो मैं तुम्हे पढ़ा दिया करूँगा। मैंने कहा—नेकी फिर पूछ-पूछ! वह बोले—नेकी इसमें क्या है? तुम जैसे दो-चार स्टूडेंट मिल जायँ तो फिर क्या है!

उन्होने 'चयनिका' तथा रवीन्द्रनाथ की युवाकालीन पुस्तकों के नाम बताये। मैंने वे सब मँगवा ली और उन्हे पढने लगा। जहाँ समझ में न आता था, उनसे अर्थ पूछ लेता था। मुझे उत्साहित करते हुए बोले—हम लोग तो जैक आफ आल, मास्टर आफ नन हैं। तुम एक भाषा जानते हो और एक डिग्री लिये हो। अभी से इधर झुके हो। चार-पाँच साल में अच्छा काम करने लगोगे।

लखनऊ में चंडिदास फिलम की धूम थी। चंडिदास की भूमिका मे कुन्दनलाल सहगल और पार्वती की भूमिका मे जमुना। 'प्रेमनगर मे बनाऊँगी घर मैं तजके सब संसार'—गलियों में बच्चे ऊँची आवाज में यह गीत गाते घूमते थे। उदीयमान लेखक सर्वदानन्द वर्मा ने यह फिलम सत्रह बार देखा था। चार बार निराला भी देख चुके थे। पाँचवीं बार मेरे साथ देखने गये। आगे की कुर्सियों पर चवन्नी क्लास मे बैठे। एक जगह कुछ हँसी की बात थी। निराला इतनी जोर से हँसे कि हाल के दर्शक उन्हीं

की तरफ देखने लगे। उन्होंने सर झुका लिया और मुंह पर हाथ रखकर हँसी रोकने की कोशिश करने लगे।

उन्होंने 'अलका', 'लिली', 'प्रबन्ध पद्म'—तब तक की अपनी सभी प्रकाशित पुस्तकें भेंट की। पत्रिकाएँ दी जिनमें उनके लेख छपे थे। पांच-छह महीनों में उन्होंने अपनी एक भी कविता न सुनाई थी; दूसरों की रचनाएँ ही जैसे उन्हें ज्यादा पसन्द हों, वही सुनाते रहे थे। अब अपनी कविताएँ भी सुनाईं। मुझसे शेक्सपियर, मिल्टन आदि की ग्रन्थावली लेकर अपने-आप घोखने लगे।

मैं कमरा बदलकर कहीं दूसरी जगह जमने का विचार कर रहा था। निराला को मालूम हुआ तो उन्होंने अपने यहाँ रहने का निमन्त्रण दिया। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि इनके साथ रहने का अवसर मिलेगा। पर उन्होंने सावधान किया। कोई उनके साथ रहना पसन्द नहीं करता; लोग बहुत जल्दी परेशान हो जाते हैं। मेरी समझ में कुछ न आया।

मैं अपनी किताबें और बिस्तर लेकर उनके यहाँ पहुँच गया।

चारबाग स्टेशन से अमीनाबाद को आनेवाली सड़क से बाँयें फूटकर तंग चक्करदार सड़क है, जिसका नाम है नारियलवाली गली। अमीनाबाद, जनाना पार्क, अमीनुद्दौला पार्क, रामकृष्ण मिशन—सब नजदीक जहाँ दस-पन्द्रह मिनट में पैदल पहुँचा जा सके। अट्ठावन नम्बर मकान ऊँची कुर्सी पर बना हुआ, बगल में मकान-मालिक का घर, पडोस मे लेखक-साहित्यकार कोई नही, ज्यादातर बनियों के घर। नीचे की मंजिल में बैठक, आँगन, बरामदा, पीछे की ओर कमरा; बीच की मंजिल मे बड़ा कमरा, आँगन पर लोहे का टट्टर, पीछे की ओर कमरा और बरामदा; तीसरी मंजिल पर एक कमरा, टीन की छत, लोहे का टट्टर, खुली अटारी। रहनेवाले अकेले निराला। बीच वाली मंजिल मे बाहर की तरफवाला कमरा कुछ साफ था, दूसरे कमरो में कई साल की गर्द जमा थी। सबसे ऊपरवाले कमरे में मैंने अपना सामान रखा। निराला के कमरे मे जमीन पर दरी बिछी थी, कभी कोई आता था तो खातिर के लिए उस पर रजाई बिछा देते थे, रजाई पर कभी चादर, कभी अपनी धोती। एक तरफ पुराना संदूक जिसमे एकाध कुर्ता, कनटोप, जाड़े का सलूका। एक फूटा कुल्हड़ जिसमें पिछले हफ्ते-भर की थूकी हुई तमाखू की पीक थी। कमरे मे अखबारो और पत्रिकाओ के ढेर। मुझे नई बात मालूम हुई, निराला समाचारपत्र बराबर पढ़ते हैं। कमरे मे उनकी अपनी लिखी किताब एक भी न थी। एक बहुत पुरानी मटकी जिसमें ताजा पानी वह तभी भरते थे जब वह खाली हो जाती थी। पीछे के बरामदे के एक कोने में दो-चार बर्तन। नीचे की मंजिल मे नल के पास चन्दन के साबुन की एक बट्टी।

मैंने सोचा कि घर में झाड़ू लगा दी जाय और इनका कमरा भी साफ़ कर दिया जाय। पर यह प्रस्ताव उन्हें बिलकुल पसन्द न आया। उन्होंने कहा—अपना कमरा साफ कर लो; हम अपना कमरा जब जरूरत समझेंगे साफ़ कर लेंगे।

उन्होंने मुझे अपनी फिलासफी समझाई कि हर आदमी को अपना काम खुद करना चाहिए। हमें दूसरे से उतनी सेवा करानी चाहिए जितनी हम खुद उसकी कर

सकें। वह मेरे कमरे में झाड़ू लगायें, तभी उनके कमरे मे मेरा झाड़ू लगाना ठीक होगा। मनुष्य सब बराबर हैं। कोई बड़ा-छोटा नहीं है। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद में वही ब्रह्म है जो एक चमार में। बाप समझता है, वह बच्चे को पालता है, लेकिन बच्चा अपनी मुस्कान मे उसे जो देता है, बाप क्या उसका बदला दे सकता है ?

एक दिन वह कहीं गये थे। मैं बाज़ार से नई झाड़ू लाया। सारा घर साफ़ किया। दो गठरी कूड़ा पीछे की गली में फेंका। मेहतरानी ने निराला से शिकायत की : पता नहीं आपके यहाँ कौन आया है, जाने कहाँ का कूड़ा गली में भर दिया। निराला ने उसकी शिकायत मुझे सुनाई और कहा—तुम्हें यहाँ का हिसाब-किताब मालूम नहीं है।

घर की सफाई से वह प्रसन्न नहीं हुए; लेकिन अपने कमरे से उन्होंने तमाखू की पीकवाला कुल्हड़ हटा दिया।

सबेरे उठकर वह चाय पीने निकल जाते। मुझसे दो-तीन बार कहा, मैंने मना कर दिया। करीब मील-भर चलकर हीवेट रोड के ढाबेनुमा बंगाली रेस्तराँ में वह एक-दो कप चाय पीते। फिर लौटकर दातून आदि से निवृत्त होकर लिखने बैठ जाते। दोपहर तक उनसे बहुत कम बातें होती। मैं चुपचाप ऊपरवाले कमरे में अपने शोध-कार्य में लगा रहता। दोपहर को नहाकर वह होटल मे खाना खाने जाते; मैं अपना भोजन खुद बनाता था। भोजन करके लौटने के बाद वह सो जाते। घण्टे-दो-घण्टे सोने के बाद वह कुछ पढ़ते, अक्सर बाहर से कोई आ जाता और गप होती या ऊपर से मुझे बुला लेते और कोई कविता सुनाते। शाम होते हम दोनो घूमने निकलते, वह एक कप चाय पीते, फिर कैसरबाग या गोमती की तरफ़ निकल जाते। दो घण्टे बाद वह भोजन करने होटल में रुक जाते, मैं घर चला आता। होटल से लौटने पर वह कुछ देर बातें करते। रात को पढ़ते नहीं थे। कभी-कभी मेरी लालटेन के पास आ बैठते और अंग्रेजी की कोई कविता पढ़ने को कहते। यह उनका दैनिक कार्यक्रम था।

सफेद फूलस्केप कागज, लकड़ी का मामूली कलम जिसमे वह रेड इंक निब लगाते थे, नीली स्याही की एक पुरानी दवात—ये उनके लिखने के उपकरण थे। न मेज, न कुर्सी; जमीन पर बैठकर या लेटकर वह लिखते। पूरी कविता या लेख लिख लेने के बाद उसे सुधारने बैठें, ऐसा अभ्यास उन्हे न था। लिखते समय ही काटकर सुधारते जाते थे, फिर उसकी स्वच्छ प्रतिलिपि कर लेते थे। अक्सर आधा-चौथाई पृष्ठ लिख लेने के बाद उन्हें लगता, बात बनी नहीं और वह उसे उठाकर एक तरफ रख देते। कमरे में कागज के बड़े-छोटे टुकड़ों का ढेर लग जाता जिनमें किसी रचना के अंश, कुछ पंक्तियाँ लिखी होती। कुशल गृहस्थ की तरह वे इन्हें सँजोये रहते और कागज मे बची हुई जगह फिर कुछ लिखने के लिए इस्तेमाल करते। कभी-कभी पोस्टकार्ड लिखते हुए उन्हें साधारण-सी बातें कहने में भी दुबारा प्रयास करना होता। अधूरा पोस्टकार्ड उठाकर एक तरफ़ डाल देते; दूसरा लिखने लग जाते।

स्वामी विवेकानन्द के 'सौंग आफ संन्यासिन' का अनुवाद करने बैठे। घण्टे-भर परिश्रम किया लेकिन अनुवाद पसन्द न आया। बोले—हिन्दी में ऐसी रचनाओं का अनुवाद हो ही नहीं सकता।

कागज़-कलम रखकर वह चाय पीने चले गये। मैंने सोचा—यह सरासर हिन्दी का अपमान है जो कहते हैं, अनुवाद हो ही नहीं सकता। इन्हे अनुवाद करके दिखा देना चाहिए।

मैंने घण्टे-भर में अनुवाद कर डाला। जब वह चाय पीकर लौटे तो मैंने अनुवाद दिखाया। वह उदारता से बोले—अच्छा किया है; अब मेरे अनुवाद की ज़रूरत नहीं। इसे 'माधुरी' में छपा देंगे।

वह मुझे लेकर 'माधुरी'-आफिस गये, रूपनारायण पाण्डेय को अनुवाद दिया। पाण्डेयजी ने छापने का वादा करके अनुवाद रख लिया पर छापा नहीं। निराला ने दो-एक बार उन्हे स्मरण कराया पर वह टालते रहे। दरअसल अनुवाद अच्छा न था। पाण्डेयजी न निराला का आग्रह टालना चाहते थे, न पत्रिका मे अनुवाद छापकर उसका स्तर गिराना चाहते थे। निराला कैसा अनुवाद चाहते थे, उस समय यह समझना मेरे लिए सम्भव न था।

मैंने 'माधुरी' के लिए लेख लिखा। एक ही बैठक मे लेख पूरा हो गया। निराला ने आश्चर्य से पूछा—लेख पूरा हो गया ? मैंने कुछ गर्व से कहा—हाँ।

उन्हे अपना परिश्रम याद आया। कविता दरकिनार, गद्य-लेख पूरा करने में भी कई दिन लग जाते थे। निराला भाषा से युद्ध कर रहे थे, उसे मोड़कर अपने साँचे मे ढाल रहे थे। दूसरो के लिए ऐसी कोई समस्या नही है, यह देखकर उन्हें आश्चर्य होता। उन्हे इस समय याद न रहता कि उन्हें और दूसरों को भाषा के माध्यम से जो व्यक्त करना है, उसमे ज़मीन-आसमान का फर्क है।

रचना से पहले दिमाग के एक कोने में सारा कच्चा माल इकट्ठा कर लेते थे। नोट्स तैयार करने मे उन्हे विश्वास न था। मुझे कभी किसी लेख के लिए नोट्स लिखते देखते तो हँसते।

किसी लेख या कविता के बारे मे—जिसकी चर्चा वह करते रहे हो और लिखी न हो—मैं पूछता कि कब लिखेंगे, तो वह जवाब देते—"तिनू स्वाँगा प्वाँगा दुरुस्त कइ लेई।" अर्थ यह कि आवश्यक सामग्री सहेज ले, तब लिखना शुरू करें। मुझे लगता कि कतकी के मेले में जाने से पहले कोई किसान अपनी गाड़ी 'औंग' कर—पहियों की धुरी में तेल आदि लगाकर—तैयार हो रहा है।

'रँगामेजी' देखिए। अर्थात् शब्द-अर्थ-ध्वनि के विभिन्न स्तरों पर उन्होंने जो मूल विषय-वस्तु को रच-रचकर सँवारा है, उसका मुलाहज़ा कीजिए। उनके लिए 'रँगामेजी' मन को प्रसन्न करनेवाली क्रिया थी पर रचना में मुख्य वस्तु थी 'आइडिया'। इसमे भाव, विचार, मूर्ति-विधान—सब-कुछ शामिल था। उनके लिए आइडिया कोई अमूर्त कल्पना न थी; वह रचना का अन्तस थी जिसे मानो वह बहुत स्पष्ट देखते थे। पंत में आइडिया की कमजोरी उन्हें खलती थी। मूर्तिकार की तरह इस 'आइडिया' को वह गढ़ते, काटते, छाँटते, सँवारते थे।

कलाकार जिस कौशल से 'आइडिया' को मूर्त रूप देता हुआ पूर्णता के लक्ष्य की ओर बढता है, वह उसका 'ड्रिबलिंग' है। ध्यानचन्द की स्टिक से लेकर रवीन्द्रनाथ

की कलम तक के वह समान रूप से कायल थे – ड्रिबलिंग की दृष्टि से। रचना-कौशल उनके मन को कहीं बौद्धिक क्रीड़ा की तरह उल्लसित करता था।

वह धीरे-धीरे लिखते थे, खास तौर से प्रेस कापी तैयार करते हुए कम्पोजीटरों की सुविधा का बड़ा ध्यान रखते थे। अक्षरों की वक्र भंगिमाएँ उनकी अलंकरणप्रियता का परिचय देती थी। कभी-कभी हिन्दी भाषा के साथ हिन्दी लिपि से भी वह असन्तोष व्यक्त करते। अंग्रेजी, बँगला, तेजी से लिखी जा सकती है! हिन्दी लिखने में बड़ा समय लगता है। पर उन्हे लिखने की जल्दी है, ऐसा कभी देखने में नही आया। वह अपना हर काम धीरे-धीरे, फुर्सत से, सोच-विचार के साथ करते थे। खाना पकाने और सडक पर चलने से लेकर लिखने तक उनकी हर क्रिया से यही प्रकट होता था कि इन्हें जल्दी नही है, गति धीमी पर दृढ और निश्चित है। हंसते थे तो देर तक, पहले हँसी की झलक आँखों में दिखाई देती, फिर गले से तूफान उठता हुआ ओठो तक आता, कभी उसे रोकने की कोशिश करते और ओठों के बीच से बाँध तोड़कर हँसी फूट पडती।

कही सुशीलकुमार चौबे का गाना था। निराला भी सुनने बैठ गये। सुशीलकुमार फैयाज खाँ के शिष्य, गायन मे उनका अनुसरण करते थे। निराला ने कुछ देर उनकी मुद्रा देखी, गले से निकलती झटकेदार औ-औ की आवाज सुनी और अचानक उठकर भागे। सड़क पर आकर देर तक हँसते रहे।

उनके पास एक सुन्दर जिल्दवाली बढ़िया छपी हुई कविता-पुस्तक आई। उसमें भौंरे पर एक कविता थी—'भन भन भन भन भन भनन भनन।' वह कविता पढ़ते जाते और इस पंक्ति के आने पर बेतहाशा हँसते। उसी संग्रह मे एक और कविता थी—'विएना की सड़क, विएना की सडक।' इस पंक्ति को दोहराकर उन्होने काफी आनन्द प्राप्त किया।

भगवतीचरण वर्मा आये। मैंने पहली बार दर्शन किये। निराला ने रजाई विछा रखी थी; उन्हें सामने बिठाया। कविता सुनाने को कहा। वर्माजी ने गाकर कविता सुनाई—'हम दीवानो की क्या हस्ती है, है आज यहाँ कल वहाँ चले।' उनके गोलाकार मुख से रुक-रुककर जब वर्णो के गोले निकलते तब श्रोता सचमुच विह्वल हो जाते। निराला पालथी मारे घुटने और तलवे पर हाथ मारकर ताल देने लगे। उनकी आँखों मे शरारत भरी हुई थी पर बाकी चेहरा एकदम गम्भीर था। बदतमीजी न हो, इसलिए मैं उठकर चला गया।

श्यामविहारी मिश्र से भूषण का कवित्त सुना था। भौहें मटकाते हुए दीर्घ स्वरों को ह्रस्व की तरह पढ़ते हुए उन्होने नकल की—'इंद्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर' इत्यादि। राह चलते किसी बड़े आदमी ने हाथ उठाकर नमस्कार करने के बदले भौंहें सिकोड़कर अभिवादन किया। मुँह मटकाते हुए निराला ने उसी की तरह भौहे सिकोड़कर उसका उत्तर दिया। वह कब क्या सोचकर हँसने लगेगे, यह शायद वह भी नहीं बता सकते थे। उन्हें नौटकी की एक लाइन याद आई—'ऐ रावन तू धमकी दिखाता किसे, मुझे मरने का खौफो खतर ही नहीं।' नौटंकीवालों की तर्ज पर पंक्ति दोहराई और हँसते रहे। उन्हें पंत की पंक्ति याद आई—'हिलाते अधर-प्रवाल।'

जरा कल्पना कीजिए—पंतजी अपने अधर-प्रवाल हिला रहे हैं। हँसी के मारे चेहरा लाल हो गया।

कलकत्ते से 'काव्य-कलाधर' कविता-पत्र निकला था। वड़ा सुन्दर छपा था। सम्मति माँगी गई थी। निराला ने लिखा—हिन्दी मे अनेक सुन्दर पत्र निकले और काल-कवलित हो गये; अव काव्य कलाधर की वारी है।

यह सम्मति उन्होने भेजी नही लेकिन प्रसन्नता के पहले झोके मे जो मन मे आया, वह लिख ही डाला। 'सुधा' का कोई विशेपाक था। कवर पर पोचा के बीजो का विज्ञापनवाला रगीन चित्र था। निराला ने सम्मति लिखी—चित्रो मे पोचा के वीज का चित्र सवसे सुन्दर है।

यह सम्मति भी उन्होने भेजी नही।

किसी हिन्दीप्रेमी ने निराला से प्रश्न किया—हिन्दी मे सवसे वड़ा कवि कौन है? निराला ने कोई उत्तर न दिया, इधर-उधर की वाते करते रहे। जव वह सज्जन चले गये तो बोले—द्याखौ चूतिया क, हमही से पूछत है, हिन्दी का सवसे वड़ा कवि को है!

'ज्योत्स्ना' मे दो पात्र है—उलूक और झीगुर। कौन लेखक किसका अभिनय करे तो नाटिका सफल हो, इस प्रसंग मे निराला सुझाते—उल्लू का पार्ट प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव करें, झीगुर का पार्ट सुमित्रानन्दन पंत!

दुलारेलाल भार्गव को वडे दुलार से—पीठ पीछे—वह कभी-कभी दुलार्गव कहते। नये शव्द गढ़कर, शव्दो को नया अर्थ देकर वह विनोद करते। वेटराज की कविता कैसी लगी?—उन्होने पूछा। मै समझा नही; पूछा—कौन? भगवतीचरण वर्मा के कविता-पाठ की नकल करते हुए वोले—अरे वही जो ओक्-ओक् करके कविता पढ़ रहे थे! वर्माजी के नाटे कद को लक्ष्य करके उन्होने वेटराज शव्द गढा था।

निराला के भीतर का स्पोर्ट्समैन हाकी-कुश्ती से लेकर शव्दो की ध्वनि तक क्रीड़ा का आनन्द लेता था। वह ध्यानचन्द की हाकी के परम प्रशंसक थे। ध्यानचन्द की स्टिक और रवीन्द्रनाथ की कलम की तुलना करते हुए वह उनके कौशल की प्रशंसा करते। गामा की कुश्ती के वारे मे कहते—वह पहले से सोचा हुआ दाँव नही लगाता; मौके पर नया दाँव गढकर तुरत लगा देता है। कला की दृष्टि से वह गामा, ध्यानचन्द और रवीन्द्रनाथ को एक स्तर का मानते थे।

नत्था चंगड और क्रैमर की कुश्ती हुई; निराला टिकट खरीदकर देखने पहुँचे। नत्था चंगड़ ने अखाड़े मे आकर उछलना, गरजना शुरू किया। क्रैमर गाउन पहने कुर्सी पर वैठा रहा। कुश्ती शुरू होने के निश्चित समय क्रैमर अखाड़े मे आया। नत्था चंगड लम्वा, दैत्याकार, क्रैमर उसे देखते नाटा, शरीर अत्यन्त वलिष्ठ। नत्था के शरीर मे तेल लगा था। क्रैमर ने उससे कहा—शरीर पर अखाडे की मिट्टी मलो। यह क्रिया सम्पन्न होने पर कुश्ती शुरू हुई और पन्द्रह सेकेंड मे समाप्त। क्रैमर ने अपनी मजवूत वाँहो से नत्था को गिरा दिया और आनन-फानन अखाड़े से वाहर आ गया। जव नत्था चंगड़ उठा तव क्रैमर अपनी कुर्सी पर वैठा सिगरेट पी रहा था।

निराला को मजा न आया। कुश्ती बहुत जल्दी खतम हो गई। लखनऊ के सादिक, कानपुर के अद्धा जैसे पहलवानों की कुश्तियाँ देर तक चलतीं, उनके दाँव-पेंच देखने में उन्हें मजा आता।

कहीं फुटबाल का मैच हो तो निराला ज़रूर देखने जाते। लखनऊ में फुटबाल के मैच देखकर उन्हें कलकत्ते के दिन याद आते। कान्यकुब्ज कालेज के प्रिंसिपल बालकृष्ण पाण्डेय से मिलकर लौट रहे थे। लड़कों को फुटबाल खेलते देखकर खुद भी किक लगाने पहुँचे। किक तो ठीक लगी लेकिन पुराने पंप शू ने सामने से मुँह बा दिया।

मैंने एक छोटा-सा उपन्यास लिखा था—चार दिन। उसमें दंगल का वर्णन करना था। मैंने कहा—दो-चार दाँवों के नाम बता दीजिए तो अपने हीरो को जिता दूँ। वह खड़े होकर मेरे ऊपर अपने दाँव लगाने लगे। मैंने सोचा, इन्होंने पटक दिया तो पक्के फर्श पर हड्डी पसली की खैर नहीं। मैंने कहा—ऐसे मेरी समझ में न आयेगा; आप लिखा दीजिए। ज़िद करने पर वे मान गये और एक पन्ना डिक्टेट करा दिया। अपनी कुश्ती-कला का प्रदर्शन न कर पाने पर उन्हे थोड़ा खेद अवश्य हुआ।

मैंने कहा—आप पंजा लड़ाने मे मुझसे नहीं जीत सकते। उन्होंने अविश्वास से हँसकर मेरा चैलेंज स्वीकार किया। पंजा लड़ाने बैठे। मै समझ गया, इन्हे पंजा लडाना नहीं आता। हाथ सावे रहा। ताकत उनमें बहुत थी पर उसका सही उपयोग न कर पा रहे थे। तीन-चार मिनट तक ज़ोर लगाते रहे। मैंने पंजा मोड़ा नहीं; बस, अपना बचाव करता रहा। बराबर की छूटी। मेरा पंजा न मोड़ पाने पर उन्हें काफी आश्चर्य हुआ।

थोड़ी-सी कसरत अब भी वह नित्य-प्रति करते थे। साधारणत: नहाने से पहले कुछ बैठकें करते, कमरे की चौखट पकड़कर डँड़ लगाते। बाँहें पहलवानों की-सी थीं, उँगलियाँ कलाकारों की-सी। लगता था, इनकी लम्बी उँगलियों में दो मोड़ हैं—पहले पोर के बाद, फिर दूसरे पोर के बाद। दूसरा हाथ लगाये बिना ही एक हाथ की उँगलियाँ सीधी फैलाकर चटखा लेते थे।

सीने में बाल बहुत कम थे। भौंहे भी हल्की थीं। निखरे हुए गेहुँए रंग का शरीर संगमर्मर में गढ़ी हुई मूर्ति-जैसा लगता था। चौड़ा माथा काले बालों से थोड़ा ढक जाता था। लम्बी नाक—स्थितिः पृथिव्या इव मानदंडः—उनकी दृढ संकल्प-शक्ति का प्रतीक थी। अपने चौड़े और मजबूत सीने को देखकर ही उन्होंने चुनौती के स्वर में लिखा था—मेरा अन्तर वज्रकठोर, देना जी भरसक झकझोर। उनके पतले ओठ मन में उठती व्यंग्य-विनोद की लहर की प्रथम सूचना देते थे। मद्यपान के बाद वे उन्हीं की पंक्ति चरितार्थ करते थे—सो गया सुरा स्वर प्रिया के मौन अधरों में। हल्की-भूरी पुतलियोंवाली उनकी बड़ी-बड़ी आँखें चेहरे में सबसे पहले ध्यान आकर्षित करती थीं। घृणा, क्रोध, हर्ष, विषाद के भाव सबसे पहले इन्हीं में छलकते थे; कविता-पाठ के समय वह जो शब्दों में न कहते, उसे आँखों से व्यंजित कर देते।

निराला का स्वर, उनका मौन, उनकी आँखें, हाथों की मुद्राएँ सब-कुछ अर्थ-

व्यंजक था। मन चंचल होता, कुछ सोचते होते तो पैर हिलाते रहते—चाहे पालथी मारे बैठे हो, चाहे कुर्सी पर। लिखने बैठते तो मन के केन्द्रित होने के साथ उनका शरीर भी जैसे स्थिर हो जाता था। करुण रस की कविता पढते हुए वह भाव-विह्वल हो उठते और उनका सारा शरीर कांप उठता था। ओजपूर्ण रचनाएँ पढते हुए उनकी पुष्ट मासपेशियाँ युद्ध के लिए मानो तन जाती।

यद्यपि वह काफी तगडे थे, फिर भी उन्हे अपने लड़कपन का स्वास्थ्य ही सबसे ज्यादा पसन्द था—जब वह सोलह साल के थे, जाँघें बोतल जैसी सुती हुई, कमर बालिश्त-भर और शरीर मे सीना ही सीना था। उन्हें कलकत्ते के दिनों का सौन्दर्य याद आता। किसी पानवाले या मित्र के यहाँ बड़े आइने मे चेहरा देखकर हाथ मे कान के ऊपर बाल समेटते हुए वह कहते—अब वह 'ग्रेसेज़' नही है, खार बहुत हैं।

उनके उठने-बैठने चलने-फिरने की हर मुद्रा मे यह प्रकट होता था कि उन्हे अपनी शक्ति पर सहज विश्वास है; वेश सँवारना उनके लिए आवश्यक नही है।

दाढी अक्सर बढ़ जाती थी। हफ्ते दस दिन मे नाई से हजामत बनवाते। घर मे वह स्वय शेव न करते थे। वेशभूषा मे एकदम लापरवाह थे। धोती या तहमत, कुर्ता, पैर मे चप्पल या पंप शू, कभी नंगे पैर, रूखे बड़े बाल—यह धज थी। धोती पर दवात लुढ़क गई। स्याही का धब्बा लगी धोती को तहमत की तरह बाँधे वह अमीनाबाद घूमकर आये। कहीं कवि-सम्मेलन होता या किसी संस्था मे भाषण करना होता तो हजामत बनवाकर, चंदन के साबुन से मुँह धोकर, बालो मे इत्र डालकर, स्वच्छ कपड़े पहनकर निकलते। उनका परिवर्तित वेश देखकर लगता था—कभी तो यह राजकुमार बन जाते हैं, कभी संन्यासी।

वह ऊपरवाले मेरे कमरे मे बहुत कम आते थे। जब आते थे, मैं उनसे चटाई पर बैठने को कहता, पर वह हमेशा ज़मीन पर बैठते। मैंने उन्हे अपने स्वप्न की बात बताई। परीक्षा देने जा रहा हूँ, देर हो गई है, जूता पहनना भूल गया हूँ, नंगे पैर ही परीक्षा-भवन मे पहुँच गया हूँ। निराला ने कहा—तुम पूर्व जन्म के सन्यासी हो, संन्यासी जूते नही पहनते।

उनकी निगाह मे संन्यासी ही मनुष्यो मे श्रेष्ठ था। कलकत्ते मे सन्यासियों के, विशेष रूप से स्वामी सारदानन्द के साथ रहने की बात याद करके वह कहते—बहुत बडे-बड़े आदमियो से मिले है, बहुत बडे-बड़े आदमियों को देखा है।

संन्यासियों के ध्यान मे डूबकर वह चुप हो जाते। उनके मुँह पर एक विनम्रता का भाव छा जाता। इस विनम्रता मे कहीं गर्व का भाव भी छिपा था—मैं स्वामी सारदानन्द का यंत्र हूँ; ब्रह्म मे लीन होकर वही मुझमे साहित्य लिखाते हैं; अन्य सभी साहित्यकार इस अनुभूति से वंचित हैं।

उन्हे विश्वास था कि रवीन्द्रनाथ की साहित्य-साधना का एक गुर योग है। कहते—वह घण्टों मेरुदण्ड सीधा किये एक ही आसन से बैठे रहते है।

मै दिनभर रिसर्च के काम मे लगा रहता। रात को लेटते समय कविताएं दिमाग मे आती। मैं लेटे-लेटे कापी पर पेंसिल से दो-चार पंक्तियाँ लिख लेता। निराला

उस समय कुछ न कहते पर सवेरे ज़रूर टोकते—तुम बैठकर लिखा करो तो और अच्छा लिखोगे।

स्वयं वह न पूजा-पाठ करते थे, न योगी की तरह आसन मारकर बैठते थे। शायद वह समझते थे, उनके लिए यह सब वैसे ही अनावश्यक हो गया है जैसे परमहंस होने पर रामकृष्ण के लिए।

संन्यासियों के बारे में निराला की बातचीत कितनी प्रभावशाली होती थी, इसका अनुमान एक घटना से हो सकता है। उनकी बातों से प्रभावित होकर कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह, बी० ए० की परीक्षा देने के समय, साधु बनने के उद्देश्य से, चित्रकूट चले गये। वहाँ से वह कहाँ गये, कुछ दिन तक किसी को मालूम न था। उनके पिता निराला का परिचय-पत्र लेकर काशी गये कि शायद वहाँ निराला के किसी मित्र के पास हों। सौभाग्य से कुछ दिन बाद वह घर लौट आये। निराला ने इस घटना पर 'अर्थ' नाम की कहानी लिखी।

निराला अक्सर रामकृष्ण मिशन जाते, वहाँ बँगला, अंग्रेजी, हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ देखते, उनके पुस्तकालय को अपने यहाँ आई हुई पुस्तकें, पत्रिकाएँ देते। संन्यासियों से बँगला में मिशन की कार्यवाही के बारे में बातें करते। उनसे दार्शनिक विषयों पर विवाद न करते। मिशन के एक कमरे मे मेरे अध्यापक दयामय मित्र रहते थे। ब्रह्मचारी, शेली और रवीन्द्रनाथ के भक्त, अपने खर्च के लिए पचास रुपये बचाकर सारी तनखाह मिशन को दे देते थे। युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष निर्मल-कुमार सिद्धान्त ब्राह्मसमाजी थे। निराला उनसे जितनी दूर थे, उतना ही रामकृष्ण-भक्त दयामय मित्र के पास। शाम को जब-तब उनसे मिलने जाते, बँगला-अंग्रेजी काव्य की चर्चा करते।

रामकृष्ण मिशन का सालाना जलसा था। संन्यासियो ने अध्यक्षता के लिए सिद्धान्त को बुलाया। निराला नाराज़ हुए और जलसे मे न गये। उन्होंने संन्यासियो से कहा—आप लोग बड़े आदमियों के पीछे क्यों घूमते हैं? सिद्धान्त के बदले कसिया मेहतर को अध्यक्ष बनाते तो मैं ज़रूर आता।

निराला के घर में पैसे रखने की कोई खास जगह न थी। बीस-पच्चीस रुपये से ज्यादा रकम शायद ही उनके पास कभी रही हो। इसे जेब मे डाल लेते या बक्से मे रख देते, जिसमें ताला न था। नीचे का दरवाजा अक्सर खुला रहता; सोने के पहले ही कुंडी लगाते। किताबें, कपड़े, बर्तन, रुपये, निराला ने किसी भी वस्तु का सग्रह करना मानो सीखा ही न था। एक बार कहीं से सौ-सवा सौ रुपये वह लाये। मेरे पास जल्दी खर्च हो जायेंगे, तुम रख लो—कहकर उन्होंने मेरे पास जमा कर दिये। पहले दस निकाले, फिर बीस, फिर पच्चीस—दस-पन्द्रह दिन मे सारी रकम साफ हो गयी। होटलवाले, पंसारी, फलवाले, नाई, धोबी, मकान-मालिक आदि के रुपये चढते रहते। एकमुश्त रकम मिली तो अदा कर दिये; जो थोड़े-से बचे वह तफरीह मे खर्च कर दिये।

उनके पास अपनी किताबें न रहती थी पर उनकी जरूरत अक्सर पडती थी—

पढ़ने के लिए नहीं, दूसरों को भेंट करने के लिए। वाहर से कोई आया है; उसे 'अप्सरा' या 'अलका' भेंट करनी है। गंगा पुस्तकमाला दूर है; इस समय वहाँ कौन जाय ? मुझे आवाज देकर कहते—अपनी प्रति दे देना, तुम्हे दूसरी ला देंगे।

मेरा नाम काटकर किसी दूसरे प्रियश्री को भेंट कर देते। एकाध वार याद करके मेरे लिए दूसरी प्रति ले भी आये, पर धीरे-धीरे उनकी दी हुई प्रायः सभी पुस्तकें मेरे कमरे से वाहर निकल गईं।

उन्हें अपने शरीर से प्रेम था, चौडे सीने, वलिष्ठ भुजाओ और लम्वे वल खाते केशो पर गर्व था। एक दिन सर गरमाया तो उस्तरे से सर घुटाकर वाल सड़क पर फिकवा दिये। आत्ममोह का जैसे नाश कर दिया हो।

वेदान्त की अपनी व्याख्या मे वह आत्मा को जितना महत्वपूर्ण समझते थे, उतना ही शरीर को। असुर का सम्वन्ध वह असु अर्थात् प्राणो से जोडते थे। सव खाओ, असुरो की तरह सव पचा जाओ—हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इस नीति पर चलने की सलाह देते थे।

मित्रों का सत्कार करने मे निराला राजसी वृत्ति का परिचय देते थे। सत्कार की पराकाष्ठा मांस पकाकर खिलाने मे होती थी। जिस दिन वह मास पकाते, उस दिन और कुछ न करते। सवेरे से ही वह कुछ चंचल, कुछ उत्सुक-से दिखाई देते मानो रचनात्मक भावावेश मे हों। वाजार से मिर्च, मसाला, घी, मांस आदि ले आते। जव हाँड़ी चढती, तव वह प्रसन्न मुद्रा मे वरामदे मे टहलते, मित्रों से इधर-उधर की वातें करते, साहित्यिक चर्चा से दूर रहते, छेड़ने पर भी किसी वहस मे न पड़ते, मास धीरे-धीरे पकता और वह एकाध वोटी निकालकर चख लेते या दूसरों को चखाते, यह जानने या जताने के लिए कि मास ठीक पक रहा है, चूल्हा वुझ जाता तो फूंकने वैठते, राख की फूही वालो पर छा जाती, धुएँ से आँखें लाल हो जातीं। मास के साथ कभी चावल, कभी रोटी, कभी दोनो वनाते। चावल सवसे वढ़िया किस्म का ढूंढ़कर लाते, उसमे तेजपात, वड़ी इलायची डालकर उसे सुगन्धित करते। डेढ़-दो वजे नहा-धोकर खाने-खिलाने वैठते। वीच-वीच में पूछते जाते—कैसा वना है ? अपनी कविता की भी प्रशसा सुनने को वह इतना उत्सुक न होते जितना अपनी पाकशास्त्रीय कला की। काव्य-कला की तरह यहाँ भी वह अनेक प्रयोग करते, कभी दही डालकर वनाते, कभी कल्हारकर, कभी विना कल्हारे मिर्च-मसाला पीसे विना ही, कभी घी मे, कभी तेल में। यद्यपि वह होटल मे जव चाहते मास खाते, अपनी रुचि के अनुसार रोस्ट या रोगनजोश का आर्डर दे आते, पर उन्हें सर्वाधिक आनन्द-प्राप्ति अपने पकाये मांस से ही होती थी। कभी-कभी वह मछली खाते, ज्यादातर वाहर; घर में मांस ही पकाते। मछली उन्हें उतनी प्रिय न थी जितना मांस। मछली से अधिक सम्मान वह मुर्ग-मुसल्लम का करते थे।

कैसरवाग के पार्क मे टहल रहे थे। पानी मे रंगीन मछलियो को तैरते-कुलवुलाते देखकर खड़े हो गये। मैंने कहा—सुन्दर हैं न ? उन्होंने आँखों मे शरारत भरकर जवाव दिया—खाने में जायकेदार न होंगी।

एक शाम वह पार्कों और सडको का चक्कर लगाते हुए वड़ी देर तक घूमे। जेव में पैसे कम थे। होटलवाले के यहाँ जाना न चाहते थे; काफी पैसे चढ़ गये थे। भूख जोर से लगी थी। दस वजनेवाले थे। अमीनावाद से गोलागंज की तरफ जाने वाली सड़क पर वह रुके और वोले—सामने उस मुसलमान की दूकान से एक कुल्हड़ में गोश्त और दो रोटी ले आओ।

मैंने कहा—आप क्यो नहीं ले आते ?

उन्होने उत्तर दिया—मुझे लोग पहचानते हैं।

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वह मुसलमान के साथ गोश्त खाने का लिखित वर्णन कर चुके थे। फिर किससे क्या छिपा रहे थे ? वात दरअसल दूसरी थी।

उस तरफ की दूकानों में वहुत गरीव आदमी ही खाने आते थे। किसान की तरह निराला को अपनी 'मरजाद' का खयाल था। लिखने से काफी आमदनी होती है, वह रईस की तरह रहते है या रह सकते हैं—वह चाहते थे कि लोगो में यह भरम वना रहे। चार-छह पैसे का सामान मैं ले आया। रोटी उन्होने मोड़कर जेव में डाल ली। कुल्हड हाथ में लिया। अमीनुद्दौला पार्क के एक कोने मे उन्होने रोटी-गोश्त ठिकाने लगाया और घर आकर पानी पिया।

ऐसे ही एक रात सड़कों और गलियों मे देर तक भटकने के वाद वह कलवरिया के पास रुके। मुझे पैसे देकर वोले—एक अद्धा ले आओ। मैंने फिर वही प्रश्न किया—आप क्यों नही ले आते ? उन्होने वही उत्तर दिया—मुझे लोग पहचानते हैं।

मैं हुज्जत न करके वोतल ले आया। उन्होने उसे कुर्ते की जेव मे डाल लिया। मैंने ललकारा—हाथ में लेकर चलिए न ?

वह कुछ न वोले। गलियों मे होते हुए घर आये। वही मरजाद वाला सवाल था।

महीने में दो-एक वार मद्यपान की नौवत आती, जव पैसे होते तो व्लैक एण्ड ह्वाइट की वोतल, नही तो ठर्रा। होटल मे वह सोडे के साथ पीते, घर मे नीट। वोतल मे मुँह लगाया और दो-तीन घूंट उतारकर रख दी। वह ज्यादा मात्रा में न पीते थे, न पीकर आँय-वाँय-शाँय वकते थे। दूसरो को जितनी पिलाते थे, खुद उससे कम पीते थे। केवल एक वार वह होटल में वीघापुर के जमीदार मित्र के साथ पी रहे थे, तव कुछ वहके। मैं उस शाम को उनके कहने से होटल मे खाना खा रहा था। उन्होने मुझसे कहा—तुम भी पियो। मैने कहा—आपके कहने से न पियूँगा, वैसे चाहे पी लूँ। उन्होने अपने मित्र ठाकुर साहव से कहा—यह शर्मा पीता नहीं है, अपने को वडा आदमी समझता है। आज इसे पिलाकर मानेगे।

वह उठे और चौथाई वोतल मेरी थाली के चावलों मे उँडेल दी। मैंने थाली खिसका दी, दूसरी थाली मँगाई। निराला का नशा उड गया। मैंने देखा, वह वहुत ही लज्जित है। खाना खाते समय और घर पहुँचने तक वह फिर न वोले। न उस दिन के वाद उन्होंने फिर कभी मुझसे शराव पीने को कहा।

वह उल्लास और उमंग मे पीते थे, गम गलत करने को नही। पीकर लिखने का

अभ्यास भी उन्हे नही था। तफरीह के लिए, गाना सुनने जाते समय वह मित्रो के साथ पीते। चौक चलोगे ? उन्होने पूछा। मैंने कहा—नही। उन्होंने कहा—गाना सुनकर चले आना, उसमे क्या है ? मैने कहा—चलिए।

युवती गायिका उनसे परिचित थी। वड़े अदव से उठकर उसने सलाम किया, पान पेश किये। निराला की फर्माइश पर उसने गाना शुरू किया। गाते समय वह भौहो मे लहर बनाती थी; स्वर के साथ उसकी भौहे वल खाती थी। निराला ने दो-तीन वार कहा—डाक्टर, वाच हर आइज। वह समझी, विशेष रूप से इस डाक्टर-मित्र को प्रसन्न करने के लिए ही निराला आये है। उसने हाव-भाव और सारा भ्रू-संचालन-कौशल मुझी पर केन्द्रित कर दिया। गाना सुनने के वाद रुपये देकर निराला मित्रो के साथ लौट आये।

यद्यपि मै अभी रिसर्च ही कर रहा था पर निराला जव-तव मुझे डाक्टर कह कर सम्वोधित करने लगे थे। वह अलारखी के यहाँ गये और वहाँ भी डाक्टर कहकर मेरा परिचय दिया। अलारखी वडे स्नेह और आदर से निराला को दरकिनार करके मुझसे वाते करने लगी। गाना सुने विना केवल वाते करके निराला लौट आये। एक दिन चौक से लौटकर उनके एक मित्र ने कहा—क्या वात है शर्माजी, आपको अलारखी वहुत पूछ रही थी ?

इसके वाद मै उनके साथ गाना सुनने चौक नही गया।

वसन्त के दिन आये। शाहनजफ मे वड़े-वड़े गुलाव खिल उठे, कैसरवाग के पार्क मे जुही खिली, ए० पी० सेन रोड पर अमलतास की डाले पीली हो गईं। लखनऊ मे कौन-से फूल कहाँ खिलते है, निराला को इसकी पूरी जानकारी थी। शाहनजफ, कैसरवाग और ए० पी० सेन रोड का चक्कर लगाने के अलावा एक दिन वोटॅनिकल गार्डन्स के आगे घूमते हुए दूर गोमती के किनारे निकल गये। मैंने कहा—वहुत दूर आ गये, अव लौट चलें। उन्होने कहा—यहाँ चमेली खिली होगी, देख ले तो चलें। सचमुच थोड़ी दूर पर चमेली की लताएँ फैली हुई थी, कुछ देर वह खड़े रहे, फूलो का सौन्दर्य देखते रहे। गन्ध से मन भर गया तव लौटे। मन्की व्रिज के पास विक्टोरिया पार्क मे एक वेले का झाड उनका प्रिय मित्र था। पार्क में जाते तो झाड के भी एक-दो चक्कर लगाते। फूलो के रग से ज्यादा उनकी गंध उन्हे पसन्द थी। अपरिचित स्थान मे भी हवा के झोके मे जरा-सी गंध आने पर फूल पहचान लेते थे। पेड या झाड़ के पास जाकर खडे हो जाते मानो उसने उन्हे वुलाया हो।

महिपादल के राज-उद्यान मे इतने फूल थे जितने रावण की अशोक वाटिका में। फूलो की अरघानो से चौवीस घण्टे दिमाग तर रहता था। लखनऊ में निराला को पार्को और ऊसरो मे या सडक के किनारे फूलो के पौधे और वेले ढूंढनी होती थी। उनकी निगाह मे वंगाल के मुकावले लखनऊ हमेशा नीचे था। शहरियत के लिहाज से भी कलकत्ते के मुकावले लखनऊ उन्हे देहात-जैसा लगता था। फिर भी 'देवी' और 'चतुरी चमार' की रचना उन्होने लखनऊ मे की थी।

लखनऊ विश्वविद्यालय मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर आये। सिद्धान्त के यहाँ ठहरे।

उनका भाषण सुनने निराला गये; भीड़ में पीछे खड़े हुए। रवीन्द्रनाथ कत्थई रंग का गाउन और गहरी लाल मखमली टोपी पहने थे। कमर थोड़ा झुक गई थी पर आँखों मे चमक थी और उनके गौरवर्ण की कान्ति आकर्षक थी। उन्होने आध घण्टे तक अपनी मधुर वाणी में भाषण किया।

उन्होने कहा : मैं अपने गीत गा चुका, अपने स्वप्न देख चुका। अब उन्हें केवल दोहराता हूँ। मेरे विदा होने की वेला आ पहुँची है। आप जीवन-पथ पर खड़े हैं जहाँ सूर्योदय हो रहा है, मैं वहाँ हूँ, जहाँ सूर्य अस्त हो रहा है। आपकी आभा मुझे दिखाई देती है। मेरी याद बनाये रखियेगा, पब्लिक प्लैटफार्म पर नही, अपने हृदय मे।

उनकी आवाज, उनकी आयु को देखते निष्कम्प ज्योति की तरह, दृढ और समर्थ थी। उन्होने भारत के आध्यात्मिक सन्देश की चर्चा की, जड भौतिकता मे संसार को मुक्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया, दिव्य सौन्दर्य इस लोक में ही व्यक्त है, उसकी उपासना की शिक्षा दी।

भाषण अंग्रेजी मे था।

निराला बहुत ही प्रसन्न थे। रवीन्द्रनाथ धूर्जटीप्रसाद मुखर्जी के साथ कार मे बैठकर चले गये। निराला नारियलवाली गली तक प्रसन्नमन रवीन्द्रनाथ की साधना और साहित्य की चर्चा करते आये। वह जैसे भूल गये कि इन्हे 'चापर' करने के लिए वह कई लेख लिख चुके हैं, पूरी पुस्तक लिखने की बात भी उनके मन मे आई थी, इन्ही की रचनाओं को अपना 'मॉडल' बनाकर उनसे अच्छी कविताएँ लिखने की स्पर्द्धा कर चुके थे, इन्हीं के ज्ञान पक्ष की दुर्बलता पर वह अनेक बंगाली मित्रो से भयंकर वाक्‌युद्ध में जूझे थे पर इस समय उनका मन शरद के निरभ्र गगन के समान निष्कलुष था; उसमे केवल स्नेह की निर्मल ज्योत्स्ना फैली हुई थी।

वसन्त की नमी के बदले तेज धूप होने लगी। अमीनाबाद में दशहरी और सफेदे की ढेरियों के इर्द-गिर्द निराला चक्कर लगाते दिखाई दिये। कभी खरबूजे और ककड़ियाँ भी लाते पर सबसे अधिक प्रिय थे उन्हे आम।

मैं उनके आचरण की आलोचना कभी न करता था। उनकी तफरीह मे शामिल न होता था; चुप रहता था। उन्हे इसमें विरोध का आभास मिलता। वह खुद ही अपनी सफाई देते हुए कहते—सेक्स क्या है ? जैसे पाखाना और पेशाब। कोई कब तक रोके रहे ?

बाल ब्रह्मचारी स्वामी सारदानन्द ने काम-वासना का दमन किया था या नही ? निराला कहते—किया था पर इससे उनका लिंग फट गया था और उससे रक्त बहने लगा था !

मैं हँसने लगता। वह मेरी हँसी का यह अर्थ लगाते कि मै कह रहा हूँ, यह कहानी अपने आचरण के समर्थन के लिए आपने गढ़ी है।

बहस इस पर होने लगती कि साधारण मनुष्य स्त्री-संसर्ग से अलग कितने दिन तक रह सकता है। मैं कहता—साल-छह महीने तो कोई बात ही नही।

मेरी पत्नी गाँव में थी। इसलिए मैं यह बात साधिकार कहता था। निराला न

मानते और कहते—महीने-दो महीने में स्वप्नदोष जरूर होता होगा। मैं इसे अपने मनोबल पर आक्षेप मानकर कहता—आप सवेरे उठकर परीक्षा कर लिया कीजिए।

उन्होंने परीक्षा करना अनावश्यक समझा। लोगों से मेरे व्यायाम करने, हाथ से खाना बनाने, वर्तन मलने की प्रशंसा जरूर करते।

निराला बैसवाड़ी बोलते हुए ठेठ किसान की तरह उन शब्दो का प्रयोग करते जो सभ्य समाज मे अश्लील कहे जाते है। किसान की बोलचाल में जैसे ये शब्द सहज भाव से आते हैं, वैसे ही निराला की बातचीत में वे अश्लील न मालूम होते थे। एक विशेष बात यह थी कि वह स्त्रियो को लेकर या उनके गुप्त अंगो को लेकर कभी गाली न देते थे। इस तरह की गालियाँ बैसवाड़े मे प्रचलित है लेकिन निराला इनका व्यवहार कभी न करते थे। उनकी गालियाँ पुरुषकेन्द्रित होती थीं। जब किसी से बहुत नाराज होते थे तो अंग विशेष के बालो का नाम लेकर कहते—सुनि कै···टै सुलगि उठी। कोई विरोधी उनकी दृष्टि मे अत्यन्त क्षुद्र और तुच्छ दिखाई देता तो उपमा देते—तपसी कै अस···ट।

योगियो के सात चक्रों के लिए उनका रोजमर्रा का शब्द था—कोठा। कौने कोठे ते ब्वालत है?—अर्थात् उसका मन किस स्तर पर है। जिसके बारे मे समझते कि मन की अधोगति है, आवाज़ कमजोर है, कहते—ज्यू लेडरहे कोठा मँ धरा है। अर्थात् उसका मन मलवाले कोठे से ऊपर नही उठता।

जिसे वह मूर्खता में बहुत बढा-चढा देखते, उसके लिए कहते—ऐस जपाट चूतिया है···। और फिर ऐसे हँसते मानो सृष्टि का महान् आश्चर्य देखा हो। किसी विरोधी से खफा होते तो कहते—अबही मुसरा ठढ़िहाओब। यानी सर के बल खड़ा करूँगा। उनकी निगाह मे दंड की यह चरम सीमा थी। कोई कम उम्र का लेखक विरोध मे बोलता तो एक मसल कहते—कालिह के जोगी···ड़ि मँ जटा। कोई साधारण लेखक बडप्पन की डींग हाँकता तो वह दूसरी मसल कहते—वड़े-बडे बहे जायँ, गड़रिया थाह लेय।

छायावाद, रहस्यवाद के विरोधियो के लिए एक लतीफा वह अक्सर दोहराते। किसी को अफीम खाने का शौक हुआ। बोला—दादा, फफीम खैबे। दादा ने कहा—बेटा, पहले अफीम कहना तो सीख लो।

एक लतीफा सिर्फ हँसाने के लिए सुनाते थे—उनके साहित्यिक संघर्ष की कथा मे वह कही फिट न होता था! बूढे पंसारी ने अपने बेटे से कहा—बचुआ, मर्हि का मलाई बडी नीकि लागति है। बेटे ने जवाब दिया—बैठ रहु बैठ रहु, नही तो अबही टाँग पकरिकै घुमइहौ तऊँ···डि संखु असि बाजी।

शंख बजने की उस कल्पना से वह देर तक बच्चो की तरह हँसते रहते।

जब वह बहुत आत्मीयता से बातें करते तो उनका तकियाकलाम होता—तो भैया हो। तो भैया हो, सर नीचा किये अपनी राह चले जाओ; बहुत काम करने को पड़ा है। फासला देकर बातें करते तो कहते—सुनो मियाँ! सुनो मियाँ, चार बच्चों के बाप हो, दूसरों की लड़कियों के बारे मे इस तरह बातें न किया करो। प्रसन्न मुद्रा

में किसी समस्या का विवेचन करने के वाद पूछते—बुझलल वाड़े ?

किसी के प्रणाम करने या पैर छूने पर वह धीमी आवाज मे कहते—नमोनम: मानो प्रणाम-पैलगी से वह संकट में पड गये हों। अधिक उदासीन हुए तो एक उँगली उठाकर सलाम किया और आगे वढ गये।

अपने वेदान्त-ज्ञान के वावजूद निराला के मन पर अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी रहन-सहन का रोव काफी गालिव था। वह हिन्दी वाक्य-रचना की छान-बीन अंग्रेजी व्याकरण के सहारे करते। इसका कारण यह था कि उन्हें व्याकरण के नाम पर अंग्रेजी की शिक्षा मिली थी, हिन्दी की नही। मैं जव हिन्दी के किसी संशयात्मक प्रयोग के वारे मे उनसे पूछता तो वह कहते—जैसा अंग्रेजी व्याकरण मे होता है, वैसा ही लिखो। इससे और आगे वढकर वह छुरी-काँटे-चम्मच से खाने के ढँग को आदर्श मानते। उनकी निगाह में खाने से पहले शराब पीना अंग्रेजी सभ्यता का आकर्षक अंग था। वेशभूषा में वह टाई, वेस्टकोट और खुले कालर के कोट को अपने रुई के सलूके या वंद गले के कोट से ज्यादा वैज्ञानिक मानते थे। उनका विचार था कि टाई वाँधने और सीने पर चुस्त वेस्टकोट पहनने से जाडा विलकुल नही लगता। वह रवीन्द्रनाथ की तरह संगीत में कुछ पाश्चात्य पुट देकर उसे आधुनिक वनाने के पक्ष में थे।

भर देते हो वार-वार प्रिय करुणा की किरणों से

—इस कविता को वह स्वरो के उतार-चढाव के साथ एक विशेष ढँग से गाते थे जिसे वह अंग्रेजी ढँग समझते थे। उन्होने वताया कि कलकत्ते में चर्च म्यूजिक सुनकर उन्होने इस कविता के संगीत का ठाट वाँधा था।

कवि-सम्मेलन मे शामिल होने का निमंत्रण आया। लिखा था कि सम्मेलन का सभापतित्व करेगे—"वर्तमान हिन्दी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि श्रीमान् पं० सुमित्रानन्दन-जी पंत"। निराला ने इसकी वगल मे टिप्पणी लिखी—"ऐसा लिखनेवाले सज्जन को मैं भी वर्तमान हिन्दी साहित्य के काव्य-ज्ञान का सप्रमाण सर्वश्रेष्ठ मूर्ख मानता हूँ।" अपनी यह टिप्पणी उन्होने संयोजकों के पास भेजी नहीं।

'सर्वश्रेष्ठ' का अर्थ वह यह भी करते थे—सव श्रेष्ठ हो जिससे।

कागज के टुकड़ों पर एक अंग्रेजी कहावत वह अक्सर लिखते—No good comes when friends fall out and those who show spite are sure to suffer for it

मैं कहता—क्या है पंतजी की कविता मे मधुर शब्दावली के अलावा ? इस पर वह 'पल्लव' और 'गुंजन' की वहुत-सी कविताएँ सुनाते, उनकी प्रशंसा करते। निराला के सामने पंत की आलोचना करने के वाद कोई भी उनसे जवाव पाये विना वच न सकता था। पंत मेरे, मैं उन्हे जो चाहूँ सो कहूँ, तुम कहनेवाले कौन ?—यह उनका भाव होता था।

निराला का घर कवियों का अड्डा था। जो कवि वाहर से आता, निराला से मिलने जरूर आता। सुमित्रानन्दन पंत ५८ नंवर, नारियलवाली गली पधारे। निराला ने वड़ी प्रसन्नता से उन्हें रजाई पर विठाया। पंतजी ने पानी माँगा। मैने पानी का

गिलास जैसे ही उनके हाथ मे दिया, दुर्भाग्य से उस पर मक्खी बैठ गई। मैंने दूसरा गिलास लाकर दिया। हिमालय होटल मे निराला ने उन्हे सामिष भोजन कराया। मेरे अनुरोध पर पंतजी ने अपना गीत सुनाया—

जग के उर्वर आँगन में, वरसो ज्योतिर्मय जीवन !

उनका स्वर पैना था, जैसे नाज की वाले। मन पर गहरी रेखाएँ खीचता चला जाता था। पंतजी घर आये और रजाई पर सो गये। निराला ने पहली वार सुना—सोते समय कोमलकान्त पदावली के कवि की नाक और गले से साधारण मनुष्यों की तरह आवाजे निकलती है। उन्होने विजय-गर्व से मेरी ओर देखते हुए कहा—तुमने सुना था ? सोते समय पंतजी घर्रा वजाते है। मैंने कहा—आप तो और भी जोर से वजाते है। उन्होने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा—नही, मेरा घर्रा नही वजता। मैंने कहा—जव आप सोते है तव मैं जागता हूँ। सचमुच आप घर्रा वजाते हैं। कुछ देर तक आश्चर्य और अविश्वास से मुझे देखते रहने के वाद वह जोर से हँसे।

उनके और मकान-मालिक के कमरो के वीच एक दरवाजा था। दोपहर को वंद किवाड़ों के उस पार स्त्रियाँ ढोल-मंजीरे के साथ ऊँची आवाज़ मे गा रही थीं। निराला इस पार खर्राटे ले रहे थे। उनके गले की जोरदार खर्र-खों गाने-वजाने के कोलाहल के ऊपर सुनाई दे रही थी।

सिकन्दरवाग मे घूम रहे थे। रास्ता तंग था। उधर से एक साइकिलवाला आ रहा था। जगह न पाकर निराला के पास उतर गया और वोला—सारा रास्ता घेर लिया है; अपनी साइड से क्यों नही चलते ? निराला ने जवाव दिया—साइड से क्यो चलें, कोई गाय-वैल है ?

उनका विचार था, गलती साइकिलवाले की है, साइड से चलना जानवरों का काम है।

उन्हें विश्वास था कि वह जो मानते हैं, जो सोचते है, विलकुल सही है। यदि उनकी कोई वात गलत सावित होती तो उन्हे कुछ क्षोभ और वहुत ज़्यादा विस्मय होता। उन्हे विश्वास था कि कुमारसंभव मे केवल आठ सर्ग हैं। मैंने कहा—नही, और वहुत ज्यादा है। वह न माने। अपनी कुमारसंभव की प्रति दिखाई। उसमे आठ ही सर्ग थे। रवीन्द्रनाथ की एक कविता सुनाई जिसमे शिव-पार्वती के संभोग-शृंगार ने पहले ही कुमारसंभव-गान के थम जाने की वात थी। मैंने उन्हें कुमारसभव की अपनी प्रति दिखाई, वड़ी कठिनाई से उन्हे विश्वास हुआ कि इस महाकाव्य की किसी प्रति मे आठ से ज्यादा सर्ग भी हैं।

मेरी दाढ़ी मे एक मसा था जो हजामत वनाते कट जाता था। उन्होंने कहा—अमीनावाद चलो, अभी दवा लगाते ही उड़ जायगा। मुझे विश्वास न था, पर गया। उन्होने एक होम्योपैथिक डाक्टर से लगाने की दवा 'थूजा' ली और पार्क मे वैठकर कहा—मसे पर लगा लो। वैसा करने पर वह वोले—वस अभी मसा उड़ता है। मैं हँसने लगा। वह गंभीर वने वैठे रहे। उनके कहने से दो-तीन वार और लगाया। पंद्रह-वीस मिनट वीत गये पर मसा ज्यों-का-त्यो। वह 'थूजा' की शीशी लेकर डाक्टर

के पास गये और बोले—इससे मसा गायब क्यों नहीं हुआ ? डाक्टर ने कहा— 'थूजा' खाने को भी दीजिए, लगाइए भी; कुछ दिन में साफ हो जायगा। वैसा ही हुआ। पर निराला को इस बात पर भारी विस्मय हुआ कि 'थूजा' लगाते ही मसा गायब न हुआ।

बाजार से आम खरीदने में वह अपने को उस्ताद समझते थे। आम परखने मे ही नही, भाव तै करने मे भी अपने को माहिर समझते थे। उनका विचार था कि वह मद्दे भाव मे सबसे अच्छे आम खरीदते हैं। ज्यादातर फलवाले उन्हें पहचानते थे। आम उन्हें अच्छे मिलते थे लेकिन दाम में उतनी किफायत न होती थी, जितनी वह समझते थे। जहाँ चार पैसे से काम चले, वहाँ छह पैसे खर्च करना उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल था। अमीनाबाद में पंतजी के साथ चाय पी। पंतजी ने चाय के पैसे देने के साथ बैरे को बख्शीश भी दी। निराला को लगा, पंत उनके सामने अपने वैभव का प्रदर्शन कर रहे हैं। उन्होंने कहा—क्या बाप जागीर छोड़ गये हैं जो इस तरह रुपया लुटाते हो ?

वह ताँगे के बदले इक्के की सवारी पसन्द करते थे। दलील यह थी कि ताँगे मे जुता हुआ घोड़ा पादता है तो दुर्गन्ध आती है। इक्के में बैठनेवालो का सर बहुत ऊपर रहता है; उन तक दुर्गन्ध पहुँचती नहीं है। इक्केवालों से मोल-भाव भी करते थे। चौक जाना था, अमृतलाल नागर से मिलने। एक मरियल घोड़े वाला इक्का तै किया। मैने विरोध किया पर उन्होंने कहा—देखने में ही कमजोर है; मजे मे पहुँचा देगा।

गोलागंज में घोड़े का पैर फिसला और वह सड़क से चिपक गया। निराला आगे बैठे थे, गिरते-गिरते बचे। शर्माये हुए दूसरा इक्का करके फिर आगे बढ़े।

किफायत पर उनका ध्यान रहता था पर जो भी साथ हो, उसे पैसे देने न देते थे। दूसरा पैसे खर्च करे, इसे वह अपना अपमान समझते थे। आस-पास के पंसारी और दूकानदार निराला से प्रसन्न रहते थे। जानते थे, उधार चढ़ा करे, निराला उन्ही का हिसाब सही मानकर एकमुश्त रुपये अदा करेंगे।

खाना पकाने से लेकर लड़कियों के जुएँ हेरने तक गृहस्थी के हर काम में वह अपने को दक्ष समझते थे। उनकी ससुराल से एक छोटी लड़की आई थी। नाम था —मनन्ना। वह उसके जुएँ हेरने बैठे। जुएँ हेरते जाते थे और सर गंदा रखने पर एक-दो टीप भी लगा देते थे।

गर्मी के दिन आये। ठंढाई-बादाम का प्रोग्राम बना। सिल पर मैं बादाम पीसने बैठा। उन्होंने कहा—पानी का छींटा मत देना, ऐसे ही पीसो। चिकने बादाम सिल से चिपक जाते। मैंने बट्टा उठाया तो सिल भी उठी चली आई। उन्होंने कहा— ठीक है, घोटे जाओ। किसी तरह बादामों से छुट्टी मिली, तो ठंढाई की बारी आई। इसमे पानी के छींटे देने की मनाही न थी। शक्कर घोलकर एक-एक गिलास पिया लेकिन इतने परिमाण से न उन्हें संतोष हुआ, न मुझे। शक्कर पर ज्यादा पैसे खर्च करने की गुंजाइश न थी। एक प्रयोग शुरू किया कि शक्कर की मात्रा उतनी ही रखी जाय

और प्रतिदिन पानी की मात्रा थोड़ी-थोड़ी बढ़ाई जाय। काफी फीकी ठंडाई पीने का अभ्यास हो गया। पानी की मात्रा इतनी बढ़ गई कि उन्होंने अपने घड़े का ऊपरी हिस्सा फोड़कर अलग रख दिया और बाकी में ठंडाई घोली जाने लगी।

दोपहर को वह सोकर उठे थे और चौखट पर बैठे गा रहे थे—'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली'। वह बड़ी मस्ती मे गा रहे थे। मैं अपने कमरे से निकलकर जीने मे आकर बैठ गया और चुपचाप गाना सुनता रहा। जब समाप्त हो गया तो मैंने पूछा—आप किसकी होली गा रहे थे? उन्होंने कुछ नाराज़ होकर कहा—हमारी है और किसकी होगी?

वह मस्ती मे गाते थे तब बहुत अच्छा गाते थे। स्वर अपने-आप सधे हुए लगते और शब्दो की ध्वनि के साथ वह स्वर का ऐसा योग देते कि भाव मे और भी गहराई आ जाती। उनके स्वर मे पिघले हुए सोने का-सा मार्दव था; आवाज़ तारसप्तक के लायक न तो महीन थी, न मन्द्र के लायक अति गंभीर। गले मे कही खराश न थी, जब धीमे गाते तब स्वर सहज ही रेशम के लच्छो जैसे निकलते। भैरवी उन्हे विशेष प्रिय थी। भैरवी पर रवीन्द्रनाथ की कविता भी उन्हे बहुत प्रिय थी। साधारणतः वह रवीन्द्रनाथ के या अपने गीत सुनाते। जब शास्त्रीय संगीत का परिचय देना होता तब महियादल मे सीखी हुई बंदिश—'जाने दे मोको सुनो सजनवा'—रसमग्न होकर बडे लोच से गाते। सम पर आने पर चुटकी बजाते, हारमोनियम सामने हुआ तो उसी पर उँगली के आघात से अपने ताल-ज्ञान का परिचय देते। गाने से कुछ अधिक ही आनन्द उन्हे ताल देने मे आता था। कान्यकुब्ज कालेज के संगीत-शिक्षक पथकीजी वीणा बजा रहे थे। निराला ने चुटकी बजाकर ताल देना शुरू किया। ताल देने के जोश मे खिसकते-खिसकते बिलकुल वीणा के पास पहुँच गये, सम पर उनकी चुटकी ऐन पथकीजी की नाक के नीचे बजने लगी।

उनके स्वर का चमत्कार सबसे अधिक उनके अपने गीतो मे प्रकट होता था। 'यामिनी जागी; अलस पंकज दृग अरुण मुख़ तरुण अनुरागी'—गाते हुए स्वर सहज ही उदात्त हो जाता। 'नयनों के डोरे लाल'—में मानो शताब्दियों से गाई जाती होली की मस्ती वह ढाल देते।

कुछ दिन रामकृष्ण साथ रहे। पिता-पुत्र एक-दूसरे से बड़ा स्नेह करते थे, एक-दूसरे की आलोचना भी। एक दिन निराला ने कहा—रामकृष्ण, उजबक की तरह मुँह बाये आसमान देखा करता है। मैंने सहानुभूति से कहा—आपका ब्याह जल्दी हो गया था। सोलह साल की उम्र मे जो लड़का होगा, वह ऐसा ही होगा। इस पर नाराज होकर उन्होंने कहा—सोलह साल मे मैं पूरा तगड़ा जवान था। पाँच सौ बैठके करता था, रानें सुती हुई बोतल जैसी थीं, कमर बालिश्त-भर, सीना इतना चौड़ा। रामकृष्ण बहुत अच्छा गद्य लिखता है; स्वर भी एकदम सधा हुआ लगता है। बहुत अच्छा गाने-वाला निकलेगा।

संगीत को लेकर निराला और रामकृष्ण में बहस हो जाती। निराला कहते—भातखंडे स्कूल की तानें क्या है मानो पिल्ले के कान ऐंठ दिये हो और पें-पें कर रहा हो।

रामकृष्ण चुनौती देते—जरा षडज के बाद लगाइए कोमल निषाद। निराला इस तरह की चुनौती कभी स्वीकार न करते। उन्होंने जो भी शास्त्रीय संगीत-शिक्षा महिषादल में पाई थी, उसका प्रदर्शन मैरिस कालेज के छात्र—रामकृष्ण—के आगे न करते।

निराला नियमित रूप से पुत्र की फीस न दे पाते थे। उन्होंने अपने मन को समझाया कि रामकृष्ण के रियाज से लिखने में बाधा पड़ती है, इन्हें ननिहाल भेज देना चाहिए! रामकृष्ण ननिहाल चले गये। कुछ दिन में लौट आये और अलग मकान लेकर रहने लगे। ट्यूशन करके खर्च चलाते। उनके साथ रामरतन भटनागर 'हसरत' भी रहते थे। दोनों मित्रों की साहित्य-संगीत-चर्चा में पढीस, उनके संगीतज्ञ पुत्र बुद्धिभद्र दीक्षित—जो सरोद बहुत अच्छा बजाते थे—और मैं शामिल हो जाते थे।

निराला ने एक लेख लिखा 'स्वकीया'। उसमें हिन्दी कविता और भातखंडे संगीत में करुण स्वर के प्रधान होने की शिकायत की। इसमें उन्होंने रामकृष्ण के बारे में लिखा—"मुलाकात होने पर मुँह फेर लेते थे। मुझसे सारी दुनिया इसी तरह पेश आई या आँख न मिलाती दिखी, यह मेरी प्रतिभा का परिचय था या और कुछ, भगवान जाने। जैसे रुपये पैदा करने में लाचारी थी, वैसे ही चिरंजीव से मिलने में।"

निराला के समान रामकृष्ण को भी स्कूल या कालेज की नियमित शिक्षा न मिली थी। दरअसल उन्हें उतनी शिक्षा भी न मिली थी जितनी रामसहाय के रहते निराला को मिली थी। निराला को मितव्ययिता और धन-संग्रह का थोड़ा भी अभ्यास होता तो वह रामकृष्ण की अधिक सहायता करते। पर स्वयं अपनी असफलता के कारण वह रामकृष्ण के असन्तोष को अतिरंजित रूप दे देते थे। पीठ पीछे पिता-पुत्र एक-दूसरे की प्रशंसा करते हैं—यह दोनों में किसी को मालूम न था।

निराला रामकृष्ण की स्वर-साधना की प्रशंसा करते पर उन्हें विश्वास था कि संगीत का उद्धार भातखंडे पद्धति से न होगा। यद्यपि ताल देने, सम आने पर सर हिलाने में वह किसी शास्त्रीय संगीत-प्रेमी से पीछे न थे, पर वह भातखंडे स्कूल की ताल-पद्धति पर कटाक्ष करते। कहते, सम आने पर ऐसा झटका देते हैं मानो सर से भारी बोझ जमीन पर दे मारा हो।

मैरिस कालेज के प्रधान आचार्य श्रीकृष्ण रत्नजङ्कर ने भाषण के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। निराला स्वच्छ धोती-कुर्ते पर चादर ओढ़े भाषण देने गये और शुरुआत यों की—आज दक्षिण का संगीत सत्य ही मुझे दक्षिण हुआ है। उस दिन उन्होंने भातखंडे स्कूल के विरोध में कुछ न कहा।

उनका विचार था कि उनके पास हारमोनियम होता तो वह संगीत में युग-परिवर्तन कर देते। जीवन के अन्य अभावों में उन्हें हारमोनियम का अभाव बहुत खलता था। उधर अनेक शास्त्रीय संगीतकारों की तरह रामकृष्ण कहते—हारमोनियम पर गाने से स्वर और खराब हो जाता है।

वर्षा का पहला दौंगरा गिर चुका था।

निराला गोमती किनारे घूमते हुए रेजीडेन्सी के पास आ पहुँचे थे। नदी पार काली घटाएँ उठीं। थोड़ी देर में सारा आसमान धूम-धुआँरे बादलों से भर गया।

निराला को घर आने की जल्दी न थी। बड़ी-बड़ी बूंदें आईं, फिर मूसलाधार वर्षा आरम्भ हुई। उन्होंने कुर्ता उतारकर कांधे पर डाल लिया, भीगते रहे और गाते रहे—
आजि एसेछो भुवन भरिया गगने छड़ाये एलो चूल, चरने जड़ाये वन फूल······

निराला शब्दों को, उनकी ध्वनि को प्यार करते थे। कविता पढ़ते समय शब्दों का पूरा उच्चारण करते थे जिससे नाद-सौन्दर्य का पूरा आनन्द मिल सके। रवीन्द्र-नाथ की ऐसी पंक्तियाँ वह दोहराते जो शब्दानुप्रास के चमत्कार से श्रुति-मधुर हो गई थीं। हेथा वारवार, वादशाजादार, तन्द्रा जेते थे छूटे; अथवा—ऐलो रे आवार मोर मन विलावार वेला।

स्वर के उतार-चढाव से वह कविता के भाव को मूर्त कर देते थे। वह पढ़ते—

डुवाए धरार रन-हुङ्कार,
भेदि वनिकेर धन-झङ्कार,
महाकाश तले उठे ओङ्कार,
कोनो वाधा नाही मानी।

उनका स्वर क्रमशः उदात्त होता जाता और लगता कि ओङ्कार की गगनभेदी ध्वनि मे रन-हुङ्कार और धन-झङ्कार सचमुच डूब गई है।

वह तुलसीदास से भी उनकी शब्दानुप्रास वाली पंक्तियाँ छाँटकर दोहराते थे।

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।

इसे धीमी गति से पढ़ते मानो दशरथ धीरे-धीरे कैकेयी की ओर हाथ बढा रहे हों।

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई।

उनका स्वर बल खाता हुआ उठता मानो नागिन फुफकार रही हो।

दोउ वासना रसना दसन हित मर्म ठाहरु पेखई।

स्वर कुछ उतरता; समतल भूमि पर बढता मानो कैकेयी का सौन्दर्य देखकर वह मोह मे पड गये हो।

तुलसी नृपति भवितव्यतावश काम-कौतुक लेखई।

यहाँ उनका स्वर शान्त-स्निग्ध हो जाता मानो अब ट्रैजेडी का अन्त हो गया हो।

निराला के मन के भाव, कहे बिना ही, उनके मुंह पर, उनकी आंखो में झलक उठते थे।

कि झोकी की झड़ियो मे
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली—

पढते समय उनकी आँखों में जैसे वासना का नशा छा जाता था।

वज्र-घोष से ऐ प्रचण्ड!
आतंक जमानेवाले!
कम्पित जङ्गम—नीड़-विहङ्गम,
ऐ न व्यथा पानेवाले।

हे के बदले 'ऐ' का प्रयोग, ओज की मात्रा बढाने के लिए। जङ्गम और विहङ्गम के गभीर घोष से वह मानो भीरु श्रोताओ को आतंकित कर देते।

वार-वार गर्जन
वर्षण है मूसलधार
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र हुङ्कार।
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा धीर।

महाप्राण सघोष वर्णों को अप्रतिहत वेग से ठेलते हुए उनका स्वर मानो महाकाश तक उठ जाता, फिर अचानक धीमा और मुलायम होकर वह धरती पर लौट आता—

हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार—
शस्य अपार,
हिल हिल
खिल खिल,
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते,
विप्लव रव से, छोटे ही है शोभा पाते।

उनकी लम्बी कविताओं में भिन्न और परस्पर-विरोधी-से लगनेवाले भाव नाटकीय ढँग से एक सूत्र में गुँथे हुए हैं। इन्हें वह स्वर की भंगिमा से, गंभीर या हल्की आवाज के उतार-चढ़ाव से अच्छी तरह व्यक्त करते थे।

उनकी कुछ लम्बी कविताओं में सालकार वक्तृत्व-कला का चमत्कार है।

समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से—

वह कविता-पाठ स्वर के साधारण स्तर पर आरंभ करते; क्रमशः स्वर चढ़ता जाता और जब वह याद दिलाते—

पश्चिम की उक्ति नहीं—
गीता है, गीता है—
स्मरण करो वार-वार—

तब उनके सरोष मुख और गरजती आवाज से लगता, वह अकेले सारे आततायियों के विरुद्ध देश की जनता का आह्वान कर रहे हैं।

वादल-राग में जब विप्लव के वीर से निर्धन, शोषित किसान की बात कहते, तो उनका कोमल स्वर करुणा-विह्वल होकर काँप उठता—

जीर्ण वाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे वुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,

हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार ।

उनके कविता-पाठ मे कुशल अभिनेता का भाव-प्रदर्शन होता था । स्वर मे कोमलता से लेकर गंभीरता तक उतार-चढाव की इतनी गुजाइश थी कि वह चाहे तो थपकी देकर श्रोता के मन को सुला दें और चाहे तो गरजकर उसे झकझोर दें । वह एक ही साँस मे, दम उखड़े विना, देर तक धारा-प्रवाह कविता-पाठ कर सकते थे ।

वीर ! सर्दारों के सर्दार !—महाराज ! —

यहाँ से शुरू करते । जयसिंह दक्षिण के प्राण औरगजेव के पैरो के नीचे रखना चाहते है । उनके स्वर मे जैसे घृणा का विप घोल दिया गया हो । हाय री यशोलिप्सा—कहते हुए स्वर करुण हो उठता । दगावाज़, लाज जो उतारता है मरजाद वालों की—क्रोध से चेहरा तमतमा उठता । भीरु पीनोरु नतनयना नव-यौवना का उल्लेख करते हुए स्वर में मार्दव आ जाता । और जव वह कहते—

जितने विचार आज
मारते तरंगें है
साम्राज्यवादियो की भोगवासनाओ में
नष्ट होगे चिरकाल के लिए ।—

तव लगता था उनका आशादृप्त कंठ देश के लिए भविष्यवाणी कर रहा है ।

अभिनय-कौशल अधिकतर वह रवीन्द्रनाथ की और अपनी कविताएँ पढ़ते हुए प्रदर्शित करते थे । रवीन्द्रनाथ की प्रारंभिक रोमाटिक रचनाएँ ही उन्हे विशेप प्रिय थी । 'चयनिका' के वाद के संस्करणों से रवीन्द्रनाथ ने अपनी वहुत-सी शृंगारी कविताएँ निकाल दी थी । निराला के पास उसका एक पुराना संस्करण था जिसमे नग्न-सौन्दर्य की अनेक रचनाएँ थी । इनके अलावा मैंने रवीन्द्रनाथ की जो पुस्तकें मंगाई थीं, उनसे वे कविताएँ पढ़ते । वैष्णव कवियो की रचनाओ मे भी शृंगार के पद उन्हे ज्यादा रुचते थे । गोविन्ददास की पक्ति—ढल-ढल काँचा अंगेर लावनि अवनि वहिया जाय—मे सौन्दर्य का अप्रतिम चित्र सराहते । रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' मे लावण्य-पाश में वँधे उच्छृंखल यौवन से उसकी तुलना करते ।

कविता मे जहाँ करुणा या वैराग्य का प्रसंग आता, वह भाव-विभोर होकर शब्द-कौशल भूल जाते । रवीन्द्रनाथ की 'श्रेष्ठ भिक्षा' के आरम्भ में—अनाथ पिंडद कहिल अम्वुद निनादे, अथवा—श्रावस्ती पुरीर गगन लगन प्रासादे—पढ़ते हुए वह शब्दो को दुलराते । पर जव वह कविता के अन्त मे पहुँचते जहाँ गरीव अर्धनग्न नारी अपनी फटी हुई धोती भगवान् वुद्ध के शिष्य को दे देती है और वह उसे माथे से लगाते है, उनका गला भर आता और शरीर पीपल के पत्ते-सा काँप उठता ।

चंडिदास का एक पद पढ़ते-पढ़ते वह रुक गये । वोले—ऐसी कविता पढ़कर···

इससे आगे जैसे उन्हें कहने को शब्द न मिले । मैंने वाक्य पूरा किया—कवि होने का गर्व चूर हो जाता है । उन्होंने चुपचाप सिर हिलाकर मेरी वात का समर्थन किया ।

जब वह हारमोनियम पर श्री रामचन्द्रकृपालु भजुमन गाते थे तब आपे से बाहर हो जाते थे। आवेश में माथे की नसे तन जाती थी। कानों में तुलसीदास के शब्द, आँखो मे मनोहरादेवी की छवि—उस समय न उन्हे आसपास की कोई चीज दिखाई देती थी, न और किसी का स्वर सुनाई देता था।

बड़े शान्तभाव से वे चौपाइयाँ सुनाते जो महिषादल में उन्होने स्वामी प्रेमानन्द को सुनाई थीं। 'श्याम तामरस दाम शरीरम्, जटामुकुट परिधन मुनि चीरम्'। उनके स्वर मे विनम्रता आ जाती मानो अब भी वह किसी संन्यासी के सामने रामायण का पाठ कर रहे हों।

वह कविता की एक पंक्ति सुनकर अन्दाज लगा लेते थे कि कवि ने कितनी शब्द-साधना की है, अथवा वह किस कोठे से बोल रहा है। उसके स्वर का वह स्तर पसन्द न आया तो शेष कविता पढे बिना ही उठाकर एक तरफ रख देते थे। कविता मे कितनी गहराई तक वह क्या देखते है, यह वही जानते थे। शब्द, चित्र, भाव—सब-कुछ छोड़ते हुए वह ऐसे मुकाम पर पहुँचते जहाँ काव्य का सूक्ष्म तत्त्व अपनी रंगीनी में प्रकट होता। कालिदास के लिए कहते थे—सब नीला-नीला दिखाई देता है। भवभूति में करुणा और भयानक के अगाध गाम्भीर्य को देखकर कहते—सब-कुछ काला-काला है।

एक दिन देखा—निराला की रजाई पर संन्यासी-से लगनेवाले नाटे कद के एक वृद्ध सज्जन बड़ी बेतकल्लुफी से लेटे है। निराला ने परिचय कराया—ये राधामोहन गोकुलजी हैं।

राधामोहन गोकुलजी, 'मतवाला'-काल के मित्र, निराला के मास्टर साहब, उन्हे अपना स्नेह उस समय देनेवाले जब निराला साहित्य मे अपनी राह बना रहे थे। निराला का व्यक्तित्व ही सहसा मानो बदल गया था। वह मेरे सामने अब तक जो कुछ थे, वह मानो अब नहीं थे। उनकी आँखों मे ऐसी आर्द्र निर्मलता, वाणी मे ऐसी विनम्रता, उनकी हर भंगिमा में ऐसा गंभीर स्नेह का भाव मैंने पहले कभी—कही—किसी के लिए—देखा न था। नमोनम कहते हुए वह संसार को तटस्थता की दृष्टि से देखते थे; आज उनके सारे तटबन्ध टूट गये थे। कभी-कभी इधर-उधर की एकाध बात कर लेते थे; फिर चुप हो जाते थे। दोनों अमित स्नेह मे डूबे हुए। "मौन मधु हो जाय, भाषा मूकता की आड़ मे, मन सरलता की बाढ में, जल-बिन्दु-सा बह जाय" के प्रत्यक्ष रूप।

मुझे लगा—निराला जो दिखते हैं, वास्तव मे वह है नही। कही अतलस्पर्शी गहराई है जो मैंने अभी देखी नहीं है।

९

'तुलसीदास' और उसके बाद

लखनऊ के लोगो को अपने शहर पर नाज़ था। लखनऊ हम पर फिदा और हम फिदाए लखनऊ—शहर के प्रसंग मे जवान और बूढे इस तरह की पंक्तियां उद्धृत करके अपने लखनऊ-प्रेम का परिचय देते। चौक और नखास मे वाजिदअली शाह का लखनऊ अब भी जैसे दम तोडने के पहले आखिरी सांसें ले रहा था। वहां वह जवान सुनी जा सकती थी जिसके आगे लखनऊवालो की निगाह मे दिल्ली की उर्दू हेच थी। यहां का तहजीब, तकल्लुफ, शोखी और अदाएँ देहात से आनेवालो के मनोरंजन का साधन थी। साधारण लोग घरो मे अवधी बोलते थे। जो यहां पुश्त-दर-पुश्त रहते आये थे, चाहे कुँजड़े हों चाहे इक्केवाले, इलाहाबाद और बनारस के बहुत-से पढे-लिखो से साफ उर्दू बोलते थे। हिन्दी-उर्दू की बहस लखनऊ के विद्वानो मे भी कम थी, आम जनता मे उसका नाम न था।

पुराने शहर के साथ अमीनाबाद और हजरतगंज के इलाको में एक नया शहर बस गया था। नये करीने की दूकानें, नये ढँग का साज-सामान, होटल, सिनेमाघर, मोटरें, बैंक। लखनऊ मे अंग्रेजी जमाने की बहुत-सी इमारतें नई सभ्यता का परिचय देती थी पर ये सब मानो दबी हुई थी; शहर के स्थापत्य पर अब भी नवाबी जमाने की या पुराने ढग की इमारते हावी थी। बहुत-से राजाओ और ताल्लुकदारो की कोठियां याद दिलाती थीं कि यह शहर अवध के अग्रेजभक्त रईसो का गढ है। लखनऊ विश्वविद्यालय पर इन ताल्लुकदारो, अंग्रेज सिविलियनो का आधिपत्य था जिनमे दो-एक काग्रेसी नेता साझा करने लगे थे। बादशाहबाग मे युनिवर्सिटी की इमारतें, नये-पुराने स्थापत्य का मिश्रण, केनेट हाल मे अग्रेज अधिकारियो, वाइस चासलरो के आदमकद तैलचित्र, दीवालों पर वार्निश से चमकती कीमती लकडी की सजावट, आर्ट्स और साइंस के अलग ब्लाक, हर तरफ हरी दूब-भरे मैदान, दूर-दूर तक फैले हुए दोमंजिले होस्टल, बहुत-से नवाबो-राजाओं के लाडले, चार साल की पढाई आठ साल मे पूरी करनेवाले, होस्टल मे आधी उम्र गुजारनेवाले छात्र—बीरबल साहनी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अध्यापक, अनेक विभागो के अध्यक्ष, अपने-अपने इलाके के

छोटे-मोटे ताल्लुकदार। विश्वविद्यालय में हिन्दी की पढाई सिर्फ बी० ए० तक होती थी।

आर्ट्स फैकल्टी के सामनेवाले मैदान में जवाहरलाल नेहरू की माँ स्वरूपरानी का भाषण हुआ था। छोटा कद, साधारण-सी आवाज लेकिन वह नौजवानों मे आग फूँक गई थीं। सन् '३०-३२ के तूफानी दिनों में लडको ने आर्ट्स फैकल्टी के डीन और यूरोपियन हिस्ट्री विभाग के अध्यक्ष अंग्रेज प्रोफेसर स्मिथ को लायब्रेरी मे बन्द कर दिया था। अमीनुद्दौला पार्क झंडेवाला पार्क बन गया था; शहर की ज्यादातर राजनीतिक सभाएँ यहीं होती। हुसेनगंज की चौड़ी सड़क पर सत्याग्रहियों के जत्थों पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया था। प्रेमचन्द ने 'समर यात्रा' की कहानियों की सामग्री लखनऊ की इन्हीं सड़कों पर पाई थी।

प्रेमचन्द ने कृष्णविहारी मिश्र के साथ 'माधुरी' का संपादन करके उसे हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिका बना दिया था। अब वह बनारस से 'हंस' निकाल रहे थे और 'माधुरी' के अनेक पुराने लेखक उनसे सहयोग कर रहे थे। कृष्णविहारी मिश्र सीतापुर चले गये थे, कभी-कभी लखनऊ आते थे। ब्रजभाषा काव्य के प्रेमी थे पर छायावादी कविता का समर्थन करते थे। उन पर राष्ट्रीय आन्दोलन का गहरा असर था; उस रंग में उन्होंने कुछ दोहे भी लिखे थे। रूपनारायण पाण्डेय की स्वच्छ कविता बँगला नाटकों-उपन्यासों के अनुवाद के परिमाण के पीछे छिप गई थी। पाण्डेयजी 'माधुरी' की परंपरा निवाहते हुए नये लेखकों की रचनाएँ छापते, उन्हें प्रोत्साहन देते, छायावाद के समर्थन के लिए उनकी पत्रिका मे सदा स्थान रहता था। मेज के पास बैठे अपनी अधखुली आँखों से वह साहित्य की सारी दुनिया देखते, इशारे से नये लेखको को संस्कृत-गर्भित कठिन हिन्दी के मार्ग से हटाकर सीधी मुहावरेदार हिन्दी की राह चलाते। बुजुर्ग पीढ़ी मे मिश्रबन्धु, राजाओं और अंग्रेजी राज के भक्त, कान्यकुब्जत्व के उपासक, हिन्दी नवरत्न के लेखक, महावीरप्रसाद द्विवेदी और शिवपूजन सहाय की तीक्ष्ण आलोचक दृष्टि से बेधे हुए, अनेक रीतिवादियों से फिर भी उदार, 'पल्लव' के प्रशंसक थे।

कुल मिलाकर लखनऊ का साहित्यिक वातावरण निराला के अनुकूल था। विश्वविद्यालय के कपाट उनके लिए बन्द थे पर और दूसरे छोटे कालेजो मे उनका सम्मान-सहित प्रवेश हो चुका था। कान्यकुब्ज इंटर कालेज के प्रिंसिपल बालकृष्ण पाण्डेय अंग्रेजी के विद्वान्, हिन्दी के मधुर वक्ता, निराला के प्रशंसक थे। वह अपने कालेज में अक्सर साहित्यिक आयोजन करते और निराला को उनमे काव्यपाठ या भाषण के लिए बुलाते।

ब्रजमोहन तिवारी कान्यकुब्ज कालेज मे अंग्रेजी के अध्यापक थे। निराला के समवयस्क, वैष्णव स्वभाव और परिष्कृत साहित्यिक अभिरुचि के विद्वान् अंग्रेजी मे कविताएँ लिखते थे, सेंट जॉन्स कालेज आगरा मे अपने अध्ययन के रूमानी दिन उमंग से याद करते थे। क्लास में लड़के उन्हें तंग करते थे। तिवारीजी बोर्ड पर कुछ लिख रहे हैं। पीछे से कोई लड़का आवाज़ लगा रहा है—सर सर सर, जरा सर तो हटा लीजिए। उनकी विद्वत्ता हाईस्कूल, इंटरमीडियेट कक्षाओ के अनुकूल न थी।

निराला कभी-कभी अंग्रेजी व्याकरण में उनकी परीक्षा लेते । यू आर ए फूल—वताइए तिवारीजी, फूल कौन केस है ? तिवारीजी का मन कही और भटकता होता; गैर-हाजिरी मे जवाव देते—आर का औव्जेक्ट है । निराला ठठाकर हँसते—औवजेक्ट नही कौम्प्लीमेंट, यू आर ए फूल, फु फ् फ् फू'' ।

निराला शेक्सपियर का सॉनेट पढते—माइन आई हैथ प्लेड द पेंटर ऐंड हैथ स्टेल्ड । तिवारीजी से उसका अर्थ बूझने को कहते । तिवारीजी आधे सॉनेट की व्याख्या तक आराम से पहुँच जाते, पर जव माइन आइज हैव ड्रॉन दाई शेप, ऐंड दाइन फॉर मी आर विन्डोज टु माई ब्रेस्ट—की वारी आती, तव वह मेरी-तेरी आँखो की खिड़कियो-झरोखो से उलझ जाते । और वह जितना ही उलझते, निराला उतना ही अंग्रेजी के एम० ए० एल० टी० को परास्त करने पर हँसते ।

वलभद्र दीक्षित पढीस, कृष्णविहारी मिश्र के पड़ोसी, अवधी के लोकप्रिय कवि, यथार्थवादी गद्य के अत्यन्त समर्थ लेखक, निराला की उच्छृङ्खलता से वचते हुए उनका सारा क्रान्तिकारी तत्व अपने जीवन मे समो चुके थे । कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने पर भी उन्होने छुआछूत के वन्धन तोड़ दिये थे, अपने घर पर वह अन्त्यजो के वच्चो को पढाते थे, सामन्ती वातावरण मे रहकर उसकी वीभत्सता उन्होंने भीतर से देखी थी और उस पर अपनी अद्वितीय कहानी 'क्या से क्या' लिखी थी । निराला उनका वड़ा सम्मान करते थे । उनके सहज भाव-प्रदर्शन पर मुग्ध होकर कहते—यह डेढ पसली का आदमी न जाने कैसे इतना अच्छा लिखता है ।

कभी-कभी चौक से उदीयमान कहानी-लेखक अमृतलाल नागर आते । विनोद-शकर व्यास के समान देखने मे सुन्दर, वड़ी-वड़ी आँखे, गौरवपूर्ण, पुराने रईसी वाता-वरण मे पले हुए लखनवी तहजीव की सजीव प्रतिमा, निराला से वहस मे न उलझते, अदव से उनकी वाते सुनते, कविता कम समझते, निराला के गद्य के दाये-वायें निकल-कर, कभी प्रसाद की अलंकृत शैली, कभी चौक में नित सुनी जानेवाली वोली के सहारे साहित्य मे अपना रास्ता पहचान रहे थे ।

केदारनाथ अग्रवाल कानपुर मे वकालत पढ रहे थे, 'वालेन्दु' उपनाम के साथ 'माधुरी' मे कविताएँ छपाने लगे थे । कविता मे जो मुझे अच्छा लगता, वही केदार को; निराला के आगे न उन्हे हिन्दी का दूसरा कवि भाता, न मुझे । मेरे विपरीत वह वहुत जल्द अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कविता मे एक सहज शैली गढते जा रहे थे ।

निराला के स्नेह-पात्रो मे कहानी-लेखक गंगाप्रसाद मिश्र थे । अभी पढ़ रहे थे, कालेज पत्रिकाओ मे कहानियाँ छपाने लगे थे । निराला उनकी कहानियाँ पढकर उन्हे प्रोत्साहन देते । पढीसजी के पुत्र वुद्धिभद्र दीक्षित निराला से मिलने आते । वह निराला-मंडली के युवको मे सवमे छोटे थे; निराला उनसे वैसे ही वाते करते, जैसे वयस्क लोगो से । उनके व्यवहार मे वड़े-छोटे का भेद न था; वह दूसरे के व्यक्तित्व, उसके सम्मान और मर्यादा का वरावर ध्यान रखते थे । वह व्यंग्य करके कभी हँसते थे तो वरावरवालो पर, छोटो पर नही ।

कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह, अंचल, रामरतन भटनागर 'हसरत', दयानन्द गुप्त (उस

समय के उदीयमान कहानी-लेखक) लखनऊ के प्राय: सभी तरुणों को साहित्य-रचना की प्रेरणा निराला से मिलती थी। जिसमे जैसी क्षमता थी, वैसे ही वह प्रभाव ग्रहण करता था। कुछ उनकी काव्य-शैली की नकल करके रह गये, कुछ नयी राहें बनाकर चमके, कुछ पुरानी लीको पर मेहनत से आगे वढते रहे। पर लखनऊ के युवा साहित्य-कारों में ऐसा कोई न था जो निराला से प्रभावित न हुआ हो।

निराला के मित्रों और परिचितों में छात्र, अध्यापक, प्रिंसिपल, शहर और देहात के नौजवान और बूढ़े, गायिकाएँ, नर्तकियाँ, अन्त्यज, मुसलमान, जमींदार, संगीतशास्त्री, राजनीतिज्ञ, गुंडे— सभी तरह के लोग थे। प्रकाशकों और नेताओ को छोड़कर सभी उनकी इज्जत करते थे। एक सज्जन कुछ दिन तक ५८ नंवर में आकर रहे। साहित्य से कोई वास्ता न था; दिन-भर मूछें ऐंठते या पड़े सोया करते। निराला के परम मित्र थे, पीने में वड़ों-वड़ो को मात देते थे। लखनऊ मे खान नाम का मशहूर गुडा था। सड़क पर वड़े अदव से निराला को सलाम करता था। ढावे में भोजन वनाने वाले कामतापंडित निराला के वड़े भक्त थे; उन्हे इकन्नी मे घी-छौंकी दाल और साग के साथ भरपेट भोजन कराते। यूसुफ नाम के शरीफ मुसलमान निराला को गोश्त खिलाते, सूफी काव्य की चर्चा करते। कभी गाँव से जवान-बूढ़े आ जाते। गढ़ेवा जिला उन्नाव के एक वूढ़े पंडित आये। निराला की वड़ी प्रशंसा की; गाँव-जवार का नाम उजागर किया है, कान्यकुब्जों मे ऐसा विद्वान् आस-पास कोई नही है। फिर इस वात पर खेद प्रकट किया कि निराला ने शिखा-सूत्र त्याग दिया है। निराला ने पूछा —शिखा-सूत्र क्यों धारण करें ? वृद्ध सज्जन ने उत्तर दिया—ऋपियों-मुनियों ने जो लीक वनाई है, उसी पर चलना चाहिए। निराला ने कहा—ऋपि-मुनि तो नंगे रहते थे; उनकी लीक पर चलना है तो कपड़े उतार डालिए।

हर तरह के व्यवहार के लिए उनके पास मानो अलग-अलग गुट थे। साहित्य-चर्चा के लिए भी उन्होंने अपने मित्रो और परिचितों को वाँट रखा था। व्रजमोहन तिवारी और मुझसे वह अग्रेजी काव्य-चर्चा करते। दयामय मित्र से रवीन्द्रनाथ को लेकर उलझते। वासुदेवशरण अग्रवाल और रामदत्त ऐडवोकेट के साथ वैदिक साहित्य का मन्थन करते। जितने लोग उनके यहाँ आते थे, उनसे ज्यादा लोगों से निराला स्वयं मिलने जाते। छोटों के घर जाकर मिलने में उन्हे संकोच न था।

जानकीवल्लभ शास्त्री से उनका पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया था। उन्होने अपना संस्कृत कविता-संग्रह 'काकली' निराला को भेजा था। निराला उनके संस्कृत-ज्ञान को सराहते; इस वात से विशेप प्रसन्न थे कि संस्कृत का विद्वान् उनके काव्य का प्रशंसक है। लम्वे छरहरे वदन के घुँघराले वालोवाले, दूर से ही कवि जैसे दिखने-वाले जानकीवल्लभ जव लखनऊ आये तव निराला उनसे कालिदास को लेकर भिड़े।

निराला काव्य-प्रतिभा को जितना महत्वपूर्ण मानते थे; उतना ही विद्वत्ता को। उन्हें जितनी चिन्ता इस वात की थी कि काव्य-क्षेत्र में अद्वितीय हो, उतनी ही इसकी कि वँगला-संस्कृत-अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान में भी वह अप्रतिम हों। दर्शन पर तो वह अपना सहज एकाधिकार मानते ही थे।

एक पुस्तक जो हमेशा उनके पास रहती थी, जिसे सिहराने तकिये की तरह रखकर वह सोते थे, आप्टे की संस्कृत डिक्शनरी थी। इसकी सहायता से धातु-प्रत्यय का हिसाब लगाकर वह शब्द सिद्ध करते थे। जो जल है, वह जड़ है। विनय न मानत जलधि जड़। जलधि इसीलिए जड है। उनके अपने गीत मे—

अशिव उपलाकार मंगल
द्रवित जल नीहार।

जड़ उपल बदलकर जल बन जाता है। दूसरे गीत मे—पृथु उर सुर पल्लव दल। सुर अर्थात् सुन्दर ढंग से रमण करनेवाला।

धातु-प्रत्यय के अनोखे सम्बन्ध जोड़कर वह शब्दो के नये अर्थ ही न निकालते थे, वह ऐसे अद्भुत ढँग से समास-रचना करते थे कि उनके संस्कृतज्ञ मित्र उमाशकर वाजपेयी सिहर उठते थे। जैसे वह व्याकरण के नियमो को बलपूर्वक मोड़ लेते थे, वैसे ही वेदान्त की भट्ठी मे रस और अलंकारों को तपाकर सभी रसों मे एक रस और एक ही अलंकार से सभी अलंकार निकाल सकते थे।

संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू शब्दो के उच्चारण पर वह विशेप ध्यान देते थे। महावीर-प्रसाद द्विवेदी का अनुसरण करते हुए वह तअज्जुब और तअल्लुकेदार लिखते थे, कभी बोलते भी वैसा ही थे। केवल जब धाराप्रवाह बैसवाड़ी मे व्याकरण-उच्चारण भूल जाते, तब तअज्जुब और तअल्लुकेदार की अकड निकालकर उन्हे ठेठ हिन्दी बना लेते थे।

उन्होंने मुझसे 'इंग्लिश पारनासस' की प्रति ले ली थी। उसमें उन्होंने बहुत-सी कविताएँ पढ डाली, विशेप रूप से शेली और कीट्स की। जहा शब्द समझ मे न आते थे, वह निशान लगा देते थे, मैं उनका अर्थ लिख देता था। शब्दों का अर्थ समझने में ही उन्हें थोड़ी कठिनाई होती थी; कविता का मर्म वह बहुत-से प्रोफेसरों से ज्यादा अच्छी तरह समझते थे। कीट्स की 'ओड टु ऑटम' की अन्तिम पंक्ति तक पहुँचे—

And gathering swallows twitter in the sky—

तो पूछा, मतलब समझे ? फिर खुद ही समझाया—ऑटम बीत गया; स्वालोज़ उडकर जा रही है; शीतकाल—मृत्यु का समय—आ पहुँचा।

हैमलेट की उक्ति दोहराते :

There are more things in heaven and earth Horatio,
Than are dreamt of in your philosophy.

इससे वह सिद्ध करते कि कवि की प्रत्यक्ष अनुभूति के आगे किताबी विद्या हेच है।

आँखो में शरारत भरे वह होरैशिओ के प्रति मारसेलस की उक्ति उद्धृत करते :

Thou art a scholar : speak to it, Horatio.

मारसेलस हैमलेट के मृत पिता के प्रेत को देखकर होरैशिओ से कहता है, तुम स्कालर हो, उससे बाते करो।

निराला इस वाक्य से स्कालरों के ज्ञान पर व्यंग्य करते।

उन्हें शेक्सपियर के अनेक सॉनेट वहुत प्रिय थे, खास तौर से जहाँ कवि ने अपनी 'विट' का परिचय देते हुए मूर्तिविधान का चक्रव्यूह तैयार किया था—

Mine eyes have drawn thy shape, and thine for me
Are windows to my breast, where through the sun
Delights to peep, to gaze therein on thee.

यह पूरा सॉनेट उन्हें कंठस्थ था।

उन्हें शेली की व्यंग्य कविताएँ भी पसन्द थी। वर्ड्स्वर्थ की पैरोडी करते हुए शेली ने 'पीटर वेल दि थर्ड' कविता लिखी थी। इसमे निराला यह वन्द हँसते हुए सुनाते :

Hell is a city much like London—
A populous and a smoky city;
There are all sorts of people undone;
And there is little or no fun done;
Small justice shown, and still less pity.

शेली की गम्भीर कविताओं में उन्हें 'क्लाउड' पसन्द थी, उसके कई वंद याद थे, खास तौर से उसका आखिरी वंद जिसमें यह पंक्ति आती है—

I change, but I cannot die.

व्लेक और वर्ड्स्वर्थ की अनेक कविताओ से भी वह परिचित थे।

रवीन्द्रनाथ की 'कथा ओ काहिनी' की रचनाएँ उन्हें वहुत पसन्द थी। 'सूरदासेर प्रार्थना' कंठस्थ थी। इन्हें वह वैलेड कहते थे। वह स्वयं एक वैलेड लिखना चाहते थे, पूरी तैयारी के वाद। इसके लिए वह कुमारसंभव घोख रहे थे, उसके कई सर्ग कापी में नकल कर लिये थे। पर वह किसी पवित्र विषय पर, ज्ञान, भक्ति और संन्यास को छूते हुए किसी के व्यक्तित्व पर लिखना चाहते थे, इस तरह कि वे तमाम दिव्य भाव उभर आयें, जिनसे तुलसीदास महान् थे और रवीन्द्रनाथ उनसे घटकर। उनके मन में पुनीत भावना की ये तरंगें उठती और कविता का पूर्णरूप लिये विना कहीं विलीन हो जातीं। स्वामी सारदानंद का महावीर रूप, उनके साथ मन की स्वप्नाविष्ट दशा सन् '३३-३४ में उन्होंने कितनी वार याद की थी।

एक रात जैसे उन्होंने मनोहर सपना देखा हो। सवेरे प्रसन्नमन अपना रहस्य जैसा कुछ प्रकट करते हुए वोले—स्त्री के माथे पर जो सेंदुर है, वह महावीर का चिह्न है।

मैंने कुछ संशय, कुछ सहानुभूति से सर हिलाया। उनकी प्रसन्न मुद्रा ज्यों-की-त्यों वनी रही मानो स्वप्न की छवि उन्हें अव भी मोह रही हो। वह कहते गये—वीरवेश में हनुमान, गदा लिये, घुटना मुड़ा हुआ, भारत का चित्र वनता है या नहीं ?

वहस से उनका मूड खराव न हो, यह सोचकर मैंने हामी भरी—वनता है।

उन्हे महिषादल के दिन याद आये जव पितारूपी वृक्ष पर संसार का ताप था, युवक मुर्जकुमार पर केवल छाँह। उन्हें गढ़ाकोला में कुएँ पर पानी भरती पनिहारिन

याद आई जो दाँतो मे घूंघट का छोर दबाये घडा खींचती हुई इन्हे देखकर मुस्कराई थी। गढाकोला के वह बाबाजी याद आये जो गा रहे थे—पनिहारिन से थोडी दूर, पकरिये के पेड़ के नीचे—कौन पुरुप की नार झमाझम पानी भरे। चतुरी की मंडली का भजन कितना सुन्दर था—कहत कोउ परदेसी की बात। महिपादल मे कमल के फूल, महावीर का शृंगार, मनोहरादेवी के माथे पर सिन्दूर, महावीर का प्रतीक, स्वामी प्रेमानन्द के सामने रामायण पाठ। निराला के मन मे स्मृतियो की तरंग उठी, उन्होने जो स्वप्न देखा था उससे वह घुल-मिल गयी। निराला के मुंह पर निर्मल कान्ति छा गई जैसी मैंने पहले कभी न देखी थी। उनकी आँखें जैसे बाहर की दुनिया न देखकर बहुत गहरे अपने भीतर कुछ देख रही हों।

मनोहरादेवी का सौन्दर्य, उनका अमित स्नेह, निराला की साधना के पीछे उनकी अदृश्य प्रेरणा, महावीर का वीरत्व, संन्यासियो का त्याग, मर्म को छूनेवाला तुलसीदास का काव्य-स्वर—निराला ने कहानी लिखी 'भक्त और भगवान्'। किंतु कहानी काफी नही। निराला को बैलेड लिखनी थी, ऐसी गाथा जैसी रवीन्द्रनाथ ने लिखी न थी। वह कोमल-कोमल मधुर-मधुर पंक्तियोवाली 'सरस' कविता न होगी; उसमे मेधा का प्रखर तेज होगा, पंक्तियो मे ऐसी ऊर्जा जो इन तमाम पिनपिन गुन-गुन करनेवालों को भस्म कर दे। यह कविता स्वयं उनकी अपनी कविताओं से, उनके गीतो से भिन्न स्तर की होगी। क्या हिन्दी मे ऐसी कविता लिखना सम्भव है ? हिन्दी के शब्द कर्णकटु है। कवि की सारी शक्ति उन्हे काव्योपयोगी बनाने मे खर्च हो जाती है। सनेही ने अच्छा लिखा है—

> उदासी घोर निशि मे छा रही थी,
> पवन भी काँपती थर्रा रही थी।
> विकल थी जाह्नवी की वारिधारा,
> पटककर सिर गिराती थी कगारा।

प्रवाह सुन्दर है पर निराला को यह सरल प्रवाह न चाहिए। हर पंक्ति भुजा की मासपेशी की तरह कसी हो। भवभूति का घनत्व—वैसा कुछ कविता मे आना चाहिए। कालिदास की रँगामेजी अच्छी, है, लेकिन आइडिया मे बहुत गहरे नही उतर पाते। तप रे मधुर मधुर मन। पंत अच्छा लिखते है पर जो तपन मधुर न हो, जिसमे लोहे को गला देनेवाला दाह हो, उसे इस तरह की शब्दावली से कैसे प्रकट करे ?

उन्होने अपनी बैलेड के लिए विषय चुना तुलसीदास। रवीन्द्रनाथ ने सूरदास पर, कालिदास और वैष्णव कवियों पर अनेक कविताएँ लिखी थी। निराला तुलसी-दास पर लिखेगे, ऐसी कविता जो भारत के, विश्व के महाकवि की महत्ता पूरी तरह व्यक्त करेगी। जिस पर तुलसीदास ने स्वयं बहुत कम लिखा था, उनका आन्तरिक संघर्ष, वह संघर्ष जिसे निराला अपने जीवन मे अच्छी तरह देख चुके थे, तुलसी की आसक्ति, रत्नावली के प्रति मोह, साधना के प्रथम सोपान, फिर बाधाएँ, अन्त मे पत्नी के उपदेश से ही ज्ञान-दृष्टि की प्राप्ति, वह ज्ञान जो भक्ति के नीचे छिपा है, जिसे

केवल निराला ने देखा है, पिछले बारह वर्षों में जिसे बराबर घोखा है, निराला इस सबका चित्रण करेंगे। स्वप्नों और संस्कारों की दुनिया, मन के भीतर विरोधी भावों के अदृश्य संघर्ष, ज्ञान के लिए चेतना का अप्रतिहत ज्वार—यह सब किसी ने नहीं लिखा। निराला को लिखना है और भाषा में वह क्षमता लानी है कि जो अव्यक्त है उसे भी मूर्तिमान कर दे। लम्बी कविता होगी, सीधी, सपाट कहानी नहीं, एल्लोरा-अजन्ता की गुफाओं में गढ़े हुए मंदिरों जैसी, हर छन्द नक्काशी किये हुए पत्थर के स्तम्भ की तरह सुदृढ़ और सुन्दर।

निराला ने कविता के लिए तुकान्त छन्द चुना : दो पंक्तियाँ छोटी, तीसरी बड़ी; फिर दो पंक्तियाँ छोटी और तीसरी बड़ी। तुलसीदास ने स्वयं छन्द-कौशल का अपूर्व परिचय दिया था। फिर जहाँ साधना है, वहाँ संयम है, जहाँ संयम है, वहाँ बन्धन है। तुलसीदास पर अन्त्यानुप्रासयुक्त छन्द में ही कविता लिखी जा सकती है। दो पंक्तियों की तुक मिलाना आसान था। तीसरी और छठी के बीच फासला था; इनकी तुकें मिलाना जरा कठिन था। संस्कृत में तुकों का झगड़ा नहीं; बँगला में एकारान्त, ओकारान्त शब्दों की भरमार, तुकों का टोटा नहीं। लेकिन यह हिन्दी!

भारत का अर्थ है प्रकाशमान। उसी भारत की संस्कृति का सूर्य अस्त हो गया है। 'सांस्कृतिक सूर्य' ये शब्द लाइन मे बैठ जाएँगे। सूर्य की तुक? पूर्य? क्यों नहीं। प्रभापूर्ण लिखा जाता है, पर प्रभापूर्य सुनने में और भी अच्छा लगता है। छठी पंक्ति में 'शतदल' आना है। सूर्य अस्त हुआ तो जीवन का शतदल निर्जीव होगा ही। दिशाओं में अन्धकार छाया है। शतदल के साथ दिङ्मंडल की पटरी बैठ सकती है। अब एक ही पंक्ति मे दिखाना है कि दिङ्मंडल तमसावृत है। ध्वनि का आवर्त रचते हुए नया शब्द गढ़ा—तमस्तूर्य। अन्धकार मानो तुरही बजा रहा हो। अच्छी कल्पना है। थोडा-सा प्रयास करने से पाठक समझ लेंगे। तीन-चार घंटे की मेहनत के बाद पहला बंद तैयार हुआ :

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मंडल;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान;
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शतदल।

चेहरे पर थकान, मानो कठिन शारीरिक परिश्रम के बाद पस्त हो गये हों।

क्रमशः दो-दो तीन-तीन बन्द एक दिन में तैयार होने लगे; गाड़ी चल निकली। सांस्कृतिक पराभव का चित्र, आक्रामक तुर्क सेनाएँ, आकाश मे काली घटाओं जैसी; रूपक का प्रसार,—मुगल, पठान, नदी-नालो जैसे, प्रलय के मेघों की वर्षा से जातीय जीवन नष्ट हो गया। 'मुगल' से 'मोगल' शब्द ज्यादा जोरदार है।

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान—

'द' की आवृत्ति आक्रामको की शक्ति का अच्छा परिचय देती है। क्षत्रिय सामन्तो की शूरता ? जो वीर थे, वे वीरगति को प्राप्त हुए; जो रहे शेप, वे नृपवेशसूतवन्दी-गण थे। इस्लाम सागराभिमुखऽपार—इस तरह 'अ' का लोप हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है पर चलेगा, कवि को थोडी-बहुत स्वच्छन्दता तो मिलनी ही चाहिए। रूपक का और आगे प्रसार,—वर्षा के बाद शृंगार की शरद। रवीन्द्रनाथ और कालिदास के मोहक भाव, वहती समीर चिर आलिंगन ज्यो उन्मन, ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल, नियमित पद, ललित छन्द,—यह सब आसुरी संस्कृति से सम्बद्ध। इसी से तुलसीदास को युद्ध करना होगा।

कैसे थे तुलसीदास ? रामायण, विनयपत्रिका—अपने बारे में कही कुछ विशेप नही लिखा। पर आदर्श कवि की मूर्ति वैसी ही रही होगी जैसी युवक निराला की थी। आयतदृग, पुष्ट देह, गतभय; क्रीड़ितवय—खेल-कूद मे भी तेज रहे होंगे। शिक्षा अधूरी नही—समधीतशास्त्रकाव्यालोचन। महिपादल के वाग-वगीचे, नदी-नाले-सरोवर, फूलो की अरघानें। तुलसीदास प्रकृति की शोभा पर मुग्ध हुए। संस्कारों का सागर लहराया। पृथ्वी मुक्ति चाहती है, तुलसीदास ने संदेश सुना। ज्ञान के स्पर्श से अहल्या का उद्धार करना है। 'वर्तमान धर्म' मे ऐसे ही रूपको का अर्थ समझाया था। शृंगारी भावो ने ज्ञान को ढक लिया है। कुमारसभव के जो सर्ग घोखे थे, उनका सारतत्व खीचकर निराला ने तीन पंक्तियाँ लिखी :

अव स्मर के शर केशर से झर
रँगती रज-रज पृथ्वी, अंवर;
छाया उससे प्रतिमानस-सर शोभाकर।

तुलसीदास का मन संस्कारो के इस आकाश से बहुत ऊपर उठ गया, वहाँ से उन्होंने भारत की छवि देखी, ज्यो राहुग्रस्त आभा रवि की।

स्वप्न मे निराला ने महावीर से पूछा था, इन गरीबो का क्या होगा ? तुलसी-दास का मन ससार से दूर जव ज्ञान के ज्योतिपुञ्ज की ओर वढ़ता जा रहा था, तव उन्हे भी नि सहाय, दीन क्षीण ककाल, शेपश्वास, पशु जैसे मूकभाप, द्विजगण के ग्रास, चतुरी चमार के पूर्वज दिखाई दिये। पार्थिव ऐश्वर्य ही अन्धकार है; दीनो की दुर्वल पुकार इसे नही सुन पाती। केवल तुलसीदास वह स्वर सुनते हैं, केवल वह जानते है कि यहाँ जो राजा है, वास्तव मे वह रक है।

चाहिए उसे और भी और,
फिर साधारण को कहाँ ठौर ?

करुणा-विगलित तुलसीदास की चेतनाशक्ति संस्कारो के वज्रकपाट तोडने को उद्यत है। तुलसीदास के मन की सवसे सक्षम कार्यवाही, कविता का क्लाइमैक्स; विशेप परिश्रम के विना ही साँचे मे ढला हुआ-सा यह वंद कही निराला के अन्तर से उठकर उनकी आँखो के सामने आ गया। अव भापा से युद्ध करना आवश्यक न था ; भावचित्र अन्तस्तल से उठते और शब्दो मे स्वत: रूपायित हो जाते :

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्र द्वार का छाया-तम तरने को—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार—
तोड़ने को विषम वज्रद्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

कैसा है, उन्होंने पूछा।

बहुत बढ़िया—मैंने ऊँची आवाज मे कहा। निराला 'परिमल' से आगे बढ रहे हैं, अब मुझे विश्वास हो गया था। आरम्भ में वह पूछते—कैसा है? मैं धीमी आवाज़ में कहता—अच्छा है। जैसे कविता आगे बढ़ी, मेरी आवाज मे उल्लास की मात्रा बढती गई। वह तीन-चार बंद जितना भी लिखते, उसी समय दिखाते। उनके चेहरे पर थकान के बदले अब आत्मतुष्टि का प्रकाश था।

परमपदलाभ की आकांक्षा, मनोहरादेवी से विवाह, आसक्ति, वैराग्य से दुराव, तुलसीदास के मन मे पहले संन्यास की आकांक्षा, फिर रत्नावली का मोह। शृंगारी संस्कारों से ऊपर उठकर तुलसीदास जिस मानस ऊर्ध्व देश में पहुँचे थे, वहाँ अन्धकार मे तारिका-सी प्रेयसी, प्राणसंगिनी रत्नावली की छवि दिखाई दी, और

वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम।

रत्नावली की छवि से बँधकर तुलसीदास का मन नीचे—अर्थात् कालिदास और रवीन्द्रनाथ के ससार में—उतर आया। केशर रजकण हीरे-से चमक उठे; दिशाएँ सुरभित, प्रकृति जगमग,—हुई जग जगमग मनोहरा,—

यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य;
जगमग-जगमग सब वेश वन्य।

प्रकृति प्रेयसी बन गई, गिरिवर उरोज, चन्द्रमा मुख, चन्द्र का कलंक पलके, नील व्योम अलके, तुलसी का मुग्ध मन इस छवि से बँध गया। वैष्णव कवियों ने शृंगार और ज्ञान, लोक और परलोक दोनो साधे थे। निराला ने तर्क किया था, शृंगार के बिना वीररस की निष्पत्ति असम्भव है। तुलसीदास ने भी ऐसा ही तर्क किया—

बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति?
गति-हीन जीव को कहाँ सुरति?
रति-रहित कहाँ सुख? केवल क्षति—केवल क्षति।

रत्नावली का भाव दूसरा था। पति सोते थे, वह जागती थी। वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग मे तागी—निराला ने एक गीत मे लिखा था; रत्नावली शृंगार में बँधकर भी मुक्त है, पुरुष के अधिकार मे नहीं आती—

प्रेम के फाग में आग त्याग की तरुणा।

रत्नावली के भाई आये, उसे विदा करा ले गये। तुलसी बाजार से लौटे तो घर खाली देखा। ससुराल की ओर पैर बढाये। डालो पर कोयलों की कुहू ध्वनि, ताल पर झूमती लताएँ, अज्ञात कहीं से आता वंशी का स्वर—तुलसीदास, कालिदास

की आँखों से, प्रकृति की छवि देखते रत्नावली के घर पहुँचे।

कविता की आखिरी मंजिल, सबसे मुश्किल मुकाम, रत्नावली का वह रूप दिखाना है जिससे तुलसी का सारा अज्ञान भस्म हो गया। वेदान्त, सारदानन्द, महावीर, तुलसी के पुनीत दिव्य भाव, निराला की अपनी अमोघ ऊर्जा, सब-कुछ इन अन्तिम छन्दो मे घुल-मिलकर एक हो गया। रत्नावली ने क्या कहा, विस्तार मे जाने से चित्र विगडता था। निराला ने एक वन्द मे रत्नावली की उक्ति समेट ली। पर तुलसीदास ने जो देखा, निराला ने कई छन्दो में उसका भव्य चित्र आँका। कविता के आरंभ मे सांस्कृतिक सूर्यास्त, मोगल वल-दल के जलद और केशर के स्मरशर रत्नावली के सौन्दर्य के आगे फीके हो गये। पर्वत के पास जैसे घननीलालका दामिनी हो; रत्नावली दामिनी से भी प्रखर प्रकाशवाली। पर कवि का मोह; वादलो को देखकर मोर की तरह तुलसी का मन नाच उठा। ध्वनि की तरंग ऊपर उठती गई; जो चित्र मे न दिखा पाये, उसे शब्दो की ध्वनि ने कह दिया। तुलसीदास के संस्कार जागे; पत्नी के रूप मे नील-वसना शारदा दिखाई दी; मंसार हंस है, उन पर उनकी वीणा से स्वरों के अमृत निर्झर वह रहे है। तुलसी का मन फिर ऊर्ध्वदेश मे उठा; एक क्षण में श्रृंगारी संस्कारों का आकाश पार कर गया। इस बार वह लौटा नही। घर छोडकर तुलसीदास साहित्य की साधना के मार्ग पर निकल पडे।

दैत्यों से देवो का सग्राम होगा, सरस्वती स्वय जड़ जीवन को परास्त करेंगी, वही तुलसी के कंठ मे निवास करके काव्यधारा प्रवाहित करेंगी। तुलसीदास क्या उन दीन क्षीण कंकालकाय जनों को भूल जायेंगे, उनका ज्ञान उन्हे किसी अलक्ष्य स्वर्ग के गीत गाने की प्रेरणा देगा? नही, तुलसीदास अपने युग के कवि थे और सब युगो के थे—

देश-काल के शर से विंधकर
यह जागा कवि अशेष छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी।

जो खिन्न है, एक-दूसरे से टूट गये है, तुलसी का स्वर उन्ही को जोड़ेगा। सास्कृतिक सूर्यास्त की वेला समाप्त हुई; शरद चाँदनी का मधुर स्वप्न भंग हुआ। प्राची दिशा मे तुलसी-काव्य का अरुणोदय हुआ।

सौ वंदों मे कविता समाप्त हुई। छन्दों का यह शतदल निराला ने अपने आराध्य कवि तुलसी के चरणो मे अर्पित किया।

कई महीने का परिश्रम; निराला ने इतना श्रम अब तक किसी कविता पर न किया था। उपन्यास लिखने मे समय लगता था पर इतनी मेहनत न पड़ती थी। स्थापत्य की ऐसी पूर्णता, इतने वड़े पैमाने पर ऐसा सुगठित काव्य-शिल्प उनकी किसी रचना मे न आया था। वह थक गये थे पर प्रसन्न थे।

'सुधा' के कई अंको मे धारावाहिक रूप से कविता छपती रही। दुलारेलाल भार्गव ने शिकायत की—निराला की यह कविता छापने से 'सुधा' की ग्राहक-संख्या घट गई है।

उमाशंकर वाजपेयी का कहना था--निराला ने व्याकरण के नियमों को इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा है; उनकी समास-रचना गलत है, उसका वह अर्थ होता ही नही जो वह लगाते हैं।

दुलारेलाल भार्गव को अपनी दोहावली पर देव-पुरस्कार मिला।

लखनऊ में कवि-सम्मेलन हुआ। श्रीनाथसिंह के शब्दो मे—"उसमें हमारे एकमात्र कविता-प्रेमी नरेश ओरछा के महाराज सभापति के रूप में विराजमान थे।"

निराला ने सोचा, उपन्यास लिखे विना निस्तार नही। कविता लिखने मे इतना परिश्रम करो, अर्थ-प्राप्ति कुछ भी नही, वदनामी ऊपर से कि समझ में नही आती। 'दान' कविता तो सरल है: गोमती के पुल पर लोग वन्दरों को पुए खिलाते है, भूखे भिखारी चिल्लाते रह जाते हैं। यह धर्म है! निराला का व्यंग्य उन सवकी समझ में आ जायगा जो 'तुलसीदास' नही समझते। लेकिन पैसे? सरस्वती पुस्तक भंडार वालों से कुछ रुपये उधार लिये हैं। उन्हें एक कहानी-संग्रह देगे। पर संग्रह छोटा होगा। एक वड़ा उपन्यास लिखना ही होगा।

नाम रखा 'प्रभावती'। 'तुलसीदास' में जैसे कुछ कमी रह गई थी, उसे यहाँ पूरा करना था। गृहत्याग से जीवन की समस्याएँ हल होनेवाली नही है। जनसाधारण का संगठन, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष आवश्यक है; संसारी आदमी का मन अलक्ष्य ज्योति पर कव तक टिका रहेगा? उसे भोग चाहिए, सौन्दर्य चाहिए। नृत्य, संगीत, मांस, सुरापान, इनका भी अपना आनन्द है।

गढाकोला के पास वहती हुई लोना नदी, वरसात में शोभा देखते ही वनती है। कथा है कि लोना चमारिन नंगे-नगे खेत काट रही थी कि उसके पुत्र आ गये। लाज के मारे भागकर उसने गंगा के गर्भ मे आश्रय लिया। निराला ने लिखा—इस कथा का भी महत्व है जैसा भगीरथ द्वारा गंगा के खोदे जाने की कथा का।

वैंसवाड़ा, पृथ्वीराज-जयचंद के समय की पवित्र कान्यकुब्ज भूमि, कोसों तक फैले हुए आमों के विशालकाय उपवन, वैसवाड़े की भूमि शत योजनायत रम्य कानन है। मुगलकाल मे भी यहाँ के जनपद समृद्ध थे। दरिद्रता आई सिधारी पंडित और रामसहाय तेवारी के युग में। विशाल मंदिर, खुली गोचर भूमि, अनिंद्य हिन्दी के मँजे कंठ से निकले ग्राम-गीत। पुरवा के पास लालडीह का स्तूप, गंगा के किनारे डलमऊ, गत गौरव की समाधि जैसा दो मील की दीवार से घिरा एक किला। लालडीह, जिला उन्नाव का नायक; डलमऊ, ज़िला रायवरेली की नायिका।

राजकुमारी प्रभावती किले की सीढ़ियों से उतरती हुई गंगा तट पर आई। रात का दूसरा पहर, प्रकृति स्तब्ध, ऐश्वर्यमयी लक्ष्मी स्वर्ग से मानो भक्त के पास आ रही हो, गौरी जैसे शंकर को समर्पित होने जा रही हों, अकूल ज्योत्स्ना के समुद्र मे नूपुरों की ध्वनि-तरंगें गूंजने लगी, सोपान-सोपान पर सुरंजिता, शिंजितचरण उतरती हुई, चापल्य में लज्जित कमला-सी, भीगे उत्तरीय को उरोजो पर डाले प्रिय के लिए स्वर्ग-सी, उतरती अप्सरा।

'अप्सरा' के सौन्दर्य-स्वप्न, कलकत्ते के वदले सीधे डलमऊ मे गंगा के किनारे।

कालिदास-रवीन्द्रनाथ की जिस श्रृंगार-भावना को 'तुलसीदास' मे उन्होने भस्म किया था, वह अनंग बनकर मानो प्रतिशोध लेने लगी। पर यह सब मनोहरादेवी की ही छवि थी। प्रभावती की नाव श्मशान घाट के पास खड़ी हुई; प्रभा ने राजकुमार देव की आरती उतारी। दासियाँ, श्मशानभूमि, आकाश, चन्द्र, ज्योत्स्ना, तारे, गगा—सब निष्पन्द ! दासी वेश धारण करनेवाली वीर नारी यमुना ने सचेत किया—कुमार, यह देवी प्रभावती की सूझ है, उन्होने श्मशान में आपको वररूप से वरण किया है। इस श्मशान मे आपको शिव मानकर आपके गले मे वरमाला डाली है।

निराला कल्पनालोक मे प्रभावती की छवि देखते रहे; उनका मन घाट से बँधी नाव की तरह उस श्मशानभूमि से हटता न था जहाँ मनोहरा देवी का शरीर चिता मे भस्म हुआ था।

कल्पनालोक के इस मिलन मे मदिरा है, भुना मांस है, वीणा, मृदग, नूपुरो-मंजीरों की झनकार है। नायक और नायिका—दोनो के हाथ में प्यालियाँ। यमुना ने अंग्रेजी ढँग से दोनो के हाथ पकडकर प्यालियाँ मिला दी। दोनो ने प्यालियाँ खाली कर दी; दोनो एक-एक टुकडा मास लेकर खाने लगे। यमुना दूसरे दौर की तैयारी करने लगी। आँखो की लाज दूर हो गई। गगा की पवित्र धारा पर श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन नही, "राजकुमार और राजकुमारी की पहली रात, और इसे वे दोनो शराब की आबदार आँखो से देखे तो कितना सुन्दर होगा ?" वीणा पर देश की मादक मीड़ें, रग-रग मे राग का उन्माद, "प्राणो में सुरा का समर रग"।

पर प्रभावती और कुमार देव का साथ एक रात का ही है। उनके बहुत-से शत्रु हे, सुहाग-स्वप्न बड़ी जल्दी भंग हो जाता है।

प्रभावती, यमुना, अन्य देवियाँ गाँवो मे साधारण जनो के बीच रहती है, उनका संगठन करती है। महिषादल के राजप्रासाद और गरीबो के झोपडे, छतरपुर में वैसा ही वैषम्य; पृथ्वीराज-जयचन्द के समय मे भी—"एक ओर गाँव मे गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग मे महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियो से भरे प्रासादो मे, फिर उन्ही के पास फैलने के लिए—न्याय के लिए जाना और उन्हे भगवान् का रूप मानना पडता था।"

प्रभावती ने काकोरी केस के क्रान्तिकारियों की तरह खजाना लूटा; उन क्रान्तिकारियो से दो कदम आगे बढ़कर उसने जन-संगठन की ओर ध्यान दिया। पेड़ की छाँह मे बैठी प्रभावती सोचती है—"किस उपाय से ग्रामीणो मे शिक्षा का प्रचार होगा," कैसे शिक्षा से "भिन्न वर्ण के प्रति इस प्रकार घृणा का भाव न रह जायगा।"

जन-संगठन की झलक के बाद नृत्य-संगीत के आयोजन। सृष्टि-रक्षा का भाव व्यक्त करनेवाला विष्णुताल पर विद्या का नृत्य, फिर रुद्रताल पर रुद्र का प्रलयंकर रूप, विनाश का निर्मम भाव व्यक्त हो चला, "जैसे सत्य-सत्य नटराज नारी से बँधकर प्रकट हो गये।" फिर लास्य, सौन्दर्य की भावना मे रँगकर वह स्वप्न की ज्योतिर्मयी प्रेयसी बन गई। कल्पना-लोक के स्वप्न, वैभव-विलास के चित्र; पर प्रभावती और राजकुमार देव एक साथ जीवन न बिता सके। संयोगिताहरण में सहायता करती हुई

सैनिक वेश मे प्रभावती काम आई। राजकुमार देव को दूसरी राजकुमारी मिली; नाम—रत्नावली। उपन्यास में आगे लिखने को कुछ न रह गया। कथा, प्रभावती के जीवन के साथ, समाप्त हो गई।

महिपादल के राजप्रासाद की स्मृतियाँ, सन् '३० में गढ़ाकोला के अनुभव, 'अप्सरा' काल के सौन्दर्य-स्वप्न—इन सबको मिलाकर निराला ने 'प्रभावती' की रचना की, तुलसीदास और स्वामी सारदानन्द के दिव्य लोक से दूर, कथा गढ़ने में पहले जैसी कमजोरियाँ। उपन्यास सरस्वती पुस्तक भंडार के हवाले किया। उपन्यास देकर उधार अदा किया; पाया कुछ नहीं।

दुलारेलाल से अब तक निभती आई थी. निराला के धैर्य और सहनशीलता के कारण। वह 'सुधा' के लिए 'नोट्स' लिखते-लिखते थक जाते। कभी मुझसे कहते—कुछ तुम लिखो। मैं पूछता—किस विषय पर ? वह कहते—किसी भी विषय पर, अंग्रेजी कविता पर ही कुछ लिख डालो। मै कुछ स्लिपे रँग डालता और वे उन्हे प्रेस में दे आते।

उन्हे गाँव जाना था, महाजन का कर्ज़ पटाना था। उन्होने दुलारेलाल को पत्र लिखा :

"प्रिय भार्गवजी,

कल घर जाना चाहता हूँ। किश्त समझना है। अभी अदालत की नकल नही ली। सम्भव हुआ—अगर आपसे २५) मिले तो किश्त दे दूँगा, नही तो घूम-फिरकर होली बाद चला आऊँगा। यदि २५) नही तो १०) दीजियेगा।

इति।

—निराला

गीत अभी लिखे
कोई नही : कल
सुबह एक लिखूँगा।

—नि०"

इस पत्र पर दुलारेलाल ने उत्तर लिखा :

"किश्तें आप २५ एप्रिल से देना शुरू करें। २५ एप्रिल तक बड़ा अर्थ-कष्ट रहेगा। इधर मैंने काम भी कम किया।

दुला०
२५-३"

दुलारेलाल भार्गव हिन्दी साहित्य के प्रसार के लिए नित नई योजनाएँ बनाते पर पुस्तकों की बिक्री में मनचाही वृद्धि न होती। वह प्रकाशक के अलावा साहित्यकार थे, साहित्यकारों के निर्माता थे। प्रेमचन्द को उपन्यास-सम्राट् उन्होने बनाया था। निराला जब यहाँ आये थे तब ऐसे थे—वह एक उँगली हिलाकर दिखाते; मैंने उन्हें ऐसा कर दिया—सीने के दोनों तरफ बाँहे मोड़कर चौड़ाई का संकेत करते। वह भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान युग-निर्माता थे; चतुरसेन शास्त्री ने उनकी

इच्छानुसार दुलारे-युग का नामकरण-संस्कार सम्पन्न कर दिया था।

जब उन्हे क्रोध आता तो कुर्सी के हत्थो पर बोझ डालकर पालथी मारे ऊपर उठ जाते मानो कोई आसन कर रहे हो। किसी नौकर पर बहुत नाराज होते तो एक पेटेंट गाली देते—तू अपने बाप का नही है। आवेश मे उनका कंठ रुँध जाता, लगता कि इनकी आँखो से आँसू निकलने ही वाले है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान वह भी भाषा-सुधारक थे। 'सुधा' मे प्रकाशित होनेवाली रचनाओ, गगा पुस्तकमाला मे शामिल की जानेवाली पुस्तको के भाषा-संस्कार के लिए उन्होने कुछ नियम बना लिये थे। प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, स्वय महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाषा सुधारकर दुलारेलाल ने उनकी रचनाएँ छापी थी। लङ्का, चञ्चल, कण्टक, दन्त, चम्पा जैसे शब्दो मे उन्होने सर्वत्र बिन्दी लगाने का नियम बना दिया था। ये शब्द लंका, चंचल, कंटक, दंत, चंपा—इन्ही रूपों में छप सकते थे। गंगा पुस्तकमाला मे प्रकाशित पुस्तको पर सपादक रूप में उनका नाम छपता था। वैसे गंगा पुस्तकमाला और दुलारेलाल भार्गव का अधिकाश लेखन-कार्य निराला ही करते। लखनऊ मे एक चुटकी-भंडार राष्ट्रीय पाठशाला थी। इसके प्रधान दुलारेलाल भार्गव थे। एक बार लखनऊ मे गाधीजी की अवाई पर चुटकी-भंडार पाठशाला मे उनके स्वागत-समारोह का आयोजन हुआ। निमन्त्रण-कार्ड छपे : 'श्री''' की सेवा मे प्रार्थना है', इत्यादि। खाली जगह मे आमंत्रितो के नाम लिखे निराला ने।

दुलारेलाल भार्गव पहले खडीबोली मे कविताएँ लिखते थे। इन्हे विशेष लोकप्रियता न मिली तो ब्रजभाषा मे लिखने लगे। 'सुधा' मे प्रकाशित चित्रो के नीचे अपने दोहे छपाते थे। महत्वाकाक्षा बढी तो सामयिक राजनीति से लेकर रहस्यवाद तक हर विषय पर उन्होने दोहे लिखे। छेड़नेवाले कहते—ये दोहे आपके लिखे नही जान पडते। वह जवाब देते—जिस विषय पर कहो, दोहा लिख दूं; तुम समझते हो, दूसरो से पूछ कर लिखता हूँ ? मुझे पाखाने मे बन्द कर दो; वहाँ बैठकर लिख दूँ।

उनमे इतनी उदारता थी कि जो भी आता, उसे दोहे सुनाते और यदि उसने मनपसन्द इस्लाह की तो वह उसे मान लेते थे। स्वभावतः निराला को उन्होने अपने बहुत-से दोहे सुनाये थे और कई दोहो मे निराला ने सशोधन-परिवर्तन किया था। सन् '३१ मे 'सुधा' के एक अंक पर सम्मति देते हुए निराला ने लिखा था, "और संपादकजी के दोहे तो बस परी के पर।" तीन साल बाद दुलारे-दोहावली प्रकाशित हुई। इसकी भूमिका निराला ने लिखी। वह बिहारी को बहुत बडा कवि न मानते थे; अपने लेखो मे उनकी आलोचना कर चुके थे। बिहारी के अनुकरण पर लिखे हुए दोहो के बारे मे उनकी बहुत अच्छी राय न हो सकती थी। फिर भी दुलारे-दोहावली की भूमिका मे उन्होने लिखा—कुछ लोगो का मत है कि बिहारी सर्वश्रेष्ठ कलाकार है। अचिर भविष्य मे जब दुलारेलाल के कई सौ ऐसे ही दोहे प्रकाशित हो जायेंगे तब लोगो को उनकी श्रेष्ठता का लोहा मानना होगा। ब्रजभाषा मे पहले-जैसी कविता नही होती, यह भ्रम है। कोमलतम मनोभावो की जैसी मंजुलतम कल्पनामूर्तियां, वीर रस की ओजस्वी सूक्तियां, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शान्तरस की सुधाधारा, रसा-

नुकूल अलंकृत भाषा का मुहावरेदार प्रयोग, संक्षेप मे कहने का अद्भुत कौशल—सब कुछ उसमे है।

ओरछा के महाराज वीरसिंहजू देव परम साहित्य-प्रेमी हिन्दी-हितैषी थे। आचार्य द्विवेदी के सम्मान-समारोह में उन्होने व्रजभाषा के श्रेष्ठ काव्यग्रन्थ पर दो हजार रुपये का देव-पुरस्कार देने की घोषणा की। दुलारेलाल भार्गव ने दुलारे-दोहावली के नये सजिल्द, सचित्र संस्करण निकाले, उस पर विद्वानों की इतनी सम्मतियाँ एकत्र की जितनी हिन्दी की किसी पुस्तक पर कभी एकत्र न की गई थीं। निराला ने अपना बौद्धिक चमत्कार दिखाने के लिए 'वीणा' में एक लेख लिखा। उनका विचार था कि समस्त रस-अलंकार एक ही भाव-भूमि मे उत्पन्न होते हैं, इसलिए अनेक होते हुए भी एक हैं। इसी नियम से दोहे का एक अर्थ है और अनेक अर्थ भी है। उन्होंने एक दोहा लिया—

सुमरहु वा विघनेस को, तेज सदन मुख सोम।
जासु रदन-दुति किरन इक, हरत विघन तमतोम॥

गणेश विघ्नो का नाश करनेवाले है; वह विघ्नों को अपने भीतर पचाकर, 'सारी ज्वाला को अपने भीतर डालकर' स्निग्ध-मन हैं। रदन-दुति दाँत की चमक है; रदन का अर्थ संघर्ष है, संघर्ष के ऊपर फैले हुए प्रकाश से वह अंधकार दूर कर देते है। अंततोगत्वा जो प्रकाश है, वही अन्धकार है। इसलिए विघ्न और ईश दोनों एक स्वरूप है। लोहार भी विघनेस है। हथौड़ा चलाकर फाल पीटता है, तभी फसल होती है। लेकिन किसान को विघ्नो के देवता चूहों से सावधान रहना चाहिए, नही तो वे फसल खा जायेंगे।

निराला के लेख मे यह बात काफी स्पष्ट थी कि ये अर्थ सोचकर दुलारेलाल ने दोहा न लिखा था; ये अर्थ वे अपनी ओर से कर रहे थे—यह दिखाने के लिए कि "वह मन एक ही होगा, जो भिन्न रस और अलंकारों को, प्राचीन रीतियो के अनुसार एक ही दोहे मे सिद्ध करेगा।" 'वीणा' में लेख छप गया, किसी ने विशेष ध्यान न दिया।

पत्रिकाओं मे देव-पुरस्कार की चर्चा शुरू हुई। बनारसीदास चतुर्वेदी रत्नाकर और व्रजभाषा काव्य-परम्परा के प्रशंसक थे। लेकिन देव-पुरस्कार के प्रसंग में उन्होने यह विचार प्रकट किया कि व्रजभाषा की पुरानी काव्य-परम्परा मर चुकी है। कविता की भाषा खड़ी बोली है। उसकी जगह व्रजभाषा चलाने का प्रयत्न गंगासागर को गंगोत्री ले जाना है। पिछले दो साल मे किसी भी जीवित कवि ने व्रजभाषा मे ऐसा ग्रन्थ नही रचा जिसे काव्य का नाम दिया जा सके।

निराला के लेख की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा, "खीचतान करके ऐसे पद्यों के छै-छै अर्थ या अनर्थ भी किये जा सकते हैं; पर इस प्रकार के बौडमपन्न को सन् १९३४ मे, जब हिन्दी कविता अपने प्राचीन शाब्दिक खिलवाड़ों को छोड़कर भाव-जगत मे विचरण करने लगी है, हम हास्यास्पद ही समझेंगे।" अपने समर्थन में इमर्सन का उद्धरण देकर उन्होने लेख पूरा किया।

दुलारेलाल भार्गव प्रभावशाली पुरुप थे। सम्मतियाँ संग्रह करने मे वह बनारसीदास चतुर्वेदी से कही अधिक कुशल थे। चतुर्वेदीजी निराला के लेख का मजाक उड़ाकर चुप हो जाते तो विशेष प्रतिक्रिया न होती। पर उन्होने दुलारेलाल भार्गव के एक दोहे का भी मखौल उड़ाया था :

सत इसटिक जग फील्ड लै, जीवन हाकी खेलु।
या अनन्त के गोल मे, आतम वालहिं मेलु ॥

बनारसीदासजी पर चारो ओर से वह बौछार हुई जिसकी उन्हे आशका न थी। उमाशंकर वाजपेयी ने दुलारेलाल से उनकी नाराजगी का मनोवैज्ञानिक कारण प्रकट कर दिया। 'माधुरी' मे उन्होने लिखा चतुर्वेदीजी दुलारेलाल भार्गव से खार खाये बैठे है। इसका कारण यह है कि जिन्हे चतुर्वेदीजी ने अपने प्रोपेगेंडे का शिकार बनाया था, उन्हे अर्थात् निराला को 'सुधा' का समर्थन मिला। "इसीलिए तो जब उन्होने यह सुना कि दुलारे-दोहावली देव-पुरस्कार की प्रतियोगिता मे रखी जायगी, तो उनके हृदय मे खलबली मच गई। उनकी नस-नस मे विद्वेष की आग भड़क उठी।"

चतुरसेन शास्त्री ने 'चित्रपट' मे और भी तेज आक्रमण किया। खद्दर के नीचे काला हृदय छिपा है, चुन-चुनकर साहित्यिको को धकेलकर गिराने का पेशा अख्तियार किया है, अपने मालिको को खुश करने के लिए बंगला का प्रभुत्व हिन्दी पर कायम कर रहे है, दुलारे-दोहावली देखी तो सीग-पूँछ फटफटाकर मरखने बैल की भाँति टूट पडे।

इस तरह का गद्य चतुर्वेदीजी की समझ मे अच्छी तरह आता था। उन्होने महसूस किया, उनका तीर गलत निशाने पर लगा। उन्होने 'विशाल भारत' मे नोट लिखा—'हमारी भूल'। स्वीकार किया कि दो साल मे काव्य कहलाने लायक कोई ग्रन्थ व्रजभाषा मे नही रचा गया, यह बात सही नही है। मुंशी अजमेरी और केदारनाथ भट्ट के पत्रो का हवाला देते हुए लिखा, "अब हमारी समझ मे आता है कि उपर्युक्त वाक्य द्वारा हमने 'दुलारे-दोहावली' तथा 'रस-कलस' के लेखको के प्रति कुछ अन्याय अवश्य किया है। इसके लिए हमे खेद है।" चतुरसेन शास्त्री, उमाशंकर वाजपेयी जैसे लेखको की अशिष्टता पर खेद प्रकट करने के बाद उन्होने इमर्सन के उद्धरण से अपने मत की पुष्टि की।

अब उन्होने विशेष ध्यान केन्द्रित किया निराला पर। 'सन् १९३४ का बौड़मपन'—इस शीर्षक के नीचे उन्होने निराला का लेख उद्धृत किया। फिर सात्विक क्रोध से अभिभूत होकर पूछा—"क्या हम हिन्दी साहित्य के धनीधोरियो से पूछ सकते है कि ये अर्थ है या अनर्थ ? इस दोहे मे द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, हथौड़ा, लुहार, किसान और चूहे कहाँ से निकल पड़े ? क्या हिन्दी के किसी जिम्मेवार लेखक या संपादक ने इस बौडमपन के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है ?"

निराला ने बनारसीदास चतुर्वेदी को एक कार्ड लिखा—आप जैसे प्रमाणित पशु को यह समझाना व्यर्थ है···

मैने कहा—पशु लिखना उचित नही है।

उन्होंने उत्तर दिया—पश्यतीति पशुः । जो देखता है, आँखवाला है, उसे समझाना व्यर्थ नहीं है ?

मैं चुप हो गया । पर वह कार्ड उन्होंने भेजा नही ।

चतुर्वेदीजी ने सम्मतिदाताओं को पत्र लिखा; उन्हें 'विशाल भारत' में निराला का उद्धृत किया हुआ लेख और अपनी टिप्पणी भेजी । सम्मतिदाता अधिकतर चुप रहे । एकाध ने ही साहस किया । इनमें लखनऊ के शालिग्राम शास्त्री थे जिन पर प्रेमचन्द ने मोटेराम शास्त्री कहानी लिखी थी । 'विशाल भारत' मे उनका लेख छपा—'सन् १९३४ का बौड़मपन' । उन्होंने लिखा : चतुर्वेदीजी का पत्र तथा 'विशाल-भारत' का अंश—सन् १९३४ का बौड़मपन—मिला । दुलारे-दोहावली नही पढी, कुछ दोहे देखे थे—दस साल पहले । हम न हिन्दी के धनी, न धोरी । "परन्तु आपने तो व्यक्तिगत रूप से सम्मति माँगकर सीधे हम पर चोट की है ।" इसलिए लिखेंगे, दुलारे-दोहावली पर नहीं, एक दोहे के छह अर्थ करनेवाले निराला पर ।

'वर्तमान धर्म' के लेखक और टीकाकार, दुलारे-दोहावली के विकट भाष्यकार निराला ने एक दोहे में हथौड़ा, लुहार, किसान, चूहे निकाले हैं, अभी इसमें से सियार, सुअर, गैंडा, बघेरा, मोती चमार, अब्दुल्ला आतिशबाज, घोडा-सवार, कांग्रेस पार्टी, लिबरल लीग, पंसारी की दूकान, लुहार की भट्ठी, नगाड़े और न जाने क्या-क्या निकलेगा ।

"सुमिरहु वा विघनेस को"—इसे शास्त्रीजी ने 'सुमिर हुवा विघनेस' पढकर दोहे में सियार का अर्थ निकाला । ऐसे ही और अर्थ किये । 'सुधा' में उत्तर देते हुए निराला ने पूछा—" 'हु' और 'वा' को आपने जोड़ कैसे दिया ? ये दोनो उतना ही फासला रखते हैं जितना आप जैसे संस्कृत के पंडित से शिष्टाचार ।" बनारसीदास चतुर्वेदी ने इमर्सन के उद्धरण का जो अनुवाद किया था उसमें निराला ने गलतियाँ दिखाईं । पूछा—"अंग्रेजी व्याकरण से भी कभी कुछ तअल्लुक रहा है ? या जन्म से ही अहले-जबाँ हैं ? Case in opposition का हवाला तो छठे-सातवें दर्जे के विद्यार्थी भी जानते हैं ।"

दुलारेलाल भार्गव के यहाँ ओरछा-नरेश की पार्टी थी । राज्य के भूतपूर्व दीवान शुकदेवविहारी मिश्र तथा नगर के अन्य गण्यमान्य साहित्यकार उपस्थित थे । जब ओरछा-नरेश आये तो सब लोग उठकर खड़े हो गये । निराला अपनी कुर्सी पर बैठे रहे । लोगों ने कानाफूसी की—कैसी हेकड़ी है निराला मे !

रायबहादुर शुकदेवविहारी मिश्र हर साहित्यकार से राजा का परिचय कराते हुए कहते—गरीबपरवर, ये फलाने हैं ।

वृद्ध लेखक शुकदेवविहारी युवक राजा को गरीबपरवर कहें, निराला को बुरा लगा । जब वह निराला का परिचय देने को हुए तो निराला उठ खड़े हुए । जैसे कोई विशालकाय देव बौने को देखे, वैसे ही राजा को देखते हुए निराला ने कहा—हम वह हैं, हम वह है, जिनके बाप-दादों के बाप-दादों की पालकी तुम्हारे बाप-दादों के बाप-दादा उठाया करते थे ।

आशय यह कि छत्रसाल ने भूषण की पालकी उठाई थी; साहित्यकार राजा से बड़ा है।

पुरानी बातें याद करते हुए निराला ने एक दिन मुझसे कहा—महिषादल में अच्छी तनखाह मिलती थी, पर मैं गया नहीं। इम्पीरियल फ़िल्म कंपनी वालों ने फोटो देखकर मेरे बारे में पूछताछ की थी। मैं चाहता तो चला जाता, पर कोशिश नहीं की। पुस्तकों पर पुरस्कार मिल सकता है पर मैं प्रतियोगिता में अपनी किताबें भेजता नहीं।

एक रात कोई आवाज़ सुनकर मैं सोते से जग गया। देखा, निराला छत पर टहल रहे हैं, अपनी हँसी रोकने की बड़ी कोशिश कर रहे हैं पर रोक नहीं पा रहे। फ़ुफ़्-फ़ुफ़् करके हँसी फूट पड़ती है। वह समझ गये, मैं जग गया हूँ। ऊपर की छत से बीचवाली मंजिल में आकर टट्टर के चारों तरफ़ टहलने लगे। ऊपर लोहे का टट्टर, नीचे लोहे का टट्टर, बीच में शेर की तरह कैद—निराला। आधी रात को तमाखू बनाते हुए हाथों की पटापट की आवाज़। उनके साथ रहना आसान नहीं है—पहले दी हुई इस चेतावनी का अर्थ कुछ-कुछ समझ में आया। कई रात अचानक नींद खुलने पर मैंने निराला को बेचैनी से ऊपर की छत पर या बीच की मंजिल में वैसे ही चहल-कदमी करते देखा।

दोपहर को खाना खाकर लौटे थे। चेहरा गंभीर था। मुझसे बोले—छड़ी ले लो और मेरे साथ चलो। मैंने कहा—छड़ी की ज़रूरत न होगी, बात क्या है? उन्होंने कहा—कुछ नहीं, मेरे साथ आओ। मैं उनके साथ अमीनुद्दौला पार्क की तरफ़ चला। एक पकौड़ी-पराँठा बनानेवाले की दूकान के सामने वह रुके। दूकानदार से बोले—अब हँसो। वह घबरा गया और बोला—पंडितजी, क्या बात है, आप क्यों नाराज़ हैं? निराला ने कहा—मैं इधर से जा रहा था, तब तुम मुझे देखकर हँस नहीं रहे थे? उसने कहा—मैं आपको देखकर बिलकुल नहीं हँसा। उसका सहमा हुआ चेहरा देखकर निराला को भी कुछ-कुछ विश्वास होने लगा, उन्हें भ्रम हुआ है। मैंने कहा—आइए चलें निरालाजी, यह आप पर नहीं हँस रहा था।

एक शाम कुछ देर से वह घूमकर आये। मैं घर पर था। नाराज़ होकर बोले—नीचे का दरवाज़ा खुला क्यों था? मैंने कहा—वह तो रोज़ ही खुला रहता है। उन्होंने कहा—लालटेन लेकर चलो मेरे साथ। लालटेन लेकर मैं उनके साथ नीचे आया। उन्होंने गली, बरामदे, आलमारियाँ, आले देखे। मैंने पूछा—क्या ढूँढ रहे हैं? उन्होंने कहा—कोई पुलिस का आदमी हमें फँसाने के लिए यहाँ अँधेरे में बम रख जाय तो? दरवाज़ा बन्द रखा करो और सोने से पहले सारा घर देख लिया करो।

रात-भर सोये न थे। सवेरे बोले—तमाखू गरमी करती है, इसी से नींद नहीं आती।

चौबीस घंटे तक उन्होंने तमाखू न खाई। तलब के मारे बुरा हाल था। नींद फिर भी न आई थी। उन्होंने हाथ में तमाखू मलना शुरू किया और अपराध-सा स्वीकार करते हुए बोले—क्या करें, इसके बिना न लिख सकते हैं, न और कोई काम कर सकते हैं।

कभी वह विरोधियों को कल्पना में देखकर नाराज हो जाते और देर तक भाषण करते रहते। जो भी सामने होता, उससे इस तरह बातें करते मानो उसी ने उन पर आक्षेप किये हों। मैं भी हिन्दी का कोई हरचरनदास नहीं; बारह साल से घास नहीं खोदी है,—इस तरह के वाक्यों से वह श्रोता को चुनौती देते। कुछ देर बाद उन्हें ध्यान आता कि जो व्यक्ति सामने बैठा है, उसने उनका कुछ नही बिगाड़ा है। क्षमा-सी माँगते हुए कहते—क्या करे, माथा गरम हो गया था। मतलब आप से नहीं है। ये हिन्दीवाले काम नही करने देते।

'तुलसीदास' कविता दुरूह है, निराला को यह राय बार-बार सुनने को मिलती। उनके अनेक प्रशंसकों का भी कहना था, 'जुही की कली' कितनी सुन्दर है; अब शीतलच्छाय, निश्चलत्प्राण, जाने क्या-क्या लिखने लगे है।

उमाशंकर वाजपेयीजी व्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे; पुराने ढँग की चीज़ें उन्हें ज़्यादा पसन्द थी। निराला ने उन्हें लक्ष्य करके कविता लिखी—'मित्र के प्रति'। मित्र कहता है तुम्हारी कविता नीरस है, अपना गान वन्द करो। निराला सफाई देते हैं—आपके प्राचीन काव्य-सरोवर मे अर्र-वर्र टर्र-टर्र नही है (हेमचन्द्र जोशी का आक्षेप वह भूले न थे)। छायावादी कविता के मैदान मे सूर्य तपा, लू चली, पेड़ झुलस गये, ताल सूख गये। गर्मी के दिनों में आम पके, डालों पर कोयल की आवाज सुनाई दी लेकिन मित्र पर कुछ असर न हुआ,

रहे बन्द कर्ण-कुहर,
मन पर प्राचीन मुहर,
हृदय पर शिला।

कविता के अंत मे उन्होने संकेत किया, सरस्वती के गले में जो हार पड़ा है, उसे निराला ने ही पहनाया है।

गालिब की पंक्ति—अपने महत्व के प्रसंग में—वह सुनाते :

हम सुखनफहम हैं ग़ालिब के तरफदार नही।

अर्थात् निराला अपनी प्रशंसा नही करते, बात न्याय की है। न्याय यह है कि निराला इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। लेकिन हिन्दी के समालोचक, एक-से-एक बढ़कर, कविता समझते नहीं। निराला दूर भविष्य में कुछ देखते हुए भवभूति की गर्वोक्ति दोहराते :

ये नाम किञ्चिदिह नो प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैप यत्नः।
उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

बहुत काम करना है, सर झुकाये अपनी राह चलते जाओ। निराला इस तरह के वाक्यो से अपना मन शान्त करते। कभी-कभी मुझे लगता—निराला मुझे देख अवश्य रहे है, पर वे बातें अपने से कर रहे है।

वह आलोचकों के लिए कहते—जिसे देखो, वही निराला को देखकर टिल-

टिलाता है।

मानो वह अकेले अपनी राह जा रहे हों और पीछे विरोधियों का हुजूम हो जो उन्हें देखकर टिली-लिली बोल रहा हो।

दुलारेलाल भार्गव मुझसे शिकायत करते—निराला के प्रशंसकों ने उन्हें और बिगाड़ रखा है। पहले उनका दिमाग ठीक रहता था; अब वह अपने को न जाने क्या समझने लगे हैं!

'सरस्वती' ने लेख माँगा था। निराला ने सुमित्रानन्दन पंत पर लंबा संस्मरणात्मक लेख लिखा। कुछ दिन में सरस्वती-संपादक के दफ्तर से लेख वापस आ गया। निराला ने क्षुब्ध होकर लेख फाड़ डाला। मैंने फटे हुए पन्नों को बचाने की कोशिश की। उन्होंने कहा—नहीं। माचिस लाकर उन्होंने फटे हुए कागज के टुकड़ों में आग लगा दी।

निराला जीते हुए जैसे मृत्यु का अनुभव कर रहे थे। प्रसाद की पंक्तियाँ वह बड़े दर्द से पढ़ते मानो वह सब प्रत्यक्ष देख रहे हों जो प्रसाद ने देखा था, जो साधारण लोगों की आँखों से ओझल था :

> चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर
> प्रलय चल रहा अपने पथ पर
> मैंने निज दुर्बल पदबल पर
> उससे हारी होड़ लगाई।
> आह वेदना मिली विदाई।

निराला के मन में व्यथा के केन्द्र कौन-से थे, वे कब सक्रिय हो उठते हैं, वह सब रहस्य था। अपने दुख की बातें सुनाकर दूसरों को दुखी करना उनके स्वभाव में न था। पर वह किस तरह की पंक्तियाँ गुनगुनाते हैं, उनके स्वर से, उनकी आँखों से मैं समझने लगा था कि इन्हें घोर मानसिक कष्ट है।

वह धीरे-धीरे दुखी आवाज में गालिब के शेर गुनगुनाते :

> रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो,
> हम-सुखन कोई न हो और हम-ज़बाँ कोई न हो।
> बेदरो दीवार-सा इक घर बनाया चाहिये,
> कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो।
> पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
> और अगर मर जाइये तो नौहख्वाँ कोई न हो।

कंधों को दिखाकर कहते—शौक पर शौक लगे हैं, शरीर जर्जर हो गया है।

देखने में वह स्वस्थ मालूम होते थे। मैं पूछता—काहे के शौक लगे हैं?

निराला विश्वासपूर्वक उत्तर देते—लाइट के शौक लगे हैं।

सरोज बीमार थी। उसे साल-भर से ज्वर रहता आया था। एक वैद्य ने कहा—इसे तपेदिक है।

ऐक्सरे कराया गया। पता चला बायाँ फेफड़ा छलनी हो गया है। वैद्यों ने

कहा—उसे गंगा की धारा में रखना चाहिये। गंगा किनारे एक मठ में सरोज को महीने भर रखा गया। निराला को पैसों की सख्त जरूरत थी। दुलारेलाल भार्गव अर्थ-कष्ट की बात कर रहे थे। निराला ने मुझसे कहा—तुम मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी की हैसियत से अंग्रेजी में दुलारेलाल को पत्र लिखो कि शीघ्र रुपये दें, नहीं तो उचित कार्रवाई की जायगी।

मैंने वैसा ही किया और पत्र लेकर दुलारेलाल के यहाँ गया। उन्होंने पास बैठे लोगों से कहा—जरा देखिये निरालाजी को, उनकी हैसियत है, अंग्रेजी में एम० ए० पास आदमी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी रखें ?

मैंने कहा—हैसियत की बात मत कीजिये, मुझे उनका प्राइवेट सेक्रेटरी बनने में गर्व है।

मेरे पत्र का कोई फल न हुआ। तब निराला ने स्वयं उन्हें पत्र लिखा कि चौबीस घंटे में वह रुपये दें, नहीं तो वह स्वतंत्र कार्य शुरू करेंगे।

चौबीस घंटे बीत गये। इसका भी कोई उत्तर न आया। निराला बहुत उत्तेजित थे। सोच रहे थे कि कोई ऐसा दुस्साहसिक कार्य करें कि रुपये तुरत मिल जाएँ। उन्होंने दुलारेलाल भार्गव को अंतिम बार अल्टीमेटम दिया :

प्रिय भार्गवजी,

मेरे पत्र को २४ घन्टे हो गये : अभी तक निरुत्तर है। क्या मैं अपना स्वतंत्र कार्य शुरू करूँ ? यह अन्तिम सूचना है, अगर निश्चय मुझे न मिला। जिसने घर से रुपया लेकर एक बार चुकाया है, वह फिर चुकायेगा।

आपको उस बार शराफत से नहीं लिखा, इस बार साफ किये देता हूँ—'दुलारे-दोहावली' में मेरे जितने संशोधन हैं : हजार-हजार प्रत्येक के लिये लगाता हूँ। अभी मिलाया नहीं। फिर हिसाब पेश करता हूँ। सिलाकारीजी ने जिस 'भई भीरु भवभामिनी' की सबसे ज्यादा तारीफ़ की है, वह पत्थर से बनाया हीरा मेरा कार्य है; और दूसरों को आपने धोखा दिया यह कह कर कि आपका लिखा हुआ है।

—निराला

११-७-३५

दुलारेलाल भार्गव टस-से-मस न हुए। वह जानते थे, निराला अपनी धमकी पर कभी अमल न करेंगे।

गर्मी बीत चुकी थी। वर्षा का आरंभ था।

डाकिये ने आवाज दी—पंडितजी !

वह खुद ही नीचे गये।

लौटते हुए जीने से ही बोले—डॉक्टर, सरोज इज नो मोर।

मैं हतबुद्धि-सा बैठा रहा। वह कार्ड लिये कमरे में आये। मैंने एक बार उनके चेहरे की तरफ देखा, दुख के मारे जैसे स्याह हो गया था।

उन्होंने एक भी आँसू न गिराया, एक भी शब्द न कहा। कुछ देर कमरे में चक्कर लगाते रहे। फिर कुर्ता पहना, छड़ी उठाई और घर से बाहर निकल गये।

१०

जीवन की सार्थकता का प्रश्न

सरोज की मृत्यु ने निराला के सारे जीवन की सार्थकता और निरर्थकता का प्रश्न बड़े विकट रूप में उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। जिये तो किसके लिए ? अब तक जीकर जो कुछ झेलते रहे, उसका फल क्या मिला ? महिषादल में नौकरी करते रहते तो बेटी की यह दुर्दशा न होती। सब-कुछ छोड़ा साहित्य के लिए लेकिन साहित्य-सेवा से हमेशा पेट के लाले रहे। आलोचना सुनने से मालूम होता है कि हिन्दी में लिखकर निराला ने भारी अपराध किया है। नेकनामी कम बदनामी ज्यादा मिली।

सरोज की मौत के लिए कौन ज़िम्मेदार है ? निराला ! वह उसे पढ़ा-लिखा नहीं पाये; बिना माँ की बेटी को अपना प्यार-दुलार न दे सके; किसी खाते-पीते घर में उसका ब्याह न कर सके; पहले फोड़ा, फिर यह हड्डियों को फूँक देनेवाली बीमारी; गंगा के किनारे मठ में अन्तिम घड़ियाँ गिनती हुई सरोज; निराला ने क्या मदद की ? उनसे ज़्यादा निकम्मा बाप कौन हो सकता है ? मनोहरादेवी की सजीव स्मृति मिट गई। मनोहरा की छवि सरोज में, मनोहरा का स्वर सरोज के कंठ में; निराला की कविता का सारा सौन्दर्य, सारी सुकुमारता सरोज में। जीवन निरर्थक, अब मृत्यु शेष है। गंगा किनारे बालू पर खिलखिलाती सरोज निराला की उँगली पकड़कर चलती थी; अब मृत्यु के अन्धकार में पिता का हाथ पकड़कर वह उसे दूसरे लोक में ले जायेगी, दूर कहीं इस संसार से जहाँ निराला का कोई नहीं है।

सब भाग्य का खेल है। कर्मफल इसी को कहते हैं। निराला की आँखों में आँसुओं से भीगी सरोज की मुख-छवि, निराला पर चारों ओर से प्रहार पर प्रहार, विरोधियों का चीत्कार कोलाहल। यदि साहित्य-सेवा का यही फल है तो इस कर्म पर वज्रपात हो। निराला हार गया ? नहीं हारा नहीं, हिन्दीवालों ने उसके गले में स्नेह का हार पहनाया है। निराला सरस्वती-पुत्र है। उसे कौन परास्त कर सकता है ? वह लाञ्छित है, अपमानित है, पर सरस्वती की स्नेहदृष्टि उस पर और केवल उस पर है।

निराला ने आँसू नहीं गिराये। उनका दुख उनके अन्तस में कहीं जम गया। अब वह पहलेवाले निराला नहीं रह गये, अब वह पहले जैसे कभी नहीं हो सकते। खून

में किसी ने जहर घोल दिया है और वह जल रहे हैं। निराला ने मन की सारी ताकत बटोरकर अपने को दुख से अलग किया; खुद से अलग किया; खुद को देखा—दुखी, जर्जर, निराश। और अपना यह रूप देखकर उनका मन सजग हुआ। अन्तस में जमे हुए दुख को निराला ने सहेजना शुरू किया, उसे निहारते-समेटते निराला अनजाने ही उसे मूर्त रूप देने लगे। उन्होंने कविता लिखी—'सरोज-स्मृति'।

सीधे-सादे छन्द में, बड़ी समर्थ भाषा में, निराला ने अपना आवेग दृढ सीमाओं में बाँध दिया। सरोज के वे अनेक चित्र, बचपन से लेकर विवाह और उसके बाद तक, जो समय-समय पर उन्होंने देखे थे, गढ़ाकोला और डलमऊ से संबद्ध अपने जीवन की स्मृतियाँ जो इस समय उभर आई थीं, वह सब निराला ने कविता में सहज तारतम्य से शब्दबद्ध कर दिया। मैं कवि हूँ, मैंने सरस्वती का प्रकाश देखा है—अपने मन को वह इस आस्था से बाँधे रहे; साथ ही इस आस्था पर व्यंग्य करता हुआ उनका शतशर जर्जर, लांछित रूप भी सामने आया। उन्हें जब याद आया कि एक दिन उन्होंने कुण्डली में लिखे भाग्य-अंक मिटाने का फैसला किया था, दूसरा विवाह नहीं करेंगे यह तै किया था, तब अपने पुरुषार्थ पर उन्हें गर्व हुआ और उन्होंने लिखा—

खंडित करने को भाग्य-अंक,
देखा भविष्य के प्रति अशंक।

पर जैसे-जैसे वह कविता के अन्तिम चरण की ओर पहुँचे, उनका धैर्य टूट गया, प्रकाश देखनेवाले कवि का सपना चूर हो गया—

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल,
युग वर्ष बाद जब हुई विकल।

पर उसके बाद क्या हुआ, निराला में कहने की सामर्थ्य न रही। वाक्य विशृंखल हो गया—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो, नहीं कही।

निराला ने हिन्दी को, हिन्दी-साहित्य सेवा को, अपने को शाप दिया—

हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

कविता पढ़कर मैंने चुपचाप उसे एक तरफ रख दिया। उनकी तरफ देखने का साहस मुझमें न था। उन्होंने नहीं पूछा—कैसी है? मैंने नहीं कहा—सुन्दर है।

लेकिन कविता लिख लेने के बाद निराला जैसे कुछ प्रकृतिस्थ हुए। उनकी साहित्य-साधना का महत्व उनकी आँखों के सामने जैसे स्पष्ट हो गया। पीड़ित, जर्जर, शोकाकुल निराला 'सरोज-स्मृति' जैसी कविता लिख सकता है, जीवन की सार्थकता

का यह सबसे बडा प्रमाण है। बंगाल से उनके मित्र मन्ना बाबू आ गये थे। होटल मे ठहरे थे। निराला काफी समय उनके साथ बिताते, कभी-कभी सवेरे के गये शाम को ही घर आते। पर हर समय, हर कही उनके मन में एक ही प्रश्न घुमडता रहता था—सरोज नही रही; शेप जीवन मे अब आगे क्या ?

वर्षा के बादल छँट गये थे। शरद का नीला आसमान दमक उठा था। निराला ने धीरे-धीरे फिर काव्य-चर्चा शुरू की और उनका मन अपने को एक लक्ष्य-बिन्दु से, देश के भविष्य और हिन्दी भाषा के भविष्य से बाँधने लगा। देश, हिन्दी, निराला—ये तीनो उनकी चेतना मे घुल-मिलकर मानो एक हो गये। उन्होंने गीत लिखना शुरू किया—प्रायः हर रोज एक गीत लिखते। उनका स्वर मन की उस गहराई से उठा, जहाँ पहले कभी कोई हलचल न हुई थी। चेतना का कोई स्तर न रह गया था जिसे वेदना का आघात न लगा हो।

उन्होने मन को समझाया—अकर्मण्य होकर ससार-सागर की लहरें गिनना व्यर्थ है। बादल छँट गये है, पूर्व मे उषा की लाली है, पवन अनुकूल है, ससार-सागर की लहरो पर जीवन की जय अवश्य होगी। उन्होने अपने लिए उद्‌बोधन-गीत लिखा—'जीवन की तरी खोल दे रे जग की उत्ताल तरंगो पर'।

उन्होने विप्लव के प्रिय संदेशवाहक बादल को याद किया। अब तक भौरे कलियो का मधु पीकर गुन्जारते रहे; अब वज्रस्वर से मेघ फिर गरजेंगे, भूधर थर्रा उठेंगे, पल्लव-पल्लव पर नया जीवन बरसेगा।

उन्होने सरस्वती की वन्दना की—इस धरती पर बड़ा दुख है, स्पर्धा से मनुष्य जर्जर हो गया है, केवल जी रहा है, मुरझाये हुए निर्गन्ध फूल की तरह।

उन्होने भारतमाता का भव्य चित्र खीचा, चरण पखारता हुआ सागर, कमल-रूप मे लका, गले मे गगा का हार, माथे पर हिमालय का शुभ्र किरीट, कंठ से निकलकर ओकार की ध्वनि दिशाओ को गुँजाती हुई।

उन्होने आशा व्यक्त की—कवि के रुँधे कंठ से सामगान फिर फूटेंगे, लोगो के मन से तृष्णा का अज्ञान दूर होगा।

उन्होने सकल्प किया, कली के बन्धन टूटे; उसकी गन्ध चारो दिशाओ मे छा जाय। जो धारा रुद्ध थी, वह निर्झर-सी शिखर के ऊपर से बहे; शून्य के सैकड़ो रन्ध्र मधुर कलरव से भर जायँ।

उन्होने कल्पना-चित्र बनाया—पृथ्वी और गगन मे ज्ञान और आनन्द की एक ही धारा बह रही है।

जन्मभूमि और भाषा की एक साथ स्तुति की। ज्योति-वसना देवी की छवि आकाश मे; मानव-कंठों मे स्वर की तरगे।

पूर्व का रवि आकाश मे उगा है, किसलयो पर किरणे है, दैन्यदल परास्त हुआ, विश्व मे विजय-गीत गूँज उठा।

पुनः सकल्प : तृष्णा का विप बुझे; भाषा से अमृत के निर्झर झरे।

पृथ्वी के स्वर ऊपर उठते हुए आकाश पर छा जायँ।

निराला ने अपनी समस्त आस्थाओं, मान्यताओं को समेटा; रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्रनाथ से प्राप्त विचारों को कसौटी पर चढ़ाया। अपनी कवि-प्रतिभा को जगाया; देश, भाषा, कविता—तीनों पर विश्वास केन्द्रित करके निराश मन को उठाने के लिए उद्बोधन-गीत गाये। पर उन्हें सन्तोष न हो रहा था। कहीं भीतर से एक अस्पष्ट-सा भाव उठता था—यह सब प्रवञ्चना है। कहाँ है ओंकार, संसारव्यापी ज्ञान और आनन्द का प्रकाश? देश का भविष्य? सम्भव है उज्ज्वल हो। पर वर्तमान कैसा है? निराला का वर्तमान? चारों ओर निराशा, मृत्यु, वेदना का अन्धकार। ज्योति में सांसारिकता की धूल नहीं लगती—सही है; पर यह शरीर? 'निशिदिन तन धूलि में मलिन।' निराला का जीवन?—

व्यर्थ, हुआ जीवन यह भार;
देखा संसार, वस्तु
वस्तुतः असार।

ज्ञान का भरोसा है; उसी के सहारे रास्ता कटेगा। पर यह भी सही है कि शताब्दियाँ बीत गईं, फिर भी देश नवजीवन प्राप्त न कर सका।

शक्तिहीन तन निश्चल
रक्त से रहित रग-रग।

यदि प्रकाश सत्य है तो अन्धकार क्या है? सूर्य डूब रहा है, सन्ध्या की आँखों में आँसू हैं। सघन अन्धकार स्तब्ध है; गन्ध से भरी हवा जैसे रुक गई है; ध्यानमग्न आकाश ने अपने नीले कमल-नेत्र बन्द कर लिये हैं। मृत्यु ही सत्य है; मृत्यु ही निराला को मुक्ति दे सकती है:

यही नील-ज्योति-वसन
पहन, नील-नयन-हसन,
आओ, छवि, मृत्यु-दशन
करो दंश जीवन-फल।

निराला के मन का संशय, उनकी असह्य वेदना, उनका यथार्थ-बोध बार-बार आस्था के सपनों को तोड़ देता; आनन्द और आशा के गीतों में दुख के विवादी स्वर आप ही फूट पड़ते। शरद का अन्त हो रहा था। निराला ने इस दौर का अन्तिम गीत लिखा:

दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पद रागरंजित मरण।

उन्होंने यथार्थ को स्वीकार किया। वही पद-रागरंजित-मरण निराला को त्राण देगा। यह मृत्यु एक दिन आकर उन्हें संसार से उठा ले, इसकी प्रार्थना उन्होंने नहीं की। मृत्यु का वरण करके वह जीना चाहते थे, अपनी समस्त लाञ्छना, अपमान-भावना के साथ:

लाञ्छना इन्धन, हृदयतल जले अनल;
भक्ति नत नयन मैं चलूँ अविरत सबल
पारकर जीवन प्रलोभन समुपकरण।

निराला का मन एक केन्द्रबिन्दु पर स्थिर हुआ। उन्हें जीना है, संघर्ष करना है और इस जीने में प्रतिदिन मृत्यु की पीडा सहनी है। जो शक्ति रहस्यवादियों के ज्ञान और प्रकाश से न मिली थी, वह उन्हे अपने मन मे संचित अपमान से मिली। लाञ्छना की अग्नि विकट प्रेरक शक्ति बनकर उन्हे आयु के शेष वर्षो के पार ले जायगी। आस्था-अनास्था के भीषण संघर्ष के बाद निराला ने अन्तर की समस्त शक्ति बटोर कर भ्रम और प्रवचना से दूर अपने क्षुब्ध मन को शान्त किया।

मौरावाँ मे साहित्य समारोह था। व्रजमोहन तिवारी और युवक कवि प्रदीप के साथ निराला भी गए। कानपुर के एक अध्यापक-कवि ने निबन्ध पढा—साहित्य में प्रकृति-चित्रण। उन्होने पुराने कवियो की प्रशंसा करने के बाद कहा कि आधुनिक हिन्दी कविता मे अच्छा प्रकृति-चित्रण नही है। निराला कविता-पाठ करने के लिए उठे और चुनौती देते हुए बोले—मैं उन महाशय का आह्वान करता हूँ कि जो कविताएँ मैं सुनाता हूँ, वैसे कलापूर्ण वर्णन वे संस्कृत या अन्य किसी साहित्य से पेश करें।

निराला की उस उक्ति पर कानपुर की कविमंडली देर तक और ज़ोर से हँसती रही। निराला ने उनके परिहास की चिन्ता न करके 'जुही की कली' तथा कुछ अन्य कविताएँ सुनाई। श्रोताओं ने मन्त्र-मुग्ध होकर कविताएँ सुनी और ज़ोरों की करतल ध्वनी से अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। इससे कानपुर के कवियो को लगा, निराला की धाक जम रही है और वे उखड़ रहे है। उन्होने निराला को परास्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया। एक सज्जन ने आकर कविता पढी—

चले कवीजी कविता करने कलम तोड़ दी।
कही इंच भर कही डेढ फुट सतर जोड दी।
गराण्डील शब्दो को लेकर पद मे ठूंसा,
मानो पशु की मृतक खाल मे भर दे भूसा।
छन्द खडे स्वच्छन्द है और काफिया तंग है।
कविता का यह देखिए चला निराला ढग है।

कवि-सम्मेलन का सभापतित्व सनेहीजी ने किया; कानपुर की मंडली के वह नेता थे। निराला से कुछ खिचे-खिचे रहे। प्रदीप ने हल्दीघाटी पर अपनी ओजपूर्ण रचना से श्रोताओं को मोह लिया। समस्यापूर्ति और कवित्त-सवैया वालो का रंग फीका हो गया। विजय निराला-दल के हाथ रही।

जानकीवल्लभ शास्त्री ने निराला पर एक कविता लिखी, 'तुलसीदास' का छन्द और संस्कृतगर्भित पदावली। निराला पर यह पहली कविता थी। निराला प्रसन्न हुए। कविता को अपने 'तुलसीदास' के समकक्ष बताकर उन्होंने जानकीवल्लभ द्वारा किये हुए सम्मान का ऋण चुकाया। कविता को अभी प्रकाशित न करने की सलाह देते हुए उन्हे लिखा, "आपकी काव्य-प्रतिभा 'निराला' की तारीफ़ मे उसके 'तुलसीदास' के मुकाबले, न्यून नहीं। पर अभी इसे तारीख डालकर रखे रहिए। मेरी राय मे प्रसिद्ध होकर यदि इच्छा हुई तो कही भेजिएगा।"[1]

इस प्रोत्साहन के साथ सस्कृतज्ञ युवक-साहित्यकार के विकास के लिए वह

अंग्रजी व्याकरण के सहारे उचित शिक्षा भी देते जाते थे—लाना, पाना क्रियाएँ 'औग्ज़िलियरी वर्ब' के साथ ने-वर्जित चलती हैं, प्रेजेंट परफेक्ट टेन्स में सकर्मक-क्रिया के साथ हमेशा 'नहीं' का प्रयोग होगा; अंग्रेजी खूब पढ़ते जाइए; आप जब तक उर्दू न पढ़ें, उर्दू के किसी शब्द के नीचे बिन्दी न लगाये; आपने 'कवितात्व' लिखा है कैसे सिद्ध होता है शब्द, लिखिएगा, इत्यादि।

सरोज की मृत्यु के बाद निराला के लिए गंगा पुस्तकमाला से संबंध बनाये रखना संभव न हुआ। उनकी समझ में उस भयावह घटना के लिए दुलारेलाल भार्गव कम जिम्मेदार न थे। यदि उन्होंने निराला की प्रतिभा को पहचाना होता, उनके परि-श्रम का उचित मूल्य चुकाया होता तो यह स्थिति न आती। 'गीतिका' प्रेस मे जा चुकी थी; उन्होंने उसे वापस ले लिया। उसमे इधर जो नए गीत लिखे थे, शामिल किए। वाचस्पति पाठक के मार्फत लीडर प्रेस से सौदा पक्का किया और छपने के लिए पुस्तकें भेजी। पर 'सरोज-स्मृति' कविता 'सुधा' में ही प्रकाशित हुई।

'तुलसीदास' लिखते समय निराला ने कालिदास का मंथन काफी किया था। तुलसीदास को उन्होंने कालिदास के शृंगार-संसार पर विजयी होते दिखाया था। पर उनके युवक मित्र जानकीवल्लभ शास्त्री को कालिदास ही अधिक प्रिय थे। इन दिनों हिन्दी में यह चर्चा जोर पकड़ती जा रही थी कि साहित्य जनता के लिए लिखा जाना चाहिए, भाषा सरल होनी चाहिए, हिन्दी और उर्दू को अपना अरबी-फारसीपन तथा संस्कृतवाली क्लिष्टता छोड़नी चाहिए। निराला यह सब देख-सुन रहे थे और उनके मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि आखिर कालिदास जातीय जीवन का प्रतिनिधित्व कहाँ तक करते हैं। उधर सुमित्रानन्दन पंत की कीर्ति-कौमुदी दिन दूनी रात चौगुनी फैलती जा रही थी; 'पंतजी और पल्लव' वाले लेख से उसमे कोई बट्टा न लगा था। लखनऊ में ही उनके किसी मित्र ने 'गुंजन' की एक कविता पर 'वेरी गुड' लिख रखा था। उन्हें अपने प्रति यह भारी अन्याय मालूम हुआ।

सन् '३५-३६ के जाड़ों मे निराला अक्सर कालिदास और पंत की चर्चा करते। आत्मविभोर होकर कविताएँ सुनाना उन्होंने बंद-सा कर दिया था। कविता का अर्थ कितने प्रकार से हो सकता है, कौन-सा अर्थ सुन्दर है, कवि के बनाये चित्र में कहाँ पूर्णता है, कहाँ खामी है, इन प्रश्नों पर वह अधिक विचार करते। पंत ने लिखा था—

> झर-झर बिछते मृदु सुमन-शयन।
> जिन पर छन कम्पित पत्रों से॥
> लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ।

निराला पूछते—ज्योत्स्ना कंपित पत्रों से लिखती है तो उसकी दवात कहाँ है? पत्ते अगर निब हैं तो इतने निबों से एक साथ वह लिखेगी कैसे?

उमाशंकर वाजपेयी ने कहा—देखिए, कबीर ने कितना अच्छा कहा है,

> लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
> लाली देखन मैं गई, मै भी हो गई लाल॥

ऐसी सुन्दर उक्ति आधुनिक हिन्दी में एक भी नहीं है।

निराला ने तर्क किया—जब चारों तरफ लाली ही लाली है तब चलने की गुंजाइश कहाँ रही? और उसे लाल से प्रेम है या लाली से? वह लाल देखने जायगी या लाली?

वह कालिदास की पंक्तियों में श, क्ष, वर्णों का उच्चारण इस ढंग से करते मानो जीभ से अंगूर पिचका रहे हों और उनका मुँह मीठे रस से भर गया हो:

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व विम्बाधरोष्ठी।
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणानिम्नाभिः॥

अथवा

मन्दं-मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वा।
वामश्चाय नदति मधुरं चातकस्ते सगन्ध.॥

मिठास से जैसे वह ऊब उठे हों, वह कहते—मारे शपाशप के बुरा हाल है।

कला की बारीकियाँ लोग समझते नहीं। हिन्दी आलोचक परले सिरे के उजबक। नंददुलारे वाजपेयी ने काव्य की वृहत्त्रयी ज़रूर कायम कर दी पर कहाँ निराला, कहाँ पंत! विवेक से दोनों की कला का विश्लेषण किसी ने नहीं किया। दुलारेलाल भार्गव के यहाँ जब 'गीतिका' छप रही थी, उन्होंने उसकी टीका लिख देने को कहा था। अब वह लीडर प्रेस से प्रकाशित हो रही थी; गीतों के अर्थ लिखने का मसला फिर दरपेश था। निराला को यह बात हास्यास्पद लगती थी कि कवि स्वयं अपनी रचनाओं का भाष्य लिखे। फिर भी लोगों को समझाना तो था ही कि उनके गीत सार्थक हैं, उनमें ऊँचे दर्जे की कला का निर्वाह है।

उन्होंने 'भारत' के लिए लेख लिखा—'मेरे गीत'। उनकी रचनाएँ समझ में नहीं आतीं, इस प्रवाद का उल्लेख किया। अनेक मित्र चाहते हैं कि रचना के साथ टीका भी दे दी जाय। वह अपनी कला की कुछ भंगिमाएँ प्रदर्शित करेंगे। उन्होंने छह गीत लिये और उनका भावार्थ स्पष्ट करते हुए उनकी व्याख्या कर दी।

इससे उन्हें सन्तोष न हुआ। इस तरह की व्याख्या से पंत-निराला के काव्य-कौशल का भेद स्पष्ट न होता था। उन्होंने 'माधुरी' में एक लेखमाला आरम्भ की—'मेरे गीत और कला'। इसमें साहित्यिक ऊहापोह के पीछे एक दृढ़ स्वर यह सुनाई दिया—मैंने जो कुछ किया है हिन्दी के लिए, जो कुछ सहा है हिन्दी के लिए और मेरी साधना व्यर्थ नहीं है।

माता-पिता को गर्व से स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा—"मेरी बैसवाड़ी, माता-पिता की दी वाग्विभूति, जिसमें सभी रसों के स्रोत मेरे जीवन में फूटकर निकले हैं, साहित्यिकों में प्रसिद्ध है।"

निराला ने केवल हिन्दी के हितचिन्तन से साहित्य रचा और इसीलिए उनका इतना विरोध हुआ। "मेरे प्रति बड़े-बड़े अधिकांश साहित्यिकों की विमुखता का यही कारण है—मैंने सदैव हिन्दी का मुख देखा है।"

लेख का आरम्भ उन्होंने 'कला के विरह में जोशीबन्धु'-वाली व्यंग्यपूर्ण शैली

मे किया। अभी निराला की प्रतिभा अपने पूर्ण विकास पर नहीं पहुँची, इस विनम्र उक्ति के साथ उन्होंने जता दिया कि जितने विकास पर पहुँची है, उतने से ही काव्य-प्रेमियों के होश दुरुस्त हो सकते है।

उनकी कविता-पुस्तकें साधारण छपी है, उनमे निराला की भड़कीली तस्वीरें नहीं दी गई। पर लोग ऊपरी तड़क-भड़क ही देखते हैं। हिन्दी काव्य की वृहत्त्रयी! नये आलोचको ने महादेवी को जोडकर वर्तमान काव्य के चारों पैर बराबर कर दिये। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी कब पीछे रहनेवाले थे; "खोज-खाजकर एक पूँछ की कसर पूरी कर दी, अब साबित कर रहे है कि काव्य के चतुष्पद-तत्त्वों मे उनकी पूँछ का ही महत्त्व सबसे ज्यादा है।"

इस तरह काव्य की वृहत्त्रयी को व्यंग्य से बेधकर उन्होंने नंददुलारे वाजपेयी के काव्यालोचन की अपूर्णता की ओर संकेत किया।

कालिदास-काव्य मे श-ण-व-ल वर्णों का प्राधान्य है; वही बात पंत-काव्य में है। निराला का अपना काव्य हिंदी के अनुकूल स, न, ब, ल पर जोर देता है। उन्होने अपने मुक्त छन्द और मुक्त संगीत वाली मात्रिक रचनाओं के समर्थन मे कुछ बाते लिखी, फिर दूसरों के काव्य मे विचार-गठन की खामियाँ दिखाईं। अब तक उन्होने तुलसीदास के काव्य में कही दोषदर्शन न कराया था। इस बार 'अंगद तुही बालिकर बालक' आदि चौपाइयाँ उद्धृत करके—रावण की उक्ति में अन्तर्विरोध दिखाकर—उन्होंने लिखा, "गोसाईंजी ने यहाँ का सारा भाव-सौन्दर्य नष्ट कर दिया है।"

तुलसीदास ज्ञान में श्रेष्ठ है पर कला में निराला उनसे आगे है—यह धारणा लेख मे स्पष्ट हो गई। फिर कहाँ पंत बापुरे! निराला ने उनकी अनेक रचनाओं मे असंगतियाँ दिखाकर काव्यकौशल मे उन्हें दिवालिया सिद्ध कर दिया।

यद्यपि लेख शुरू किया था गीतो के विवेचन के लिए पर 'जुही की कली' समेत अनेक कविताओ की व्याख्या भी उन्होने कर डाली।

मुक्त सगीत वाली कविताओ के बारे मे यह लिखना वह न भूले कि "सगीत अंग्रेजी ढंग का है।"

इस लेख की अनेक मान्यताओ को लेकर उनसे मेरी बहस हुई। विजन वन वल्लरी पर—यहाँ 'व' बोलता है या नही? शत-शत शब्दों का सान्ध्यकाल—यहाँ शपाशप है या नही? इस तरह की पंक्तियाँ उद्धृत करने पर वह तीन तरह के उत्तर देते। श, ण, व—वर्ण आये है पर पंक्ति में ये बोलते नही है; मुख्य वर्ण दूसरे है। इस तरह की पंक्ति में ऐसे ही वर्ण आवश्यक थे। इधर-उधर श-ण-व-ल आ गये है, कालिदास के प्रभाव से।

निराला ने तुलसीदास को गिराया था; मैं इसका बदला लेता था, निराला की ही कसौटी पर उनके काव्य को परखते हुए उसमे दोष दिखाकर।

उन्होंने 'मेरे गीत और कला' के साथ 'माधुरी' मे प्रकाशनार्थ एक फोटो खिचाया, नगे बदन, जिससे उनका चौड़ा सीना, मजबूत बाँहें पाठकों को साफ दिख जायँ। वह मानो अपना विजयी विराट् रूप प्रदर्शित कर रहे थे।

लेख की प्रतिक्रिया होना अनिवार्य थी।

रामकृष्ण त्रिपाठी और रामरतन भटनागर 'हसरत' ने मिलकर लेख लिखा—'वर्तमान हिन्दी कविता मे प्रकृति-चित्रण'। इसमे उन्होंने 'विजन वन वल्लरी पर', 'अब स्मर के शर केशर से झर' आदि पंक्तियाँ उद्धृत करके उनकी शणवल-सम्बन्धी स्थापना की आलोचना की पर यह भी लिखा कि "वे हिन्दी के इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।" अपने चिरंजीव से वह सर्टिफिकेट पाकर निराला को प्रसन्नता ही हुई।

पंत के समर्थन में शान्तिप्रिय द्विवेदी मैदान मे आये। उन्होने 'भारत' मे लिखा की निराला ने पंत की जिन पंक्तितों की आलोचना की है, अन्य लेखों मे उन्ही की प्रशंसा की है। मनमौजी आदमी हैं; कहते हैं, पंत के दोप दिखाते हुए पाँच सौ पृष्ठों की किताव लिख सकते है। वह चाहे तो उनकी प्रशंसा मे हजार पृष्ठों का ग्रन्थ भी लिख सकते हैं। निराला ने उत्तर दिया कि शान्तिप्रिय जैसों पर लिखना वक्त वरवाद करना है लेकिन हिन्दी के वहुत-से पाठक उन-जैसों की आलोचना से प्रभावित हो जाते है, इसलिए लिखना ज़रूरी है। "पहले मैं आदमी को समझदार आदमी ही समझता हूँ, पर जब वह साबित कर चुका होता है कि नादान है, और शेखी पर आकर भूल जाता है, तब समझाने लगता हूँ।······मैं पूछता हूँ—हिंडोर पर कैसे नाचा जाता है यह प्रश्न पंतजी की पंक्ति से उठता है[अंग भगि मे व्योम मरोर, तुम किरणों की बना हिंडोर, आदि]या मैं अपनी तरफ से कल्पना करता हूँ।······पंत की रुई धुनकनेवाली धनुही लेकर तीरन्दाज बने फिरते थे शान्तिप्रिय द्विवेदी। कायदे का एक भी तीर है या सब तुक्के है, वे भी देखें और 'भारत' के पाठक भी।"

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने पंत को पत्र लिखा कि निराला की आलोचना पर सम्मति प्रकट करें। पंत ने सीधे 'भारत' मे न लिखकर शान्तिप्रिय को अपनी सम्मति भेजी; शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपने नोट के साथ पंत का वह पत्र 'भारत' मे उद्धृत कर दिया। पंत ने लिखा कि इस तरह की विनाशात्मक आलोचना से उनके विकास में कोई सहायता नही मिलती। "मेरी पल्लव और वीणा की भूमिकाओ में भी यत्र-तत्र कुरुचि की कमी नहीं है।" निराला ने जब प्रशंसा की, तब शब्दार्थ स्पष्ट करके वाहवाही देकर पद्य के भाग्य जगा देने की चेष्टा की, जब निन्दा की तब शब्दार्थ को कठोर सत्य मानकर, भाव की ओर आँखे मूँदकर, पद्य को पददलित करने का प्रयत्न किया। "यदि मैं निरालाजी पर अन्याय नहीं कर रहा हूँ तो पहली वात जो मुझे उनकी आलोचनाओं मे मिलती है वह है उनका मेरे प्रति स्पर्द्धा का भाव (जिस स्पर्द्धा मे विशदता की कमी है)।"

निराला ने उत्तर दिया—लहरी और कली मे प्रेम कैसे हुआ? अगर यौन-संसर्ग दिखाना उद्देश्य नही तो कली छली कैसे गई? यह कौन-सा किशोरी-प्रेम है? रवीन्द्रनाथ की 'निर्झरेर स्वप्न भंग' मे कली के रूपक का सुन्दर निर्वाह है; पंत का 'पर्सोनिफिकेशन' दूषित है।

'लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ'—"मैं पूछता हूँ, शयन या विस्तरे पर भी कुछ लिखा जाता है?—विस्तरे पर कागज रखकर नहीं,—विलकुल विस्तरे पर।"

मुक्त छन्द, हिन्दी का जीवन, जाति-भर का छन्द है। 'ऊपा'-नाटिका इसी में लिखी जाती पर ढाई साल तक कन्या की बीमारी से मृत्यु तक अटकाव हो जाने से प्रोग्राम बदलना पड़ा। पंत का स्वच्छन्द छन्द लोकप्रिय न हो सका। उनकी रचनाओं में शणवल का सौन्दर्य है। कालिदास को पढने का "प्रभाव भी मुझ पर पडा है। उन्ही दिनो 'तुलसीदास' नाम की लम्बी कविता मैने लिखी थी, उसमे कही-कही इसके चिह्न स्पष्ट है।" रवीन्द्रनाथ पर भी कालिदास का प्रभाव है। "अब मेरा यह निश्चय है कि 'शणवल' प्रकाश की तरह है उज्ज्वल, और 'समवल' आकाश की तरह नील।" शणवल-उज्ज्वल-कालिदास; समवल-नील-निराला।

निराला को कालिदास-काव्य नीला दिखाई देता था पर यहाँ विवाद में उन्होने सूर्य को आकाश से छोटा देखकर प्रकाश को रंगीनी से छोटा माना। लेकिन उनका सारा दर्शन प्रकाश को श्रेष्ठ और रंगों को उससे घटकर मानता आया था। इसलिए तर्कयोजना भूलकर उन्होंने आगे लिखा, मेरे गीत स-म-व-ल—प्रधान हैं, रंग कम हैं, केवल ज्योति है। पंत मे शणवल की प्रधानता है, इसलिए रंग अधिक हैं। शणवल-प्रभाव से मुक्त होकर 'मित्र के प्रति' कविता लिखी जो 'माधुरी' में छपी है।

बाल-युवतियाँ तान कान तक चल-चितवन के वंदनवार।

मदन कोई वाइसराय नहीं है कि रास्ते से गुजर रहे हैं और बहुत-सी युवतियाँ एक साथ मिलकर स्वागत कर रही है।

अंग भंगि में व्योम मरोर भौहो मे तारों के झौर।

कोई औरत भौहों में तारों के झौर नचाये तो कैसी लगेगी, सोचने की बात है। मान लिया कि लहर अतिमानवी है पर अतिमानवी के भौंहें होती है, इसका प्रमाण ? अतिमानवी है तो भौहो की जगह सूंड क्यो नहीं ? "लहर के साथ भौंहों की उतनी समता नहीं जितनी सूँडो की है, एक-एक सूँड़ फटकारी और तारे उस पर नाचते नजर आते और प्रेममुग्ध होकर देखते रहते।"

अन्त में स्पर्द्धा की बात। "आलोचना के समय उनके प्रति मेरे कवि का स्पर्धा-भाव जग जाता है, सम्भव है, उनका यह विचार सत्य हो, पर मैं उन्हें आलोचना के योग्य समझता हूँ, स्पर्धा के योग्य नही।"

इस विवाद का अन्त पंत के वक्तव्य—'क्या कविता कोई वैज्ञानिक सत्य है ?'—से हुआ। 'वर्तमान धर्म' का उल्लेख करना उन्होंने आवश्यक समझा। इस तरह के अनेक उत्पात निराला कर चुके है। 'तुलसीदास' उनके भगीरथ प्रयत्न की द्योतक है। उचित है कि वह स्थायी साहित्य रचने की ओर ध्यान दें।

निराला जिन दिनों पंत से यह विवाद कर रहे थे, उन्ही दिनो उनके सहयोग से 'ऊपा'-नाटिका की योजना को फलवती बनाने का विचार भी कर रहे थे। सन् '३६ के बसन्त मे उन्होने प्रसाद को लिखा, "इधर आपको लिखनेवाला था। पर अभी उस उद्देश्य की पूर्ति कुछ समय लेगी, इसलिये नही लिखा। बात यह थी कि 'ऊपा'-नाटिका के लिए प्रथम गीत चाहता था; पर अभी उसके लिये कुछ देर होगी। बहुत देर हो गई यह तो आप जानते ही है। इस समय मैं 'निरुपमा' उपन्यास तैयार कर रहा हूँ;

फिर 'उच्छृङ्खल' की तैयारी में लगूंगा। इसके बाद कुछ समय के लिए उपन्यास लिखना स्थगित करूंगा। अभी ऐसा विचार है, पर यह ऐश्वर्यशाली भगवान की इच्छा पर अवलम्बित है। कारण, ऐश्वर्य का असहयोग मुझे विचार बदलने को बाध्य कर सकता है। कामयाब हुआ तो तब नाटक लिखूंगा। इसके लिए ५-६ महीने की देर ज्यादा से ज्यादा होगी।"

कुछ तो मानसिक उलझनें, कुछ अर्थ-कष्ट—इन्हीं कारणों से निराला ऊषा-नाटिका न लिख पाये थे। गद्य लिखने से पैसे मिलते थे, खर्च चलता था। 'ऊषा'-नाटिका लिखने मे छह महीने लगाये तो उतने दिन खायें क्या ?

निराला प्रसाद का बडा आदर करते थे पर जिन दिनों उन्होंने 'मेरे गीत और कला' लिखा, वह छायावादियो मे अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध करने की धुन मे थे। उपर्युक्त पत्र मे उन्होंने एक जगह उस शैली का प्रयोग किया, जिसका प्रयोग 'परिमल' छपने के बाद पंत को लिखे पत्र मे किया था। प्रसंग यह कि प्रसाद उन्हे अपनी पुस्तकें भेजते थे पर निराला उन्हें न भेज पाते थे। प्रकाशक से नियमित संख्या मे जो प्रतियाँ मिलती वे उस समय आने-मिलनेवालो मे बँट जातीं। इनके अतिरिक्त दूसरो को देने के लिए उन्हे प्रतियाँ खरीदनी पडती।

'सखी' और 'प्रभावती' के प्रकाशन की चर्चा करने के बाद उन्होंने लिखा, "मैंने अपना कुछ भी आपको नही दिया और आपका सब-कुछ ले लिया। मुझमे कुछ प्राप्ति की आशा आपको होनी भी नही चाहिए और मुझे उत्तरोत्तर पाते रहने की छोडनी नही। शायद इसी आधार पर मैंने अपनी बहुत-सी किताबें यद्यपि मित्रों को खरीद-खरीदकर भेंट कीं, आपके पास एक भी नही भेज सका। पर मैंने सुना है, आप उपनिषदो से उतरना पसन्द नही करते। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा, यदि आपको नीचे उतार सकूं। इसके लिए ऐश्वर्यवान या भगवान की कृपा आवश्यक है, क्योंकि किताबें खरीदनी होंगी।"

व्यंग्य है, उपनिषदों से उतरनेवाली बात मे। प्रसाद की दृष्टि उपनिषदो पर है, निराला-काव्य मे उसी कोटि का दार्शनिक महत्त्व नही है। फिर भी वह उन्हे उतारने की कोशिश करेंगे यानी प्रसाद समझ सकेंगे कि निराला-साहित्य उपनिषदो से घटकर नही।

मैंने आपको कुछ नही दिया, आपसे सब-कुछ ले लिया—इसमे स्पर्धाहीन ममत्व का भाव है।

अन्त मे लिखा, "मेरी इच्छा आपसे मिलने की थी, पर बहुत उलझा हुआ हूँ, न आ सकूँगा। आपको सादर अभिवादन भेजता हूँ। यदि 'ऊषा' और 'अनिरुद्ध' के अर्थ रूपों को देखकर एक गीत लिख सकते तो मेरे चाहने पर आपको जल्दी न करनी पड़ेगी।"[२]

उलझन मे तो थे ही। तभी उपनिषदो से उतरने-उतारने की बात लिखी थी। पर उपन्यास समाप्त करने के बाद 'ऊषा' लिखने की बात अब भी मजबूती से पकडे हुए थे।

निराला इलाहाबाद गये। दो सौ पन्ने का 'निरुपमा' उपन्यास लीडर प्रेस के हाथ ढाई सौ रुपये मे बेचा। वहाँ एक दिन वह मुसलमान चायवाले की दूकान से अंडे खाकर लौट रहे थे कि उनके सामने एक श्यामवर्ण दक्षिण भारतीय लँगोटी लगाये आकर खडा हो गया। वह मद्रास से कुम्भ नहाने आया था, चोर उसके कपड़े-लत्ते उठा ले गये थे, गठरी मे रुपये-पैसे थे, अब पास कुछ न था। दिन मे वह भीख माँगकर समय काट लेता था पर रात मे जाड़े से परेशान होता था। निराला ने अपनी मोटी खद्दर की चादर उतारकर उसे दे दी। साथ मे वाचस्पति पाठक थे। उन्होंने कहा—"यह अभी दोपहर को, गुदडी बाज़ार में, चार आने में, यह चादर वेचेगा।" निराला ने उत्तर दिया—"वह मद्रास से यह सोचकर चला नही होगा कि गुदडी बाजार में कपडा बेचेगा।"

भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन का दमन करने के बाद अंग्रेजो ने सुधारवादियों और उदारपंथियो को अपनी ओर मिलाने के विचार से सन् '३५ का काला कानून बना दिया था। कांग्रेसी नेताओ का एक दल अंग्रेजो के दिये हुए सुधार अमल मे लाने—काले कानून के मातहत सूबो में मंत्रिमंडल बनाने—के पक्ष मे था। दूसरे नेता जो समाजवादी होने का दावा करते थे, इसके विरुद्ध थे। साहित्य-सम्मेलन के दूरदेश कर्णधार कांग्रेसी नेताओं को घेरते थे कि इनके सहयोग से हिन्दी शीघ्र ही राष्ट्रभाषा बन जायेगी। राजनीतिक क्षेत्र मे काम करनेवाले नेता अपने स्वभाव के अनुसार हिन्दी लेखकों को उपदेश देते थे कि तुम्हारी भाषा दरिद्र है, उसे उन्नत और समृद्ध करके अंग्रेजी के बराबर ले आओ।

हिन्दी में जो साहित्यकार जागरूक थे, वे यह देखकर हैरान थे कि ये नेता स्वयं अंग्रेजी से बँधे हैं, कांग्रेस से अंग्रेजी निकाल नहीं पाये पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए साहित्यकारों को बर्नार्ड शॉ और एच० जी० वेल्स बन जाने का उपदेश दे रहे हैं।

जवाहरलाल नेहरू का एक लेख 'प्रताप' मे प्रकाशित हुआ। हिन्दी का साहित्य दरिद्र है, संसार की उन्नत भाषाओं की तुलना मे नगण्य है। साहित्यकारो की एक अखिल भारतीय संस्था बनानी चाहिए जिसमें सभी भाषाओ का प्रतिनिधित्व हो।

प्रेमचन्द इस तरह के साहित्यकार संघ के बारे में पहले ही लिख चुके थे। कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी को उन्होने 'हंस' का सह-संपादक बनाया था और अब 'हंस' भारतीय साहित्य के मुख-पत्र के रूप में प्रकाशित होने लगा था। उसमे हिन्दी की मौलिक रचनाओं के साथ बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड आदि अहिन्दी भाषाओ की रचनाओं के अनुवाद छपते। इलाहाबाद-निवासी जवाहरलाल नेहरू को प्रेमचन्द के 'हंस' की गतिविधि का पता न था।

प्रेमचन्द ने नेहरूजी की सदाशाओ को सराहते हुए टिप्पणी लिखी : "देश की सारी प्रतिभा अंग्रेजी का अभ्यास करने में खर्च होती रही, और जिनके कन्धों पर राष्ट्र को आगे बढाने का भार था, वे अपनी भाषाओं को हेच समझकर उनकी ओर से उदासीन हो गये और आज भी अंग्रेजी के प्रति हमारा मोह अणुमात्र भी कम नही है।"

यह स्पष्ट ही जवाहरलाल नेहरू और उन-जैसे नेताओं की ओर संकेत था। सन् '३४-३५ में हिन्दी के अनेक लेखक कांग्रेसी नेताओं पर पूंजीपतियों का प्रभाव देखकर, साम्राज्यवाद से लड़ने के बदले उन्हें समझौते की राह पर चलते देखकर, उनमें अनेक जमींदार हैं और किसानों का शोषण करते हैं यह जानकर, उनके राष्ट्र-प्रेम की आलोचना करने लगे थे। इस आलोचना का एक कारण इन नेताओं की भाषा-नीति भी थी।

जवाहरलाल नेहरू ने 'प्रताप'-वाले उसी लेख में भारतीय भाषाओं के साहित्यकार-संघ में अंग्रेज़ी को शामिल करने के बारे में लिखा था, "मैं तो यह भी सिफ़ारिश करूँगा कि अंग्रेज़ी को भी उसमें जगह दी। हमारी भाषा वह नहीं है, लेकिन फिर भी देश के जीवन में उसका बड़ा हिस्सा है। वह एक तरह की सौतेली भाषा हो गई है।"

इस पर प्रेमचन्द ने कुछ गुस्से में लिखा—"हमारा खयाल है कि अंग्रेज़ी भाषा वर्तमान परिस्थिति में इतनी लाड़िली हो गई है कि उसे किसी संघ या संस्था की मदद की ज़रूरत नहीं रही। वह सौतेली भाषा नहीं, बल्कि पटरानी भाषा है, और भारत की अन्य सभी भाषाएँ उसकी दया की भिखारिणी बनी हुई हैं। दुःख तो यह है कि जो हमारे नेता कहलाते हैं, उनमें से अधिकांश अपनी मातृभाषा से अनभिज्ञ हैं और जिस समाज के नेता जनता से इतनी दूर हट गये हों कि उनसे भाषा का सम्बन्ध भी न हो, उस समाज की दशा जो हो रही है, वह हम अपनी आँखों देख रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू ने शायद ही यह नोट देखा हो। उन्होंने साहित्य और भाषा के बारे में आगे जो कुछ लिखा, उसमें अपनी बेटी को अंग्रेज़ी में पत्र लिखने पर कहीं खेद प्रकट नहीं किया। 'विशाल भारत' में 'हमारा साहित्य' शीर्षक से उनका एक नोट छपा। किसी की लिखी या कही बात उन्होंने सुनी कि हिन्दी में शेक्सपियर और बर्नार्ड शॉ पैदा हो गये हैं। किताबें मँगाकर पढ़ीं; निराश हुए। शायद उन्हें ऊँचे दर्जे की पुस्तकें न भेजी गई हों, इसलिए उन्होंने माँग की कि हर विषय पर पिछले ३०-३५ साल में जो अच्छी पुस्तकें लिखी गई हों, उनकी सूची प्रकाशित की जाय जिससे हिन्दी की प्रगति जाँची जा सके।

प्रेमचन्द ने शिक्षित वर्ग और विशेषकर नेताओं पर चोट करते हुए लिखा—"जब हमारे नेता हिन्दी साहित्य से प्रायः बेखबर-से हैं, जब हम लोग थोड़ी-सी अंग्रेज़ी लिखने की सामर्थ्य होते ही हिन्दी को तुच्छ और ग्रामीणों की भाषा समझने लगते हैं, तब यह कैसे आशा की जाती है कि हिन्दी में ऊँचे दर्जे के साहित्य का निर्माण हो।" ऊँचा साहित्य तभी आयेगा "जब किसी अच्छी पुस्तक की रचना राष्ट्र के लिए गौरव की बात समझी जायगी।"

भारत साहित्य में पिछड़ा है तो क्या राजनीति में बहुत आगे बढ़ गया है? प्रेमचन्द ने एक दिलचस्प वाक्य यह लिखा : "और जब जीवन के किसी क्षेत्र में हम यूरोप से मुकाबला करने का दावा नहीं कर सकते—हमारे लेनिन और ट्राट्स्की और नीत्शे और हिटलर अभी अवतरित नहीं हुए—तो साहित्य में वह तेजस्विता कहाँ से आ जाएगी!"

गांधीजी कांग्रेस के भीतर और वाहर हिन्दी के सवसे बड़े समर्थक थे। हिन्दी को राष्ट्रभापा वनाने में उनके सामने कई अड़चनें थीं। पहली अड़चन यह थी कि कांगेसी नेता खुद कांग्रेस के अन्दर अंग्रेजी छोड़ने को तैयार न थे। गांधीजी ने वहुत प्रयत्न किया कि कांग्रेस का अखिल भारतीय काम हिन्दी में हो पर वह सफल न हुए। अन्त में उन्हें कांग्रेस के अन्दर से अंग्रेजी निकालने की लड़ाई वन्द करनी पड़ी। दूसरी अड़चन यह थी कि भारत के पूँजीपति अपना कारोवार अंग्रेज़ी में करते थे, वे हिन्दी प्रचार के लिए पैसा देते थे और अपने दैनिक पत्र भी अंग्रेजी में निकालते थे। ब्रिटिश पूँजी की छत्रछाया में, उसका विरोध करने पर भी, भारतीय पूँजीवाद अपने कारोवार के लिए अग्रेजी को ही अपना रहा था। गांधीजी इस अड़चन के वारे में चुप थे। पर हिन्दी-साहित्य पिछड़ा हुआ है, अंग्रेज़ी के मुकावले ही नही, वँगला के मुकावले में भी—तव हिन्दी राष्ट्रभापा कैसे होगी?—इस वारे में तो वह अवश्य कुछ कह सकते थे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कर्णधार गुट ने गांधीजी को इन्दौर अधिवेशन के लिए सभापति चुना। गांधीजी ने सभापति वनने के लिए एक लाख रुपये की फीस माँगी। वड़े प्यार और आत्मीयता से दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए उन्होंने सम्मेलन के अधिकारियों और उपस्थित जनसमूह से एक लाख की निधि एकत्र करने की अपील की। इसके वाद उन्होंने आधुनिक हिन्दी की दरिद्रता पर खेद प्रकट किया।

उन्होंने कहा: "इस मौके पर अपने दुःख की भी कुछ कहानी कह दूँ। हिन्दी भापा राष्ट्रभापा वने या न वने, मैं उसे छोड़ नहीं सकता। तुलसीदास का पुजारी होने के कारण हिन्दी पर मेरा मोह रहेगा ही। लेकिन हिन्दी वोलनेवालों मे रवीन्द्रनाथ कहाँ है? प्रफुल्लचन्द्र राय कहाँ हैं? जगदीश वोस कहाँ हैं? ऐसे और भी नाम मैं वता सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी अथवा मेरे जैसे हजारों की इच्छा मात्र से ऐसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होने वाले हैं। लेकिन जिस भापा को राष्ट्रभापा वनना है उसमें ऐसे महान् व्यक्तियों के होने की आगा रखी ही जायगी।"

गांधीजी ने जो कुछ कहा, उसका मूल समस्या से कोई सम्वन्ध न था। वे सव नाम जो गांधीजी ने गिनाये और न गिनाये, हिन्दी में होते तव भी वह राष्ट्रभापा न होती। कारण यह कि वड़े पूँजीपतियों के अधिकांश कारोवार की भापा अंग्रेजी है, वैंकों का सारा अर्थतन्त्र अंग्रेज़ी में है और कांग्रेस के अखिल भारतीय राजनीतिक कार्यो में—जिनका साहित्य या विज्ञान से कोई सम्वन्ध नही—अंग्रेजी का व्यवहार होता है। वंगाल में रवीन्द्रनाथ, जगदीश वसु और प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे सम्मान्य नामों के वावजूद वहाँ वँगला राज्यभापा नही हो गई।

अंग्रेज़ी का महत्व स्वीकार करते हुए गांधीजी ने कहा, "इच्छा न रहते हुए हमको अग्रेजी पढ़नी होगी।" यह वात वंगालियों के लिए भी कही गई थी, हिन्दीवालों के लिए भी। नेहरूजी ने यह वात वहुत ज़ोर से और वहुत वार कही।

निराला जगदीशचन्द्र वसु और प्रफुल्लचन्द्र राय के नाम तो जल्दी ही भूल गये। उनके मन में एक नाम अटका रहा—रवीन्द्रनाथ। गांधीजी पूछ रहे है—हिन्दी में

रवीन्द्रनाथ कहाँ है ? हिन्दीवाले इस पर चुप हैं। तव पन्द्रह साल से निराला जो साधना करते आये है, वह व्यर्थ हुई ? गांधीजी का वह प्रश्न उनके मन को वार-वार कचोटता रहा।

लखनऊ मे अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। प्रेमचन्द ने उसका सभापतित्व किया।

लखनऊ मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। सभापति वने जवाहरलाल नेहरू। काले कानून के मातहत मंत्रिमण्डल वनाने का विरोध; मजदूर सभाओ को कांग्रेस में शामिल करने का अनुरोध। श्रोताओ मे प्रेमचन्द और निराला।

वालकृष्ण शर्मा नवीन ने अपने भाषण मे हिन्दीभाषी क्षेत्रो को मिलाकर एक प्रान्त वनाने की वात कही। नेहरूजी ने टोका—यह क्या वदतमीज़ी है।

नवीनजी उखड़ गये।

प्रदर्शनी मे घूमते हुए निराला को प्रेमचन्द दिखाई दिये। निराला वढ़कर उनसे मिले। प्रेमचन्द हल्के कद के, खद्दर की शेरवानी-पाजामा, गाधी टोपी पहने निराला के आगे वच्चे-से खड़े हो गये। उनकी आवाज़ साफ़, आँखो मे तेज, मूँछें घनी, कुछ ऊँची उठी हुई थीं। निराला से वह वड़े स्नेह से मिले; कुशल-समाचार, साहित्य-सेवा का हाल पूछा। निराला ने साथ के युवको का परिचय कराया। प्रेमचन्द ने इन युवकों से कहा—प्रगतिशील लेखक संघ मे आइयेगा। ज़रा देर मे दोनो साहित्यकारो के चारो ओर छोटी-सी भीड़ इकट्ठा हो गई। कही से श्रीनाथसिंह प्रकट हुए। सामने आकर वोले—प्रेमचन्दजी, आपने मेरे उपन्यास का प्लाट चुराया है। इस पर प्रेमचन्द इतने ज़ोर से हँसे कि उस छोटी भीड़ से वाहर भी आसपास के लोग भौंचक्के होकर इधर देखने लगे। शायद हंसी सुनकर कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी उधर आये और निराला को नमस्कार करके प्रेमचन्द उनके साथ हो लिये।

निराला सध्या समय कांग्रेस पंडाल से वाहर निकल रहे थे कि एक स्वयंसेवक उनकी ओर दौड़ता हुआ आया। उन्हे लगा कि इसे पहले कहीं देखा है। उसने पास आकर कहा—मैं वही हूँ जिसे आपने चादरा दिया था।

निराला वोले—आप कांग्रेस मे आ गये, अच्छा हुआ।

उसने कहा—फिर मैं यहाँ स्वयं-सेवको मे भरती हो गया।

निराला वाचस्पति पाठक की वात मन मे सोचते घर आये कि वह दक्षिण भारतीय उनकी चादर गुदड़ी वाज़ार मे वेचेगा।

निराला महात्मा गाधी का निवास-स्थान खोजने गोमती के पुल के पास घूम रहे थे कि उन्होने देखा, एक आदमी ताँगे मे वकरी विठाये जा रहा है, लड़के पीछे-पीछे ठहाके लगा रहे है। उन लड़को से मालूम हुआ कि वह वापू की वकरी है। निराला ढूंढ़ते-ढूंढते उस वँगले तक पहुँचे जहाँ गाधीजी ठहरे थे। दरवाज़े पर खड़े हुए स्वय-सेवक से उन्होने कहा—मैं वापू से मिलना चाहता हूँ। उसने कहा—मुलाकात नही होगी। निराला ने कहा—आप महात्माजी के सिक्त्तर है या पर्सनल असिस्टेंट ? इस पर वह भीतर जाने को राज़ी हुआ। निराला पहले से एक चिट्ठी लिख

लाये थे; मिलने की इच्छा ज़ाहिर करते हुए वक्त पूछा था। स्वयंसेवक चिट्ठी लेकर भीतर गया और तुरन्त लौट आया; बोला—शाम को आइये, महात्माजी के सेक्रेटरी महादेवजी देसाई की आज्ञा है।

शाम को कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह और वाचस्पति पाठक के साथ निराला फिर उधर गये। लोग शाम को प्रार्थना-सभा में शरीक होने के लिए इकट्ठे हो रहे थे। निराला को हिन्दी लेखक सीतलासाहय दिखाई दिये। निराला के आने का कारण जानकर बोले—महात्माजी आजकल किसी से मिलते नहीं हैं। निराला ने कहा—सुबह मैंने बहुतों से बातचीत करते देखा है।

वह सचमुच उन्हे राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल के साथ बातें करते देख गये थे।

सीतलासहाय ने कहा—वे बड़े-बड़े नेता हैं, उनसे सलाह लेने के लिए आते हैं।

निराला ने जवाब दिया—ये जितने बड़े नेता है मैं उनसे बड़ा साहित्यिक हूँ और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति को मुझसे मिलने में किसी तरह का संकोच न होना चाहिये।

सीतलासहाय नर्म पड़े। बोले—अभी जरा देर बाद महात्माजी बाहर प्रार्थना के लिए निकलेंगे, उस वक्त आप आइयेगा, देसाईजी से आपको मिला दूँगा।

निराला प्रार्थना-सभा में गये। एक बगल टाट के कोने पर बैठना ही चाहते थे कि एक सज्जन धक्का देते हुए वहाँ आकर जम गये। निराला जमीन पर बैठे। पाँच मिनट में प्रार्थना-सभा समाप्त हो गई। सीतलासहाय निराला को महादेव देसाई से मिलाने ले गये। ये हिन्दी के बड़े होनहार लेखक है—कहकर निराला का परिचय कराया। उसी समय उधर से कस्तूरबा निकलीं। निराला ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, साथ ही हिसाब लगाया कि वह उनकी कमर से थोड़ा ही ऊँची होंगी।

महादेव देसाई को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि निराला ने चिट्ठी भेजी थी और उनसे शाम को आने के लिए कहा गया था। उन्होने कहा—न मुझे आपकी कोई चिट्ठी मिली है और न मैंने आपको आने को कहा है।

फिर उन्होने पूछा—आप महात्माजी से क्यों मिलना चाहते है?

निराला ने जवाब दिया—मैं राजनीतिज्ञ महात्माजी से नही मिलना चाहता, मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति गाधीजी से मिलना चाहता हूँ।

देसाई ने निराला को एक कमरे में बिठा दिया और प्रतीक्षा करने को कहा।

साहित्य-सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन मे गांधीजी सभापति थे। हिन्दी की दरिद्रता का उल्लेख करते हुए उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ की-सी प्रतिभावाले साहित्यकार नही हैं। निराला इसी का जवाब देने आये थे।

महादेव देसाई आये और बोले—महात्माजी आपसे मिलेंगे, बीस मिनट वक्त आपको दिया है, जाइये।

निराला कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह और वाचस्पति पाठक को साथ लिये भीतर

पहुँचे। गांधीजी के पास शिवप्रसाद गुप्त और उनके सेक्रेटरी अन्नपूर्णानन्द बैठे थे। इन्ही शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ नौकरी के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी ने निराला की सिफारिश की थी और वह न गये थे। निराला ने अपनी दृष्टि गाधीजी की आँखो पर केन्द्रित की; मन पर यह छाप पड़ी कि आँखो मे जितनी दिव्यता है, उतनी ही चालाकी है।

निराला को बंगाली ढँग की धोती पहने देखकर गाधीजी ने पूछा—आप किस प्रान्त के रहनेवाले हैं।

निराला ने कहा—मैं यही उन्नाव जिले का रहनेवाला हूँ।

गाधीजी के मुँह पर आश्चर्य के भाव देखकर निराला ने कहा—मैं बंगाल मे पैदा हुआ हूँ और बहुत दिन रह चुका हूँ।

गाधीजी चुप रहे। निराला ने अपने वेदान्त की कसौटी पर गांधीवाद को घिसते हुए पौराणिक गाथाओ का भीतरी तत्त्व समझाया; यह न समझने से उन-जैसों का विरोध होता है, स्पष्ट किया।

'वर्तमान धर्म' का विरोध किया बनारसीदास चतुर्वेदी ने। बनारसीदास चतुर्वेदी के सरपरस्त मोहनदास करमचन्द गाधी। इसलिए निराला ने उन्हे तत्त्वज्ञान समझाया :

आप जानते है, हिन्दीवाले अधिकांश मे रूढ़िग्रस्त हैं। वे जड़रूप ही समझते हैं, तत्त्व नही। जो कथाएँ पुराणो मे आई है, उनके स्थूल रूप मे सूक्ष्मतम तत्त्व भी है। वास्तव मे वेदों का सत्य पुराणों मे कथाओ द्वारा विवृत हुआ है। यहाँ के लोग कथा को ही ऐतिहासिक सत्य की तरह मानते है। हिन्दी मे इन तत्त्वों के परिष्करण की भी चेष्टा की गई है। साथ-साथ नये-नये रूप, नये-नये छन्द और नये-नये भाव भी दिये गये है। साधारणजन तो इनसे दूर है ही, सम्पादक और साहित्यिक भी, अधिक संख्या मे, इनसे अज्ञ हैं। वे समझने की कोशिश भी नही करते, उल्टे मुखालिफत करते हैं। हम लोगो के भाव इसीलिये प्रचलित नहीं हो पाये। देश की स्वतन्त्रता के लिए पहले समझ की स्वतन्त्रता जरूरी है। मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ कि आप हिन्दी की इन चीजो का कुछ हिस्सा सुनें।

गाधीजी : मैं गुजराती बोलता हूँ लेकिन गुजराती का साहित्य भी बहुत-कुछ मेरी समझ मे नही आता।

निराला : मैंने गीता पर लिखी आपकी टीका देखी है। आप गहरे जाते हैं और दूर की पकड़ आपको मालूम है। आपने उसमे समझाने की कोशिश की है।

गाधीजी : मैं तो बहुत उथला आदमी हूँ।

निराला : हम लोग उथले मे रहे हुए को गहरे मे रहा हुआ साबित करने की ताकत रखते है।

गांधीजी चुप।

निराला : आपके सभापति के अभिभाषण मे हिन्दी के साहित्य और साहित्यिको के सम्बन्ध मे, जहाँ तक मुझे स्मरण है, आपने एकाधिक बार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम सिर्फ लिया है। इसका हिन्दी के साहित्यिको पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, क्या

आपने सोचा था ?

गांधीजी : मैं तो हिन्दी कुछ भी नही जानता।

निराला : तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहे कि हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है ?

गांधीजी : मेरे कहने का मतलव कुछ और था।

निराला : यानी आप रवीन्द्रनाथ जैसा साहित्यिक हिन्दी मे नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोवेल-पुरस्कार-प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं, यह ?

सभा स्तब्ध। शिवप्रसाद गुप्त और अन्नपूर्णानन्द के चेहरों पर हैरानी का भाव। गाधीजी चुप।

निराला : वँगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है जैसी हिन्दी। रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढ़ा है। मैं आपसे आवा घण्टा समय चहाता हूँ। कुछ चीजे चुनी हुई रवीन्द्रनाथ की मुनाऊँगा, उनकी कला का विवेचन करूँगा, साथ कुछ हिन्दी की चीजें सुनाऊँगा।

गांधीजी : मेरे पास समय नही हे।

निराला : (स्वत:) ये देश के नेताओं को रास्ता वतलाते हैं, वेमतलव पहरों तकली चलाते हैं, प्रार्थना में मुर्दे गाने सुनते है, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हैं लेकिन हिन्दी के कवि को ग्राधा घण्टा वक्त नही देते, अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है, खुली सभा मे कह जाते हैं, सामने वगलें झाँकते हैं।

(प्रकट) महात्माजी, मेरी चीजों की आम जनता में कद्र नहीं हुई। इसकी वजह है। आप अगर कुछ मुन लेते तो मुमकिन, अच्छा होता।

गांधीजी : आप अपनी कितावें मेरे पास भेज दीजियेगा।

निराला : (स्वत:, जैसे किसी ने चाँटा मारा हो) अव किसी की आलोचना से, किसी की तारीफ से आगे आने की अपेक्षा मुझे नहीं रही। मै खुद तमाम मुश्किलों को झेलता हुआ, अड़चनों को पार करता हुआ, सामने आ चुका हूँ।

(प्रकट) आप अपने यहाँ के हिन्दी के जानकारो के नाम वतलाइये जो मेरी कितावों पर राय देगे। आपको हिन्दी अच्छी नहीं आती, ग्राप कह ही चुके हैं।

निराला हँसे। गांधीजी भी खूव खुलकर हँसे।

निराला : एक हैं पं० वनारसीदास चतुर्वेदी, 'विशाल भारत' के सम्पादक, पत्र के साथ जिनका नाम शायद आपने दो वार लिया है। वह कुछ दिन रहे हैं आपके पास और कुछ दिन रवीन्द्रनाथ के यहाँ। 'विशाल भारत' के सम्पादन के लिए यही इनकी सवसे वड़ी योग्यता ठहरी !

गांवीजी : हाँ।

निराला : अगर मैं भूलता नही तो कवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के 'साकेत' की भाषा को आपने मुश्किल कहा है।

गांवीजी : हाँ।

निराला : फिर मेरे 'तुलसीदास' की भाषा का क्या हाल होगा !

गांधीजी की समझ में न आया कि यह रामायण की भाषा के बारे में कह रहे हैं या अपनी किसी कविता की भाषा के बारे में। वह मौन हो गये।

निराला : महात्माजी, अगर वक्त हो गया हो तो मैं प्रणाम कर विदा होऊँ ?

गांधीजी : हाँ, मैं तो पहले ही कह चुका हूँ।

निराला ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया; शिवप्रसाद गुप्त से फिर मिलने की बात कहकर वह बाहर आये।

घर आकर उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखने का मसौदा बनाया। पहले एक चुटकुला, फिर उस पर टिप्पणी।

एक महाजन अपने घोड़े की बड़ी देखभाल करता था। पड़ोसी को कहीं जाना था, घोड़ा माँगने आया। महाजन ने कहा—घोड़ा नहीं है। पड़ोसी खड़ा रहा। इतने में घोड़ा हिनहिनाया। उसने महाजन से कहा—आप कहते थे, घोड़ा नहीं है; है तो घोड़ा। महाजन ने जवाब दिया—तुमने हमारी आवाज़ नहीं पहचानी, घोड़े की आवाज़ पहचानी !

इस पर टिप्पणी : महात्माजी, मैं आप ही की आवाज़ पहचान गया। किताब भेजकर घोड़े की आवाज़ नहीं पहचानना चाहता।

सियारामशरण गुप्त को उन्होंने पत्र का मज़मून सुनाया। उन्होंने कहा—महात्माजी का स्वास्थ्य आजकल अच्छा नहीं है, आप ऐसा न लिखें। निराला ने पत्र न लिखा।

कहते हैं, एक बार गांधीजी मद्रास गये थे तब उनका नाम सुनकर महाकवि सुब्रह्मण्य भारती उनसे मिलने आये। गांधीजी ने पूछा, क्या चाहते हो ? उन्होंने कहा—मैं चाहता हूँ कि समुद्रतट पर सभा हो, आप सभापति हों और मैं कविता-पाठ करूँ। गांधीजी ने कहा—मुझे समय नहीं है। सुब्रह्मण्य भारती ने कहा—तो मैं स्वयं सभापतित्व करूँगा और कविता-पाठ भी करूँगा। इतना कहकर वह चले आये।

निराला कैसरबाग से गुज़र रहे थे कि वही तमिल-भाषी दक्षिण भारतीय उन्हें फिर दिखाई दिया। पास आकर बोला—अब गर्मी बहुत पड़ने लगी है। देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा ! पैदल जाना चाहता हूँ।

निराला ने टोकते हुए कहा : क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर सकते ?

वह बोला : नहीं, कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। खैर, मैं भीख माँगता-खाता पैदल चला जाऊँगा। पर गरमी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं, अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।

निराला इलाहाबाद से जो ढाई सौ रुपये लाये थे, वह मकान का पिछला किराया और होटल वगैरह का उधार चुकाने में खर्च हो चुके थे। उनकी जेब में केवल छह पैसे थे। उनकी अपनी चप्पलें भी फटी हुई थीं। उन्होंने दुखी और लज्जित होकर कहा—आप मुझे क्षमा करें, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।

उसने पैदल ही गर्मी में मद्रास जाने के निश्चय से वीर की तरह निराला को देखा, उन्हें आशीर्वाद दिया और अमीनाबाद की ओर चला गया।

निराला ने जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखा : " 'सखी' और 'प्रभावती' मेरे पास रक्खी हैं, पर मैं भेज नहीं सकता। क्योंकि कांग्रेस-भर में मेरा अर्जित धन खर्च हो गया है। आप आठ आने के टिकट भेजिए या मुझे बैरंग भेजने के लिए लिखिये।"[३]

'मतवाला' के स्तम्भ एक-एक करके गिर रहे थे। निराला के 'मास्टर साहब' राधामोहन गोकुलजी नहीं रहे। उनके बाद महादेवप्रसाद सेठ का अन्त हुआ। 'मतवाला' से नाता टूट गया था, फिर भी निराला के मन में उस पत्र से सम्बद्ध मधुर स्मृतियाँ बनी हुई थीं। तीन साल से स्वास्थ्य गिरता चला जा रहा था; आखिर 'मतवाला' के यशस्वी संस्थापक महादेवप्रसाद सेठ न रहे। निराला के मन में वह उनके उदार अभिभावक, उनकी प्रतिभा के सच्चे प्रशंसक, उनके काव्य के प्रकाशन के लिए ही 'मतवाला' निकालनेवाले साहित्य-प्रेमी रह गये। जो मनोमालिन्य था वह उनके शरीर के साथ जैसे भस्म हो गया।

'गीतिका' और 'निरुपमा' की छपाई प्रेमचन्द के सरस्वती प्रेस में हो रही थी। निराला काशी गये और वहाँ वाचस्पति पाठक के यहाँ ठहरे। सुना कि प्रेमचन्द अस्वस्थ हैं। उनसे मिलने गये। जहाँ प्रेस था, वहीं ऊपर की मंजिल में प्रेमचन्द बैठे थे। लखनऊ में देखा था, तब से दुर्बल हो गये थे। निराला के ऐसा कहने पर बोले—नहीं, यह तो मेरी काठी है।

प्रेमचन्द एक्स-रे के लिए लखनऊ गये। वहाँ से लौटे तो प्रसाद उन्हें देखने आये। निराला फिर मिलने गये। प्रेमचन्द और दुर्बल हो गये थे, फिर भी निराला को लगा—वीर की तरह बैठे वार्तालाप कर रहे है, बड़ी जिन्दादिली, मानो सुननेवालों को स्वास्थ्य पहुँचा रहे हों। निराला ने उस हड्डियों के ढाँचे में, जिसका नाम प्रेमचन्द था, हिन्दी की महाशक्ति देखी। पूछा—आप लखनऊ गये थे, वहाँ क्या कहा डाक्टरों ने ? प्रेमचन्द बोले—कुछ कहते नहीं, सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। कहा कुछ नहीं, ठहरने के लिए कहा, पर कुछ डिसेन्ट्री की शिकायत मालूम दी; परदेश, देखभाल वाला कोई नहीं; लड़के को ले गया था, कौन तीमारदारी करे, लौट आया।

जुलाई के 'हंस' में निराला का गीत छपा : हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जाओगे चले। इसके साथ प्रेमचन्द का लिखा यह नोट प्रकाशित हुआ : " 'निरालाजी' नवीन हिन्दी कविता के सुप्रसिद्ध अग्रदूत हैं। आप नवीन भावनाओं के प्रतिनिधि कवि तथा नवीन जीवन के सच्चे उन्नायक हैं। आप कविता की ही नहीं, व्यक्तिगत संस्कृति की दृष्टि से भी एक अत्यन्त परिमर्जित रुचि और कोमल भावों के महानुभाव हैं। आपकी कविताओं का-सा दार्शनिक प्रकाश हिन्दी में बहुत ही कम दृष्टिगत होता है।"

'अप्सरा' को लेकर मन मे जो मैल जमा था, वह अब साफ हो गया। प्रेमचन्द ने अपनी आँखो देखा निराला के हृदय में कितनी करुणा है।

काशी में मैथिलीशरण गुप्त की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई। काशीनरेश महाराज आदित्यनारायण सिंह ने सभापति का आसन ग्रहण किया। निराला ने गुप्तजी के

सम्मान में भाषण करते हुए कहा कि वह प्राचीन होते हुए भी नवीन हैं।

प्रेमचन्द की हालत गिरती जा रही थी। अब वह दूसरी जगह रहने लगे थे। श्रीपतराय से पता मालूम करके निराला उधर चले। रास्ते में पानी आ गया। वह भीगते हुए प्रेमचन्द के घर तक पहुँचे। फाटक खोलने पर छोटा-सा मैदान दिखा, किनारे चमेली का झाड़। रात के खिले फूल बूँदों की थपेड़ों से व्याकुल हो रहे है, यह देखकर निराला झाड़ के पास खड़े हो गये। एक फूल छुआ; छूते ही वह लता से अलग हो गया। फूल लिये निराला आगे बढ़े। शिवरानीदेवीजी ने जहाँ चिक पड़ी थी, संकेत करते हुए कहा—सोये हैं, जाइये।

निराला ने देखा, प्रेमचन्द अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। पेट फूला हुआ है। आहट पाकर आँखें खोलीं। निराला ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पूछा—आप कैसे हैं? दोनों बाँहों की ओर दृष्टि फेरकर प्रेमचन्द ने कहा—देखिये।

निराला को लगा—सिंह को गोली भरपूर लग गई है।

कैसे सँभलेगा?—प्रेमचन्द ने कहा।

निराला के हाथ से छूटकर चमेली का फूल जमीन पर गिर गया।

'गीतिका' छप गई थी। निराला लखनऊ आना चाहते थे। चलने से पहले प्रेमचन्द से मिलने फिर गये। साथ में वाचस्पति पाठक और पद्मनारायण आचार्य थे। इक्के पर बैठे हुए ये लोग गुप्तजी के अभिनन्दन की बातें कर रहे थे, निराला को प्रेमचन्द की याद आ रही थी। प्रेमचन्द को न तो मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला, न कोई अभिनन्दन। वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी नहीं चुने गये। निराला ने देखा, उनका भाग्य कहीं प्रेमचन्द के भाग्य से मिलता-जुलता है। उनके मन ने कहा—तुम्हारे लिए भी यही फैसला है; जिसने जैसा किया, वैसा पाया। निराला के दूसरे मन ने जवाब दिया—मैं इसी तरह गुजरूँगा। अगर कुछ काम कर सका तो नाम-यश मुझे नहीं चाहिये।

प्रेमचन्द चारपाई पर लेटे थे। रस्सी बाँधकर पर्दा किया गया था। शिवरानीदेवी ने पर्दा हटाया। प्रेमचन्द ने हाथ जोड़कर कहा—अब तो अन्तिम विदा है।

निराला के सामने हिन्दी-भाषा, हिन्दी-साहित्य, हिन्दी-लेखक—इन सबकी स्थिति एकबारगी स्पष्ट हो गई। चालीस साल की अनवरत साहित्य-साधना का यही फल है। प्रेमचन्द अन्तिम साँसें गिन रहे हैं पर देश में कोई हलचल नहीं है, अखबारों में कहीं समाचार भी नहीं छपा। राष्ट्रनिर्माता अपने काम में लगे हैं। प्रेमचन्द की तरफ़ आँख उठाने की उन्हें फुर्सत नहीं है। प्रेमचन्द-निराला, निराला-प्रेमचन्द—क्या अन्तर है दोनों में? जो आज प्रेमचन्द को हो रहा है, कल वही निराला को होगा।

शोक, ग्लानि, क्रोध, घृणा से भरे हुए निराला लौटे। उन्होंने लेख लिखा—'हिन्दी के गर्व और गौरव प्रेमचन्दजी।' हृदय का आवेग गद्य में फूट पड़ा :

"हिन्दी के युगान्तर-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न, अन्तर्प्रान्तीय ख्याति के प्रथम साहित्यिक, प्रतिकूल परिस्थितियों में निर्भीक वीर की तरह लड़नेवाले, उपन्यास-संसार के एकछत्र सम्राट्, रचना-प्रतियोगिता में विश्व के अधिक से अधिक लिखनेवाले

मनीषियों के समकक्ष आदरणीय श्रीमान् प्रेमचन्दजी आज महाव्याधि से ग्रस्त होकर शय्याशायी हो रहे हैं।"

फिर उन्हें लखनऊ मे कांग्रेसी नेताओ के चेहरे याद आये और उन्होने लिखा :

"कितने दुःख की बात है, हिन्दी के जिन पत्रों में हम राजनीतिक नेताओं के मामूली बुखार का तापमान प्रतिदिन पढ़ते रहते है, उनमे श्री प्रेमचन्दजी की—हिन्दी का महान् उपकार करनेवाले प्रेमचन्दजी की अवस्था की साप्ताहिक खबर भी हमें पढने को नहीं मिलती। दु.ख नही, यह लज्जा की बात है, हिन्दी-भाषियो के लिए मर जाने की बात है। उन्होने अपने साहित्यिकों की ऐसी दशा नही होने दी कि वे हँसते हुए जीते और आशीर्वाद देते हुए मरते। इसी अभिशाप के कारण हिन्दी महारानी होकर अपनी प्रान्तीय सखियों की भी दासी है।"

राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल नेहरू के साथ प्रेमचन्द का नामोल्लेख करने के वाद निराला ने लिखा :

"मैं देखता हूँ, राजनीति के सामने साहित्य का सर नही झुका, वल्कि और ऊंचा है, केवल देखनेवाले नही हैं। हिन्दी-भाषी मुझे अच्छी तरह जानते है। वे यह भी जानते होगे, मेरे कानो में डंके की आवाज कम जाती है। जिस साधना से आदमी आदमी है, जिसके कारण नेता सम्मान पाते हैं, मैं उसी की जाँच करता हूँ। वहाँ प्रेमचन्दजी, दरिद्र प्रेमचन्दजी, अपने अध्यवसाय से शिक्षा प्राप्त करनेवाले प्रेमचन्दजी, साहित्य की साधना मे यहाँ-वहाँ भटकते फिरनेवाले प्रेमचन्दजी, फिर भी एकनिष्ठ होकर दिन-पर-दिन महीने-पर-महीने, वर्ष-पर-वर्ष साधना करते रहनेवाले प्रेमचन्दजी, वडे-वडे, वहुत वड़े हे। इतना वडा कोई नेता भी इस तरह संकट में पडा जिसके नाबालिग वच्चे उड़ी निगाह से पिता के पास वैठे हुए शून्य सोचते रहे और महाव्याधि में भी पिता को विश्राम न मिला—उनके अन्न की चिन्ता रही ? इतने वड़े पिता को अन्न की चिन्ता—धन्य रे देश !"

'हे ईश्वर ! केवल दस वर्ष !'—लेख के अन्त मे निराला ने प्रार्थना की।

सन् '३६ की गर्मियों और वरसात में निराला जव वनारस में रहे, प्रेमचन्द से मिलने वार-वार जाते रहे। मृत्यु धीरे-धीरे पर निश्चित गति से मनुष्य को कैसे ग्रस रही है, यह उन्होने पहली वार अपनी आँखो देखा। रामसहाय, रामलाल, वदलूप्रासद, मनोहरा देवी, सरोज—इन सवकी मृत्यु या तो निराला से दूर हुई या उसमें अधिक समय न लगा। फिर इनमें कोई साहित्यकार न था। प्रेमचन्द तिल-तिल कर मर रहे थे और वह हिन्दी के लेखक थे। उनकी मौत का यह लम्वा, जल्द खत्म न होनेवाला सिलसिला निराला की मौत का ही सिलसिला था।

रोगशय्या पर पड़े हुए निर्वल प्रेमचन्द ने निराला की चेतना के उन स्तरों को छुआ जो अव तक सोये-से थे, जिनसे अभी तक निराला के मन का तार न जुडा था। एक झटके से उन्हे अपने भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो काल का जैसे एक साथ साक्षात्कार हो गया। अन्धकार केवल अन्धकार, आगे पहाड़, पीछे समुद्र, मनुष्य कहाँ जाये, कहाँ से शक्ति पाये, चारो ओर विरोध-कोलाहल, आकाश भी जैसे पराजित

मनुष्य पर अट्टहास कर रहा हो। धिक्कार है इस जीवन को जिसमें पराजय ही हाथ लगी। पर निराला साहित्य लिखना छोड़ नही सकते; हिन्दीवाले घेरकर आक्रमण करें पर निराला हिन्दी से नाता तोड नही सकते, प्राण देकर साधना मे लगे रहना है; मृत्यु का वरण करते हुए भी साध्य तक पहुँचना है।

प्रेमचन्द के घर से लौटते हुए, प्रसाद या विनोदशंकर के घर जाते हुए, बनारस की तंग गलियो मे घूमते हुए, 'गीतिका' के प्रूफ सुधारते हुए, रात मे अकेले घाट पर बैठे बरसात की भरी गंगा के किनारे दूर-दूर तक जलती चिताएँ देखते हुए निराला का मन नये भावचित्र बनाने लगा; वेदना मे आन्दोलित उनकी स्मृतियां इन भावचित्रो में नये रूप ग्रहण करने लगी।

तुलसीदास महाकवि थे। क्या उन्होंने पराजय और ग्लानि का अनुभव किया था? किया हो चाहे न किया हो, उनके इष्टदेव राम ने अवश्य किया था। राम ने युद्ध किया पर विजय प्राप्त न हुई। केवल युद्ध की गाथा अमर है; विजय-श्री किसे मिलती है? राक्षसो के पैरो के नीचे पृथ्वी कांप उठी, आकाश आनन्द से विह्वल होकर अन्धकार उगलने लगा। राम के चारो ओर अन्धकार, जटाएँ खुलकर पीठ, छाती, बाँहो पर फैल गईं मानो दुर्गम पर्वत पर अन्धकार उतर आया है, राम को अन्धकार चापे हुए है, पीछे अप्रतिहत समुद्र गरज रहा है, पर्वत मानो ध्यानमग्न है, अमावस्या के अन्धकार मे केवल एक मशाल जल रही है। राम संशयग्रस्त हैं, मन में भय उत्पन्न हो गया है, रावण पर विजय प्राप्त न होगी। राम का मन जो आज तक नही थका, जो युद्ध मे दुराक्रान्त रहा, वह अपने को असमर्थ मानकर हार गया है। मृत्यु की विराट् देवी सारे आकाश को आच्छादित किये हैं। राम के सारे ज्योतिर्मय अस्त्र उसमे जाकर बुझ जाते हैं। रावण का अट्टहास सुनकर राम की आंखो से दो आंसू ढुलक पडते हैं।

राम का मन पराजय की पीड़ा जानता है, वह सीता के लिए लड़ रहे हैं पर महावीर किसके लिए लड रहे हैं? जो अपने लिए नही लड़ता, वह हार भी नही सकता, मृत्यु मे जो शक्ति है, वह रावण के पास है; महावीर जो राम की शक्ति है, वह राम के पास है। यह समुद्र, यह अन्धकार, यह रावण—अकेले महावीर इनको तहस-नहस कर सकते हैं। शक्ति का एक महासमुद्र महावीर में है। राम के आंसू देखते ही शक्ति का वह समुद्र उद्वेलित हो उठा। उन्चासो पवनो से प्रेरित महावीर पहाडो जैसी तरंगे उठाते, अतल में देशभाव डुबाते, महाकाश मे पहुँचकर अट्टहास कर उठे। जिस आकाश मे मृत्यु निवास करती है, उसे ग्रसने को महावीर बढे। महानाश का यह रूप देखकर अचल शिव भी क्षणभर को चंचल हो उठे। वह आकाश मे श्यामा का आलिंगन किये थे—

अम्बर मे हुए दिगम्बर आलिंगित शंकर।

लेकिन महावीर चिर ब्रह्मचर्यरत, राम की मूर्तिमान अर्चना, अक्षय शरीर है। उन्हे मृत्यु परास्त नही कर सकती। शिव महावीर से त्रस्त हो उठे।

राम शक्ति की साधना करेंगे, जो रावण के पास है वह शक्ति उससे छीन

लेंगे। महावीर से रावण को परास्त नही कराना है; स्वयं पराजय का भाव दूर करके नयी शक्ति से उसे पराभूत करना है। पर कितना अन्याय है! राम के शर जिनमे मन का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेक है, खण्डित हो गये। महाशक्ति रावण को गोद में लिये हैं। राम जितना ही क्रुद्ध होकर रावण पर शर-प्रहार करते है, उतना ही उन मृत्यु की देवी की आँखों से आग की लपटें छूटने लगती है। राम की आँखों से जैसे ही उनकी निगाह मिली, वैसे ही हाथ मानो बँध गये, धनुष की डोरी फिर न खींचते बनी। भाग्य का खेल; अधर्मरत रावण के साथ महाशक्ति हैं, राम धर्मरत होकर भी अपने हैं।

राम ने जप करना शुरू किया। जप के स्वर से आकाश काँप उठा, मन एक चक्र से दूसरे चक्र तक ऊपर उठता चला गया। सहस्रार तक पहुँचनेवाला ही था कि दुर्गा छिपकर आईं और पूजा का अन्तिम कमल उठा ले गईं। सिद्धि के अन्तिम क्षण मे विघ्न। सारा जीवन ही बाधाओं से भरा हुआ—

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध।

पर राम का एक मन और है जो थकता नहीं है, जो थके हुए मन को देखता, उसे संचालित करता है। राम का यह मन अपनी माता का स्मरण करता है। वह उन्हे राजीवनयन कहती थी। राम अपना एक नेत्र देकर महाशक्ति की पूजा पूरी करेंगे। जैसे ही नेत्र निकालने के लिए राम ने महाफलक उठाया, ब्रह्माण्ड काँप उठा, देवी ने तुरत उदय होकर राम का हाथ पकड़ लिया। राम की विजय होगी—यह कहते हुए महाशक्ति उनके मुख में लीन हो गईं।

निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' पूरी की। वर्षा के बादल उडकर कहीं दूर चले गये थे। गंगा के थिराये हुए जल में शरद का नीला आकाश दमक उठा था। आठ अक्तूबर को प्रेमचन्द के प्राण उनके जर्जर अस्थिपंजर को छोडकर दूर कही उड गए।

दस अक्तूबर के 'भारत' में 'राम की शक्तिपूजा' प्रकाशित हुई।

इसी अक्तूबर के महीने में काशी के साहित्य-प्रेमियो ने मैथिलीशरण गुप्त का मान-सप्ताह मनाया। उनका अभिनन्दन करने के लिए बड़ी अनुनय-विनय से वह गांधीजी को लाये।

गांधीजी ने कहा : "मेरे हाथों द्वारा जो यह भेट दिलवाई गई, वह अच्छी नहीं मालूम हुई। न तो मैं कवि हूँ, न मैं हिन्दी-भाषा को ही अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे तो किसी छोटे या बड़े की जयन्ती मनाना भी पसन्द नही है—यदि किसी की जयन्ती मनाना भी हो तो तब मनाना चाहिये जबकि वह आदमी न हो······

"मैंने तो जब पद्मनारायणजी सेगाँव गए थे, यह कह दिया था कि किसी अच्छे कवि के लिए सम्मतियों का लिखाना अच्छा नही। किसी सत्कवि की कृति कभी सम्मति की अपेक्षा नही करती। मैंने यदि कभी गुरुदेव के लिए, मालवीयजी के लिए अथवा द्विवेदीजी के लिए कुछ लिखकर दिया है तो दबाव से ही। सच पूछो तो मेरी इच्छा कभी किसी महापुरुप के सम्बन्ध में लिखने की नही हुई। यदि उस समय मैंने

ग़लती की थी तो क्या अब भी वही ग़लती करता रहूँ ? यदि तुम भी कुछ दबाव डालो तो मैं तुम्हे भी कुछ लिखकर दे सकता हूँ, पर स्वेच्छावश नहीं।"

निराला ने 'सरस्वती' में गांधीजी का भाषण पढ़ा। उन्हे लगा, प्रेमचन्द तो मर गये हैं, अब लोग उनकी लाश को पैरों से ठुकरा रहे है।

११

राजनीति और साहित्य

कान्यकुब्ज कालेज से कविता-पाठ के लिए निमन्त्रण आया था। दोपहर के बाद जाना था। निराला ने उस दिन घर पर स्वयं मांस पकाया। डेढ़ बजे कान्यकुब्ज कालेज पहुँचे। प्रिंसिपल वालकृष्ण पाण्डेय, कुछ अध्यापक तथा करीब सवा सौ विद्यार्थी हाल में एकत्र थे। निराला ने अपना भाषण आरम्भ करते हुए कहा—मैंने आज गोश्त पकाया था जिसमें चालीस मिर्चें डाले थे। जैसा उसका तीखा बढ़िया स्वाद था, वैसा ही मेरी कविता का है।

इसके बाद कुछ देर तक वह कला की—जड़, पेड़, पत्ती, फूल, खुशबूवाली—व्याख्या करते रहे। फिर कुछ गीत पढ़े और उनकी व्याख्या की। मेरे अनुरोध पर पाँच-छह गीतों की और व्याख्या की। गीतों का स्मरण दिलाने के लिए मुझे पास बुला लिया। लोग और सुनना चाहते थे; मुझे कुछ ही गीत याद थे। 'गीतिका' की प्रति मँगवाई गई। उससे उन्होने बहुत-से गीत पढ़ कर सुनाये। दो घण्टे तक यह क्रम चलता रहा। फिर होस्टल में उन्हें चाय पिलाई गई। चाय पीने के बाद वह गोमती पार फुटबाल का मैच देखने गये।

केदारनाथ अग्रवाल इस समय कही अध्यापक की जगह खोज रहे थे। उन्हें एक प्रमाण-पत्र की आवश्यकता थी। निराला ने प्रमाण-पत्र मुझे डिक्टेट कराया और उस पर हस्ताक्षर कराने के लिए शुकदेवविहारी मिश्र के पास ले गये। पहले ही वाक्य—"श्री केदारनाथ अग्रवाल 'बालेन्दु' बी० ए० को मैं जानता हूँ"—पर मिश्रजी ने आपत्ति की। कहा—मैं तो उन्हे जानता नहीं। निराला ने कहा—मै जानता हूँ, आप हस्ताक्षर कर दीजिये।

मिश्रजी ने हस्ताक्षर कर दिये। निराला ने प्रमाण-पत्र मे लिखाया था: "आधुनिक गद्य और पद्य के लेखकों में वह सर्वोत्कृष्ट होनहारों में से है। बातचीत में नम्र, सहृदय और ओजस्वी प्रतीत होते हैं, जिससे उनके पुष्ट-पवित्र चरित्र और अध्ययन का पता चलता है। ऐसे नवयुवक हिन्दी-साहित्य का एक दिन मुखोज्ज्वल करेंगे।"

ब्रजमोहन तिवारी ने कान्यकुब्ज कालेज से अंग्रेजी मे एक पत्रिका निकाली—'टार्च बेयरर'। मैंने निराला की कुछ कविताओं का अंग्रेज़ी मे अनुवाद किया। वह इलाहाबाद मे थे; पत्रिका मे अनुवाद देखकर प्रसन्न हुए। लिखा—"कान्यकुब्ज पत्रिका मे आपके पद्य एक-एक बार पढ़े। बड़े अच्छे मालूम दिये। फिर कई बार पढूंगा, जैसा मैं पढ़ता हूँ, एक-एक शब्द अच्छी तरह समझ-समझ कर।" फिर सलाह दी—"आप अच्छी-अच्छी कुछ कविताएँ एक बार 'माडर्न रिव्यू' मे भेज कर देखें, एक तमाशा सही।" तिवारीजी ने सम्पादकीय स्तम्भ मे निराला की प्रशंसा की थी। उसके बारे मे लिखा—"तिवारीजी के Editor's Call के लिए धन्यवाद तो बड़ी हल्की बात होगी, वैसी वज़नदार क्या दूं—वही 'राम की शक्तिपूजा' एक बार सुना दीजियेगा।"[1]

तिवारीजी ने निराला से 'टार्च बेयरर' मे कुछ लिखने के लिए आग्रह किया। निराला को मजाक सूझा। तिवारीजी से पूछने को लिखा कि "यह 'मशालची' 'सूर्यकान्त' को कैसे सँभालेगा।—दोनो मे तो दिन-रात का फर्क है।"[2]

'गीतिका' निकल गई थी। मनोहरादेवी को समर्पण, लगभग तीन वर्ष पहले का लखनऊ मे खिचा हुआ चित्र, प्रसाद लिखित प्रशंसात्मक परिचय, निराला की भूमिका, नन्ददुलारे वाजपेयी की लिखी समीक्षा, जिल्द पर वीणावादिनी का चित्र, अन्त मे शब्दार्थ—बड़ी तैयारी के बाद छपी हुई गीतिका निराला की अब तक प्रकाशित पुस्तकों में सबसे सुन्दर थी।

निराला के मन का विषाद कुछ दूर हुआ।

निराला चाहते थे कि लोग उन पर अंग्रेजी में कुछ लिखें। वह स्वयं 'टार्च बेयरर' के लिए अंग्रेज़ी मे कुछ लिखना चाहते थे। युनिवर्सिटी मे उन्हे भाषण और कविता-पाठ के लिए निमन्त्रण मिला था। अंग्रेज़ी मे लिखने की मश्क करते हुए उन्होने ब्रजमोहन तिवारी को इस निमन्त्रण की तथा युनिवर्सिटी के सांड़ो की पूंछ मरोड़ने के अपने इरादे की सूचना दी :

C/o Sjt. Vachaspati pathak Esq.
The Leader Press, Allahabad.
12-11-36

To
B. M. Tiwary M.A.L.T.

My dear Tiwary ji,

I have read you. You bow down before my poetry like a flower on a slender stem, she may accept. A monotony to me all you praise; now what I see is 'trashy' of mine in you : I enjoy : what a fine expression indeed ! But do not mind. This causes the chance to call me now and then to twist the tail of the University-bulls, and today is the twelfth, the date of my lecture in the Allahadad University.

I am told that editor, The Bharat, at a glimpse even, is taken aback, and goes (in a bounden duty as if) to take in your notes, Translated forms, not leaving even the trashy one.

I read Dr. Sharma's translations, and see no gap to point out Hugo's,—sound's bombardment, tremendous to me, a timid Indian.

Don't mind if I am rich of my poor English, and delay not writing me your address full. Geetika is published, and I, watching the moment to send it to you.

Yours Sincerely
Nirala

'टार्च वेयरर' के लिए मैंने ह्यूगो की कुछ कविताओं का अनुवाद किया था; निराला ने उसी पर व्यंग्य किया था।

युनिवर्सिटी की हिन्दी सभा में गये। पता चला कि डा० धीरेन्द्र वर्मा काम से वाहर चले गये हैं। रामकुमार वर्मा आये; देवीप्रसाद शुक्ल तथा कुछ अन्य साहित्य-प्रेमी सज्जन भी पधारे। श्रोताओं में ४०-५० छात्र और १०-१२ छात्राएँ थी। निराला ने डेढ घंटे तक भाषण और कविता-पाठ किया। छात्र-छात्राओं की नोट-वुकों में कविता की कुछ पंक्तियाँ लिखकर हस्ताक्षर किये। चाय-नाश्ते के साथ प्रश्नोत्तर-क्रम चलता रहा। उसी दिन प्रदर्शनी में कवि-सम्मेलन और मुशायरा था। निराला को लोग बुलाने आये थे। कह दिया था—आयेंगे। पर कवि-सम्मेलन में न जाकर दूर से तमाशा देखने का विचार भी था। टिकट वेचे जा रहे थे। माइक्रोफोन पर ऐलान हो रहा था—निरालाजी कविता-पाठ करेंगे। एक विद्यार्थी ने चवन्नी मे कवि-सम्मेलन का टिकट लेकर पूछा—क्या निरालाजी आये हैं ? टिकट बेचनेवाले ने कहा—'हाँ, अभी उस तरफ गये हैं; उन्हें क्या—वे तो डायस वाले हैं, आप लोगो को फिर अच्छी जगह न मिलेगी।' लेकिन निराला वहाँ थे नही।

वह प्रदर्शनी में घूमते रहे, कवि-सम्मेलन में न गये। दूर से कवियों की आवाज तौलते रहे। अंग्रेजी पढ़े कवि भारतीय स्वर में रो रहे हैं। श्रोता ऊबकर कहते हैं—वैठ जाइये, वैठ जाइये।

निराला को दूसरे दिन मालूम हुआ—विस्मिल इलाहावादी कुछ जमे थे, कुछ रामकुमार वर्मा।

इलाहावाद में सज्जाद जहीर हैं। इन्होंने प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन नाम की संस्था कायम की है। ये और इनके कुछ और साथी यूरोप हो आये हैं। उच्च शिक्षित हैं, शायद सोशलिस्ट भी। कुछ लिखते भी हैं, इसमें सन्देह है। जवाहरलाल नेहरू से अक्सर मिलते रहते हैं। सज्जाद ज़हीर चीफ जस्टिस वजीर हसन के पुत्र हे। वैरिस्टर हैं पर वैरिस्टरी नही करते। प्रेमचन्द के निधन पर शोक-सभा हुई थी। उसमें सज्जाद जहीर आये थे; निराला भी मौजूद थे। सभापति वनाये गये निराला; वोलनेवालों में पहला नाम सज्जाद जहीर का। देखने में सभ्य और सुन्दर नौजवान।

निराला ने इलाहाबाद के साहित्यिक-जीवन और उसमें सज्जाद ज़हीर जैसे विलायत से लौटे लोगो के बारे मे जानकारी प्राप्त की। प्रदर्शनी में निराला ने कई बार सज्जाद ज़हीर को देखा। एक मुसलमान महिला उन्हे अक्सर दिखाई दी, खुलकर घूमती, सबसे मिलती हुई, नाम हाजरा बेगम। निराला ने सुना, इनकी शिक्षा जर्मनी मे हुई है। वह प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन के उर्दू विभाग की सेक्रेटरी है। इस संस्था मे उमा नेहरू, श्यामकुमारी नेहरू, चन्द्रावती त्रिपाठी आदि उच्च वर्गो की देवियाँ शामिल है।

प्रदर्शनी मे एक तम्बू के अन्दर कुर्सियाँ पड़ी थी। निराला कुछ दूर बैठे जहाँ सापट कोक के विज्ञापनवाली फिल्म दिखाई जानेवाली थी। निराला ने सोचा, मुफ्त मे बायस्कोप देखने को मिले तो बुरा क्या है। इधर वह प्रोग्रेसिव राइटर्स की मीटिंग का तमाशा भी देख रहे थे। भगवतीचरण वर्मा, रघुपतिसहाय फिराक, सज्जाद ज़हीर आदि सभ्य जन शामिल हो रहे थे।

बायस्कोप शुरू हुआ। स्त्रियाँ लकड़ियो से खाना पकाती है, धुएँ से बेहद परेशान होती है, सापट कोक उनकी सब परेशानियाँ दूर कर देता है। निराला आधा बायस्कोप देखकर उठे। उधर प्रोग्रेसिव राइटर्स की मीटिंग खत्म हुई। सज्जाद ज़हीर ने निराला के पास आकर कहा—आपके नाम लखनऊ निमन्त्रण भेजा गया है, आप मीटिंग मे जरूर तशरीफ़ लायें।

सभापति चुने गये थे मैथिलीशरण गुप्त और जोश मलीहाबादी। गुप्तजी ने इन्कार कर दिया; जोश आये नहीं। पहले दिन की मीटिंग के सभापति बनाये गए रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, दूसरे दिन की मीटिंग के सुदर्शन। प्रदर्शनी में घूमते हुए रामकुमार वर्मा मिले। उन्होंने पूछा—तुम गये नही। निराला ने कहा—मुझे निमंत्रण ही नही मिला।

तै किया कि भीतर चलकर देखा जाय, क्या हो रहा है। निराला एक किनारे जाकर बैठ गये। रामनरेश त्रिपाठी ग्रामगीतो की व्याख्या कर रहे थे। सज्जाद ज़हीर ने निराला के पास आकर कविता सुनाने का आग्रह किया। निराला के मन मे तीन तरह की प्रतिक्रिया एक साथ हुई। तीनो का निष्कर्ष एक— कविता सुनाना ठीक नही।

उन्होने तर्क किया—भांग पी है; नशे में कविता पढना उचित नही।

सज्जाद ज़हीर से बोले—मुझे निमंत्रण आपका तो मिला नही, ज़बानी आपने कहा था इसलिये आ गया हूँ, पर इससे अधिक मै उचित नही समझता और आप समझदार है, आपको अधिक कहना व्यर्थ है।

उनका अन्तर्मन कह रहा था—विलायत मे शिक्षा पानेवाले इन नवाबज़ादो के एक बार कहने से कविता सुनाने मत चल देना।

निराला का उत्तर सुनकर सज्जाद ज़हीर चुप हो गये पर दो देवियों ने आकर उन्हे घेर लिया। श्यामकुमारी नेहरू ने चन्द्रावती त्रिपाठी का परिचय देते हुए कहा— आप हमारे प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन की सेक्रेटरी है। निराला अब उठकर खड़े हो गये। चन्द्रावती ने कहा—आपको इन्विटेशन लेटर तो मिला होगा।

निराला—नही मिला।

चन्द्रावती—लखनऊ मे रिडायरेक्ट होकर नही आया ?

निराला (उनकी अंग्रेजी सुधारते हुए) : लखनऊ से रिडायरेक्टेड होकर नही आया।

चन्द्रावती—रिडायरेक्टेड !

श्यामकुमारी नेहरू (बात सँभालते हुए निराला से)—हम लोग तो आपको सभापति चुन रहे थे; सबकी बड़ी इच्छा है कि आपकी कविता सुनें।

निराला (स्वत:)—श्यामकुमारी सुन्दर है। निराला-साहित्य अब तक देवियों का विरोधाचार नहीं कर सका। नशा काबू मे है। (प्रकट) अच्छा।

श्यामकुमारी—आप डायस पर जाइये।

मंच पर जैनेन्द्रकुमार ने परिचय कराया—निरालाजी, ये काका साहब हैं। निराला ने उन्हें प्रणाम किया। नशे में लगा, निराला पर उनकी काकदृष्टि जमी हुई है।

शान्तिनिकेतन के उर्दू-फारसी अध्यापक एक मुसलमान सज्जन ने अपने भाषण में कहा—हिन्दी में क्या है ? जो कुछ है मुसलमानों का लिखा हुआ है। कालेजों में जो किताबें पढ़ाई जाती है, मुसलमानो की लिखी हुई हैं। दुनिया-भर के मुसलमानों की बनाई हुई जबान उर्दू है। फिर भी हम फ़ारसी लिपि को अच्छा नही समझते। पर नागरी लिपि भी ठीक नहीं। रोमन में लिखना ठीक है।

उमा नेहरू ने उनका विरोध किया, सज्जाद ज़हीर ने समर्थन किया। सुदर्शन गाड़ी पकड़ने की जल्दी में थे, चले गये। सभापति के आसन पर रामवृक्ष बैठे। निराला ऊब रहे थे। रामवृक्ष शर्मा से बोले—मेरा नाम कह दीजिये। रामवृक्ष शर्मा ने खडे होकर श्रोताओं से कहा—निरालाजी चाहते हैं कि अपनी कविता सुनायें।

निराला ने डाँटा—क्या कह रहे हैं आप ?

सज्जाद जहीर और श्यामकुमारी ने कहा—नही, हमने आपसे रिक्वेस्ट किया था।

निराला ने शुरू किया—हिन्दी साहित्य उस जगह है अब, जहाँ संसार के बडे-बड़े साहित्यिक एक-दूसरे से भावों में मिलते है।

एक मुस्लिम सज्जन ने टोका—यह साहित्य-सम्मेलन नही है।

निराला ने फिर डाँटा—बैठ जाइये, पूरा सुन लीजिये। आगे कहा—अक्षर और थोडे शब्दो मे हिन्दी का कुछ नहीं बनता-बिगडता; आप लोग जनता की राय से जैसा चाहें करें, हिन्दी साहित्य सदा आपसे हाथ मिलाने को तैयार है।

निराला ने गीत पढ़ा—टूटे सकल बन्ध, कलि के, दिशाज्ञानगत हो बहे गन्ध। श्रोताओं से आवाज आई—कुछ गाकर सुनाइये। निराला ने सुनाया, स्वर से भिक्षुक की दीनता का चित्र खींचते हुए,—वह आता, दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता। लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। उनकी प्रसन्न करतलध्वनि के बीच निराला तम्बू से बाहर आये।

प्रगतिशील लेखकों से निराला का यह प्रथम परिचय था। प्रेमचन्द इन सबका साथ दे चुके थे पर बहुत थोड़े दिन तक। निराला के मन मे प्रेमचन्द की तस्वीर एक हिन्दी लेखक की तस्वीर थी, निराला की अपनी तस्वीर मे मिलती-जुलती, अभावो की दुनिया मे जूझते हुए ऐसे लेखक की तस्वीर जिसका ज्यादा समय साहित्य-चर्चा और साहित्य लिखने मे बीता था। पर ये प्रोग्रेसिव राइटर्स समृद्ध घरानो के लोग थे, लेखक से ज्यादा नेता थे, विशेष रूप से हिन्दी साहित्य मे अपरिचित थे, लेकिन दूसरो को रास्ता बताने को उत्सुक थे। फिर भी निराला कतराये नही, बहुत आदर से बुलाये न जाने पर भी गये, अपनी रचनाएँ सुनाकर इन नयी तरह के लोगों को एक हद तक प्रभावित किया।

प्रेमचन्द, फिराक और सज्जाद ज़हीर के इर्द-गिर्द चक्कर काटनेवालों मे एक नौजवान लेखक थे भुवनेश्वर। कद मे वह प्रेमचन्द से भी छोटे थे। अंग्रेजी और उर्दू अच्छी जानते थे, अपनी 'विट' से युनिवर्सिटी के छात्रो और बहुत-से अध्यापकों को प्रभावित करने मे वह अद्वितीय थे। उन्होने कुछ दिन तक लोगो पर यह रोब ग़ालिब किया था कि वह आई० सी० एस० परीक्षा मे उत्तीर्ण हो चुके है, पर साहित्य-सेवा के लिए नौकरी नही की। दोस्तों से किताबे माँगकर ले जाते, किसी सेकेंडहैंड किताबों की दूकान मे या कबाडी के यहाँ बेच आते। जान-पहचानवालों से अठन्नी, चवन्नी, रुपया जो मिल-जाय, माँगने मे उन्हे शर्म न थी। उन्हें कुछ अश्लील लोकगीत याद थे; फुर्सत मे कभी-कभी मेरे कमरे में चटाई पर लेटे हुए पैर मे घुंघरू बाँधकर ताल देते हुए ये गीत मुझे और नरोत्तम नागर को सुनाते थे। मैं उनसे कहता—तुम न्यूरोटिक हो, प्रोग्रेसिव राइटर्स से तुम्हारा क्या सम्बन्ध? भुवनेश्वर जवाब देते—ए प्रोग्रेसिव इज ए न्यूरोटिक गौट थ्रू विद होप।

'माधुरी' मे निराला का निबन्ध निकला—'मेरे गीत और कला।' पहली किस्त के अन्त मे छपा था—शेष अगले अंक में।

भुवनेश्वर कैसरबाग वाली लायब्रेरी मे 'माधुरी' के पन्ने उलट-पलटकर देख रहे थे। निराला के चित्र पर निगाह अटक गई, कमर से ऊपर तक नग्न शरीर, चौड़ा सीना, विशाल बाँहे। भुवनेश्वर ने चित्र के नीचे लिखा—'शेष अगले अंक में!'

रुपये की हमेशा जरूरत रहती थी। भुवनेश्वर 'माधुरी' आफिस गये। वही बैठकर निराला पर एक छोटा-सा लेख लिखा; लेख संपादक के हवाले किया, दस-पाँच जो मिले जेब मे डालकर विदा हुए।

जिन दिनों निराला इलाहाबाद में प्रगतिशीलो का परिचय प्राप्त कर रहे थे, उन्ही दिनों नवम्बर सन् '३६ की 'माधुरी' मे प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन के सदस्य भुवनेश्वर का लेख छपा—'श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।'

भुवनेश्वर ने निराला से अपनी पहली मुलाकात का जिक्र इस तरह किया :

नि—आपने मेरा परिमल पढ़ा?

भु—जी हाँ।

नि—और अप्सरा भी?

भु—जी हाँ।

नि—कोई कविता आपको पसन्द है?

भु—जी हाँ, 'तुम और मैं'। (मुझे उस समय केवल यही याद थी।)

नि—वह तो मैंने वैसे ही लिख दी थी, उसमें क्या है? अच्छा आपने तो अंग्रेजी कविता देखी-सुनी है, मुझे आप किस अंग्रेजी कवि से अधिक निकट समझते हैं?

भु—बर्न्स से। (मैंने केवल यह समझकर यह नाम ले दिया कि शायद निराला के लिए यह नया हो।)

नि—बर्न्स क्या मेरा मुकाबला करेगा, हाँ ब्राउनिंग, आप कहें तो ठीक है। वह भी आज ब्राउनिंग मेरे सामने टिकता है, भविष्य अनिश्चित है। पर ब्राउनिंग को तो भारतवर्ष में केवल दो आदमी समझते है, टैगोर और दयामय मित्र। मुझे समझनेवाला तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।

निराला से अपने संवाद की यह झाँकी देकर भुवनेश्वर ने निराला-साहित्य पर अपनी सम्मति जाहिर की। निराला का विचार है कि हिन्दी कविता के पाठक पंत के फरेब में है। निराला कलम लेकर सोचता है, चमत्कार के लिए भाषा का सहारा खोजता है; पन्द्रह वर्ष से वह कविता, उपन्यास, कहानी, समालोचना, सब-कुछ लिख रहा है, पर प्रथम श्रेणी तक वह किसी भी हैसियत से नही पहुँचता।

'निराला बंगाली संस्कृति का कवि है। वह संस्कृति जो 'टैगोर की द्रुत मैनरिज्म' से पैदा हुई है, जिसके अति विश्लेषण मे कबीर, ब्लेक सभी आते हैं। पंत को उसने बार-बार टैगोर का प्रोटेजे बताया है, पर सत्य यह है कि निराला टैगोर को पचा न सका। वह मैनरिज्म का कवि है, वह उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का कवि है, वह अपने सर्वोत्तम रूप मे भी एक चतुर शिल्पी है। शायद महान् भी, पर महान् कवि नहीं। निराला में टैगोर की शक्ति नही; 'जुही की कली', 'तुम और मैं' वगैरह में अर्थ की स्थूलता है।

भुवनेश्वर ने निराला के व्यक्तित्व की तारीफ की। मेहनती है, आत्माभिमानी है, विशाल हृदय है, उसकी कविता में साधना है, अध्यवसाय है, कारीगरी है, कोमलता है, पर वही नही है जिसके बगैर वह न ब्राउनिंग है, न बर्न्स, केवल निराला है। वह रचना सकता है, पर निर्माण नहो कर सकता। वह जीवन को पचा नही सकता। कथाकार की हैसियत से निराला गम्भीर विवेचन का पात्र नही है।

लेख के अन्त मे 'माधुरी'-सम्पादक ने नोट दिया—हम कई बातों में लेखक से सहमत नही हैं।

भुवनेश्वर को हिन्दी बहुत कम आती थी। निराला की कविताएँ बहुत कम पढ़ी थी; जो कुछ सुना था, उसे अपनी 'विट' के सहारे सजाकर पेश किया था। बँगला भी न आती थी। फिर भी उस समय अनेक हिन्दी के पाठक 'टैगोर की द्रुत मैनरिज्म' से उत्पन्न होनेवाली बँगला-संस्कृति का विवेचन सुनकर चकित दृष्टि से उसकी दाद देते थे।

गायक सुशीलकुमार चौबे से भुवनेश्वर ने कहा—गाना सुनाओ। चौबे ने

पूछा—कौन-सा राग पसन्द है ? भुवनेश्वर ने कहा—झपताल !

वैसे ही टैगोर की द्रुत मैनरिज्म से उत्पन्न संस्कृति।

मैने भुवनेश्वर से कहा—जब तुमने निराला की कविताएँ पढी नहीं, तब यह सब क्यों लिखा ?

भुवनेश्वर ने जवाब दिया—पैसो की सख्त जरूरत थी। माधुरी' आफिस गया। वही बैठकर लेख लिखा। हिन्दी के संपादक इतने बेवकूफ है कि लेख छापने को तैयार हो गये तो मैं क्या करूँ ?

लखनऊ-इलाहाबाद मे लेख की काफ़ी चर्चा हुई। निराला पर उसका गहरा असर हुआ। अभी तक उनके विरुद्ध जो लोग लिखते रहे थे, वे हिन्दी के आदमी थे, बहुत-से बहुत-कुछ अंग्रेजी, बँगला और संस्कृत जाननेवाले। पर यह लेख उस आदमी का लिखा था जो हिन्दी से ज्यादा अंग्रेजी जानता था, जिसकी हिन्दी एक अजीब अंग्रेजियत के साँचे मे ढली थी, जिसने टैगोर और निराला के बारे मे कुछ ऐसी बातें कही थी जो मन मे संशय उत्पन्न करनेवाली थीं। क्या सचमुच निराला महान् कवि नही, केवल चतुर शिल्पी है ?

निराला ने भुवनेश्वर के लेख का उत्तर लिखा, दो व्यक्तियों से उनका परिचय लिखाकर लेख के साथ 'माधुरी' मे छपने भेजा। "श्री भुवनेश्वरप्रसाद को उत्तर भेज चुका हूँ। मैंने भूमिका भर लिखी है, मुझे ही लिखना था, क्योंकि बातचीत उन्होंने मेरी लिखी है; उनका परिचय मेरे मित्र पं० वाचस्पति पाठक और पं० बलभद्रप्रसाद मिश्र एम० ए० (आपकी तरह प्रयाग विश्वविद्यालय के रिसर्च स्कालर) ने लिखा है; दोनो पत्र भेज दिये है जो बड़े चुभते हुए है। वहाँ छपते-छपते पढ लीजियेगा। उनके लिये बड़े तिक्त साबित होगे। पाण्डुलिपियाँ इन्ही सज्जनो की भेजी है।" इस सूचना के बाद उन्होने सलाह दी, "आप साहित्यिक तरीके से एक लेख लिखकर भुवनेश्वरप्रसाद से अंग्रेजी और फ्रेंच का ज्ञान थोडा बहुत प्राप्त करने की कोशिश करें तो क्या बुरा है : morbidity तो वे आपको बहुत दिनो तक बतायेंगे, यह मै दावे के साथ कह सकता हूँ।"[३]

'माधुरी' के लिए लेख मे निराला ने लिखा कि काशी से लखनऊ आकर जब वह 'माधुरी' कार्यालय 'माधुरी' के कुछ पुराने अंक खरीदने गये थे, तब रूपनारायण पाण्डेय ने उन्हे बताया था कि उन पर भुवनेश्वर का लेख छपने के लिए आया है। "मैंने सुन लिया। भुवनेश्वर का स्वरूप-निर्णय इसलिये नही किया कि इससे उनके हित मे अहित होने की संभावना थी।"

'कला की रूपरेखा' भेजते समय उन्होने पाण्डेयजी को सावधान किया कि निराला पर लिखने की योग्यता भुवनेश्वर में नही है। "मैंने पाण्डेयजी को विस्तार के साथ लिख दिया कि मुझे विश्वास नही, श्री भुवनेश्वर मेरे सम्बन्ध मे सही-सही लिखेंगे (अगर वह व्यक्तिगत है, आलोचना नही) और भुवनेश्वरप्रसाद की मेरी तब तक कोई बातचीत नही हो सकती, जब तक वे अट्ठारह साल की उम्र मे एम० ए० पास करके आई० सी० एस० की परीक्षा मे चुने जाने की पूरी योग्यता रखते हुए भी उसे छोड़कर,

हिन्दी की सेवा के विचार से आये हुए नहीं। मैंने यह भी लिख दिया कि मैं आपकी स्वाधीन वृत्ति पर दवाव नहीं छोड़ता, आप चाहें तो छाप सकते हैं; परन्तु इसका भविष्य आप ही के हाथो (मेरा उत्तर 'माधुरी' मे छपने पर) श्री भुवनेश्वर प्रसाद के लिए अत्यन्त अहितकर प्रमाणित होगा, वे साहित्य में दागी होकर शायद ही फिर उभर सकें। पर पाण्डेयजी ने सम्पादकीय जिम्मेदारी की ओर ही देखा।"

निराला चाहते थे कि लेख न छपे, फिर भी उनके मित्र पाण्डेयजी ने उसे छापा। निराला को दागी करार देकर विरोधियों ने वडी कोशिश की थी कि उन्हें साहित्य में न उभरने दें। वही दाँव निराला भुवनेश्वर पर लगा रहे थे।

भुवनेश्वर के लेख मे सप्रमाण या आलोचनात्मक कुछ नही है, यह बताने के बाद निराला ने लिखा :

"मैं जानना चाहता हूँ, मेरी बातचीत जिस ढंग से शुरू की गई है, क्या उस ढंग से मेरी भुवनेश्वर जैसे मनुष्य से बातचीत हो सकती है ? ऐसी बातचीत के लिए कोई पूर्व परिचय, भूमिका आदि बिल्कुल जरूरी नहीं ?

"सच यह है कि वह बातचीत सब गलत है। बातचीत हुई, पर नासमझी के कारण उसका रुख (Direction) पूरा-पूरा वदल दिया गया है, जैसे उनके वर्न्स का नाम लेने पर मैंने कहा—'कौन, वह लोहा-लक्कड़वाला ?' (मेरे मजाक में कलकत्ते की लोहेवाली वर्न एण्ड कम्पनी की ओर इशारा था) इस पर उन्होंने कैसी मुखाकृति बनाई यह सोचने पर ही मालूम होगा।"

वाचस्पति पाठक ने भुवनेश्वरप्रसाद का परिचय लिखते हुए उनके फरेबी स्वभाव की ओर संकेत किया, पंत के बारे मे उनकी राय उद्धृत की—"हिन्दी मे वहुत गर्म हो रहे पंतजी ने केवल टीन चमकाई है।" निराला की एक कविता का अर्थ पूछा तो भुवनेश्वर चुप रहे। अन्त में उन्होने संपादक की ज़िम्मेदारी के बारे मे लिखा—" 'निराला' जी के संबन्ध में इस लेखक ने जिस स्वर का उपयोग किया है, वह हिन्दी के भीतर से उनको वहुत ही अपमानित करनेवाला है। फिर भी योग्य सम्पादक ने कुछ भी ख्याल नही किया।"

वलभद्रप्रसाद मिश्र ने भुवनेश्वर के लेख के बारे में निराला से अपनी वातचीत का जिक्र किया : "निरालाजी की इस इच्छा के अनुसार मै भुवनेश्वरजी के संस्मरण अत्यन्त संक्षेप मे लिख रहा हूँ।" भुवनेश्वर ने उन्हें अपने बारे मे जो अनेक दिलचस्प बाते बताई थी, उनमे एक जवाहरलाल नेहरू से संबंधित थी। "नेहरूजी ने उनसे अपनी पुस्तक Glimpses of World History पर सम्मति माँगी थी और उनके यह उत्तर देने पर कि वह H. G. Wells की इसी विषय की पुस्तक का संक्षिप्त रूपान्तर है, नेहरू जी हतप्रभ हुए और दूसरे विषय पर वातचीत करने लगे।"

भुवनेश्वर ने निराला और उनके दोनों सहायको को एक साथ उत्तर दिया। निराला के लेख पर राय जाहिर की—"अगर निरालाजी का Vindication है तो कुरुचिपूर्ण, अगर Revenge तो बहुत सख्त।" निराला के अहंकार का जिक्र करने के वाद उन्होंने उनसे अपनी वातचीत के वारे में लिखा—"मैं फिर कहता हूँ कि इस

प्रसंग मे कमोवेश मैंने उनके शब्द ही दोहराये है और कलकत्ते की बर्न्म वाली बात उस वक्त मुतलक नहीं हुई थी।" अपने एम० ए० और आई० सी० एस० होने की कहानी के बारे में लिखा, "रहा एम० ए० और आई० सी० एस० का फरेब, मैं अपराधी प्लीड करता हूँ, कर चुका हूँ कई बार। परिस्थितियाँ बलवती मनुष्य से इससे भी जघन्य काम करवाती है, मुझसे करवा चुकी है। इन्हें एक संग्राम करते हुए एक कलाकार पर दाग लगाने के लिए प्रयोग करना हलकापन है। खैर! अगर इस बात से जन्म भर के लिए मैं Taboo किया जा सकता हूँ तो मेरी बला इसकी परवा करे।"

निराला अपने उद्देश्य मे सफल हुए। भुवनेश्वर हमला करने के बदले बचाव की लड़ाई लडने लगे। पहले लेख मे ओज की मात्रा जितनी थी, इस दूसरे लेख मे उतनी न रही। वाचस्पति पाठक और बलभद्रप्रसाद मिश्र की 'चार्जशीट' का उत्तर देते हुए भुवनेश्वर ने कुछ बातें स्वीकार की, कुछ अस्वीकार। पंत के बारे में जो कहा था, वह यह: "मैंने निरालाजी का परिमल श्रम से पढा और जहाँ तक भाषा का सवाल है, सिर्फ भाषा का, निराला के यहाँ पिघला हुआ सोना है, पंतजी ने टीन झलझला दी है।"

अन्त मे उन्होंने लिखा कि निराला ने पहले ही बता दिया था किस तरह का जवाब छपकर आ रहा है। "मैं इसके लिए तैयार था और अब अपनी ओर से इसे समाप्त ही करता हूँ। अगर मैं वाकई मर गया हूँ तो गालिब का एक शेर निरालाजी, मिश्रजी, पाठकजी और पसेपर्दा और सज्जन सुन ले—

गर नहीं है मेरे मरने से तसल्ली न सही।
इम्तहाँ और भी बाकी हो तो यह भी न सही॥"

भुवनेश्वर कलाकार थे। घिर जाने पर साफगोई से काम लेते थे। अपनी पूंजी बहुत कम थी। दूसरो से उधार लिये हुए माल पर अपनी विट से पालिश ही कर सकते थे। पर बहुत-से आई० सी० एस० अफसरो, एम० ए० पास होनहारो और प्रोफेसरो से वह ज्यादा काबिल थे। यही सबब है कि इस वर्ग के लोगो को इतने दिन तक वह चकमा देते रहे, भेद खुल जाने पर भी उनकी प्रतिभा की दाद देनेवाले उस में दस-पांच फिर भी बच रहे। निराला विचलित हुए, अपने साथ दो अन्य व्यक्तियों के लेख लेकर उत्तर देने आये, यह भुवनेश्वर की सफलता थी। अपना जवाब छप जाने के बाद भी निराला काफी दिन तक भुवनेश्वर की बातें बिसूरते रहे। एक दिन हीवेट रोड (लखनऊ) पर पैरागन रेस्तराँ मे चाय का इन्तजार करते हुए अचानक हँसे, फिर बोले—गधे के उसके बराबर है नही, लेख लिखने चले हैं। मैंने पूछा—कौन? बोले—वही भुवनेश्वर; और कौन?

निराला पर हमला करनेवालों मे भुवनेश्वर जैसे कलाकार कम थे, ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल के स्तर पर व्यक्तिगत या साहित्य पर निराधार आक्षेप करनेवाले ज्यादा थे। मार्च सन् '३७ के 'विशाल भारत' मे इलाहाबाद युनिवर्सिटी के तरुण ग्रेजुएट शिवदानसिंह चौहान का लेख छपा—'भारत मे प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता'। इसमे इन्होंने हिन्दी ही नही समस्त भारतीय भाषाओ के साहित्य पर यह राय जाहिर

की कि उसने कभी भी किसी तत्कालीन प्रचलित सामाजिक यथार्थवादी विचारधारा का दामन नहीं पकड़ा। उन्होंने भारत से बाहर विश्व की भाषाओं और उनके साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालते हुए बताया कि साहित्यकारों में दो श्रेणियाँ हो गई हैं; प्रगतिशीलों में 'हेनरी बारबूज', 'एन्ड्री जीड', 'मेलराक्स' वगैरह है। भारतीय लेखकों में केवल एक लेखक इनकी श्रेणी में आता है—मुल्कराज आनन्द। हिन्दी लेखक सुदर्शन और कौशिक का दृष्टिकोण प्रेमचन्द से भी ज्यादा सुधारवादी है। 'भारत-भारती' लिखने के बाद, मैथिलीशरण गुप्त की विचारधारा पतनोन्मुख होकर रामायण तथा महाभारत के कुछ प्राचीन युगों तक सीमित रह गई। हिन्दी-साहित्यकार हिटलर पर गर्व करते हैं, साम्यवादी रूस से घृणा करते हैं। इन्हें फटकारते हुए चौहान ने लिखा—"वे अभी इतने नादान हैं कि प्रगतिशील और प्रगतिविरोधी शक्तियों में भेद नहीं कर सकते, हालाँकि विश्व-साहित्य के कर्णधार बनने का ताव वे मूँछों पर रोज़ दिया करते हैं। एक छोटा-सा ज़रा रोचक उपन्यास लिख लिया, तो उसे वे टालसटाय की कब्र पर और रोमाँरोलाँ के सर पर पटक देते हैं, और कहते हैं, लो, देख लो, तुमसे अच्छा है।"

जवाहरलाल नेहरू जिस ऊँचाई से हिन्दी साहित्य को देखते थे, शिवदानसिंह चौहान उससे कुछ और ऊँचे उठकर हिन्दी के पिद्दी लेखकों पर दृष्टिपात कर रहे थे। रहस्यवाद के बारे में विशेष रूप से उन्होंने लिखा कि साहित्य में इसका जन्म पूँजीवादी समाज की गिरती पतितावस्था का द्योतक है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद यह धारा प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, तथा अनेक छोटे-मोटे कवियों के मुख से निःसृत हो उठी। और आज इसका कोई ठिकाना नहीं।

इसके बाद चौहान ने रहस्यवादियों पर एक अनमोल वाक्य लिखा: "इनमें से कुछ स्वभावतः प्रगतिशील भी हैं; लेकिन उनकी कविताएँ प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रियावादी होती है।"

निष्कर्ष यह: "इस छायावाद की धारा ने हिन्दी के साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया, उतना शायद ही हिन्दू-महासभा या मुस्लिम लीग ने भारत को पहुँचाया हो।"

ब्रिटिश उपनिवेश भारत के साहित्यकारों से साम्यवादी यथार्थवाद की राह पर चलने का आग्रह करते हुए चौहान ने लिखा कि यह एक युद्धात्मक, असहनशील क्रान्तिकारी धारा है।

आरंभ में उन्होंने लेनिन के कुछ वाक्य उद्धृत किये थे जिनका सारांश यह है कि मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण विकास में जो संस्कृति अर्जित की है, उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना सर्वहारा संस्कृति की समस्या हल नहीं की जा सकती; पूँजीवादी समाज में मनुष्य ने जो ज्ञान संचित किया है, उसका तर्कसंगत विकास ही सर्वहारा संस्कृति है।

चौहान भारतीय साहित्य के समस्त विकास को अस्वीकार करके नये साम्यवादी यथार्थवाद की स्थापना का स्वप्न देख रहे थे और समझ रहे थे कि साहित्य में लेनिनवादी विचारधारा को लागू करने का यही तरीका है।

एक दिन सवेरे आकर किसी भूमिका के बिना निराला ने कहा—इसे ठीक

करना है। मैंने पूछा—किसे ? उन्होने कहा—वही, तुम्हारा मित्र मुखव्यादानसिंह। इस पर भी मैं कुछ न समझकर उनका मुँह देखता रहा तो वह बोले—वही जिसने 'विशाल भारत' मे प्रगतिशील साहित्य पर लेख लिखा है।

निराला ने हिसाब लगाया कि भुवनेश्वर, शिवदानसिंह चौहान वगैरह का प्रगतिशील दल उनके पुराने हितैषी बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ मिलकर उन पर हमला कर रहा है। इसी वर्ष 'विश्वभारती क्वार्टरली' में 'मॉडर्न (पोस्टवार) हिन्दी पोएट्री' पर लेख छपा। लेखक ऐस० ऐच० वात्स्यायन। इस लेख मे वात्स्यायन ने सौन्दर्यवादियो के आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व पर तीव्र आक्रमण किया। इस तरह के लोग नार्किसिस्ट होते हैं, अपनी ही छवि पर मुग्ध रहते हैं। पत की 'वीणा' मे इसके अनेक प्रमाण है। सौन्दर्यवादियो की मनोदशा के बारे मे जो बाते कही गई है, वे सब सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला पर भी लागू होती हैं। सौन्दर्यवादी में जो खामियाँ होती है, वे निराला मे और भी उभरकर दिखाई देती हैं। अहकार की अतिशयता मे उनकी कलात्मक क्षमता पथ-भ्रष्ट हो गई है। जानबूझ कर मौलिक बनने के प्रयत्न मे उन्होंने कविता की बलि दे दी है। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ अक्सर अच्छी होती थी लेकिन बाद को उन्हे ज़िद हो गई कि मुख्य काव्य-परम्परा जड हो गई है। उन्होंने रूढियाँ तोडी, यह श्रेय देने के बाद और कुछ कहना आवश्यक नही। "निल निसी बोनम—ऐंड ऐज़ ए लिटररी फोर्स, ऐट ऐनी रेट, निराला इज आलरेडी डेड।"

लेख अंग्रेजी मे छपा था। इसका मतलब था, अखिल भारतीय स्तर पर निराला को बदनाम किया जा रहा है। भूसामण्डी (लखनऊ) वाले घर मे लेख पढ़ने के बाद निराला ने कई बार दोहराया—निराला इज़ आलरेडी डेड।

ठूँठ है यह आज। गई इसकी कला, गया है सकल साज। जला है जीवन यह आतप मे दीर्घ काल, सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आलवाल। कुछ न हुआ, न हो। मेरे नभ के बादल यदि न कटे। बहुरस साहित्य विपुल यदि न पढा। मैं जीर्ण साज बहुछिद्र आज। मैं हूँ केवल पदतल आसन। ब्राह्मण समाज मे ज्यो अछूत।

निराला ने कविता में अपने विरोधियो को उत्तर दिया, उन्हे दिखा दिया, उनके आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व से अब भी किस स्तर की कविता फूट निकलती है। उन्हे किसी ओर, किसी विचारधारा, किसी स्कूल का ऐसा आलोचक दिखाई न देता था, जो उनके विरुद्ध न हो। पर निराला जहाँ आत्मकेन्द्रित थे, वहाँ पैनी दृष्टि से वह बाहर की दुनिया भी देख रहे थे। इगलैण्ड के सम्राट् एडवर्ड अष्टम ने प्रेम के लिए सिंहासन त्याग दिया। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' से जो ओज बचा था, उसे सम्राट् एडवर्ड अष्टम पर कविता मे लगा दिया। छोटी-बड़ी लहरो-सी झूमती हुई पक्तियाँ, हिन्दी में नये ढँग की 'ओड', भाव और भाषा मे अपूर्व ढँग से उदात्त। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने पढकर 'सरस्वती' मे लिखा, "सार्थक तथा सत्य सफल कल्पनाओं, सम्राट् के महात्याग मे अपने व्यक्तित्व की प्रतिफलित उदात्त अभिव्यक्ति तथा काव्य-कला के विभिन्न अवयवो का एकत्र सामजस्य देखकर चकित हो गया। बहुत कम इतनी प्रौढ़ सुगठित कविता हिन्दी मे देखने मे आती है।"

ऐसी विवेकपूर्ण प्रशंसा निराला को कम ही सुनने को मिलती थी। पर इस प्रशंसा के साथ साहित्यरत्न शिवनारायण भारद्वाज 'नरेन्द्र' नाम के सज्जन की शंकाएं भी प्रकाशित हुई : इस कविता मे कौन-सा छन्द है? इसमे क्या सर्वसाधारण का ज्ञान-वर्धन होगा? इसको समझने के लिए कोष की आवश्यकता है। (यहां शंका की जगह उन्होने अपना विश्वास प्रकट किया था।) काव्य-दृष्टि ने प्रसाद तथा माधुर्य का इसमें कहाँ तक स्थान है?

कान्यकुब्ज कालिज लखनऊ मे विज्ञान के अध्यापक मदनगोपाल मिश्र बड़े हिन्दी-प्रेमी थे। उन्होने कालेज से हिन्दी पत्रिका 'ज्योति' का प्रकाशन आरम्भ किया। उसमे निराला का 'वर दे वीणावादिनि वर दे'-गीत छपा।

लखनऊ मे प्रदर्शनी हो रही थी। निराला इलाहाबाद में थे, लखनऊ आने का विचार कर रहे थे। पूछा—"नन्ददुलारेजी इस वक्त प्रदर्शनी में, गीता प्रेम की दूकान मे हैं, मिलें या नहीं—प्रदर्शनी कैसी है?"[१]

निराला लखनऊ आये। प्रदर्शनी में गीता प्रेस की दूकान थी, इसी मे खद्दर के स्वच्छ वस्त्र पहने नन्ददुलारे वाजपेयी थे। निराला इधर-उधर की बातें कर रहे थे कि एक सज्जन कुर्ता-धोती पहने गांधी टोपी लगाये दूकान मे आये। वहां फालतू कुर्सी न थी। वह नन्ददुलारे वाजपेयी के साथ उन्ही की कुर्सी पर बैठ रहे थे कि मैंने अपनी कुर्सी बढ़ा दी। निराला ने परिचय कराया—ये प्रसादजी है।

थोड़ी देर मे प्रसादजी ने अपनी टोपी उतारकर रख दी। उस समय उनके चेहरे मे माथा ही माथा दिखाई दिया, उनका कवि-व्यक्तित्व जैसे सिमटकर उनके प्रशस्त ललाट में दीप्त हो उठा हो। दूसरो को अपनी बात सुनाने की उन्हे जल्दी न थी, वह दूसरो की सुन रहे थे, बीच मे जब-तब एकाध बात अपनी कह देते थे। मैं निराला की आँखें देख रहा था। उनमे वही आर्द्र स्नेह का भाव था जो मैंने राधामोहन गोकुलजी के आने पर देखा था। बड़े भाई के आने पर जैसे नटखट बालक अपनी सारी शरारत भूल गया हो। वही ज्यादा शब्दों का प्रयोग किये बिना एक ही भाव-सरिता मे डूबे हुए दो मन।

कान्यकुब्ज कालेज मे प्रसाद का कविता-पाठ हुआ। लखनऊ विश्वविद्यालय के द्वार बन्द रहे—निराला, प्रसाद दोनो के लिए। बालकृष्ण पाण्डेय ने आयोजन किया। प्रसाद ने अपनी धीमी, शान्त आवाज मे 'कामायनी' के अंश पढ़कर सुनाये। स्वर मे बड़ा मार्दव था, आवाज के उतार-चढ़ाव मे श्रोताओं को प्रभावित करने का जरा भी प्रयास न था। निराला प्रसन्न थे, स्फुरद् बालकदम्ब पुष्पै.-जैसे। बार-बार पूछते थे—कैसा लगा कविता-पाठ? मैंने कहा—मन पर बड़ा कोमल, दुलराता हुआ प्रभाव पड़ता हैं। वह प्रसन्न हुए। कुछ दूर चलने पर फिर पूछा—बहुत अच्छा पढते है न प्रसादजी? मैंने कहा—बहुत अच्छा; स्वर में बड़ी सुकुमारता है। कुछ दूर चलने पर उन्होने फिर पूछा—कैसा लगा 'कामायनी' का पाठ? मैंने कहा—जैसे कोई प्रशान्त गम्भीर नदी एक ही गति से बहती जा रही हो।

निराला के मुख पर ऐसा ईर्ष्याहीन, निष्कलुष आनन्द मैंने कम ही देखा था।

वह रास्ते-भर प्रसाद की ही बातें करते आये जैसे कुछ समय पहले लखनऊ विश्वविद्यालय से घर तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बातें करते आये थे।

प्रसाद अपने मित्र रूपनारायण पाण्डेय से मिलने 'माधुरी' आफिस गये। कई लोग थे। यह पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे। भाषा-शास्त्र, तन्त्रग्रन्थों मे शब्द-विचार, भारतीय वैयाकरणो की चिन्तन-पद्धति समझाते जाते थे। पाण्डेयजी के निकट पहुँचने पर उनका प्रतिभाशाली विद्वान् वाला रूप सहसा अन्तर्धान हो गया और केवल स्नेहशील मित्र वाला रूप रह गया।

लखनऊ की प्रदर्शनी मे कवि-सम्मेलन हुआ। झालावाड़-नरेश को सभापति बनाया गया था। उन्होने आने मे असमर्थता प्रकट की; सम्मेलन की सफलता के लिए सौ रुपये की रकम भेज दी थी। ओरछा-नरेश से सभापतित्व करने के लिए कहा गया। वह अभी दो साल पहले लखनऊ मे एक कवि-सम्मेलन का सभापतित्व कर चुके थे, इसलिए मना कर दिया। महाराज सैलाना सभापति के आसन पर बिठाये गये। उनके दोनों पैर बेकाम थे; कुर्सी पर बिठाकर लाये गये थे। लखनऊ मे हिन्दुस्तानी ऐकेडमी का अधिवेशन था। उसी मे भाग लेने प्रसाद आये थे, वह कवि-सम्मेलन में न आये। मैथिलीशरण गुप्त भी ऐकेडमी के सिलसिले मे आये थे, कवि-सम्मेलन मे शामिल न हुए।

निराला ने पहले दिन कविता-पाठ न किया। दूसरे दिन एक कविता पढ़ी, एक गीत गाया। कुछ समय बाद जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने मच पर आकर मुक्तछन्द की नकल प्रस्तुत की। निराला प्रदर्शनी देखने के लालच से आये थे। नन्ददुलारे वाजपेयी ने बुलाया भी था। निराला ने कवि-सम्मेलन वालों से एक सौ एक रुपये पेशगी माँगे थे। वे लोग तैयार न हुए। जब निराला आ गये तब दस मिनट कविता पढ़ने के लिए उन्हे पच्चीस रुपये दिये।

मिश्र-बन्धुओ ने कुछ राजाओ, ताल्लुकदारो और दुलारेलाल आदि गिने-चुने साहित्यकारो को प्रीतिभोज मे आमन्त्रित किया था। दुलारेलाल कवि-सम्मेलन का संचालन कर रहे थे। उनके चले जाने पर विद्यार्थियो ने शोर मचाया। श्रीनाथसिंह ने सचालन का भार सँभाला। छात्रों ने कहा—हट जाओ, नहीं सुनेंगे। श्रीनाथसिंह माइक थामे काफी देर तक डटे रहे। अन्त मे अपने हितैषियों के कहने से यथास्थान बैठ गये।

एक तम्बू मे सीधे-सादे अयोध्यासिंह उपाध्याय बैठे थे। सिर पर साफा, दाढ़ी मे काफी सफेद बाल, सक्षिप्त-सी काया, निराला को भावशून्य आँखो से देखते रहे। निराला ने चुटकला सुनाया—एक नशेबाज गोमती के इस पार चिलम लिये जोर से कश खीचने मे लगा था। रात-भर ज़ोर लगाता रहा लेकिन धुआँ न निकला। सवेरे किसी ने पूछा—यह क्या कर रहे हो? उसने कहा—देखो, चिलम पर कोयला दहक रहा है लेकिन अभी तक धुआँ नहीं निकला। आनेवाले ने कहा—अरे भाई, तुम्हारी चिलम से आग बहुत दूर है; वह गोमती के उस पार दिया जल रहा है।

अन्त मे उन्होने जोड़ा—उपाध्यायजी की आँखें उसी नशेबाज़ की-सी है।

उपाध्यायजी हँसे नहीं। वैसी ही भावशून्य आँखों से निराला को देखते रहे। मैंने कहा—आपको यह सब उनके सामने न कहना चाहिये था। उन्होंने हँसते हुए कहा—वह मेरी बात का बुरा नहीं मानते।

कवि-सम्मेलन में भाग लेनेवाले गण्य-मान्य सज्जनों के चित्र 'सुधा' में छपे। सैलाना-नरेश सर दिलीपसिंह के० सी०आई०ई०, शिवगढ़-नरेश, ओरछा-नरेश, औयल-नरेश, बिजावर-नरेश, काकरौली-नरेश आदि। शुकदेवबिहारी मिश्र, श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि के चित्र। डबल ब्रेस्ट कोट पर टाई बाँधे पूरे पृष्ठ पर दुलारेलाल भार्गव का चित्र; कविता-पाठ करते हुए कुमारी सावित्री श्रीवास्तव का चित्र; स्त्री-विभाग की मन्त्रिणी की हैसियत से उनका दूसरा चित्र। सुन्दर बाग में कान्यकुब्ज कालेज के अध्यापक छंगालाल मालवीय के यहाँ दुलारेलाल भार्गव और सावित्री श्रीवास्तव जब-तब मिलते थे और मालवीयजी के मित्रों का कहना था कि शीघ्र ही दोनों का पाणि-ग्रहण संस्कार विधिवत् सम्पन्न होनेवाला है।

मंच पर कविता पढ़ते हुए निराला का भी एक धुँधला चित्र 'सुधा' में छपा।

वह फिर इलाहाबाद चले गये। 'सरस्वती'-संपादक से अब अच्छी मैत्री हो गई थी। उनकी अनेक रचनाएँ उस पत्रिका में छपीं।

'सखी', 'निरुपमा' और 'गीतिका'—'सरस्वती' में निराला की इन तीन पुस्तकों की समीक्षा ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने की। निर्मलजी का स्वर अब तक काफी बदल गया था। आरम्भ में ही लिखा—"पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी के श्रेष्ठ कवि और सुलेखक हैं।" 'निरुपमा' में पाठक "समाजवाद की चोटी के सुधारों का दिग्दर्शन करेंगे।" 'गीतिका' में कल्पना की उड़ान उतनी ऊँची नहीं है जितनी अन्य कविताओं में, इससे गीत बहुत आकर्षक और बोधगम्य बन गये हैं।

प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के नेताओं के न चाहने पर भी आलोचक समाजवादी विचारधारा से निराला का सम्बन्ध जोड़ने लगे थे। निराला 'देवी', 'चतुरी चमार' और 'भिक्षुक' वाली कला को और निखार-सँवार रहे थे। इलाहाबाद में पत्थर तोड़नेवाली मजदूर स्त्री को गर्मी में मेहनत करते देखकर उन्होंने कविता लिखी :

> वह तोड़ती पत्थर।
> देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।

उनकी कविताओं में धूप और लू का वर्णन अब अक्सर होता था। 'गई निशा वह हँसी दिशाएँ' की दुनिया कहीं पीछे छूट गई थी।

सन् '३७ की गर्मियों में उन्होंने 'वनवेला' लिखी। संध्या का समय, आकाश में प्रलय का दृश्य, गोमती के तट पर टहलता हुआ, धूप में चलते-चलते थका हुआ कवि सोचता है—

> हो गया व्यर्थ जीवन,
> मैं रण में गया हार।

'सुधा' में राजपुत्रों के बड़े-बड़े चित्र प्रकाशित हुए थे। कवि-सम्मेलन में राजाओं की पूछ है। जहाँ निराला मौजूद थे, वहाँ महाराजाओं को सभापति बनाया

गया था। निराला ने लिखा—

मैं भी होता यदि राजपुत्र,—

तब ये विद्वान्

सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
जीवन-चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा, छापते विशाल चित्र।

राजा का बेटा न सही, किसी लखपति का पुत्र ही होता तो भी विलायत में शिक्षा पाता, पिता धन के स्वामी होने के अलावा साम्यवाद का प्रचार करते, जनता उन्हें राष्ट्रपति चुनती, कवि उन पर राष्ट्रीय गीत रचते, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन उनका सम्मान करता। दरिद्र निराला तब लार्ड घराने के युवकों के साथ दावतें खाने के बाद भारत लौटते, कैमरा लेकर लोग फोटो खींचते, वह साम्यवाद की उदारता का बखान करते।

निराला ने पिछले छह साल में हिन्दी साहित्य के प्रति कांग्रेसी नेताओं का जो रवैया देखा था, लखनऊ कांग्रेस से लेकर इलाहाबाद के प्रोग्रेसिव राइटर्स तक समृद्ध घरानों के नवाबजादों के साम्यवाद का जो रूप देखा था, उससे मन बहुत कड़वा हो गया।

प्रेमा होटल में निराला, व्रजमोहन तिवारी और दुलारेलाल भार्गव, जवाहरलाल नेहरू के एक लेख पर बहस कर रहे थे। यह लेख 'हरिजन सेवक' से ८ जून '३७ के 'भारत' में उद्धृत किया गया था। निराला का विचार था कि नेहरू साहित्यकारों के सामने बहुत हेकड़ी से बोलते हैं। इसलिए वह उन पर बहुत नाराज थे। तिवारीजी ने कहा—इन्हें जवाहरलाल-मेनिआ हो गया है; जब देखो तब उन पर गर्म हो जाया करते हैं। दुलारेलाल भार्गव ने हामी भरी। मैंने कहा—जवाहरलाल राजनीति पर हिन्दी में क्यों नहीं लिखते? निराला ने कहा—मैं लखपति का बेटा होता तो लोग मेरा भी बहुत आदर-सम्मान करते। मैंने कहा—कम-से-कम मैं तो न करता।

वह 'वनबेला' कविता लिख रहे थे। मन की सारी कड़वाहट कलात्मक ढंग से उन्होंने 'वनबेला' में व्यक्त कर दी। पर वेदान्त की सीख यह थी कि ईर्ष्या और अहंकार का भाव क्षुद्र है; मनुष्य को चुपचाप काम करते जाना चाहिए। तपे हुए नभ के रक्ताभ फलक के नीचे मस्तक पर अतल की अतुल साँस लेकर वनबेला उनके सामने आई। मादक गंध के प्रभाव से वह बेला के और पास आये। वह लाज से नम्र हो उठे, वैसे ही जैसे हीवेट रोड की उस पगली को देखकर उनका अहंकार तिरोहित हो गया था। वनबेला में कितनी सुगंध है, निराला के जीवन में, काव्य में कितना अहंकार!

केवल आपा खोया, खेला
इस जीवन में,
कह सिहरी तन में वन-बेला।

कवि ने कहा—

यही सत्य, सुन्दर!

नाचती वृन्त पर तुम, ऊपर
होता जब उपल-प्रहार प्रखर !

निराला उपल-प्रहार होने पर विचलित क्यों होते हैं ? उन्हे भी पत्थर फेकनेवालों को सहृदयता की सुगंध ही देनी चाहिए ।

अगस्त ('३७) की 'सुधा' मे 'वनवेला' छपी, उसके साथ निराला का यह नोट—"कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ के छात्रो को पुरस्कृत, जिन्होने – दोने मे वेले की कलियाँ मुझे दी थी ।"

निराला को फूल—विशेषकर सुगध पुष्प—वहुत प्रिय थे। देश के युवक उन्हे दोने में फूल दें, यह उनकी दृष्टि मे उनका वहुत बडा सम्मान था । वह डलमऊ आये तो उनके प्राचीन मित्र कुल्ली और उनके छात्रो ने इसी तरह उनका सम्मान किया । निराला का मन उन अछूत बालकों को देखकर जितना आन्दोलित हुआ, उतना जीवन मे वहुत कम लोगों को देखकर हुआ था ।

एक गड़हे के किनारे ऊँची चौकोर जगह पर पेड़ों के नीचे टाट के टुकडो पर कुल्ली के शिष्य अछूत बालक बैठे थे । उनके कुछ अभिभावक दोनों में फूल लिये उन्हे भेंट करने आये पर निराला का शरीर उनके अपवित्र हाथ से छू न जाय, इसीलिए दूर बैठे रहे । निराला के मन मे भावों का तूफान उठा ।

"इनकी ओर कभी किसी ने नही देखा । ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत-मस्तक हो संसार से चले गए हैं । संसार की सभ्यता के इतिहास मे इनका स्थान नही । वे नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद थे; रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ है; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होने लिखे है, अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के हैं । फिर भी ये थे और हैं ।

"अधिक न सोच सका । मालूम दिया, जो कुछ पढा है, कुछ नही; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न । कुल्ली धन्य है । वह मनुष्य है, इतने जंबुकों मे वह सिंह है । वह अधिक पढा-लिखा नही; लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे वड़ा नही ।

"···इसी समय बिना स्तव के, बिना मन्त्र के, विना वाद्य, विना गीत के, विना बनाव, विना सिंगारवाले वे चमार, पासी, धोवी और कोरी दोनों मे फूल लिये हुए मेरे सामने आ-आ कर रखने लगे । मारे डर के हाथ पर नही दे रहे थे कि कही छू जाने पर मुझे नहाना होगा। इतने नत । इतना अधम बनाया है मेरे समाज ने इन्हे !

"कुल्ली ने उन्हें समझाया है, मैं उनका आदमी हूँ, उनकी भलाई चाहता हूँ, उन्हें उसी निगाह से देखता हूँ, जिससे दूसरे को । उन्हे इतना ही आनन्द विह्वल किये हुए है । विना वाणी की वह वाणी, विना शिक्षा की वह संस्कृति प्राण का पर्दा-पर्दा पार कर गई । लज्जा से मैं वही गड गया । वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब-कुछ देखती-समझती है । वहाँ चालाकी नही चलती । ओफ ! कितना मोह है ! मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ !—फिर क्रान्तिकारी !"

निराला बाहर और अपने भीतर एक साथ देख रहे थे। सामने बैठे हुए अछूत

वालकों ने अकस्मात् आत्म-साक्षात्कार के लिए उन्हें विवश कर दिया था। उस क्षण जीवन के तमाम अन्तर्विरोध एक साथ निराला की दृष्टि के सामने एक साथ कौंध गये। साहस से उन्होने उन्हे देखा। उनके हृदय की अगाध भावक्षमता आन्दोलित हुई, उनकी तीक्ष्ण मेधा ने अन्तर्विरोधों का भेद और वैषम्य पहचाना। निराला ने निश्चय किया, वह कुल्ली पर, उनके छात्रो पर, अपनी मनोदशा पर लिखेंगे, ऐसा कुछ जैसा प्रेमचन्द ने, या गोर्की ने लिखा था, या उनसे कुछ वढ़कर।

शोधकार्य के सिलसिले मे मुझे कलकत्ते जाना था। निराला ने दयाशंकर वाजपेयी के नाम परिचय-पत्र दिया, मछुआ वाजार की सड़कों और गलियों का नक्शा वना दिया जिसमे मकान ढूँढने मे दिक्कत न हो। कलकत्ते मे किन-किन साहित्यकारो से मिलना चाहिए, उन्होने समझा दिया। इस वात की खास तौर से ताकीद की कि मैं वनारसीदास चतुर्वेदी से मिलूँ। मैंने कहा—मैं ऐसे आदमी से मिलना नही चाहता। उन्होने कहा—ऐसे नही। उन्होने हिन्दी में काम किया है। तुम्हे सबसे मिलना चाहिये।

वह अमीनावाद होटल मे श्रीराम शर्मा और व्रजमोहन तिवारी के साथ चाय पी रहे थे। मैं मिलने गया तो वहुत प्रसन्न हुए जैसे खुद ही कलकत्ते की यात्रा से लौटे हो। कैसा लगा कलकत्ता? उन्होने प्रश्न किया। मैंने कहा—न आधुनिक, न प्राचीन. हरीसन रोड पर साँड़ घूमते है। वड़ी-वड़ी इमारतो के वीच छप्परो के नीचे दूकानें। हुगली निहायत गन्दी नदी। शहर मे खटमलो की भरमार। इम्पीरियल लायब्रेरी मे वैठकर काम करना मुश्किल। सिद्धान्त के कहने से शाहिद सुहरावर्दी से मिलने गया। चित्रकला और फ्रांसीसी कविता के अच्छे जानकर, विशाल भवन, ड्राइंग रूम मे सोफे और कुर्सियाँ। कुछ देर इन्तजार करना पड़ा। इतने मे खटमलों ने जाँघें लाल कर दीं। आवहवा स्वास्थ्य के लिए खराव; देखिये, दुवला हो गया हूँ।

निराला कुछ सोचते हुए चुप रहे।

मैने कहा—आपको न जाने कलकत्ता क्यो इतना अच्छा लगता है।

उन्होने उत्तर दिया—नीम के कीड़े को नीम ही अच्छी लगती है।

वंगाल की प्रकृति, नदियो, जलाशयो, वागो और फूलों की चर्चा हुई। व्रजमोहन तिवारी कश्मीर हो आये थे। वहाँ के सौन्दर्य का वर्णन करते रहे। निराला ने कश्मीर देखा न था पर वह वगाल से सुन्दर होगा, यह स्वीकार करने को तैयार न थे। तिवारीजी कश्मीर की सुन्दरियों का वर्णन करने लगे—रूप, लावण्य, यौवन, वोट-हाउसेज मे तफरीह। निराला कुछ देर सुनते रहे, फिर अचानक रूखे स्वर मे वोले—सुनो मियाँ, तुम शादीशुदा हो, चार वच्चो के वाप हो; दूसरो की औरतो और लड़कियो के वारे में इस तरह वाते न करनी चाहिए।

तिवारीजी को वुरा लगा। फिर वह चुप ही वैठे रहे।

वनारसीदास चतुर्वेदी का प्रसंग आया। मैंने कहा—विचित्र आदमी है। उनसे पूछा, निराला की कौन-सी कविता समझ मे नही आती, तो वोले, मै कविता नही समझता, जो दूसरों से सुना था लिख दिया। 'वर्तमान धर्म' के ऊटपटांगपन का ज़िक्र

किया; मैंने कहा, 'देवी' और 'चतुरी चमार' की भाषा बहुत सरल है; उन पर आपने कुछ क्यों नहीं लिखा ? उन्होंने कहा, मैंने उन्हें पढ़ा नहीं है। अन्त में उन्होंने चेतावनी दी—निराला का पक्षसमर्थन करोगे तो बदनाम हो जाओगे। मैंने कहा—आपके साथ नेकनामी हासिल करने से निराला का समर्थन करके बदनाम होना ज्यादा अच्छा है।

'छवि के नव बंधन बाँधो' पंत की एक कविता व्रजमोहन तिवारी को बहुत पसंद थी। लाटूश रोड पर अपने घर से उन्होंने उसकी प्रशंसा आरंभ की और वहीं से निराला ने उसका विरोध भी शुरू किया। गंगा पुस्तकमाला के सामने से होकर अमीनाबाद पार करके दोनों मित्र गोलागंज की सड़क पर आ गये पर बहस खत्म न हुई। तिवारीजी जितना ही उस गीत की तारीफ कर रहे थे, निराला उतना ही नाराज हो रहे थे। अंत में कामता पंडित के ढाबे के पास दोनों रुके। निराला ने कहा—छवि के नव बन्धन बाँधो, छवि के नव बन्धन बाँधो; कहाँ बाँधें ? तुम्हरी—डि मँ बाँधें ?

बहस खत्म हो गई। निराला ढाबे मे भोजन करने बैठ गये।

इलाहाबाद से आकर निराला कुछ दिन ११२, मकबूलगंज, लखनऊ में रहे। ऊपर की मंजिल में दो कमरे, रसोई, बरामदा, नल, जीना तंग और सीधा, जीने के ऊपर कमरे मे प्रवेश करने से पहले तंग कोठरी में पाखाना। मै पहले इन्ही कमरों मे रहता था। अब मैं युनिवर्सिटी में पढ़ाने लगा था, पत्नी और छोटे भाइयों के साथ एक बड़े मकान मे रहने लगा था। ११२, मकबूलगंज के मकान-मालिक रामप्रसाद उर्फ लल्लू मेरे परम मित्र थे। व्रजमोहन तिवारी से इन्होंने ही कहा था—सर, सर, सर, जरा नर तो हटा लीजिये। हाई स्कूल वह पास न कर पाये, हाई स्कूल तक पहुँचने मे उनको औरों से तिगुना समय लगा। जब निराला ११२ मकबूलगंज में रहने आये, तब तक लल्लू की मूँछें काफी हरिआ गई थी और वह ताव देकर उन्हे और रोबदार बनाने लगे थे। लल्लू खाने-पीने के शौकीन थे, इसलिए निराला से उनकी अच्छी पटरी बैठती थी।

निराला को पैसों की तंगी रहती ही थी। उन्होंने तुरत द्रव्य-प्राप्ति का नया उपाय सोचा। 'सरस्वती' मे 'क्रॉस वर्ड पजल' छपते थे। निराला ने सोचा, एक पहेली हल करके भेज दें; हजार-पाँच सौ की रकम एकमुश्त मिल जायगी। उन्होने पहेली हल की। हिन्दी की पहेली; उनसे ज्यादा अच्छी तरह उसे और कौन हल कर सकता था ? उन्होंने बड़े आत्मविश्वास से कहा—देखना, पुरस्कार अवश्य मिलेगा। दुर्भाग्य से उनकी यह आशा पूरी न हुई।

११२ मकबूलगंज वाले मकान में निराला को जीना चढने मे बड़ा कष्ट होता था। सायटिका के दर्द के मारे धीरे-धीरे चढ़ते थे। सबसे खतरनाक काम कमरे के दरवाजे से पाखाने तक पहुँचना था। जरा पैर चूके तो जीने की सीढ़ियों पर हड्डी-पसली टूट जाएँ। निराला ने कुछ दिन काटे। फिर अपने पुराने मुहल्ले नारियलवाली गली से कुछ आगे जाकर उन्होने चरस की मंडी मे मकान लिया। उसे कुछ दिन में छोड़कर उन्होने पास ही भूसामंडी, हाथीखाना में घर लिया। नीचे बैठक, आँगन, जीना, ऊपर

दो-तीन कमरे। निराला अधिकतर ऊपरवाले कमरों में रहते।

एक दिन मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव आये। निराला के मुख पर वही भाव था जो राधामोहन गोकुलजी, प्रसादजी के साथ उनके मन पर छा गया था। वह 'मुंशीजी' इस लहजे मे कहते थे मानो वडे भाई को संवोधन कर रहे हों। उनके साथ वह कान्यकुब्ज कालेज की तरफ निकल गये। जिन्दगी मे वीसों अखवारों के दफ्तरों के दरवाजे खटखटानेवाले 'चलती चक्की' के लेखक, मतवाला-मण्डल के स्तम्भ नवजादिकलाल मे अब भी जिन्दादिली काफी वाकी थी। रास्ते-भर वह चुटकुलो से निराला को हँसाते रहे।

जयशंकर प्रसाद वीमार थे। गर्मियो मे निराला उन्हें देखने गये थे। शरीर दुर्वल हो गया था; उपचार से कोई लाभ न हो रहा था। निराला ने कितनी वार उनकी पंक्तियाँ दुहराईं :

चढकर मेरे जीवन रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर
मैंने निज दुर्वल पद वल पर
उससे हारी होड लगाई।

प्रलय जीत रहा था, प्रसाद का भौतिक शरीर हार रहा था। साल-भर पहले वह प्रेमचन्द की अर्थी के साथ श्मशान गये थे। वर्षा वीत रही थी। लगभग वही शरद के दिन। बनारस के दुखी साहित्यकार प्रसाद के जर्जर शरीर को गंगातट पर ले गये।

निराला ने समाचार सुना और कुछ न कहा।

आलोचना के कोलाहल से अस्थिरचित्त न होनेवाले, धैर्य और साहस से जीवन का हर क्षण हिन्दी सेवा को उत्सर्ग करनेवाले, परम मनीषी, कवि, कथाकार, नाटककार, निराला के अन्यतम मित्र जयशंकर प्रसाद नही रहे। निराला के मन में जैसे शून्य समा गया, उनका भाव-स्रोत मानो जड हो गया।

सन् '३५ के अंग्रेजी कानून के मातहत चुनाव हुए। नरमदली कांग्रेसियो ने कहा —हम मन्त्रिमण्डल वनायेंगे और सरकार के भीतर से काला कानून तोड़ेंगे। गोविन्दवल्लभ पन्त संयुक्त प्रान्त के मुख्य मन्त्री वने। 'सरस्वती' मे उनका भाषण, उनके चित्र, उन पर श्रीनाथसिंह का लेख प्रकाशित हुए। 'सरस्वती' मे जार्ज दि सिक्स्थ का चित्र भी छपा, पूरे पृष्ठ पर। श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए०, एल० टी० इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स लिखित सम्राट् पंचम जार्ज पर पुस्तक इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुई। भूमिका लिखी संयुक्त प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव ने। 'सरस्वती' मे पुस्तक की समीक्षा करते हुए समालोचक ने सम्राट् जार्ज की कर्मनिष्ठा, दूरदर्शिता, साम्राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति करने मे सफलता आदि का उल्लेख किया।

श्रीनारायण चतुर्वेदी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल वनने पर शिक्षा प्रसार अफसर नियुक्त हुए।

सम्पूर्णानन्द मन्त्रिमण्डल वनाने का विरोध कर चुके थे। उनकी गिनती उग्रदल वाले समाजवादियों मे होती थी। वाद मे वह भी मन्त्रिमण्डल मे शामिल हो गये।

साधारण जन इन कांग्रेसी नेताओं को शक की निगाह से देखने लगे। सम्पूर्णानन्द हरदुआगंज गये थे। वहाँ उन्होंने एक किसान को यह कहते सुना—जब तें पन्तजी मिनिस्टर है गए हैं, तब तें द्वय-द्वय इंच रोज मोटे होत जात हैं।[1]

यह घटना सन् '३७-३८ के जाड़ों की है।

निराला ने कहा—चलो, पन्तजी से मिल आयें। मैंने विरोध किया : इन मन्त्रियों के यहाँ आपका जाना उचित नहीं। उन्होंने कहा—मिलने में क्या हर्ज है ? ज़रा देखें, कितने पानी में है।

असेम्बली भवन के निकट एक बड़े बँगले में गोविन्दवल्लभ पन्त का निवास था। उनके सेक्रेटरी ने निराला के आने की सूचना दी। पन्त ने उन्हें तुरत बुला लिया। एक सोफे पर मुख्यमन्त्री कुछ थके-से बैठे थे; कुछ अन्य सोफों और कुर्सियों पर दूसरे लोग बैठे थे। निराला के प्रवेश करते ही सबकी आँखें उनकी ओर घूम गयीं। कुशल-समाचार की संक्षिप्त वार्ता के बाद निराला ने कहा कि इस प्रदेश के राजनीतिज्ञों को अपनी भाषा के साहित्य से भी परिचित होना चाहिए। पन्त ने समयाभाव की शिकायत की। निराला ने कहा—आखिर अंग्रेज़ी पढ़ते हैं, हिन्दी के लिए ही समय नहीं है ? हिन्दी-साहित्य अब वहाँ है जहाँ वह विश्व के बड़े-से-बड़े साहित्य से मुकाबला कर सकता है।

पन्त के मुँह पर थकान का भाव और गहरा हो गया। उन्होंने ऊबकर कहा—अच्छा पढ़ूँगा।

निराला ने किंचित् उत्तेजित होकर कहा—आप लोग जिस तरह की हिन्दी बोलते है, उसे सुनकर शर्म से हमारा सर नीचे झुक जाता है।

पन्त ने निराला पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए आँखों ही आँखो पूछा—क्यों ?

निराला ने कहा—आप कहते हैं देश यानी मुल्क, भाषा यानी ज़बान, राजनीतिक यानी सियासी। एक शब्द कहिये। क्या लोग भाषा और देश समझते नहीं ?

उन दिनों हिन्दुस्तानी का आन्दोलन चल रहा था। कांग्रेसी नेताओं के भाषण में पर्यायवाची शब्दो की भरमार होती थी जिससे हिन्दीप्रेमी-उर्दूप्रेमी दोनों खुश रहें। निराला ने उसी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया था।

निराला उठ खड़े हुए। नमस्कार किया। गोविन्दवल्लभ पन्त बैठे रहे। हम दोनों बाहर आये। रास्ते में वह खामोश रहे। एक बार भी पन्त का नाम न लिया।

निराला ने सीधे सरल शब्दों में, देवी और चतुरी चमार की कला को और निखारते हुए, सज्जाद जहीर, भुवनेश्वर, शिवदानसिंह चौहान को चुनौती के रूप मे, कांग्रेसी देशोद्धारकों के सामने सच्ची देशसेवा का आदर्श रखने के लिए 'कुल्ली भाट' लिखा। कुल्ली ने मुसलमान महिला से विवाह किया, समाज का विरोध सहा, अछूत बालकों की पाठशाला खोली। कुल्ली में निराला ने अनेक चरित्रगत कमज़ोरियाँ दिखाई। उनके रोग का उल्लेख करके उन्होंने अपने मन को सांत्वना दी। 'तुलसीदास' में उन्होंने अपने कथानायक से एकात्मभाव स्थापित किया था, संस्कारों के किसी ऊर्ध्व आकाश में। 'कुल्ली भाट' लिखते समय उन्होने तुलसीदास का साधारणीकरण किया; भगवतीचरण

वर्मा और रामनरेश त्रिपाठी का हवाला देते हुए उनमे रोग की कल्पना की, निष्कर्ष निकाला कि "तुलसीदासजी पुरुष थे, महापुरुष नहीं।" कुल्ली भाट, निराला, तुलसीदास—तीनो को एकभूत करके उन्होने नये चरित्र का निर्माण किया।

यह नये ढँग की कृति थी, न उपन्यास, न कहानी, न रेखाचित्र। कथा मे जितनी जगह कुल्ली को मिली, उससे अधिक निराला को। हास-परिहास का वातावरण। निराला श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहाँ एकत्र साहित्य-प्रेमियो को अभिनय करके, भौंहे ऊँची करके आँखों में हँसते हुए बतलाते—कुल्ली ने कैसे उन्हे देखा, उन्होने कैसे उलटकर नजर मिलाई, कुल्ली ने पान खाने की तारीफ कैसे की, निराला की सास उन पर कैसे नाराज़ हुई। मित्र समझते थे कि निराला हास्यरस की अनुपम रचना प्रस्तुत कर रहे हैं। पर निराला मित्रो को जो नहीं बताते थे पर किताब मे जो लिख रहे थे—मनोहरादेवी का गीत, श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणम्, फेफड़ो पर कफ जमने से उनकी मृत्यु, गंगा के जल मे लाशो के ढेर, गढ़ाकोला मे चाचा, भाभी आदि का अन्त, महिषादल की नौकरी छोडना, कुल्ली के यहाँ अछूत बालक—यह सब भी उनके मन में था। इसके अलावा और भी बहुत-सा विष था जिसे वह पुस्तक मे न लिख रहे थे। कहीं मन में गहरे, भय की सिहरन फैल रही थी जिससे पुराने स्मृतिचित्र रंग-रूप बदलकर सामने आ रहे थे।

"साधु ने कहा—'होश मे आ।' और चिमटा जोर से ज़मीन मे गाड़ दिया। मुझे मालूम हुआ, वह चिमटा मेरे सिर में समा गया। गर्दन झुक गई।"

फैजाबाद मे प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन हुआ। निराला श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहाँ ठहरे थे। सभापति किसे बनाया जाय, इस चर्चा मे निराला ने रामचन्द्र शुक्ल का नाम सुझाया। शुक्लजी केवल साहित्य-शाखा के सभापति बनाये गये; पूर्ण सम्मेलन के सभापति बनाये गये पुरुषोत्तमदास टण्डन।

सम्पूर्णानन्द कलाप्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए बोले—कवियो को राजनीतिज्ञों का साथ देना है। निराला ने बीच मे टोका—हिन्दी के कवि राजनीतिज्ञों से आगे हैं।

टण्डनजी के आने पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने जनता को सम्बोधन करते हुए कहा—आपके यहाँ दो-दो महापुरुष पधारे हुए हैं; एक है पूज्य माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, दूसरे माननीय सम्पूर्णानन्दजी। निराला को बुरा लगा; वहाँ रामचन्द्र शुक्ल भी बैठे थे, महापुरुषों मे केवल राजनीतिज्ञों के नाम गिनाये जा रहे थे।

टण्डनजी ने हिन्दी साहित्यकारों को सलाह दी कि वह प्रान्त के दायरे मे न रहे। निराला ने टोका—आप साहित्य से क्या मतलब रखते हैं?

टण्डनजी ने साहित्य, राजनीति और धर्मशास्त्र का सम्बन्ध समझाते हुए कहा—जो चरित्रवान नहीं, मैं उसका साहित्य नहीं छूता। निराला कुछ कहने को उठे तो लोगों ने शोर मचाया—चुप रहिए, बैठ जाइए, निकल जाइए।

निराला ने निष्कर्ष निकाला—ये कांग्रेसी नेताओ के पिछलगुए आवाज़ लगा रहे हैं; साहित्य के मंच से निराला को खदेड़ने की हाँक लगा रहे है। ऐसी अंडबंड बाते सुनने का मैं आदी नहीं—यह कहकर वह चले आये। बाहर आने पर स्वयंसेवक

छोकरे उन पर हँसने लगे।

दूसरे दिन शुक्लजी के सभापतित्व में निराला जब बोलने खड़े हुए तब एक त्रिशूलधारी सज्जन ने कहा—पहले निरालाजी अपने कल के कार्यक्रम के लिए प्रायश्चित्त करें, तब बोलें। श्रीनारायण चतुर्वेदी ने बीच मे उठकर निराला का परिचय देते हुए परिस्थिति सँभाली। निराला ने समझाया, साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है। साहित्य मनुष्य मात्र का साहित्य है। केवल भाषा का देशगत आवरण उस पर रहता है।

निराला की यह व्याख्या कुछ लोग समझे, कुछ न समझे। उन्होंने फिर गीत सुनाया—टूटें सकल बन्ध।

शुक्ल और निराला दोनों एक-दूसरे के विरोधी थे, पर कांग्रेसी नेताओं की रीति-नीति मे न शुक्ल प्रसन्न थे, न निराला। इस समय दोनो एक-दूसरे को सहानुभूति से देखते हुए कांग्रेसी राजनीतिज्ञों के मुकाबले साहित्य का मोर्चा जमाये थे।

सम्पूर्णानन्द का भाषण याद करते हुए निराला ने कहा—हिन्दी मे अठारह साल पहले ऐसी रचनाएँ आ चुकी हैं :

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।

निराला के मेघमन्द्र स्वर पर श्रोता मुग्ध हो गये। जनता और कवि एक-दूसरे के निकट आये। निराला और कांग्रेसी नेताओ के बीच का फासला और बढा।

टण्डनजी साहित्य को प्रान्त के दायरे से निकालने की बात कह चुके थे। इलाहाबादी गुट के साथ वह तै करके आये थे कि संयुक्त प्रान्त का नाम बदलकर सूबा हिन्द रखा जाय। निराला ने सोचा, इसका नाम हिन्द होगा तो शेष हिन्दीभाषी प्रान्त कहाँ जायेंगे, उन्होंने प्रस्ताव को स्थगित रखने की राय दी। हाथ उठाने पर टण्डनजी और उनके साथी हार गये। इस पर श्रीनाथसिंह ने कहा—जो लोग रुपया देकर डेलीगेट होने की रसीद ले चुके हैं, वही वोट दे सकते हैं। यद्यपि पहले वाले प्रस्ताव वहाँ सभी उपस्थित जनों के वोट से पास हुए थे, पर सूबा हिन्द के मामले में श्रीनाथसिंह की शर्त टण्डनजी ने मान ली। निराला ने उठकर कहा—ऐसे मनुष्य के लिए आप क्या आज्ञा देते हैं जिसने रुपया दे दिया है, लेकिन डेलीगेट होने की रसीद जिसे नहीं मिली है? टण्डनजी कुछ न समझे। निराला के खड़े होते ही विघ्न की आशंका से वह कुछ उत्तेजित हो गये। पूछा—क्या कह रहे हैं आप? निराला ने फिर कहा—रुपया मैं दे चुका हूँ लेकिन डेलीगेट होने की रसीद मुझे नहीं मिली। टण्डनजी बात समझ गये लेकिन बात पर विश्वास न हुआ। उन्होंने पूछा—क्या आप सचमुच रुपया दे चुके हैं? श्रीनारायण चतुर्वेदी ने फिर स्थिति सँभालते हुए निराला से कहा—हाँ, हाँ महाराज, आपका रुपया जमा कर लिया गया है।

निराला को वोट देने का अधिकार मिला लेकिन नाम बदलना स्थगित रखने

का प्रस्ताव गिर गया। निराला ने हिसाव लगाया—नाम वदलने के पक्ष मे कुल वोट इलाहावाद के थे। उन्होने टण्डनजी से कहा—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का एक ही वोट गिना जाना चाहिये।

शाम को आचार्य नरेन्द्रदेव के मकान पर साहित्यकारों की दावत हुई। दुलारेलाल भार्गव ने निराला से कहा—आपने टण्डनजी से जो अन्तिम वात कही कि सम्मेलन का एक वोट होना चाहिए, वड़े पते की वात थी। निराला ने जवाव दिया—(टण्डनजी पास ही वैठे थे) वात मैंने वरावर पते की कही है, लेकिन अफसोस यह है कि हिन्दीवालो के एक अदृश्य दुम लगी हुई है।

भोजन में कटहल था। आचार्य नरेन्द्रदेव ने निराला से कहा—वगैर गोश्त के आपको खाने मे क्या मज़ा आयेगा ? निराला ने कहा—जी हाँ, जरा गोश्त खाने का आदी हूँ। नरेन्द्रदेव ने छेड़ा—वस, जरा गोश्त खाने के आदी है ? निराला ने कहा—यह वाक्यालंकार है; जरा वाक्य की खूवसूरती वढ़ाने के लिए है। अगर राजनीतिज्ञों ने हिन्दुओ मे मुर्गी खाने का प्रचार किया होता तो हिन्दू मुस्लिम युनिटी अव तक वहुत मजवूत हो चुकी होती।

पास ही डा० रामप्रसाद त्रिपाठी वैठे थे। आचार्य नरेन्द्रदेव ने पूछा—यह—यह—यह कौन है ? निराला को पूछने के ढँग मे राजनीतिज्ञ की अकड़ का भान हुआ। उन्होने जवाव दिया—यह—यह—यह वह है जो चाँद से सियाही मिटाना चाहते है। (त्रिपाठीजी की चाँद मे वहुत थोड़ी सियाही रह गई थी।)

रात को कवि-सम्मेलन हुआ। निराला न गये। सवेरे सुना कि समस्या-पूर्ति वाले कवि खूव जमे।

निराला के मन में सम्मेलन की गहरी प्रतिक्रिया हुई। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन मे इनसे कहा गया था—वैठ जाइये, निकल जाइये; यह वात मन में गड़कर रह गई। सम्मेलन राजनीतिज्ञो के हाथ की कठपुतली है; उसमें साहित्यकारो का अपमान होता है। निराला के विरुद्ध जवाहरलाल नेहरू से लेकर नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्द, पुरुषोत्तमदास टण्डन तक सव एक षड्यन्त्र में शामिल हैं।

'चकल्लस' के लिए जव उन्होंने फैजावाद सम्मेलन का विवरण लिखाया, तव भी उनका मन शान्त न हुआ था, वरन् उन वातो को याद करके वह फिर उत्तेजित हो उठे थे। उन्होंने कहा : सम्मेलन एक प्रहसन था। उसे प्रहसन वनाया राजनीतिक सभापतियों ने। जनता मे ज़्यादातर स्कूल मास्टर्स थे जो कांग्रेस सरकार के मातहत है। वे साहित्य-सम्मेलन मे आये थे या टण्डन-सम्पूर्णानन्द-नरेन्द्र सम्मेलन मे, उन्हे साहित्य से सरोकार था या राजनीतिक महापुरुषो को खुश करने से—आप खुद सोच लीजिए। टण्डनजी और सम्पूर्णानन्दजी दोनों ने महात्माजी से मिलने का उल्लेख किया। टण्डनजी ऐसे वोले जैसे सरस्वती राजनीति की दासी हो। साहित्यिको के सामने राजनीति के महत्त्व की घोषणा उस आसन का अपमान है। मैं दावे के साथ कहता हूँ, इस प्रान्त में राजनीति ने जो काम किया है, उससे अधिक काम साहित्य ने किया है। इस प्रान्त मे राजनीतिज्ञ जितने वड़े-वडे व्यक्ति है, साहित्यिक उनसे वड़े

हैं। यह है कि यहाँ के साहित्यिक आठ मर्तबा एटलान्टिक या सोलह मर्तबा पैसिफिक क्रास नहीं कर चुके, न एयरोप्लेन पर चढ़कर अभी पृथ्वी का आकाश पार किया है। उनमें शायद ही किसी ने यूरोप में पूर्ण शिक्षा पाई हो, लेकिन यथार्थ ज्ञान, अध्ययन, कार्य और तपस्या से जहाँ तक ताल्लुक है, यहाँ के साहित्यकार राजनीतिज्ञों से आगे हैं —विशेषत: इसलिए कि वह फौलोअर नहीं, ओरीजिनल हैं। राजनीति भले ही किसी दायरे में रहे क्योंकि उसे स्वार्थ साधना है। साहित्य के सामने मनुष्य मात्र के कल्याण का लक्ष्य है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में ऐसी-ऐसी क्रियाएँ हो चुकी हैं जिनकी तुलना मिल्टन, शेक्सपियर, भवभूति, श्रीहर्ष, वाल्ट ह्विटमैन, कीट्स और शेली जैसे प्रतिभाशालियों से की गई और की जा रही है। वहाँ जो लोग थे, वे साहित्य चाहते थे, या अपनी रोटी—बहुत साफ है। मेरे खिलाफ आवाजें उठाने लगे—चुप रहिये, बैठ जाइये; निकल जाइये। जहाँ साहित्य-पुरुष प्रतिष्ठित है, वहाँ निराला एक तरफ और दूसरी तरफ टण्डन, सम्पूर्णानन्द और नरेन्द्रदेव—दिल पर हाथ रखकर कहिये कि उस साहित्य-पुरुष के सामने निराला के लिए ऐसी ही आवाजें उठ सकती हैं? टण्डनजी राजनीति और धर्मशास्त्र से साहित्य का सम्बन्ध समझा रहे थे मानो सर हो राजनीति, हृदय धर्मशास्त्र और उपस्थ साहित्य। चरित्र शब्द का मोटा अर्थ लेकर भरी सभा में ऐसी बात कह गये जैसे वहाँ सब ढपोरशंख ही हों। कौन चरित्रवान है जिसके साथ दूसरों की तरह ईश्वर के यहाँ से पाखाना और पेशाबखाना लगा नहीं आया? अभी होली के दिन वेश्या शब्द की व्युत्पत्ति पर टण्डनजी के मकान पर ही उनसे काफी बहस-मुबाहसा हो चुका है। एक साल और पहले राय कृष्णदासजी मेरे स्वर का रेकार्ड रखने के विचार से रेकार्डवालों के यहाँ गए थे! वहाँ पन्द्रह साल की एक किशोरी को देखकर घबरा गए थे। लौटकर अपने मित्र बाबू मैथिलीशरण से वहाँ के जन्तुविशेष का वर्णन किया था। गुप्तजी ने मुझे देखकर कहा था—आपको इन्हें साथ ले जाना था। घबराहट की कोई बात न रहती। ऐसी स्वनामधन्य कर देनेवाली मेरी तारीफें बहुत हैं।

इस तरह निराला जब-तब देर तक बोलते रहते। आवेश में उनकी आँखें लाल हो जातीं और माथा गर्म हो जाता। वह टण्डनजी से खासतौर से नाराज थे कि ये हिन्दी के होकर नेताओं के साथ हैं। उनके लिए उन्होंने एक व्यंग्यपूर्ण वाक्य कहा था—टण्डनजी सोलह आने में अठन्नी से अधिक भले आदमी तो हैं ही। उनका आक्रोश गांधीजी पर भी था; वह इस वाक्य से प्रकट हुआ : जब बात मेरी होगी, तब तीन कौडी की होगी, भले उसमें तीन हीरे से ज्यादा कीमती शब्द हों; जब महात्माजी जैसों की होगी, तब वह अनमोल होगी, चाहे कौड़ी कीमत की न हो।

'सरस्वती' में फैजाबाद सम्मेलन का जो विवरण छपा, उसमें निराला के नाम का कहीं उल्लेख न था।

सन् '३८ के बसन्त में अमृतलाल नागर ने 'चकल्लस' साप्ताहिक निकाला। बलभद्र दीक्षित पढ़ीस के कविता-संग्रह का नाम 'चकल्लस' था। उनके प्रति आदर प्रकट करने के लिए पत्र का भी वही नाम रखा था। इसका सम्पादन-भार सँभाला नरोत्तम

नागर ने। वह 'संघर्ष' निकाल चुके थे और उसे आचार्य नरेन्द्रदेव के दल को सौंपकर मुक्त हो गए थे। 'संघर्ष' अपना पुराना साहित्यिक रूप बदलकर साप्ताहिक होकर निकलने लगा। नरोत्तम नागर ने निश्चय किया कि वह हास्यरस का साप्ताहिक निकालेंगे। अमृतलाल नागर के यहाँ बलभद्र दीक्षित पढीस, उनके पुत्र वुद्धिभद्र; निराला, नरोत्तम नागर, मैं एकत्र होते; पत्र के भावी अंकों की योजनाएँ बनाते। महिषादल में छछूंदर-सिद्धि वाले प्रयोग की कहानी निराला ने नरोत्तम को लिखाई और वह 'चकल्लस' के भावी अंक मे छपी। कांग्रेसी नेताओ से लेकर वनारसीदास चतुर्वेदी तक निराला के विरोधियों, हिन्दी भाषा और साहित्य की नुक्ताचीनी करनेवालो पर अनेक व्यंग्य रचनाएँ 'चकल्लस' मे प्रकाशित हुई।

साल-भर के अन्दर ही पत्र-संचालन मे अनुभवहीनता और एजेंटों के पास पैसा फँस जाने के कारण 'चकल्लस' का प्रकाशन वन्द करना पडा।

नरोत्तम नागर इलाहावाद चले गये और वहाँ उन्होने नये साहित्यिक पत्र की योजना बनाई। निराला के अलिखित उपन्यास 'उच्छृङ्खल' का नाम इस पत्र को दिया गया। निराला की कुछ हास्यरसपूर्ण रचनाएँ 'उच्छृङ्खल' मे निकलीं।

सन् '३८ में सुमित्रानन्दन पन्त और नरेन्द्र शर्मा ने कालाकांकर से 'रूपाभ' पत्र निकाला। सज्जाद ज़हीर और इलाहावाद के दूसरे मार्क्सवादी नेता पन्त को प्रगतिशील आन्दोलन के नजदीक खींच लाये थे। पन्त उन दिनो अपनी कविताओ मे सिद्ध कर रहे थे कि रूप ही भाव का मूल है। इसी दर्शन के अनुरूप उन्होने पत्र का नाम 'रूपाभ' रखा। 'रूपाभ'-सम्बन्धी विज्ञप्ति मे जवाहरलाल नेहरू, गोविन्दवल्लभ पन्त, जैनुल आब्दीन अहमद, कुँअर मुहम्मद अशरफ आदि अनेक राजनीतिज्ञों का नाम था जिन्हे हिन्दी साहित्य से कोई सरोकार न था। निराला को यह सब वहुत बुरा लगा। पन्त का प्रगतिशील आन्दोलन के साथ आना भी उन्हे पसन्द न था। उनका विचार था कि वेदान्त की भूमि से जनता की जैसी सेवा की जा सकती है, जैसा क्रान्तिकारी साहित्य रचा जा सकता है, वैसा अन्य किसी दर्शन की भूमि से नहीं। वेदान्त की भूमि छोड़ने का मतलव उनकी दृष्टि में यह था कि अव तक उन्होने या पन्त ने जो कुछ लिखा था, वह प्रगतिशील नही था।

उन्होंने प्रगतिशील कविता का मजाक उड़ाते हुए चार पंक्तियाँ सुनाईं जिन्हें 'खास रूपाभ के लिए प्रस्तुत' सिरनामा देकर अमृतलाल नागर ने 'चकल्लस' में छापा :

> तुम चुरौ दालि महरानी!
> हरदी परे ते जरदी आई,
> निमक परे मुसक्यानी।
> भात-भतार ते भेंट भई तव
> प्रेम सहित लिपट्यानी।

'रूपाभ' के पहले अंक मे पाँच कविताएँ पन्त की, पाँच मेरी प्रकाशित हुईं। निराला को मेरी कविताएँ अच्छी न लगी। 'कलियुग' कविता की नीरसता को लक्ष्य करके बोले—ठक, ठक, ठक; अच्छा तो लगता है? दूसरे अंक मे मेरी चार कविताएँ

और छपी। पढे-लिखे लोगों मे 'रूपाभ' लोकप्रिय हो रहा था। प्रगतिशीलों को उन्हीं की भूमि पर परास्त करने के विचार मे निराला ने 'रूपाभ' को दो गीत भेजे, अत्यन्त सरल भापा, धरती के पुत्रों से कवि के एकात्मभाव की सूचना—'सहज-सहज पग धर, आओ उतर' तथा 'और—और छवि रे यह।'

पन्त ने उदारतापूर्वक मुझसे निराला पर लेख लिखने को कहा। चौथे अंक में निराला पर मेरा लेख छपा। भुवनेश्वर ने आकर सूचना दी—पन्त को तुम्हारा लेख वहुत पसन्द आया। फिर अपनी शरारत की वात वतलाई। पन्त से कहा—ऐसा ही लेख आप पर लिखवा दूँ ?

पाँचवे अक मे भुवनेश्वर का एकांकी 'आमदखोर' छपा। मैं उसे तंग करता—क्योजी, एक वड़ी चिमनी स्टेज के ऊपर लम्वी छाया डाल रही है, इससे तुम्हारा कौन-सा काम्प्लेक्स सावित होता है ?

भुवनेश्वर अपना वाक्य दुहाराते—ए प्रोग्रेसिव इज ए न्यूरोटिक शौट थ्रू विद होप।

आठवे अंक में निराला का अधूरा उपन्यास 'चमेली' छपा। वह साधारण जनता के चित्रण के अलावा सरल भापा लिखने मे भी प्रगतिशीलों को परास्त करने पर तुले हुए थे। वह हिन्दुस्तानी के विरुद्ध थे, फिर भी उनका विचार था, जितनी सरल, साफ-सुथरी भापा वह लिख सकते हैं, उतनी दूसरा नही। इसे कभी-कभी वह गुलावी उर्दू कहते थे। 'चमेली' के अन्त मे उनका नोट छपा : " 'चमेली' नामक अप्रकाशित उपन्यास से, जिसकी एक विशेपता ठेठ हिन्दुस्तानी भापा है।"

वह गाँव पर उपन्यास लिखने वैठे थे, जमींदार और वेजमीन मजदूर की टक्कर उनकी कथा का मूल सूत्र थी। 'कफन' और 'पूस की रात' से काफी आगे और पन्त के अभिजात रूपाभवाद से एकदम विरोधी दिशा मे निराला की प्रगतिशीलता कुछ इस प्रकार विकसित हो रही थी :

ठाकुर लाठी लिये तैयार थे ही। महादेव के हाथ मे सिर्फ अँगी। लेकिन वह पट्ठा था और लडता था। ठाकुर की देह मे सिर्फ दाढी और मूँछों के वाल थे और हाथ मे एक तेलवाई लाठी। महादेव के जाते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठाकर ठाकुर को दे मारा। इसके वाद ठाकुर की वुरी हालत की।···गर्द झाड़कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होश में आये, होश आने पर जोश आया; वोले—हम वचाते थे, सोचते थे कि कौन हाथ छोड़े—कौन हाथ छोडे, लेकिन साले सूद ने अपमान कर ही तो दिया, अच्छा देख लिया जायगा, ठकुराइन ने दूध पिलाया है, तो—

छायावादी काव्यभूमि पर निराला और पन्त का अन्तर्विरोध प्रगतिशील साहित्य की भूमि पर भी वना रहा; उसने वाद-विवाद का रूप न लिया पर रचनाओं मे वह अन्तर्विरोध छिपा न था। ऐसा अन्तर्विरोध निराला-पन्त मे ही नही, अन्य प्रगतिशील लेखकों में भी था।

'रूपाभ' निराला और पन्त को, उनके साथी लेखकों-सहयोगियों को एक-दूसरे के

निकट लाया। छायावाद के अवसानकाल में साहित्य को उसने नयी दिशा की ओर प्रेरित किया और इस दिशा-निर्देश मे सहयोगी थे पन्त और निराला।

निराला ने वाचस्पति पाठक को लिखा : रुपया ४००) 'चमेली' पर लेकर भेजिये जल्द। रुपया मिलने पर काम मे जी लगेगा।[१]

रुपया न मिला। काम मे जी न लगा। वाचस्पति पाठक को निराला के नये गीत नापसन्द थे। 'भारती भण्डार' को निराला की नयी साहित्य-सर्जना से सहानुभूति न थी। 'चमेली' उपन्यास अधूरा ही रहा। निराला ने 'कुल्ली भाट' दुलारेलाल भार्गव को दिया। उसके लिए विशेष रूप से दाढ़ी बढ़ाकर अपना फोटो खिचाया।

चित्रकार कमलाशंकर सिंह ने 'कला' पत्रिका निकाली थी। निराला ने उसके लिए कुछ नोट लिखाये। वह कलकत्ते गये और वहाँ से अपने मित्र रामशंकर शुक्ल और उनकी भतीजी को लिवा लाये। तै किया कि रामकृष्ण का विवाह इस लड़की से करेंगे। वह श्वसुर बनने जा रहे थे और अत्यन्त व्यस्त थे। मै मसूरी मे था, सिद्धान्त को अपना थीसिस दिखा रहा था। निराला ने लखनऊ से पत्र लिखा :

प्रिय शर्माजी,

वहुत व्यस्त हूँ। कल वहू के भाई का जनेऊ है। १ जुलाई को रामकृष्ण की शादी। मैं कलकत्ता गया था, सात रोज मे वापस आया, कन्यापक्ष के साथ। आपकी माँ को ले आना चाहता था, लेकिन इन लोगों को सेटल करने-कराने से फुर्सत नहीं मिली, फिर आपकी माँ चली गईं, दो रोज उनके दर्शन हुए थे। आपका लेख देखा, 'माधुरी' मे। 'चकल्लस' मे मेरा इण्टरव्यू पूरा शायद ही आपने देखा होगा। आपको 'कला' का विशेषाक तो मिला होगा। वहुत साधारण निकला। मैंने तीन नोट डिक्टेट करा दिये थे। वहुत व्यस्त हूँ। जनेऊ के वाद कल ही रामकृष्ण के फलदान हैं। आप कब तक आयेंगे? और प्रसन्नता है। इति।

विवाह का निमन्त्रण भेजता हूँ।

११२, मकबूलगंज, — आपका
लखनऊ — निराला
८-६-३८

विवाह का एक निमन्त्रण 'चकल्लस' में छपा :

जानते हैं आप सब—
गार्हस्थिक-संन्यासी हूँ,
साहित्यिक हूँ, कवि हूँ।
हमेशा मैं घूमता रहा,
कल्पना के पुल पर।
और आज
आई है शुभ घडी।
मेरे प्रिय पुत्र का,
विवाह है जुलाई मे।

ज़िन्दगी भर आपको
मैंने औब्लाइज किया
सुन्दर निज कविता से।
और चाहता हूँ आज,
मुझको प्रसन्न करें;
मेरे यहाँ दावत खा
तथा शुभाशीष दें—
पुत्र और पतोहू को।
आशा है, आप सब
पधारेंगे अवश्य ही,
तथा चमकाएँगे चार चाँद
चरस की मंडी में।

निराला ने विवाह के लिए अपने मित्र गोपालसिंह का एक बँगला लिया। विवाह-समारोह में लखनऊ और बाहर के अनेक साहित्यकार शामिल हुए। नन्ददुलारे वाजपेयी, वाचस्पति पाठक, श्रीनारायण चतुर्वेदी, छबीलेलाल गोस्वामी, दुलारेलाल भार्गव, नरोत्तम नागर, अमृतलाल नागर, कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह आदि। कहीं से बरात न आनी थी, कोई टीमटाम न था। निराला वरपक्ष-कन्यापक्ष दोनों को सँभाले थे। समधी शुक्लजी उन्हीं के यहाँ ठहरे थे।

छबीलेलालजी सुप्रसिद्ध साहित्यकार किशोरीलाल गोस्वामी के पुत्र ब्रजभाषा-काव्य के परम प्रेमी थे। साहित्यकारों में ब्रजभाषा-खड़ीबोली को लेकर विवाद चल पड़ा। विवाद में श्रीनारायण चतुर्वेदी आगे आये। ब्रजभाषा-खड़ीबोली से हटकर विवाद इण्डियन प्रेस और गंगा पुस्तकमाला की सेवाओं से उलझ गया। फिर भारती भंडार की चर्चा हुई और वाचस्पति पाठक सामने आये। पाठकजी और दुलारेलाल भार्गव में कुछ तेज बातें हुईं। दुलारेलाल ने कहा—तुम प्रकाशन की बात क्या जानो; प्रकाशकों की दलाली करके पेट भरते हो। इस पर पाठकजी ने कोई चुभती हुई बात कही जो श्रोताओं ने स्पष्ट न सुनी लेकिन दुलारेलाल ने अच्छी तरह सुन ली। हरी घास पर बड़ी दरी बिछी थी। उसी पर यह वार्तालाप हो रहा था। काली शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने अचानक दुलारेलाल भार्गव उठ खड़े हुए। क्रोध से दाँत पीसते हुए उन्होंने अस्फुट स्वर में कहा—निकालो इस—को, किसने इसे यहाँ बुलाया है?

अब पाठकजी उठे। वह दरी के पास अपना जूता ढूँढ रहे थे कि नन्ददुलारे वाजपेयी ने पीछे से दुलारेलाल भार्गव की गर्दन मे एक चपत लगाई। दूसरी चपत में करस्पर्श भर हुआ, भार्गवजी आगे बढ़ गये थे। निराला बँगले में थे। शोर सुनकर बाहर आये। एक क्षण वह सीढ़ियों पर खड़े हुए। फिर भीड़ में आकर दोनों हाथों से लहरें-सी ठेलते हुए उन्होंने 'बैठिये आप लोग' के उदात्त स्वर से सबको यथास्थान बिठा दिया। दो बातें एक तरफ भार्गवजी से कीं, दो बातें श्रीनारायण चतुर्वेदी, वाचस्पति पाठक आदि से। फिर झगड़ा न हो, इसलिए वह सेनापति की तरह इधर-

उधर टहलते रहे। इसके बाद पूडी-साग का प्रबन्ध करने भीतर चले गये।

दुलारेलाल भार्गव ने अपने मित्र वकील चन्द्रप्रकाश से कहा—चलो, मैं यहाँ न बैठूँगा। वकीलसाहब ने अलग उन्हे एक बेंच पर बिठाया था; बाकी सब लोग उसी दरी पर बैठे थे। उन्होंने दुलारेलाल से कहा—तुरत उठकर चलना अच्छा नही मालूम होता।

दरी पर बैठे लोग धीरे-धीरे खुस-फुस करते रहे। हँसी, ठहाके, पहले की चहल-पहल खत्म हो चुकी थी। लगभग डेढ घंटे बाद वकील चन्द्रप्रकाश ने दुलारेलाल भार्गव से कहा—आइये अब चलें। इस पर भार्गवजी ने सत्याग्रह किया। बोले—मैं यहाँ से उठूँगा ही नही।

कई लोगों के समझाने से वह उठे और अपने घर गये।

निराला ने आकर लोगो को खाने के लिए आमन्त्रित किया। रात हो चुकी थी। खानेवाले बहुत थे; भोजन की मात्रा कम थी। सबको दो-दो पूडियाँ परोस दी गईं। इनके समाप्त होने पर निराला भोजन-कक्ष मे बैठे हुए लोगो के बीच आये और हाथ जोडकर बोले—अब आप लोग हाथ धो डालिये।

किसी ने कुछ न कहा। सब लोग चुपचाप हाथ धोकर इधर-उधर की बातें करते विदा हुए। कुछ दिन तक भूसामंडी मे रामकृष्ण त्रिपाठी और उनकी पत्नी निराला के साथ रहे, फिर वे भी विदा हुए।

'माधुरी' मे 'गीतिका' पर जानकीवल्लभ शास्त्री का लेख निकला। बनारसीदास चतुर्वेदी और हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों को निराला के गीत नापसंद थे पर निराला की प्रशस्ति लिखनेवाले जानकीवल्लभ शास्त्री को भी वे नापसंद होंगे, यह बात आश्चर्य मे डालनेवाली थी। बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' मे लेख लिखा—'हमारे गुमराह भाई'। गुमराह भाई अर्थात् कवि निराला और पत। इन छायावादियो की जिद से हार न मानकर पूर्ण मिशनरी उत्साह से 'विशाल भारत'-संपादक उन्हे अब भी राह पर लाने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने छायावादियों का काव्य-बोध परिष्कृत करने के लिए उनसे ये पंक्तियाँ घोखने को कहा—

जहाँ जहाँ पड चुका है पानी, भरी हुई है वहाँ की झीलें।
और उसमे जाकर सुहागनें सबकी सब झपाझप नहा रही है।

जानकीवल्लभ शास्त्री को ऐसी ही एक पंक्ति बहुत प्रिय थी : गली मैंने कही थी, तुम तो दुनिया छोडे जाते हो। कुछ लोग इसे 'गली मैंने कहा था'—इस रूप में पढते है; शास्त्रीजी ने 'कही थी' वाले रूप मे इसे और मुलायम कर लिया था। इस पंक्ति की तारीफ करते हुए उन्होने लिखा—"महज इतनी सी एक पंक्ति ने साहित्य और संगीत का जो पीयूषप्रवाह एक साधारण कवि की दुर्लभ भावुकता प्रकट करता है, वह आधुनिक युगान्तरकारी हिन्दी के गीतो के लिए असंभव है।"

'गीतिका' की भाषा ? "अधिकाश स्थल का सजल सौन्दर्य कृत्रिमता के प्रहार से चूर्ण-चूर्ण हो रहा है। निरालाजी के अतिरिक्त किसी भी महान् कवि की भाषा सौन्दर्य की इतनी पिपासा नही रखती।"

जयदेव और विद्यापति का माधुर्य 'गीतिका' में नही है। शेली और टैगोर की स्वच्छता 'गीतिका' मे दुष्प्राप्य है। छोटे-छोटे छंदों मे बड़े-बड़े भावों के समावेश तथा श्रुति-मुख के लिए शब्द-ध्वनि के आवर्त-प्रयास के साथ मनमाने शब्दों का मनमाने ढँग से प्रयोग, प्रौढ़ि दरसाने की व्यग्रता और कटु तथा अप्रसिद्ध शब्दों की भरमार है। "उन्हे वह्म सूत्र का गौरव भले ही प्राप्त हो जाय, पर मधुरतर गीतिकाव्य का कदापि नही हो सकता।"

निराला की कृत्रिमता प्रकट है, पंत की अलक्षित। निराला के गीतों मे प्रसाद का संयम नही है। महादेवी के गीतों में अधिक सुकुमारता है।

अन्त मे रवीन्द्रनाथ की तुलना में निराला: "कोई भी निराला को रवीन्द्र नही कह सकता—पर असफल निराला की तुलना सर्वाधिक सफल रवीन्द्र ही से होती; यदि ये गीत एक भी उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक होते—जो हिन्दी के साहित्य के लिए सत्य और शिव से अधिक सुन्दर बनकर ग्राह्य नही।"

निराला ने लेख पढा और कुछ न कहा।

'माधुरी' में निराला की काव्यकला पर जानकीवल्लभ शास्त्री का एक और लेख निकला। निराला-काव्य की यथेष्ट प्रशंसा भी इसमे थी, पर दोष-दर्शन वाला अंश काफी तीखा था। निराला के मन पर इसी का प्रभाव अधिक पड़ा। 'जागो फिर एक वार' (१) की परिसमाप्ति "मुझे दो कौडी की मालूम पड़ती है, जैसे कलम को रुलाकर जबर्दस्ती उतनी लाइनें उगलवाई गई हो।" 'जागो फिर एक वार' (२) मे "पर क्या है, सब माया है--माया है" आदि "एकदम नीरस, बल्कि 'रामनाम सत्य है' की तरह असत्य प्रतीत होता है।" 'कौन तुम शुभ्र किरणवसना', रवीन्द्रनाथ की "अचल आलोके रए छ दाँड़ाए" के "Parallel तैयार की गई मालूम पड़ती है। पश्चिमी भावों के मिश्रण का पाप दोनों के सिर पर लदा है, इसलिए भारतीय दृष्टि से दोनों ही चित्र दूषित हैं।" वैसे निराला ने दर्शन का जो रूप कविता में दरसाया है "वह उनकी प्रौढ़ि का प्रत्यायक है।" उन्होंने "गद्य मे तो 'सटायर्स', 'ह्यूमर्स' आदि की झड़ियाँ लगा दी हैं, पर उनकी यह विनोदप्रियता पद्यों में भी कहीं-कहीं देखने को मिलती है।"

"दिमागी खयालातों···"

'मतवाला' के अंकों से निराला अपनी पुरानी कविताएँ नकल कर रहे थे। पहले उनका विचार था कि 'तुलसीदास' और इस तरह की अन्य वैलेड एक संग्रह में देगे जिसका नाम उन्होंने सोचा था—'गाथा'। पर उस तरह की वैलेड लिखने के लिए जितनी शक्ति की जरूरत थी, वह जैसे चुक गई थी। अब वह पैर में सायटिका के दर्द की शिकायत अक्सर करते थे, धीरे-धीरे चलते थे और छड़ी साथ रखते थे। उन्होंने 'तुलसीदास' अलग प्रकाशन के लिए दी, नयी और पुरानी कविताएँ जोड़कर एक कविता-संग्रह तैयार किया—'अनामिका'। नयी और पुरानी कहानियाँ बटोर कर भारती भंडार के लिए उन्होंने एक कहानी-संग्रह तैयार किया—'सुकुल की बीवी'।

निराला हर साल भारती भंडार को दो किताबें दे और इस तरह साल का उनका खर्च चले, यह स्थिति बहुत संतोपजनक न थी। 'गीतिका' के अधिकांश गीत,

'निरुपमा' का प्रारंभिक अंश, 'सुकुल की बीवी' की कुछ कहानियाँ और 'तुलसीदास' उन्होंने तब लिखी थी जब दुलारेलाल भार्गव से सम्बन्ध-विच्छेद न हुआ था। एक निबन्ध-संग्रह और दे सकते थे और इसके भी प्रायः सभी निबन्ध पहले के लिखे थे। रोज़ कुआँ खोदो और पानी पियो—कब तक ?

जब 'सरस्वती' प्रेस मे 'गीतिका' छप रही थी, तभी—सितम्बर सन् '३६ मे—उन्होंने शिवपूजन सहाय को लिखा था : "अगर आपके वहाँ वाले कोई उपन्यास या काव्य मेरा निकालने की इच्छा करें, तो बातचीत करके लिखिएगा।"[७]

उनकी इच्छा थी कि मूल 'अनामिका' मे महादेवप्रसाद सेठ ने जो भूमिका लिखी थी, वह इस 'अनामिका' मे भी रहे, सेठजी पर शिवपूजन सहाय का लेख हो, पुस्तक सेठजी को समर्पित हो—"सारांश, किताब सेठजी की स्मृति मे निकलेगी। आप सेठजी के जीवन की बाते लिखिये, संक्षेप मे। 'मतवाला' वाली कुछ विस्तार से, कुल १०-१२ पृष्ठों मे। कवि निराला को सेठजी ने ही हिन्दी में रखा है। 'मतवाला' निकालने का एक उद्देश्य उनकी कविता निकालना भी था, उसके प्रति सेठजी के भाव-विचार आदि थोडे मे लिखिये।"[८]

अन्त मे न सेठजी की भूमिका गई, न शिवपूजन सहाय का लेख। वाचस्पति पाठक ने भूमिका माँगी; निराला ने लिखा, महादेवप्रसाद सेठ वाली भूमिका जायगी और वह आपके पास है।

लेकिन उस पुस्तक के साथ भूमिका न छपी। निराला का विचार महादेवप्रसाद सेठ और प्रसाद पर कविताएँ लिखने का था, पर उदात्त भावना के स्तर पर मन जैसे पहुँच न पा रहा था। डलमऊ से लौटने पर उन्होंने उस उदात्त स्तर पर केवल एक कविता लिखी थी—'नर्गिस'। चाँदनी रात, गंगा के कगार, नदी की शान्त स्निग्ध धारा, स्वर्ग की चाँदनी से अधिक सुन्दर धरती की गन्ध लिये नर्गिस। एक नया प्रगतिशील दर्शन।

उन्होंने ग्रामीण जीवन पर सरल हिन्दी मे कुछ गीत लिखे थे जो वाचस्पति पाठक को पसन्द न थे। निराला ने नाराज होकर लिखा—"गीत अगर आपको पसन्द नही तो उसके ये माने नही कि हिन्दी मे सुलभ है।" दोनों मित्रो मे तनाव बढ रहा था। निराला ने आगे बिजनेस की बाते की, "इस समय तो आपका सीजन भी है, और आप मुझसे बिजनेस भी नही करते। रुपया ४००) 'चमेली' पर लेकर भेजिये जल्द। रुपया मिलने पर काम मे जी लगेगा। जब तक किताबे छपती है, उपन्यास भेज दूँगा। मुझे आदमी भी रखना है, लिखने के लिए। अब ड्रामा लिखनेवाला हूँ।

"राधाकृष्णजी आये थे कहानी-लेखक। मेरे सब उपन्यास पढ़े हैं। निरुपमा को सर्वश्रेष्ठ कहते थे।

"अगर चार सौ नहीं तो दो ही सौ भेजिये अभी। पत्र जल्द दीजिये। क्योंकि मुझे रुपयो का प्रबन्ध पहले करना है। निरुपमा और तुलसीदास पूरे-पूरे है ही। प्रबन्ध भी आपके वहाँ है—चुन लीजिए। कहानी-संग्रह मैं भेज दूँगा।

"रुपयो की बातचीत पक्की कर लीजिये। साल मे कितने सौ रुपये आप मुझ

देंगे—किताब लेकर। रुपया वसूल हो जाने पर मेरी रायल्टी २० परसेन्ट चलेगी या नही।"[९]

वाचस्पति पाठक की अपनी कुछ कठिनाइयाँ थी। वह भारती भंडार के कर्मचारी थे, उसके स्वामी नहीं। उस संस्था के अपने व्यापार-सम्बन्धी नियम थे जिनके अन्तर्गत ही निराला को रुपये दिये जा सकते थे। निराला ने 'चमेली' उपन्यास अभी लिखा न था, लिखने का विचार था। सोचते थे, जब तक और किताबें निकलेंगी, इसे लिख डालेंगे।

पाठकजी के पत्र से निराला को सन्तोष न हुआ। उन्होंने गांधीजी और व्यापारी वर्ग की नीति का स्मरण करते हुए उन्हें लिखा: "मेरा पत्र महत्त्वपूर्ण है, इससे मालूम देता है, आप बदलकर बोल रहे है। महत्त्वपूर्ण तो है, पर आपकी समझ मे वेदान्त कैसे आये? बनिया-कुल-मुकुट-मणि महात्मा गांधी ने जब मुझसे कहा था—मैं तो उथला आदमी हूँ, आपको याद होगा, मैंने जवाब दिया था, हम लोग उथले को गहरा और गहरे को उथला कर सकते हैं।—अब मेरा पत्र इस दृष्टि से देखते हुए फिर समझिए; तब आपको मालूम होगा, तुलसीदास ने क्यों कहा था—सबसे अच्छे मूढ जिन्हें न व्यापी जगत् गति!!!"[१०]

शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के साथ कवि-सम्मेलन हुआ। निराला गये। स्वागताध्यक्ष डा० सत्यनारायण सिंह ने स्वतन्त्रता की लड़ाई का उल्लेख करते हुए कहा कि प्रियतम और प्रेयसी को सम्बोधन करके आजकल के कवि जो कुछ लिख रहे हैं, वह समय की चीज नही है। स्वागताध्यक्ष के बैठते ही निराला ने माइ-क्रोफोन पर घोषित किया—इस सम्मेलन में कोई भी कविता न पढेगा। स्वागताध्यक्ष ने कवियों का अपमान किया है। इसलिए जब तक वे माफी नही माँग लेते, कोई भी कवि कविता न पढ़ेगा।

स्वागताध्यक्ष परेशान हुए तो किशोरीदास वाजपेयी ने उन्हें ललकारा—आप घबराते क्यों है? आपने खराब बात क्या कही है? अच्छी बात कहने से भी कोई अपना अपमान समझे, तो इसका उपाय क्या? माफी आप किस बात की माँगेंगे? कोई पाप किया है क्या?

हिन्दी कवियों ने कविता न पढ़ी तो सयोजकों ने कुछ उर्दू के साधारण कवियों से रचनाएँ पढवाना शुरू किया। बच्चन आदि हिन्दी-प्रेमी कवियो को लज्जा आई कि हिन्दी के नाम पर इस तरह की तुकबन्दी प्रसारित की जा रही है। कहानीकार यशपाल ने बच्चन के कान में कहा कि माइक पर जाकर सारी स्थिति कह दो, लोग समझेंगे तुम कविता पढने जा रहे हो।

बच्चन ने ऐसा ही किया। किसी ने बच्चन को ढकेला और हाथापाई की नौबत आ गई।[११]

अन्त में रान्नोदेवी ने कवियों से क्षमा-याचना की। निराला ने बच्चन से कहा—अब तुम जाकर कविता पढो। बच्चन के पढते समय निराला ने कई बार दाद दी—यह कविता है! बच्चन को जैसे "उस दिन अपने कवि होने की सनद मिली"; साथ ही उनके मन मे "यह बात भी दृढ हो गई कि हिन्दी, हिन्दी कविता और हिन्दी

साहित्यकार के निराला कितने प्रवल हिमायती हैं।"[१२]

निराला ने अपनी ओजपूर्ण संक्षिप्त वार्ता मे रहस्यवाद को प्रकाशवाद सिद्ध करने के वाद 'जागो फिर एक वार' (२) कविता सुनाई। मुक्त छन्द का प्रवाह, निराला का कंठ, श्रोता विस्मित होकर जितना सुनते रहे, उतना देखते रहे। गोविंद सिंह निज नाम तव कहाऊँगा; श्रोता समझे, लड़ने और मारने की वात हो रही है। सिंही की गोद से छीनता रे शिशु कौन;—अहिंसावादियों को कवि फटकार रहा है। शब्दो की उठती हुई लहर की समाप्ति पर एक ज़ोरदार—जागो फिर एक वार। यह कवि सारे देश को ललकार रहा है। सिंहो की माँद में आया है आज स्यार—इसे सब वखूवी समझे।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी को लगा—तालियो की गड़गड़ाहट पन्द्रह मिनट तक होती रही।[१३]

शिमला से लौटने पर निराला को जुकाम और वुखार हो आया। कलकत्ते से विद्यासागर कालेज के छात्रो ने आमन्त्रित किया। निराला की ग्लानि जैसे अचानक कही उड़ गई। कलकत्ता; वहुत दिनो के वाद फिर कलकत्ता। इस विद्यासागर कालेज का गेट उसी शंकर घोप लेन मे है जहाँ से 'मतवाला' निकलता था। निराला के लिए विद्यासागर का यह गेट वन्द था। वह कालेज के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे थे; सम्मानपूर्वक प्रवेश की गुजाइश न थी। कवि निराला को विद्यासागर कालेज के हिन्दी छात्रों से समर्थन मिला, वह अलग वात है। उस समय के विद्यार्थी अव वुढ़ाने लगे होंगे; नये विद्यार्थी, निराला के प्रारम्भिक जीवन-सघर्ष से अपरिचित, उन्हे नयी निगाह से देखेंगे।

साल खत्म हो रहा था। उन्होने पूरी वाँहवाला रुई का सलूका पहना; उस पर अपना ढीला कुर्ता डाला। सर पर ऊनी कनटोप जमाया। इंटर का टिकट लिया। स्टेशन पर कुछ कांग्रेसी एम० एल० ए० दिखाई दिये। निराला एक खाली डिव्वे मे वैठ गये। वारावंकी के वाद उन्होंने देखा, स्टेशनों पर भीड़े है। लोग महात्मा गाधी की जय, जवाहरलाल नेहरू की जय वोलते, फूलमालाएँ लिये एक डिव्वे की तरफ लपकते है। फैज़ावाद में उतरकर देखा—एक ड्योढ़े दरजे के डिव्वे के दरवाज़े मे जवाहरलाल नेहरू खड़े है। निराला वढ़ते हुए उस डिव्वे तक पहुँचे। नेहरूजी एक ओर हो गये। निराला भीतर गये।

रावी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा, लखनऊ की सड़को पर जलूसों का नेतृत्व, विलायत मे शिक्षा, वनारस के साहित्यकारो को उपदेश कि हिन्दी मे अभी दरवारी परम्परा का वोलवाला है—वही जवाहरलाल नेहरू निराला के सामने।

जनता से विदा होने और गाड़ी के चलने पर जव नेहरूजी भीतर आकर वैठे तव निराला ने शुरू किया—आपसे कुछ वाते करने की गरज़ से अपनी जगह से यहाँ आया हुआ हूँ।

नेहरू ने कुछ न कहा। निराला ने अपना परिचय दिया। फिर हिन्दुस्तानी का प्रसंग छेड़ा, सूक्ष्म भाव प्रकट करने मे हिन्दुस्तानी की असमर्थता ज़ाहिर की। फिर

एक चुनौती दी : मैं हिन्दी के कुछ वाक्य आपको दूंगा जिनका अनुवाद आप हिन्दुस्तानी जबान में कर देंगे, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। इस वक्त आपको समय नहीं। अगर इलाहाबाद में आप मुझे आज्ञा करें तो किसी वक्त मिलकर मैं आपसे उन पंक्तियों के अनुवाद के लिए निवेदन करूँ।

जवाहरलाल नेहरू ने चुनौती स्वीकार न की, समय देने में असमर्थता प्रकट की। निराला ने दूसरा प्रसंग छेड़ा। समाज के पिछड़ेपन की बात की; ज्ञान से सुधार करने का सूत्र पेश किया। हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल हिन्दी के नये साहित्य में जितना सही पाया जायगा, राजनीतिक साहित्य में नहीं—निराला ने अपने व्यावहारिक वेदान्त का गुर समझाया।

जवाहरलाल नेहरू डिब्बे में आई बला को देखते रहे, उसे टालने की कोई कारगर तरकीब सामने न थी। डिब्बे में आर० एस० पंडित भी थे। दोनों में किसी ने बहस मे पडना उचित न समझा। लेकिन निराला सुनने नहीं, सुनाने आये थे। बनारस की गोष्ठी मे जवाहरलाल के भाषण पर वह 'सुधा' मे लिख चुके थे; अब वह व्यक्ति सामने था जो अपने हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान पर लज्जित न था, जो स्वयं अंग्रेजी में लिखता था, जो हिन्दीवालों को क्या करना चाहिए, उपदेश देता था।

निराला ने कहा : पंडितजी, यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्त मे होते हुए भी इस प्रांत की मुख्य भाषा हिन्दी मे प्राय. अनभिज्ञ है। किसी दूसरे प्रांत का राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं। सन् १९३० के लगभग श्री सुभाष बोस ने लाहौर के विद्यार्थियो के बीच भाषण करते हुए कहा था कि बंगाल के कवि पंजाब के वीरों के चरित्र गाते हैं। उन्हे अपनी भाषा का ज्ञान और गर्व है। महात्मा गांधी के लिए कहा जाता है कि गुजराती को उन्होने नया जीवन दिया है। बनारस के जिन साहित्यिको की मण्डली में आपने दरबारी कवियों का उल्लेख किया था, उनमें से तीन को मै जानता हूँ। तीनो अपने-अपने विषय के हिन्दी के प्रवर्तक हैं। प्रसादजी काव्य और नाटक-साहित्य के, प्रेमचन्दजी कथा-साहित्य के और रामचन्द्रजी शुक्ल आलोचना-साहित्य के। आप ही समझिए कि इनके बीच आपका दरबारी कवियों का उल्लेख कितना हास्यास्पद हो सकता है। एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग है; एक हाथ से वार झेलते, दूसरे से लिखते हुए, दूसरे आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों को मैदान में वे मुखालिफ़त करते देखते हैं। हमने जब काम शुरू किया था, हमारी मुखालिफ़त हुई थी। आज जब हम कुछ प्रतिष्ठित हुए, अपने विरोधियों से लडते, साहित्य की सृष्टि करते हुए, तब किन्हीं मानी मे हम आपको मुखालिफत करते देखते हैं। यह कम दुर्भाग्य की बात नही, साहित्य और साहित्यिक के लिए। हम वार झेलते हुए सामने आए ही थे कि आपका वार हुआ। हम जानते हैं, हिन्दी लिखने के लिए कलम हाथ में लेने पर, बिना हमारे कहे फैसला हो जायगा कि बडे-से-बड़ा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एक जानकार साहित्यिक के मुकाबले कितने पानी में ठहरता है। लेकिन यह तो बताइए, जहाँ सुभाष बाबू, अगर मै भूलता नहीं, अपने सभापति के अभिभाषण में शरत्चन्द्र के निधन का जिक्र करते है, वहाँ क्या वजह

है जो आपकी जुबान पर प्रसाद का नाम नहीं आता। मैं समझता हूँ, आपसे छोटे नेता भी सुभाष बाबू के जोड़ के शब्दों में कांग्रेस में प्रसादजी पर शोक-प्रस्ताव पास नहीं कराते। क्या आप जानते हैं कि हिन्दी के महत्त्व की दृष्टि से प्रसाद कितने महान् हैं ?

जवाहरलाल एकटक निराला को देखते रहे। ऐसा धाराप्रवाह भाषण सुनाने वाले जीवन में ये उन्हें पहले व्यक्ति मिले थे, अगला स्टेशन अभी आया न था। सुनते जाने के सिवा चारा न था।

निराला को प्रेमचन्द याद आये। बोले—प्रेमचन्दजी पर भी वैसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जैसा शरत्चन्द्र पर।

नेहरू ने टोका—नहीं, जहाँ तक याद है, प्रेमचन्दजी पर तो एक शोक-प्रस्ताव पास किया गया था।

निराला ने अपनी बात स्पष्ट की : जी हाँ, यह मैं जानता हूँ, लेकिन उसकी वैसी महत्ता नहीं जैसी शरत्चन्द्र वाले की है।

आखिर अयोध्या स्टेशन आ गया। निराला ने आखिरी बात कही—अगर मौका मिला तो आपसे मिलकर फिर साहित्यिक प्रश्न निवेदित करूँगा।

नेहरू ने इसका कोई उत्तर न दिया।

नमस्कार करके निराला उतरे और अपने डिब्बे में आ गये। प्लैट
गांधी की जय, पं० जवाहरलाल नेहरू की जय से गूँजता रहा।

१२

यथार्थ दर्शन

निराला कलकत्ता पहुँचे। पहला अवसर था जब स्टेशन पर फूलमालाएँ लेकर उनका भी स्वागत करने लोग आए थे। विद्यासागर कालेज के छात्र और प्रोफेसर, दयाशंकर वाजपेयी, परमानन्द शर्मा तथा अन्य मित्र, बहुत-से युवक साहित्य-प्रेमी। निराला ने कविता-पाठ किया, भाषण दिये, अनेक स्थानों पर उनका सम्मान किया गया। कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमी प्रसन्न थे कि जिस व्यक्ति ने उनके बीच, इसी कलकत्ता शहर में अपनी साहित्य-साधना आरम्भ की थी, वह इतना विख्यात हो चुका है। बड़ा बाजार लायब्रेरी के अध्यक्ष दयाशंकर वाजपेयी ने निराला को अभिनन्दन-पत्र देने की योजना बनाई। अवध प्रेस के मित्रों ने अपने यहाँ अभिनन्दन-पत्र छपाया। दयाशंकर वाजपेयी का स्वास्थ्य अच्छा न था। चेहरा पीला पड़ रहा था। शरीर में जैसे कोई घुन लग गया हो जो उनका रक्त पीता जा रहा था। कलकत्ते के न जाने कितने साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों से दयाशंकर वाजपेयी ने निराला का पक्ष लेकर युद्ध किया था। आज निराला की जो इतनी ख्याति थी, उसमें एक कण कहीं दयाशंकर का दिया हुआ भी था। निराला अपने इस अंतरंग मित्र को बहुत प्यार करते थे। उसी कलकत्ते में जहाँ से एकाधिक बार अपमानित होकर निराला को चले आना पड़ा था, उनका सार्वजनिक अभिनन्दन हो रहा था। दयाशंकर वाजपेयी की भावविह्वल वाणी उनके कानों में गूँज रही थी :

महाकवि,

एक दिन आपकी कविता का अमिय गरल शशि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला इसी कलकत्ता महानगरी में छलका था और हम कलकत्तावासियों ने ही सर्वप्रथम नवयुग के महाकवि की वाणी सुनी थी। आप हमारे हैं। हमारी अकिंचनता पर ध्यान न देकर इसे स्वीकार करें।

महान् कलाकार,

हिन्दी वाङ्मय में आपने नवीन क्रान्ति पैदा की है। फलत: विरोधों का सामना आपको सर्वाधिक करना पड़ा और एक क्रान्तिकारी कलाकार के लिए यह

सर्वथा स्वाभाविक था; किन्तु आपने कभी इसकी परवाह नही की और साहित्य को अपनी प्रतिभा का दान निरन्तर देते गए, देते जा रहे है।

अधिक क्या कहे? हम तो आज आनन्द-भावाकुल है। हम मुग्ध है, समस्त हिन्दी ससार आपकी प्रतिभा पर मुग्ध है। आपने हिन्दी साहित्य को अक्षय कृतिगौरव प्रदान किया है।

इसी तरह की और बातें। उस समय निराला के लिए इस तरह की शब्दावली का प्रयोग करनेवाले साहित्यकार कम ही थे। निराला कलकत्ते में अपने अभिनन्दन-सम्मान से प्रसन्न थे। उन्होने खास तौर से नोट किया कि स्टेशन पर उनका स्वागत करनेवालो मे एक अंग्रेजी के प्रोफेसर भी थे और उनके आने का समाचार अंग्रेजी दैनिक 'ऐडवान्स' मे छपा था।

बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी,
१०।१।१ सैयद साली लेन, कलकत्ता
३-१-३६

प्रिय शर्माजी,

यहाँ अच्छा रहा। Advance मे खबरे छपी देखी थीं, अच्छा लिखा था। साधारण अच्छी अदायगी रही। विद्यासागर कालेज मे प्रिंसिपल और कुछ प्रोफेसर और लड़को के साथ ग्रुप लिया गया था, अच्छा आया है। मुझे एक कापी भेट की गई है। मै लखनऊ ला रहा हूँ। देखियेगा। जब देहरा से उतरा, विद्यार्थी अँग्रेजी के एक प्रोफेसर को लेकर हवड़ा रिसीव करने आए थे मालाएँ लेकर। बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी ने मानपत्र दिया, एक प्रति भेजता हूँ। तिवारीजी को नमस्कार। लल्लू और चौबे' को स्नेह।

आज शाम कालका मेल से इलाहाबाद जा रहा हूँ।

आपका
निराला

माननीय सपूर्णानंद ए० पी० सेन रोड पर एक कोठी मे रहते थे। निराला कभी-कभी उनसे मिलने जाते, उनसे ज्यादा उनके पुत्र सर्वदानन्द वर्मा से मिलते। सर्वदानन्द, अमृतलाल नागर, चित्रकार कमलाशंकर सिह के बडे भाई उमाशंकर सिह आदि मित्रो ने एक नाट्यपरिषद् की स्थापना की। कुछ लोगों ने सभापतित्व के लिए सपूर्णानन्द का नाम पेश किया। निराला ने उमाशकर सिह से यह समाचार सुना तो बहुत नाराज़ हुए। उन्होने नाट्यपरिषद् के संयोजको के नाम एक पत्र लिखा :

भूसामडी, हाथीखाना
लखनऊ
१६-१-३६

अमृतलाल, सर्वदानन्द, उमाशंकर वगैर.।

दोस्तो,

उस रोज नाटक की मीटिंग के सम्बन्ध मे सर्वदानन्दजी के कहने के अनुसार

निश्चय हुआ था, उनकी जगह यानी माननीय शिक्षामंत्री के वासभवन में रविवार के दिन मीटिंग होगी। मैं अपना उद्देश्य जाहिर कर चुका हूँ कि साधारण व्यक्ति सभापति चुना जाय। रामविलास साधारण और योग्य दोनों हैं। लेकिन उमाशंकरजी से सुना, आप लोगों में कुछ की राय है मान० शिक्षामंत्री सभापति हों। व्यक्तिगत रूप से उनके प्रति मेरी श्रद्धा है। पर इस सभापति चुनने की वृत्ति को मैं अच्छी निगाह से नहीं देख पा रहा। निश्चय हुआ था, काम करके हुक्कामों की सहानुभूति ली जायगी। अगर आप लोग मेरी तरह पर सहयोग देंगे, तो और तभी, मैं काम कर सकूँगा, अन्यथा नहीं। क्योंकि ड्रामा लिखने से खेलने तक का भार मेरा ही कुछ अधिक भारी होगा। कृपया सूचित करें, आप लोगों की क्या राय है। मैंने सर्वदानन्दजी के कारण वहाँ जाने मे संकोच नहीं किया, यों मुझे वहाँ मीटिंग करते भी संकोच है। अगर आप लोग बुरा न मानें तो स्थान बदल दें, मेरे यहाँ या अन्यत्र जहाँ कहे, मीटिंग की जगह निश्चित हो। यह जरूर है कि आदर्श साधारण रूप से ही आदर्श बनाया जायगा। आप जहाँ अड़चन देखते हैं, मुमकिन, वहाँ सुगमता हो; क्योंकि कुछ विचारशक्ति मेरे अन्दर भी है। आप दूसरा प्रेसिडेंट भी चुन सकते हैं, लेकिन व्यक्ति साधारण हो, साथ ही योग्य। इस तरह, निश्चय करके चिट्ठी लिखें। मैंने वहाँ कहा था, अगर शिक्षामंत्री के लड़के न होते तो सर्वदानन्द को सभापति चुन लेने मे मुझे एतराज न होता। सभापति और मीटिंग की बात सूचित करें कि किसे चाहते हैं और कहाँ चाहते है। इति।

आप लोगों का

निराला

जौनपुर के सम्मेलन में सम्पूर्णानन्द ने क्या कहा था, फैजाबाद में क्या कहा था, गांधी और नेहरू ने क्या कहा था, वह सब निराला को याद था। कांग्रेसी नेताओं के प्रति उनकी स्मृति मे जमा हुआ आक्रोश थोड़ा-सा पिघलकर इस पत्र में बह चला था।

अमृतलाल नागर और उनके समाजवादी मित्रो ने एक संस्था कायम की थी—कौस्मिक सोशलिस्ट्स। कलकत्ते मे निराला का अभिनन्दन हो चुका था। कलकत्ते के बाद निराला की कर्मभूमि मुख्यतः लखनऊ रही थी। यह उचित था कि इस नगर में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन हो। अमृतलाल नागर ने इसके लिए बड़ी लगन से काम लिया, लखनऊ के साहित्यकारो को बटोरा।

निराला ध्यान से अभिनन्दन की बातें सुनते रहे: वर्षो तक आपने साहित्य और समाज के प्रतिक्रियावादियों का सामना किया है। हिन्दी की नवीन शक्ति को आपने पहचाना था; उसने आपका साथ नही छोड़ा। इसीलिए हमारा विश्वास है, युग की नवीन प्रगतिशील शक्तियों को आप अपनी ओर खींच सके हैं। धीरे-धीरे अब एक विद्रोहीमात्र न रहकर साहित्य में एक नये युग के निर्माता और उसके नायक हुए है।

आपको अपने बीच पाकर हमे आप पर अभिमान होता है और हिन्दी-भाषी होने के नाते हमें अपने ऊपर अभिमान होता है। अनेक विषम परिस्थितियों मे रहते

हुए भी आपने एक योद्धा की भाँति साहित्य की सेवा की है, साहित्य के उद्यान को आपने अपने रक्त से सींचा है।

आपकी सेवा अति महान् है। उसके आगे जनता का सम्मान कितना भी बड़ा हो, तुच्छ ही होगा। आप चिरकाल तक हिन्दी और हिन्दुस्तान की इसी भाँति सेवा करते रहे, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

हिन्दी की नवीन युवाचेतना निराला का अभिनन्दन कर रही थी। सज्जाद जहीर आदि के सम्पर्क से समाजवाद का जो चित्र उन्होंने मन में बनाया था, उससे ये युवक कुछ भिन्न थे। ये हिन्दी-प्रेमी थे, निराला पर हिन्दी के नाते गर्व करते थे।

निराला इलाहाबाद गये। अमरनाथ झा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा के सरपरस्त, विश्वविद्यालय के एकच्छत्र सम्राट्, सिविलियन अफसर गढ़नेवाली फैक्ट्री के संचालक निराला की कविता सुनने को उत्सुक हुए। उन्हे अपने यहाँ कविता-पाठ के लिए निमंत्रित किया।

निराला ने निमंत्रण स्वीकार किया, पर यह इच्छा भी व्यक्त की कि झा साहब अपने काल्पनिक बड़प्पन की दीवार लाँघकर स्वयं आ जाते तो और अच्छा था। उन्होंने अंग्रेजी मे उत्तर लिखा·

The Leader Press
Allahabad
8-3-39

Dear Sir,

Your invitation in English received. I shall be glad to join your company and entertain you all by my recital. But more I shall be if you wont hesitate to cross the barrier of imaginary greatness, when called, to come to my place.

Pranam.

Sincerely yours
Nirala

कविता-पाठ के अलावा और बहुत-कुछ करना आवश्यक था। बाजार का काम किये बिना दैनिक जीवन की साधारण आवश्यकताएँ पूरी न हो सकती थीं। निराला ने दुलारेलाल भार्गव से एक किताब लिखने का सौदा किया, सरल भाषा मे, जो सबकी समझ में आ जाय। उन्होंने स्त्रियों और बच्चों के लिए महाभारत लिखी। भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कर दिया : "यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृह-देवियों और बालकों के लिए लिखी गई है। इससे उन्हें महाभारत की कथाओं का सारांश मालूम हो जायगा। भाषा सरल है। भाव के ग्रहण मे अड़चन न होगी।" पुस्तक उन्होंने 'कलकत्ते की प्रिय स्मृति मे' अपने बालसखा रामशंकर शुक्ल को समर्पित की।

निराला ने शिवपूजन सहाय से 'अनामिका' में देने के लिए महादेवप्रसाद सेठ

पर लेख माँगा था। लेख उन्होंने भेजा था, पर निराला को मिला नहीं। इस बीच उन्होंने सुना, मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव नहीं रहे। 'मतवाला' का एक स्तम्भ और धराशायी हुआ। इसके वाद किसकी बारी आयेगी ?

'विश्वमित्र' मे नवजादिकलाल पर शिवपूजन सहाय का लेख निकला। उसमें निराला का भी अच्छा चित्रण किया गया था। वह शिवपूजन सहाय पर मन-ही-मन नाराज़ हो रहे थे कि 'विश्वमित्र' के लिए लिखा, 'अनामिका' के लिए न लिखा। तभी उन्हें जानकीवल्लभ शास्त्री से समाचार मिला कि शिवपूजनजी ने निराला को लेख भेजा था। उन्होंने तुरन्त मित्र को लिखा:

भूसामण्डी, हाथीखाना, लखनऊ
२७-९-३९

प्रिय शिवपूजनजी,

आज जानकीवल्लभजी साहित्याचार्य के पत्र से मालूम हुआ, वे आपसे मिले थे और आपने 'अनामिका' के लिए सेठजी पर आग्रह और अनुरोध के अनुसार कुछ लिख कर भेजा था। मुझे आपका लेख नही मिला। मैं बल्कि आपसे नाराज़ था।

सुना, आपका बच्चा अस्वस्थ था। अवश्य अब तक तन्दुरुस्त हो गया होगा।

मुन्शीजी भी गये। अब मेरी बारी है।

आपका उन पर 'विश्वमित्र' में लेख पढा। मेरा हिस्सा मेरे मित्रों को बहुत पसन्द आया। यों आपके लेख की क्या क्षुद्र प्रशंसा।

छँटकर साहित्य-परिषद् का सभापतित्व मेरे पास पहुँचा है। एक दफा अस्वीकृत कर दिया था। तार से फिर अनुरोध आया है। स्वीकार कर लूँगा। टण्डनजी की आज्ञा है। क्या आप सम्मेलन मे आयेंगे ? आइये, दर्शन हो जायेंगे।

आपका
निराला

बनारस मे साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होनेवाला था। निराला के पास पत्र आया कि वह साहित्य-परिषद् का सभापतित्व स्वीकार करे। प्रबन्ध-मन्त्री ने निराला को यह स्पष्ट बता दिया था कि अनेक व्यक्तियों से उन्होने सभापति बनने की प्रार्थना की थी। किसी ने स्वीकार न की; तब वह निराला की शरण आये हैं।

इस तरह का सभापतित्व कोई बहुत बडे सम्मान की बात न था। पहले तो सभापति बनाना था तो उन्हें पूरे सम्मेलन का सभापति बनाते; फिर साहित्य-परिषद् का सभापति बनाया तो वह भी अछता-पछता कर जब और कोई न मिला। निराला ने असमर्थता प्रकट करते हुए उन्हें पत्र लिख दिया। प्रबन्ध-मन्त्री ने तार देकर फिर आग्रह किया। निराला टण्डनजी के बँगले पर सलाह करने गये। टण्डनजी ने कहा—पराड़करजी ने इसी तरह सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार किया था। उनका नाम बाद में आया जब औरों ने अस्वीकार कर दिया। दूसरों के छोडे हुए पद को स्वीकार करने में जो अपने को अमर्यादित नही समझता, उसकी इज्जत मेरी निगाह मे और बढ़ जाती है।

निराला ने वनारस जाने की स्वीकृति दे दी। अमृतलाल नागर और मुझसे उन्होंने चलने को कहा। एक भापण तैयार कर लेने का आग्रह किया। मैंने पूछा—विपय ? उन्होंने कहा—चाहे जिस विपय पर लिखो।

मैंने भापण लिखा। उन्हे न वताया कि क्या लिखा है; न उन्होंने पूछा। अंग्रेजी भापा के सम्पर्क में आने पर जो वंगाली साहित्यकार गर्व करते थे, हिन्दी को राष्ट्र-भापा वनाने का जो विरोध करते थे, उनके विरुद्ध मैंने उग्र लेख लिखा।

सम्मेलन के सभापति अम्विकाप्रसाद वाजपेयी ने हिन्दुस्तानी आन्दोलन का तीव्र विरोध किया। मदनमोहन मालवीय ने अपनी ललित गम्भीर वाणी मे आगत जनो का स्वागत करते हुए हिन्दी का समर्थन किया। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने हिन्दुस्तानी के प्रसार पर वल दिया। उनकी अपनी भापा विशुद्ध हिन्दी थी। लोगों ने कहा—यदि इसे आप हिन्दुस्तानी कहे तो हमारा कोई विरोध नही।

राष्ट्रभापा परिपद् के सभापति राजेन्द्रप्रसाद थे। काका कालेलकर ने रोमन लिपि का विरोध किया और नागरी लिपि को सुधारना आवश्यक वताया। निराला ने हिन्दी के पक्ष मे जोरदार भापण किया। कुछ वातें ब्रह्म, महादेश और सौर मण्डल के सम्वन्ध मे कही जो वहुत स्पप्ट न थी। फिर उन्होने कहा—कलकत्ते के वंगाली विद्वान् हिन्दुस्तानी नही समझते, निराला की हिन्दी समझ लेते हैं। भापा का दायरा छोटा नही। हिन्दी अपनी प्राचीन गरिमा के साथ विश्व की नवीन विभूतियों को अपने भीतर ढाल रही है। हिन्दी वाले उर्दू के छन्द ले रहे हैं; उर्दू वाले मन्दाक्रान्ता अपनायेंगे ? गांधीजी को हिन्दीभापियो के वोट चाहिए। जिनके लिए वह हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी चलाना चाहते हैं, उनके मुँह से 'राष्ट्रभापा' निकलेगी भी ? उनकी शिक्षा दूसरे ढंग से हुई है। वे प्रकरण को परकरन कहेंगे। रामकृष्ण परमहंस ने इस्लाम की साधना की थी; मुसलमान हिन्दू-दर्शन ग्रहण कर सकते हैं ? हिन्दी विश्व-दर्शन अपनाने को तैयार है। देश को माता कहो चाहे पिता। असली चीज़ भाव है। भापा का जो रूप आज है, उससे पराधीनता का आभास मिलता है। देश मे महान् पुरुष पैदा करने की शक्ति होनी चाहिए। हमे देश के विज्ञ चाहिए, देश के दीवाने नहीं। दोस्तो, सौ-पचास साल तो और डटे रहो। मैं छायावाद नहीं, प्रकाशवाद ही लिखता रहा हूँ।

वीच मे माइक्रोफोन फेल हो गया। किसी प्रकार का शोरगुल न हुआ। निराला आवेश मे वोलते गये; जनता एकदम शान्ति से भापण सुनती रही।

वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दुस्तानी का समर्थन और निराला का विरोध करने उठे। उन्होने कहा—निराला की वहुत-सी वातें समझ से वाहर है। वह गांधी से ब्रह्म तक न जाने क्या-क्या कह गये। इस तरह नवीनजी ने निराला के प्रति लोगो मे फैली हुई भावना को उकसा कर उनकी वातो का खण्डन करना चाहा, पर वहाँ श्रोता हिन्दुस्तानी के विरोधी थे। उन्हे सफलता न मिली। यह स्पप्ट हो गया कि कांग्रेस के कुछ राजनीतिज्ञ सम्मेलन पर अपनी भापा-नीति लादना चाहते है; वहाँ एकत्र प्राय: सभी हिन्दी साहित्यकार इस नीति के विरुद्ध हैं।

नवयुवक-साहित्यकार-सम्मेलन भगवतीचरण वर्मा के सभापतित्व में हुआ।

निराला ने इसमें दो कविताएँ सुनाईं। बच्चन के 'मधुशाला' सुनाने के बाद लोगों के आग्रह से प्रिंसिपल मनोरंजन ने 'मधुशाला' की पैरोडी सुनाई। श्रोताओं ने मूल कविता और पैरोडी दोनों को बराबर दाद दी।

साहित्य-परिषद् में रामचन्द्र शुक्ल और निराला एक मंच से बोले। शुक्लजी ने छायावाद-सम्बन्धी अपनी स्थापनाएँ काफी बदल दी थी; निराला ने उनके प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया। निराला ने मुझसे भाषण पढ़ने को कहा। जनता ने अनेक बार करतलध्वनि की। कुछ लोगों को डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या आदि पर मेरे आक्षेप बुरे भी लगे। उन्होंने निराला से शिकायत की कि ऐसा भाषण पढ़ने की अनुमति न देनी चाहिए थी। निराला ने कहा—भाषण की स्पिरिट देखनी चाहिए; वह स्पिरिट अच्छी थी।

बनारस में निराला गांधीजी के पुत्र हीरालाल गांधी से मिले। वह खान-पान में परम अवैष्णव निराला के समानधर्मा थे। विनोदशंकर व्यास ने नाव का प्रबन्ध किया। रूपनारायण पाण्डेय, निराला, अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, ज्ञानचंद जैन, हीरालाल गांधी, विनोदशंकर व्यास आदि गंगा पार रेती पर बैठे और एक छोटा-मोटा, बड़ा सजीव साहित्य-सम्मेलन वहाँ भी हो गया जिसमे सबसे आकर्षक बात थी—निराला का गायन और कविता-पाठ।

फैजाबाद के सम्मेलन से निराला को जितना क्षोभ हुआ था, बनारस के अधिवेशन से उतनी ही प्रसन्नता। फैजाबाद के सम्मेलन पर संपूर्णानन्द, नरेन्द्रदेव हावी थे। बनारस में मदनमोहन मालवीय और अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने राजेन्द्रप्रसाद आदि को दबी जबान से बोलने पर मजबूर किया था। निराला ने जो हिन्दुस्तानी का विरोध किया वह उनके कांग्रेसी नेताओ के खिलाफ मुहिम की एक मंजिल थी। वैसे वह 'रूपाभ' में 'चमेली' लिखकर ठेठ हिन्दुस्तानी का नमूना प्रस्तुत कर चुके थे।

राजनीतिज्ञों से खटकी थी, पर साहित्यकारों में निराला का सम्मान बढ रहा था। उनका क्रान्तिकारी व्यक्तित्व, उनकी लगन, उनकी सहृदयता लोगों के मन मे उभरकर द्वेष-ईर्ष्या के भावों को दबा रही थी। सार्वजनिक रूप से, मुक्त कंठ से निराला का अभिनन्दन करनेवाले सुप्रसिद्ध साहित्यकारो में अग्रणी थे—सुमित्रानन्दन पंत। निराला को मालूम था कि पंत उन पर कविता लिखनेवाले हैं। स्वभाव के अनुसार निराला ने उन्हें कविता लिखने से मना किया। जब कविता आ गई तब वह प्रसन्न हुए; पंत इतने जोरदार ढंग से उनका स्तवन करेंगे, निराला ने इसकी कल्पना न की थी।

अनामिका के कवि
श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी के प्रति

छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत,—
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित!

शिलीभूत सौन्दर्य, ज्ञान, आनन्द अनश्वर
शब्द-शब्द में तेरे उज्ज्वल जड़ित हिम-शिखर।
शुभ्र कल्पना की उड़ान, भव-भास्वर कलरव,
हंस, अश वाणी के, तेरी प्रतिभा नित नव;
जीवन के कर्दम से अमलिन मानस सरसिज
शोभित तेरा, वरद शारदा का आसन निज।
अमृत पुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरणजित,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत।

निराला के दग्ध हृदय पर जैसे किसी ने शीतल चन्दन का लेप कर दिया हो। उन पर दूसरो ने अब तक जो लिखा था, अपने ऊपर स्वयं उन्होने जो कुछ लिखा था, किसी से उनके मन को ऐसी शान्ति न मिली थी, जैसी पंत की इस कविता से। जिस की सैकड़ों पंक्तियाँ उन्हे कंठस्थ थी, जिसकी लोकप्रियता से विवश होकर अनेक बार उन्होने आलोचना का अस्त्र उठाया था, वह प्रिय कवि जिसका विकास निराला की साहित्य-साधना के प्रति चरण से जुडा हुआ था, वह कवि कह रहा था—स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत। निराला की साधना सार्थक है; उनके जीवन की सार्थकता का इससे बड़ा प्रमाणपत्र दूसरा हो नही सकता।

निराला ने कल्पना मे स्वयं अपना जो चित्र बनाया था, पंत की गढी हुई मूर्ति उससे बहुत मिलती-जुलती थी। उनके पुलकित मन को दूसरे तटस्थ मन ने सावधान किया : यह सब कल्पना का खेल है; यथार्थ कुछ और है!

निराला ने पंत को पत्र लिखा :

भूसामंडी, हाथीखाना, लखनऊ
४-४-३६

प्रिय श्री पंतजी,

आपकी रचना की दोनो चिट्ठियाँ मिली। आज अभी-अभी। मुझ पर आप कविता न लिखें, इस आशय का पत्र आपको लिख चुका हूँ। मुझे भय था कि आपका कवि इस तरह गिर न जाये। मेरा-आपका हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अभिन्न सम्बन्ध है। मुझे सबसे बड़ी सफलता यही हुई, मैं समझता हूँ। लेकिन आपकी रचना देखकर मैं हैरान रह गया। यह तो कवि और वही कवि जिसे मैं प्यार करता हूँ, लिख रहा है।

अधिक क्या लिखूँ, एक बात कहता हूँ। हिन्दी मे अपनी कल्पना-शक्ति के लिये ही आप बेजोड़ समझे जाते है। और अपनी अपराजित भाषा के लिये; इसी मौलिक सागर की ओर हिन्दी के नवयुवकों के हृदय के नदी-नद बह रहे हैं; वे आपसे कुछ हताश हो गये हैं; उन्हे इसी ओजस्विनी वाणी का कल्पनामृत पिलाइये। हिन्दी बड़ी गरीब है, कवि, कल्पना से बड़ा धन साहित्य मे और नही। इति।

आपका
निराला

पुनः

यह पत्र उस कविता के नीचे छापने के लिए भेज दीजिए। मैं अनुचित नहीं समझता। मतलब खुला है। छापना ज़रूरी मालूम देता है। नरेन्द्रजी चाहें तो अपने नाम से और खुलासा कर दे सकते हैं। इस समय आन्दोलन वाले प्रसंग पर कुछ नहीं लिख सकूँगा।

आपका

निराला

'रूपाभ' में कविता छपी। उसके साथ निराला का पत्र या उस पर नरेन्द्र शर्मा का भाष्य न छपा। यह सब आवश्यक भी न था। आर्थिक कठिनाइयों से 'रूपाभ' बन्द होने जा रहा था। चलते-चलते निराला की यह सेवा भी वह करता गया।

केदारनाथ अग्रवाल और उनके मित्रों ने निराला को बाँदा बुलाया। निराला का बड़ा स्वागत-सम्मान हुआ। किसी ने उनसे कह दिया कि मजिस्ट्रेट साहब आपकी कविताएँ सुनना चाहते हैं। निराला इस पर नाराज हो गये। जहाँ कविता-पाठ का आयोजन किया गया था, निराला ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। लोगों ने केदारनाथ अग्रवाल से आग्रह किया कि वह निराला को मनायें। केदार बाबू ने निराला के पास जाकर कहा—वहाँ दो हजार आदमी आपकी कविता सुनने को बैठे हैं और आप यहाँ रूठे हुए हैं। मजिस्ट्रेट किस खेत की मूली है? आप चलकर जनता को कविता सुनाइये।

निराला तुरन्त मान गये और मजिस्ट्रेट-समेत बाँदा के श्रोताओ को मुग्ध करते रहे।

होमवती देवी ने मेरठ में साहित्य-समारोह किया। निराला को सादर आमंत्रित किया। जैनेन्द्र, नगेन्द्र, अज्ञेय के साथ अधिकतर नवयुवक एकत्र हुए थे। निराला ने अपने कविता-पाठ से मेरठ के साहित्य-प्रेमियो को मोह लिया।

बरेली कालेज से ज्ञानप्रकाश जौहरी तथा अन्य साहित्य-प्रेमियों ने आमंत्रित किया। ज्ञानप्रकाश ने लखनऊ युनिवर्सिटी से अंग्रेजी मे एम० ए० किया था—फर्स्ट डिवीजन में। उनकी पत्नी प्रेमा खन्ना ने भी लखनऊ युनिवर्सिटी से प्रथम श्रेणी में एम० ए० किया था। निराला खन्ना-परिवार से अच्छी तरह परिचित थे और गोलागंज में खन्नाजी के घर कभी-कभी जाते थे। अपने छात्र-जीवन में ही प्रेमा खन्ना ने लखनऊ विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक जीवन में काफी प्रसिद्धि पाई थी। अब वह विलायत से और भी शिक्षा प्राप्त करके लौटी थी। ऐसे परिवार ने निराला को आमंत्रित किया था, इससे वह और भी प्रसन्न थे। पर अब विद्यार्थियों के सामने कविता-पाठ करते हुए कभी शोरगुल होने लगता या कवि-सम्मेलनों मे आवाजाकशी के आदी छात्र वैसा ही अभद्र व्यवहार निराला के सामने करते और निराला क्रुद्ध हो जाते। बरेली कालेज के लड़कों के व्यवहार से वह उत्तेजित हो गये। ज्ञानप्रकाश जौहरी ने किसी तरह उन्हे शान्त किया। विदा होते समय एक अप्रिय घटना और हो गई। निराला ने जौहरी के नौकरों को चार रुपये दिये। लेने से इन्कार करने पर वह

समझे कि मुझे गरीब समझकर नही ले रहे। निराला ने रुपये वही फेंक दिये और चलने को हुए। जौहरी ने नाराज़ होकर कहा—आपने मेरी इन्सल्ट की है।

नौकर की इन्सल्ट मालिक की इन्सल्ट है—निराला की समझ में आया। वह जौहरी को मनाने बैठे।

बरेली से लौटे तो वह प्रेमा जौहरी के व्यवहार की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे।

मेरठ कालेज के छात्रों ने उनके कविता-पाठ के समय कुछ गड़बड़ की। निराला नाराज़ हुए और कहा—कविता न सुनाएंगे। लोगों के बहुत मनाने पर राजी हुए और 'गर्म पकौड़ी' सुनाई। तेरे लिये छोड़ी मैने बम्मन की पकाई, घी की कचौडी, ऐ गर्म पकौड़ी।

लोगों को संतोष न हुआ। किसी ने कहा—'राम की शक्तिपूजा' सुनाइये, किसी ने 'जुही की कली'।

निराला ने कहा—तुम इसी गर्म पकौड़ी के काबिल हो। और कुछ न सुनायेंगे।

और वे हाल से बाहर चले आये।

कभी-कभी उन्हें लगता, कुछ नौजवान कवि जो ऊट-पटांग नये ढँग की कविताएँ लिखने लगे है, यह उनकी जड़ काटने के लिए। नंददुलारे वाजपेयी के यहाँ उत्तमा परीक्षा की कापियों मे प्रभाकर माचवे का निबन्ध देखकर प्रसन्न हुए थे। एक लेख में उनकी तारीफ की थी कि हिन्दी छात्रो के मुकाबले मराठी-भाषी छात्र को अपनी भाषा से अधिक शक्ति मिलती है। पर अब प्रभाकर माचवे कविताएँ भी लिखने लगे थे और निराला को वे पसन्द न थी। बोले—इम्प्रेशनिस्ट कविताएँ लिखते हैं। आदमी को देखा, नाक न दिखाई दी। बिना नाक के तस्वीर बना दी। लिखने में कोई तुक नही! पहले लोग उस बंदूक से निशाना लगाते थे जो पाँच मिनट में भरी जाती थी; अब मशीनगन दागते है—आँख मूँदकर। निशाना ही नही लगता। पहले शेर जमीन पर पैदल तलवार से मारते थे, तब बहादुरी थी।

फिर अपने बारे मे कहने लगे—आजकल तबियत ठीक नही रहती; रिऐक्शनरी हो गया हूँ।

लखनऊ की एक पत्रिका मे कविता निकली :

खाता कबाब, पीता शराब,
मैं बड़ा आदमी हूँ जनाब।

कविता के ऊपर एक बनमानुस की तस्वीर। निराला और उनके अन्य कई मित्रो का विचार था, यह शरारत ब्रजमोहन तिवारी की है। निराला कविता पढ़कर हँसते रहे, लेकिन मन उनका भारी था।

पैसे की तंगी थी। लीडर प्रेस से रुपये मिलने की गुंजाइश न थी। दुलारेलाल भार्गव 'कुल्ली भाट' छाप रहे थे, पर पहले की तरह निराला उनके लिए काम न कर रहे थे जिससे हर माह कुछ-न-कुछ मिलता रहे। दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था। जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही थीं। कांग्रेस युद्ध की परिस्थिति से लाभ उठाकर ब्रिटिश सरकार पर सीमित दबाव डाल रही थी।

श्रीनारायण चतुर्वेदी ने इंडियन प्रेस से यह व्यवस्था करा दी कि निराला वंकिमचंद्र के उपन्यासों का अनुवाद करें और अनुवाद के लिए उन्हें उचित पारिश्रमिक दे दिया जाय। इतना-इतना गद्य-पद्य लिखने के वाद निराला को अपना पेट भरने के लिए अनुवाद का काम लेना पड़ा। उनकी प्रतिभा जरा भी कुंठित नहीं हुई, यह उन्होंने 'विल्लेसुर वकरिहा' नाम का लघु उपन्यास लिखकर सिद्ध कर दिया। हास्य, व्यंग्य; 'देवी', 'चतुरी चमार' की गद्य-शैली; ग्रामीण जीवन में भूमिहीन किसान का चित्र, हिन्दी कथा-साहित्य में नया कदम; पुस्तक के लिए पाजामा, कोट, गांधीटोपी पहनकर अमृतलाल नागर के साथ उन्होंने तस्वीर खिचाई। पुस्तक युग-मंदिर उन्नाव को दी, पर वहाँ से खर्च लायक रुपये न मिल रहे थे। निराला को 'विषवृक्ष', 'कपाल-कुंडला' आदि के अनुवाद में अपना समय लगाना पड़ा। इससे अच्छा, वँगला ही में लिखें, या वँगला में अपनी हिन्दी रचनाओं का अनुवाद करें। इस कार्य के लिए उनके सामने दो कारण और थे। जव वह विद्यासागर कालेज गये थे तव वहाँ के अध्यापकों ने निराला से कहा था कि वह अपनी कुछ चीजों का अनुवाद वँगला में करें। इसके सिवा साहित्य-सम्मेलन के प्रचार-मंत्री पद्मकान्त मालवीय ने उन्हे प्रचार-कार्य में सहयोग देने को लिखा था। निराला ने वनारसीदास को लिखा : "प्रचार-कार्य दस-पाँच प्रभावशाली अनुभवी व्यक्तियों के सहयोग से ही हो सकता है। मेरे विचार से आप जैसे योग्य जनों का सहयोग ही प्रचार में सफलता ला सकता है। अवश्य उन्होने आपको भी लिखा होगा। मेरे कार्य में आपकी सहायता वहुत ही आवश्यक है।" वँगला में हिन्दी रचनाएँ अनुवादित करने के प्रसंग में लिखा : "मैं अभी इसी तरह का कुछ काम करना चाहता हूँ। दूसरे कामों के लिये आप से वाद को पूछूंगा। क्या उस अनुवाद के छपने के सम्वन्ध में आप 'प्रवासी' के अधिकारियों से मेरा थोड़ा-सा परिचय करा देने की कृपा करेंगे?"[२] चतुर्वेदीजी ने लिखा कि रामानन्द चट्टोपाध्याय से सीधे पत्र-व्यवहार करना ही उचित होगा। "यदि आपकी रचना अच्छी होगी तो वे उसे अवश्य स्थान देंगे।"[३] यह सलाह भी दी कि अनुवाद-कार्य के लिए एक समिति वना लेना ठीक होगा। निराला ने लिखा : "आपके विचारों से मैं सहमत हूँ। मैं वँगला में केवल हिन्दी-साहित्य ही रखना चाहता हूँ। दूसरे साहित्यिकों को भी लूँगा। समिति वाली वात वड़ी अच्छी है। समिति फिलहाल तीन आदमियों की रहे। आप, हजारीप्रसाद और मैं। हजारीप्रसादजी को मैं सूचित कर चुका हूँ, अनुवाद वाली वात। काम अभी मैं करता हूँ। चोटी की वँगला होगी, सरल, आधुनिक; इधर से निश्चिन्त रहिये। आप सभापति हो जाइये। वर्षो का काम है। साथ मेम्वर वढ़ाते जायेंगे। जल्द जवाव दीजिए।"[४]

चतुर्वेदीजी ने असमर्थता प्रकट करते हुए लिखा : "वैसे ही मैं काफी भारग्रस्त हूँ। नई जिम्मेवारी न लूँगा। हाँ, विना वंधन में वँधे कुछ सेवा अपने ढंग पर कर सकता हूँ, वह करता रहूँगा।" इसके वाद उन्होने सम्मेलन की भाषा-सम्वन्धी असहिष्णुता की आलोचना करते हुए, धैर्य और नम्रता से प्रचार-कार्य चलाने की आवश्यकता पर वल दिया। अन्त में उन्होने साहित्य से अपने सम्वन्ध पर कुछ मार्मिक वाक्य

लिखे : "आपके सामने यह बात स्वीकार करने में मुझे कुछ संकोच नही कि मेरी खुद की साहित्यिक साधना करीब-करीब खत्म हो गई है। वैसे भी मैं इस क्षेत्र का आदमी नहीं था। २० वर्ष प्रवासी भारतीयो की सेवा मे व्यय किये थे, पर किसी से मिलकर काम करने की प्रवृत्ति न होने के कारण वह कार्य भी असमाप्त ही रहा। जीवन का मुख्य भाग यो ही नष्ट हो गया। साहित्य तो मेरे लिए रपट पड़ने की हर गंगा ही रहा है। न तो वर्कर ही बन सका, और न साहित्यिक, न खुदा ही मिला न विसाले सनम वाला मामला है। पर अब अड़तालीसवें वर्ष मे साहित्यिक बनने के प्रयत्न में हूँ। खैर, यह सब प्राइवेट बात है। आपने साहित्य-सेवा में कष्ट सहे हैं। उस साधना के बलबूते पर आप बँगला का काम हाथ मे लीजिए।"[५]

बनारसीदास चतुर्वेदी ने निराला पर काफ़ी सम्मतियाँ प्रकाशित की थी। निराला चाहते तो बनारसीदास चतुर्वेदी पर उन्ही की यह सम्मति उनके विरुद्ध इस्तेमाल कर सकते थे। पर इस तरह का कोई विचार उनके मन मे नही आया। बँगला में अनुवाद करने की बात जहाँ की तहाँ रह गई। लेकिन निराला ने बँगला में अपने जीवन से सम्बन्धित एक लेख लिखा।

लखनऊ के कुछ उत्साही बंगाली युवक बँगला मे पत्रिकाएँ निकाल रहे थे। उनका प्रयत्न था कि वह ऐसे लोगो की रचनाएँ छापें जिनकी मातृभाषा बँगला न थी, पर जो बँगला जानते थे और बँगला-साहित्य से प्रेम करते थे। इस सिलसिले मे उन्होंने निराला से लेख की प्रार्थना की। 'वन्दना' में निराला का लेख छपा 'हिन्दी और बँगला'। संपादकीय नोट में उनकी 'वर्तमान हिन्दी काव्ये ख्याति' के अलावा यह उल्लेख भी किया गया कि "तिनि अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य परिषदेर सभापति।" निराला ने लेख शुरू किया : "आमार जन्म बांगलादेशे, हाते खड़ि बागलाय,—अ-आ आगे शिखि। भाल बांगला पड़ा बांगाली छेलेरे मत आमाय शब्देर उपसर्ग धातु प्रत्यय बलते हत। चुयाल्लिश बछर बयसेर बत्रिश बछर एकादिक्रमे बांगला देशे काटाइ। केवल पैते बिये बा जल हाओया बदल करते हले देशे आसा होत, से मास कयेकेर जन्य।"

संपादकों का विचार था कि भाषा मे त्रुटियाँ है जिन्हें सुधारना आवश्यक है। निराला का विचार था कि उन्होंने एकदम आधुनिक 'कलकेशियन बँगला' लिखी है। उन्होंने संपादकों को ताकीद कर दी कि लेख ज्यो-का-त्यो छपे, कही कोई परिवर्तन न किया जाय। हिन्दी मे सताये जाकर वह बँगला से सम्बन्ध जोड़ने को उत्सुक थे, पर यह कार्य बहुत आसान न था।

कभी-कभी वह सोचते, किसी मित्र के यहाँ जाकर रहे, वहाँ चुपचाप लिखने का काम करें। सीतापुर मे अपने एक मित्र राजबख्शसिंह को उन्होने लिखा : "अगर वहाँ रहेंगे तो दूसरों से मिलने का समय नियत रहेगा सिर्फ़ दो घंटे, एक घंटा सुबह, एक घंटा शाम। बाकी वक्त काम करेंगे। आपके बैठक में बहुत गर्मी तो नही लगती? किसी सभा सम्मेलन में नही जायँगे।"[६]

निराला से मिलने-जुलनेवालों का समय हमेशा अनिश्चित रहा था। सवेरे

सात वजे से लेकर रात के दस वजे तक जब्र जिसकी इच्छा होती, चला आता। निराला ने किसी से नहीं कहा—अभी हम लिख रहे हैं, आप फिर आइयेगा। वह सीतापुर गये, लेकिन वहाँ लिखने के कार्यक्रम पर अमल न हो सका।

निराला के मित्र दयाशंकर वाजपेयी कलकत्ते से अस्वस्थ होकर गाँव आ गये थे। निराला ने समझा, पानी वदलने से तवियत खराव हो गई है। ठीक होने पर लखनऊ आने को कहा।

"आने के वाद से तुम्हारी बीमारी वढ़ने का कारण मैं जहाँ तक समझता हूँ, एकाएक पानी का वदलना है। अव तक तुम्हारी हालत सुधर गई होगी। अव कैसी तवियत है, किसी से लिखा देना। जी लगा रहेगा। खुद न लिखना। मस्तिष्क को जोर पहुँचने पर क्षति हो सकती है। चिन्ता न करना। कुछ अच्छे होने पर यहाँ चले आना।"[७]

दयाशंकर वाजपेयी को घातक रोग था। वास्तविक स्थिति जानकर निराला ने लिखा : "समाचार मालूम हुए। दुःख की वात है। मैं १६-१७ को इलाहावाद जा रहा हूँ। लौट कर तुम्हें लिखूँगा। टी० वी० के इलाज के लिए कहाँ तक क्या संभव है, समझूँगा।"[८]

निराला समझ रहे थे, सव उपाय व्यर्थ हैं। उनके अनन्य युवा मित्र कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। वह अव ईश्वर और उसके न्याय के वारे में अक्सर सोचा करते। उन्होंने 'विल्लेसुर वकरिहा' में अपने नायक के वारे में लिखा था—"अपनी जिन्दगी की किताव पढते गये, किसी भी वैज्ञानिक से वढ़कर नास्तिक।" दयाशंकर वाजपेयी को ऊपर उद्धृत पत्र में उन्होंने ऐसा ही एक वाक्य लिखा : "ईश्वर की दुनिया मे आदमी के लिए वहुत थोड़ी जगह है।" निराला की आस्थाएँ भीतर ही भीतर टूट रही थीं।

इलाहावाद से वह गढ़ाकोला गये। वहाँ से अपने पुराने वक्स में पड़ी हुई कुछ पुरानी चिट्ठियाँ वगैरह लाए। सरोज को गंगा के किनारे रखा गया था। उन्होंने दया-शंकर वाजपेयी को लिखा—"कई आदमियों से पूछने पर मालूम हुआ, गंगा की हवा से फायदा पहुँच सकता है। कैसा हाल हैं, जल्द लिखो।"[९]

दयाशंकर वाजपेयी को पहाड़ भेजा जाय तो शायद लाभ हो। इंडियन प्रेस वाले कुआँ खोदने पर जितनी मिट्टी निकले, उसी हिसाव से पारिश्रमिक देते थे। निराला का मन अस्थिर हो रहा था और उनका दूसरा मन यह अस्थिरता देखकर उन्हें सावधान कर रहा था।

भूसामंडी, हाथीखाना, लखनऊ
१-४-४०

प्रिय श्री दयाशंकर,

३, ४ दिन हुए तुम्हारा पत्र मिला था। इलाहावाद से अव तक मेरी तवियत भीतरी सूरत से वहुत खराव थी। इन्डियन प्रेस के मालिक की लडकी की शादी थी, वे लोग कलकत्ता गये थे, कहते है, शादी के वाद से उनके यहाँ रुपये का वड़ा टोटा

है। हम लोगों की राय थी कि तुम्हे पहाड़ भेजें। लेकिन वह नही हो सका। तुम्हारी दवा को चीजें पोस्ट से नही जा सकती। देर हो गई। इस समय रिक्त हूँ। इरादा है कि ३-४ दिन में खुद लेकर, बैसवाड़ा या तकिया से बैलगाड़ी किराये करके जाऊँगा। तुम्हारी दवा का अवश्य अब तक इन्तज़ाम हो गया होगा। पर कुछ फल के साथ तुम्हें देखना हो जायगा। रामकृष्ण की स्त्री गोरखपुर में सख्त बीमार है, प्रसूतिका ज्वर तीन महीने से है।

अधिक क्या लिखूं, मेरे पैर की हालत—उत्तरोत्तर खराब होती जा रही है। इति।

तुम्हारा
निराला

२३ अप्रैल की रात को साढ़े नौ बजे निराला मेरे यहाँ आये। "बड़ा दुखद समाचार है, रामविलास"—उन्होंने कहा। वह बहुत उदास थे। आँखो के नीचे काली रेखाएँ थीं; मुँह सूख गया था। वह नगर नाम के गाँव तक पहुँच पाये थे। वहाँ उन्हे दयाशंकर वाजपेयी की मृत्यु का समाचार मिला। फिर वह आगे न बढ़े, उन्नाव लौट आये। उन्नाव मे चौधरी राजेन्द्रशंकर—सुमित्राकुमारी सिन्हा के पति—के यहाँ दो दिन ठहरकर लखनऊ आये। निराला ने कहा—दयाशंकर बहुत दुर्बल हो गये थे। हमारी लडकी भी बीमारी मे १५-१६ सेर की रह गई थी और व्याह के पहले वह ऐसी स्वस्थ थी कि क्या बताये। शिवशेखर के मार दे झापड़ तो उधर गिरें जाकर।

फिर रामकृष्ण के विवाह की कुछ बातें याद करके वह उग्र स्वर में बोलने लगे—हम रामकृष्ण का जानित है, रामकृष्ण की महतरिहू का। कोहू से कहित नहिन। यत्ता कष्ट होत है, यत्ता कष्ट होत है कि का बताई। बिआहे मँ हमरी सासुजी यहु देखावैं आई रहैं कि हम यतरा खर्च कै सकित है। हम सब बर्दाश्त करत रहेन। गाँव मँ दुइ एकु बातैं हम ऐसी कहा, तुम हमरी मेहरिया का गहनु बेचि लेय वाली को होती रहौ।

भूसामंडी वाले घर मे एक दिन कोई भूमिका बाँधे बिना वह अचानक बोले—इस जिन्दगी से मौत अच्छी; पिस्तौल हो तो गोली मार लूँ।

कुछ दिन बाद वह जीने से उतर रहे थे। सहमी हुई आवाज मे—मानो किसी की मृत्यु की सूचना दे रहे हो—उन्होंने कहा—निराला अब नही है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी कुछ दिन के लिए उन्हें नैनीताल ले गये।

भगवतीचरण वर्मा कलकत्ते से 'विचार' नाम का पत्र निकाल रहे थे। उसमें उन्होने निराला की एक कविता छापी 'बापू के प्रति'। उसके साथ उन्होंने एक संपादकीय नोट दिया, इस प्रकार :

"एक अरसे से कुछ लोगो द्वारा यह शक किया जाता था कि हिन्दी के सुविख्यात कवि, उपन्यासकार, कहानी-लेखक पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की ख्याति की तह मे उनकी कला की श्रेष्ठता इतनी अधिक नही है जितनी उनकी विचित्रता से भरी प्रतिभा है।

"इधर हाल में उनकी विचित्रता से भरी प्रतिभा सीमा तोड़ने पर आमादा हो गई है। अगर ऊल-जलूल बातें लिखना और उनकी घोषणा करना, अगर लोगों की सुरुचि पर प्रहार करना, अगर जनमत अथवा लोकमत की भद्दे तौर से हँसी उडाना ही उत्कृष्ट कला है, तो हम स्वीकार करते है कि निरालाजी का इस युग का सर्वश्रेष्ठ कवि अथवा कलाकार होने का वह दावा जो वह अक्सर मौके-बेमौके उचित-अनुचित ढंग से किया करते हैं, सोलह आना ठीक है।

"पर हमारा खयाल कुछ दूसरा ही है। हम समझते हैं कि निरालाजी का मस्तिष्क उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा विशद कला के गुरुतर भार को सहन नही कर सका! और परिणाम यह हुआ कि उनकी भारती भयंकर रूप में असंयत होकर दुनिया की निर्धारित रूढ़ियों को तोड़ने पर कटिबद्ध हो गई।

"अपनी इस भूमिका के साथ हम निरालाजी की इस युग की सबसे महान कविता 'बापू के प्रति' अपने पाठकों के सामने पेश कर रहे हैं। इस कविता में बापू और मुर्गी तथा निरालाजी और अलारक्खी के सम्बन्ध पर पाठकों का ध्यान आकर्पित करते हुए उनसे एक बार हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि 'निराला की जय' बोलने का अनुरोध करेंगे।"

फैजाबाद सम्मेलन मे निराला ने कहा था—अगर राजनीतिकों ने हिन्दुओं में मुर्गी खाने का प्रचार किया होता तो हिन्दू-मुस्लिम यूनिटी बहुत मजबूत हो चुकी होती।

लोगों ने इसका शुद्ध अभिधेयार्थ ही लिया। ("लोगो ने सुन लिया। लेकिन मतलब वैसा ही समझे, जैसा टण्डनजी के विरोध मे समझे थे।") वैसे ही वर्माजी ने कविता का अर्थ लगाया।

भगवतीचरण वर्मा ने निराला से यह कविता सुनी थी। 'विचार' के लिए उसे भेजने को कहा था। न भेजने पर उन्हें फिर ताकीद की थी। कविता मिल गई तो कविता और अपने नोट की एक प्रूफ-कापी उन्हे भेजी। साथ ही पत्र मे लिखा कि 'हमारा—यानी आपका और मेरा साहित्य के मसले पर मतभेद बड़ा स्पष्ट रहा है; पर व्यक्तिगत मैत्री का भाव भी बहुत ऊँचा रहा है। यह नोट साहित्य-क्षेत्र का है, इससे व्यक्तिगत मनोमालिन्य न आने पावे, उसकी मैं आशा करूँगा। पर यदि आप समझते हैं कि व्यक्तिगत मनोमालिन्य आ सकता है तो आप मुझे स्पष्ट लिख दीजियेगा। ऐसी हालत मे मैं यह कविता न छापूंगा; क्योंकि कविता इस नोट के साथ ही छापने को तैयार हूँ।"[१०]

निराला ने उत्तर लिखा :

प्रिय भगवती बाबू,

आपका पत्र, नोट और मेरी छपी कविता मिली। अवश्य छापिये। इसमे बुरी बात मुझे कोई नही नजर आती—दार्शनिक रूप स्पष्ट है, आँखे चाहिये। हाँ, नोट में आप इतना लिखना भूल गये हैं कि यह रचना आपने छापने के लिए खुद माँगी थी और न भेजने पर फिर याद भी दिलाई थी। आपने जैसे और अनेकों का जो मेरी कला के सम्मतिदाताओ मे उल्लेख किया है, यह उनके प्रति आपकी उदारता है; उनके नाम भी आप लिख देते तो पाठकों को भ्रम मे न पड़ना पड़ता। रही बात आपके

कलाज्ञान के सम्बन्ध में मेरी, यह आप जानते हैं—मैं आपका कितना कायल हूँ।

मेरे कुछ मित्रों को आपका नोट बहुत पसन्द आया है, छपते ही वे आपके कला-ज्ञान की, सौजन्य-शिष्टता की तारीफ़ करेंगे, कहते है। आप अपनी प्रसिद्धि से घबराइयेगा नही, यद्यपि आप जैसे उदारचेता से घबराहट की ही आशा बँधती है। विश्वविद्यालय की कृपा से ये लोग मेरी तरह अज्ञातकुलशील नही। सुना श्रीनारायणजी चतुर्वेदी आपको व्यंग्य मे सम्मति देने वाले है। भगवती बाबू, ईश्वर जाने बहुत दिनो से अच्छी कलापूर्ण बातें नही पढी। न छाप कर इनकी जड न मारियेगा।

आपका

निराला

निराला ने जब कविता भेजी थी तब यह समझकर भेजी थी कि 'विचार' में छपेगी। लेकिन उन्होने यह कल्पना न की थी कि उनके विरुद्ध प्रचार के लिए भगवती-चरण वर्मा इस तरह के नोट के साथ उसे छापेंगे। अब उनसे न छापने को कहना अपने को कायर सिद्ध करना होगा। इसलिए उन्हें प्रत्युत्तर के लिए सावधान रहने को कह कर छापने की अनुमति दी।

भगवतीचरण वर्मा ने अपने पत्र मे लिखा था कि निराला से उनकी व्यक्तिगत मैत्री का भाव बहुत ऊँचा रहा है। ऐसी स्थिति में उन्होने कविता तभी छापी होगी जब उसे निराला की प्रतिनिधि-रचना माना होगा, निराला के सम्बन्ध में फैले हुए भ्रमों को दूर करने के लिए उस तरह के नोट के साथ उसे छापना आवयश्यक समझा होगा। नोट मे यह क्यों नहीं लिखा कि स्वयं उन्होने निराला से आग्रहपूर्वक कविता मँगाई थी—यह स्पष्ट नही है।

निराला की वह कविता इस प्रकार है :

बापू, तुम मुर्गी खाते यदि
तो क्या भजते होते तुमको
ऐरे-गैरे नत्थू खैरे—?—
सर के बल खड़े हुए होते
हिन्दी के इतने लेखक कवि?

बापू, तुम मुर्गी खाते यदि
तो लोकमान्य से क्या तुमने
लोहा भी कभी लिया होता?—
दक्खिन मे हिन्दी चलवा कर
लखते हिन्दुस्तानी की छवि,
बापू, तुम मुर्गी खाते यदि?

बापू, तुम मुर्गी खाते यदि
तो क्या अवतार हुए होते

कुल-के-कुल कायथ बनियों के ?
दुनिया के सबसे बड़े पुरुष
आदम-भेड़ों के होते भी !
बापू, तुम मुर्गी खाते यदि !

बापू, तुम मुर्गी खाते यदि
तो क्या पटेल, राजन, टंडन,
गोपालाचारी भी भजते ?—
भजता होता तुमको मैं औ
मेरी प्यारी अल्लारक्खी,
बापू, तुम मुर्गी खाते यदि।

यह निराला की प्रतिनिधि कविता नहीं थी, पर सन् '४० के निराला की प्रतिनिधि रचना अवश्य थी। यह उस कवि की रचना थी जिसकी पुरानी आस्थाएँ टूट चुकी थीं और उनकी जगह नये विश्वास पनपे न थे। यह लोगों की सुरुचि पर नहीं, कांग्रेसी राजनीति की कुटिलता पर प्रहार था। निर्धारित रूढ़ियों को तो निराला बहुत दिनों से तोड़ते आ रहे थे। अब कुछ ऐसी रूढियाँ तोड़ रहे थे जो निर्धारित नहीं थीं, जिनमें प्रवंचना और आत्म-प्रवंचना का मायाजाल रूढ़ि न कहलाकर देशभक्ति, भारतीय संस्कृति आदि सुन्दर नामों से याद किया जाता था। उस समय इस माया-जाल में कहीं भगवतीचरण वर्मा भी फँसे हुए थे। निराला पर अब तक जो पत्थर फेंकते आये थे, वे इस बात से नाराज़ हुए थे कि निराला ने उलटकर एक ढेला उन पर भी फेंक दिया।

निराला हँस रहे थे वेदान्त पर, समाजवाद पर, कांग्रेसी नेताओं पर, छायावाद पर, अपनी समस्त पुरानी मान्यताओं पर। नाम से ही हास्यास्पद 'कुकुरमुत्ता' को अपना अस्त्र बनाकर उन्होंने उसे ब्रह्म के समान विश्वव्यापी बना दिया, उसके सहारे उन्होंने सबसे बदला लिया। वे जो अपने को सभ्य, शालीन और सुसंस्कृत समझते थे, कुकुरमुत्ता से ओछे साबित हुए। बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी की दुनिया पर हँसता हुआ—

वहीं गन्दे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठा सर ऐंठ कर बोला कुकुरमुत्ता।

कालिदास के सौन्दर्य, गुलाब की खुशबू, मैदानेजंग छोड़ औरत की जानिब भागनेवाले काव्य-प्रेमी, छायावादी संसार के स्वप्नदर्शी कवि पर हँसता हुआ कुकुरमुत्ता—

ख्वाब में, डूबा चमकता हो सितारा,
पेट में डंड पेलते चूहे, जबाँ पर लफ्ज प्यारा।

भारत का छत्र, यूरोपियनों का पैराशूट, विष्णु का सुदर्शन चक्र, यशोदा की मथानी, राम का धनुष, रुपया-पैसा, डमरू, वीणा—ये सभी कुकुरमुत्ता-ब्रह्म के ही अनेक रूप हैं। उसमें व्यास और वाल्मीकि ने गोते लगाये; उसके भीतर से भास-कालिदास ने

पोथे निकाले, हाफ़िज और रवीन्द्रनाथ टुकुर-टुकुर उसकी करामात देखा किये। कही का ईंट, कही का पत्थर, टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा—आधुनिकतावादियों के आचार्य कुकुरमुत्ता से बड़े नही। डिक्टेटर, मुक्खड़ फालोअर, दुम हिलाते टेरियर जैसा आधुनिक पोएट—सब निराला के व्यंग्य के शिकार। लेकिन कुकुरमुत्ता सिर्फ एक ढेला था जो उन्होंने हल्ला मचाती हुई भीड़ पर फेंक दिया था।

कुकुरमुत्ता सब पर हंसता है पर वह स्वयं हास्यास्पद है। निराला उस पर हँसते हैं। लेखकों मे लंठ जैसे खुशनसीब—कहकर उसे चिढ़ाते है। कविता के अन्त में उसका कलिया-कबाब बनाकर उन्होंने उसकी अन्त्येष्टि भी कर दी। कविता की 'गुलाबी उर्दू'. 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' की भाषा की तरह, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' की उदात्त शब्दावली पर मानो हँस रही थी। हीरोइक, उदात्त, सब्लाइम—क्या ये सब प्रवंचना नही है? दुख से सताये हुए को इस प्रवंचना से मतलब? मोह से मुक्ति ही ज्ञान है; भ्रमों का विनाश रहस्यवादी के प्रकाश से कम महत्त्वपूर्ण नही है। कोई आश्चर्य नही, निराला की दृष्टि मे 'कुकुरमुत्ता' उतनी ही महत्त्वपूर्ण रचना थी जितनी 'तुलसीदास'।

शृंगार के रूमानी सपने—किसी समय कितने अच्छे लगते थे? रवीन्द्रनाथ की विजयिनी—सरोवर से नहाकर निकलती हुई, नग्न शरीर पर प्रकाश और छाया का खेल, सीढियों पर गीले चरणों के चिह्न! निराला को उस सब पर हँसी आ रही थी। उन्होंने रवीन्द्रनाथ के शृंगार-स्वप्न पर व्यंग्य करते हुए कविता लिखी—'खजोहरा'। महिषादल की स्मृतियों का सहारा लेकर उन्होंने एक प्रौढ़ा नायिका—बुआ—को सरोवर में उतारा—

उतरी ज्यो टैगोर की विजयिनी हों।

विजयिनी के सुकुमार अंगों की जगह उनके पैर नीव के खम्भों-जैसे थे, वह ताल में हथिनी-जैसी पैठी। उन्होंने विजयमद मे अपने भुजदण्ड देखे। रवीन्द्रनाथ की कविता मे कामदेव विजयिनी का सौन्दर्य देख रहा था। निराला की कविता मे उसकी जगह ली खजोहरा ने! बुआ ताल से भागी; सारे बदन मे खुजली। अँधेरा हो गया था, सौभाग्य से किसी ने देखा नही।

निराला 'विजयिनी' के साथ खुद अपनी जवानी के रंगीन सपनो पर हँस रहे थे।

निराला कुशल अभिनेता थे। श्रीनारायण चतुर्वेदी की बैठक—सिविल लिबर्टी लॉज—मे किसी की जबान पर कोई प्रतिबन्ध न था। साहित्य-प्रेमियो का जमघट होता। निराला जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी की तरफ उँगली उठाकर 'कुकुरमुत्ता' की पंक्तियाँ सुनाते—

रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी।

ज़ोर के ठहाके। हँसी के उस वातावरण मे यह दिखाई न देता था कि निराला के व्यंग्य के नीचे कही करुणा का स्रोत प्रवाहित है। वह हँसते थे उन पर जो शालीन, सभ्य, सुसंस्कृत बनते थे। जो निर्धन, असभ्य, असंस्कृत थे, निराला उनसे एकात्मभाव

स्थापित कर रहे थे—

धूल में तुम मुझे भर दो।
धूलि धूसर जो हुए पर
उन्हीं के वर वरण कर दो।

वह अपने को देखते थे—शिथिल होता शरीर, सर में जहाँ-तहाँ सफेद वाल विछुड़ते हुए मित्र, संसार में अकेला कवि, सामने केवल मृत्यु—निराला का मन अपने ही प्रति करुणा से विगलित हो उठता था :

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
पके आधे वाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला।
जानता हूँ, नदी झरने,
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख,
कोई नहीं भेला।

पार जाने को नाव नहीं है। विश्वास की नाव डूव चुकी थी और निराला हँस रहे थे। करुणा और हास्य का अद्भुत मिश्रण, मानो वह जीवन में प्रत्यक्ष सिद्ध कर रहे थे कि सव रस मूलतः एक हैं।

निराला एक कविता लिखने का विचार कर रहे थे—प्रसाद पर। वह 'कामायनी' पढ़ रहे थे और 'सुधा' के लिए उन्होंने एक छोटी-सी समीक्षा लिखी। डारविन के विकासवाद का खंडन करते हुए, 'वर्तमान धर्म' के कश्यप, दिति, अदिति के उल्लेख के साथ, ज्ञान से सृष्टि और मानव-समाज की रचना का रहस्य समझाया। माया की व्याख्या "हज़ारों वर्षों से आज तक वहुत कम लोगों की समझ में" आई है, यह भी वताना वह न भूले। प्रसाद ने कामायनी के आरंभ में जड़-चेतन का भेद मिटा दिया था—

एक तत्त्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

निराला ने सृष्टि तत्त्व की जो भूमिका वाँधी थी, उससे ये पंक्तियाँ मेल न खाती थीं। उन्होंने दो वार लिखा—उसे जड़ कहो या चेतन। वात गले से न उतर रही थी, पर उसके विरोध में कुछ न लिखा। इसके विपरीत उन्होंने लिखा : हिन्दी के युगांतर साहित्य के तीन प्रजापति हैं—प्रेमचन्द, मैथिलीशरण, प्रसाद। प्रसाद-साहित्य में जिस भावना का स्रोत है, उसी का कलरव हिन्दी के विशाल क्षेत्र में सुनाई दे रहा है। 'कामायनी' रहस्यवाद का प्रथम महाकाव्य है। "वर्तमान युग के प्रवर्तक कविश्रेष्ठ"

प्रसाद की "ऐसी किताब, मनुष्य-मन का इतना अच्छा चित्र, जिस समझदारी के साथ चित्रित हुआ, मैंने हिन्दी और बँगला के नवीन साहित्य में नही देखा।"

अपने को हिन्दी के प्रजापतियो, युगान्तरकारी साहित्यस्रष्टाओं की पंक्ति से उन्होने नम्रतापूर्वक अलग रखा। 'कामायनी' उस युग का श्रेष्ठ भारतीय महाकाव्य है, सन् '४० में यह कहनेवाले निराला ही थे। उनका विचार था कि वह अन्य लेख मे विस्तार से 'कामायनी' पर लिखेंगे पर उसकी नौबत न आई।

निराला ने प्रसाद पर कविता लिखी; प्रसाद के साथ उन्होंने हिन्दी के समूचे नवीन साहित्यिक विकास पर यह कविता लिखी। ऋतुओं के रूपक मे प्रसाद के जीवन को बाँधा, पर जिस उदात्त स्तर पर वह कविता रचना चाहते थे, उस तक उनका स्वर अब चढ न पा रहा था। बहुत जगह सपाट पंक्तियाँ आ रही थी जैसी अब तक उनकी रचनाओ मे कम आई थी। पर जहाँ उनका मन सध गया था, वहाँ स्वर में एक नयी शान्त स्निग्धता आई, जैसी 'प्रलय चल रहा अपने पथ पर' अथवा 'श्याम तामरस दाम शरीरम्' मे थी।

प्रसाद की मृत्यु :

अन्धकार कारा यह, बन्दी हुए मुक्तिघन

प्रसाद का जीवन :

जीना सिखलाने को कर्मनिरत जीवन से
मरना निर्भय मन्दहासमय महामरण से।

प्रसाद और जातीय साहित्य का संबन्ध :

पिया गरल पर किया जाति-साहित्य को अमर।

प्रसाद का संघर्ष :

धारा झरझर झरी, घटा फिर फिर घिर आई
सौ सौ छन्दों मे फूटी रागिनी सुहाई।

प्रसाद की विजय :

तुम वसन्त-से मृदु, सरसी के सुप्त सलिल पर
मन्द अनिल से उठा गये हो कम्प मनोहर।

प्रसाद के साथ एक नया युग :

हे चतुरंग, तुम्हारी विजय ध्वजा धारण कर
खड़े सुमित्रानन्दन, देवी, मोहन, दिनकर।

प्रसाद के साथ निराला :

रहा साथ मैं नत मस्तक, सेवा को; अग्रज,
चले गये तुम धरा छोड़ गौरव-विजय ध्वज!

काशी से प्रसाद-परिषद् ने निराला को आमंत्रित किया। ३० सितम्बर को उनके सभापतित्व मे परिषद् का अधिवेशन हुआ। कुछ कवियो ने कविताएँ पढी। निराला को मानपत्र दिया गया। निराला भावावेश मे थे। बनारस के साथ, प्रसाद के साथ उनके जीवन की कितनी स्मृतियाँ जुड़ी थी। प्रसाद का निधन उन्हें नये सिरे से

दुख दे रहा था मानो पहले उसकी दारुणता उन्होंने अच्छी तरह पहचानी न हो। वह प्रसाद का व्यक्तित्व देख रहे थे जो निराला की तरह विचलित न होकर, धैर्य से एक क्षण नष्ट किये विना, अपनी साधना में लगा रहा। वह प्रसाद में अपना प्रतिविम्व देख रहे थे जो गरल पीकर साहित्य को अमृत दे रहा था। वह कविता पढने उठे; जितना शब्दों में व्यक्त कर पाये थे, उससे बहुत ज्यादा मन में था। कई जगह कंठावरोध हुआ, सँभले; आगे वढ़े। अंत में—

रहा साथ मैं नत मस्तक, सेवा को—

कहते-कहते वह फूट पड़े। 'अग्रज' गले में अटक कर रह गया। वह सिसकते हुए हाथों से मुंह दावे अपनी जगह वैठ गये।

१३

नरक-यात्रा

दुलारेलाल भार्गव से संवन्ध तोड़ने के वाद कुछ दिन तक लीडर प्रेस से निवह गई, लेकिन यह निवाह चार दिन की चांदनी-जैसा अस्थायी साबित हुआ। इंडियन प्रेस के लिए अनुवाद किये; उनसे भी मन-मुटाव हुआ। फिर दुलारेलाल भार्गव का दरवाज़ा खटखटाया; वह एकाध किताव छापने को तैयार हो गये। अव उनकी पत्नी सावित्री भार्गव संचालन-संपादन कार्य में सहायता करती थी। उन्हे निराला-जैसे सहायक की आवश्यकता न थी। निराला इस प्रकाशक से उस प्रकाशक के यहाँ भटक रहे थे। स्थायी रूप से अव वह कहीं एक जगह रह भी न रहे थे। कभी लखनऊ, कभी इलाहा-वाद, कभी सीतापुर, कभी काशी। इस तरह वह जमकर काम न कर पा रहे थे।

उन्नाव मे चौधरी राजेन्द्रशंकर ने प्रकाशन-कार्य आरंभ किया था। निराला उनके यहाँ से कुछ किताबे निकलवा रहे थे। उनकी पत्नी सुमित्राकुमारी सिन्हा कविताएँ और कहानियाँ लिखती थी। निराला ने उनके कहानी-संग्रह 'अचल सुहाग' पर एक समीक्षा लिखी जो 'माधुरी' में प्रकाशित हुई। "कहानियां मौलिक और बिलकुल नया रुख लिये हुए है।...प्रेम के संवन्ध मे वदलती हुई धारणा मे महिलाओं की प्रतिनिधि की हैसियत से, कवयित्री सुमित्राकुमारी ने वड़ी निर्भीकता दिखाई है।"

'हंस' में निराला की कुछ कविताएँ छपी थी। श्रीपत राय चाहे तो अच्छे दाम देकर उनकी किताबे छाप सकते हैं। वाचस्पति पाठक के यहाँ से उन्होंने इस संवन्ध मे शिवदानसिंह चौहान को पत्र लिखा :

C/o The Leader
Alld.
1-7-41

प्रिय शिवदानसिंहजी,

आपके पत्र का देर से जवाव लिख रहा हूँ। मै आपको 'खजोहरा' एक लंबी कविता पहले छापने के लिए भेजूंगा। फिर लेख कहानी। अभी तक बुरी तरह उलझा रहा अपने आप मे। काम वहुत अच्छा नही कर सका, कुछ किया है। श्रीपतिजी से भी

बात पूरी नही कर सका। मुझे रुपये भी चाहिए। Education Expansion officer एक किताब की ३०० प्रतियाँ ले लेंगे। 'बिल्लेसुर' तैयार कर रहा हूँ। 'कुकुरमुत्ता' संग्रह भी तैयार है। श्रीपतिजी हों तो जल्द मुझे लिखें। यहाँ दूसरे लेने वाले हैं पहला संस्करण।

आप अच्छी तरह होंगे। आपकी भाषा मुझे पसन्द है। जल्दी में हूँ। नमोनमः।

आपका—

निराला

काफी मजबूरी मे उन्होंने ऐसा पत्र लिखा था।

अबोहर मे साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा था। सभापति चुने गये अमरनाथ झा। कवि-सम्मेलन के संयोजक थे उदयशंकर भट्ट। उन्होने निराला को पत्र लिखा कि वह कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करें। निराला ने ५००) की माँग की। स्वागताध्यक्ष स्वामी केशवानन्द के विशेष आग्रह करने पर भट्टजी ने निराला को लिखा कि वह ५००) की माँग छोड़ दें और जो कुछ भी सम्मेलन दे, स्वीकार कर लें। निराला मान गये। सम्मेलन वालों की योजना थी कि कवि-सम्मेलन के सभापति को आने-जाने का किराया-भर दिया जाय। निराला गेस्ट हाउस में ठहराये गये। उनके साथ उसी कमरे में सर्वदानन्द वर्मा भी ठहरे। अन्य लोग स्कूल या तंबुओं मे ठहराये गये। यहाँ उनका परिचय कवयित्री चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' से हुआ। उनके जेठ चन्द्रशेखर शास्त्री निराला की प्रथम 'अनामिका' के सम्मतिदाताओ में, 'मतवाला'-मंडल के परम हितैषी थे। चन्द्रमुखीजी, उनकी बहन, उनके परिवार के लोग दारागंज इलाहाबाद में रहते थे। क्रमशः इन सबसे निराला का घनिष्ठ परिवार-जैसा नाता हो गया।

अबोहर के सम्मेलन में ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' भी गये थे। उन्होंने निराला से पूछा—आप सम्मेलन में दिखाई नही पडे ? निराला अमरनाथ झा के सभापतित्व में होनेवाले अधिवेशन मे न गये थे। उनका विचार था कि बडे बाप के बेटे होने और युनिवर्सिटी के प्रोफेसर होने से अमरनाथ झा सभापति चुने गये हैं, हिन्दी-सेवा के कारण नही।[1] झा जी ने कहा भी था, हिन्दी उनकी मातृभाषा नही, राष्ट्रभाषा है; मातृभाषा मैथिली है।

सम्मेलन के कर्णधार हिन्दी का सम्बन्ध हिन्दू संस्कृति से जोड़ते थे और हिन्दू संस्कृति का निरामिष भोजन से। निराला के परम हितैषी पुरुषोत्तमदास टंडन और संपूर्णानन्द भी विद्यमान थे। निराला ने दिखा-दिखाकर खाया-खिलाया, पी और पिलाई, जो पहले खीझे हुए थे, उन्हे और खिझाया। निराला के चरित्र को लेकर रोमाञ्चक कहानियाँ सुनाई गईं और कविता से अधिक उनकी चर्चा—वर्षों तक हरिद्वार से काशी तक—होती रही।

निराला के कमरे मे उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आये। 'तुम तुंग हिमालय शृंग' की उन्होंने पैरोडी लिखी थी। निराला को सुनाने लगे—

तुम पामदाम के ढलम ढाम
मैं पाल पलीपल पील,

तुम हरम शरम के तुलम ताम
मैं तरर तामली तील।
तुम द्रुम्म और मैं द्रान्ति
तुम झुरामान जुम जुंझमार
मैं चीम जीम जुम जान्ति।

रात को जब कवि-सम्मेलन हुआ तब निराला ने वही पैरोडी सुनाने को कहा। 'अश्क' ने निराला के हाथ झटकने की नकल करते हुए पैरोडी पढ़ी। निराला ने उनकी पीठ ठोकी।

किन्ही पंजाबी कविता-प्रेमी सज्जन ने किसी कवि के कविता-पाठ से प्रसन्न होकर दो रुपये का पुरस्कार दिया। इसके बाद जो कवि पढ़ने आये और निराला को पसन्द आये, उन्हें अपनी जेब से उन्होने पुरस्कार दिये। जेब खाली होने पर हाथ से लिखकर प्रमाणपत्र दिये। जो गा लेते थे, वे जमे; जो यों ही पढ़ते थे, वे उखडे। शोरगुल होने पर निराला ने अपने कविता-पाठ से लोगो को शान्त किया।

विद्वानो की राय में निराला के व्यवहार से साहित्य-सम्मेलन की प्रतिष्ठा को धक्का लगा, स्वागताध्यक्ष स्वामी केशवानन्द तिलमिला उठे, साहित्यिक दुनिया से उन्हें विरक्ति हो गई, अबोहर का साहित्य-सदन छोड़कर वह देहातियों की सेवा करने लगे, संपूर्णानंद और पुरुषोत्तमदास टंडन बहुत दुखी हुए और तेगराम की सम्मति-पंजिका मे संपूर्णानंद ने लिखा—"सम्मेलन के अधिवेशन पर कवि-सम्मेलन का आयोजन करना बन्द हो जाना चाहिए।"[२]

कुछ वर्ष बाद सम्मेलन-भवन में सरकारी ताला पड़ गया। किनके चरित्र से ऐसा हुआ—इसकी विशेष चर्चा हिन्दी में न हुई।

गेस्ट हाउस मे निराला के खाने-खिलाने, पीने-पिलाने में लगभग पचास रुपये का बिल आया। उदयशंकर भट्ट ने कहा—बिल के रुपये स्वागत समिति दे। स्वागत समिति ने इन्कार किया। भट्टजी ने उस समय अपनी जेब से रुपये दिये; फिर काफी परिश्रम के बाद स्वागत समिति से वसूल पाये।

अबोहर से अनेक साहित्यकार और निराला लाहौर गये। वहाँ एक बीमा कंपनी के मैनेजर के यहाँ निराला को ठहराया गया। यहाँ भी निराला ने अपने खाद्य और पेय की माँग की। उदयशंकर भट्ट बुलाए गये। निराला ने परिस्थिति समझकर कहा कि वह मिस्टर जैन के ही यहाँ रहेंगे और न गोश्त खायेंगे, न शराब पियेंगे। मिस्टर जैन प्रसन्न हुए। निराला की शान मे बड़ी पार्टी दी। लाहौर के प्रतिष्ठित जन एकत्र हुए। कवि-सम्मेलन का सभापतित्व निराला ने किया। सबको सुन लेने के बाद अंत मे कविता पढ़ने के लिए काफी धैर्य चाहिए। निराला का धैर्य चुकने लगा तो सभापति के अधिकार का पूरा उपयोग करते हुए वह बीच में ही कई बार कविता सुनाने खड़े हुए, विशेषकर जब कोई कवि जमता और जनता वाह-वाह करती तो वह अपने कला-प्रदर्शन के लिए सचेष्ट हो जाते।

हाईकोर्ट के एक जज, गवर्नमेंट कालेज के अंग्रेजी के एक प्रोफेसर, अनेक उर्दू शायर निराला से मिलने आये। दो महिलाएँ दर्शनों को आयी तो निराला उनसे अंग्रेजी में बोले। जब निराला लाहौर से चले तब उन्हें विदा करने स्टेशन पर दो-ढाई सौ आदमी एकत्र थे।[३]

बिहार में निराला के मित्र और प्रशंसक बुला रहे थे। मुजफ्फरपुर के साहित्य-प्रेमियो ने सुहृद-संघ के वार्षिकोत्सव में उन्हे आमंत्रित किया। वहाँ भाषण और कविता-पाठ के बाद निराला अपने प्रिय मित्र शिवपूजन सहाय से मिलने छपरा गये। वह राजेन्द्र कालेज में अध्यापक थे। वहाँ भी निराला का बड़ा सम्मान हुआ और उनके कविता-पाठ की धूम रही।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्वर्गवास हुआ। बहुत आत्मीयता का सम्बन्ध न था, फिर भी निराला ने उन पर एक कविता लिखी। पिछले दिनों फैजाबाद और बनारस में संपर्क होने से दोनों परस्पर आकृष्ट हुए। देहावसान से कुछ दिन पूर्व शुक्लजी लखनऊ भी आये थे। निराला ने सारा विरोध-भाव भूलकर उन्हें श्रेष्ठ आलोचक के रूप में स्मरण करते हुए लिखा :

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर।

इसके बाद भाव-स्रोत जैसे सूख गया। उन्होंने तिथियों का हिसाब लगाकर उन्हे पूर्ण कलाधर सिद्ध किया।

देश में उथल-पुथल मची थी। युद्धजनित कठिनाइयों से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। गांधीजी ने भारत-छोडो का नारा दिया था। जगह-जगह पुलिस अथवा फौज से जनता की टक्कर हो रही थी। निराला कुछ दिन कर्वी मे रामलाल गर्ग के यहाँ रहे। वहाँ चोरों ने सेंध लगाकर गहनों के बक्स चुरा लिये। पुलिस ने पूछताछ के लिए निराला को भी घेरा।

स्फटिक शिला पर उन्होंने एक लंबी कविता लिखी, प्रकाशक से रुपये मँगाये थे, उसने भेजे नही। ये सब समाचार उन्होने केदारनाथ अग्रवाल को लिखे :

मारफ़त पं० रामलाल गर्ग, कर्वी, बाँदा।
२३-६-४२

प्रिय केदार बाबू,

आपका प्रिय पत्र मिला। मै भरकोरा (पहाड़ी) रहता हूँ। पत्र की सुविधा के लिए यह पता रखा है। पहले कुछ दिन वहाँ भी ठहरा था। वहाँ से फिर इस बार चित्रकूट गया और 'स्फटिक शिला' एक लम्बी कविता लिखी। नागरजी का पत्र मुझे भी मिला है। आपका उत्तर देखने की प्रतीक्षा है। इस समय राजापुर में पं० राम-बहोरीजी शुक्ल से मिलने का विचार है। आपसे मिलने की भी उत्कंठा है। अपने प्रकाशक से रुपये मँगाये थे, अभी तक उनका उत्तर नही मिला। 'बिल्लेसुर बकरिहा' निकल गया है। मेरे पास ५ प्रतियाँ भेजी गई थी। आपको एक देना चाहता हूँ।

यहाँ गर्गजी के मकान मे चोरी हो गई। उनकी और उनके मित्र की अमानत मे रखी वक्से सेध से निकाल ली गयी।

आपका—निराला

रामप्रसादजी अग्रवाल से मेरी मुलाकात नही हुई।

—नि०

केदारनाथ अग्रवाल ने निराला को वाँदा आने का निमंत्रण दिया। निराला ने लिखा, वाँदा न आ सकेगे; केदार कर्वी आ जायँ तो स्टेशन पर मिलेंगे, 'विल्लेसुर' की प्रति दे देगे, किसी मित्र के यहाँ या धर्मशाला में रात-भर रहकर वातचीत करेंगे। निराला निश्चित दिन पर कर्वी गये। केदार आये नही। इसके वाद निराला वीमार हो गये। इस वार मलेरिया ने करीव तीन महीने उन्हे सताया। श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उनकी बीमारी का समाचार सुना तो उन्हें इलाहावाद अपने पास वुला लिया। उनका वजन लगभग साठ पाउंड घट गया था। मैं उन्हें देखने गया। रात हो गयी थी। नीचे के कमरे मे वैठे कुल्हड से वह कुछ खा रहे थे। सर पर टोपा लगाये थे। हल्की रोशनी थी। वह इतने दुवले हो गये थे कि मैं पहचान न पाया। पूछा—यहाँ कही निरालाजी रहते है? कही दूर से जैसे धीमी आवाज़ आयी— आओ।

कर्वी से आये काफी समय हो गया था। जव वह बीमारी से उठे होगे तो हड्डियो का ढाँचा रह गये होगे। उनकी वातचीत से लगा, इनका मन थकता जा रहा है। वहाँ जिस तरह के लोगो से वह मिलते-जुलते थे, उनमे निराला के प्रति सहानुभूति की कमी मालूम हुई।

निराला इस वात का हिसाव लगाये थे, वीमारी के वाद कौन उनसे मिलने आया, कौन नहीं आया। पंत इलाहावाद आये और वच्चन के यहाँ ठहरे। वह श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहाँ भी गये; उनके साथ 'लोकायतन' के लिए झूँसी में जगह देखने गये, पर निराला से न मिल सके। निराला ने महादेवी वर्मा से—जो स्वयं अस्वस्थ थी—शिकायत करते हुए कहा, "आपके साहित्यिको मे एक भी मुलाकात करने नही गये। इसमे कोई हर्ज नही, पर मुझे अच्छा नही लगा। वीमारी मे मिलने-जुलने की इच्छा भी वहुत प्रवल हो उठती है, यो शिकायत की जरूरत नही, सव चलता है।"[४]

तरुण लेखको मे गंगाप्रसाद पाण्डेय उनके यहाँ अक्सर आते थे। उन्होंने इलाहा-वाद के लेखको के वारे मे शिकायत की थी—"प्रयाग निवासी साहित्यिक साथियो का निराला के पास उस मरणासन्न स्थिति मे भी न जाना मेरे लिए आज भी रहस्यवाद का विपय है।"[५]

आगरे से पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' अपनी पुस्तक 'मैं इनसे मिला' के सिलसिले मे जव निराला से मिले तव उनका अनुभव भी कुछ ऐसा ही था : "इन चार दिनो मे मैं इलाहावाद के दर्जनों साहित्यकारो से मिला। परन्तु सवने एक ही प्रश्न पूछा कि निरालाजी कैसे है।" जिस इलाहावाद मे वालकृष्ण भट्ट ने अपने को हिन्दी-सेवा मे होम दिया था, वहाँ अव पंडागीरी का वोलवाला था और पंडों के लिए अभी निराला देवता न वने थे, इसलिए निराला का नाम सुनकर वे हँसते थे।

वयस्क साहित्यकारों में भगवतीप्रसाद वाजपेयी निराला के साथ इन दिनों बराबर रहे। निराला को मांस खाने की इच्छा हुई; चतुर्वेदीजी के यहाँ यह संभव न था; वाजपेयीजी उन्हें अपने यहाँ ले आये।

जिन दिनों निराला कर्वी में ज्वरग्रस्त उपवास कर रहे थे, उन्ही दिनों लखनऊ में उनके परम प्रिय मित्र बलभद्र दीक्षित का देहावसान हुआ। उन्होने रेडियो की सरकारी नौकरी छोड़ दी थी, कसमंडा राज्य की गैर-सरकारी नौकरी वह पहले ही छोड चुके थे। अपने आदर्शों के अनुसार उन्होने जनता के बीच रहकर उसे शिक्षित करने, उसी की तरह खेतों में काम करने और गाँव में रहते हुए साहित्य लिखने का निश्चय किया। उनके बड़े लडके बुद्धिभद्र दीक्षित ने भी रेडियो मे काम करना बन्द कर दिया। पढ़ीस जी ने कुलीन ब्राह्मणों की रूढ़ियाँ तोड़कर हल की मुठिया पकड़ी। अछूत बालकों को घर पर पढाने लगे। उनके दुबले-पतले मुख पर परिश्रम की थकान दिखाई देने लगी पर आँखों में नई चमक आयी, वाणी में नया ओज आया।

एक दिन हल जोतते हुए उनके पैर मे फाल लग गया। तुरत उपचार न होने से घाव विपाक्त हो गया। उन्हे बलरामपुर अस्पताल मे भर्ती कराया गया। वही उनके शरीर का अन्त हुआ। उनसे जितने लोग परिचित थे, उन्हें हृदय से प्यार करते थे। उन सबके लिए उनकी मृत्यु पारिवारिक दुर्घटना के समान थी। उनके बडे पुत्र बुद्धि-भद्र पिता के समान प्रतिभाशाली, कुशल संगीतकार और लेखक, वैसे ही कर्मठ थे। पढ़ीस-बुद्धिभद्र में पिता-पुत्र का ही नहीं, मित्रों-जैसा सम्बन्ध भी था। बुद्धिभद्र पिता की प्रतिभा से परिचित थे, उनकी रचनाओं का महत्त्व पहचानते थे, उन्हे बेहद चाहते थे। उनकी मृत्यु का उन्हें भारी आघात लगा। जाड़े के दिनों में वह खेत में पानी लगा रहे थे। सर्दी लगी, निमोनिया हुआ और उनकी जीवन-लीला भी समाप्त हो गयी। छह महीने के अन्दर पिता-पुत्र दोनों न रहे। निराला कर्वी में थे। वहाँ उन्हे पढीसजी की मृत्यु का समाचार मिला, इलाहाबाद में बुद्धिभद्र की मृत्यु का। उनका मन शोक से संज्ञाशून्य-सा हो गया।

उन्होने लिखा : "दीक्षित के लिए बहुत सोचता हूँ, मगर वह नस मेरी कट चुकी है जिसमे स्नेह सार्थक है: अपने आप दिन-रात जलन होती है। किसी से अपनी तरफ से प्रायः नही मिलता। मिल नही सकता। कोई आता है तो थोडी-सी बातचीत। आनेवाला ऊब जाता है। मुझे भी बातचीत अच्छी नही लगती। कभी रात भर नींद नहीं आती। तम्बाकू छूटती नहीं। खोपड़ी भन्नाई रहती है। चित्रकूट मे एक दफा बीमारी के समय छोड़ दिया था खाना, फिर आदत पड़ गयी। चतुर्वेदीजी की दया है। रहता हूँ, बहुत अच्छी तरह।"[१]

अमृतलाल नागर के साथ मैंने पढीसजी की स्मृति में 'माधुरी' का विशेषांक निकालने की योजना बनाई। निराला अभी बहुत कमजोर थे; एकाध चिट्ठी छोडकर और कुछ न लिखते थे। फिर भी उन्होने नरोत्तम नागर को एक लेख बोलकर लिखा दिया :

"आज बलभद्रप्रसादजी दीक्षित स्वर्गीय। वह मुझसे उम्र में कुछ छोटे थे, बात

को समझने में वैसे ही तेज। साहित्य में जिन बन्धुओं से मेरी अभिन्नता है, उनमे वह प्रमुख थे।……

"बाद को सुना, देहात मे उन्होने अछूतों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध किया है— अपनी तरफ से पाठशाला चला रहे हैं। ब्राह्मण हो या ब्राह्मणेतर, वह उसे हाथ जोडते संकुचित नही होते थे। एक ठिगने कद के साधारण से आदमी का इतना विशाल हृदय होता है, यह मुझे इस तरह से मालूम हुआ कि लखनऊ के प्राय: सभी विद्वान् साहित्यिक तरुण उनसे प्रभावित थे।

"इधर मैं चित्रकूट मे था कि नरोत्तम नागर के पत्र से मालूम हुआ, प्रियवर पं० बलभद्रप्रसाद दीक्षित का बलरामपुर अस्पताल मे देहावसान हो गया और अपने अन्तिम शब्द वह डाक्टर रामविलास को सुना गये।"

लेख भेजने के लगभग दो महीने बाद उन्होने लिखा : "मैं स्वस्थ हूँ। इधर कुछ पढ रहा था। थोडा-थोडा फिर लिखना शुरु करूँगा।"

इन्ही दिनो इलाहाबाद की पत्रिका 'तरुण' मे उर्दू के प्रसिद्ध कवि रघुपति-सहाय फिराक की लेखमाला—हिन्दी कवियो से बातचीत—प्रकाशित हुई। बी० ए० पास करने के बाद फिराक ने हिन्दी मे कहानियाँ, आलोचनात्मक लेख लिखना शुरू किया था। उन्हे न कहानी-लेखक के रूप मे ख्याति मिली, न आलोचक के रूप में। वह उर्दू में शायरी करने लगे। बडा नाम कमाया।

उनके लिए ज्ञान और सस्कृति के आदर्श जवाहरलाल नेहरु, अमरनाथ झा जैसे लोग थे। हिन्दी के लेखक इनके सामने गँवार मालूम होते थे। प्रेमचन्द जरूर अच्छे लेखक थे लेकिन वह सबसे पहले उर्दू के लेखक थे। रघुपतिसहाय फिराक ने उर्दू की बडी सेवा की थी, लेकिन अब युनिवर्सिटियो मे एम० ए० तक हिन्दी पढ़ाई जाती थी, लोग हिन्दी विषयों पर पी-एच्० डी०, डी० लिट्० के लिए थीसिस लिखने लगे थे, जिस हिन्दी को वह गँवारो की बोली कहकर मुंह चिढाते थे, वह अब उर्दू को एक तरफ ठेलती हुई प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मे उभरती आ रही थी। फिराक को लगता था, यह हिन्दीवालों का सरासर अन्याय है। इसकी जड़ में "मूर्खता-पूर्ण ब्राह्मणत्व" है जिसने अब तक देश को डुबोया है और अब हिन्दी साहित्य को डुबो रहा है। "हिन्दी के आचार्यो, पडितो और समालोचको मे अब तक तो गलत और घातक किस्म का ब्राह्मणत्व रहा है। इस छूतछात से काम नही चलेगा। हिन्दी के बहुत से विद्वान् हमारे विश्वविद्यालयो के होनहार लड़को के सामने छोटे आदमी मालूम होते है। इनके अध्ययन और इनकी समालोचना की सीमा सूर और तुलसीदास पर मोटी-मोटी पोथियाँ लिखने तक है, जिनसे अधिक तत्वपूर्ण और चमत्कारपूर्ण निबन्ध हमारे होनहार लड़के क्लास में लिखते हैं। ग्रियर्सन ने तुलसीदास पर जो कुछ लिख दिया है, वैसा लिखना तो दरकिनार, उसका समझना भी इन आचार्यों के बस की बात नही। इनकी मोटी-मोटी पोथियाँ देखकर तो यही कहना पड़ता है कि मियाँ की दौड़ मस्जिद तक। इस नीच कोटि के काम का कारण एक तो यह है कि प्रतिष्ठा और साहित्यशास्त्र की पदवी पर बहुत छोटे आदमी विद्यमान है। दूसरा कारण यह है कि

अँग्रेजी के, विश्व-साहित्य के और विश्व-संस्कृति के स्पर्श से हिन्दीवाले छुई-मुई की तरह डरते हैं।"

प्रसाद, निराला, पंत की कविताओ के प्रसंग में उन्होने लिखा, "ऐसी कविताएँ पढ़ा-पढ़ाकर हम अपने कई करोड़ बच्चों को झूठ की शिक्षा देते है, उनकी कल्पनाओं को पागलों की कल्पना बनाते है, उनकी विचार-शक्ति को चौपट करते है और उनकी बोली को पागलों की बड़बडाहट बनाते हैं।" खास तौर से 'कामायनी' से उद्धरण देकर उन्होने यह समझाने की कोशिश की कि "हिन्दी कविता मे आजकल अधिकतर कैसी हानिकारक, कैसी गुमराह करनेवाली, कैसी फूहड़ और गँवार बना देनेवाली बातो की भरमार रहती है।"

फिराक के मन मे एक प्रच्छन्न अपराध-भावना काम कर रही थी। उनका आदर्श एक ऐसा रघुपति सहाय था जो संस्कृत का विद्वान्, उपनिषदों का पंडित, हिन्दू संस्कृति का उपासक था। व्यवहार मे वह महज फ़िराक थे, संस्कृत और हिन्दू संस्कृति के बारे में सुनी-सुनाई बातें कहनेवाले, उर्दू के सेवक, सभ्यता में हिन्दुओ से ज्यादा मुसलमानों के नजदीक। भाषा और साहित्य की समस्याओं पर वह साम्प्रदायिक छोड़ कर और किसी दृष्टिकोण से सोच ही न पाते थे। उन्हे संस्कृत शब्दों को तत्सम रूप में इस्तेमाल करके अपनी विद्वत्ता-प्रदर्शन करने का बेहद शौक था। वह 'कृतियों' को 'किर्तियो', 'पुनरुक्ति' को 'पुनरोक्ति', 'अध्यात्मवाद' को 'आध्यात्मवाद' लिखकर अपना वह शौक पूरा करते थे। कभी-कभी 'छाँदोपनिषद' पर राय देते थे। 'कामायनी' की आलोचना करके प्रसाद को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे, यह उनकी तमन्ना थी। जिस भाषा के बारे मे वह सबसे कम जानते थे—यानी संस्कृत—उसी का प्रमाण सबसे ज्यादा देते थे। उन्होने लिखा था—"मेरी जिन्दगी मे एक ऐसा समय भी गुजरा है कि यह सोचकर कि जब मै संस्कृत नहीं जानता तो जीना व्यर्थ है, मैं आत्महत्या क्यों न कर लूं।"

उन्होने आत्महत्या न की, यह अच्छा किया। पर इससे उनके मन में एक पाप-भावना घर कर गयी। जिस उर्दू की मैंने सेवा की है, उसका संस्कृत से कितना सम्बन्ध है? उर्दू मे जिस संस्कृति की तस्वीर है, उसका भारतीय संस्कृति से कितना सम्बन्ध है? उर्दू लिखकर मैंने पाप किया है। जितना ही पाप का भय उन्हे सताता, उतना ही वह हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, हिन्दी लेखको को गाली देते, उतना ही सस्कृत के ज्ञान की दुहाई देते, संस्कृत के साथ बँगला और ब्रजभाषा साहित्य पर भी अपने अधिकार की घोषणा करते। इस प्रदेश के ब्राह्मणों ने कायस्थों को शूद्र कहकर अक्सर उन्हें अपमानित किया था। फिराक हिन्दी के 'ब्राह्मणत्व' को गालियाँ देकर उस अपमान का भी बदला चुका रहे थे।

निराला जिस मन.स्थिति मे थे, उसमे उन पर फिराक की लेखमाला का बहुत बुरा प्रभाव पडना अनिवार्य था। भुवनेश्वर जैसे लेखक जगह-जगह फिराक के लेखों का हवाला देते हुए हिन्दीवालों की खिल्ली उड़ाते थे। निराला देख रहे थे कि फ़िराक के साथ संभ्रान्त 'प्रोग्रेसिव राइटर्स' है, सज्जाद जहीर, अब्दुल अलीम वगैरह फ़िराक

का बड़ा सम्मान करते है। कुछ प्रगतिशील उर्दू लेखक हिन्दी जानते थे। उन्होंने फ़िराक की लेखमाला पढी थी; उन्होंने उसका विरोध करना आवश्यक न समझा, उल्टा वह मन-ही-मन खुश थे। वे हिन्दी-उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी चलाने की बात अब भूल रहे थे। ये दिन मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार देने के, हक्के खुद इरादियत के प्रचार के दिन थे। मुस्लिम लीग कांग्रेस को हिन्दू जमात कहती है तो गलत क्या है ? फ़िराक हिन्दी को गँवारो की बोली कहते है तो इसमें भी गलत क्या है ?

कई हिन्दी लेखक जो हिन्दी मे लिखकर प्रसिद्ध न हो पाये थे, अंग्रेजी मे कुछ लिखकर नाम कमाने को उत्सुक थे, फ़िराक के लेखों की प्रशंसा करते थे : बातें सख्त जरूर है लेकिन सही है, हिन्दी मे है क्या ? जबान लिखना तो बस उर्दूवाले जानते हैं।

निराला ने पूछा, "आप फ़िराक साहब को उत्तर लिखेंगे या नही, सूचित कीजिएगा।"[७]

'माधुरी' मे मेरा उत्तर देखने पर उन्होंने लिखा—"आपका पत्र समय पर मिला था। आपका माधुरी मे निकला लेख भी कल देखा। बहुत पसन्द आया।"[८]

मैं अब संयुक्त प्रान्त के प्रगतिशील लेखक संघ का एक मंत्री था। इलाहाबाद मे स्थानीय शाखा की बैठक प्रकाशचन्द्र गुप्त के यहाँ हुई। करीने से सजी हुई पुस्तकें, ड्राइंग रूप मे कालीनें, तस्वीरें, कुर्सियाँ, सभापति निराला, सदस्यो में अन्य लेखकों के अलावा रघुपति सहाय फ़िराक़। मैंने हिन्दी-साहित्य की प्रगतिशील परम्परा समझाई, फिर फिराक के आक्षेपो का उल्लेख किया, कुछ बातें फ़िराक का नाम लेकर मैंने उनके चरित्र के बारे मे कही और पूछा—प्रगतिशीलता से ऐसे लोगों का क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

प्रकाशचन्द्र गुप्त कुछ 'नर्वस' थे—जैसा कि बाद मे उन्होंने बताया—कि उनके घर मे मारपीट न हो जाय।

निराला ने कहा—बस दो मिनट समय और।

मैं आधे मिनट मे बात पूरी करके बैठ गया।

फिराक ने आमने-सामने बहस करना नामुनासिब समझा। वह अपने शेर सुनाने लगे।

निराला और फिराक मे दोस्ती हो गयी। निराला फ़िराक के यहाँ जाते, कभी बहस करते, धमकाते—इस तरह लिखोगे तो अभी सर के बल खड़ा करेंगे। कभी फिराक के साथ पीते और निराला के अलावा हिन्दी मे है क्या इस पर दोनो मे समझौता हो जाता।

निराला ने देखा, जिनको फ़िराक गाली देते है, वे भी उनकी इज्जत करते हैं। मान-प्रतिष्ठा या तो अंग्रेजी लिखने में है या उर्दू लिखने मे। हिन्दी लिखने से सिर्फ अपमान मिलता है, हिन्दीवालो से, उर्दूवालो से, अंग्रेजीवालो मे।

फिराक़ ने निराला के गद्य-पद्य में 'मुस्किराते', 'नव्वाब' आदि शब्दों के प्रयोग का मजाक उड़ाया था। निराला ने तै किया कि उर्दू लिखकर फिराक को पछाड़ना है।

उन्होंने २०-२२ साल पहले नारायणप्रसाद बेताब, सनेही, नाथूराम शंकर शर्मा की रचनाएँ पढी थीं जो उर्दू से प्रभावित थीं। उन्होंने महादेवप्रसाद सेठ के साथ गालिब के शेर घोखे थे। लखनऊ मे वह 'गई निशा वह हँसी दिशाएँ' जैसे दो-एक प्रयोग कर चुके थे। पर अब उर्दू में महारत हासिल करने की तरफ उन्होने ज्यादा ध्यान दिया।

"उर्दू की, हिन्दी में छपी, गजलें पढ़ा करता हूँ।"[9]

"चौधरी साहब को पूरी रचनाएँ नही भेज सका। क्योंकि इधर उर्दू शायरी के रसास्वादन में पड़ा था। कुछ चीजें इस हिसाब-किताब की तैयार करनी है।"[10]

"कुछ गजलें लिखी हैं मैंने···

दोनों लताएँ आपके बाजू-बाजू खिली;
खुशबू की सैकड़ों बाँहों गले-गले मिलीं···
सङ्कोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं;
क्या छन्द को निस्तार दिये जा रहा हूँ मैं···"[11]

"जिगर लिखते हैं; मैं भी लिखूँगा।"[12]

निराला थक गये थे। पुराने तेवर याद करके नयी चुनौती स्वीकार कर ली थी। जिगर और फिराक से होड़ करने में काफी समय और शक्ति नष्ट की। उनके मन में कोई ऐसा रीतापन था जिसे कोई चीज भर न सकती थी। मन के गुह्यतम स्तर चंचल हो उठें, भावना के प्रच्छन्नतम स्रोत प्रवाहित हों, रचना में सम्पूर्ण व्यक्तित्व ढल जाय, यह जैसे अब उनके लिए सम्भव न था।

"जिगर लिखते हैं, ठीक; मैं भी लिखूंगा। अभी आकाश ताका करता हूँ। बरसात में चौधरी के यहाँ सुमित्रा के गाने सुना करता था और एक उपन्यास लिखा करता था। २१ परिच्छेद लिखकर छोड़ दिया, मस्तिष्क और हृदय दुर्बल-सा हो गया।"[13]

कुछ दिन उन्नाव, कुछ दिन काशी, फिर इलाहाबाद। आगरे आने का प्रोग्राम भी बना रहे थे। चित्रकूट, कालिंजर, बसन्त के दिनों में और सुन्दर होगे!

"कालिंजर और चित्रकूट के लिए होली तक, चैत के पहले पक्ष तक, बड़ा अच्छा समय है। अगर चलने का विचार हो तो लिखें। लल्लूजी और चौबेजी से भी पूछ लें। केदारजी आये थे, उनसे मैंने बातचीत कर ली है। हमारे एक जमीदार मित्र हैं वे नारायणी से कालिंजर तक बैलगाड़ी देंगे। अच्छी जगह है ऐतिहासिक; चित्रकूट के स्थलों का कहना ही क्या? लिखिएगा।"[14]

निराला के मन में रीतापन था, सही है। साथ ही उन्हे कालिंजर और चित्रकूट अब भी आकर्षित करते थे, वर्षा में स्त्रीकण्ठ से निकले हुए गीत, गंगा पर नाव की सैर, खेतों की हरियाली यह सब भी उन्हें अच्छा लगता था।

"रोज गंगा नहाते हैं। नाव पर सैर करते हैं। स्वास्थ्य अच्छा है। खेतों की हरियाली, गंगा के रेत की सफेदी—और पानी की नीलाई पर नजर दौड़ाते रहते हैं।···बड़े दिनों में कही निकलने का विचार नहीं। आजकल इलाहाबाद के अमरूदों की बहार है।"[15]

शहर में कौन बड़ा आदमी आया, कौन गया, मौसम की तब्दीली के साथ इसका ध्यान भी वह रखते थे।

"यहाँ भी बड़ी गरमी है। १५।१० दिन पहले एक दौंगरा गिरा था। अब फिर बदली है। पं० जवाहरलालजी के स्वागत की बड़ी तैयारियाँ है। आज आने वाले हैं, इसी समय। आठ बजने को हैं शाम के।"[१६]

इस सब सांसारिक मोह के साथ वह पैसे के मामले में अधिक सतर्क हो गये थे। लोग पैसे दिये बिना, या कम पैसे देकर उनकी प्रतिभा का शोषण न करें, इसका बहुत ध्यान रखते थे। रेडियोवाले कविता-पाठ और वार्ता के लिए बुलाते। लखनऊ में ही काफी लड़भिडकर उन्होंने पारिश्रमिक की दर बढ़वाई थी।

ग्वालियर जाने का विचार था यदि सुमन वहाँ कविता-पाठ के लिए उचित प्रबन्ध कर सकें। "सुमनजी को लिख दिया है। मेरी कम-से-कम माँग उनके लिए अधिक हो सकती है।"[१७]

साहित्य-सम्मेलनवाले कवि-सम्मेलन कर रहे थे।

"१००) देने को लिखा था जवाबी तार मे उन्होंने, मैंने जवाब मे लिखा ५००) फीस है, ३५०) छोड़ता हूँ सम्मेलन के नाम पर। १५०) देने का तार आया है। मन्जूर कर लिया।"[१८]

छह दिन बाद उनका पत्र आया: "आप हरिद्वार नही चले अच्छा हुआ। मैं भी नही गया। वाजपेयीजी भी नही जा सके। वहाँ सब रंग बिगड़ा है।"[१९]

कवि-गोष्ठी या निबन्ध-पाठ जैसी चीज बांदा में भी हो सकती है। उन्होंने केदारनाथ अग्रवाल को लिखा: "अच्छा हो कि आप सम्मेलन का समय बढ़ा दें। गुलाबी जाड़े का वक्त अच्छा होगा। तब तक कुछ रुपया भी एकत्र हो जायगा। मेरे लिए कुछ करने की क्या आवश्यकता है? मैं तो परिषद् में हूँ ही, अवश्य आऊँगा। आपको गाड़ी के खर्च की व्यवस्था करनी होगी। आजकल बहुत भीड़ होती है, दूसरे दरजे से कम मे कवियों को कष्ट होगा। कविता-पाठ तो करूँगा नही, फिर भी गोष्ठी मे मनोरंजन का कोई उपाय कर लूंगा। सम्मेलन मे प्रबन्ध पढ़ूँगा। सभापति किसी दूसरे को बनाइये। आपके विषय विशद हैं, उन पर वाद-विवाद होना, निबन्ध आदि पढना आवश्यक है। मेरे सभी मित्र है। आपको सबका परिचय मालूम है। प्रगतिशीलो की संख्या अच्छी होनी चाहिए। जनता उनकी आवाज सुन सके, ऐसा प्रबन्ध अवश्य किया जाना चाहिए।···अपने किसी नौजवान साहित्यिक को क्यो न सभापति बनाये।"[२०]

गंगाप्रसाद मिश्र हरदोई के सरकारी स्कूल मे अध्यापक थे। कवि-सम्मेलन का आयोजन कर रहे थे, निराला को बुलाना चाहते थे। १०१) देने को तैयार थे। निराला ने लिखा—"मैं स्कूल के लड़को को क्या सुनाऊँगा? आप लोगो का स्नेह खीचता है। परन्तु सिद्धान्त से विवश हूँ। काम कर रहा हूँ। इसमे सन्देह नही कि स्कूल १०१) भी प्रायः नही दे सकता। कभी आपके उधर जाना हुआ तो निःशुल्क सुनाऊँगा। आप प्रसन्न होगे। अगर मेरे आने से आपका व्यक्तिगत श्रेष्ठत्व बढता हो तो रुपये भेज दीजिये।"[२१]

व्यक्तिगत श्रेष्ठत्व के नाम पर कौन रुपये भेजता ? लेकिन गंगाप्रसाद मिश्र ने रुपये भेजे। निराला भूल गये, कितने बजे किस दिन कवि-सम्मेलन होगा। जवाबी तार देकर तिथि और समय पूछा। गंगाप्रसादजी को विश्वास हो गया कि निराला आयेंगे। पर वह न आये। कुछ दिन बाद मिश्रजी इलाहाबाद आये। निराला ने उन्हें रुपये वापस दिये, पर उन्होंने न लिये, कहा—मैं रुपये नहीं चाहता, आपको हरदोई में चाहता हूँ। निराला ने आने का वादा किया लेकिन पहुँचे नहीं। एक अन्य कवि-सम्मेलन में भाग लेने सुभद्राकुमारी चौहान प्रयाग होती हुई हरदोई जा रही थीं। निराला को अब भी रुपयों का ध्यान था। उन्होंने १०१) सुभद्राजी के हाथ गंगाप्रसाद मिश्र के पास भेज दिये।

अमृतलाल नागर फिल्म-संसार में थे। निराला उनसे भी कुछ 'बिज़नेस' की बातें कर रहे थे।

"हाँ, अमृत नागर का पत्र आया है। मैंने पूछा था, सिनेमा में आवृत्ति की रील निकालेंगे तो क्या देंगे। लिखा है, हो सकता है, स्थिर करके लिखेंगे।"[२२]

यह प्रयास भी विफल हुआ। चौधरी राजेन्द्रशंकर के यहाँ से निराला का कविता-संग्रह 'अणिमा' प्रकाशित हुआ।

विक्रम 'सहस्राब्दी' पर उन्होंने फिर उदात्त स्वर साधा, पर 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति', 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' वाला दौर समाप्त हो गया था। निराला की कविता में उस पुराने स्वर की प्रतिध्वनि ही कहीं-कही सुनाई दी। संग्रह में प्रसाद, शुक्ल आदि पर कविताएँ भी शामिल कीं। स्वामी प्रेमानंद पर अपनी लंबी कविता में उन्होने महिषादल की स्मृतियों को सँजोया, उनके बिना जाने यथार्थ के साथ उनके दिवास्वप्न भी घुलमिल गये।

एक कविता माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति बँगला में लिखी; हिन्दी में उसका अर्थ दे दिया :

···तुम अपने रूप की तरंगों पर तैरती हुई जैसे आई। लेकिन, तुम्हारी चितवन से, पीते वक्त जैसे पानी लगा। दिल धड़का, मेरे उपन्यास का एक चरित चुनकर तुमने पूछा, जूतासाज, पालिश कर सकते हो ? एक पैर उठाकर जूता दिखाया। कर सकता हूँ—ज्योंही मैंने कहा कि तुमने जवाब दिया, तब मैं तुम्हारी कलमसाज़ी करूँगी। साथ ही कलमसाज़ी की भंगिमा दिखाई। खुशबू उड़ी—तुम्हारी आँखों और मुख पर गुलाब खिले।

वह कल्पनालोक से कब यथार्थ जगत् में आते हैं, कब उसी लोक में लौट जाते हैं, यह मानो वह भूलने लगे थे।

श्रीनारायण चतुर्वेदी का घर छोड़कर कुछ दिन वह भगवतीप्रसाद वाजपेयी के यहाँ रहे। फिर अलग किराये के मकान मे मसुरिया दीन पंडा के यहाँ रहने लगे। स्वयं भोजन पकाते, बर्तन मलते, लिखते, बातें करते, कभी दूसरो से, कभी खुद से।

गंगाप्रसाद पाण्डेय ने निराला की सेवा करने के विचार से उनके साथ रहने की इच्छा प्रकट की। निराला ने मना किया। कहा—अभी तुम विद्यार्थी हो। डिग्री

के पश्चात् तुम्हारी पोज़ीशन दूसरी हो जायगी। इस समय जिस प्रकार मै रहता हूँ, उस स्थिति मे तुम्हारा मेरे साथ रहना ठीक नही है। मेरे पीछे पुलिस लगी हुई है, तुमको परेशानी क्यों उठानी पड़े ? और भी वहुत-सी वाते है जिनका राज वाद मे खुलेगा

वंगाल में अंग्रेजी राज के न्याय और जनतंत्र-प्रेम के फलस्वरूप लोग भूखो मर रहे थे। महादेवीजी ने 'वंगदर्शन' कविता-संग्रह निकाला। एक कविता निराला ने दी। एक ज़ोरदार कविता वच्चन ने लिखी लेकिन संग्रह में पूरी कविता देने से इन्कार किया। "उन्होंने वताया कि उनके परम शुभेच्छु डा० झा वगैरा की राय है कि अभी वह कविता प्रकाशित न की जाय अन्यथा वच्चन का युनिवरसिटी में रहना कठिन होगा।"[२३]

मेरे छोटे भाई रामस्वरूप का विवाह था। रामस्वरूप को घर में लोग चौवे कहते थे, निराला भी उन्हे इसी नाम से पुकारते थे। चौवे कसरत करते, कुश्ती लडते, युनिवर्सिटी मे सवसे सुगठित शरीर के प्रदर्शन में चैम्पियन रह चुके थे। निराला जव मिलते तव चौवे की वाँहों की मांसपेशियाँ टटोलकर उनकी कसरत-कुश्ती का हिसाव पूछते। मैं सुन्दर वाग के पास के० सी० डे लेन मे रहता था; निराला सौ कदम पर ११२ मकवूल गंज में थे। मै उनसे कहने गया कि वरात इतने वजे चलेगी, आपको मैं वुला लूँगा।

वह अकस्मात् नाराज़ होकर वोले—तुम मेरा राज लेने आये हो; तुम्हे सिद्धान्त ने मेरे पीछे लगा रखा है।

इतने दिन साथ रहने के वाद निराला ने पहली वार मुझ पर इस तरह सन्देह प्रकट किया था। मुझे क्रोध आया, उनकी मनःस्थिति मैं विलकुल न समझा। मैंने कहा—अच्छा आप वरात मे न चलियेगा; मै अव आपको वुलाने न आऊँगा।

नियत समय पर वरात के लोग गली से निकलकर जव रामगोपाल विद्यान्त रोड पर पहुँचे, तव देखा निराला वगल मे अपने कपडो की पोटली दवाये सड़क पर खड़े पहले से इन्तज़ार कर रहे है। उन्हे तागे पर विठाया और सव लोग स्टेशन पहुँचे। गाडी चलने मे देर थी। ताश निकाले गये। व्लैक क्वीन, ट्वेन्टी नाइन, और कई खेल वह सिखाते रहे। जो उनका पार्टनर वनता, उसकी शामत आ जाती। उसकी हर चाल पर निराला टोकते, विगड़ते, कही हार जाते तो सारा दोष उसी के सर मढ़ते।

वरात वनारस पहुँची। निराला अमृतराय से मिलने गये। इधर-उधर की वातें होती रही। अचानक वह वोले—अगर तुम्हारे साथ 'पी' है, तो हमारे साथ भी एक ऑनर है।

'पी' का मतलव प्रेमचन्द। तुम्हे प्रेमचन्द के पुत्र होने का अभिमान है तो एक मर्यादा का भाव हमारे साथ भी है।

इसके वाद वह अमृतराय के परिवार आदि के वारे में सहज भाव से वातें करते रहे।

वीच-वीच में 'वर्तमान धर्म' वाली कूट शैली में वह दो-चार वाक्य अक्सर वोल जाते।

वनारस से वापस रात को चले। गाड़ी में वत्ती नहीं थी। तीसरे दर्जे के डिव्वे में कुछ वराती लेट गये, कुछ वैठे रहे। एक वेंच पर निराला सो गये। आधी रात को किसी स्टेशन पर वहुत-से मुसाफिर डिव्वे में घुस आये। लेटे हुए लोग उठ वैठे। मुसाफिर इधर-उधर वैठ गये। निराला गहरी नीद में थे। सोते रहे। एक सज्जन उन्हे उठाने के विचार से शराफ़त, दूसरों का भी खयाल रखने आदि पर भाषण करते रहे। इस पर भी उनकी नींद न टूटी तो वह महाशय निराला को जगाने लगे। वरातियों ने मना किया, उन्हें अलग जगह देने की वात कही, पर वे न माने। और सव वैठे रहे, एक सोता रहे—यह कैसे हो सकता है ? उन्होने निराला को हिलाया। इस पर भी वह जागे नहीं, चूक क्षमा माँगी नहीं, तब उन्होने आवेश में वह चद्दर खीची जो निराला ओढ़े थे। अव उनकी नीद टूटी। उठकर वैठ गये; तेज आवाज में पूछा—क्या चाहता है ?

एक वराती ने दियासलाई जलाकर डिव्वे मे जरा देर को रोशनी कर दी। निराला के विखरे हुए वड़े-वड़े वाल, अचानक नीद टूटने से लाल आँखें, उनका विशाल डील-डौल जो उन सज्जन ने देखा तो दियासलाई वुझने के साथ वह भी डिव्वे से वाहर हो गये।

वरात से लौटने के कुछ दिन वाद निराला वीमार हुए। मेरी नियुक्ति राजपूत कालेज मे हो गयी थी और मैं आगरे चला आया था। मेरे वड़े भाई (भगवानदीन शर्मा) और चौवे दफ्तर चले जाते थे; दो छोटे भाई रामशरण और रामशंकर (घर के नाम मुंशी और अवस्थी) कालेज जाते थे। निराला के उपचार की ठीक व्यवस्था न थी। कभी-कभी चौधरी राजेन्द्रशंकर उनके पास आकर वैठते थे। निराला ठीक होने पर उनके यहाँ (उन्नाव) जाने की सोच रहे थे। मलेरिया उन्हें फिर परेशान कर रहा था।

डाक्टर टी० वहादुर उन्हें देखने के लिए वुलाये गये। कार से उतरकर गली मे घर के दरवाज़े तक पैदल आये; पीछे उनका वैग लिये संक्षिप्त आकारवाले—मुंशी। मरीज से वातचीत का सिलसिला शुरू करते हुए डाक्टर टी० वहादुर ने पूछा—आप क्या करते हैं ?

निराला—मैं कवि हूँ।

डाक्टर—आपकी कविताएँ छपती हैं ?

निराला—जी, मेरी कविताएँ प्रायः हर पत्र मे छपती है।

डाक्टर—क्या सरस्वती, माधुरी मे ?

निराला—मुझे सरकार ने इम्पीरियल आनर दिया है। रेडियो पर पाँच मिनट कविता पढ़ने के लिए ऊँची से ऊँची रकम मिलती है, किन्तु कुछ विरोध के कारण इसे मैं ग्रहण नहीं करता, रेडियो नहीं जाता।

डाक्टर टी० वहादुर के इलाज से निराला ठीक हो गये।

के० सी० डे लेनवाले मेरे घर के वरामदे मे वह कुर्सी डाले वैठे थे। सिगरेट पी रहे थे; डेढ अंगुल वची होगी कि उन्होंने उसे गली में फेंक दिया। कुछ देर वाद देखा, धुआँ उठ रहा है; वह गये और सिगरेट का टुकड़ा उठा लाये। दो कश और खीचे।

वोले—लोग पैसे का पूरा उपयोग करना नही जानते।

वची हुई सिगरेट फेंककर उन्होने कुर्सी घुमाकर उधर पीठ कर ली। थोड़ी देर मे गर्दन मोडकर देखा—सिगरेट वुझी नही है। फिर उठे। एक कश और खीचा। फिर जूते के नीचे दवाकर उसे कुचल दिया और इत्मीनान से कुर्सी पर वैठे और वातें करने लगे।

के० सी० डे लेन मे वच्चो की एक पल्टन थी। नाटक से लेकर कवड्डी तक तरह-तरह के खेलकूद और मनोविनोद के कार्यक्रम यहाँ हुआ करते थे। नाटक स्वाँग के नेता थे मेरे भाई रामशरण ('मुशी') और कवड्डी मे प्रमुख भाग लेनेवालों मे थे, उनसे छोटे रामशंकर ('अवस्थी')। निराला कवड्डी खेलने उतरे। एक ओर अवस्थी, दूसरी ओर निराला। अवस्थी निराला को छूकर भाग आये; पाला जीत गये। दूसरी वार जव अवस्थी गये तव निराला अपने दल में अकेले रह गये थे। अवस्थी छूकर भागे; निराला ने पकड़ लिया। अवस्थी गिरफ़्त से निकले, भागे, फिर पकड़े गये। साँस टूटने से पहले अपने पाले मे आ तो गये पर निराला के नखूनो ने सीने मे दो घाव कर दिये। उनके निशान वाद को भी वने रहे।[२४]

जवलपुर की हितकारिणी संस्था ने निराला को आमन्त्रित किया। सुभद्राकुमारी चौहान ने उन्हे देने के लिए तीन सौ रुपये की निधि एकत्र की। निराला ने विद्यार्थियो से कुछ भी लेने से इन्कार किया। लोगों के आग्रह करने पर राह-खर्च के लिए सौ रुपये रख लिये। दो सौ कांग्रेस को देने को कहा। जव उन्हे वताया गया कि कांग्रेस की रकम सरकार ज़ब्त कर लेती है, तव उन्होंने दो सौ रुपये जवलपुर के साहित्य संघ को दे दिये।[२५]

निराला के एक परम भक्त उन्हे कवि-सम्मेलन मे वुलाने आये। सव वातें त हो गयी। भक्त लेखक भी थे, निराला उन्हे मित्र रूप मे मानते थे। संकोचवश पेशगी रुपया न माँग सके। जाड़े के दिन थे। निराला के पास गरम कपड़ो, रज़ाई-विस्तर वगैरह की कोई उचित व्यवस्था न थी। भक्त के चले जाने पर वह वोले—द्याखौ सारे का, कहत है हुआँ यहु द्याव, वहु द्याव। हुआँ तक जाई कैसे ? न गद्दा, न रजाई, न जूता, न जड़ावर।

जडावर अर्थात् जाड़े मे पहनने के कपड़े। वास्तव मे रुई का सलूका ही उनकी जाड़े की विशेप पोपाक थी या सर पर कनटोप। वाकी कुर्ता-धोती और ऋतुओ की तरह उनके साधारण वस्त्र थे। लेकिन इस समय यह सामान भी न था।

अपनी समस्याओ से उलझने के अलावा निराला नयी पीढ़ी की साहित्यिक गतिविधि पर भी निगाह रखते थे। केदारनाथ अग्रवाल की कितावे छपाने के लिए 'किताव महल' से वात चला रहे थे, साथ ही केदारनाथ को चेतावनी देते जाते थे—"अदालती दुनिया मे विरले ही लेखक लिखने का समय निकाल पाते है।"[२६]

'तार सप्तक' सग्रह उन तक पहुँचा। स्वागत किया—"इन रचनाओ का रूप मेरी दृष्टि मे निखर रहा है"; फिर मुझ पर और मेरे मित्रो पर व्यंग्य किया—"मैं तो दरकिनार हूँ। आप लोग मौज मे होगे।"[२७]

कांग्रेसी नेता जेल में थे। अन्न-कष्ट से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। निराला ने कजली लिखी—

काले काले वादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे कैसे नाग मँडलाये न आये वीर जवाहरलाल।
महँगाई की वाढ़ वढ़ आयी, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई।
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

पन्त दिल्ली में टायफायड से वहुत कमज़ोर हो गये थे। इतने दुवले हो गये थे कि पहचाने न जाते थे; सारा सौन्दर्य जैसे उड़ गया था। मुख कान्तिहीन, धूप में तपकर मानो साँवला हो गया हो। किसी ने खवर छाप दी कि पन्त नहीं रहे। निराला ने यह समाचार सुना तो क्षुब्ध मन से महादेवीजी के यहाँ गये और उनसे सही स्थिति का पता लगाने को कहा। उन्होंने दिल्ली को तार दिया। महिला विद्यापीठ का फाटक वन्द होने तक निराला वहाँ वैठे रहे। उसके वाद वह वाकी रात पार्क में टहलते रहे। सवेरे चार वजे आकर उन्होंने फाटक खटखटाया और पूछा कि तार का जवाव आया या नहीं। जवाव अभी तक न आया था। निराला को विश्वास हो गया कि समाचार सत्य है। उन्होंने कहा—अव हम भी गिरते हैं।[२८]

उन्होंने पत्र में लिखा—"पन्तजी के गुजरने की गलत खवर ने गजव ढा दिया; फिर दूसरे रोज़ निराकरण हुआ। ईश्वर की इच्छा से अच्छे हो रहे हैं।"[२९]

वह दिल्ली आकर पन्त को देखना चाहते थे, पर इस समय तंगी में थे। शायद मैंने जाकर देखा हो, यह सोचकर लिखा—"आप तो पन्तजी को देखने गये होंगे? वड़ी वीमारी पायी।" फिर सोचा, रेडियो के सिलसिले में दिल्ली जाता था; ये रेडियो वहिष्कार के दिन हैं, न गया होगा। लिखा, "आजकल रेडियो जाना छोड़ दिया होगा, इसलिए दिल्ली न गये होंगे।"[३०]

पन्त को जैसा देखा था, मैंने उन्हें लिख दिया।

गंगा के किनारे झाऊ के पेड़ों के वीच से निकलते हुए वह आसमान में उड़ते हुए हवाई जहाज देखते। सामने रेल का पुल, गंगा के निर्जल भाग में खेती, तट पर फूस की कुटियों में साधु-संन्यासी—निराला यह सव देखते और उन्हें लगता कि जनता त्रस्त है, भय के कारण कुछ करने मे असमर्थ है। वह इस समय यथार्थवाद के स्तर पर अपनी कला सँवार रहे थे; उसी के अनुरूप कविता में गंगातट के दृश्य आँकते।[३१]

मैं उन्हे आगरा आने के लिए वार-वार लिख रहा था। मेरी इच्छी थी, वे यहीं आकर रहें, अधिक-से-अधिक जितने दिन रह सकें। उन्होने लिखा, "शीघ्र न होने पर भी काम में अव मैं मन्द नहीं। खर्च चल जाता है। आगरा माघ के अन्त या फागुन के मध्य में आयेंगे।"[३१]

वह मेरे या अन्य किसी के यहाँ भार वनकर रहना अनुचित समझते थे। वह अपने परिश्रम से अपनी जीविका अर्जित कर रहे थे और उन्हे इसका गर्व था। पर उनके परिश्रम का फल खा रहे थे प्रकाशक। फल के छिलके मिले थे निराला को। एक वार पुस्तक के लिए सौ दो सौ दे दिये, कभी दोस्ती में ही लिखा ली, निराला को

हिन्दी ससार के सामने लाने का श्रेय अलग से, रायल्टी, पारिश्रमिक का हिसाव—इन सब वातो से प्रकाशको को कोई वास्ता न था। मैंने 'हस' मे निराला की स्थिति की ओर हिन्दी-भाषियो का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा, "यह आवश्यक है कि हम प्रकाशको पर सम्पूर्ण हिन्दी संसार का दवाव डालें कि वे उनके कापीराइट छोड़ें, उन्हे नये सस्करणो का और पैसा दें, उनकी रायल्टी का हिसाव-किताव ठीक करें। उन्हे अपनी पुस्तको से जो मिलना चाहिये, वह उन्हे उनके जीवन-काल मे मिले। वाद मे तो उनकी मेहनत से पैसा कमाने वाले उनके स्मारक के लिए दान देंगे ही।"[१२]

इस तरह के दो-चार लेखो का कोई असर प्रकाशको पर होनेवाला न था।

मैंने निराला से प्रस्ताव किया कि वे जन प्रकाशनगृह के लिए कोई पुस्तक लिखें। उन्होने जवाव दिया, "जन प्रकाशनगृह को कोई या कई अच्छी कितावें दे सकूंगा। उनकी खत कितावत भेजिये। क्या समझौते होगे? कितने सौ तक पेशगी दे पायेंगे? कितनी जल्दी एडीशन खत्म कर सकते है हजार का? वाजार हाथ होगा या आ जायेगा।...किताबों मे हमारी जीवन-स्मृतियाँ भी है जो वड़ा महत्त्व रख सकती है।"[१३]

निराला के प्रमुख समर्थक नलिन विलोचन शर्मा आरा मे प्रोफेसर थे। उन्होंने निराला को आमन्त्रित किया। सन् '४५ के वसंत मे निराला ने उन्हे लिखा, "कवि सम्मेलन मे इसलिए नही जाता कि उसकी फीस हजारो कर रखी है मैंने, ताकि लोग न आये, मगर दो-तीन सौ से पाँच सौ तक देने वाले आ जाते हैं। मै प्रायः नही जाता। खास वात हुई तो गया। आपका कालिज साधारण है, शहर भी साधारण। मेरी माँग पूरी करके ले जाने मे असमर्थता होगी। आपकी मैत्री अमूल्य है, इस नाते रुपयो वाला हिसाव छोडना वाधक नही, फिर भी एक काफी लम्वे खर्च का हिसाव होगा। यह रुपया मनीआर्डर द्वारा, तारीख लिखकर भेज दीजिए।"

निराला आरा गये और नलिन जी के यहाँ कई दिन रहे। उनके लिए मछली पकाई गयी। दुर्भाग्य से मछली जल गयी। निराला ने शिकायत किये विना चुपचाप मछली खा ली—यह देखकर गृहिणी कुमुद शर्मा विस्मित हुई। निराला उनके वच्चे को गोद मे लेकर खिलाते और गीत गाते।

अपनी फीस और ऑनर अथवा चेयर का स्तर वह क्रमशः वढाते जा रहे थे। उनके हितैषी इससे असमजस मे पड़ जाते थे।

केदारनाथ अग्रवाल को उन्होने लिखा: "अव मेरी फीस खुल चुकी है। सव को मालूम हो चुका है। आगे-पीछे आपका शहर मेरा अधिवेशन फीस देकर करा सकता है। आपके मित्र अवश्य वाधक नही होगे। चेयर मैं रखता ही हूँ। चीजें जो अच्छी हैं, वे फीस मिलने पर ही सुनाई जा सकती है।"[१४]

पाँच दिन वाद निवन्ध-पाठ को लेकर भाव-तोल करते हुए केदारनाथ के पत्र के उत्तर मे उन्होने लिखा: "निवन्ध कहाँ पढ़े जायेंगे? आप अधिक से अधिक कितना रुपया पाँच निवन्धो के लिए दिला सकते है अग्रिम? आखिर तक कितना? यानी कुल कितना होगा।

"आजकल विज्ञापित कवि-सम्मेलन रेडियो-विरोधी कवियों के किये जा रहे हैं।

आप एक कराइये और जल्द सूचना दीजिये। इस तरह जनता में जागृति फैलेगी। मेरी फीस वहाँ जो मेरी उसकी कई गुनी अधिक है। पूरी नहीं दे पाइयेगा तो चौथाई तो दे ही सकते हैं।[३५]

वाँदा वालों से वहुत-सा रुपया इलाहावाद युनिवर्सिटी के लिए अमरनाथ झा सरकारी अधिकारियों की सहायता से वटोर ले गये थे। उन दिनों वालकृष्ण राव आई० सी० एस० वाँदा में ही प्रतिष्ठित थे। इलाहावाद से उनका घनिष्ठ सम्वन्ध था। केदार ने अपना क्षोभ मुझे लिखे हुए पत्र मे प्रकट किया : "वाँदा से २०,०००) प्रयाग गये हैं। झा साहव ले गये हैं। इसका चिट्ठा मिलने पर वताऊँगा। यह अन्याय हुआ है वाँदा की जनता और उसके वच्चो के साथ। यहाँ का डी० ए० वी० स्कूल मोहताज है। एक Govt. High School है। वच्चे कुत्ते-से पूँछ हिलाते फिरते हैं। पढ़ाई का प्रवन्ध नही है। विश्वविद्यालय में Guest house वना है। राम! राम! यह हैं राव साहव।"[३६]

निराला ने केदार को याद दिलाया : "आपके कवि-सम्मेलन या निवन्ध पाठन का क्या हुआ ? जल्द फिर साहित्य और राजनीति की चलने वाली है।"[३७]

उत्तर न पाकर किंचित् रोष से लिखा : "आपका पत्र नहीं मिला। आपके साहित्य समारोह के उपलक्ष्य में शरत् पूनो ही है क्या ? आपका नगर जिन हाथों में है उनका दाक्षिण्य यहाँ नहीं हो पाता, वाम्य ही रहता है, फलतः वाम्य ही होगा। रहीम वाला भाड़ किस जगह है ? संभवतः आगरा जाऊँगा।"[३८]

आगरे में आयोजन के वारे में उन्होंने मुझे लिखा : 'आगरे में मेरी आवृत्ति का प्रवन्ध करा सकते हों तो कराइए। पुरस्कार अच्छा होना चाहिए। लेक्चर सुनना चाहें लड़के तो वही सही, इस युग के काव्य साहित्य पर हो जायगा।"[३९]

दो दिन वाद : "आगरे के लोगों को प्रदर्शन दे सकता हूँ। दर्शन मैं नही देता। मगर इन लोगों की भेंट वहुत कम होती है। खैर! हो सका तो जल्द मिलूँगा।"[४०]

इस पत्र में एक विशेष समाचार : "मैथिलीशरण हीरक जयन्ती का निमंत्रण आया है। लिखा था, १०००)लूँगा कवि-गोष्ठी के लिए। सिर्फ निमंत्रण आता है। नागर को लिखा था, स्क्रीन मे आवृत्ति करा सकते हो ? हाँ करके मौका देख रहे है। खैर।"

वह कल्पना कर रहे थे कि वम्वई से लोग दो हजार रुपये मासिक पर उन्हे वुला रहे हैं, पर अभी साहित्य-सेवा छोडना अच्छा नहीं। वाँदा न वुला पाने पर केदार से शिकायत की, फिर वम्वई वाली वात कही—"आपके लेक्चर भी न हुए, कवि-सम्मेलन भी रह गया। श्रीयुत राव जैसे साहित्यिक से भी आप लोग कुछ कर न गुजरे।... कुछ मित्र वम्वई वुला रहे है। दो हजार मासिक के कई आये, मगर अभी साहित्य मे रहना अच्छा लगता है।"[४१]

दो हजार रुपये मासिक के 'ऑफर' आने चाहिए। ऐसे ऑफर मेरे पास आये हैं, मैं स्वीकार नहीं करता, साहित्य के लिए छोड़ता हूँ—निराला सोचते और कल्पना-जगत् उन्हे यथार्थ सत्य-जैसा लगता. वह उसकी चर्चा पत्रों में करते। धन के विना मान-सम्मान नही। पुस्तको से हो, कवि-सम्मेलन से हो, निवन्ध-पाठ से हो, रुपया

मिलना चाहिए, दस-पाँच, वीस-पचास नही, सैकड़ों, हज़ारों।

जन प्रकाशनगृह वम्वई को मैंने लिखा कि निरालाजी की पुस्तक छापें और उन्हे पेशगी रुपया भेजे। उन्होंने दो सौ रुपये का चेक भेज दिया। निराला को ये दो सौ रुपयो का चेक विलकुल पसन्द न आया। वह दो-तीन हज़ार रुपये पेशगी की कल्पना कर रहे थे। उन्होंने मुझे सारा हिसाव समझाया : "संस्मरण वाली किताव वारह-सौ डेढ हज़ार सफहो की होगी, दो वालूमो में। कीमत आज को देखते १५) से १८) तक होगी। अगर पहला एडीशन दो हजार का भी मानें तो वीस सैकड़े के हिसाव से सात हज़ार रुपये से ज्यादा की रायल्टी होती है। चाहिए कि हिन्दी एडीशन पहला पाँच हज़ार का हो। पार्टी के पास वेचने के साधन है। किताव संसार के साहित्य में एक होगी, क्योकि उसका मसाला वैसा है,—संसार के प्रायः सभी वड़े आदमी आते हैं। हम इसका अंग्रेजी संस्करण भी करेंगे, वँगला भी, उर्दू भी। प्रकाशन को वडा काम मिलेगा; नामवरी भी होगी। अंग्रेजीवाले मे आपका सहयोग रहेगा अगर आपकी इच्छा हुई। अंग्रेजी की खपत का अन्दाजा लगा सकते है। ऐसी हालत में, ये दो सौ रुपये कौन हीग है, मेरी समझ मे नही आता। और हिन्दी संस्करण के लिए ३०००) कम से कम अग्रिम मिलना चाहिए। इस समय १)।) से अधिक नही पहले को देखते। खैर आपको इतना इशारा काफी है। आप उनसे वातचीत कीजिए। इस वड़े काम के लिए वे खुद भी यहाँ आ सकते है, आप भी रहें, दो-एक और। समझौता हो जाय, रुपये दें, हम काम देने लगें। आगरा रहकर भी काम किया जा सकता है।

"यों २००) मे एक किताव कोई देंगे। जल्द जवाव दीजिए। उनसे भी मालूम कीजिए।"[४२]

मैं जानता था कि निराला अपने संस्मरणों के ये दो खंड कभी नहीं लिखेंगे। फिर भी यदि जन प्रकाशनगृह या कम्युनिस्ट पार्टी निराला को दो-तीन हज़ार रुपये भेंट ही कर दे तो क्या बुरा है ? यदि पूरनचन्द जोशी के मित्र कविवर सुमित्रानन्दन पंत की वात होती अथवा सज्जाद जहीर के मित्र शायरे इनकलाव जोश मलीहावादी की वात होती तो दो-तीन हजार का प्रवन्ध आसानी से हो जाता। मैंने निराला की स्थिति वम्वई के मित्रों को लिख दी। यथासमय उनका उत्तर निराला के पास पहुँच गया। निराला ने सूचना दी : "आपके जन प्रकाशन-गृह को लिखे पत्र का उत्तर आया। उन्होंने छोटी स्मृति पुस्तिका माँगी है।"[४३]

निराला 'चोटी की पकड़' उपन्यास लिख रहे थे। महिपादल की स्मृतियाँ उभर कर उन्हे एक साथ आकर्षित और व्यथित कर रही थीं। प्रासाद, दो मील घेरकर चारदीवार, कई ड्योढ़ियाँ, हर ड्योढ़ी पर पहरेदार, उद्यान, मैदान, तालाव, प्राचीर, कचहरी, निकासों पर पहरे, वड़े-वड़े संदूकों मे राजकोष, रघुनाथजी का मन्दिर, युक्त प्रान्तीयता की रक्षा करता हुआ जागीरदार परिवार। यही 'कुकुरमुत्ता' की गुलाब-वाड़ी, 'खजोहरा' की वुआ। किसी हद तक चरित्र-हीनता का वातावरण, लोगो के वारे में तरह-तरह के किस्से।

"वुआ विधवा हैं···वुआ की उम्र पच्चीस होगी। लवी सुतारवाली वँधी पुष्ट

देह। सुढर गला, भरा उर। कुछ लम्वे मांसल चेहरे पर छोटी-छोटी आँखें; पैनी निगाह। छोटी नाक के वीचोवीच कटा दाग। एक गाल पर कई दाँत वैठे हुए। चढ़ती जवानी मे किसी वलात्कारी ने वात न मानने पर यह सूरत वनाई, फिर गाँव छोड़कर भग खड़ा हुआ।"

'कुकुरमुत्ता' की वाँदी :

"मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी वुआ की। उतनी ऊँची नही, पर नाटी भी नहीं। चालाकी की पुतली। चपल, शोख। श्याम रंग। वड़ी-वड़ी आँखे। वंगाल के लम्वे-लम्वे वाल। विधवा, वदचलन, सहृदय। प्रायः हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका।"

आकर्षण के उपकरण : दो मंज़िला स्टीमर, एक डजन पेग, कीमती हारमोनियम, गानेवाली ऐजाज—"लोगों की आँखें जम गयी। रूप से हृदय भर गया। आज का पहनावा मोरपंखी है। साड़ी का वही रंग, वही वूटे, फरमाइश से तैयार की हुई। ज़मीन सुनहरे तारों की। सर के कुछ वाल मोर की चोटी की तरह उठे हुए; हर डाँड़ी पर हीरे की कनियो के साथ नीलम वँधा हुआ। पैरों में कामदार मोती-जड़ी जूतियाँ।"

ऐजाज़ गाती है, राजा सुनते हैं—

हर एक वात प' कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़े-गुफ्तगू क्या है।

इसके वाद—

जाने दे मो को सुनो सजनवा
काहे करत तुम नित नित मो सन रार,
नही, नही मानूंगी तिहार।
छेड़ करत, नहीं मानत देखो री सखि,
मेरी सुनैं ना,
विन्दा कहत अव नित नित मो सन रार,
नहीं, नही मानूंगी तिहार। जाने दे मो को……

फिर रवीन्द्रनाथ का गीत—जामिनी ना जेते जागाले ना केन। ऐजाज ने वे सव गाने गाये जो निराला को प्रिय थे। एक श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन उसने न गाया। वह अंग्रेज़ी जानती है, अखवार पढ़ती है, संपादक की टिप्पणी पर टिप्पणी लगा सकती है।

दारागंज की गली में मसुरियादीन पंडा के घर में खुद हाथ से खाना पकाते, वर्तन मलते, नीची छत वाले कमरे में कठघरे के भीतर शेर की तरह टहलते निराला महिपादल की स्मृतियों को रँग-चुनकर उनसे मन वहलाते। इस उपन्यास के पात्र स्वप्न के छाया-चित्रों की तरह सामने आते, फिर अचानक गायव हो जाते। ये पात्र कभी कूट भापा में वातें करते जैसी भापा का व्यवहार निराला स्वयं इन दिनों करते थे। जैसे राज़ लेने-देने की वात। कोचवान अली पुलिस के मुसलमान दरोगा को राज देने लगा; ऐजाज का राज़ किसी वड़े मुसलमान के यहाँ रहता होगा; यूसुफ को कोई राज़ सरकार के खिलाफ़ नहीं मालूम हुआ।

इसी तरह ऑनर की बात।

नाम पूछने पर यूसुफ़ कहता है, "हाँ, एक है मगर इस वक्त तो यही कि हम सरकारी।" यूसुफ से राजा का सेक्रेटरी कहता है, "एक प्रोविन्शल मेरे साथ भी है।" मुन्ना बाँदी ने जमादार जटाशंकर से कहा, "मेरे साथ रानीजी का मान है, उन्होंने दिया है, इसको अंग्रेज़ी मे ऑनर कहते हैं; राजा ने तुमको मान नही दिया, तुम अपनी तरफ़ से राजा का मान लेते हो। रानी का मान पहले तुमसे लिया जायगा। हम जब आयेंगे, तुम उठकर खड़े हो जाओगे और हाथ जोड़कर रानीजी की जय कहोगे। तभी हम रानीजी का ऑनर यहाँ चढ़ा सकेंगे।"

ऑनर का मतलब रानी की बाँदी दूसरों के लिए रानी के बराबर। हर व्यक्ति के अदर से मानो दूसरो का व्यक्तित्व बोलता है और व्यक्तित्व का बड़प्पन राजघराने तथा सरकार से उसके सम्बन्ध पर निर्भर है। अमृतराय के साथ 'पी' देखकर इसीलिए निराला ने कहा था—हमारे साथ भी एक ऑनर है। और डाक्टर टी० बहादुर जब उनके बड़प्पन की थाह लेने लगे थे, तब निराला ने उन्हे समझा दिया था, मुझे सरकार ने (यानी सीधे दिल्ली के बडे लाट ने) इम्पीरियल ऑनर दिया है।

राजा और सरकार से ऑनर पाने की आकाक्षा; उतनी ही दोनो से घृणा। 'चोटी की पकड' के सपने जिस मानस पर छा जाते है, उसमें भय की सिहरन है। पुलिस, जासूस, राज़ लेने-देने की बाते, लोगो मे परस्पर अविश्वास, ऊपरी बातें कुछ और, भीतरी मन्सूबे दूसरे। निराला का मन नरक में घूम रहा था, उस नरक मे फँसे हुए लोगो की यंत्रणा देख रहा था, यह नरक काल्पनिक न था, इसमें प्रेत नही हाड-मांस के जीवित नर-नारी रहते थे। "नसों से जैसे देह, वह दुनिया के जाल से बँधा हुआ और सिर्फ दस रुपये महीने के लिए। जान की बाजी लगाये फिर रहा है। कही से छुटकारा नही। जहाँ तक निगाह जाती है, यही जाल बिछा हुआ है। लुभाने वाली जितनी चीज़े हैं, सभी खून से रँगी हुई···यह इमारत, ज़मीदारी, हीरे-मोती, जवाहरात, चमक-दमक, रूप-रंग—कुल बनावटी। इनकी असली सूरत कुछ और है। यह स्वर्ग दिखता हुआ दृश्य नरक है। ये राजे-महाराजे राक्षस, ये देवी-देवता पत्थर के, काठ के, मिट्टी के।"

निराला के सपनो मे अब राजाओ-महाराजाओ और राक्षसों के साथ हिंस्र पशुओं के चित्र आने लगे थे। विशेष रूप से बाघ आते, उनसे लड़ते। निराला कहते—मैंने वह झाँपड दिया कि हिज़ हाइनेस की तबियत झक्क हो गई। कभी-कभी बाघिने निराला की तरफ पूँछ उठाये उन्हे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती। वह शेरो से अपने सपर्क का इतना सजीव वर्णन करते कि सुननेवाला भ्रम मे पड़ जाता, यह सब सच तो नहीं कह रहे है। झांसी से घूमते हुए रामस्वरूप शर्मा उर्फ चौबे इलाहाबाद पहुँचे। दारागंजवाले घर मे पहुँचकर निराला के पैर छुए। निराला ने कहा—कसरत करते हो? चौबे के हामी भरने पर मेरे बारे मे सवाल किये। फिर पूछा—यहाँ से कहाँ जाओगे? चौबे ने कहा—करवी विदा कराने जा रहे है।

निराला ने कहा—करवी के उधर बड़ा जंगल है। हम भी वहाँ कई बरस रहे

हैं। रात को झुटपुटा होने के बाद कभी घर से बाहर न निकलना। वहाँ से मैंने चार-चार शेर पकड़वाकर लखनऊ भिजवाए है। लखनऊ के अजायबघर का शाह-जहाँ हमारा ही पकड़वाया हुआ है। पहले किंग कमीशन आता था। मुझे बहुत परेशानी रही। ट्रेन तक मे इन्होंने पीछा नहीं छोड़ा। एक दफे एक शेरनी हमारी छत पर आ गई। तुम जानते हो कि लियोपर्ड कितनी छलाँग मार सकता है? अच्छा, तुम्हारा कभी सात्रिका पड़ा है?

चौबे चुप रहे। निराला फिर शेरों के जंगल में पहुँच गये।

वह आगरा आनेवाले थे। उनकी इच्छा सूरदास पर एक बैलेड लिखने की थी; आगरे के पास रुनकता जाकर निराला वह स्थान देखना चाहते थे जहाँ सूरदास रहा करते थे। मैंने कवि शिवमंगल सिंह सुमन को लिखा कि निराला को इलाहाबाद से हटाकर आगरे या ग्वालियर रखा जाय। सुमन उन्नाव जिले के निवासी, उदीयमान कवि, निराला के भक्त, सहमत हुए। उन्होंने योजना बनाई कि निराला को ग्वालियर ले आयें और वहाँ उन्हे बताये बिना मानसिक रोगों के चिकित्सक डा० महावीरसिंह से उनकी परीक्षा कराई जाय। जैसा वे कहे, उसी के अनुसार काम करें।

दिल्ली मे ब्रज साहित्य मंडल का अधिवेशन था। अधिवेशन के साथ कवि-सम्मेलन हुआ; उसके सभापति निराला थे। आगरा से पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' भी समारोह मे भाग लेने गये थे। मुझे जब पता चला कि निराला दिल्ली में हैं तो मैंने कमलेश को तार दिया कि उन्हें अपने साथ लेते आओ। निराला ने उन्हें दस रुपये का नोट दिया, दो इंटर के टिकट खरीदने के लिए। भीड़ बहुत थी। निराला खिडकी से कूदकर भीतर घुस पाये। कोसी में कमलेश ने केले, समोसे खिलाये और चाय पिलाई। राजामंडी स्टेशन पर उतरते समय उनका पुराना कंबल गाड़ी में ही छूट गया।

आखिर निराला स्वदेशी बीमा नगर में मेरे घर पहुँचे। सुमन आ चुके थे। निराला बाजार से गोश्त लाये। ढेर-सा घी डालकर पकाने बैठे। सदा की भाँति गोश्त पकने मे देर लगी। वह नहा-धोकर तैयार हुए, उसके बाद सुमन ने गुसलखाने मे प्रवेश किया। कुछ देर हुई। निराला अधीर हो रहे थे। आखिर सुमन को जल्दी न निकलते देखकर उन्होंने डाँट लगाई—का जनाना अस हुआँ घुसुरु-घुसुरु करत है!

सुमन जल्दी से बदन पोछते बाहर निकले। निराला ने भोजन किया, फिर सोये। नाथूराम शंकर शर्मा के पुत्र हरिशंकर शर्मा से मिलने गए। शंकरजी से, 'समन्वय' के दिनो से, उनका सम्बन्ध था। बड़े स्नेह से वह हरिशंकरजी से मिले। फाइन आर्ट स्टूडियो मे फोटो खिचाया। मैं उन्हे इधर-उधर घुमाने ले गया, उन्हें प्रलोभन दे रहा था कि आगरे में स्थायी रूप से रहें। वह कह रहे थे कि यहाँ सब ड्राई, ड्राई-सा लगता है।

बंगाल को देखते अवध में हरियाली की कमी, अवध को देखते ब्रजभूमि—विशेष रूप से आगरा—शुष्क। उनकी बात सही थी। ताजमहल से लौटते हुए वह जमुना में कितना पानी है देखने के लिए रेती पर चलने लगे। शेरों की बातें सुना रहे थे। झुटपुटा हो आया था। वह बताने लगे कि शेर को देखकर गीदड कैसे बोलता है।

फिर चिल्लाये : हिऊ, हिऊ, हू, हू, हुआ, हुआ।

उस सुनसान में जमुना के जल पर और उस पार दूर तक निराला की वह अमानवीय-सी लगनेवाली आवाज गूँज उठी।

ग्वालियर पहुँचकर उनका परिचय डा० महावीर सिंह से हुआ। एक साहित्य-प्रेमी के नाते उनकी मुलाकात निराला से कराई; वह किस तरह के डाक्टर हैं, हम लोगों ने उन्हें यह कुछ न बताया। मैंने अलग से निराला का जितना इतिहास मालूम था, सुना दिया। वह निराला से मिलते, घंटों बैठे बातें करते, निराला की बातें सुनते। निराला बहुत प्रसन्न थे। एक बार भी उन्होंने शेरों का प्रसंग न आने दिया। उन्होंने बँगला गीत गाया—बारन करो तबे गाहिबो ना।

उनका स्वर इतना सधा हुआ था, गीत इतना मधुर लगा कि मैंने कहा—"निरालाजी, ऐसे गायेंगे तो हम नौकरी छोड़कर इलाहाबाद में फिर साथ रहेंगे।"

वह खूब जोर से हँसे। फिर बोले—हम लोग तो अमैच्योर हैं। आप लोगों को खुश किया है।

मैंने कहा—यहाँ तो प्रिमैच्योर हैं।

निराला ने आधी बात खड़ी बोली में कही, आधी बैसवाड़ी में—"आपके पास तो सब कुछ है। ईश्वर ने सुन्दर बीबी दी है, प्रोफेसरी है, रहने को कमरा है। बस, इसी तरह चले जाओ। तुम हमका मानति हौ, यही ते तुमते बताइत है। बाघ हमेशा ऐरोगैंट का झपडिआवोत है। हिज़ हाईनेस वगैरह का झपड़िआओब चाखैं लायक रहैं। गोली से तो मरता नहीं है—ढेलों को वह क्या गिनता है? जैसे तुम खवावति पियावति हौ, वैसे वहु एकु कू कुरु खायेसि, एकु मनई खायेसि। फि कमरा मैं आय कै बैठिगा। यहु तो सहर क हाल है। जंगल कै बात को कहै?"

सुमन के दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। एक व्यक्ति ग्वालियर-महाराज का पत्र लेकर आया था। निराला ने सुमन को व्यस्त-सा देखकर अंग्रेज़ी में पूछा—"हैज़ हिज़ हाईनेस कम?" सुमन ने निराला की तरफ न देखकर चिट्ठी पढ़ते हुए कहा—'नहीं उनकी चिट्ठी है।" निराला ने फिर पूछा—"लेटर प्राइवेट है क्या?" सुमन ने कुछ न कहा।

बात राजाओं, जमींदारों और ठाकुरों के बारे में होने लगी—रियासतों में किसानों पर अत्याचार, टाँगें फैलाकर बीच में पत्थर रख देना, पीछे हाथ बाँधना, जूतों से मारना। फिर बोले—"ठाकुर और शैतान बराबर होता है।" बैसवाड़े के लोगों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—"बैसवाडे का आदमी बदमाश होता है।" फिर ए. आई. सी. सी., पी. सी. सी. की बातें हुईं। "दिल्ली में हमने अपनी स्पीच में कहा था···"; कांग्रेसी नेताओं पर नाराज़ होते हुए बोले—"हाई कमाण्ड लिये फिरते हैं। प्रोपर्टी का मामला आने दो, देखें तब कितना देते हैं। बैंकिंग की व्यवस्था बहुत खराब है। यह खत्म होनी चाहिए। जमींदारी भी। और हम चाहते क्या हैं? रुपया बाँटकर लोग सुख से रहें, सच्चे मेल से रहें। कम्युनिज्म और क्या है? हमने क्या पाया? पैसा पाया या जस पाया? तुम लोगों का रास्ता तैयार किया है। नष्टत्व

का प्रमाण हम लोग खुद हैं।"

चाय पीने के बाद प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने रवीन्द्रनाथ का दूसरा गीत गाया—जामिनी जेते जागाले ना केनो, बेला होलो मरी लाजे। जब वह इस पंक्ति तक आये—नीविया बाँचिलो निशार प्रदीप ऊपार बातास लागी—तब सुमन की पुत्री उषा के रोने की आवाज़ आई। निराला ने रुककर कहा—यह गीत पहलेवाले से अच्छा है। फिर उन्होंने गीत पूरा किया। शेली की स्काइलार्क वाली कविता से यह बंद दो बार पढ़ा—

Like a high born maiden
In some palace tower,
Soothing her love-laden
Soul in secret hour
With music sweet as love which
Overflows her bower.

रवीन्द्रनाथ की एक कविता याद आई। बोले—"टैगोर ने लिखा था—प्रासाद शिखरे कबरी एलाये...लेकिन

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली
दृग बंद किये शिथिल पत्राङ्क मे।

यहाँ प्रासाद नही, जंगल है।"

रवीन्द्रनाथ के साथ कालिदास को हीन ठहराते हुए उन्होने वाल्मीकि को श्रेष्ठ कवि कहा। एक पंक्ति दोहराई—सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने। फिर अपनी कविता का कुछ अंश पढ़ा—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी धीरे धीरे धीरे।

फिर बड़े भावावेश मे उन्होंने "दलित हृदय की रुद्ध अर्गला खोल" आदि पंक्तियाँ सुनाईं और कहा कि यह प्रोग्रेसिविज़्म की शुरूआत थी।

'कुकुरमुत्ता' के बीच से कुछ अंश सुनाने के बाद उन्होने कहा—"जोश ने इधर सात-आठ साल में अच्छा काम किया है। मैने जोश को कविता सुनाई,

मुहोंमुँह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के काँटे जैसे
अपनी अपनी कली तोलते हुए।

जोश ने कहा—मीनिंगलेस। मैंने कहा—रिन्दों ने कायनात को मैखाना कर दिया; कैसे कर दिया ?"

शृंगार रस की चर्चा होने पर उन्होने सुमन को लक्ष्य करके कहा—"नैतिकता का ध्यान रखो; नेचर इसके लिए छोड़ न देगी।"

सुमन के पुत्र अरुण आ गये। निराला को कुश्ती लड़ने की सूझी। अरुण से बोले—आओ, तुम्हे कलाजग सिखाये। तीन साल के अरुण निराला से कुश्ती लड़ने लगे, एक हाथ गर्दन मे दिया, दो हाथ पीठ पर जमाये। निराला इस दंगल मे कई वार उठे-वैठे। नगे वदन पर केवल तहमत थी। तहमत खुल न जाय, इसलिए उठते-वैठते हर वार उसे सँभालते जाते थे।

संध्या समय लक्ष्मीवाई की समाधि देखने गये। चारो तरफ अँधेरा फैल रहा था। समाधि के सामने उस नीरव एकान्त में निराला हाथ जोडकर खडे हो गये; हमें लगा कि वह वहुत देर तक खडे रहे। उन्होने सिर न झुकाया, वस हाथ जोड़े रहे। फिर एक भी शब्द कहे बिना वापस लौटे।

सुमन के प्रयत्न से मुरार मे निराला का सम्मान किया गया और १५१) की थैली भेंट की गई। इसे उन्होंने वहाँ की साहित्य-सभा को दे दिया, पर कवि मिलिन्द तथा अन्य सज्जनो के वहुत मनाने पर उन्होने उसे ग्रहण किया। एक गोष्ठी डा० महावीरसिंह के यहाँ भी हुई।

डा० महावीरसिंह से वह इतने प्रसन्न हुए कि वोले, अगली वार जव आऊँगा तो आपके यहाँ ठहरूँगा। डाक्टर साहव ने उनके रक्तचाप की जाँच की। फिर उन्होंने कहा—मैं आपके पूरे शरीर का ऐक्स-रे लेना चाहता हूँ, खून, पाखाना, पेशाव की परीक्षा करना चाहता हूँ। निराला ने कहा—इस वार मुझे समय नही; दूसरी वार आऊँगा तो आप फुर्सत से मेरे शरीर की जाँच कर सकते है।

सुमन ने वहुत कोशिश की कि एक दिन रुक जाये और रक्त-परीक्षा करा लें, पर निराला ने चलने की ठान ली थी और वह चल दिये। सुमन झाँसी तक उन्हे छोडने आये। वहाँ से वह इलाहावाद जाने के वदले रामकृष्ण से मिलने लखनऊ गये।

लखनऊ मे वह रामकृष्ण के यहाँ पहुँचे और उनका गाना सुना। तारीफ़ की और कहा, पहले से अव अच्छा है। खूव मेहनत करने, पिस्ते खाने और दूध पीने का आदेश दिया। वहाँ से इलाहावाद आये।

सुमन और मैंने काफ़ी प्रयत्न किया कि वह ग्वालियर या आगरे आकर रहे, पर वे टालते रहे। जून के अन्त मे सुमन इलाहावाद गये। निराला के यहाँ पहुँचे तो देखा अँधेरा है, ऊपरवाले कमरे के एक कोने मे मिट्टी का दिया जल रहा है। निराला चौका लगा रहे थे। केश, दाढ़ी-मूँछ वढे हुए, अस्त-व्यस्त, जैसे अभी रोगशय्या से उठे हो। थोडी देर पहले रोटी वनाई थी। वोले—आज खाना ज्यादा वना लिया था। सोच ही रहा था कि इतना कौन खायेगा। तुम अच्छे आ गए। अव खाना खाकर ही जाना। आज वहुत ही वढ़िया घी लाया हूँ। ऐसा तो वैसवाड़े मे भी न मिलेगा आजकल।

सुमन नाही-नाही करते रहे। निराला ने जवरदस्ती विठाकर खिलाया, दूध मे रोटी मीसकर रख दी। खुद आधे पेट खाकर उठ गये। सुमन ने विरोध किया तो

विगड़कर वोले—तुम आदमी हो कि क्या हो ? मैं वेवकूफ हूँ जो तुम्हारे लिए भूखा रह जाऊँगा ?

चारपाई पर गद्दा विछाकर सुमन को सुलाया। खुद तख्त पर कुछ विछाये विना लेट रहे। सुमन आकर पैर दवाने लगे। निराला ने मना किया, पर इस वार सुमन ने जिद की। उन्हें सुख मिला, वहुत दिनों वाद ऐसा सुख मिला था और वह घंटे-भर तक पैर-कमर-हाथ दववाते रहे। सुमन ने कहा—ग्वालियर कव चलेंगे? निराला ने कहा—अभी नहीं।

सुमन के सोकर उठने से पहले ही वह जलेवी ले आये। नाश्ता कराने के वाद वाजार से गोश्त लाये। एक पोटली में वँधा हुआ आटा मटकी मे भरने लगे। सुमन ने कहा—लाइए मैं भर दूँ; आप नहाने जाइए। उन्होंने डाँटा। खुद ही आटा भरा। नहाने चले तो वही आटे वाला कपड़ा झाड़कर पहन लिया। भोजन के वाद सुमन ने फिर ग्वालियर चलने का अनुरोध किया। निराला ने साफ नाही कर दी।

एक कवि-सम्मेलन के सिलसिले में सुमन इलाहावाद फिर आये और लगभग महीने-भर रहे। इस वार निराला ने उन्हे घर मे न घुसने दिया। मैले कपड़े पहने, धूलि धूसर, हाँफते-से निराला सुमन को घर में घुसने से रोकते हुए वोले—"हुआँ मेह-रिया वैठी हैं, हुआँ जइहौ तो मारि कै चोकरा कइ डरिहैं।" सुमन ने मेरी याद दिला-कर उन्हें यथार्थ वोध के स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। निराला ने कहा—राम-विलास आपके मित्र होंगे, मेरा तो उनसे कोई विशेप सम्वन्ध नही। सुमन ने इसके वाद उन्हे ग्वालियर ले जाने का फिर प्रयत्न न किया।

निराला की स्थिति को लेकर उनके सभी हितैपी चिन्तित थे। प्रश्न था, क्या किया जाय जिससे वह प्रसन्न रहे और पहले की तरह सामान्य ढँग से फिर काम करने लगें। कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह की योजना थी कि निराला का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाय—एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करें। युद्ध समाप्ति पर था। छह साल में अँग्रेज़ों ने युद्ध का वोझ लादकर देश की कमर तोड़ दी थी। लाखों आदमी भूख से तडप कर मर गये। करोड़ों आदमी एक जून मोटा-झोटा जो मिला, आधे पेट खाकर शरीर जिआये थे। जो लोग अंग्रेज़ों के साथ मिलकर लड़ाई का माल सप्लाई कर रहे थे, वे करोडपति हो गये, निराला ने अभिनंदन की वात सुनी तो लिखा—"कुँअर चन्द्र-प्रकाश की योजना (अभिनंदन वाली) ज्ञात हुई। देश और विश्व की स्थिति वुरी है। अभिनंदन शोभा नही देता। अभी पन्द्रह-वीस साल तक यह अवधि वढ़ाई जा सकती है। यदि मेरा अन्त हो गया तो साहित्य में अभिनन्दनीय व्यक्ति का टोटा न रहेगा।"[४४]

वात जहाँ-की-तहाँ रह गई। निराला की स्थिति के वारे में कई जगह लेख प्रकाशित हुए। 'लोक युद्ध' मे उनकी स्थिति का समाचार पढकर कई गुजराती पत्रों ने हिन्दी लेखकों की हीन दशा वतलाते हुए निराला के लिए भीख की अपील प्रकाशित की। यह समाचार देते हुए अमृतलाल नागर ने मुझे सावधान किया—चंदा संसद के लिए इकट्ठा किया जा सकता है, किसी भी लेखक के नाम पर भीख नहीं माँगी जा

सकती, यह उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचाना है।

नंददुलारे वाजपेयी, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर आदि मित्रों के सहयोग से मैं निराला परिषद् की स्थापना का प्रयत्न कर रहा था। इस परिषद् का उद्देश्य निराला के 'प्रशंसकों और उन के साहित्य से सहानुभूति रखनेवालों का एक स्थायी संगठन" बनाना था जिससे "उनके साहित्य के अध्ययन में और तत्संबन्धी सामग्री के चयन में एक सुसंगठित प्रयास हो सके।···निराला परिषद् का उद्देश्य होगा कि वह निरालाजी और उनके साहित्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व को संगठित रूप से निवाहे··· निरालाजी के साहित्य के प्रकाशन, उसके कापीराइट, रायल्टी आदि तथा लेखों, कविताओं के पारिश्रमिक आदि के प्रश्नों पर परिषद् विचार करेगा और यह प्रयत्न करेगा कि उनके साहित्य का जहाँ रसात्मक मूल्य आँका जाय, वहाँ उसकी आर्थिक आय का एक समुचित भाग उसके रचयिता को भी मिले।"

इस विज्ञप्ति में कहीं भी निराला के लिए चन्दा करके उनकी आर्थिक सहायता करने का बात न थी। परिषद्-योजना कार्य-रूप में परिणत न की जा सकी। मेरी व्यक्तिगत अक्षमता के अलावा प्रकाशकों, उनके दलालों और उनके खुशामदी लेखकों को स्पष्ट दिख रहा था कि इस योजना से निराला की पुस्तकें चंद पूंजीपतियों के हाथ से निकल जाएँगी। मैंने 'हंस' में नोट लिखा कि जिन प्रकाशकों ने उनकी पुस्तकें कापीराइट पर ली हैं, वे अपना अधिकार छोड़ें जिससे कि निराला को रायल्टी देने की उचित व्यवस्था की जा सके। प्रकाशकों और उनके दलालों को शिकायत थी कि हिन्दी की किताबें आम तौर से और निराला की किताबें खास तौर से बिकती नहीं हैं, लेकिन कापीराइट छोड़ने के मामले में सब सोंठ थे।

निराला के प्रशंसक साहित्यिकों को इस बात से बहुत कम दिलचस्पी थी कि निराला के जीवन और साहित्य से सम्बन्धित सामग्री इकट्ठी की जाय, उसके लिए सगठित प्रयास हो, उनकी रचनाओं का विधिवत् अध्ययन किया जाय। निराला के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन अधिक सुखद कार्य था।

महादेवी वर्मा ने साहित्यकार संसद् स्थापित की। इसकी अन्तरंग समिति की बैठक मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में हुई। उसमें निश्चय हुआ कि निराला की चुनी हुई कविताओं का एक संकलन—पंत की 'पल्लविनी' जैसा—संसद् से प्रकाशित किया जाय। कापीराइट छुड़ाने के बारे में भी विचार हुआ। महादेवीजी ने इस बारे में बताया—"उनकी रचनाओं के कापीराइट के सम्बन्ध में हम लोगों ने श्री बिड़लाजी को लिखा है। आवश्यकता होने पर सियारामजी उनसे मिलने चले जायँगे। यदि सम्पूर्ण रचनाओं का कापीराइट लीडर प्रेस से न मिल सके तो संकलन की अनुमति हमें मिल ही जानी चाहिए।"[५]

वह अनुमति उन्हें मिल गई। कापीराइट बिड़लाजी के पास रहा। महादेवीजी ने यह सूचना भी दी कि "आगामी ५ मास तक संसद् निरालाजी को १००) प्रति-मास देने का निश्चय कर चुकी है। २ महीनों का दिया भी जा चुका।" उनका विचार था कि निराला की तीन-चार पुस्तकें भी संसद् प्रकाशित कर सके तो उन्हें

२००) प्रतिमास मिलना सहज हो जायगा। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता से धन-संग्रह करने के बाद उन्हें आशा थी कि संसद् पंत की लोकायतन योजना—सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित करने की योजना—को मूर्त रूप दे सकेगा। अर्थ-संग्रह में सहायता करने के लिये उन्होंने मुझे भी लिखा। इसमें मुझे सफलता न मिली; विशेष उत्साह भी न था। इससे पहले महादेवीजी ने गुलाबराय को तीन पत्र लिखे थे जिनमें से एक का भी उत्तर उन्होंने न दिया था।

निराला ने धन-संग्रह में सहायता के लिए केदारनाथ अग्रवाल को लिखा : " 'साहित्यकार संसद्' नाम से अपनी व्याख्या करती है। साहित्यिकों की एक ही संस्था है। साहित्यिक और धनिक मदद कर रहे हैं। आप भी कुछ कीजिए। महादेवीजी Secretary है, मैथिलीशरणजी सभापति, बहुत से गण्य लेखक सभासद है, रायकृष्ण-दास कोषाध्यक्ष, मैं साहित्यकार हूँ, प्रकाशन मेरे संग्रह का हो रहा है, रुपये ५००) अग्रिम मिले। नरेन्द्र ने १००) भेजे हैं, कुछ-कुछ आप लोग भी भेजिए।"

निराला व्यक्तिगत सहायता के लिए अपील नहीं कर रहे है, पत्र में इसका संकेत उन्होंने कर दिया। आरम्भ में ही लिखा—"मेरे लिए विशेष, उद्विग्न न हूजिए; क्योंकि लेखनी मेरे पास है और वह आपकी सभा परिषद् से कम शक्तिशालिनी नही।"

अपनी शक्तिशालिनी लेखनी का भरोसा करके उन्होंने मई-जून की गर्मी मे 'विषवृक्ष' का अनुवाद पूरा किया। अपने कविता-संग्रहों से कुछ कविताएँ 'अपरा' के लिए उन्होंने खुद नकल कीं, कुछ में निशान लगा दिए कि महादेवीजी की छात्राएँ नकल कर लें। निराला महादेवी वर्मा को बहन करके मानते थे; वह उनके राखी बाँधती थी, निराला मिठाई खिलाते थे। 'अपरा' के संपादन का जितना अधिकार निराला को था, उतना ही महादेवीजी को। निराला की बड़ी इच्छा थी कि संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' भी रहे। महादेवीजी ने अपने भाई का जो छायावादी चित्र बनाया था, उसमे 'कुकुर-मुत्ता' की कही गुंजाइश न थी। निराला ने उन्हें समझाया कि 'कुकुरमुत्ता' आज की सबसे सुन्दर कविता है; जीवन के यथार्थ से घबडाना नहीं चाहिए।

"देवीजी ने कोई प्रतिवाद नही किया, पर निरालाजी निश्चय ही कुछ खिन्न हुए।"[४७]

जुलाई के आरंभ में उन्होंने लिखा : " 'अपरा' छप रही है सा० संसद् वाली मेरी संग्रहणी। महादेवीजी अभी पहाड़ से नहीं आईं। आज-कल में आने वाली है।"[४८]

कार्तिकी पूर्णिमा तक की प्रगति : " 'अपरा' छप गई। निकलने को है। 'चोटी की पकड़' भी प्रायः समाप्त है। 'काले कारनामे' उपन्यास आधा पूरा हुआ।"[४९]

जिन दिनों साहित्यकार-संसद् 'अपरा' छाप रही थी, उन्हे प्रतिमास निश्चित आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध कर रही थी, उन्ही दिनों निराला कवि-सम्मेलनों में अपनी फीस बढ़ा रहे थे, निबन्ध-पाठ के आयोजन के लिए मित्रों को ललकार रहे थे, जन प्रकाशनगृह के लिए विराट् संस्मरण-ग्रन्थ की योजना बना रहे थे। उनके दो नये कविता-संग्रह 'नये पत्ते' और 'बेला' तैयार थे। 'काले कारनामे' उपन्यास तैयार हो रहा था लेकिन साहित्यकार संसद् को इनमे से एक भी पुस्तक उन्होंने न दी।

यदि साहित्यकार-संसद् हिन्दी-लेखको की जातीय संस्था के रूप मे विकसित होती, निराला की पुस्तको का कापीराइट छुड़ाकर उन्हे प्रकाशित करती तो निराला की आर्थिक स्थिति मे आमूल परिवर्तन होता, अन्य हिन्दी-लेखको के जीवन और उनकी साहित्य-रचना पर भी ससद् का गहरा असर पड़ता। पर यह सब न हुआ।

कर्वी की लंबी बीमारी के बाद अब तक निराला ने शारीरिक स्वास्थ्य सुधार लिया था। सन् '४५ मे उनकी देह काफी पुष्ट हो गई थी। आगरे मे जो फोटो खिचा था, वह उन्हे बहुत पसन्द आया और उसकी कई प्रतियाँ उन्होने मँगाई। उनका मन यथार्थ और स्वप्न दोनो से जूझ रहा था, वह एक ओर शेरो से युद्ध करते, दूसरी ओर कविताएँ लिखते, अनुवाद करते, उपन्यास रचते। उनका जीवन औसत निम्न-मध्यवर्गीय नौकरीपेशा आदमी से गया-बीता था। न घर मे बिजली, न पंखा। कभी लालटेन, कभी दिया, कभी वह भी तेल से रीता। मैले-कुचैले वस्त्र, फटी चप्पलें, कभी नंगे पैर, हाथ से भोजन पकाते, खुद ही बर्तन मलते, चौका लगाते। यह कल्पनातीत है कि यदि वह किसी ऐसे शहर मे रहते जिसमे नन्ददुलारे वाजपेयी, कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह, शिवमंगलसिंह सुमन या जानकीवल्लभ शास्त्री होते तो उन्हे इस दशा मे रहने दिया जाता! पर निराला किसी पर भार बनकर रहना न जानते थे। इलाहाबाद मे कोई ऐसा न था जो उन्हे अपने साथ रहने को बाध्य करता। शारीरिक और मानसिक रूप से निराला नरक-वास भोगते हुए भी, गंगा की रेत और आकाश देखते हुए, न भीतर से पूरी तरह टूटे थे, न जीवन से निराश हुए थे। उन्होने एक गज़ल लिखी थी—

> लू के झोको झुलसे हुए थे जो हरा दौंगरा उन्ही पर गिरा;
> उन्ही बीजों के नये पर लगे उन्ही पौधों ने नया रस फिरा।

ऐसी लक्कड़तोड़ भाषा का प्रयोग किसी गज़लख्वाँ ने अब तक न किया था; लू के झोको से झुलसकर किसी ने हरे दौंगरे का आनन्द भी निराला की तरह न लिया था। खूबसूरती मे वे सब निराला से आगे थे, जीवट मे निराला से पीछे।

निराला अपने ऊपर कुछ अधिक खर्च कर सकते थे, सुन्दर वस्त्रो मे इत्र-फुलेल लगाकर सैर-सपाटे के लिए जा सकते थे, पर इस समय उनपर गृहस्थ धर्म सवार था। सरोज गई। रामकृष्ण का क्या होगा? संगीत-शिक्षा पूरी हो रही है। उसके बाद? कर्वी की बीमारी से उन्हे एक झटका और लगा था। इस जिन्दगी का क्या भरोसा? जो कुछ लिखना हो, लिख जाओ, अशक्त होने से पहले पुत्र के लिए सुखी जीवन की व्यवस्था कर जाओ। रामकृष्ण के अलावा परिवार मे और लोग भी है। उनकी सहायता, किसी का व्याह, किसी के लिए गहने, बागो का मुकदमा—निराला पूर्ण संज्ञाप्राप्त मनुष्य की तरह इन सब बातो का भी ध्यान रखते थे।

पुत्र से गृहस्थ निराला का वार्तालाप :

३१ जनवरी १९४५ : "कल ३०) तीस रुपये तुम्हारे खर्च के लिए भेजे, आज १५) पन्द्रह रुपये और भेजते हैं। ट्युशनें कर ली, अच्छा है। जो उद्वृत्त रुपया हो, डाकखाने या बंक मे जमा करते रहो।"

८ फर्वरी : "कल १२५) एक सौ पच्चीस रुपये और भेजते है। महीने भर वाद ढाई तीन सौ और देंगे। २५) के करीव विहारीलाल को भी भेजेंगे।"

२ अप्रैल : "आज तुम्हारे खर्च के लिए २५) भेजे।"

६ अप्रैल : "२५) रु० भेजे थे। उसकी रसीद मिल गई कि रुपये तुमको प्राप्त हो गये। आज ७५) रु० भेजते हैं। एक तोले का टीका वनवा लो। ४००) का चैक आ गया है। भुनाकर ३००) भेज देगे एक हफ्ते के अन्दर या लेकर आयेंगे। कान की कोई चीज, गले की और हाथ की वनवा लेनी है। माल खोटा न हो। सोने की परख करा लेना। हाथ का जंजीरदार एक जेवर होता है, तीन-चार तोले तक वन जाएगा। टीका के वाद उसको बनाना है। फिर कानो वाला। तुम्हारी मामी के लिए जंजीर गले की अभी अगर न वन सके तो रहने देना, फिर रुपये भेजेंगे।"

८ जुलाई : "ट्यूशन करने की आवश्यकता नहीं। रुपये एक हफ्ते के अन्दर भेज देगे। मास के अंत मे यहाँ हिसाव चुकाने मे हाथ का रुपया खर्च हो गया। अगर महीने दो महीने रुपये न अटें तो वैंक से खर्च निकाल लेना गोकि इसकी नौवत न आयेगी। जी लगाकर निश्चिन्त होकर तैयारी करो। कुल काम छोड़ दो जिससे अड़चन हो।"

२५ जुलाई : "लड़की हुई अच्छा हुआ। करेंट अकौंट्स मे इसीलिए रुपये हैं कि खर्चे की दिक्कत न हो। इतने से पास कर जाओगे। तव तक और देखते है!"

२६ जुलाई : "१००) कल भेजे। जमा कर देना। ३०) तुम्हारे मामा को भेजे। अम्मा और अंजनी कल आये। आज अतर्रा जा रहे है। महीने भर वाद २५०) भेजेंगे। १२५) सवा-सवा सौ के दो इयरिंग वनवा लेना। एक गोपा के लिए और एक वहू के लिए।"

३१ जुलाई : "एक अच्छा सस्ता मकान देखते रहो और मिल जाने पर वहू को ले आओ, रहो। परीक्षाभर तुमको चिन्ता नही। उससे भोजन पान की सहूलत होगी। खर्च इतना ही होगा। मकान ठीक करके राशनिंग कार्ड तीन आदमियो का ले लो।"

३ अगस्त : "ठीक है। अभी घर और किताबो का फेर छोड़ दो। तैयारी किये जाओ। जी काम में लगा रहे। फिर देखा जाएगा।

"अम्मा सकुशल गई। उनके पीछे भी ३०) खर्च हुए। ५) और एक्के के किराए में लगे। ३०) रामधनी के नाम भेजे गये वह अलग।

"रामशंकरजी का खत यहाँ नही आता। इन लोगों को आगे-पीछे रुपये भेजने हैं।"

२३ अगस्त : "कल २५) शिवानन्दजी को जन्मपत्री के लिये भेज दिये··· तुम्हारी सुविधा मे कोई कमी हे तो लिखना। खर्च फिलहाल कुछ निकाल लेना, मगर सूचना देकर।"

३ सितंवर : "रुपये के संवन्ध में कह चुके हे कि १००) तक खर्च समझ से करो, दे देंगे।"

२४ सितंवर : "तुम्हारी वीमारी फोड़े आदि के कारण चिन्ता हे। द्विवेदीजी

[शिव शेखर] इस समय यहीं है। खर्च १५-२० दिन बाद सब जगह भेज दिया जायगा, ऐसी आशा है, खर्च की अड़चन भी हो सकती है।"

१० अक्तूबर : "द्विवेदी बीस दिन रहकर कल गये। तुम्हारे फोड़े अच्छे हो रहे हैं, खुशी की बात है। गोपा, तुम्हारी स्त्री और भाभी को दो-दो साड़ियाँ जल्द भेजनी हैं। रुपया व्यर्थ खर्च न हो, वक्त पर आ जायगा।"

१२ नवंबर : "रुपये १५०) डेढ़ सौ आज तुम्हारे नाम नाम लखनऊ ५ भूसा-मंडी, भेज दिये।"

२० नवंबर : "७५) पचहत्तर रुपये आज और भेजे। जमा कर देना। गोपा की विदाई की तैयारी कर रहे है।"

२७ नवंबर : "यहाँ गोपा की विदाई के लिए ईरिंग, साड़ी, स्वेटर, चप्पल, चद्दर, किताबे, मेवा आदि १३६) रु० की खरीद ली है।"

२० दिसंबर : "तुम पास हो गये प्रसन्नता है। आशा है, छठे साल मे भरती हो रहे हो। अभी रुपया आया नही। आने पर भेज देंगे।"

३० दिसंबर : "इस महीने दो मनीआर्डर भेजे।... तुम्हारे मामा की बीमारी से चिन्ता है। हमारी लाचारी मालूम है। रुपया हाथ आया तो भेजेंगे।

"तुम्हारे दूसरे मनीआर्डर के साथ बिहारीलाल को भी २५) भेजे थे। जाड़े से कुछ पहले कोट, रजाई, चदरे, धोतियाँ आदि १००) से अधिक की लागत के कपड़े दिये थे जब वह आये थे।"

वर्ष समाप्त हुआ। कोई मास, कोई सप्ताह ऐसा न बीता, जब निराला को अपने पुत्र से लेकर परिवार के दूरस्थ सदस्यो तक का ध्यान न रहा हो। पुराने युगों में जैसे कुलपति होते थे, वैसे ही वह कुल के नजदीकी और दूर वाले सभी सदस्यो की खोज-खबर रखते थे। लोग उनके यहाँ आते-जाते थे, संभव होने पर निराला उनके यहाँ पहुँचते थे। गाँव में घर के 'पुरिखा'—बड़े-बूढ़े गृहपति—की तरह वह संयुक्त परिवार के टूटते हुए ढांचे को यथासंभव अपने व्यक्तित्व से बाँधे हुए थे। उनके परिवार मे पिता-पुत्र ही न थे; भतीजे, साले, समधी, दामाद—बहुत-से लोग थे। वह इन सबका भरण-पोषण न करते थे, फिर भी उन सबको किसी-न-किसी रूप मे निराला का सहारा था। वह जब-तब रामशंकर शुक्ल की भी आर्थिक सहायता करते थे। अवश्य ही इस कुनबे में प्रमुख स्थान रामकृष्ण का था। पुस्तकों की रायल्टी से लेकर बागों की डिकरी तक की चिन्ता उन्हे रामकृष्ण के कारण थी।

"मै घरेलू कामो से लखनऊ और डलमऊ रहा। मेरे बाग की प्राथमिक डिकरी मेरे खिलाफ हो चुकी है। इस समय वह पूरा बाग चार-पाँच हज़ार रुपये कीमत का होगा। रुपया मैंने एकत्र कर लिया है। श्री रामकृष्ण के नाम बैंक में जमा कर दिया है। कर्ज़वाली डिकरी का रुपया चुका दिया जायगा। मुकदमे मे मैं हाजिर नही हुआ। पैतृक सम्पत्ति रामकृष्ण के नाम कर देना चाहता हूँ, जो कुछ है। मेरी आथरशिप (authorship) वाली किताबे भी उनकी होगी। पारिवारिक हिसाब। फिर जैसा होगा। आपको सूचित किया।"[५०]

इसी प्रसंग के कुछ समाचार और : "डलमऊ में रामकृष्ण आदि को देखने, बाग के रुपयो की हुई डिकरी पर बातचीत करने और रुपये देने के लिए गया था। लखनऊ और उन्नाव होता हुआ। रामकृष्ण की दूसरी स्त्री को पहली बार तीन साल बाद देखा। उसके लडका होनेवाला है।

"पुरवा (रंजीत) में रामकृष्ण की उस स्त्री से हुई लडकी को देखा।

"अभी साले की लड़की की शादी नहीं हुई।"[५१]

जाडा खत्म हो रहा था, तब एक दिन रामकृष्ण आये। उन्होंने पिता की हालत देखी तो बड़े दुखी हुए। "निहायत गन्दे कपड़े, कई दिनों मे खाना पकाते हैं, राशन वगैरह के झंझट से सिर्फ़ साग ही उबालकर खा लेते है। सारा जाड़ा खत्म हो गया, एक चादर तक न ओढी, यूँ ही काट दिया। रास्ते मे चाय ली, कुल्हड हाथ में लिए पीते हुए चले जा रहे हैं। लोग हँस रहे थे। उनकी बातें बहुतांश मे न समझ सकने वाली होती हैं। रात-भर जगते हैं, सोचते हैं, हँसते हैं।"[५२]

इन्ही दिनों केदारनाथ अग्रवाल उनसे मिलने आये। निराला सहज भाव से बातें करते रहे। फिर अचानक चिन्तित होकर बोले—"तुम्हारा यहाँ रहना खतरे से खाली नही है। तुम चले जाओ। बाकी बातें पत्र द्वारा होंगी।"

निराला के साले रामधनी द्विवेदी बीमार थे। रामकृष्ण भी डलमऊ में थे। निराला कुछ महीने डलमऊ रहे। मुंशी और अवस्थी—अपने दो भाइयों—के साथ मैं उन्हें देखने गया। वहाँ मैंने उस तेजस्वी महिला के दर्शन किए जो मनोहरादेवी की माँ थी, जिन्हे निराला बड़े स्नेह और विनम्रता से अम्मा कहते थे, जिनके सामने आते-जाते बातें करते देखकर मुझे लगा, इस घर में निराला उतने विराट् नही है जितने बाहर की दुनिया मे। उन्होंने वह श्मशान-भूमि दिखाई जहाँ अट्ठाईस वर्ष पहले वह रात में घंटो घूमा किये थे। उन्हे वह स्थल अब भी याद था जहाँ उनके डलमऊ पहुँचने से पहले ही मनोहरादेवी की चिता जली थी। मैं उनकी आकृति देख रहा था, कही सिहरन, भय का कंपन नहीं था; चट्टान में कटी हुई मूर्ति पर मानो केवल श्याम घटाओं की छाया पड़ रही हो।

उन्होंने किला दिखाया, एक ऊँचे स्थान से नीचे की ओर सीढियो के अवशेषो की ओर संकेत किया और कहा—यही से प्रभावती उतरकर नाव मे बैठी थी।

गंगातट पर मन्दिर के प्राङ्गण मे हार्मोनियम-तबले आदि के साथ बैठक हुई। पुत्र ने पिता के रचे हुए गीत गाये—

टूटें सकल बन्ध,
कलि के दिशाज्ञानगत हो बहे गन्ध।

निराला ने हार्मोनियम सँभाला। कुछ गीत गाये; रामकृष्ण तबले पर संगत करते रहे। फिर दूर अँधेरे मे श्मशान की ओर देखते हुए निराला गाने लगे—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्।

गाते-गाते वह आपे से बाहर हो गए। इसी डलमऊ मे यह गीत उन्होने सबसे पहले सुना था; जिसने यह गीत सुनाया था, यही उसकी चिता जली थी। यही डलमऊ

सरोज की क्रीड़ाभूमि था; माता के समान पुत्री की चिता भी यही जली थी। निराला उन क्षणों मे अतीत के अनेक वर्ष एक साथ जी रहे थे। गगा के किनारे रात के अँधेरे मे मन्दिर के प्राङ्गण से उठता हुआ उनका व्यथा-विह्वल स्वर डमलऊ के खँडहरो में देर तक मँडराता रहा।

दो महीने वाद रामकृष्ण ने लिखा : "निरालाजी अभी तक यही है। मामा की हालत वहुत खराव हो गई है···चार महीने मे अभी १००) निरालाजी के आये है, वह भी कही से अग्रिम लिया है। और एक करोड का हिसाव कहते है हुआ अव तक। चौमंज़िला मकान है उनका, उसमे २४ परी संगमरमर की है।"[५१]

दो हफ्ते वाद निराला का संक्षिप्त कार्ड आया :

C/o Pdt. Ram
Krishna Tripathi S. V.
Dalmau
Rae Bareli
भाद्र शु० ११

प्रियवर,

हमारे साले साहव का चार मास की कडी वीमारी के वाद देहान्त हो गया। अव तक इन्ही कारणो से खत नही जा सका। इति।

आपका
नि०

एक दिन किसी से कुछ कहे विना निराला घर से निकलकर कही चल दिये। संवादपत्रों मे समाचार छपा—"निरालाजी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अपने घर से विवेका-नन्द के राजयोग को लेकर अचानक एक दिन गायव हो गए। इधर कुछ दिनो से उनका दिमाग कुछ खराव था।"

१४

स्वाधीन भारत में

'४६ का साल भारतीय जनता के नये इतिहास मे वहुत ही महत्त्वपूर्ण था। सारे संसार मे नाजियों की हार के वाद साम्राज्यविरोधी लहर उठान पर थी। भारत में वड़े पैमाने पर हर वर्ग के लोग संघर्षों में भाग लेते हुए आगे आये। केवल पूंजीपति इन संघर्षों से अलग थे। उन्हें भय था कि अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति हुई तो उनका भविष्य भी खतरे में पड़ जायगा। कांग्रेस और लीग के नेता, जो और किसी वात पर सहमत न थे, इस वात पर जोर दे रहे थे कि अंग्रेजों से सत्ता शान्तिपूर्ण वैधानिक उपायों से प्राप्त की जाय। कांग्रेसी नेता सन् '४२ की क्रान्ति के गौरवगीत गाकर जनमत अपने पक्ष मे करते थे, कम्युनिस्टों को गद्दार कहकर वामपक्ष-विरोधी अभियान चला रहे थे, लेकिन सन् '४६ में अंग्रेजी राज के खिलाफ जो संघर्ष उग्र रूप धारण कर रहे थे, उनसे कतरा रहे थे। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने कुछ समय के लिए अपनी गलत नीति छोड़कर एक सुसंगत साम्राज्य-विरोधी नीति अपनाई थी।

निराला इन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी के वहुत नजदीक थे। उनका विचार था कि अंग्रेज़ों से समझौता न करके भारतीय जनता को क्रान्ति की राह पर आगे वढ़ना चाहिए। दिल्ली में अन्तर्कालीन सरकार वनाने की वात सुनकर उन्होंने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा था—"आज जनता की चिन्ताधारा और कांग्रेस की कार्यप्रणाली में कोई तारतम्य नही रहा। भारतीय राजनीति में आज एक ही रास्ता साफ है, क्रान्ति-पथ, संघर्ष का पथ और अन्त में समाजवाद का पथ—इसके अलावा कोई दूसरा पथ नही।"[१]

कम्युनिस्ट पार्टी के सहयोग से अमृतलाल नागर, नरेन्द्र शर्मा आदि के संपादन मे, 'नया साहित्य' निकला। इसमें निराला की कविताएँ छपी जिनमें जनता का उभार और कांग्रेसी नेतृत्व से उसका असंतोष झलकता था। निराला के दो कविता-संग्रह 'वेला' और 'नये पत्ते' निकले। पहले उनका विचार था कि 'नर्गिस' नाम से गजलों का अलग संग्रह निकालेंगे, पर पूरे संग्रह-भर को गजलें थी नही। इसलिए 'वेला' मे गज़लों के साथ गीत भी दिये। ये गीत नये ढंग के थे; गज़लें स्वीकृत परम्परा से इतना

भिन्न थीं कि वे ग़ज़लें नाममात्र को थीं। निराला की राजनीतिक भावधारा इनमें भी व्यक्त हुई :

वेश-रूखे, अधर-सूखे, पेट-भूखे आज आये।

और

तू कभी न ले दूसरी आड,
शत्रु को समर जीते पछाड।

'नये पत्ते' की रचनाओ मे उन्होने व्यंग्य और भी पैनाया। वकील, नेता, राजा, पुरोहित, फौज के जनरल, नीम समाजवादी लेखक, न्याय, धर्म, निराला ने विभिन्न रूपो मे इन्हे अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया, उनका चमकीला मुलम्मा उतार दिया। स्पष्ट ही इस तरह की रचनाओं की जरूरत न भारती-भंडार को थी, न साहित्यकार-संसद् को। निराला ने एक नया प्रकाशक ढूंढा। दोनो पुस्तकें गयाप्रसाद तिवारी के हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स से निकलीं।

निराला का मन एक ओर भय के सपने बुनता था, कल्पनालोक मे चौमंजिले महल खड़ा करता था, दूसरी ओर वह उन्नाव, डलमऊ के किसानों, लखनऊ-इलाहाबाद के नेताओ और बुद्धिजीवियो को देखता था। उनका कवि-मन, प्राय: अकुंठित, यथार्थ को पहचानने मे पूर्ण सक्षम, कविता मे नये-नये प्रयोग करता जा रहा था। वह अब भी सोच रहे थे कि आगरा आकर 'सूरदास' पर अपना बैलेड लिखेंगे। पर वह 'राम की शक्ति पूजा' का भाव-स्थान छोड़ चुके थे; वहाँ लौटकर जाना संभव न था। हिन्दी कविता को जिस नई दिशा मे प्रगति करनी थी, निराला उसी ओर दूसरो की चिन्ता किये बिना, अकेले आगे बढ रहे थे।

मैं जब डलमऊ उन्हे देखने गया था, तब अचानक आगरे मे मेरी पत्नी अस्वस्थ हो गई थीं, दोनों भाइयो को निराला के पास छोड़कर मैं आगरे वापस आ गया। मेरी पत्नी की अस्वस्थता को सोचकर वह उद्विग्न थे, रामधनी के लिए यंत्र-मंत्र पूजापाठ से लेकर औषध-उपचार तक जो-कुछ हो रहा था, देखते जा रहे थे, साथ ही इलाहाबाद जाकर बाकी पडा काम पूरा करें, यह योजना भी बना रहे थे।

रामधनी द्विवेदी के निधन के बाद वह आगरे आये। सामान कुछ न था; कुर्ता, धोती, चप्पल, जो चीजें पहने थे, उतनी ही; पास मे दूसरी धोती भी न थी। स्टेशन से उतरकर मेरे घर आते समय—मैं उन दिनों वज़ीरपुरे मे रहता था और नजदीक कई चिकवो की दुकाने थीं—थोड़ा-सा मास खरीदकर जेब मे डाल लाये थे। दो दिन बाद वह चले गये, कहाँ—यह उन्होने न बताया; मैंने पूछा भी नहीं। उनके घर से गायब होने का समाचार पढकर अनेक साहित्यकार स्वभावत: उद्विग्न हुए। उस दिन इलाहाबाद रेडियो स्टेशन से कवि-सम्मेलन ब्राडकास्ट होनेवाला था। गंगाप्रसाद पाण्डेय ने सोचा—निराला के साथियों मे आज तो कोई इस कवि-सम्मेलन मे शरीक होगा नहीं। उनके मित्र डा० ब्रजमोहन गुप्त ने कहा—अमाँ किस चक्कर में पड़े हो; सभी भँड़ुए जायेंगे, गावेंगे-नाचेंगे, चाहो तो जाकर देख लेना।

गंगाप्रसाद पाण्डेय गये तो देखा, सचमुच हाल कवियों, कवयित्रियों और श्रोताओं

से भरा है। उन्होंने दो-एक कवियों से पूछा—आपने निरालावाला समाचार पढ़ा होगा ? उन्होंने कहा—हाँ-हाँ, बहुत ही सैड है। पाण्डेयजी ने तिखारा—और आप आज कवि-सम्मेलन कर रहे हैं ? उत्तर मिला—रेडियो-प्रोग्राम तो किसी की डेथ से भी नहीं बन्द होते, विवशता है। रसाल, बच्चन, रामकुमार वर्मा, कोकिल, सुधा, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि अनेक देवियाँ और सज्जन उपस्थित थे।[2]

लखनऊ से निराला उन्नाव आये और वहाँ चौधरी राजेन्द्रशंकर के युग-मंदिर में रहने लगे। वह उन्नाव में हैं, स्वस्थ है, यह समाचार भी संवादपत्रों में छपा। जनवरी (१९४७) में जब गंगाप्रसाद पाण्डेय उनसे मिलने गये तो देखा, निराला ने सर घुटा दिया है, लुंगी और रुई की बंडी पहने तख्त पर बैठे है। उन्होंने स्वयं पूछा—मेरा स्वास्थ्य कैसा है ? पाण्डेयजी ने कहा—आजकल तो आप बहुत स्वस्थ हैं—प्रसन्न हैं। निराला ने छाती पर हाथ फेरते हुए कहा—मातृभूमि का यही महत्त्व है; यहाँ मैं ठीक हो जाता हूँ।[3]

सुमित्राकुमारी सिन्हा लखनऊ गई थी। निराला ने चौधरीसाहब के नौकर को बुलाकर कहा—सामान ठीक करो; खाना हम पकायेंगे। चौधरी, निराला, पाण्डेय, नौकर—इन सबके अलावा एक मेहमान और—भुवनेश्वर ! वही भुवनेश्वर जिन्होंने 'माधुरी' में निराला पर अपना निद्रानाशक लेख लिखा था, जिसकी तारीफ में निराला ने अपने लेख के साथ दो प्रमाणपत्र पेश किये थे। भुवनेश्वर विपन्न थे, इसलिए कई दिन से निराला के महमान थे। निराला उनके लिए भी भोजन बना रहे थे।

उधर नन्ददुलारे वाजपेयी और राष्ट्रभाषा विद्यालय, गायघाट काशी के गंगाधर शास्त्री निराला की स्वर्णजयन्ती मनाने का विशद आयोजन कर रहे थे। जयन्ती-सम्बन्धी आरंभिक वक्तव्य पर राहुल सांकृत्यायन, सम्पूर्णानन्द, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, मैथिलीशरण गुप्त आदि के अलावा कुछ अर्थपतियों के नाम भी रहेंगे। कलकत्ते की एक ही गोष्ठी में दस हजार का वचन मिल गया; पूरी अपील बीस हजार की है। पाँच हजार बम्बई से मिलेंगे। एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जाएगा। हजारीप्रसाद द्विवेदी बँगला-सम्बन्धी सारा काम सँभालेंगे—चित्र-संग्रह, बँगला-साहित्य के वर्तमान विकास पर लेख, चीनी साहित्य पर लेख आदि। शिवपूजन सहाय अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए विहारी लेखकों से लेख संग्रह करेंगे। राहुलजी विदेशी सामग्री देंगे। शान्तिनिकेतन से चित्र, लेख आदि मिलेंगे। एशियाई साहित्य पर लेख वहीं से प्राप्त होंगे। विलायत से दो-एक लेख आधुनिक पश्चिमी साहित्यिक प्रगति पर होने चाहिए। एक छोटा-सा प्रेस होगा, प्रेस-मशीन दिल्ली से चल चुकी है, टाइप वगैरह आ रहे हैं, एक मासिक पत्र निकाला जाएगा। उत्सव के दिन हस्तलिखित अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया जाएगा। और उसी दिन छापने दे दिया जाएगा। 'नया साहित्य' ने निराला अंक निकाला था, वह रहेगा; अन्य कई पत्र निराला अंक निकालेंगे। निराला पर रामविलास शर्मा की अप्रकाशित पुस्तक रहेगी, वाजपेयीजी का एक छात्र उन पर एम० ए० का थीसिस लिख रहा था, वह होगा। प्रसाद का नाटक 'कामना' खेला जाएगा; कवि-सम्मेलन होगा। बड़े-बड़े नेताओं से सम्पर्क करना भी आवश्यक है।

बनारस से वाजपेयीजी ने लिखा : "यहाँ इस बार convocation address श्री राजेन्द्रप्रसाद देंगे। जवाहरलालजी भी आएँगे। नवम्बर के मध्य मे कोई तिथि रहेगी। यदि आप उस अवसर पर यहाँ आयें तो ठीक रहे।"[४]

यह भी सुनने में आया कि वसंत पंचमी को श्री राजेन्द्रप्रसाद साहित्यकार-संसद् का उद्घाटन करेंगे।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के संपादकों मे नंददुलारे वाजपेयी, गंगाधर शास्त्री, राहुल साकृत्यायन, अंचल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और प्रभाकर माचवे के साथ मेरा नाम भी था। इस संपादक-मंडल की कोई बैठक नही हुई। मुख्य योजनाकार वाजपेयीजी थे। स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ, उसमे कहा गया कि अभिनंदन-ग्रथ मे हिन्दी-साहित्य और भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगो के गत २५-३० वर्षों के विकास का विवेचनात्मक विवरण दिया जाएगा, विदेशो की साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रगति पर लेख होंगे, सस्मरण-खंड, निराला-साहित्य खंड के बाद समसामयिक हिन्दी-काव्य का विवरण होगा, वर्तमान भारतीय साहित्य की रूपरेखा, विश्वसाहित्य की नवीन प्रगति, पिछले पचीस वर्षों की भारतीय राजनीति और सामाजिक प्रगति का परिचय, भारतीय अनुशासन, कला-विकास तथा अन्य क्षेत्रों मे किये गये कार्य का विवरण, विश्वसंस्कृति के साथ भारतीय सस्कृति का सम्बन्ध, स्वतन्त्र निबंध, तथा स्फुट रचनाएँ—यह सब होगा। जनवरी मे स्वर्णजयन्ती मनाने का अवसर आया, तब अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए लेख-सग्रह का कार्य प्रारम्भिक अवस्था मे चालू था।

निराला गंगातट पर राष्ट्रभाषा विद्यालय में ठहरे। गंगाधर शास्त्री और उनके छात्र निराला की सेवा, आवभगत मे हृदय से लगे हुए थे। शाम को वह बोटिंग के लिए चले। गंगा किनारे एक ऊँची हवेली दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा—अपनी रायल्टी से तुम्हारे लिए कोठी बनवा दी है। साथ के लोगो ने कहा कि हवेली बिड़लाजी की है। नाव पर बैठकर उस पार चले। मँझधार में मल्लाह से बोले—डाँड़ हमें दो। निराला नाव खेने बैठे और नाव चक्कर खाने लगी। उन्होंने नाव की नुक्ताचीनी की, डांड़ की आलोचना की, नाव खेने के अपने कौशल की प्रशसा की, लेकिन नाव जब आगे न बढी और चक्कर ही खाती रही तब साथ के सभी लोगो के आग्रह करने पर डांड़ उन्होंने मल्लाह को थमा दिया।

लौटने पर उन्होंने पूछा—आजकल मेरा कितना वजन होगा ?

मैंने मजाक किया—गालिब और रवीन्द्र को एक तरफ, आपको दूसरी तरफ़ रखकर तौला जाय तो पलड़ा आपका भारी रहेगा।

निराला ने आँखों मे शरारत भरे हुए जवाब दिया—और तुलसीदास को क्यो छोड़ दिया ?

उन दिनों वह खडी बोली मे 'रामचरितमानस' का उलथा कर रहे थे। सौभाग्य से प्रारम्भिक अंश ही अनुवाद करने के बाद उन्होंने यह कार्य बन्द कर दिया। राष्ट्रभाषा विद्यालय के अहिन्दी-भाषी छात्र इसे आसानी से पढ़ लेंगे, यह प्रयोजन बताया।

इन दिनो वह विवेकानन्दी 'मूड' मे थे। सर पर रेशमी साफा बाँधकर वह आइने

मे छवि देखते और विवेकानन्द के चित्र से मिलान करते। कामदार जूते पहनकर जब वह नागरी प्रचारिणी सभा को चले तब एक जगह कीचड़ में उनका कामदार जूता फच्च से हुआ। इसका उन्हें बड़ा अफसोस हुआ; आगे रिक्शा मिलने तक वह जूते हाथ में लिये चले।

केले के खम्भों और आम के पत्तों के वन्दनवारवाले मंच पर रेशमी कुर्ते और साफे में जँचते हुए निराला सभा मे विराजे। वेदमन्त्रों का पाठ, एक महिला द्वारा तिलक, जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा 'वर दे वीणा वादिनि' का गायन। स्वागताध्यक्ष द्वारिकाप्रसाद मिश्र के न आ सकने पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने समारोह का उद्घाटन किया। उपस्थिति कम थी; कार्यक्रम में बहुत-से बड़े-बड़े आदमियों के नाम दिये गये थे; उनमें एक भी न था। नरेन्द्रदेव ने संकेत किया कि इस तरह के आयोजन में राजनीतिज्ञों की अपेक्षा साहित्यकारों का प्राधान्य होना चाहिए।

बाबूराव विष्णु पराड़कर ने हिन्दी-साहित्य की प्रगति और निराला की साहित्य-सेवा पर भाषण किया।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए जो लेख आये थे, वे केशवप्रसाद मिश्र ने निराला को भेंट किये। ग्यारह हज़ार की निधि निरालाजी को भेंट की जाती है, यह घोषणा भी हुई।

पुराने लोग जिस तरह के गोल चोंगलों में जन्मकुंडली रखते थे, वैसा ही एक गोल चोंगला निराला को भेंट किया गया। कहा गया कि इसी में ग्यारह हजार की निधि है। निराला ने हाथ में लेकर उसे खोला और अन्दर झाँककर देखा। इस पर एकत्र जन खूब हँसे। उन्होंने वह धन साहित्यिक संस्थाओं को दान कर दिया।

निराला को कितने रुपये मिले, इस सम्बन्ध में गंगाप्रसाद पाण्डेय का कहना था, "अन्त मे पता चला उस डिब्बे में कुछ नही था। निरालाजी को एक पैसा भी नहीं मिला। साहित्य के इतिहास में इससे बड़ी धूर्तता और ठगी का कोई दूसरा उदाहरण नही है।"

साहित्य-परिषद् और समीक्षा-परिषद् में उपस्थिति बहुत कम थी। कवि-सम्मेलन खूब जमा। सुमन ने निराला पर अपनी लम्बी कविता सुनाई। दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की कविताएँ प्रशंसित हुईं।

निराला ने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा, "प्रयाग से और कोई नही आया? महादेवीजी भी नहीं आईं। कैसा रहा? मुझे तो बार-बार पंत-महादेवी का स्मरण हो रहा था।" उन्होने महादेवी वर्मा को पत्र लिखा, "पाण्डे आये हैं। खुश हैं। आप न आ सकीं। वापस जाते समय, हो सका तो प्रयाग आऊँगा। २००० रुपये साहित्यकार-संसद् के लिए भी मैंने दिये है। दो-तीन दिन बाद आपको मिल जायँगे। मैं प्रसन्न हूँ।"[१]

महादेवी वर्मा ने शिवचन्द्र नागर को बताया : "उन्होंने किसी को बुलाया ही नही। चतुर्वेदीजी [माखनलाल] को तो कोई खबर ही नहीं। मैं तो सोच रही थी कि दीक्षान्त-समारोह समाप्त हो जाने के बाद बनारस चले चलेंगे, सुमनजी भी आये थे, पर चतुर्वेदीजी के लिए कोई निमन्त्रण न था। फिर यह कैसे हो सकता था कि मैं घर

पर आये अतिथि को छोड़कर चली जाती। एक छपी हुई सूची भेज दी थी, उसमे मेरा नाम था, इस सम्बन्ध मे कि मुझे निरालाजी का संस्मरण लिखना है पर उसके बाद फिर उनका कोई पत्र नहीं आया। कवि-सम्मेलन के सभापतित्व मे मेरा नाम मुझसे विना पूछे ही छाप दिया गया था। पतजी को तार दिया था, पर उन्हे लेने कोई नही आया।"

गंगाप्रसाद पाण्डेय के सम्बन्ध मे उन्होने कहा—"उस वेचारे को भी कोई निमंत्रण न था। पता नही, इन्होने क्या किया, जो निरालाजी को जितना अधिक पास से जानते थे, उनकी उतनी ही वात न पूछी।"[७]

पाण्डेयजी की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी : "मुझे भी मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, पंतजी, जोशीजी आदि की अनुपस्थिति वहुत ही ज्यादा खटक रही थी।...इस कार्य के संगठन और सम्पादन में चाहे कर्त्ता-धर्ता महोदयो की जो भी अक्षमता रही हो, पर यह भी घोर सत्य है कि हिन्दी-सेवी-संसार ने उत्साह के साथ सामूहिक रूप से, इसमे सहयोग नही दिया।"[८]

जयन्ती के वाद युवक कार्यकर्ता वलदेवप्रसाद मेहरोत्रा ने मुझे लिखा, "पूज्य गंगाधर शास्त्री, मै और वाजपेयीजी के अथक परिश्रम का परिणाम ही जयन्ती की सफलता है। हम लोगो ने वाजपेयीजी को अगुआ वनाया था, लेकिन उन्होने हम लोगों के साथ न्याय नही किया है [।] इस बात का वहुत खेद भी है।"[९] इस तरह जयन्ती-कार्य समाप्त हुआ।

प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन इस समय हिन्दी का समर्थ आन्दोलन था। शिवदानसिंह चौहान ने 'विशाल भारत' मे जो मान्यताएँ कभी प्रस्तुत की थीं, वे अव तक ध्वस्त और खण्डित हो चुकी थी। प्रगतिशील युवा-पीढी के प्रतिनिधि पत्र 'हंस' ने स्वर्णजयन्ती के अवसर पर निराला के रूढिवादी विरोधियो की कठोर आलोचना करते हुए लिखा, "हमारे कुछ साहित्यिक महारथी अगर निराला की हत्या नहीं कर पाये तो इसका कारण यह नही है कि उस दिशा मे प्रयत्न कम हुए; उसका कारण है निराला का सवल व्यक्तित्व। आज भी यदि हम पुरानी पत्र-पत्रिकाओ की फाइलें उलटें और हिन्दी-साहित्य के पुराने इतिहासो पर नजर डाले तो हमे उस अँधेरे का कुछ अन्दाजा मिल सकेगा जिसे चीरकर यह सूर्य अपनी समस्त दीप्ति में हमारे सामने जगमगा रहा है। हम उसको नमस्कार करते है।"[१०]

भारतीय इतिहास मे '४७ का साल भी महत्त्वपूर्ण है। कांग्रेसी नेता अंग्रेजों की कूटनीति, मुस्लिम लीग की फूटनीति और कम्युनिस्टो की रूस-भक्ति की तीखी आलोचना करते थे, भीतर-भीतर उन्होने डोमीनियन स्टेटस से संतोष कर लेने की सूचना माउटवेटन को दे दी थी। साम्राज्यवादी विभाजन की योजना उन्होने स्वीकार की। कम्युनिस्ट पार्टी ने सन् '४६ की नीति को तिलाजलि देकर कांग्रेस-मुस्लिम लीग और अंग्रेज़ सरकार के समझौते का समर्थन किया। भारत आज़ाद हुआ। पाकिस्तान, जो पहले नही था, अव हुआ।

निराला युग-मन्दिर उन्नाव में थे। काशी की जयन्ती मे जिसने उन्हे देखा

वही कहता था, इनके व्यवहार में विक्षिप्त होने की कोई बात नहीं दिखाई देती। उन्नाव में १५ अगस्त के बाद उनकी मानसिक स्थिति बिल्कुल बदल गई। वह बहुत ही विक्षुब्ध और उद्दंड हो गये। सुमित्राकुमारी सिन्हा कहती थीं, वह लोगों को खर-खेटने, पत्थर उठाकर मारने लगे है। जवाहरलाल नेहरू को सामने आया जानकर वह उन्हें धकियाते हुए बाहर ले गये और फाटक बन्द कर आये। चौधरी राजेन्द्रशंकर ने उन्हें एक कमरे मे बन्द कर दिया। चार दिन उन्हें कमरे में बन्द रखा; बाहर से खाना पहुँचा दिया जाता था। एक दिन मौका पाकर निराला निकल भागे। जेब मे पैसा न था; वह उन्नाव से कानपुर पैदल गये और वहाँ उन्होने रामकृष्ण मिशन में आश्रय ग्रहण किया।

कुछ दिन बाद वह फिर युग-मन्दिर आ गये। कुछ लोगों का कहना था—चौधरी राजेन्द्रशंकर उनकी तीन किताबों का ठीक हिसाब न कर रहे थे, इसीलिए निराला ने उन्हें मारा था, इसीलिए निराला कमरे में बन्द किये गये थे, हिसाब साफ किये बिना वह युग-मन्दिर छोड़ना न चाहते थे। निराला लोगो को मारते-पीटते है, यह समाचार महादेवीजी तक पहुँचा। वह उन्हें देखने गयी। उन्हें निराला मे विक्षिप्त होने के कोई लक्षण न मिले। "सुमित्राकुमारीजी के पति महोदय का स्वभाव कुछ ऐसा ही है। निरालाजी से कुछ कह दिया होगा, फिर उनके लिए मारने दौड़ बैठना कोई आश्चर्य की बात तो नही।"[११] निराला आखिर वहाँ रहते क्यों हैं, इस प्रश्न के उत्तर में महादेवीजी ने कहा—"निरालाजी कहते हैं कि अन्न का सब जगह बड़ा कष्ट है। अब किसके यहाँ रहा जाय। ये तो जमीदार हैं। गाँव से अन्न आता है। आठ-दस आदमी और खाते है। उसी में मैं भी खा लेता हूँ। उनके यहाँ मेरा खाना कुछ मालूम नहीं होता। और कहीं ऐसा नही हो सकता था।"[१२]

साहित्यकार-संसद् की स्थापना हो जाने के तीन वर्ष बाद तक निराला भोजन-चिन्ता से मुक्त न हुए थे, कारण जो भी हो।

निराला को कांग्रेस और सरकार के नाम से चिढ़ हो गई थी। गंगाप्रसाद पाण्डेय ने पूछा—निरालाजी, आप कुछ लिखते-पढ़ते नही ? उन्होने कहा—"आज जागरण के गीत गाना राष्ट्रद्रोह समझा जाता है। फिर मेरे पीछे पुलिस भी तो लगी रहती है।"[१३]

निराला का मन कहता—इन कांग्रेसियों को मैंने ही बनाया है; अब ये सब मुझसे दगा कर रहे हैं।

उनके वार्तालाप में क्वीन विक्टोरिया, ए० आई० सी० सी० में उनके दिये हुए भाषण, डी० लिट्० की डिग्री की भी चर्चा होने लगी। कांग्रेसी और अंग्रेजी राज मे आटे-दाल के भाव का फर्क समझाते हुए पाण्डेयजी से कहा—सन् '४२ की ए० आई० सी० सी० में तुमने मेरी स्पीच सुनी थी या नही ! मैंने विक्टोरिया से भी कह दिया था। पाण्डे, एक बात बताओ। मैं इस देश का पहला डी० लिट्० हूँ। तुम जानते होगे।

इस समय निराला के अनेक हितैषी प्रयत्न कर रहे थे कि निराला की विपन्नता दूर करने के लिए संयुक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार उनकी आर्थिक सहायता करे।

आगरे के श्री कृष्णदत्त पालीवाल अर्थमंत्री थे। उन्होंने कहा—निराला कम्युनिस्ट है, सरकार उनकी मदद न करेगी। उनकी इस बात का विरोध हुआ तो उन्होंने स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया—सरकार उनकी मदद करेगी तो लोग कहेंगे, कम्युनिस्ट की मदद की।

सन् '४८ की गर्मियो मे 'हंस' ने दमन-विरोधी अंक निकाला। कम्युनिस्ट पार्टी ने कांग्रेस से सहयोग की नीति छोडकर सघर्षो की नीति अपनाई थी, लेकिन तीखे वामपंथी रुझान के साथ। कांग्रेसी सरकारें अच्छी तैयारी के विना छेड़े हुए संघर्षो को निर्ममता से दवा रही थी। इसी दमन-नीति के विरोध मे 'हस' का विशेपांक निकला था। आवरण-पृष्ठ पर निराला का साफा बाँधे स्वर्ण-जयन्ती वाला चित्र और उसके साथ उनकी दो पक्तियाँ :

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरो का पिये जा रहे है।

इस अंक मे पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' ने एक लेख लिखा। कम्युनिस्ट करार देकर निराला की सहायता न करने के लिए उन्होने कांग्रेस सरकार और श्री कृष्णदत्त पालीवाल की तीखी आलोचना की।

उग्र ने लिखा कि निराला पाँच-छह महीने से काशी मे है, पर काशीवालों को मानो इसका पता नही है। साहित्यिक गोष्ठियाँ और जलसे होते है, पर इनमे निराला दिखाई नही देते। शिक्षामंत्री सम्पूर्णानन्द जो "साहित्यिको की मजलिस मे भी अपनी टोपी मे सुर्खाव का पर खोसा करते है," निराला की उपेक्षा करने के लिए सबसे अधिक दोपी है। वह काशी आते है, पर निराला की तरफ निगाह उठाये विना चले जाते है। वित्तमंत्री श्री कृष्णदत्त पालीवाल से निराला की सहायतार्थ कुछ युवक मिलने गये। पालीवालजी ने कहा कि निराला तो कम्युनिस्ट है। उग्र ने पालीवालजी को पत्र लिखा कि निराला ने कम्युनिस्ट-समर्थक साहित्य कम रचा है; उनकी 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा' आदि कविताएँ आर्य साहित्य के अन्तर्गत है। उन्होने रामकृष्ण परमहस से संवन्धित साहित्य का अनुवाद किया है। "वैसे निरालाजी मुझसे प्रसन्न नहीं रहते अगर आप माने। फिर निराला हुआ करे कम्युनिस्ट; 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' के लेखक श्यामलाल पार्षद के लिए ही सरकार ने क्या किया ?"

पालीवालजी ने उत्तर मे लिखा, "मैंने यह हर्गिज़ नही कहा कि निरालाजी कम्युनिस्ट है। केवल इतना कहा कि मुझे कोई कारण नही दिखाई देता कि निरालाजी की सेवा-सहायता मे किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए सिवाय इसके कि अगर वह कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हो तो कुछ लोगों को एतराज हो सकता है। आप लोग जो तवीयत चाहे सो समझ ले और जैसा समझ मे आये दूसरे पर लाद दे क्योकि आप लोगो का तो यह जन्मसिद्ध अधिकार है ही। निरालाजी के वारे मे पता लगाऊँगा कि क्या किया जाय।"

इस पर उग्र ने टिप्पणी की : "सना सत्तू सामने देख भूखे वुलवुल की तरह वोलता हुआ है, आदरणीय पालीवालजी का यह पत्र। सहायता की माँग आये विना

जब अम्माजी बच्चे को दूध नहीं पिलाती तब राष्ट्रीय सरकार किसी कलाकार की फिक्र क्यों करे ? उधर स्वाभिमानी कलाकार उस्ताद गालिब की तरह सोचनेवाले कि 'बिना कहे ही उन्हें सब खबर है क्या कहिए'।"[१४]

इस सबका असर हुआ। महादेवी वर्मा ने पुरस्कार-प्रतियोगिता में 'अपरा' संग्रह भेजा। उस पर प्रादेशिक सरकार ने इक्कीस सौ रुपये का पुरस्कार दिया। घुटनों तक लुंगी पहने अर्द्धनग्न, अर्द्ध-विक्षिप्त निराला का नाम भुनाया जा सकता है, अनेक साहित्य-प्रेमियो की दृष्टि में यह बात स्पष्ट हो गई। निराला ने स्वयं आज तक किसी प्रतियोगिता में अपनी एक भी पुस्तक न भेजी थी। अपने स्नेह-अधिकार से महादेवी वर्मा ने यह काम किया। पुरस्कार की बात सुनकर निराला ने कहा—"निराला दान नहीं लेता। क्या होगा २१०० रुपया ? मेरा लाखों का हिसाब-किताब है सब साथ ही लूँगा। यह रुपया मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव की विधवा धर्मपत्नी को देना है। संसद् के माध्यम से ५०) महीना जाता रहेगा। उनके कई बच्चे हैं। शादी के लायक लड़कियाँ भी हैं। आफत है। उनकी सहायता करनी है। देवीजी से कह देना। चिलकहर, बलिया उनका पता है, नोट कर लो। मेरी पुस्तके है, लीडर प्रेस और इंडियन प्रेस भी अपना है। आप क्या बात करते हैं ? मैंने कभी लिया नहीं, दिया ही है।"[१५]

पुरस्कार-घोषणा से पहले ही निराला नवजादिकलाल-परिवार के लिए कुछ-न-कुछ करते रहे थे। उन्होने १५ फरवरी '४८ को बनारस से महादेवी वर्मा को लिखा था : "अभी कुछ दिन हुए हमको एक कवि-सम्मेलन से आमन्त्रण मिला था। उसके रुपये हमने स्व० मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव की धर्मपत्नी को भेज दिये, प्राप्ति का कार्ड इस पत्र के साथ भेजते हैं। बाकी हिसाब यह है कि मुशीजी की पत्नी को हमने सालाना या छमाही मदद भिजवाने के लिए लिखा है, साहित्यकार-संसद् से आपकी मार्फत। यह रुपया हमारी किताब या किताबों की लेखक-वृत्ति से जायगा।"[१६]

बनारस में गंगाधर शास्त्री के साथ रहते हुए निराला ने रामायण के प्रारंभिक अंग को खड़ी बोली रूप में प्रकाशित कराया। 'निवेदन' मे उन्होने उद्देश्य बताया : "जिन प्रान्तों के विद्यार्थी अवधी नहीं जानते उनके लिए सुविधा हुई है।" राष्ट्रभाषा विद्यालय को उन्होने 'देवी' नाम से कहानी-संग्रह दिया। इसमें 'देवी', 'भक्त और भगवान्', 'चतुरी चमार' आदि कहानियाँ और रेखाचित्र थे। रामायणवाली पुस्तक उन्होंने स्वर्गीय सुभद्राकुमारी चौहान—'कवि साहित्यिक श्रेष्ठा'—की स्मृति को भेंट की। एक मोटर-दुर्घटना में उनकी दुखद मृत्यु हुई थी। इधर वह निराला से कई बार मिली थीं, उनकी स्वर्णजयन्ती में आई थीं। उनके प्रति अपना पहले का विरोध-भाव भूलकर निराला ने उनकी स्मृति को पुस्तक समर्पित की। 'देवी' संग्रह उन्होंने महादेवी वर्मा को समर्पित किया; उन पर वह एक कविता भी लिख चुके थे जिसे 'अणिमा' में उन्होंने शामिल किया था।

निराला इलाहाबाद आये। गंगाप्रसाद पाण्डेय साहित्यकार-संसद्-भवन से कार मे बैठे महादेवीजी के यहाँ पहुँचे तो देखा फाटक के पास दाढ़ी बढ़ाये, लुँगी बाँधे, नंगे

पैर निराला खड़े है। पाण्डेयजी को कार रोकते देखकर निराला ने कहा—बढाओ, बढ़ाओ, चढा दो; नई कार खरीदी है। कितना रुपया लगा ?[१७]

पाण्डेयजी के साथ वह संसद् गये। गंगाजल पिया और सो गये। रात में इतने ज़ोर से हँसे कि पाण्डेयजी जग गये और बोले—निरालाजी, अब तो आपसे भय लगता है, मैं नीचे जा रहा हूँ। निराला ने 'बहुत ही सहमे शब्दों मे' जवाब दिया—नहीं, नहीं, सोओ; अब मैं कुछ न बोलूँगा। स्वामी विवेकानन्द ने एक ऐसी बात कह दी कि मैं हँस पडा।[१८]

संसद् मे हजारीप्रसाद द्विवेदी पधारे। स्नान के प्रस्ताव पर निराला ने कहा—जो ओढे है, उसे पहन लेंगे, जो पहने हैं, उसे ओढ लेंगे।

द्विवेदीजी चलने लगे तो निराला ने कहा—आपको मालूम होगा, यह संसद्-भवन मेरा है। न मेरे पुरुषार्थ से सही, मेरे लिए सही।[१९]

सन् '४६ की वर्षा और शरद् में निराला साहित्यकार-संसद् मे रहे। एक दिन शिवचन्द्र नागर के साथ युगोस्लाव महिला मिस केम्प—लन्दन मे पढ़ते समय कुँअर मुहम्मद अशरफ की परिचिता, बाद में पहली पत्नी को तलाक देनेवाले अशरफ़ की पत्नी—संसद्-भवन पधारी। शिवचन्द्र नागर ने देखा, अन्दर सुन्दर पर्शियन कारपेट और कश्मीरी कालीन बिछे है। उसी मे एक ओर निराला का पलंग बिछा है। कुर्सी नहीं है। मिस केम्प और उनके मित्र फर्श पर बैठे। निराला एक अँगोछा भर पहने उनके सामने विराजे। मिस केम्प इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे रूसी पढाती है, यह सुनकर निराला ने कहा, मैं भी एक बार रूस गया था। मॉस्को में वहाँ के विद्वानो के बीच कविता पढ़ी थी। चार बार इंगलैण्ड जा चुका हूँ। 'गीताञ्जलि' आपने पढ़ी होगी। वह मैंने ही लिखी थी। वह मेरी प्रिमेच्योर अटेम्प्ट थी। पर रवीन्द्रनाथ के नाम के नीचे छपी। हमारे हज़ारो अंग्रेज़ी में, बँगला मे वर्क्स हैं। उन सब पर नाम और फोटो जाता था रवीन्द्रनाथ टैगोर का; पर वे है मेरे ही। शेली और कीट्स मे शेली का नाम भी आपने सुना होगा। शेली भारतीय नाम है। वे हमारी कविताएँ है जब मैं दो वर्ष का बच्चा था। हमारी लाखो-करोड़ो रुपये की सम्पत्ति है और करोड़ों रुपये का व्यापार है और इसका अधिकांश भाग विदेशो में है। इस इलाहाबाद मे ही हमारे आठ-दस बँगले हैं। यह बँगला हमारा ही है। जहाँ महादेवीजी रहती हैं वह भी हमारा ही बँगला है।

कुछ बातें उन्होंने अंग्रेज़ी मे कही—There is no difference between man and man. What makes him superior or inferior is the manifestation of his genius. I have read Aristotle, Plato, Kant and Hegel and I have the spirit of Vivekanand in me. English is foreign language. I cannot speak in English. I do not speak in English. I fail to speak in English

मिस केम्प को उन्होंने विस्तार से समझाया कि वह किस प्रकार दर्रे दानियाल से होते हुए मॉस्को पहुँचे। इस चर्चा के बाद उन्होंने अपनी कविताएँ सुनाईं, फिर

'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजुमन' सुनाया। हल्की बूँदें पड़ रही थीं; गंगा का किनारा और अंधकार। टार्च के बिना ही निराला मिस केम्प और शिवचन्द्र नागर को ताँगे तक छोड़ने आये।[२०]

निराला संसद् में रहने लगे, पर उनका मन कहता था, ज्यादा दिन निभेगी नही। उनके साथ गंगाप्रसाद पाण्डेय भी रहते थे। निराला ने कहा—हम आजकल ज्यादा बातचीत नही करते, मौन रहते है या अपने-आप बोलते रहते हैं। अपना एक अलग हिसाब-किताब रखते हैं। न किसी का राज लेते न अपना देते है। हमने वस्त्रों से तो नहीं, पर मन से वैराग्य ग्रहण कर लिया है। विजयादशमी से वस्त्रों में भी रंग चढेगा। महादेवीजी का आग्रह है कि हम संसद् में रहें। हमने स्वीकार कर लिया है। देखना है कि इसकी सांस्थिक मर्यादा में यहाँ रहकर हम कुछ सहयोग दे सकते हैं या नही।[२१]

निराला के व्यवहार से कभी-कभी गंगाप्रसाद पाण्डेय तक को कष्ट होता था, औरों की तो बात ही क्या। संसद् के बाग में कद्दू खूब आये थे। एक कद्दू महादेवीजी ने हज़ारीप्रसाद द्विवेदी को भेंट किया था। निराला ने मज़ाक किया, बढ़िया उपहार है; पूड़ियों के साथ मजा देगा। पर जब कद्दू पककर, रस की यथेष्ट मात्रा के साथ, उनके सामने आया तो उन्होंने उसे उठाकर फेंक दिया। इस पर पाण्डेयजी ने महादेवी वर्मा से निराला की शिकायत की। महादेवीजी ने समझाया—"उनकी शिकायत क्या करते हो? अपने परिवार का एक व्यक्ति जिस मानसिक स्थिति में है, उसको परिवार वाले न समझेंगे तो क्या कोई दूसरा समझेगा?"[२२]

बरसात बाद वह गाँव की तरफ़ चले। गढ़ाकोला गये हो, या डलमऊ या दोनों जगह, एक दुर्घटना हुई; निराला को पकड़कर कुछ लोगो ने मारा। चोटे ऐसी आईं जैसे कई लोगों ने मिलकर प्रहार किया हो, कुछ ने हाथ-पैर पकड़े हों, या गिरा दिया हो, औरों ने लाठी या ईंट उनके सर पर मारी हो, हाथ की उँगलियाँ कुचली हों। निराला के बलिष्ठ शरीर को देखते हुए यह कल्पनातीत है कि इक्का-दुक्का आदमी उन पर हमला करता और बचकर निकल जाता।

ये कौन लोग थे? क्यों उन्होने निराला को इस बेरहमी से मारा? क्या चाहते थे वे उनसे? इन सब प्रश्नों का उत्तर रहस्य के गर्भ में है। स्वयं निराला ने उसे गोपनीय बनाकर रखा। वह नहीं चाहते थे कि जिन्होंने उनके साथ यह राक्षसी व्यवहार किया है, उन पर जरा भी आँच आये।

वह कुछ दिन रायबरेली के अस्पताल में रहे। वहाँ से इलाहाबाद आये।

३ सितम्बर '४९ को संसद् भवन, रसूलाबाद से उन्होने अपने भतीजे केशवलाल को लिखा—"हम घायल हो गये थे। रायबरेली के अस्पताल मे थे। अब यहाँ है।"

घायल अवस्था में उन्हे ओंकार शरद् ने देखा था। "कहीं से चोट खाकर आए थे (जिसका राज आज तक नहीं खुल पाया।) सिर में गहरे घाव थे। मैंने उनकी ओर इशारा किया तो फौरन विशाल माथा झुकाकर दिखा दिया—दो-दो इंच के दो भयानक चोट के घाव। फिर शीघ्र ही टूटी अँगुलियाँ दिखाईं और कहा—'अब तो ये

उँगलियाँ सीधी हो रही हैं वर्ना बिलकुल मुर्दा हो गई थी।'...मैंने बरबस ही पूछा—'चोट कैसे लगी ?' तो केवल एक वाक्य कहा, 'बस नाक ऊँची रही।' "[३]

निराला की बातों से किसी को कुछ पता न चला कि चोट उन्हें कैसे लगी। उन्होंने अगले महीने (४-१०-४९) केशवलाल को इतना ही लिखा—"घायल होने का कारण और कुछ नहीं। दूसरे का सूत उलझा होगा।"

स्वस्थ होने पर उन्होंने संसद् भवन के कालीन-गलीचों पर दृष्टिपात किया। वह जो महलों का ख्वाब देखते थे, यहाँ आंशिक रूप से अपनी साध पूरी कर सकते थे। पर उनका लाखों का हिसाब दूसरों के लिए था, अपने लिए नहीं। संसद् की माया में वह फँस न जायँ, इसलिए वह संन्यास लेने का विचार करने लगे। उन्होंने सुना, जानकीवल्लभ शास्त्री अस्वस्थ हैं। उन्होंने महादेवीजी से कहा कि उन्हें अभी ५०) भेजिये; उनकी पुस्तक छापने का प्रबन्ध कीजिये।

इसके बाद गेरू से उन्होंने अपने कपड़े रँगे। महादेवीजी से कहा—"अब ठीक है। जहाँ पहुँचे किसी नीम, पीपल के नीचे बैठ गए। दो रोटियाँ माँगकर खा लीं और गीत लिखने लगे।"[१४] उन्हें इस पर गर्व भी था कि बँगले में सन्यास लिया है। भतीजे केशवलाल को लिखा—"हमने संन्यास ले लिया है क्वारसुदी एकादशी को। तुम लोगों की कुशल चाहते हैं। इसी अपने बँगले में संन्यास लिया है।"[१५] इस पर भी गर्व था कि लाखों का हिसाब छोड़ा है। दूसरे भतीजे रामगोपाल को लिखा—"हमने संन्यास लिया है। कुछ दिन में घर छोड़ देंगे। हिसाब लाखों का छोड़ा है। वह तुम लोग लेना।"[१६]

वैराग्य लेने का एक मतलब यह था कि वह लिखना छोड़ रहे हैं। वह लखनऊ में भी एक बार यह निश्चय कर चुके थे, पर लिखना छोड़ना उनके बस में न था। प्रभाकर माचवे ने सुझाया कि वह तुलसीदास की तरह कालिदास पर भी काव्य लिखें। निराला ने कहा—हम तो लिखना-पढ़ना छोड़ चुके हैं। आर्डर (वैराग्य) ले लिया है। लेखनी को लेकर जो हाथ उठा था अब वह माला की सुमिरनी पकड़ना चाहता है। यों लिख भी सकते हैं, पर कब यह नहीं कहा जा सकता।[१७]

संसद् में मांस पकाने-खाने की मनाही थी। राहुल सांकृत्यायन ने पूछा—आपने तो वैराग्य ले लिया है। अब आप खानपान में हमारे कुल से बाहर हो गए। निराला ने उत्तर दिया—नहीं तो, ऐसा कुछ नहीं। यहाँ संसद् में तो नहीं पर बाहर हम अब भी आपके सहभोजी हैं।[१८]

निराला के मित्र मन में सुन्दर चित्र बना रहे थे। कौशेय वसन, स्वस्थ शरीर, प्रसन्न चित्त, निराला इस आश्रम के एकान्त अधिवासी हैं। उन जैसे साहित्यिक संन्यासी के लिए संसद्-जैसा आश्रम सोने में सुगन्ध का सहयोग है।

वास्तविकता इससे बिल्कुल भिन्न थी।

एक दिन वह संसद्-भवन छोड़कर दारागंज में कमलाशंकर सिंह के यहाँ आ गये।

मैंने पूछा—संसद् में आराम था; आप यहाँ क्यों चले आये ?

उन्होंने सीधे उत्तर न देकर एक घटना सुनाई। जाड़े के दिन थे। भवन साफ़ करने एक गरीब लड़की आती थी। उसे ठंड से कांपते देखकर निराला ने भर्र से खिड़की का पर्दा खींच लिया और उसे देकर कहा—लो, इसे ओढ लो। उनका यह व्यवहार संसद् के अधिकारियों को पसन्द न आया।

वह जो दूसरो को अपना कोट, कम्बल, रजाई जो पास हुआ, दुखी और त्रस्त देखकर दे देते थे, नियन्त्रण न लगाया जाता तो कमरे के पर्दे, दरी, कालीन सब उठा-कर किसी-न-किसी को दे देते। नियन्त्रण ही उन्हें बर्दाश्त न था। महादेवीजी को निराला से आन्तरिक सहानुभूति थी, इसमें सन्देह नही, पर उनके और निराला के संस्कारों मे कही मौलिक अन्तर था, इसमें भी सन्देह नही।

कमलाशंकर सिंह के यहाँ पहुँच जाने पर एक दिन रामकृष्ण मिशन के साधु से उन्होंने कहा—दो साल तो मैं विलायत मे रहा। आजकल हिन्दोस्तान मे रहता हूँ।

फिर विलायत की व्याख्या करते हुए कहा—पहले जहाँ मैं रहा था, वहाँ रहने को आलीशान कोठी, चढने को मोटर, बिजली का पंखा, बिजली की रोशनी सबकुछ ही तो विलायत है और आजकल जहाँ मैं हूँ, वहाँ मामूली-सा मकान, सोने के लिए तख्त, ताड़ का पंखा, जलाने को लालटेन, यही तो हिन्दोस्तान है।[29]

रईस राय रामचरण अग्रवाल ने सुना कि निराला कमलाशंकर के यहाँ नीचे के कमरे मे रहते हैं तो उन्होने कमलाशंकर सिंह के बड़े भाई उमाशंकर सिंह से कहा—उनसे कह देते आप कि हमारे यहाँ रहते तो उनके लिए एक अच्छा-खासा फ्लैट हम खाली करवा देते। बिजली का पंखा और लाइट वगैरह सब है उसमे, और अच्छे-से-अच्छा जो भोजन चाहते उन्हें मिलता जाता।

निराला ने यह सन्देश सुनकर कहा—वे अपनी कोठी मुझे दिखाते हैं। कह देना मेरी जायदाद उनसे बहुत बडी है। चाहूँ तो वैसी कई कोठियाँ खरीद लूँ। मगर मुझे कोठी से क्या देना-लेना है।

अपनी जायदाद पर नाज करनेवाले निराला ने उसी वर्ष प्रयाग मे भारतेन्दु जन्मशती समारोह मे कहा—बाबू हरिश्चन्द्र वास्तव में भारतेन्दु नही बल्कि संसारेन्दु थे। मैं तो उनके दरबार का दरबान-मात्र हूँ।[30]

निराला किसी के आश्रित होकर रहना न जानते थे। उन्होने उमाशंकर सिंह को अपनी एक पुस्तक 'चाबुक' दी थी जिसमे कुछ 'मतवाला' काल के, कुछ बाद के लेख थे। वह जो नये गीत लिख रहे थे, उनका संग्रह भी उन्होंने प्रकाशन के लिए उमाशंकर सिंह को दिया। काशी के गंगाधर शास्त्री की तरह उमाशंकर सिंह भी निराला की पुस्तकें छापने की योजना बना रहे थे यद्यपि दोनों में व्यावसायिक प्रकाशक एक भी न था। निराला के संसर्ग से बहुतों में प्रकाशक बनने की इच्छा स्वत: जाग्रत होती थी।

उमाशंकर सिंह बहुत दिलचस्प आदमी है। जरा ऊँचा सुनते हैं, पर दूसरे के मुख पर एकाग्र ज्ञानदृष्टि डालकर शब्द सुने बिना मन का भाव समझ लेते हैं। उन्हे लेखन-सम्पादन का भी शौक है। छोटे भाई कमलाशंकर सिंह, श्रीनारायण चतुर्वेदी के कृपापात्र, हास्य-व्यंग्य मे निपुण, उन्हें प्रकाशन, पत्रकार-कला आदि से भी दिलचस्पी

थी। दोनों भाई दारागंज में साथ ही रहते थे। यद्यपि ये और निराला इलाहाबाद लगभग साथ ही आये थे, पर निराला इनके यहाँ रहने आये जनवरी सन् '५० में—लखनऊ छोड़ने के करीब दस वर्ष बाद।

उमाशंकर सिंह ने पता लगाना शुरू किया कि निराला को जो इक्कीस सौ रुपये का पुरस्कार मिला था, उसका क्या हुआ, नवजादिकलाल के परिवार तक वह रकम पहुँची या नही। वह मुंशी नवजादिकलाल के गाँव चिलकहर गये। उन्हे मालूम हुआ कि मुंशीजी की पत्नी को निराला के भेजे हुए केवल सौ रुपये मिले है। उनके बडे लड़के को प्रयाग आने का निमन्त्रण देकर वह महादेवीजी से मिले। महादेवीजी ने कहा कि निरालाजी की आज्ञानुसार ५०) महीना उन्हे भेजा जाता है। उमाशंकरसिंह ने कहा—लेकिन उनकी बीवी को एक पैसा नही मिला। महादेवीजी ने कहा—मेरे यहाँ मनीआर्डर की रसीदें है।

नवजादिकलाल श्रीवास्तव का लड़का प्रयाग आया। उमाशंकरसिंह ने उसे महादेवीजी के पास भेजा कि देखे, किसने रसीदो पर दस्तखत करके उसकी माँ के नाम भेजा रुपया लिया है। उमाशंकर सिंह का कहना था कि "वह लडका कई दिन दौड़-दौडकर देवीजी के दरेदौलत पर गया। मगर कभी तो उनसे भेंट ही नही हुई और जब कभी भेंट भी हुई तो उससे कहा गया कि रसीदें साहित्यकार संसद् मे हैं। उसने बाकी कुछ रुपया माँगा भी, लेकिन उसे खाली हाथ ही लौटना पड़ा। मनीआर्डर की रसीदें साहित्यकार संसद् की तिजोरी मे ही रखी रही लेकिन श्रीवास्तवजी का लड़का उन्हे न देख सका।"

निराला पर अब तक तीन पुस्तके निकल चुकी थी—बच्चनसिंह की 'क्रान्तिकारी कवि निराला'; गंगाप्रसाद पाण्डेय की 'महाप्राण निराला'; और एक मेरी पुस्तक 'निराला'। पाण्डेयजी की पुस्तक साहित्यकार संसद् से प्रकाशित हुई। निराला ने भूमिका मे लिखा कि इस प्रशंसात्मक पुस्तक को सरसरी निगाह पढ़कर "मैं समझा मेरी पानी की बूँद मोती बनी है। किसी प्रतिमा की चट्टी या जूती पर जोड़े के साथ खिलेगी।"

इलाहाबाद के साप्ताहिक पत्र 'संगम' ने वसंत-पंचमी (२३ जनवरी १९५०) को अपना विशेपांक निकाला। निराला पर माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पंत और रामकुमार वर्मा की कविताएँ छपी। पंत ने 'पल्लव'-काल के पहले से चली आती निराला की मैत्री को याद करते हुए अपने गद्य-लेख में लिखा, "शायद मुझ पर प्रथम प्रशंसात्मक लेख 'मतवाला' में उन्ही का प्रकाशित हुआ था जिससे मुझे पर्याप्त प्रोत्साहन तब मिला था। तब से सदैव ही उनका मेरे प्रति मुक्त-सौहार्द का भाव रहा है। वह प्रारम्भ से ही हिन्दी-साहित्यिकों के लिये युद्ध करते हुए आगे बढ़े है।"[३१]

स० ही० वात्स्यायन बहुत पहले घोपित कर चुके थे कि रचनाकार के रूप मे निराला का अस्तित्व नही रहा। पिछली मान्यताओ मे संशोधन करते हुए उन्होंने लिखा कि निराला तब नही अब विघटित हुए है; अब से पहले वह सदा प्रयोगशील रहे हैं। "निराला बराबर ही अन्वेपक और आविष्कारक रहे, जब तक कि उनके दीर्घ और निरवधि एकाकीपन ने उनके व्यक्तित्व को विघटित करना आरम्भ नही कर दिया।"[३२]

पर क्या निराला का व्यक्तित्व सचमुच विघटित हो गया था ?

निराला का मन अपेक्षाकृत शान्त था। वह उस वातावरण में आ गये थे जिसमें रहने के आदी थे। साहित्यकार संसद् में जो सरस्वती मौन थी, वह सहसा मुखर हो उठी। जिस नरक मे उनका मन घूमता रहा था, वह वाहर था, उनके भीतर भी। गह्वर मे पड़ा हुआ मनुष्य, कृमि से भी पतित उसका जन्म, दुर्गन्ध से विकल रोता हुआ शिशु, शिशिर की रात, चारों ओर हिंस्र पशु, हृदय में त्रास, सामने नग्न काली के समान नाचती हुई निराशा दिगंबरी, कवि के सामने उसके अपने प्राणों की जर्जर परछाइँ, शरीर और मन में जैसे वीसों विष व्याप्त हुए, माथे है नील का टीका, दाग-दाग, कुल अंग स्याह हैं, सवकुछ नीला-नीला, नील जलधि, नील गगन, नील मृत्यु—निराला जैसे मृत्यु की विभीषिका प्रत्यक्ष देख रहे थे, मृत्यु के विष से दग्ध हो रहे थे, भय और त्रास के आलंवन प्रेतों की तरह उन्हें घेरे हुए थे। 'राम की शक्तिपूजा' का अन्धकार अकेला न होकर सैकड़ों भयावनी छायाओं में बँटकर मानो उनसे युद्ध कर रहा था। जिस नीलिमा को वह वार-वार देख रहे थे, वह कालिदास के शृंगार काव्य की—शारदीय गगन जैसी—निरभ्र नीलिमा न थी; यह शिवकंठ की नीलिमा थी, सिन्धुमन्थन से अमृत के साथ निकली हुई, वैसी ही कालजयी, वैसी ही आकर्षक।

निराला का मन आत्मकरुणा से भर गया। राह चलते चोट खाई, ऐसी चोट खाई कि होश के भी होश छूट गये। साथ मे जो पाथेय था, उसे ठग-ठाकुरों ने लूट लिया। सारे संसार मे जहर भर गया है। काल आ रहा है, कंठ रुकता जा रहा है। ये दुख के दिन, काटे है पल-छिन गिनकर, आँसू की लड के हार पिरोये, हार गया जीवन रण, छोड़ गये साथी। निराला ने प्रार्थना की—

> माँ अपने आलोक निखारो,
> नर को नरकत्रास से वारो।

निराला का मन पहली वार तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' की ओर गया। ज्ञानोद्धत प्रहार करना वह भूल गये। पहली वार उन्होने विनती की—

> भजन कर हरि के चरण, मन !
> पार कर मायावरण, मन !

पर आत्मसमर्पण करके जो सन्तुष्ट हो जाते, वे कवि कोई और होंगे, निराला नही। उन्होंने ब्रह्म से लड़ना शुरू किया। पूछा—कैसे हुई हार तेरी निराकार ? निराकार कहीं हो तो जवाव दे। निराला ने डाँटा, व्यंग्य किया, उलाहना दिया, फिर अपने मन को ललकारा—यों पथ पर वेमौत न मर। ऐसे मर कि दूसरे तुझसे जीवन पायें। निराला का मन 'राम की शक्ति पूजा' के महावीर की तरह पछाड़ खाते हुए जल के पहाड़ों से लड़ता रहा, अपनी अद्भुत क्रियाएँ देखकर गीतों मे उनके चित्र वनाता रहा।

निराला के थके, पराजित मन मे अव भी रूप-रस-गन्ध-स्पर्श के संसार के प्रति विकट आकर्षण वना हुआ था। यह संसार एक क्षण के लिए भी उनकी आँखों से ओझल न हुआ था; नरक की यातना इसीलिए इतनी दुःसह थी। नव-रस के उठे हुए कलश, गाढे रेशम की चोली, केशर की पिचकारी, फागुन की आभा—

आँख हटाता हूँ तो
हट नही रही है ।

और वह प्रार्थना करते जाते थे—दूर रहे अनंग !

आधे मन से सन्यासी, आधे मन से भोगी । फागुन मे जब आमों मे बौर आये, गन्ध से उनका मन भीग गया, तब वह स्वर जो बहुत साल पहले 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली' मे लहराया था, वह अवध की धरती का अजेय स्वर, वैराग्य की निषेध-सीमाएँ तोडकर लोकगीतों के सहज वशीकरण भाव से मृत्यु और नरक की कालिमा के ऊपर छा गया—

फूटे है आमो मे बौर
भौर वन-वन टूटे है।
होली मची ठौर-ठौर
सभी बन्धन छूटे है।
फागुन के रंग राग
बाग-वन फाग मचा है,
भर गये मोती के झाग,
जनो के मन लूटे है।
माथे अबीर से लाल,
गाल सेंदुर के देखे,
आखें हुई है गुलाल
गेरू के ढेले कूटे हैं।

गेरू के ढेले कूटकर निराला ने संन्यासीवाले कपड़े रँगे थे; गेरू का वह रंग होली के अबीर मे घुल-मिलकर एक हो गया।

निराला की रचनाओं में 'अर्चना' एक अद्भुत संग्रह है । हर संग्रह की तरह इसमे भी बहुत-कुछ अटपटा है, कही-कही लगता है, शब्दो को जबर्दस्ती उन्होने पंक्तियो मे ठूँसा है, पर यह उस कवि की रचना है जो नरक मे घूमकर लौटा था, जिसके मन से धरती का मोह छूटा न या । अपनी मौत किसने देखी है ? मौत के बाद अपना अनुभव लिखने कौन आता है ? अपनी मौत निराला ने देखी; मौत का अनुभव निराला ने लिखा। हार-हारकर भी जो जीता—ऐसा था निराला का अपराजेय मन जिसने सन् '५० में 'अर्चना' के गीत लिखे थे ।

भूमिका मे उन्होने णणवल सिद्धान्त याद किया। इन गीतो मे बहुत जगह 'न' के बदले 'ण' है, इसे उचित बताया, फिर अंग्रेजी से अपने सबन्ध के बारे मे लिखा—"हमारा अंग्रेजी से घनिष्ठ संबन्ध था, जिसका परिचय, पढ़ाई की कोताही से जितना छिपाया गया था, कविता के प्रकारण-प्रकाशन से उतना ही बताया गया । हम यहाँ केवल उच्चारण-विज्ञान की एक बात पर कह रहे है । हमारे अंग्रेजी के प्रशंसक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, लखनऊ आदि के विद्वान् मित्र अन्तर्जातीय अंग्रेजी के सम्बन्ध मे पूर्ववत् हिमायती समझने की कृपा करे, साथ ही इतना जोड़े रहे कि हमारा हिन्दी के

साथ, संस्कृत आदि उसकी वहनों, माओं और मातामहियों से भी परिचय और श्रद्धाभाव है।"

यह लिखकर मानो निराला ने पाठकों को सचेत कर दिया कि वे समझें, गीत लिखते समय निराला ने कितने विकट प्रयास से अपने मन को साधा था। दारागंज की गली में घूमते हुए वह स्वगत-कथन के गद्य-संसार में कहाँ-कहाँ भटकते थे; उससे दूर कहीं गीत लिखते समय अपने मन को वहुत ऊपर खींच ले जाते थे। अपनी पीढ़ी के कवियों में वही अकेले थे जो अब भी अपने को अनासक्त मन से देख लेते थे, जो तटस्थ होकर अपना और अपने परिवेश का चित्रण कर सकते थे, जिनकी रचनाएँ उनके पुराने काव्य की प्रतिध्वनि-मात्र न थी, जो अब भी हिन्दी के ऊसर मे अपने लिए नई राहें वना रहे थे।

निराला विक्षिप्त है या नहीं, हैं तो कितने, नहीं विक्षिप्त हैं तो ऋषि है—इस तरह के विवाद मौखिक, कभी-कभी लिखित रूप मे सुनने को मिलते थे। निराला के दो मन थे—एक थका हुआ, ए० आई० सी० सी०, क्वीन विक्टोरिया, रूस, इंग्लैण्ड, वड़ी-वडी कोठियों से सम्वन्ध जोडनेवाला; दूसरा मन अपराजेय, सतर्क, विवेकपूर्ण, जो पहलेवाले मन की कार्यवाही देखता था, उस पर हँसता था। 'वह रहा एक मन और राम का जो न थका'—इस अक्षय ऊर्जावाले मन से निराला की जान-पहचान वहुत साल पहले हो गई थी।

निराला अपने कल्पनालोक मे देश-विदेश की यात्रा करते थे, घोडे पर चढते थे; वहाँ स्वामी विवेकानन्द के भक्तो की तरह लोग उनकी वन्दना करते थे। इलाहा-वाद युनिवर्सिटी में डा० ऐजाज हुसेन उर्दू के अध्यापक थे। निराला कभी-कभी उनसे मिलने उनके घर जाते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उनसे वोले—"वे दिन याद है या नही जव हम लोग ईरान मे घोड़े दौड़ाते थे और लोग हमारी जियारत को आते थे।" ऐजाज़ हुसेन ने धीरे से कहा—कुछ न समझे खुदा करे कोई।

निराला ने सुन लिया। फौरन वोले—पहला मिसरा क्यों नही पढते?—वक रहा हूँ जुनूँ में क्या-क्या कुछ?[३३]

उन पर जनून चढा है, दूसरे लोग यह देख रहे है—निराला अपने को, जनून को, देखनेवालो को देख रहे थे।

निराला का मन हारकर भी न हारा था, थके हुए मन में हास्य और व्यंग्य का स्रोत सूख न पाया था, परिवेश में जो कुछ देखते-सुनते थे, उससे विवेकवाला तार जोड़कर वह अब भी हँसते थे। विहार की मासिक पत्रिका 'नई धारा' को उन्होने सम्मति भेजी। हँसमुख, विद्वान्, वक्ता, सुलेखक कहकर रामवृक्ष शर्मा वेनीपुरी की प्रशंसा की; उन्हे अपने पुराने जानकार और गहरे दोस्त के रूप में याद किया। विहार के अनेक साहित्यकारो के सहयोग से 'नई धारा' सफल होगी यह संकेत करने के वाद लिखा, " 'नई धारा' के वह जाने का भी खौफ नही। यह इस गर्मी के मौसम के वाद के दिनों में और भरेगी—स्वाभाविक है। और अगर विहार हिन्दी की दीवार है और पहले राष्ट्रपति का मुक़ाम तो उसकी पायेदारी की ओर इशारा ही काफी है।"[३४]

निराला दारागंज की गली मे घुटनो तक लुंगी बाँधे टहलते हुए, अक्सर अपने से बातें करते हुए देखे जाते थे। अब वह आवेश मे ज़ोर से बातें कम करते थे, धीरे-धीरे बुदबुदाते ज्यादा थे। वह लोगो से अक्सर अंग्रेजी मे बातें करते थे। दक्षिण से राममूर्ति 'रेणु' उनसे मिलने आये। निराला ने कहा—You people of Madras are very intelligent and adventurous. You can master any language and gain efficiency in it. I always have a special liking for you. 'रेणुजी' ने पूछा—आप हिन्दी में क्यों नही बोलते? इस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने कहा—No, I hate the language like hell. 'रेणुजी' ने उनकी 'तुलसीदास' कविता की प्रशंसा की। निराला ने कहा—No, it is nothing but trash. 'रेणुजी' और उनके साथियो को उन्होने मठा पिलाया; स्वयं पानी पीकर रह गये।[३५] उनसे मिलने आनेवालों की संख्या बढती जा रही थी और वह भरसक उनके आतिथ्य का भार कमलाशंकर सिंह के ऊपर न डालते थे।

वह हिन्दी को, कवि निराला के व्यक्तित्व को अस्वीकार कर रहे थे, अपने लिए नये-नये नाम चुनते थे, कलम से अपना नाम लिखने पर आपत्ति करते थे। इस सिलसिले में वह अपने जन्म के बारे मे कथाएँ गढ़ रहे थे, उनकी माता की मृत्यु रहस्य-जनक कारणो से हुई, वह वास्तव मे राजकुमार है, उनकी बहुत-सी जायदाद है, वह फ्रांस मे हवाईजहाज से उतरे तो क्वीन विक्टोरिया ने उनका स्वागत किया, उनका अंग्रेजी उच्चारण सुनकर वह दंग हो गई।

इसी तरह के ध्यान मे एक दिन वह बच्चन के यहाँ पहुँच गये थे। वहाँ सुमित्रा-नन्दन पन्त को देखकर उन्होंने कहा था—"मैं निराला नही हूँ, मैं हूँ तुत्तनखाँ का बेटा मुत्तनखाँ। मैंने गामा, जेबिस्को और टैगोर—सबको चित्त किया है। आओ।"[३६]

सुमित्राकुमारी सिन्हा से उन्होंने कहा था कि वह उन्हे निरालाजी न कहा करें। कभी-कभी लोग दर्शन करने की इच्छा से दारागंज की गली मे उनका निवास-स्थान ढूंढते हुए पहुँचते। निराला कहते—निराला यहाँ नही रहते; जिन निराला को ढूंढते हो, वह कब के मर गये।[३७]

निराला का एक मन हिन्दी-भाषियों से विद्रोह करता था, अपनी हिन्दी जातीयता, अपना कवि का व्यक्तित्व अमान्य करता था, उनका दूसरा मन उतना ही हिन्दी से प्रेम करता था, हिन्दी लिखने-पढने-बोलनेवालो को अपना परम आत्मीय मानता था। वह अब भी गीत लिखे जा रहे थे। अनेक पत्रो के सम्पादक गीतो को निरर्थक समझते हुए भी निराला नाम के आकर्षण से उन्हे छापते थे। उन्होंने अपना नया संग्रह 'आराधना' साहित्यकार संसद् को दिया। वह संसद् छोडकर चले आये थे पर महादेवीजी से वैसा ही स्नेहभाव बना हुआ था।

'आराधना' मे एक कविता अतुकान्त थी, शेष गीत थे। शब्द और अटपटे हो गये थे। विनय का स्वर पहले से अधिक बार सुनाई दिया। संसार के सुख का, प्रकृति और मानव के सौन्दर्य का अब भी आकर्षण था, दुख की अनुभूति अब भी तीव्र थी, पर वह मृत्यु की छाया जो दो साल पहले बहुत निकट आई जान पड़ती थी, अब कुछ

दूर चली गई थी। जीवन-अरण्य से हिंस्र-पशु कहीं चले गये थे। मन्द पीड़ा की एक सतत अनुभूति :

दुखता रहता है अब जीवन,
पतझड़ का जैसा वन-उपवन—

इस मर्मव्यथा के साथ निराला अब भी सरस्वती से कह रहे थे, उनके गीत गगन में गूँजें।

वह राम से प्रार्थना करते थे—कामरूप, हरो काम; और—चोली हमजोली की मसकी—ऐसी पदरचना भी करते जाते थे।

सिर के काफ़ी बाल सफेद हो गये थे। एक पैर पर दूसरा पैर चढ़ाये जब आदत के अनुसार वह टाँग हिलाते तो उनकी छाती की शिथिल त्वचा झूलने लगती थी। नीली नसें उभर आयी थीं, पेट बढ चला था, पर दाढ़ी के बाल अभी काले थे, चेहरे से शक्ति और दृढ़ता का आभास होता था। मैंने पूछा—पण्डित पन्त सुमित्रानन्दन यहाँ कभी आते हैं क्या? कमलाशंकर सिंह ने कहा—कभी नहीं। निराला बोले—Don't dream even. फिर एक क्षण रुककर कहा—We are friends in opposition. I am the sentinel of my own self. That man is not a man.

हिन्दीवालों को लक्ष्य करके उन्होंने एक वाक्य कहा—They will be fed up. Myself will fade.

किसी बिल पर उन्हें हस्ताक्षर करने थे। कमलाशंकर की ओर संकेत करके उन्होंने कहा—ये काम हैं, मैं दाम हूँ।

सन् '५३ में बरुआ नामक अभिनन्दन-विशेषज्ञ सज्जन ने कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमी मारवाड़ियों से धन संग्रह करके बड़ी आनबान से निराला का अभिनन्दन किया। हॉल में दर्शकों की भीड़ समा न पायी, तब लोगों ने दरवाजों के शीशे तोड़े। निराला ने अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए भीड़ को शान्त किया। दूसरे दिन खुले पार्क में उनका स्वागत किया गया। निराला ने भाषण किया। बंगाली विद्वानों की ओर से आचार्य क्षितिमोहन सेन ने स्वागत-समारोह मे प्रमुख भाग लिया।

किसी ने निराला से पूछा—हिन्दी और बँगला में किसका काव्य श्रेष्ठ है? निराला ने कहा—लिखने को बहुतों ने लिखा है पर जैसा कुछ राह चलते फकीर कह गये हैं, वैसा न रवीन्द्रनाथ ने लिखा है न मैंने।

सेठ झुनझुनवाला के यहाँ अभिनन्दकों को त्रस्त करते हुए उन्होंने खुलेआम शराब पी। अभिनन्दकों ने उन्हें एक हारमोनियम भेंट करके उनकी एक पुरानी मनोकामना पूरी की।[३८]

बरुआ ने काफ़ी परिश्रम से निराला-सम्बन्धी संस्मरण, चित्र आदि संग्रह करके एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किया।

खबर उड़ी कि अभिनन्दन समिति ने ढाई हजार की थैली भेंट की जो महादेवी वर्मा के पास है।

दिसम्बर १९५३ में अखिल भारतीय व्रज-साहित्यमण्डल के नवे अधिवेशन की

तैयारी हो रही थी। सभापति चुने गये डा० धीरेन्द्र वर्मा, उद्घाटनकर्ता राज्यपाल कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी, स्वागताध्यक्ष राजा गोविन्दसिंह। हर चीज़ बड़े पैमाने पर आयोजित की गयी। संयोजकों ने कवि-सम्मेलन के सभापतित्व के लिए माखनलाल चतुर्वेदी को निश्चित किया। पर उनका तार आ गया कि अस्वस्थ होने से वह न आ सकेंगे। कवि हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' को यह काम सौंपा गया कि इलाहाबाद में जितने महाकवि मिलें, उन्हें लिवा लायें। चातकजी दूध और वर्फी के प्रेमी, व्रजक्षेत्र के चिर युवा कवि हैं। तुरन्त तैयार हो गये। सुमित्रानन्दन पन्त के पास गये तो मालूम हुआ कि वह अभी दिल्ली से लौटे हैं, छाती में दर्द है, न जा सकेंगे। तब उन्होंने जयगोपाल-शिवगोपाल बन्धुओं को साधा और उनके द्वारा निराला को मैनपुरी आने के लिए राजी किया। महादेवीजी ने भी स्वीकृति दे दी साथ चलने की।

कवि-सम्मेलन में निराला को मालूम हुआ कि रेडियो द्वारा कविता-पाठ प्रसारित किया जायगा तो कविता पढ़ने से इन्कार किया। जब उन्हें आश्वासन दिया गया कि उनकी कविताएँ प्रसारित न होंगी, तब उन्होंने 'शिवाजी का पत्र' और 'जुही की कली' सुनाई। अंग्रेज़ी और 'गुलाबी उर्दू' में भाषण भी किया। लोकप्रिय कवि बलबीर सिंह 'रंग' ने 'तुम तुग हिमालय शृंग' वाली कविता का सस्वर पाठ किया जिससे निराला बहुत प्रसन्न हुए। अपनी उस अनुभूति को 'रंग' ने पद्यबद्ध किया :

मैनपुरी के राजभवन में सुधी जनों के संग
कवि शिवमंगलसिंह मंच पर जमा रहे थे रंग;
तुंग हिमालय शृंग गीत जब मैंने सस्वर गाया,
साक्षी जनसमुदाय आपका रुद्ध कंठ भर आया।

मैनपुरी के किले में राज्यपाल के दरबार में ज़िलाधीश ने कहा—निरालाजी यहीं ठहरे हुए हैं, आज्ञा हो तो उन्हें भी बुला लिया जाय।

मुन्शीजी राज्यपाल होने के अलावा—और उससे पहले—साहित्यकार थे। उन्होंने कहा—मैं स्वयं चलकर मिल लूंगा।

निराला किले में ही ठहराये गये थे। खाट पर नंगे बदन लेटे थे। यह सुनकर कि राज्यपाल मुन्शी उनसे मिलने आ रहे हैं, वह उठकर बैठ गये और सर पर टोपी लगा ली। कुर्ता पहनना जरूरी न समझा। मैनपुरी अच्छा शहर है या इलाहाबाद, इलाहाबाद अच्छा है या लखनऊ—इस पर बातचीत हुई। मुंशीजी से लखनऊ की तारीफ सुनने के बाद निराला ने कहा—Why so unpopular in such a good place ? इस पर दोनों साहित्यकार खूब ज़ोर से हँसे।

कुछ ही दिन पहले लखनऊ में पुलिस ने विद्यार्थियों के जलूस पर डण्डे बरसाये थे और शहर में चन्द्रभानु गुप्त के साथ मुन्शी के विरुद्ध नारे लगाये गये थे। निराला ने उसी ओर संकेत किया था।

मैनपुरी के राजा शाकाहारी थे। साथ में महादेवीजी भी। निराला ने मांस-मदिरा किसी भी चीज की माँग न की।

समारोह समाप्त होने पर निराला और महादेवी कार से इटावा आये, वहाँ से इलाहाबाद। चातकजी जितने सम्मान से निराला को ले आये थे, उतने सम्मान से उन्हे विदा न कर सके। उनका कहना था कि संयोजक सियाराम चतुर्वेदी और जिला स्कूल-निरीक्षक हरिशंकर शर्मा ने निश्चय किया था कि एक हजार रुपये निराला को भेंट किये जायेंगे। यह सन्देश उन्होने महाकवि को सुना दिया। चातकजी के अनुसार निराला के वस्त्रादि क्रय करने में चार सौ रुपये खर्च हुए, सौ रुपये और दिये। पर मैनपुरी से विदा होते समय उन्हें कुछ न दिया। इलाहाबाद पहुँचकर जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र ने चातकजी को शिकायती चिट्ठी लिखी—

"चातक, भैया चंचरीक वन हमें बुलाने आए।
स्नेहिल कवि के स्नेहपात्र हो वरा हिलाने आए।
कवि मे सहृदयता जागी थी सीधे पाँव सिधाए।
मैनपुरी की रीति अनोखी अपमानित हो आए।

प्रिय चातकजी, हमें भेजने तुम इटावा तक क्यों नही आये ? जबकि लेने आये थे ! हमे रात में महाकवि-जैसी साहित्यिक निधि के साथ दुर्गम एवं बाधापूर्ण निहायत दुखी रास्ते से इटावा तक की कार-यात्रा क्यो कराई गयी ? राज्यपाल को भेजने दिन मे जो कि अपनी सत्ता से सुरक्षित है आठ कारें गयीं। महाकवि और महादेवी को रात में उपेक्षित छोडकर साहित्यिकों ने विशेषतया आपने क्या कमाल नही किया ? आपने हमारे टिकट का दाम क्यों नही दिया ? चूतियो को दो-दो सौ मिले, महाकवि को बेवकूफ बनाया।"

इस पर चातकजी की टिप्पणी यह थी : "सच में मैनपुरी के उन कार्यकर्ताओं पर यह कलंक सदा अमिट रहेगा। मैंने बार-बार याद भी दिलाई पर कौन सुनता है ? काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।"

जयगोपाल और शिवगोपाल से अनेक साहित्य-प्रेमी नाराज थे। वे समझते थे, ये लोग निराला को घेरे रहते है, जहाँ निराला जाते है, वहाँ ये जाते है, निराला पर इन्होंने अपना एकाधिकार जमा रखा है। वे निराला के पैर मे तेल की मालिश करते हैं, उनका बदन चापते हैं, उनके गीतों की नकल करते है, उनके लिए चिट्ठियाँ लिखते हैं, इन बातों की ओर साहित्यिकों का ध्यान न था। निराला इन दोनो भाइयों से विशेषकर शिवगोपाल से बड़ा स्नेह करते थे। शिवगोपाल, रसायनशास्त्र के कुशाग्र-बुद्धि छात्र, एम० एस-सी० करने के बाद डाक्टरेट की तैयारी में, निराला के भी साहित्य-छात्र थे। निराला उन्हे शेक्सपियर पढ़ाते थे और इससे उन्हे—प्रोफेसर की भूमिका मे अपने को देखकर—सन्तोष होता था। वह स्वयं पत्र कम लिखते थे, सेक्रेटरी का काम शिवगोपाल से लेते थे।

अँग्रेजी वाले 'मूड' में उन्होने मुझे एक कार्ड इस प्रकार लिखा था :

Daraganj
Allahabad
3-4-53

Dear doctor,

I received your letter but due to restiction, I did not write you. Now, that I forget the principal points in the letter, I have shoot in the void. Kindly do not feel otherwise rather note down a second one if necessary, I shall guide Shiva Gopal to take down and drop it, I am teaching him Shakespeare

Yours
Nirala.

यहाँ तक निराला के हाथ का लिखा; पोस्टकार्ड के दूसरी ओर शिवगोपाल का नोट :

Venerable Sharmaji,

Recd. your card. Happy to learn that you will be with us in summers.

Nirala is quite hale and hearty. We will arrange for the oil you suggested.

If anything fresh, kindly convey to us by a card.

Yours sincerely,
Sheo Gopal Misra.

पता भी शिवगोपाल का लिखा हुआ।

निराला अस्वस्थ है या नहीं, अस्वस्थ है तो कितने अस्वस्थ है, इस पर वहस चली। निराला स्वस्थ है, इसका प्रतिवाद करते हुए ५ अप्रैल १९५४ को कमलाशंकर सिंह ने पत्रों को वक्तव्य भेजा। निराला का शरीर दिन-पर-दिन टूट रहा है। वे मन मे दुखी रहते है, पर अपना दुख प्रकट नही करते। उनका दाहिना हाथ बिल्कुल नहीं उठता। कुर्ता, लुंगी भी पहनने में असुविधा होती है। दाहिने पैर की गाँठो मे दर्द रहता है। ३ फरवरी से १५ मार्च तक पैर मे दर्द के कारण पाखाना-पेशाब में भी कठिनाई हुई। जयगोपाल मिश्र उनके पैर मे महानारायण तेल की मालिश करते है। निराला ने एक दिन कष्ट मे कहा—अब मेरी जीभ ही ऐठने को बाकी है।

"इस वर्ष पं० गगाप्रसाद पाण्डेय निरालाजी से दो-तीन बार मिलने अवश्य आये किन्तु वह केवल पण्डितजी से उन ड्राफ्टों पर हस्ताक्षर कराने आये थे जिसे यू० पी० सरकार ने निरालाजी को उनकी पुस्तक 'अर्चना' पर १००० रुपये पुरस्कार और १२०० रुपये उनके वार्षिक खर्च के लिये दिया था। यह रुपया साहित्यकार संसद् द्वारा निरालाजी की सेवा-सुश्रूषा के लिये सरकार ने दिया था किन्तु इस २२०० रुपये में से पण्डितजी की सेवा-सुश्रूषा तथा उनके खाने-पीने में एक पैसा भी नही खर्च हुआ।

'''साहित्यकार संसद् की ओर से पाण्डेयजी निरालाजी को एक छड़ी दे गये हैं जिसके सहारे पण्डितजी चलते-टहलते रहें। इससे उनकी सेवा-भावना भी प्रकट होती है। किन्तु पत्रों द्वारा निरालाजी की अस्वस्थता पर पर्दा डालने की यह मनोवृत्ति यदि इस कारण से है कि निरालाजी का रुपया संसद् में जमा रहे और उनके स्वास्थ्य पर खर्च न किया जाय तो वास्तव मे यह दशा संसद् के अधिकारियों के लिए अशोभनीय है।"

प्रादेशिक और केन्द्रीय सरकारें निराला के लिए कुछ रकम बाँट रही थीं, पुस्तकों पर पुरस्कार मिल रहे थे, इधर-उधर अभिनन्दन हो रहे थे और निराला फिर भी वही घुटनों तक लुंगी बाँधे दारागंज मे घूम रहे थे। रुपये-पैसे को लेकर तरह-तरह के विवाद फैले। इनमें महादेवीजी का नाम बार-बार लिया जा रहा था। २३ अप्रैल १९५४ के 'भारत' में अपना वक्तव्य प्रकाशित करके महादेवी वर्मा ने स्थिति स्पष्ट की।

'अपरा' से जो २१००) का पुरस्कार मिला, उससे मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव के पुत्र प्रकाशचन्द्र को—जो क्षयरोग से पीड़ित है—१६००) भेजे जा चुके हैं। रसीदें सुरक्षित हैं।

१९५२-५३ मे उत्तरप्रदेश सरकार ने निराला की चिकित्सा के लिए ५००), और खर्च के लिए १००) प्रतिमास के हिसाब से, १२०८) का अनुदान स्वीकार किया। यह १७००) की निधि निराला की रसीद देकर कमलाशंकर सिंह ले गये थे।

'अर्चना' पर उत्तरप्रदेश सरकार ने १०००) का पुरस्कार दिया। पहले यह रकम मँगाई न गयी क्योंकि निराला ने कमलाशंकर सिंह को रसीद देना स्वीकार न किया। अन्त में निराला के आग्रह पर महादेवीजी ने रुपये मँगाने की व्यवस्था की और उनके पुत्र तथा अन्य दो सज्जनों की जानकारी में उन्हें दे दिये।

१९५३-५४ में उत्तरप्रदेश सरकार ने १००) प्रतिमास के हिसाब से १२००) का अनुदान स्वीकार किया। निराला किसी अन्य को रसीद न देते थे; इसलिए यह रकम भी पड़ी रही। अन्त में निराला ने शिक्षामंत्री को लिखा। महादेवीजी ने वह निधि भी मँगवाकर उन्हे उनके पुत्र की जानकारी मे दे दी।

"कलकत्ते में निराला अभिनन्दन समिति ने साहित्यकार संसद् को या मुझे २५०० रुपये की निधि भेंट नहीं की है, न अब तक इस प्रकार की कोई रकम प्राप्त हुई है, अतः इस प्रकार का भ्रामक प्रचार लज्जास्पद है।"

'अपरा' के प्रथम संस्करण की रायल्टी का १०१०) ११-९-४७ तक—निराला को मिला है। सहायक निधि से १३००) उन्हे समय-समय पर दिये गये हैं, इसमें कुछ रुपये गाँव और रायबरेली के पते पर भेजे गये। सभी रकमो की रसीदें आदि आडिटर द्वारा परीक्षित हैं।

'अपरा' का दूसरा संस्करण कुछ महीने पहले हुआ है; 'आराधना' इसी महीने छपी है। अपने सोल एजेंट लीडर प्रेस से जब इनका हिसाब मिलेगा तब वह भी उन्हें दिया जायेगा। इस वर्ष साहित्यकार संसद् से रामकृष्ण त्रिपाठी को ४००) और कमलाशंकर सिंह को ४००) प्राप्त हो चुके है।

भारत सरकार से १९५२-५३ मे उत्तम पुस्तको के प्रकाशन के लिए दस हजार रुपये मिले है, लेखकों की सहायता के लिए नही। वह धन पुस्तक प्रकाशन पर ही व्यय किया जायेगा।

निराला की चिकित्सा के लिए उत्तरप्रदेश सरकार से १००) प्रतिमास मिलने का आश्वासन मिला है; भारत सरकार से १००) प्रतिमास मिलने की आशा है। प्रकाशको से भी निराला की पुस्तको की रायल्टी समय-समय पर प्राप्त होती रहेगी।

यहाँ तक महादेवीजी का वक्तव्य।

निराला के विक्षिप्त होने का प्रचार करनेवालो और महादेवी वर्मा की ईमानदारी पर शक करनेवालों को इलाचन्द्र जोशी ने अपने वक्तव्य मे उत्तर दिया। "आज निराला जी की जितनी भी पार्थिव व्यवस्था जुट पाई है, वह एकमात्र महादेवीजी के ही उद्योगो द्वारा सम्भव हुई है। निरालाजी के स्वयसिद्ध संरक्षको और ठीकेदारों में से एक भी कभी उस व्यवस्था की वृद्धि के लिये प्रयत्नशील नही हुआ, उलटे व्यवस्था की कमी पर छींटे उड़ाने और निराधार आरोप लगाने मे ही इन कायरों ने अपने संगठित पुरुषार्थ का प्रदर्शन किया। उनमे से कुछ के आक्रोश का कारण ही यह रहा कि वे निरालाजी को प्राप्य रकम का अधिकांश भाग स्वयं हड़प जाना चाहते थे, पर महादेवीजी की सुचारु व्यवस्था के कारण ऐसा उस हद तक संभव न हो पाया जिस हद तक वे चाहते थे। महादेवीजी ने अपने माध्यम से निरालाजी के लिये जो भी रकमे पायी उनकी व्यवस्था पाई-पाई करके निरालाजी की इच्छा और आदेश के अनुसार की। और उस पाई-पाई का हिसाब और रसीदें उनके पास मौजूद है। अब तो उनका वक्तव्य भी निराला-सम्बन्धी सारे हिसाब-किताब के बारे मे पत्रो में छप चुका है, जिससे किसी अज्ञात व्यक्ति के लिये भी भ्रम की गुंजाइश नही रह सकती। पर यह युग के कितने बड़े पतन की सूचना है कि आज महादेवीजी को निराला के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य देना पड़ा!"[१९]

निराला को जाड़ों मे अधिक कष्ट था। जाड़ा बीतने पर उनकी हालत सुधरी। वह अब अपने को स्वस्थ समझते थे, स्वस्थ होने का उल्लेख अपने पत्रों में करते थे। पर उनके हाथ-पैर मे कष्ट था, भले ही उतना कष्ट वह गिनते न हो। सन् '५४ की गर्मियो मे मैं जब मिलने गया तब उन्होंने हाथ उठाकर दिखाया। यह दाहिना हाथ था, उठाने मे उन्हे कुछ कष्ट अवश्य हुआ। पैर मे भी दर्द था, पर छडी लेकर वह मजे में घूमते फिरते थे। उन्हे दूसरों के स्वास्थ्य की चिन्ता अधिक थी। मेरी बांह की मास-पेशियाँ टटोलने के बाद बोले—Not so stout. परिवार मे विवाह; मदद करनी है। रायल्टी का रुपया प्रकाशक दे तो सब काम आसानी से हो जायें। उनके लिए लोग चंदा कर रहे हैं या करने की सोच रहे है, यह सुनकर वह नाराज हुए और बोले, "It is all absurd. Write in both English and Hindi papers. I have ample income if realized and can live on it without government help."

घर-गृहस्थी के सम्बन्ध में एक पत्र उन्होंने रामशंकर शुक्ल—बच्चाबाबू—को लिखा, बँगला में।

19-5-54

बच्चाबाबू,

तोमार पत्र पेये खुसि हलाम। एखन आमार शरीर सुस्थ। तीन मास परे पा भाल हल। किछु-किछु कसरत करि। १०००, एक हजार टाका रामकृष्ण के बियेर जन्ये दिलाम। बिहारीलालेर मेयेर बिये देवार कि व्यवस्था?

S.

पता अंग्रेजी में।

थोड़ी-थोड़ी कसरत अब भी करते हैं!

कमलाशंकर सिंह ने कुछ दिन बाद पत्रों में प्रकाशनार्थ एक और वक्तव्य भेजा। उसमें उत्तरप्रदेश सरकार से प्राप्त पुरस्कारों की चर्चा करते हुए कहा—"महादेवीजी ने इन रुपयों को चाहे जैसे भी खर्च किया हो, निरालाजी की परिचर्या में ४०० रुपया से अधिक खर्च नहीं किया। कई हजार रुपये ऊपर-ही-ऊपर न जाने क्या हो गये और निरालाजी अपने मित्र के सहारे चलते आये।...प्रदेशीय सरकार को इस बात की जब जानकारी हुई कि सरकारी सहायता निरालाजी की परिचर्या में खर्च नहीं हो रही है तो गत अप्रैल '५४ से १५० रुपया मासिक रूप से निरालाजी को महादेवीजी द्वारा न देकर उसे अब जिलाधीश द्वारा देने की व्यवस्था सरकार ने की है।...भारत सरकार ने भी इस मास से उत्तरप्रदेशीय सरकार का अनुकरण किया है। १०० रुपया मासिक निरालाजी के लिए जो अभी तक महादेवीजी के यहाँ से मिलते रहे हैं वह भी निधि जिलाधीश के ही द्वारा निरालाजी पर खर्च करने का आदेश मिला है।"

निराला पर खर्च के लिए उन्हें सरकार से पैसा मिलता है, कमलाशंकर सिंह ने यह स्वीकार किया, "जिलाधीश द्वारा १२० रुपये पंडितजी के खाने-पीने तथा फलादि के प्रबन्ध के लिए मुझे नियमित रूप से मिलता है। विशेष आवश्यक वस्तुओं के लिए लिखते ही जिलाधीश महोदय उनकी तत्काल ही व्यवस्था कर देते हैं।"

उत्तरप्रदेश की सरकार के आदेश से सिविलसर्जन निराला को देखने आया, पर निराला ने रक्तचाप आदि लेने में बाधा दी। फिर भी उन्हें कुछ इन्जेक्शन दिये गए। कमलाशंकर सिंह ने डाक्टरों की समिति बनाने और इलाज के लिए निराला को विदेश भेजने का सुझाव रखा। इस संबन्ध में कुछ लोग प्रदेश के मुख्यमन्त्री से मिले। पुस्तकों की रायल्टी के सम्बन्ध में कमलाशंकर सिंह ने कहा—"निरालाजी अपने निजी खर्च के लिए अपना ही पैसा अधिकारपूर्वक चाहते हैं। निश्चय ही उनकी रायल्टी पर उनका ही अधिकार है। उसे वह अपनी रुचि से खर्च करने के लिए स्वतन्त्र हैं, पर प्रकाशक उनका हिसाब नहीं भेजते हैं, जिससे बड़े कष्ट का अनुभव वह करते है। महादेवी जी द्वारा यह अभी प्रकाशित हुआ है कि निरालाजी के रायल्टी के दस हजार रुपये जमा हैं। इस निधि का अधिकांश भाग महादेवीजी के ही हाथ में है, यह मैं

जानता हूँ। फिर भी आर्थिक दृष्टि से निरालाजी उपेक्षित है। कुछ प्रकाशक उनके रुपये देना ही भूल गये हैं। कुछ जानकर भी नही देते और कुछ ऐसे भी है जो उनके धन को अपनी मुट्ठी मे रखे हुए है। आश्चर्य तो यह जानकर हुआ कि एक कथित साहित्यकार ने जिसे महादेवीजी ने साहित्यकार संसद् मे पाल रखा है, निरालाजी से हस्ताक्षर बनवाकर स्थानीय एक प्रकाशक संस्था से, पडितजी का रायल्टी से ८०० रुपया यह कहकर ले लिया कि निरालाजी को उधार स्वरूप ये रुपये उसने दिए थे। साहित्यकारो के लिए ऐसे चरित्र को लेकर चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात है।"

उधर निराला हिसाव लगा रहे थे कि गंगा में कितना पानी है, उस पानी मे कितने घडियाल है। उन्होने गंगाप्रसाद पाण्डेय को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति समझाने के बाद कहा—देश की हालत खराब है। अभी तक भुखमरी चल रही है। गंगाजी सूख गई। हमने तो गंगा भी छोड़ दी पर भूख नही छूटती। बाप रे बाप ! जानते हो, गंगा मे बहुत बडे घडियाल है। जल भ्रष्ट कर रहे है और आदमियो को पकडते है। एक पेट पकडता है, एक सिर। दोनों बड़े भयानक है। मैंने तो साफ कहा है—Mister One, you cannot make us wooden headed. Mister Second, you cannot catch us with gold.[४०]

१५

मृत्यु से संघर्ष

इलाहाबाद बहुत खूबसूरत शहर है। इतनी लम्बी सड़कें, सड़कों के किनारे इतने ज़्यादा बँगले उत्तर भारत के किसी शहर में न मिलेंगे। वैसे तो अंग्रेज़ी राज में हर शहर के अन्दर दो शहर थे, एक वह शहर जिसमें क्लर्क, छोटे-मोटे व्यापारी, मजदूर, कुली-कबाड़ी रहते थे, दूसरा वह शहर जिसमें अफ़सर, बड़े-बड़े प्रोफेसर और उच्चवर्ग के अन्य लोग रहते थे, किन्तु इलाहाबाद में उच्च वर्ग वाला यह दूसरा शहर जितना बड़ा था, उतना बड़ा और किसी शहर का ऐसा ही भाग न था। इलाहाबाद में कोई विशेष उद्योग-धन्धे न थे पर यहाँ हाई कोर्ट था जिसके इर्द-गिर्द सारे प्रदेश की कानूनी जिंदगी चक्कर खाती थी। यहाँ विश्वविद्यालय था जिसकी तुलना प्रदेश के और सभी विद्यालय मिलकर न कर सकते थे—जहाँ तक प्रशासन के लिए अफसर पैदा करने का सवाल था। यहीं से सर सी. वाई. चिन्तामणि का पत्र 'लीडर' निकलता था जिसकी अंग्रेज़ी की धाक किसी समय दफ्तर के बड़े बाबू से लेकर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर तक थी। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के आगे आने पर सप्रू-जयकर की नीति पीछे पड गई थी, फिर भी जब बड़े लाट और गांधीजी में सुलह-समझौते की बात चलानी होती तब सप्रू-जयकर ही फिर आगे आते थे। उनके खस्ताहाल उदारपंथी दल की आन-बान अब लीडर अखबार में ही कायम थी।

इलाहाबाद में आनन्द भवन था, मोतीलाल नेहरू थे, जवाहरलाल नेहरू थे। सप्रू, चिन्तामणि, नेहरू परिवार अपनी एक निराली दुनिया में रहते थे जिसे शहर की गंदी बस्तियों से कोई सरोकार न था। यह दुनिया आई. सी. एस. अफ़सरों, जजों, बड़े वकीलों और प्रोफेसरों की दुनिया के ज्यादा नजदीक थी, दारागंज या लूकरगंज की गलियों से दूर थी। वैसे बनारस से ज्यादा इलाहाबाद पर देहात का रंग है, अमरूद के बागों के लिए मशहूर इलाहाबाद भारत के स्वाधीन होने के समय आधा देहात था, फिर भी इस देहात से या आस-पास के गाँवों से उस सिविलियन-संस्कृति का कोई सम्बन्ध न था। यूनिवर्सिटी में गाँव या शहर के जो गरीब विद्यार्थी पढ़ने आते थे,

उनमें यह तमन्ना बहुत जल्द और बहुत आसानी से पैदा हो जाती थी कि वे अपने वर्ग से कटकर इस बँगला-कारवाले दल मे जा मिलें ।

इलाहाबाद के पढ़े-लिखे लोगो ने न केवल प्रदेश के, वरन् सारे देश के, राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन पर गहरा असर डाला । कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर पूरनचन्द जोशी, रमेश सिन्हा, ओमप्रकाश संगल आदि एक खास किस्म के बुद्धिजीवी आये जो इलाहाबाद की देन थे। इनकी विशेषता यह थी कि वे कहीं-न-कहीं जवाहरलाल नेहरू के गुरुत्वाकर्षण से बँधे थे । कुछ सोशलिस्ट बुद्धिजीवी इस गुरुत्वाकर्षण से जब अलग हुए तब उनकी दशा उन ज़िद्दी बच्चों की-सी हो गई जो अपनी हर कमज़ोरी के लिए बाप को दोषी ठहराते हैं ।

इलाहाबाद में तीन नदियाँ मिलती हैं—गंगा, जमुना और सरस्वती । इनमें सरस्वती अदृश्य है । प्रयाग हिंदुओ के लिए तीर्थराज है; स्वभावतः गंगा के आस-पास की बस्तियों मे काफी बड़ी आबादी पंडों की है । कुंभ के मेले-जैसे विशेष अवसर पर सारे भारत का हिन्दू धर्म सिमटकर तीर्थराज पहुँच जाता है । अंग्रेज़ी राज के संचालन मे जो महत्व हाईकोर्ट के वकीलों और यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरो को प्राप्त था, वही महत्व हिन्दू धर्म के संचालन में इलाहाबाद के पण्डों को प्राप्त है । जैसे सिविलियन संसार का गहरा असर इलाहाबाद के विशिष्ट बुद्धिजीवियों पर था, वैसे ही इलाहाबाद के पंडो का गहरा असर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पर था । सम्मेलन अब हिन्दी साहित्यकारों का सम्मेलन न रह गया था; उसमें पंडागीरी होती थी और इस कर्म-कौशल मे एक खास मुहल्ले—दारागंज—के पंडे प्रमुख थे । फैजाबाद में निराला ने ठीक कहा था कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का एक ही वोट गिना जाना चाहिए ।

पुरुषोत्तमदास टंडन ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए बड़ा उद्योग किया था । दक्षिण भारत की हिन्दी प्रचार सभाएँ साहित्य सम्मेलन से स्वतन्त्र रहकर कार्य कर रही थी, दक्षिण भारत में हिन्दी का जैसा और जितना भी प्रचार हुआ, उसका श्रेय महात्मा गांधी और दक्षिण भारत की हिन्दी प्रचार सभाओ को था। साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति मे टंडनजी को इलाहाबाद के साहित्यिक पंडे घेर लेते थे, जो चाहते थे, उनसे कराते थे, जब पंडो के दो दल आपस मे लड़ते थे, तब टंडनजी की स्थिति बडी दयनीय हो जाती थी । एक विचित्र स्वतःचालित ढंग से उनके कंधे ऊपर-नीचे होने लगते, वह लोगों को शान्त करने का प्रयत्न करते परन्तु उस तुमुल कोलाहल-कलह मे उनका स्वर किसी को सुनाई न देता ।

लोग आदर से कहते थे—टंडनजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण हैं ।

पंडागीरी सम्मेलन के बाहर भी थी । जितनी साहित्यिक संस्थाएँ अकेले दारागंज में थी, उतनी शेष उत्तरप्रदेश में न रही होंगी और इन संस्थाओ के पंडे अलग-अलग थे । कई संस्थाएँ निराला नाम से भी संबद्ध थीं ।

छायावाद के चार प्रमुख कवियों—पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा—में तीन इलाहाबाद में रहते थे । इनमें महादेवी वर्मा से—साहित्यकार संसद् छोड़ने पर भी—निराला का संपर्क बना हुआ था, पंत असंपृक्त थे । वैसे रामकुमार वर्मा भी किसी

समय छायावादी कवि रूप मे प्रसिद्ध हुए थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने तीन कवि हिन्दी को दिये—नरेन्द्र, बच्चन और शमशेर। नरेन्द्र ने पन्त की शैली का अनुसरण करते हुए पहले छायावादी कविताएँ लिखीं, फिर 'रूपाभ' में वह पन्त के प्रमुख सहयोगी हुए, भारत के स्वाधीन होने पर पन्त के साथ ही वह प्रगतिशीलता के मैदान से नव्य रहस्यवाद की ओर लौट आये। बच्चन ने अपने हालावाद से छायावाद के विरोध में क्रान्ति की, फिर यूनिवर्सिटी में अध्यापन करने के बाद नेहरू के विदेश विभाग मे काम करने लगे। 'रूपाभ' में नरेन्द्र के सहयोगी थे शमशेर, मौलिक कवि, समर्थ गद्य लेखक, सिविलियन-संसार में न खप सकनेवाले किसी 'आउटसाइडर' की तरह जीवन बिताते हुए। इलाहाबाद में रघुपति सहाय फिराक थे, यूनिवर्सिटी मे अंग्रेज़ी के अध्यापक, अपनी 'विट' और शायरी के लिए मशहूर, हिन्दी के उस गढ़ में अकेले हिन्दीवालो को गाली देते थे और किसी में ताव न थी कि उनका सामना करे।

इलाहाबाद से सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने 'प्रतीक' निकाला जिसमें सुमित्रानन्दन पन्त से लेकर नेमिचन्द्र जैन तक का सहयोग उन्हे मिला। इस पत्र से ही दरअसल हिन्दी कविता में प्रयोगवाद की शुरूआत हुई, 'तारसप्तक' की कविताओं का रंग दूसरा था। 'आलोचना' से शिवदानसिंह को जब अलग किया गया, तब उसका संपादन धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही आदि के हाथ मे आया और इनके संपादन-काल में 'आलोचना' ने जमकर साम्यवाद और प्रगतिवाद का विरोध किया। इलाहाबाद से जगदीश गुप्त ने 'नई कविता' निकाली। आरम्भ मे प्रयोगवाद के सहारे, फिर उससे कटकर नई कविता की यह धारा सारे भारत में इलाहाबाद से प्रवाहित हुई।

भारत के स्वाधीन होने पर अनेक बड़े पूंजीपति साहित्य का कारोबार सँभाल रहे थे। वे साप्ताहिक और मासिक पत्र निकाल रहे थे, नये प्रकाशन-केन्द्र खोल रहे थे। इन पत्र-पत्रिकाओं और प्रकाशन-केन्द्रों से जितने लेखक संबद्ध हुए, उनमे आधे इलाहाबाद के थे और प्रमुख पदों पर थे।

नई कविता के सिद्धान्तकारों ने निराला से नई कविता का सम्बन्ध अभी न जोड़ा था। वे छायावाद और प्रगतिवाद दोनों का एक साथ विरोध कर रहे थे। उन्हे पन्त का नव्य रहस्यवाद पसन्द था, 'अर्चना' के गीत दुर्बोध और अत्यन्त व्यक्तिवादी लगते थे। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'आलोचना' (अप्रैल '५३) मे 'परिमल', 'अनामिका' और 'तुलसीदास' के निराला को आस्थावादी पाया किन्तु 'बेला', 'नये पत्ते' और 'कुकुरमुत्ता' में उन्हे "असाधारण संस्कारच्युत अतिवादिता का प्रत्यक्ष विस्फोट-सा" दिखाई दिया। ('अपरा' में 'कुकुरमुत्ता' को शामिल न करने के लिए महादेवी वर्मा यही तर्क दे सकती थीं।) लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार जो प्रवृत्ति 'नये पत्ते' और 'बेला' में बाह्यरूप में मिलती है, वही " 'अर्चना' में अन्तर्मुखी रूप धारण कर लेती है और यह अन्तर्मुखी भावना घोर व्यक्तिवादी सीमाओं में फँसकर एजरा पाउंड की कृतियों की भाँति व्यक्तिगत बिंबों और भावनाओ में बँधकर गूढ़ और अस्पष्ट बन जाती है।"

निराला पर अब इस तरह की आलोचनाओं का असर न होता था किन्तु लोग

उनके बारे में क्या कहते और सोचते हैं, इसके प्रति वह सजग अवश्य रहते थे। इलाहाबाद के हिन्दी वातावरण से निराला दूर थे—पन्त के छायावाद से, प्रकाशचन्द्र गुप्त के प्रगतिवाद से, अज्ञेय के प्रयोगवाद से, लक्ष्मीकान्त वर्मा की नई कविता से, फिराक की शायरी से। फिराक निराला से ज्यादा आत्ममुग्ध कवि थे, लेखो में जितने शेर दूसरो के उद्धृत करते थे, उतने ही अपने। कुछ दिन तक निराला ने उर्दू शायरी घोखी लेकिन यह शायरी फ़िराक की न थी। 'अर्चना' के गीत लिखने तक वह दौर खत्म हो चुका था। इसलिए अब वह फिराक से भी दूर थे।

निराला ने इलाहाबाद की किसी सड़क के किनारे एक स्त्री को पत्थर तोड़ते देखा, उस पर उन्होंने कविता लिखी। इलाहाबाद मे अंग्रेजो ने विद्यार्थियो पर गोली चलाई, निराला ने उन पर कविता लिखी, रणजीत पंडित की शव-यात्रा मे उन्होंने मजदूरों को देखा, कविता में उनका उल्लेख किया,

> निकले हैं मजदूर
> काम से छुटे किले के;
> सुनकर नेहरूजी के बहनोई की अरथी,
> हाथ मले, आह की
> और टकटकी बाँध दी।

गंगा का पुल, झाऊ के पेड़, आसमान में उड़ते हुए वायुयान, महँगाई और गरीबी—निराला ने इलाहाबाद मे यह सब देखा और उसे अपनी कविता में लिखा लेकिन ये सब सिविलियन-संसार से दूर की बाते थी और ज्यादातर साहित्यकार—पंडे और प्रोफेसर दोनो—इन बातों की चर्चा साहित्य में अशोभन मानते थे। 'देवी' मे जैसे लखनऊ है, 'चतुरी चमार' में जैसे बैसवाडा है, वैसे 'अर्चना' और उसके बाद की रचनाओ मे इलाहाबाद नही है।

पुराने मित्रो से निराला का मिलना-जुलना कम हो गया। राखी का त्योहार आता और निकल जाता और वह महादेवी वर्मा के यहाँ न जा पाते। गंगाप्रसाद पाण्डेय जब-तब दारागंज जाते थे किन्तु वहाँ निराला और उनके साथियो का खान-पान उन्हे पसन्द न था। पाण्डेयजी का विचार था कि उन लोगों को भी उनका आना अच्छा न लगता था। क्रमशः वह 'तटस्थ' होते गये।

निराला के पुराने मित्रों मे वाचस्पति पाठक इलाहाबाद में थे किन्तु 'स्वभाव-वैपरीत्य' के कारण वह पुराना मैत्रीभाव और सान्निध्य समाप्त हो चुका था।

बाहर मे जो लेखक निराला से मिलने आते थे, उनसे इलाहाबाद के साहित्य-कार अक्सर पूछते थे—निरालाजी का स्वास्थ्य कैसा है?

निराला अब घूमते हुए अधिकाधिक अपने से बाते करते रहते।

सन् '५४ की गर्मियो मे निराला से मिलकर लौटने के बाद मैंने 'जनयुग' मे लिखा:

"निरालाजी श्री कमलाशंकर सिंह के यहाँ जिस कमरे मे रहते है, उसमे तीन खाटें मुश्किल मे पड़ सकती है। कमरे में एक छोटा तख्त पड़ा है, उसी पर वे प्रायः लेटे रहते है। कमरे के बाहर ढाई हाथ चौडा बरामदा है जिसमे फर्श पर ही बिस्तर

बिछाकर वह रात में सोते हैं। गर्मियों में आसपास के पाखाने से दुर्गन्ध उड़ा करती है। सामने की तंग गली से इक्का नहीं गुजर सकता। इसी मे निरालाजी इधर-से-उधर घूमते रहते हैं। मकान के सामने एक तिमंजिला इमारत है जिससे यह गली सजीव अन्धकूप मालूम होती है। निरालाजी के कमरे में बिजली के पंखे-जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। दो ताड़ के पंखे जरूर थे जिन्हें कभी वह झलते थे, कभी कोई दूसरा।···

"अब पहले से शरीर की दशा अच्छी है। काफी चल-फिर लेते हैं। दाहिने पैर पर दाहिने हाथ से ताल देते हुए धम्मार की एक कड़ी उन्होंने गाकर सुनाई। फिर भी उनका शरीर अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं है। साथ ही उनकी मानसिक अस्वस्थता पहले से बढ गयी है। अब वे पिछले साल की अपेक्षा अपने-आप से बहुत ज्यादा बातें करते हैं। समय-समय पर हंसना और किसी पर क्रुद्ध होना—यह क्रिया भी बढ़ गयी है। इसलिए निरालाजी अच्छे हो रहे हैं या अच्छे हो गये हैं, इस तरह के सन्तोष का कोई कारण नहीं है।"

कमलाशंकर सिंह ने एक वक्तव्य और दिया। निराला अपने एक मित्र के यहाँ दारागंज की एक तंग गली के एक छोटे कमरे में पड़े हुए हैं। राज्य सरकार से प्रार्थना की है कि अलोपीबाग में, जहाँ शरणार्थी शिविर है, सरकार थोड़ी जमीन निराला को देने की कृपा करे। उनका रुपया जो प्रकाशकों के यहाँ पड़ा है, वह एक ट्रस्ट के अधीन कर दे। उससे उनके लिए एक सुन्दर भवन बनवाया जाय। इस भवन में निराला-सम्बन्धी साहित्यिक सामग्री एकत्र की जाय, साहित्यकारो की गोष्ठी होगी, सरस्वती की एक विशाल मूर्ति होगी······

सरकार ने इस प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया। यदि उनके रहने के लिए किसी अच्छी जगह व्यवस्था हो जाती तो अवश्य उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरता, आयु के कुछ दिन बढ़ जाते। साहित्यकार संसद् मे वह वैष्णव निषेधों तथा वहाँ के टीमटाम से असन्तुष्ट थे। पर वह किसी खुली जगह साधारण-से घर मे कमलाशंकर सिंह और उनके परिवार के साथ मजे में रह सकते थे। शरणार्थियों के बीच निराला का घर बनाने की सूझ बुरी न थी, पर वह कही से भागकर तो आये न थे; उन्हे किस कानून से जमीन मिलती?

दारागंज मे निराला का मन लगता था। पण्डे, पुजारी, साग-सब्जी, फलवाले, साहित्यकार, छात्र—निराला के सैकड़ो परिचित और मित्र थे। गली में एक वैद्यजी रहते थे। वहाँ संगीत के अलावा शराब पीने की सुविधा थी। निराला वहाँ अक्सर जाते थे। गंगातट पर राष्ट्रभाषा विद्यालय में भी उन्हें यह सुविधा थी। प्रयाग से जब-तब वह गंगाधर शास्त्री के यहाँ चले जाते थे। उनकी कई पुस्तकों पर निराला ने सम्मति दी। शास्त्रीजी 'युगाराध्य निराला' एक वृहद् ग्रन्थ लिख रहे थे, इस पर भी उन्होंने सम्मति दी। सम्मति कभी अंग्रेजी में लिखते, कभी हिन्दी में, कभी अपने नाम से, कभी दूसरे के। शास्त्रीजी की एक कविता-पुस्तक पर सम्मति देते हुए उन्होंने यूनिवर्सिटियो के निर्माण और विकास मे अपनी धनराशि द्वारा योगदान का उल्लेख किया: "हम लोगों की अर्जित धनराशि जिस पर सरकार और मक्कार सभी प्रतिष्ठित

है, उनका और वैसों का पथ सुगम करने के लिए थी और है; नही तो न हिन्दू विश्वविद्यालय है, न प्रयाग और लखनऊ आदि की युनिवर्सिटियाँ। वे दिन भूले न होंगे। आज भी हम विज्ञानशास्त्र लिये विरोधियो से लड़ने को बैठे है, काशी का पन्ना जिसका बड़ा प्रमाण है।"

यह सम्मति उन्होने इलाहावाद मे १३-११-५७ को दी। विज्ञानशास्त्र का हवाला शिवगोपाल मिश्र के कारण। अब वह उन्हे शेक्सपियर पढ़ाकर ही संतुष्ट न थे; महान् वैज्ञानिक के रूप में भी विरोधियो से लड़ रहे थे।

तुलसीदास पर गगाधर शास्त्री की पुस्तक को सराहते हुए उन्होंने शास्त्रीजी को पोस्ट ग्रेजुएट क्लासेज़ का अध्यापक कहा, स्वयं लन्दन से अंग्रेज़ी मे डी० लिट्० हुए, नाम रखा सैयद हुसेन। निराला के हाथ की लिखी वह सम्मति इस प्रकार है :

I read a criticism on the work of the great saint poet Tulasidas, by pandit Gangadhar Mishra of Benares, after print. The book gives evidence of deep study and knowledge of the learned scholar writer. I heard him lecturing in the post graduation classes for hours in continuation and admit the book for graduate classes, to succeed in higher studies of Hindi literature The authorities and admirers from all centres must benefit the students by sanctioning the work as a compulsory course, and uplift the cause of Hindi.

Syed Hussain
(D. Litt. Lond. English)
9. 7. 59

सैयद हुसेन नाम के साथ एक महिला से उनके प्रेम-सम्बन्ध की कथा जुडी हुई थी। उन महिला के प्रति निराला के मन में कही 'प्लैटोनिक' आकर्षण था; इसीलिए इस समय उन्होंने उनके प्रेमीवाला व्यक्तित्व ओढ़ लिया था। जब उन्होंने सम्मति लिखी तब वह साठ पार कर गये थे, पर उनका मन संसार की छवि पर अब भी मुग्ध था।

इन्ही दिनो वह पूर्ण तटस्थता से अपने को देख रहे थे, कविता लिख रहे थे—

चढ़ी थी जो आँख मेरी
बज रही थी जहाँ भेरी
वहाँ सिकुड़न पड़ चुकी है,
जीर्ण है वह आज तीली।
आग सारी फुक चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
स्मरण में है आज जीवन
मृत्यु की है रेख नीली।

यह कविता उन्होने सन्' ५८ की शरद् मे लिखी थी। वह जब चाहते थे, मन

को साध कर उसे अपने कल्पना-चित्रों से ऊपर उठा ले जाते। तव वह कवि-दृष्टि से यथार्थ को अच्छी तरह देखते थे, वह यथार्थ जो वाहर ही नहीं, भीतर भी है, जिसमें जीवन ही नहीं, मृत्यु भी है। किन्तु इन अन्तिम वर्पों के गीतों में सर्वत्र उनके भाव और भापा व्यवस्थित नही हे।

निराला से मिलने रूसी विद्वान् प्योत्र अलेक्सियेविच वरान्निकोव आये। सोवियत संघ में आधुनिक प्राच्यविद्या के प्रतिष्ठाता उनके पिता ने दूसरे महायुद्ध की कठिन परिस्थितियों मे रामचरितमानस का रूसी भापा मे अनुवाद किया था। प्योत्र अलेक्सियेविच वहुत अच्छी हिन्दी वोलते हैं, सहृदय और मिलनसार हैं। वह पहले सोवियत नागरिक थे जो निराला से मिलने आये। यह वात अगस्त '५६ की है। साथ में उनकी पत्नी भी थी। सहृदय, विद्वान्, भारत-प्रेमी वरान्निकोव से मिलकर निराला वहुत प्रसन्न हुए। उन्हे स्नेह मे अपनी चारपाई पर विठाया, उनसे रूसी लोकगीत गाने को कहा। वरान्निकोव ने पहली वार श्रोताओ के सामने गीत गाया। रूसी मे उनकी रचनाओ के अनुवाद की वात चली तो निराला ने इच्छा प्रगट की कि उनके साथ उनके समकालीन लेखकों की रचनाएँ भी अनुवादित हों। रामचरितमानस के रूसी अनुवाद की वात सुनकर निराला ने कहा कि उनके शिष्य डा० शिवगोपाल मिश्र ने रूसी भापा मे डिप्लोमा प्राप्त किया है; उनकी सहायता से वे रूसी अनुवाद पढेगे। निराला ने वरान्निकोव दम्पति के साथ चित्र खिंचाया। उस वर्ष पहली वार रूस मे निराला की कविताओं का अनुवाद प्रकाशित हुआ।

पृथ्वीराज कपूर शहर में नाटक कम्पनी लेकर आये थे। वह निराला के भक्तों को मुफ्त नाटक दिखा रहे थे; निराला ने उनकी पूरी कलाकारमण्डली के साथ उन्हें पार्टी दी। सामने की कोठी मे प्रवन्ध हुआ। पार्टी में कितना खर्च हुआ, इस पर वाद में कुछ विवाद भी हुआ।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, शिवपूजन सहाय, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर, गिरजाकुमार माथुर—हिन्दी के नये-पुराने लेखकों में कोई-न-कोई निराला से आये-दिन मिलने आता ही रहता था। अव घर में विजली लग गयी थी; आगन्तुकों को गर्मी में वैसा कष्ट भी न होता था।

शिक्षा-प्रसार विभाग के अधिकारी निराला की एक छोटी फिल्म वना रहे थे। इस सम्वन्ध में अमृतलाल नागर के साथ मैं इलाहावाद गया। निराला रेडियो या किसी भी सरकारी संस्था के लिए अपना कविता-पाठ या गायन रेकार्ड कराने को तैयार न थे। नागरजी को और मुझे विश्वास था कि हम लोगों के आग्रह से निराला कविता-पाठ करेंगे, गीत भी गायेंगे। हम लोगों ने अधिकारियों से रेकार्डिंग का सामान साथ लेकर चलने को कहा। निराला वहुत प्रसन्न थे। पहले से स्वस्थ नज़र आये। एक वार उन्होंने रेकार्डिंग करनेवालों और उनके सामान पर नजर डाली और पूछा—यह सव क्या है? मैंने कुछ वहाना किया, पर वह विगड़े नहीं। उनका कविता-पाठ और गायन सुनकर मुझे लगा कि सन् '३४ का निराला फिर लौट आया है।

मैंने प्रसन्न-मन मे केदारनाथ अग्रवाल को पत्र लिखा : "कवि खाट पर वैठे

थे। बाल काफ़ी सफेद हो गये है, लेकिन कितने घने हैं अब भी। और दाढी भी कुछ respectable हो गयी है, पहले की एकदम हुमायूं-जैसी नही है। आंखो की ज्योति भी अधिक स्पष्ट है। अब बुदबुदाते नही है; न उँगलियाँ चलाया करते हैं; न उठकर घूमने लगते हैं। अपने श्वेत वर्ण, अंग्रेजी ज्ञान, सम्पत्ति आदि की फैन्टेसी रचने के बाद बोले कि लम्बे भाषण से तुम्हें परेशान किया! महा शुभ चिन्ह! विक्षिप्त होने की पहली मंजिल मे यही लक्षण थे। हमारा प्यारा कवि नरक-यात्रा करके फिर स्वर्ग की ओर उठ रहा है। कितनी बार Lear पढते-पढाते हुए मैंने उन्हे नहीं याद किया! लियर ने विक्षिप्त अवस्था के बाद जब पहली बार ज्ञान-नयन खोले और सामने angel जैसी अपनी निर्दोष कन्या Cordelia को देखा तो कहा:

> You do me wrong to take me out o' the grave.
> Thou art a soul in bliss; but I am bound
> Upon a wheel of fire, that mine own tears
> Do scald like molten lead.

उस अग्निचक्र से निरालाजी भी बँधे रह चुके है। अब मानो grave मे एक पैर रहते हुए भी वे दुनिया को झाँककर देख रहे हैं; उसे फिर पहचान रहे है।

"हाँ, तो उन्होने अमृत को और मुझे खाट पर बिठाया। पैरो पर रज़ाई डालने को कहा। जलेबियाँ आयी। अमृत ने चारपाई पर ही खाना शुरू किया। निरालाजी ने कई बार कहा—तुम टपका दोगे लेकिन अमृत आश्वासन देते रहे कि रज़ाई खराब न होगी। और निरालाजी ने पैरो पर से रज़ाई खीचकर एक ओर रख दी। फिर मिल्टन पढने को कहा। कुछ समय बाद उन्हे खयाल आया कि उसमे फ़ारसी की पहली किताब रखी थी। खोज शुरू हुई। पुस्तक (Milton) में तो थी ही नही। खाट छोड़कर उठे। रज़ाई उठाकर देखी। फिर इधर-उधर की बात हुई। लेकिन ध्यान उसी किताब पर। जेबे देखने को कहा। हम लोगों ने अपनी जेबो की खुद तलाशी ली। कमलाशंकर ने कहा कि दूसरी मँगा देंगे। फिर इधर-उधर की बातें हुई। और बीच-बीच मे तब भी उसी किताब का जिक्र। किसी बूढ़े बाबा को जैसे अपने नातियो से प्यार होता है, वैसे ही महाकवि को अपनी पुस्तको का मोह है। उस अलमारी मे—जिसमे किवाडे नही है—उनकी सारी सम्पदा है। वैसे सामने की कोठी उन्होने अपने भक्तो के लिए अपनी रायल्टी से बनवा दी है।

"किस तन्मयता से उन्होने 'सिरि रामचन्द्र कृपालु भजु मन' हारमोनियम लेकर गाया। एक बार '३४-३६ का निराला फिर उदय हुआ। भारति जय विजय करे! टूटे सकल बन्ध! नयनो के डोरे लाल! बँगला के कई गीत, विवेकानन्द की एक बंगला कविता! लगभग दो-ढाई घण्टे तक गाते रहे।

"शाम को शिक्षाप्रसार विभाग के Studio आये। लेकिन वहाँ उन्होंने किसी को इंच-भर भी lift न दिया। काली टोपी, काला बन्द कालर का कोट, धोती, मोज़े, जूते—खासे भलेमानुस लगते थे। काश! ये इलाहाबादी—उन्हे उस गली से निकाल-कर किसी बँगले मे बसा पाते। दो महीने में निराला दूसरा हो जाता।"[1]

निराला का मन महिपादल की शस्यश्यामला भूमि, वहाँ के जलाशय, हरी दूब के पार्क, लड़कपन में पढ़े 'चौरपञ्चाशिका' के श्लोक याद करता था। जीवन के कुछ अत्यन्त मनोरम क्षण उन्होंने मनोहरादेवी के साथ वहाँ बिताये थे। 'रामचन्द्र कृपालु भजु मन' के साथ जीवन में असंख्य बार 'अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीम्' का पाठ किया था; कल्पना-लोक में न जाने कितनी बार उनके आसक्त मन ने 'सुप्तोत्थिता मदनविह्वलितालसाङ्गी' अपनी विद्या की छवि निहारी थी। उन्होंने कहानी लिखी— 'विद्या'।

विद्यासुन्दर की कहानी से नायिका का नाम ज्यों-का-त्यों लेकर उसे विद्या बनाया, पर नायक का नाम रखा श्यामनाथ। नाम है श्याम, लेकिन रंग है पीला। कुछ अर्धनारीश्वर-सा है। अपने रंग के लिए गौराङ्गी स्त्रियों का हवाला देता है: श्यामा तप्तकाञ्चनगौराङ्गी; और—तन्वी श्यामा शिखरिदशना। जब श्यामा गौराङ्गी है तब श्यामनाथ गौराङ्ग क्यों न हो?

श्याम रामकृष्ण परमहंस का अनुयायी न होकर ब्रह्मवादी अर्थात् ब्राह्मसमाजी है, "कलकत्ते के ठाकुर-परिवार से उसका रिश्ता पहुँचता था।" निराला ने विद्या और श्याम को अपना व्यक्तित्व आधा-आधा बाँट दिया। विद्या अंग्रेजी पढ़ती है, श्याम संस्कृत। विद्या कहती है:

I offered Sanskrit upto B. A. standard, but because of love, may be other unknown reason, I pick up English for M. A. and Doctorate. Perhaps I cannot satisfy you in Sanskrit conversation if you equally do not lack English to manage.

एक ही व्यक्तित्व के दो भाग होने से श्याम और विद्या दोनों एक ही भाषा का अध्ययन नहीं कर सकते। एक को संस्कृत, दूसरे को अंग्रेजी पढ़ना ही चाहिए। विद्या कहती है, संस्कृत मधुर भाषा है; सम्भव है, श्याम उस पर अधिकार कर ले। पर श्याम के सामने एक बड़ी बाधा हैं कालिदास। उनके रहते कौन संस्कृत पर अधिकार जमा सकता है? इसलिए सबसे अच्छी हिन्दी!

श्याम का रिश्ता कलकत्ते के ठाकुर-परिवार से है, लेकिन है वह हिन्दी-भाषी। विद्या अंग्रेजी बोलती है, श्याम संस्कृत; बँगला दोनों में कोई नहीं बोलता। विद्या हिन्दी जानती है। यही नहीं, वह तुलसीदास को संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि मानती है। यदि दोनों का विवाह हुआ तो वे न संस्कृत बोलेंगे, न अंग्रेजी। दोनों के प्रेम की भाषा होगी हिन्दी!

विद्या कहती है:

But what may be the language between if I like to stay perpetually with you in matrimonial knot? Do you admit that Tulsidas in Hindi is in the van of world poets and his Ramcharitmanasa is the best product?

श्याम ने कहा: वयं संस्कृतोपचारिणो हिन्दी समभावेन वदामः। यदि न

चाध्यते, उच्यते तदा।

इसके बाद दोनों का वार्तालाप हिन्दी मे शुरू हुआ। कुछ देर हिन्दी, उसके बाद फिर संस्कृत और अंग्रेज़ी। विद्या विलायत जायगी; अंग्रेज़ी की शिक्षा पूरी करने के बाद लैटिन या ग्रीक पढ़ेगी। अच्छा है, श्याम अंग्रेज़ी साहित्य की गंगा में नहाने के बदले—without bathing into the Ganges of English literature—अन्य शाखाओ मे अपने बड़ो पर श्रद्धा रखे।

दूब-जमे पार्क, पानी से भरा तालाब, झुंड-की-झुंड मछलियाँ, सामने गुलाब, सीजन फ्लावर्ज़ के बेड्ज़, पक्का रास्ता, गेट से आते-जाते हाथी, निकास की ड्योढ़ी, पक्का घाट, सडक के किनारे नारियल-आम वगैरह के पेड, मन्दिर मे घडी-घण्टे की आवाज, फिर शहनाई का मधुर स्वर, चित्रशाला से वीणा की झनकार, एक ड्योढ़ी से दूसरी ड्योढी के सन्तरी को फ़र्माइश की चीजे भेजने के लिए कहता हुआ सन्तरी, ड्योढी के पास मालखाना, गारद के बरामदे मे लँगोट बाँधे कसरत करते हुए पाँच-सात सिपाही। सारा परिवेश महिषादल का। और श्याम के पास मोटर भी है। "श्याम को लेकर मोटर धीरे-धीरे विद्या की नज़र से ओझल हो गयी।" निराला का मन युवाकालीन स्मृतियो से खेल रहा था। स्मृतियो पर अपने दिवा-स्वप्नो का सुनहला रंग पोत रहा था।

सन् '६० की वसन्तपंचमी आ रही थी। इलाहाबाद के निराला-प्रेमी उनके जन्म-दिवस समारोह की तैयारी कर रहे थे। गंगाधर शास्त्री इधर कई बार निराला को काशी ले जाने का विफल प्रयत्न कर चुके थे। इस बार छात्रों से चन्दा करके और कुछ रुपये और जोडकर उन्होंने टैक्सी का प्रबन्ध किया, रामभंडार से मिठाई ली, अपने युगाराध्य निराला की पाण्डुलिपि उठाई और निराला को लेने चले। दारागंज पहुँचकर गले मे माला पहनाई, मिठाई भेंट की और निवेदन किया—इस वर्ष का वसन्तपंचमी समारोह काशी नगरी मे होना चाहिए।

अपने ग्रंथ की ओर संकेत करते हुए शास्त्रीजी ने कहा—१९४७ की स्वर्ण-जयन्ती के बाद से काशी मे अविरत १३ वर्षो तक मेरी साधना चलती रही, उसी श्रम का सुफल यह ग्रन्थ है।

निराला काशी आये। राष्ट्रभाषा विद्यालय मे सभा हुई। विद्वानो ने प्रशंसा मे भाषण किये। निराला ने स्वस्थ मन से उत्तर देते हुए कहा—साहित्य की आराधना मे मेरे जीवन का अधिकाश समाप्त हुआ है। मैंने हिन्दी साहित्य की जो कुछ सेवा की है, उसका उचित समादर नही हुआ। लोग मुझसे साहित्य की श्रीवृद्धि करने की आशा करते हैं, लेकिन मुझसे अब अधिक आशा करना व्यर्थ है। वैसे मेरा यह प्रयत्न रहेगा कि मै माता सरस्वती के चरणो में दो-चार पुष्प और चढा दूँ। मैं जो कुछ हूँ, माता सरस्वती का पुत्र हूँ।[१]

एक जन्मदिवस-समारोह दिल्ली मे मनाया गया। संयोजक दिल्ली-साहित्य-सम्मेलन। मुख्य वक्ता के रूप में मुझे बुलाया। मैंने शर्त रखी कि बनारसीदास चतुर्वेदी अध्यक्षता करेंगे, तभी मैं आऊँगा। चतुर्वेदीजी दिल्ली में ही थे। तैयार हो गये।

अपने भापण के एक अंश से चतुर्वेदीजी को अध्यक्ष वनाने का उद्देश्य मैंने पूरा किया। साहित्य की जानकारी उन्हें नही है, यह मानते हुए भी उन्होने निराला का विरोध करके हिन्दी की प्रगति में वाधा दी—इस तरह की वातें कहकर मैंने उनकी आलोचना की। चतुर्वेदीजी ने धैर्य से सव सुना, सव सहा, फिर भरी सभा मे निराला का साहित्यिक महत्व स्वीकार किया, अपना अपराध स्वीकार किया।

इलाहावाद रेडियो-स्टेशन में हास्य-गोष्ठी थी। इसमें भाग लेने भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर गये। लीडर प्रस मे उनकी मुलाकात रामकृष्ण त्रिपाठी से हुई। वह अपनी पुत्री छाया के विवाह की तैयारी कर रहे थे। निराला रायल्टी की रसीद पर दस्तखत न करते थे। अमृतलाल नागर ने इस सिलसिले मे मुझे यह सूचना और दी—"निरालाजी लीडर प्रेस से अपनी रायल्टी का पैसा उठाने से सदा इन्कार करते हैं। अनेक वर्ष पूर्व तीन आदमियों की जमानत पर पाठकजी ने रामकृष्ण को ढाई हजार रुपया दिलवाया था, निरालाजी ने तव रसीद पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था।"[3]

कभी-कभी निराला किसी भी तरह के कागज पर दस्तखत करने, अपना नाम लिखने अथवा हाथ मे कलम लेने से भी इन्कार करते थे। मैंने अपनी पुस्तक 'भापा और समाज' उन्हे समर्पित की; प्रकाशक से एक प्रति उनके पास भेजने को कहा। जव पार्सल निराला के पास पहुँची तव उन्होने रसीद पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया; पार्सल वापस प्रकाशक के पास पहुँच गयी।

अस्तु, तै हुआ कि भगवतीचरण वर्मा, पाठकजी और नागरजी निराला के यहाँ जायेंगे। पन्तजी के यहाँ भोजन करने के वाद वर्माजी ने कहा—"भइ, हम नही जायेंगे; हम चार वजे की गाड़ी से लखनऊ जायेंगे।" इस पर पाठकजी नाराज हुए। वर्माजी ने कहा—"मैं कहता हूँ कि निरालाजी जव इस वात पर सरासर पागलपना वरत रहे हैं—और पागल तो वे हैं ही—तव उनकें पास जाने से लाभ ही क्या? मैं तो कहता हूँ कि लाइये कागज, मैं ड्राफ्ट वनाये देता हूँ, निराला का पैसा उनके पागलपन की हालत मे उनके एकमात्र उत्तराधिकारी पुत्र को दे दिया जाय। उस पर पंतजी, मैं और नागरजी दस्तखत कर देंगे, फिर आप रामकृष्ण को पैसा दे दीजिएगा।" पंतजी ने समझाया: "खैर, वह तो अन्तिम अस्त्र है मगर मैं समझता हूँ कि आप लोगों को निरालाजी के पास एक वार अवश्य जाना चाहिए। वे किसी कारणवश रामकृष्ण की वात नही मानते होंगे मगर आप लोगों की वात अवश्य मान जायेंगे। वे तो औढरदानी हैं; औरों की सहायता करते है, फिर यह तो पौत्री के विवाह का प्रश्न है।" भगवतीचरण वर्मा ने अल्टीमेटम दिया—"अव तो हम चार वजे की ट्रेन से जायेंगे।" नागरजी ने कहा—"तव मैं आपके साथ न लौट सकूँगा, रात को आऊँगा।" इस पर वर्माजी निराला के यहाँ चलने को राजी हुए।

ढाई वजे दोपहर को ये लोग दारागंज पहुंचे। निराला सो रहे थे। अमृतलाल नागर ने उमाशंकरसिंह को अलग ले जाकर पूछा—"गुरु कैसी मौज में हैं?" उमा-शंकरसिंह ने मुँह का भाव पढकर जवाव दिया, "तुम्हार काम न वनी। अवकी जब

से वनारस से आये है वहुत चिड़चिडाते है। ऊ सव लोग हुआँ पैसा-वैसा दिहिन—रोज सराव कलिया का सत्कार-ओत्कार पाए है न निरालाजी। ओही से दिमाग इस वखत चढा भया है।"

निराला जगे। नागरजी ने जाकर दर्शन किये। रोग-शोक से दूर एक स्वस्थ निराला की छाप उनके मन पर पडी। उन्होंने लिखा—"निरालाजी का स्वास्थ्य देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। देह खूब भरी हुई है। दाढ़ी और सिर के वाल कुछ छँटे हुए थे और अच्छे लग रहे थे।"

भगवतीचरण वर्मा ने रसीद पर हस्ताक्षर करने की वात शुरू की। निराला ने कहा—कोई और वात करो। अमृतलाल नागर ने घुमा-फिराकर उन्हे मुख्य विषय पर लाना चाहा। इस पर निराला ने कहा—"क्वाइट—क्यू, यू, आई, ई, टी—अण्डरस्टैण्ड।" नागरजी चुप हो गये। उमाशंकरसिंह ने जोर लगाया। इस पर निराला वहुत नाराज हुए और वैसवाडी मे देर तक वकते रहे।

अन्त मे एक पंचनामा वना जिसमे निराला को मानसिक रोगी और रामकृष्ण को उनका एकमात्र वारिस वताया गया; निराला की पौत्री के विवाह-कार्य के लिए रामकृष्ण को रुपया देने की सिफारिश की गई। पंचनामे पर सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर और गंगाप्रसाद पाण्डेय के हस्ताक्षर हुए।

गर्मियो के वाद सुनने मे आया कि निराला का स्वास्थ्य ठीक नही है और उनके वदन पर सूजन है। कमलाशंकर सिंह के अनुसार अगस्त सन् '६० में उनकी दशा विगड़ी। कुछ दिन तक वह कोठरी के दरवाज़े भेडकर नंगे पड़े रहते थे। "निरालाजी शोथ और जलोदर रोग से ग्रस्त हो गए थे और उनके सारे शरीर मे सूजन आ गई थी। इस रोग का मुख्य कारण यकृत-विकार तथा हृदय के पास रक्तसंचार मे अवरोध का होना था। उनका उदर और यकृत वहुत विकृत हो गये थे और खाँसी वढ़ गई थी। श्वास लेने में उन्हे कष्ट हो रहा था जिससे वह थोडी देर तक भी आराम से न सो पाते थे। वह हार्निया के भी पुराने मरीज थे। कैप्टन वी० वी० दास, डा० जी० घोप और डा० व्रजविहारीलाल उनका इलाज कर रहे थे।"[४]

सुमित्रानन्दन पन्त उन्हे देखने आये। निराला ने प्रसन्न होकर कहा—

हम रहे न रहे,
तुम सलामत रहो हजार वरस।

सम्पूर्णानन्द, राममनोहर लोहिया, कमलापति त्रिपाठी निराला को देखने आये। राष्ट्रपति प्रयाग आये, दारागंज की ओर रुख किये विना वापस चले गए।

अगले वर्ष केदारनाथ अग्रवाल ने निराला को देखकर जो रिपोर्ट दी, उससे सभी निरालाप्रेमियो को वडी प्रसन्नता हुई।

"कवि फिर अपने रंग-रूप पर आ रहा है। मुझे स्वास्थ्य अच्छा लगा। खटका निकल गया। न सूजन है, न झाँई। चेहरे पर दीप्ति है। वोल वैसा ही गम्भीर। ठसक है आवाज में। कवि पास मे कही गए थे। वही से आते देखा। चाल वही गजराज की

हैं। गली में रहते हैं। उन्हें सामने की कोठी नही दवा सकी। अव तो ऐसा लगता है कि कदम्ब पर चढ़े वादल-राग गा रहे हैं। मैंने कविता सुनाने को कहा, पर 'ना' कर गए। वाँदा का जिक्र आया। कहा : जमना पार न जाएँगे, न गंगा पार जायँगे। तवीयत ठीक नहीं रहती।

"वहुत पहले की, कई वर्ष पूर्व की, हमसे एक वात कही। कभी किसी के लिए एक सराय मे आये थे। दाम-दुकरनी 'कलुवा' को दिये थे। छतहर के राजा का आदमी दाम देकर लिवाने आया था। इन्कार कर दिया था। अपने दामों साड़ी खरीद दी थी। इशारा गोपनीय वात की ओर था। न गये थे।

"वहुत वोलते रहे। अंग्रेजी में, हिन्दी में, जमनापारी भाषा में, अपने उन्नाव की वोली में।...वंगाली में वोले अपने डाक्टर दास से। विश्वविद्यालय में वंगाली की कक्षा की वात करने लगे। कहने लगे कि उनके रहते कौन पढ़ा सकता है।

"डाक्टर से रिव्स मे दर्द को वात कह रहे थे। 'वाउल्स वेरी वेरी क्लीन' कह रहे थे। नींद भी खूव आती है। ज्वर नही था। खाँसी थोड़ी थी।

"दस वर्ष पहले की याद साकार हो गई। तव भी वही निराला था। अव भी वही निराला है। मुझे कोई अन्तर नही लगा। पलकें सजीव हैं। आँखें जागरूक हैं। सिर के वाल चावल-चावल के वरावर हैं। दाढ़ी में लम्वे वाल नहीं है। वह सिर के वाल के वरावर हैं।

"हिन्दी का अपराजेय कवि अच्छा हो रहा है, पुनः पाताल से सूर्य की तरह उभर रहा है।

"मैं वड़ा खुश हुआ। जव तक वैठा रहा, टक-टक अपने कवि को आँखों और हृदय में देखता ही रहा। वे छोर खोजता रहा जो हमारे कवि को रुग्ण वनाते हैं।

"लेकिन अव फिर उदय हो रहा है अपने निराला का। मैंने ही क्या, मेरे साथ के दोनों मित्रों ने भी यही समझा। वलदेवप्रसाद ने तो कहा, 'वर्षो से निराला को हमने ऐसा प्रसन्न और स्वस्थ नहीं देखा। पहले पास आते डर लगता था, अव व्यक्तित्व वोल रहा है।

"मैं फिर कहता हूँ कि हमारा कवि आलोक पाकर फिर अच्छा हो रहा है। वह आलोक दे रहा है, छाया नही फेंक रहा है। यही शुभ लक्षण है उनकी अच्छी तवीयत का। परन्तु जव मैं यह लिख रहा हूँ, तव मुझे डर लग रहा है कि कही मेरी राय को पढ़कर सरकार उसकी हिफाजत करना न छोड़ दे। और कही उसे फिर उपेक्षा न मिलने लगे। परन्तु विश्वास है कि वह निराला फिर चलेगा, हँसेगा, गाएगा, और नये गान प्रस्तुत करेगा।"'

निराला मृत्यु से लड़ रहे थे। वह जानते थे, जीतेगी मृत्यु, पर उनके रोग-जर्जर शरीर को परास्त करना आसान न था। अनेक वार मलेरिया से पीड़ित हफ़्तो उपवास करनेवाला वह शरीर, लाठी, ईंट, घूँसों के आघात सह चुकनेवाला, रामसहाय तिवारी का दिया हुआ वैंसवाड़े के किसान का वह मजवूत ढाँचा जल्दी टूटनेवाला न था। जव मैं उन्हे देखने गया, अमृतलाल नागर गए, केदार गये—हमेशा यही लगा कि सूर्य

पाताल से उठकर ऊपर आ रहा है। मृत्यु से जूझती हुई उनकी अदम्य प्राणशक्ति दूसरे के मन पर यही प्रभाव डालती थी कि विजय की मंजिल पास है।

निराला मृत्यु से लड़ रहे थे और ऊपर से टूट रहे थे। राम का वह दूसरा मन जो कभी थका न था, जो कभी हारा न था, मृत्यु को देख रहा था। अब इस तन-तरुवर में नये पत्र न फूटेंगे। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, वसन्त—सब ऋतुएँ बीत गईं। निराला की साहित्य-साधना समाप्त हो रही है। ध्वनि, अलकार, रस, छन्द के चमत्कार सबको विदा। चालीस वर्षों के युद्ध अब समाप्त। भीष्म शरशैय्या पर है। ढाल-सी तनी हुई सीने की खाल झूल रही है। फिर भी निराला के हृदय में कहीं आशा का दीप जलता है; यह अन्त नहीं है; एक सवेरा और होगा।

मृत्यु के निकट निराला की यह अनुभूति सममात्रिक छन्द की पंक्तियों में सहज भाव से ढल गई। कलम लेकर धीरे-धीरे लिखना शुरू किया। अक्षरों की वक्र भंगिमाएँ समाप्त हो गई थीं, सीधी-सादी लिखावट जैसी समन्वयकाल में थी, पर अधिक प्रौढ, धीर और मन्थर :

पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है,
आशा का प्रदीप जलता है हृदय कुञ्ज में,
अन्धकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिङ्‌निर्णय ध्रुव से जैसे नक्षत्र-पुंज में।
लीला का संवरण-समय फूलों का जैसे
फलों फले या झरे अफल पातों के ऊपर
सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव,
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।
स्निग्ध हो चुका है निदाघ, वर्षा भी कर्षित,
कल शारद कल्यकी, हैम लोमों आच्छादित,
शिशिरभिद्य, बौरा वसन्त आमों आमोदित;
बीत चुका है दिक्‌चुम्बित चतुरंग काव्य, गति,
यति वाला, ध्वनि, अलंकार, रस, राग बन्ध के
वाद्य छन्द के। रणित गणित छुट चुके हाथ से,
क्रीडाएँ व्रीडा में परिणत। मल्ल मल्ल की
मारें मूर्छित हुईं। निशाने चूक गये हैं
झूल चुकी है खाल—ढाल की तरह तनी थी।
पुनः सवेरा एक और फेरा है जी का।

निराला का कलाप्रेमी मन ध्वनि के आवर्तों से अब भी खेल रहा था, ऋतुओं का रूपक बाँधकर वह कविता की आन्तरिक संगति पर मुग्ध था; निराला की सजग, अथक अन्तर्दृष्टि शरीर की शिथिलता से लेकर मन की क्रीड़ाओं और उसकी व्रीडा तक को निष्पलक देख रही थी। जब मृत्युलीला समाप्त हो जायेगी, तब भी यह कविता रहेगी। मृत्यु पर यही निराला की विजय थी।

बरसात में पैर फिर सूजे। कानपुर के डा० के० एन० गौड, इलाहाबाद के सिविलसर्जन प्रतापबहादुर आदि कई लोगो ने जाँच-पड़ताल की। निराला के खून की जाँच भी हुई। शोथ कुछ घटा। शरद में सिर मुँडाया, दाढी रहने दी। उनके मांसाहार पर प्रतिबन्ध लगा था। १३ अक्तूबर को उन्होंने चूल्हे के सामने कुर्सी डालकर चार घंटे तक मांस पकाया। जो केदार ने देखा था, वही कमलाशंकर ने देखा—निराला जीत रहे हैं, मृत्यु हार रही है—"हम लोग प्रसन्न थे कि वह अब अच्छे और स्वस्थ हो रहे हैं।" लेकिन जब वह चूल्हे में लकड़ी सरकाते तब "उनका हार्निया पेट से नीचे की ओर बार-बार लटक आता था।" निराला ने दूसरों को खिलाया और खुद भी खाया। उनके लिए वह मांस-भोजन प्राण-घातक सिद्ध हुआ।

शाम को उन्हें बहुत-से दस्त आये। रात के दस बजे कमलाशकर के आने पर उन्होंने कहा—"शाम को मैंने एक सेब का टुकड़ा खा लिया था, उसमें जहर था। उसी कारण मेरे सिर में गर्मी महसूस हो रही है और गला सूख रहा है।"

इधर उनकी मानसिक अस्वस्थता का नया लक्षण दिखाई दिया। वह आसपास के लोगों पर सन्देह करते कि वे उन्हें गंदी चीजें खिलाते हैं। घी के लिए कहते कि उसमें जूते भिगोकर मुलायम किये गये हैं। वही बचा हुआ घी उन्हें खिलाया जाता है। डेरी के मक्खन पर भी शक था। दूध जमाकर दही से मक्खन निकाला गया। निराला ने कहा—गायें मैला खाती हैं, उनके घी में मैले की दुर्गन्ध आती है। घी छोड़ दिया और तेल में चीजें पकवाने लगे।[६]

उसी सिलसिले में उन्हें उस दिन सेब के टुकड़े में जहर का सन्देह हुआ।

रात को कष्ट बढा। वर्षा के कारण डाक्टर को न बुलाया जा सका। सवेरे मार्फिया का इंजेक्शन देकर जब लोग उन्हें अस्पताल ले जाने का उपक्रम कर रहे थे, तब निराला तंद्रा का दबाव बलात् हटाकर स्ट्रेचर पर उठ बैठे। उन्होंने चारपाई की पाटी पकड़ ली और अस्पताल जाने से इन्कार कर दिया। उनकी अंतिम इच्छा थी कि लोग शान्ति से उनके प्राण निकल जाने दें।

अस्पताल ले जानेवाले लोग मन मारकर बैठ गये। निराला फिर तंद्रा में हो गये। शाम को जब डाक्टर ने देखा तो उसने कहा, पंडितजी की हालत अच्छी लग रही है; इस समय वह खतरे से बाहर हैं।

रामप्रताप त्रिपाठी और ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' मिलने आये। निराला खाट पर उठकर बैठ गये। मना करने पर भी वह बैठे रहे। 'निर्मल' के हाथ में तमाखू दी। उन्होंने तमाखू बनाई, निराला को खिलाई और खुद खाई। फिर उठकर ब्रुश और मंजन से दाँत साफ़ किये। मांस पकाने की घटना का प्रसंग आने पर मुस्कराये भी; बोले—पूरे चार घंटे लगे थे कल!

उन्हें दूध का प्याला दिया गया तो उन्होंने दोनों आगन्तुकों को चाय पिलाने को कहा। दूध पीने के बाद मार्फिया के प्रभाव से उनकी आँखें झपक गईं। दोनों सज्जन चुपचाप उठकर जाने लगे तो निराला ने सजग होकर आँखें खोल दीं और फिर चाय लाने को कहा। चाय पीने के बाद ही ये लोग जा सके। उनका यह अंतिम

अतिथि-सत्कार था।

निराला को अपने मन और शरीर पर पूरा नियंत्रण रखते देखकर रामप्रताप त्रिपाठी को लगा—"महाकवि का स्वास्थ्य अभी इतना गड़बड़ नही है, जितना डाक्टरों ने घोषित कर दिया है;" और—"मैंने पिछले दो-तीन वर्षों मे उन्हे इतना प्रकृतिस्थ कभी नही देखा था।"

दूसरे दिन फिर कष्ट। "अँतड़ियो की फाँस से कड़े पड़े हार्निया पर वह बार-बार हाथ फेरते थे। नेत्रो की ज्योति भी जाती रही। किन्तु उनके मुख मे से न कराह निकल रही थी, न हाय, न चीख, न रुदन और न आँखों में आँसू।"

फिर अस्पताल ले चलने की बात हुई। डाक्टर ने कहा—"अब बेकार है। किडनी फंक्शन नही कर रही है।" ग्लूकोज़ चढाने के लिए पाँच आदमियो ने विरोध मे चिल्लाते हुए निराला को जबर्दस्ती दबाया, उनको इंजेक्शन लगाकर बेहोश किया गया। नाक मे आक्सीजन की नली लगाई गई।

सवेरे उन्हे ज़मीन पर लिटाया गया। पास कमलाशंकर सिंह, उनकी पत्नी आदि के अलावा रामकृष्ण थे। इलाहाबाद के छोटे-बड़े साहित्यकार एकत्र थे। बाहर जन-साधारण की भीड थी। वेद-मंत्र, गीता-पाठ, गोदान, भूमिदान, स्वर्ण-दान—"सब कुछ शास्त्रानुसार हुआ।" कंठ मे तुलसी-गंगाजल डाला। जयगोपाल मिश्र ने 'राम की शक्ति पूजा' पढ़ना शुरू किया—

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र मे लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर।

तेरह अक्तूबर की शाम से पन्द्रह अक्तूबर के सवेरे तक—अड़तालीस घंटे जलोदर और हार्निया से पीडित शरीर मे मृत्यु-यंत्रणा झेलने, और अनेक बार मित्रो और डाक्टरो को स्वास्थ्य के आभास से प्रसन्न करने के बाद निराला ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

"मुख पर कष्ट या विकारो की भगिमा नही थी और न कोई अंग ही टेढ़ा हुआ था। ऐसा लगता था जैसे जीवन-भर संघर्षों और कठिनाइयो से जूझनेवाले उस महान् साहसी एवं अदम्य योद्धा ने मृत्यु का स्वयं ही वरण करके चिरशांति की गोद मे अखंड निद्रा ले ली हो।"[७]

हिन्दी प्रदेश के पढे-लिखे लोग निराला की अस्वस्थता के समाचार आये दिन पढ़ा करते थे, काफ़ी दिन से पढते आ रहे थे। बीच-बीच मे निराला स्वस्थ है यह समाचार भी सुनते थे। निराला में अदम्य शक्ति है, अभी हारे नहीं है, गीत अब भी लिखते जाते हैं, अभी बहुत दिन जियेंगे—मन के पर्तों के नीचे इस तरह की आशाएँ छिपी हुई थी। इसलिए निराला की मृत्यु उनके लिए आकस्मिक थी। सारे हिन्दी संसार को एक ज़ोरदार झटका लगा। एक अव्यक्त वेदना लाखो हृदयो मे घुमड़ उठी। पढे, बेपढ़े, जिन्होने निराला को पढ़ा-गुना था या दूर से देखा-सुना था, सभी को लगा, उनका कोई आत्मीय स्वजन उनसे बिछुड़ गया है। निराला ने जितना प्यार हिन्दी-भाषियो को दिया था, सहसा उसका ज्ञान जैसे उनके न रहने पर उन्हे हुआ। वह

प्यार सौगुना बढ़कर निराला की ओर उमड़ चला। उन दिनों निराला के बारे में बातें करते हुए बहुत कम ऐसे लोग थे जो आवेश में न आ जाते हों। किसी साहित्यकार की मृत्यु ने हिन्दी-भाषियों को इतने बड़े पैमाने पर इतनी गहराई से आन्दोलित न किया था। ऐसा अपनपौ, ऐसा स्नेह जनता उसी को देती है जिसे अपनी सहज प्रज्ञा से पहचान लेती है कि इसका अपना कुछ नहीं है, वह स्वयं दूसरों के लिए है, वह सबका है।

उनकी मृत्यु के कुछ ही दिन बाद 'सरस्वती' के संपादकीय स्तंभ में श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लिखा—"हम इसे अपने पूर्व-जन्मों के किसी बहुत बड़े सुकृत का ही फल समझते हैं कि उन्होने अपनी सर्वोत्तम कृति 'तुलसीदास' हमें समर्पित की और (समर्पण में) हमें अपना 'अग्रज' घोषित किया। घोषित ही नहीं किया, अन्त तक उस सम्बन्ध का निर्वाह भी किया। इसलिए उनके सम्बन्ध में हमारे लिए तटस्थ भाव से कुछ कहना यदि असंभव नही, तो अत्यन्त कठिन तो अवश्य है। इस समय हमारी मनोदशा भी ऐसी नहीं है कि हम उनके बारे मे कुछ अधिक कह सके।"

अग्रज, अनुज, पुत्र, बहू, नाती, नातिनें—हर कोई निराला से कहीं-न-कही कोई पारवारिक सम्बन्ध मानता था। निराला से जो मिलने आया, वह उनका हो गया; उसे लगा—निराला उसके हैं। निराला के साथ अधिक रहने और बातें करने का जिन्हें सौभाग्य मिला था, उनमें हर एक समझता था, निराला सबसे ज्यादा उसी को प्यार करते हैं।

हिन्दी-भाषी जनता ने पहचाना—निराला का अर्थ है हिन्दी, हिन्दी साहित्य की परम्परा। जिसने परम्परा की कड़ियाँ सबसे ज्यादा तोड़ी थी, वही उस परम्परा का सबसे समर्थ प्रतिनिधि था। एक अज्ञात सूत्र से निराला भारतेन्दु, सूरदास और तुलसीदास से जुड़े हुए थे। निराला की मृत्यु से वह सारी परम्परा सजीव होकर मानो आँखों के सामने कौंध गई।

"निरालाजी अब नहीं हैं। भारतेन्दु ने अपने बारे में कहा था, प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायेगी। सो अब निरालाजी की कहानी-भर रह गई है। अवश्य ही उनका भौतिक शरीर नहीं रहा, किन्तु जब तक हिन्दी भाषा है, जब तक संसार मे शुद्ध काव्य के पारखी हैं, जब तक दलित, पतित और पीड़ित मानव है, और जब तक उनके कष्टों को वाणी देने की या वकील की आवश्यकता है, तब तक निरालाजी का यश शरीर अमर है, तब तक उनकी वाणी जीवित है। हिन्दी के तो वे गौरव थे। उनके समान तेजस्वी, मेधावी, मौलिक और ऊँची उड़ान लेनेवाला कवि तथा 'शब्दों का बादशाह' यदा-कदा ही जन्म लेता है। तुलसीदास और सूरदास की तरह उन्होने हिन्दी का मस्तक सदा के लिए गौरवान्वित किया है। वे चोटी के कवि, उपन्यासकार, कहानीकार और निबन्ध-लेखक ही नहीं थे, वे हिन्दी की नई काव्यधारा के प्रवर्तक और क्रान्तिकारी विचारों के प्रचारक ही नहीं थे, वे हिन्दी भाषा के उन्नायक और प्रचारक भी थे। जो आधुनिक हिन्दी उनसे पुत्रवती हुई थी, वह उनके वियोग में आज शोक-संतप्त है। इस क्षति की पूर्ति होने में न मालूम कितने युग लग जायेंगे। हिन्दी के इस शोक-संताप के सामने हमारा व्यक्तिगत शोक नगण्य है। हिन्दी-संसार को भगवान् इस वज्रपात को सहन करने की शक्ति दें। निरालाजी अमर हैं। जो जीवन-भर मन से 'आजाद

परिन्दे' रहे, वे आज शरीर से भी मुक्त हो गये।"[८]

अधिकांश हिन्दी-भाषियो के मन मे ऐसे भाव थे जिन्हें 'सरस्वती'-संपादक ने शब्दो में व्यक्त किया था। बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी कलकत्ता के एक समारोह मे कवि दिनकर ने कहा—भाई, निराला तो मरकर हिन्दी संसार पर छा गये।

निराला के निधन की प्रतिक्रिया अप्रत्याशित थी। पत्रिकाओ मे विशेषाक निकालने और लेखकों में संस्मरण लिखने की होड लग गई। भारतेन्दु से लेकर अब तक हिन्दी के जितने लेखक दिवंगत हुए, उन सब पर मिलाकर इतने संस्मरण और लेख न लिखे गये होंगे जितने निराला पर। कविताएँ उन पर उनके जीवनकाल मे ही लिखी गई थी, अब उनकी संख्या मे विराट् वृद्धि हुई। एक हल्ले में निराला की रचनाएँ विश्वविद्यालयो के सीखचे तोड़कर पाठ्यक्रमों मे दाखिल हो गयी। उत्तर भारत का शायद ही कोई विश्वविद्यालय हो जिसमे दो-एक शोध छात्र निराला पर शोधग्रन्थ लिखने मे प्रवृत्त न हुए हो। कागज़ पर जितना लिखा गया, जितना छपा, वह निराला के प्रति हिन्दी जनता के अगाध प्रेम का साक्षी नही है। जो अगाघ है, वह अव्यक्त ही रहता है; केवल निराला की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिन तक हिन्दी जनता ने जैसे एक ही हृदय की धडकन सुनी, शोक-सागर में डूबकर उसने अपने अस्तित्व को, निराला से अपने लगाव को पहचाना।

फिर कुछ दिन बाद सारे काम वैसे ही होने लगे जैसे होते आये थे। हिन्दी की एक परम्परा यह भी है कि हर बड़े लेखक के मरने के बाद उसके स्मारक की योजना बनाई जाय। यह योजना उमाशंकर सिह ने बनाई। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक बाँकेबिहारी भटनागर जब इलाहाबाद आये, तब उनसे सलाह-मशविरा किया। दिल्ली मे राष्ट्रपति-भवन के अन्दर निराला-जयन्ती मनाने का विचार पक्का हुआ। "निराला स्मारक माँ भारती का मन्दिर बन सके और हिन्दी-साहित्य-सेवा का एक आवश्यक अंग हो, इस उद्देश्य से अखिल भारतीय स्तर पर हमने निराला समिति का संगठन किया है। समिति का अध्यक्ष होना डा० सम्पूर्णानन्दजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया है।······इस पुण्य अवसर पर दिल्ली के नागरिकों, साहित्यानुरागियो तथा निराला-स्नेहियों से हमारी अपील है कि निराला-स्मारक के लिए एक लाख रुपये प्रदान करे। साहित्य-गंगा के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने मे अपने परिश्रम और प्रतिभा का दान करें।"

यह अपील एक मासिक पत्र मे निकली जिसके प्रकाशक उमाशंकर सिंह थे और जिसका नाम उन्होने रखा था—'निराला'। इसका पहला अंक राष्ट्रपति को भेट किया जाय, निराला-स्मारक का अनुष्ठान एक राष्ट्रीय महोत्सव का रूप ले, इस आशा के साथ पहले ही घोषित कर दिया कि "महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी तथा उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् दोनों इस महान् साहित्यिक सदनुष्ठान के लिए अभिनन्दनीय है। पत्रिका मे निराला के अलावा राजेन्द्रप्रसाद, राधाकृष्णन् और सम्पूर्णानन्द के चित्र छपे।

पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में अपना नाम देखकर मैंने उमाशंकर सिंह को

लिखा कि वे दूसरे अंक मे मेरा नाम न दें। दूसरे अंक के छपने की नौवत ही न आई।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने एक सुझाव यह दिया कि निराला की "यशः-पताका को उत्तुंग रखने के लिए हमें एक वृहद् 'निराला विद्यापीठ' या 'निराला अध्ययन-केन्द्र' को स्थापना करनी चाहिए—एक ऐसा विद्यापीठ या एक ऐसा केन्द्र, जहाँ समस्त विश्व के काव्य-साहित्य का सकलन हो और जहाँ काव्य के सम्वन्ध में मनन, अध्ययन तथा अनुसंधान किया जा सके।"

एक अधिक व्यावहारिक सुझाव यह था, "उत्तर प्रदेश की सरकार को चाहिए कि दारागंज के जिस भवन में निरालाजी ने अपनी अन्तिम साँसे ली, उसे वह फौरन अपने अधिकार में ले ले और उसे निराला-मन्दिर का रूप दे दे।"

यदि मकान गिरा दिया गया तो लोगों को अन्दाज न होगा, किस कठघरे में निराला ने वारह साल काटे थे। वैसे साहित्यकार-संसद को भी सरकार ले ले तो वुरा नही, क्योंकि उसमे कुछ दिन गंगाप्रसाद पाण्डेय रहे, कुछ दिन उपेन्द्रनाथ 'अश्क' रहे और अव उसमें ताला पडा है, कोई नही रहता।

कमलाशंकर सिंह ने श्राद्ध का आयोजन किया। इसके लिए सोलह सौ रुपये उन्हें दिये गये।

रामकृष्ण त्रिपाठी ने श्राद्ध-कर्म किया। विल-वाउचर पेश करने पर वारह सौ इकतालीस रुपये दो आने उन्हे मिले।

निराला के नाम जो सरकारी पैसा जमा था, उसी से दोनो को ये रकमें दी गई।[१]

चित्रकला-संगम नाम की संस्था—जिसके वाँकेविहारी भटनागर संयोजक थे—की ओर से राष्ट्रपति-भवन में निराला-जयन्ती समारोह का संगठन हुआ। कार्यसमिति के दो संरक्षक—लालवहादुर शास्त्री और घनश्यामदास विड़ला। अध्यक्ष—श्रीमन्नारायण। दिनकर, जैनेन्द्र आदि उपाध्यक्ष। कार्यक्रम में छपा—राष्ट्रपति की ओर से पुष्पांजलि; उपराष्ट्रपतिजी द्वारा श्रद्धांजलि। कांस्टीट्यूशन क्लव में कुमारी सविता का "भाव नृत्य (कुंज कुंज कोयल वोली है)", महाकवि की वाणी का टेप रिकार्ड, निराला पर निर्मित फिलम का प्रदर्शन, निराला-साहित्य की प्रदर्शनी। अपने स्नेह के अधिकार से वाँकेविहारी भटनागर ने निराला पर कविता-पाठ करनेवालों में मेरा नाम भी दे दिया था। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से पत्र लिखकर वड़े आग्रह से मुझे आमन्त्रित किया। मैंने उन्हें उत्तर दिया: "मैं सोचता हूँ कि यदि निरालाजी जीवित होते तो राष्ट्रपति भवन और कांस्टीट्यूशन क्लव के समारोह के वारे मे क्या कहते। जो कुछ कहते, उसे सोचकर आने का साहस नही हुआ। क्षमा करें।"

डा० राधाकृष्णन्—भारत के उपराष्ट्रपति, सर्वमान्य विद्वान्—हर विपय पर साधिकार वोलते थे। वह निराला के महत्त्व पर भी वोले—अंग्रेजी मे। उन्होने निराला के चित्र का अनावरण किया और कहा, निराला भारत के ऋपि-मुनियों की ही परम्परा मे एक सच्चे ऋपि और विद्रोही, क्रान्तिकारी तथा युग-प्रवर्तक कवि थे। उनके काव्य में ऐसी मानवता के दर्शन होते हैं जो जाति या राष्ट्र की सीमाओं में वँधी नही है। वह सत्य के पुजारी और धुन के पक्के थे। उन्होंने साहित्य की परम्पराओं मे नयी शैलियों

का समावेश किया, तथा प्रजातंत्र, मानवता एवं प्रगति के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया।

नरेन्द्र शर्मा ने 'जुही की कली', बच्चन ने 'मैं अकेला', और 'स्नेह निर्झर बह गया है' की आवृत्ति की। सुमन ने निराला पर एक नयी कविता लिखी थी; वह सुनाई। कुछ अंश उन पर अपनी पुरानी कविता के सुनाये। नन्ददुलारे वाजपेयी और दिनकर ने निराला पर भाषण किये। अशोक हाल मे एक घण्टे का यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। संध्या-समय कान्स्टीट्यूशन क्लब मे उत्सव हुआ। सुमन ने निराला के संस्मरण सुनाये; और लोगो ने भी निराला के व्यक्तित्व और साहित्य पर भाषण किये।

दूसरे दिन कमलारत्नम् के यहाँ भद्र साहित्यिकों की गोष्ठी हुई। यहाँ जनता के सामने श्रद्धा-प्रदर्शन का सवाल न था। "सबने निरालाजी के विरुद्ध अपना दबा बुखार निकाला। सुनकर सन्न रह गया।" सन्न रह जाने की प्रतिक्रिया सुमन की थी।[10]

कई हिन्दी पत्रकारो ने गद्‌गद् होकर दिल्ली के निराला-सम्बन्धी आयोजनों की प्रशंसा की। वे इस बात से विशेष रूप से पुलकित थे कि निराला का सम्मान राष्ट्रपति-भवन मे हुआ, उनके सम्मान में उपराष्ट्रपति ने भाषण किया।

समारोह की समाप्ति के बाद निराला का चित्र राष्ट्रपति-भवन से हटा दिया गया।

निराला-साहित्य की प्रदर्शनी मे भाग लेने, कविता-पाठ से समारोह को सफल बनाने रामकृष्ण त्रिपाठी भटनागरजी के निमन्त्रण पर गये थे। उन्हें आने-जाने का किराया न मिला।

बिगड़े दिल लेखक अमृतलाल नागर ने राष्ट्रपति-भवन के आयोजन पर टिप्पणी की : "हमारा मिडिल क्लास बाबू निराला को राष्ट्रपति-भवन मे प्रतिष्ठा दिलाने के लिए मचल रहा है। वह चाहता है कि निराला का सम्मान हो। राष्ट्रीय महापुरुषो में उन्हें समुचित स्थान मिले। राष्ट्रपति, मन्त्री, प्रधानमन्त्री, अमुकजी, तमुकजी आदि उनके यश गाएँ। मैं सोचने लगा कि ये कैसी उल्टी अभिलाषा है लोगो की! कैसा निकम्मा उद्योग है उनका! निराला के ठाठ भला यो बन सकते है।"[11]

अमृतलाल नागर नयी दिल्ली में राष्ट्रपति-भवन न जाकर निराला के गाँव गढा-कोला गये। उन्होने देखा—मिट्टी के कच्चे घर, अधिकांश खँडहर, गलियाँ बीच में धँसी और गड्ढो से भरी हुई, मच्छरों के झुण्ड जिन पर छाये हों ऐसे नाव-दान, गाय, बैल, कुत्ते। एक पुराने खस्ताहाल घर के दरवाजे पर कागज चिपका था। उस पर लिखा था : महाप्राण निराला स्मारक भवन। दरवाज़े से घुसते ही दहलीज में पुआल पड़ा था। निराला के भतीजे बिहारीलाल ने कहा—काका हियँ बैठिकै लिखत रहै। तकिया छाती के तरे दबाय लेय और पौढ़े-पौढ़े लिखा करे।

आँगन के चारो ओर की कच्ची दीवार कई जगह से टूट गयी थी। पिछवाड़े की तरफ़ चतुरी चमार के घर की दीवाल दिखाई देती थी। घर से कुछ दूर खुली जगह मे एक तख्त डाला गया, तख्त पर लोहे की कुर्सी रखी गई। कुर्सी पर चादर बिछा कर बच्चो के लिखने की पाटी रखी गई। 'धर्मयुग' से निराला का चित्र फाड़कर नागरजी ने पाटी में चिपकाया। फिर चित्र के चारो ओर सरसों, गेंदे और सूरजमुखी

के फूल सजाए। पीले फूलों के बीच निराला—अपने गाँव गढ़ाकोला में।

किसी ने आवाज लगाई—वोल दे निराला वावा की जय। एकत्र भीड़ ने कहा—जय। ढोल, ताशे, झाँझ की झैयम-झैयम, घण्टा-शंख, घड़ियाल की ध्वनि, चिमटा, करताल-मंजीरे वजाते हुए चतुरी के भैयाचारो की मण्डली। एक युवक ने कुर्सी सर पर उठाई; निराला का चित्र लिये वह आगे-आगे चला, पीछे गाँववालो का जलूस। फूली हुई सरसों के वीच से कच्ची सड़क पर भीड़ चली। ब्लाक डेवेलपमेट आफिसर ने नागरजी से कहा—"ये सड़क जिस पर आप चल रहे हैं, इसका नाम निराला मार्ग है। गाँववाले इसे श्रमदान से तैयार कर रहे हैं। छह मील की यह सड़क पुरवा में जा कर मिलेगी। फिर वहाँ से उन्नाव तक यही निराला-मार्ग वना दिया जायगा।"

एक खेत दिखाते हुए विहारीलाल ने कहा, "यह खेत रामसहाय वावा ने निराला काका के नाम से लिया था। कागज पर सुर्जकुमार नाम चढ़ा है।"

एक मड़ैया के सामने खड़ा हुआ वूढा पासी वार-वार अपनी आँखे पोंछ रहा था। वह निराला के पास वहुत आया करता था।

नागरजी ने पूछा—"यहाँ के ऊँची जात वालो मे कितने लोग निरालाजी के भक्त है?" जवाव मिला—"अरे वहुत कम; ई सव तो महाकवि का यादौ नाही करति।" नागरजी ने नोट किया: "छोटी कौम कहलानेवाले दवे-पिसे लोग ही निरालाजी के नाम पर रोनेवालों मे यहाँ अधिक है।"

आमो का वाग आया, निराला के पुरखों का वाग। यही से भदैला, लँवुई, गोलवा के आम चुनकर निराला सर पर खरिया लादे महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास ले जाते थे। शामियाना तना था, उसके आगे लइया, चने, रामदाने के लड्डू लिये खोचेवाले वैठे थे।

चतुरी के भैयाचारो की मण्डली, शामियाने से वाहर, जमीन पर वैठी। नागरजी ने कहा—"इन्हें आदरपूर्वक दरी पर विठाओ।" दरी विछाई गई और वहुत कहने पर भगत मण्डली उस पर वैठी, फिर भी वैठी शामियाने के वाहर ही। झाँझ, मंजीरे, ढोलक, करताल एक साथ वज उठे। सिर पर गाँधी टोपी लगाये, काँधे पर अँगोछा डाले, पंचम भगत ने हाथ उठाकर गाना शुरू किया—

वहु घर हमका कोउ न वतावा
जेहि घर ते जिया आवा हो।[१२]

वाजो की झनक-झनक के साथ लोगों ने दोहराया—जेहि घर ते जिया आवा हो।

जीवन और मृत्यु, कहाँ से जीव आया है, कहाँ जायेगा, एक रहस्य—जिसके प्रति निराला के मन में वैसे ही जिज्ञासा थी जैसे इस गीत के अज्ञातनाम रचयिता में, गीत गानेवाले गाँव के इन अपढ़ दरिद्र भगतों मे।

एक और फेरा है जी का
वही वात—जेहि घर ते जिया आवा हो।

भारतीय जनता के हृदय में हजारों साल से लोक-संस्कृति की यह अजस्र धारा प्रवाहित रही है। उसी में निराला के मानस की आधुनिक सरस्वती भी घुल-मिलकर एक हो गयी। उनकी सुदीर्घ साहित्य-साधना की यही सफलता भी है।

१६

व्यक्तित्व और परिवेश

निराला की जीवन-कथा समाप्त हुई किन्तु कुछ प्रश्नो का उत्तर देना शेष है। निराला स्वयं को जिस रूप मे देखते थे, उससे उनका वास्तविक रूप कितना मिलता था ? अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियो की जो तस्वीर उन्होने अपने मन में बनाई थी, वह वास्तविकता से कहाँ तक मिलती थी ? जो स्वयं को, परिस्थितियो को सही-सही पहचानता है, उसके मन के असंतुलित होने की संभावना बहुत कम है। निराला का मन असन्तुलित हुआ, इसका अर्थ है, स्वयं को और परिस्थितियो को पहचानने मे कही कोई खामी थी।

निराला ने सन् '२० मे जान-बूझकर, पूर्ण विवेक से साहित्य-साधना का मार्ग चुना था। जीवन के अन्तिम वर्ष तक वह अनवरत इस साधना मे लगे रहे और उनकी उपलब्धि नगण्य नही है, इसे सभी मानते है। उनके भीतर कौन-सी शक्ति थी जो इतने दिन तक उन्हे साहित्य-रचना मे प्रवृत्त किये रही, कैसा था वह विवेक जो साहित्य-साधना और पूंजीपति-उपासना मे सन्तुलन कायम किये बिना, मार्ग के समस्त अवरोधो को पार करता हुआ स्वेच्छा से वरण किये हुए लक्ष्य के प्रति जीवन को पूर्णतः चरितार्थ कर सका ? मनुष्य परिस्थितियों का दास न होकर, उनसे संघर्ष करता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचे, यही उसके लिए मुक्ति है, आत्म-साक्षात्कार और वस्तु-साक्षात्कार है। निराला के व्यक्तित्व और उनकी परिस्थितियो मे तनाव ही था या कही गहरा सन्तुलन भी था जिससे उनकी सुदीर्घ साधना सम्भव हुई, सफल हुई ?

निराला की जीवन-कथा समाप्त हुई; उनके व्यक्तित्व और उनके जीवन की परिस्थितियो पर कुछ देर ठहरकर विचार करना आवश्यक है।

निराला जितने कल्पनाशील थे, उतने ही मेधावी, उनकी कल्पना और मेधा को प्रेरित करनेवाली थी उनकी अपूर्व ऊर्जा। कल्पना, मेधा और ऊर्जा उनमे सहज, जन्मजात, उनके व्यक्तित्व का मूलाधार थी।

पारिवारिक परिवेश मे व्यक्तित्व के मूल तत्त्व विकसित हुए, निराला के मानस में तरह-तरह की वृत्तियां संवर्धित और पुष्ट हुई। उनकी माँ का देहान्त उनके शैशवकाल

मे हुआ, पर उन्हें प्यार दुलार कम मिला हो, सो बात नहीं। मातृहीन, दुखी, एकान्त-सेवी बालक का जीवन उन्होने न बिताया था। महिषादल में बैसवाड़े की बहुत-सी स्त्रियाँ थीं; वे—और विशेषकर रामशंकर की माँ—निराला को बड़े स्नेह से रखती थीं। वह कुछ हैं, औरों से भिन्न हैं—यह बोध उन्हें इन स्त्रियों से हुआ जो जमादार के लड़के का दुलार विशेष रूप से करती थी। वह समझने लगे कि दूसरे उन्हें प्यार करें, यह उनका धर्म है।

निराला को सबसे ज्यादा प्यार मिला अपने पिता से। उन्हें स्वच्छन्द, नटखट, खेलकूद में मस्त, मनमौजी, जिद्दी लड़का बनाने का श्रेय रामसहाय तेवारी को है। घर में और कोई डाँटने-डपटनेवाला था नहीं; रामसहाय का अधिक समय नौकरी में जाता। उनके लाड़-प्यार से निराला का यह भाव और दृढ़ हुआ कि हर आदमी का काम है कि उनकी इच्छा पूरी करे, वह जो कुछ करते है, ठीक है, किसी को उनकी इच्छापूर्ति में बाधा देने का अधिकार नही है।

रामसहाय जब-तब निराला को ठोंकते भी थे। निराला के मन ने कभी न स्वीकार किया कि एक बार भी उन्होने ठुकने लायक काम किया है। उन्हें हमेशा लगता कि पिता उनके साथ अन्याय करते रहे है। वह पिता को बहुत प्यार करते थे, इसलिए उनका अन्याय उन्हें उतना ही दुखी करता था।

रामसहाय ने कम उम्र में उनका व्याह कर दिया। पत्नी आकर महिषादल में साथ रहने लगीं। एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास न कर पाने से इस विवाहित जीवन का सीधा सम्बन्ध था। एक हीनता का भाव, मैं कुछ नहीं कर सकता, चाहे जो करूँ सफलता न मिलेगी, भाग्य ही मेरे विरुद्ध है, यह सब तभी से निराला के मन में बैठ गया। इसके साथ कहीं अपराध-भावना भी थी, जी लगाकर पढ़ा नही, आवारगी में वक्त काटा, पास होनेवालों में नाम कहाँ से होगा—यह ग्लानि भी उन्हें सताती थी।

उनमें अपने बड़प्पन के भाव के साथ हीनता की भावना, आत्म-ग्लानि का भाव भी जुड़ा हुआ था।

परीक्षा में फेल होने पर रामसहाय ने निराला को घर से निकाल दिया। यह उनका बहुत बड़ा अन्याय था पर निराला अपनी असफलता के लिए खुद को दोषी ठहराते थे। फिर पिता ने ससुराल आकर उन्हे मना लिया, न्याय-अन्याय बराबर हो गये।

जब रामसहाय न रहे, तब निराला को उनका अभाव बुरी तरह खला। जितना ही जीते रहने के लिए मरना-खपना पडा, उतना ही रामसहाय याद आये, उतना ही निराला के अपराधी मन ने कहा कि तुमने बाप के जीते-जी उनकी कद्र न की।

पं० रामसहाय और बैसवाडे के सिपाहियों से निराला को अपने धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए। 'रामचरितमानस' से प्रेम, महावीर की पूजा, हनुमान चालीसा का पाठ—ये सब उन सिपाहियो की साधारण विशेषताएँ थी। महिषादल की प्रासाद-भूमि में कृष्णजी का मन्दिर था, पर कृष्णजी ने निराला के मन को कभी आकर्षित नही किया। वह मन्दिर राजपरिवार और उच्च लोगों के लिए था, बालक सुर्जकुमार उसे दूर से देख सकते थे। राम, महावीर, तुलसीदास—ये उनके गूढ़तम धार्मिक संस्कारों से

आबद्ध हो गए। गढ़ाकोला, डलमऊ, बैसवाड़े में हर कही गदा हाथ में लिये महावीर की मूर्ति—निराला के मन मे यह मूर्ति बस गई। संस्कारों की यह जमीन तैयार हो जाने के बाद उन्हे मिले स्वामी प्रेमानन्द। वीतराग संन्यासी, दिव्यरूप, छोटे-बड़े का भेदभाव नही। निराला को लगा कि उनके सामने साक्षात् महावीर अवतरित हुए हैं। निराला ने रामकृष्ण परमहंस के जीवन के बारे मे पढा। उन्होने बड़े-बड़े चमत्कार किये थे, योगबल से जान लिया था कि उनका विवाह पूर्वजन्म की किसी जीवन-संगिनी मे होगा, स्वामी विवेकानन्द को जरा-सा छू दिया तो उन्हें ब्रह्म का विराट् रूप नजर आया। निराला ने 'रामचरितमानस' पढ़ने के साथ इन्द्रजाल की पोथियाँ भी घोखी थी। मारण, उच्चाटन, वशीकरण के प्रयोगों के बारे में पढा था। बंगाल मे तंत्र-मंत्र का वैसे ही ज़ोर है, निराला के धार्मिक संस्कारो मे—तुलसीदास की दी हुई भक्तिभावना के विरोधी—तान्त्रिक विश्वास भी शामिल हो गये।

इन सब बातो के साथ महिपादल का विलास-वैभव का वातावरण भी उन्हे अपनी ओर खीच रहा था। सुन्दर युवतियाँ, कलात्मक प्रसाधन, आकर्षक हाव-भाव, खास तौर से सिपाहियों की प्रेमिकाएँ, बदचलन दासियाँ—ये सब भी निराला को अच्छी लगती थी। रामचरितमानस के साथ वह पद्माकर के कवित्त भी घोखते थे। संस्कृत मे शृंगार-रस के अनेक सुन्दर पद्य उन्हें कंठस्थ थे। फिर हरी दूब के पार्क, कमल के फूलो से भरे तालाब, रात की रानी की मदभरी अरघाने, गुलाब के फूलों मे दमकते-महकते उद्यान—मन्दिर मे देवीमूर्ति के चारो ओर उडते हुए अगरु के धुएँ की तरह रूप और गन्ध के ससार ने निराला के धार्मिक मन को आवेष्टित कर लिया। निराला आधे मन से भोगी हुए, आधे मन से संन्यासी।

परमपद लाभ की इच्छा जब प्रबल होती तब गृहस्थ-जीवन भार मालूम होता। मनोहरादेवी न आती तो वे निश्चिन्त मन से भगवद्भजन करते, संसार त्याग कर जनता की सेवा करते, हर जगह सन्यासी के रूप मे प्रतिष्ठा पाते। भारत में संन्यासी से अधिक पूज्य दूसरा कोई नही। कलाकार के लिए भी गृहस्थ जीवन भार है। मनोहरादेवी सुन्दर थी, पर कलाकार के मन को प्रसन्न करनेवाले हावभाव, शृंगार, प्रसाधन, सरस वार्तालाप—यह सब उनके पास कुछ न था। इसके अलावा मनोहरादेवी भी अपने माँ-बाप की इकलौती बेटी थी। आत्म-सम्मान की भावना उनमे काफ़ी थी। महिपादल में बैसवाड़े के परिवार मानते थे कि निराला कुछ है; यह बड़प्पन मनोहरादेवी ने स्वीकार न किया। निराला को अपनी छवि पर गर्व था; मनोहरादेवी ने अपने सगीत से उनका यह गर्व चूर कर दिया। पुरुष हारा, स्त्री जीती; पुरुष उससे आँखे नही मिला पाता, लजाता है, अपने को कमजोर पाता है। फिर वही हीन भावना सवार हुई। मास खाकर, घर में मास पकाकर, उन्हे मायके जाने पर विवश करके निराला ने प्रतिशोध लिया। उनके न रहने पर निराला को उतना ही पछतावा हुआ। उन्हे सताया, जी-भर उन्हे प्यार न किया, उनके सतीभाव का निरादर किया—इस तरह के भाव उन्हे कचोटते रहे।

प्यार और विरोध की जैसी द्वैतभावना पिता के लिए थी, वैसी ही मनोहरादेवी

के लिए हुई।

निराला को जैसे-जैसे अपनी प्रतिभा का बोध हुआ, खेलकूद से लेकर वहस-मुवाहसे तक में जैसे-जैसे वे अन्य लड़कों से तेज़ सावित हुए, वैसे-वैसे उन्हे अपनी सामाजिक हीनता खलने लगी। राजा के चरणों में लोग सिर टेकते हैं, हुजूर कहे विना वात नही करते, राजकुमारों के लिए घोड़े की सवारी, उच्चशिक्षा का प्रवंध, संगीत सिखाने वाले वड़े-वड़े उस्ताद, भोजन-पान, राग-रंग—इधर महलों की जमीन से वाहर कच्चे घर मे जमादार का वेटा। संन्यासीवाले मन से निराला राजमहलों की उपेक्षा करते, भोगी मन से राजसी जीवन की ओर प्रवल रूप से आकर्षित होते। जव वह नौकर हुए तव उन्हें अपनी सामाजिक हीनता का ज्ञान और अच्छी तरह हो गया। ये राजा है, हम चाकर; प्रतिभा हमारे पास है पर पुजते हैं ये। परिस्थिति के इस अन्तर्विरोध ने उनके मन में कुछ कर डालने, कुछ वनने, हीनता की स्थिति से उवरकर सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की प्रेरणा जगाई। निराला की ऊर्जा को निकास के लिए एक राह मिली।

पिता की मृत्यु, पत्नी के वियोग, इन्फ्लुएंजा के प्रकोप मे चाचा, भाई, भाभी आदि के विनाश से निराला के मन को जवर्दस्त झटका लगा। लाड-प्यार में पले लडके के लिए इस तरह का आघात और भी भयानक था। पर निराला यह झटका सह गये। वडी जीवट से परिस्थिति का सामना किया। उपर्युक्त प्रेरणा उन्हें वरावर आगे ठेलती रही। निराला को अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। उन्होंने नौकरी करते हुए जमकर पढ़ना शुरू किया।

निराला के वाप वैसवाड़े के, उनके वेटे का जन्म हुआ वंगाल मे। निराला के घर का वातावरण वैसवाड़े का; स्कूल और नगर का वातावरण वंगाल का। इधर का आदमी चाहे जितना समूचे भारत राष्ट्र की वात सोचे, वंगाल जाते ही उसे वंगाली-हिन्दुस्तानी भेद का ज्ञान हो जाता है। निराला को अपनी हिन्दी-जातीयता का ज्ञान वहुत जल्दी, स्कूल में दाखिल होते ही, हो गया। निराला ने वँगला पढ़ी, अच्छी लगी, साथियों से वँगला में वातें करना सीखा, वँगला-साहित्य की प्रशंसा की, पर अपने साथियों में हिन्दी के प्रति वैसा ही भाव न देखा। इसके विपरीत उन्हें ऐसे लोग मिले जो हिन्दी को हीन समझते थे, मौके-वे-मौके हिन्दी के सर पर वँगला का श्रेष्ठत्व लादते थे, हिन्दुस्तानी सुर्जकुमार के वँगला वोलने पर भी वे उसे अपने समाज का अंग न मानते थे। वंगाल का प्रदेश, वंगाल की जनता, वंगाल की भाषा—इनके लिए निराला के मन में प्रीति और विरोध का वैसा ही द्वैतभाव दृढ हुआ जैसा रामसहाय और मनोहरादेवी के लिए।

निराला की व्यक्तिगत सामाजिक स्थिति वंगाल में हिन्दी की सांस्कृतिक स्थिति से मेल खा गई। निराला और हिन्दी—दोनों महान् हैं, दोनों उपेक्षित हैं; निराला को अपनी महत्ता सिद्ध करनी है, हिन्दी को समृद्ध वनाकर, अपनी साधना से उने वँगला के समकक्ष, सम्भव हो तो उससे श्रेष्ठ वनाकर। हिन्दी-जातीयता की भावना निराला के जीवन में शक्तिशाली प्रेरणा वनकर आई।

साहित्य-संसार में सवसे वडे साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर; वंगाल, भारत

और सारी दुनिया में उनका नाम। साहित्य में सफलता प्राप्त करने का अर्थ है—रवीन्द्रनाथ की तरह कीर्ति-लाभ करना। पर वह बंगाली हैं। कितना ही अच्छा लिखें, बँगला-भाषा की कमजोरियों का क्या करेंगे? फिर वह जमींदार हैं, ब्राह्मसमाजी हैं, रामकृष्ण या तुलसीदास की तरह गृहत्यागी संन्यासी नहीं हैं। इसलिए वह न तुलसीदास की बराबरी कर सकते हैं, न रामकृष्ण परमहंस की। निराला ने जितना ही उन्हें घाखा, उतना ही उनके शृङ्गार की दुनिया पर मुग्ध हुए। पद्माकर का शृङ्गार-संसार फीका लगा। और जितना ही वह तुलसीदास और रामकृष्ण मिशन की ओर खिंचे, उतना ही रवीन्द्रनाथ का काव्यजगत् उन्हें काल्पनिक और फीका लगा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति भी वही वशीकरण-उच्चाटन का द्वैतभाव।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी प्रेमानन्द और महिषादल के राजा बारी-बारी से और कभी एक साथ उनके मन को विरोधी दिशाओं में खींचते रहे। रवीन्द्रनाथ के शृङ्गार-जगत् में राजसी वैभव का कोई विरोध न था। ये दोनों मिल जाते थे, राजसी-परिवेश में शृङ्गार और भी अच्छा लगता था। स्वामी प्रेमानन्द और तुलसीदास एक तरफ, महिषादल का राजसी ठाटबाट और रवीन्द्र-पद्माकर-कालिदास दूसरी तरफ़, निराला के मन का अन्तर्विरोध इन दो पक्षों को लेकर था।

दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद बंगाल में स्वाधीनता-आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। अक्सर उसने उग्र रूप अपनाये। समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भी बढ़ रहा था। निराला दरिद्रनारायण की सेवा के लिए गये, बंगाल के गाँवों में किसानों की हालत देखी, राजनीतिक आन्दोलन के सम्पर्क में आये। संन्यास काफी नहीं है, सक्रिय राजनीतिक संघर्ष के बिना देश का उद्धार असम्भव है। अब संन्यास और राजनीति इन दोनों ने उनके चंचल मन को दो विरोधी दिशाओं में ज़ोर से खींचा। साहित्य कभी संन्यास का साथ देता, कभी राजनीति का, कभी दोनों का मेल कराता, कभी दोनों से तटस्थ हो जाता। निराला का मन इस प्रश्न से उलझता रहा कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़नेवाले क्रान्तिकारी आदर्श पुरुष हैं या संन्यासी या कवि। क्या इन तीनों का एक ही व्यक्तित्व में समाहार सम्भव है?

११ जनवरी सन् '२१ को जब निराला ने महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपना परिचय देते हुए पत्र लिखा, तब उनका व्यक्तित्व पूर्ण विकसित हो चुका था। परमपद-लाभ एक लक्ष्य है, साहित्य-सेवा दूसरा। कुछ दिन पहले 'सरस्वती' के लिए जो लेख उन्होंने भेजा था, उसका परमपदलाभ से कोई सम्बन्ध न था। वह हिन्दी-जातीयता की भावना से ओत-प्रोत था। उससे कुछ और पहले जन्मभूमि पर जो कविता लिखी थी, उसका भी परमपदलाभ से कोई सम्बन्ध न था। राजनीति, साहित्य, संन्यास—तीनों का आकर्षण उनके पत्र और उस समय की रचनाओं से स्पष्ट है। साथ ही छह बच्चों को पालना है—गृहस्थी के प्रति यह दायित्वबोध भी उनमें था। यह दायित्व साहित्य, राजनीति, सन्यास—इन तीनों की ही साधना में बाधक था। निराला के मार्ग में वह भाग्य की अगम दीवार बनकर खड़ा था। कतराकर निकल जाने का रास्ता न था।

निराला ने अपनी दयनीय चाकरवाली स्थिति की कमी पूरी की, रियासत की

आमदनी और रेवेन्यू का हवाला देकर। अपने पिता-चाचा की साधारण स्थिति को रँगचुन कर पेश किया —मेरे पिता-पितृव्य इस स्टेट के फौजी अफसर थे। गण्यमान्य थे। शिक्षा की कमी उन्होंने वेदान्तज्ञान से पूरी की—अक्षर हूँ, न साक्षर और न निरक्षर। अपने अक्षरत्व, गुणातीत निराकारत्व के साथ पचतत्ववाले पाँच फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्बे शरीर उन्तालीस इंच चौडी छाती पर उन्हे गर्व था। बातचीत में अतिशय नम्रता के साथ हेकड़ी का भाव भी था; द्विवेदीजी ने उनके पूर्व प्रेरित पत्र की व्याख्या विज्ञ दृष्टि से नही की।

आत्मकेन्द्रित, विनम्र, अभिमानी, अपने जीवन के अभावो से परिचित, अभावों को अपनी कल्पनाशीलता अथवा ज्ञान-गरिमा से छिपाने मे प्रयत्नशील, उदीयमान कवि, समर्थ गद्य-लेखक, सन् '२०-२१ के सूर्यकान्त त्रिपाठी। पिता की सामाजिक स्थिति, उनके दिये हुए नाम से वह असन्तुष्ट थे। उन्होने सुर्जकुमार तेवारी—इस देहाती नाम को बदलकर उसे सुसंस्कृत, कवित्वपूर्ण, रवीन्द्रनाथ जैसे बंगाली नामों के समकक्ष, सूर्यकान्त त्रिपाठी रूप दिया। पहले नाम से पूरी तरह सम्बन्ध न टूटा, दूसरा नाम भी मिल गया। पिता और परिवार से पाये हुए व्यक्तित्व को अस्वीकार किये बिना वह उसे भरसक अपने कल्पनाचित्र के अनुरूप ढालने लगे।

महिषादल छोड़कर निराला ने जब समन्वय आफिस मे काम करना शुरू किया तब उनके व्यक्तित्व में विरोधी भावों, प्रेरणाओं और विचारो का संघर्ष और तेज हुआ। स्वामी सारदानन्द और भी उच्चस्तर के—स्वामी प्रेमानन्द से भी बड़े—साधक जान पड़े। निराला पर जैसे उन्होंने जादू कर दिया; उन्हें लगा—मेरा मन इनका यंत्र है, उससे जो चाहते है, करा सकते है। उनके प्रति आत्म-समर्पण की भावना जितनी प्रबल थी, उतना ही तीव्र संशय का भाव था। ईश्वर, संन्यास, परमपदलाभ—इनके प्रति निराला का मन आकृष्ट था, विद्रोह भी करता था।

निराला अर्द्धनारीश्वर थे। देखने मे सुन्दर, बड़ी-बडी आँखे, लहरियादार बाल, कलकतिया धोती—कुल्ली भाट उन पर मुग्ध हुए है, वह जानते थे। वह स्वयं अपने रूप पर मुग्ध थे, इसलिए दूसरा मुग्ध हो तो उन्हे प्रसन्नता ही होती थी। 'मत-वाला'-मंडल में महादेवप्रसाद सेठ उनके रूप के प्रशंसक थे, मुशी नवजादिकलाल उनकी भौंहो की तुलना बिहारी की नायिकाओं की भौहो से करते थे। हर पुरुष में स्त्रीत्व है, इसे वह कामशास्त्र और आधुनिक विज्ञान की विशेष खोज मानते थे। बहुत दिन बाद 'तुलसीदास' मे छपने के लिए जब उन्होने फोटो खिचाया, तब उसमें अपनी 'फेमिनिन ग्रेसेज़' पर खुद ही मुग्ध हुए। अपने को स्त्री मानकर उन्होने कुछ कविताएँ लिखी थी जैसे पहली 'अनामिका' मे—प्रात क्यों नही जगाया नाथ। नारीत्व की भावना, आत्मरति, समर्पण का भाव—इनके साथ पुरुषत्व, आसक्ति, आक्रामक व्यवहार, यह सब भी उनमे था। 'कुल्ली भाट' लिखते समय वह पाठक को यह बताना न भूले कि झोंपडे में प्रथम मिलन के बाद—"हम पूरे जवान है, हम दोनों समझे।" कुल्ली के इक्के पर बैठकर शेरअदाजपुर पहुँचने के बाद पहले सास ने उन्हें शंका की दृष्टि से देखा। फिर निराला को भीतर पत्नी के हँसने की आवाज सुनाई दी। उस हँसी का

नथा था। आदमी को परखने मे वह चूक जाते थे। तारीफ और निन्दा—दोनों को अतिरंजित रूप मे देखते थे। महादेवप्रसाद सेठ काव्यरसिक, देशभक्त, पत्रकार और दुनियादार आदमी थे। निराला की प्रतिभा पर जितनी जल्दी विश्वास किया था, उतनी जल्दी वह विश्वास उठ गया। निराला की जगह उन्होंने 'उग्र' को उछाला। निराला मन-ही-मन जल-भुन गये।

निराला के साहित्यिक मित्रों और परिचितो मे प्रायः सभी रईस थे—कुछ साधारण, कुछ असाधारण, कुछ बिगड़े हुए रईस—महादेवप्रसाद सेठ, जयशंकर प्रसाद, राय कृष्णदास विनोदशंकर व्यास। उनकी मित्रमडली मे ऐसे लोगो की कमी न थी जो रईस न होते हुए भी रईसो की नकल करते थे, कुछ रईसो के मुसाहब होने में गर्व का अनुभव करते थे। निराला इन सबमें वज्र देहाती थे। शिवपूजन सहाय, नवजादिकलाल, 'उग्र', राधामोहन गोकुलजी तक—निराला को देखते भद्र नागरिक मालूम होते थे। ये सब बिना प्रयास घटो खडीबोली बोल सकते थे। निराला दो-चार वाक्यों के बाद बैसवाडी पर उतर आते। जिनसे बहुत औपचारिकता निबाहते, उन्ही से खडीबोली बोलते। जिनसे आत्मीयता का सम्बन्ध था, वे चाहे बैसवाड़े के हो, चाहे कही और के—निराला बैसवाड़ी मे बोलते। उनकी आधी बातचीत स्वगत-कथन जैसी होती थी और स्वगत-कथन बैसवाडी मे ही सभव था। निराला को जितना गर्व हिन्दी पर था, उससे ज्यादा बैसवाडी पर। 'मेरी बैसवाडी, माता-पिता की दी वाग्विभूति, जिससे सभी रसो के स्रोत मेरे जीवन मे फूटकर निकले हैं, साहित्यिकों मे प्रसिद्ध है'—उन्होंने 'मेरे गीत और कला' मे लिखा था। इस बोली से उन्होने कभी झगड़ा नहीं किया, बलभद्र दीक्षित 'पढीस' को अवधी मे लिखते देखकर उन्हे ईर्ष्या जरूर हुई। काश, बैसवाडी ही हिन्दी की तरह इस प्रदेश की जातीय भाषा होती! उनके व्यक्तित्व के अन्तरतम मे इस बोली के स्वर गूंजते थे। उससे पृथक् उनका कोई व्यक्तित्व ही न था। जिन साहित्यिको मे उनकी बैसवाडी प्रसिद्ध थी, वे अधिकतर बैसवाडे के बाहर के थे, अक्सर अवध के भी बाहर के। निराला इन्हे अपना रईसी ठाट दिखाते, कुछ देर खडीबोली बोलते, फिर वह कसरत छोडकर वाणी के अपने सहज स्तर पर आ जाते।

बैसवाड़ी से देहातीपन का कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही है। मिश्रबन्धु घर मे अवधी बोलते थे, पर उनका रहन-सहन उच्चवर्गीय नगरवासियो का था। निराला बैसवाडी के अलावा, अपने व्यवहार से भी थोड़ी-बहुत देर मे जता देते थे कि गांव से उनका बडा गहरा सम्बन्ध है। बैसवाडे के किसान की उद्दंडता, अक्खडपन. दोटूक बात करने की आदत उन्हे भी थी। इसके अलावा बैसवाडी वह रईस मिश्रबन्धुओ की तरह नही, ठेठ देहाती लटके से, उसके सजीव आलंकारिक रूप मे सभ्य समाज मे वर्जित शब्दो के प्रयोग के साथ बोलते थे।

अपना यह रूप छोड़कर कविता में वह सभ्य वेश धारण करते। संस्कृत के तत्सम शब्दो से पदावली सजाते, रूपक बांधते, अलंकारो की जड़ाई से पद्य को जगमगाते, 'आइडिया' मे आकाश-पाताल के कुलावे मिलाते। जितना ही वैभव-विलास के सपने कविता में आंकते, उतना ही उनकी अलंकरण-प्रवृत्ति ज़ोर मारती। रवीन्द्रनाथ या

जयशंकर प्रसाद से संस्कृतज्ञान मे वह पीछे न रहे, रचना पढ़कर कोई यह न कहे कि निराला की शिक्षा अधूरी है। रईसों के बीच रईसी ठाट; उसी के अनुरूप अभिजात-वर्ग के उपयुक्त, जनसाधारण से दूर कविता की अलंकृत पदावली। साथ ही एक यथार्थ-वादी रुझान, अपनी और दूसरो की सही हालत बयान करने की इच्छा, उर्दू का प्रभाव, गालिब-प्रेमी महादेवप्रसाद सेठ का साथ—यह सब तत्समबहुला शैली से उन्हे दूर ठेलता था। मन के रचनात्मक क्षमतावाले कोठे मे यह एक और द्वन्द्व था—भदेस और संस्कृत, अभिजात और साधारण का संघर्ष।

'मतवाला' मे निराला ने जब पन्त की प्रशंसा में लेख लिखा, तब वह अपने व्यक्तित्व के एक भाग को सुसभ्य, अभिजात और परिष्कृत देखकर प्रसन्न हुए थे। वह उसके अभिभावक, मार्गदर्शक, आचार्य बनकर आगे आये। उस व्यक्तित्व के टुकड़े ने निराला पर ही आघात किया, अपने स्वच्छन्द छन्द की मौलिकता घोषित की, निराला के मुक्तछन्द को बंगालियों की नकल कहा। निराला को बड़ा सदमा पहुँचा। 'पन्तजी और पल्लव' में उन्होने दुखी-मन से पन्त पर छुरी चलाई, फिर भी पन्त की लोकप्रियता खत्म होने के बदले और बढती गयी—कुछ समय के लिए। निराला इसे हिन्दी संसार का अन्याय समझकर बहुत नाराज हुए। उनके मन में एक पन्त-ग्रंथि का निर्माण हुआ।

वह जवाहरलाल की भी बहुत इज्जत करते थे। युवकों के हृदय-सम्राट्, साम्राज्य-विरोधी योद्धा, विलायत में लार्ड खानदान के लाडलों के साथ पढे हुए, एकदम अभि-जातवर्गीय। फिर जवाहरलाल ने हिन्दीवालों की दीनता-हीनता बयान की, उन्हें यह करने वह करने का उपदेश दिया। निराला को यह सरासर अपना अपमान जान पडा। उनके मन मे एक जवाहर-ग्रंथि का भी निर्माण हुआ। साथ में गांधी, सम्पूर्णानन्द, नरेन्द्र-देव आदि को लेकर दो-चार छोटी-मोटी गाँठें और पड़ी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी अभिजातवर्गीय, विश्वप्रसिद्ध, बँगला के साथ अंग्रेजी मे भी बोलने-लिखनेवाले। जितना ही अपने मोहक चित्रों से वह निराला का मन खीचते, उतना ही तुलसीदास के ज्ञान की लाठी से वह उन पर—अपने मुग्ध-मन पर—प्रहार करते। यह हुई रवीन्द्र-ग्रन्थि।

निराला के मन में बहुत-सी ग्रन्थियाँ, बहुत-से तनाव, अनेक अन्तर्विरोध, अनेक निषेध-भावनाएँ और दमित कामनाएँ, एक-दूसरे से उलझी हुई, सतत क्रियाशील, उन्हे बेचैन करती रहती थी। मुन्शी नवजादिकलाल, आदमी के पारखी, चतुर और अनुभवी व्यक्ति थे। सूर्यकान्त के लिए जब उन्होने 'निराला' उपनाम चुना, तब उन्होने उनके आचरण-व्यवहार मे कुछ असाधारणता पहचान ली थी। ऐसा गूढ़ार्थव्यंजक उपनाम शायद ही किसी कवि को मिला हो।

'भावों की भिड़न्त' के प्रकाशन से निराला को अपने साहित्यिक जीवन का पहला झटका लगा। स्वर्ण-किरण कल्लोलों पर बहता हुआ उनका मन विरोध की आँधी से एक बार सहम गया। आक्रामक रुख छोड़कर उन्हे रक्षात्मक युद्धनीति अपनानी पड़ी। उन्हें अपनी रचनात्मक प्रतिभा—शिक्षा, संस्कृति आदि की कैफ़ियत देनी पडी और उनका मन जीवन के अभावों को कल्पना के रंगों से ढकने लगा। साथ ही उनकी

रचनाओं मे वेदना का स्वर और गाढ़ा हुआ।

सन् '२६ मे 'पल्लव' के प्रकाशन से उन्हें दूसरा झटका लगा। 'जुही की कली', मुक्तछन्द, महावीरप्रसाद द्विवेदी के विरोध आदि को लेकर उन्होने विस्तार से एक हिसाब तैयार किया।

सरोज की बीमारी, 'वर्तमान धर्म' की रचना, 'रँगीला' के संपादन के समय उनका मन बहुत अव्यवस्थित हुआ। आर्थिक कष्ट, साहित्य में विरोध, कन्या के लिए चिन्ता—इन सबने उनका मन झकझोरा। उन्निद्र रोग की शिकायत हुई। लोगो ने उन पर विक्षिप्त होने का आरोप लगाया। सरोज की मृत्यु से उनके मन को सबसे बड़ा धक्का लगा। सारे जीवन की सार्थकता और निरर्थकता का प्रश्न सामने आ गया। मानसिक रोग के कुछ लक्षण प्रकट हुए।

'रूपाभ' निकलने, प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के बढ़ने से उनकी मान्यताओ मे किसी हद तक परिवर्तन हुए। उनका यथार्थवादी स्वर और तेज़ हुआ। युद्धकाल में उन्हे तरह-तरह की कठिनाइयाँ सहनी पड़ी। कर्वी में बीमार होने के बाद उनका मानसिक सन्तुलन काफ़ी बिगड़ा। साहित्यकार संसद् छोड़ने तक उनकी यह स्थिति रही। सन् '५० के बाद मानसिक असंतुलन की उग्रता कम हुई। त्रास की भावना काफी हद तक दूर हुई; सम्पत्ति, शिक्षा से सम्बन्धित सपने उनके मन पर छाये रहे। कल्पना-लोक मे रहते हुए भी यथार्थ से उनका नाता कभी न टूटा। उनकी रचनात्मक-प्रतिभा नयी अनुभूतियो को अब भी कविता मे व्यक्त करती रही।

उनके व्यक्तित्व के विकास की ये विभिन्न मंजिलें थीं। बीजरूप मे यह व्यक्तित्व जैसा सन् '२१ मे था, वैसा ही सन् '६१ तक रहा। गुण और मात्रा में भेद के अनुसार, बदलती हुई जीवन-परिस्थितियो मे उसका प्रतिफलन भिन्न रूपों मे हुआ। निराला की दृष्टि बाह्य संसार के साथ अपने को देखती-परखती रही, वह अपनी रचनाओ मे, अपने वार्तालाप में अपने व्यक्तित्व की छवि आँकते रहे, जब जैसी जरूरत हुई, उसमे-हल्के-गाढ़े रग भरते रहे, पौराणिक गाथाएँ उन्हे बहुत प्रिय थी, एक गाथा वह अपने बारे मे रचते रहे, समय-समय पर उसमें संशोधन-परिवर्धन करते रहे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपना परिचय देते-समय निराला ने रियासत की वार्षिक आमदनी बारह लाख रुपये बताई। कुमारबहादुर देवप्रसाद गर्ग का कहना था कि उनके पिता के समय—अर्थात् उस समय जब निराला महिपादल मे नौकर थे—राज्य की वार्षिक आमदनी सात लाख बीस हजार रुपये थी। सम्भव है, निराला ने द्विवेदीजी पर रोब डालने के लिए आमदनी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताई हो। पिता-चाचा को उन्होंने फौजी अफसर, गण्यमान्य व्यक्ति बताया। जब निराला की सास ने उनके पिता की तनखाह पूछी तब निराला ने सीधा उत्तर न देकर उनकी आमदनी की कई सूरतें समझाई। सास के प्रश्न के बारे मे उन्होंने लिखा—"इसका उत्तर बड़ा अपमानजनक था, पिताजी की तनखाह बहुत थोड़ी थी, किसी भली जगह कहने लायक नही।" निराला का यथार्थ-द्रष्टा मन उनसे यह लिखा रहा था। तनखाह के विचार से पिता जी की सामाजिक स्थिति अपमानजनक थी; किसी भली जगह—अर्थात् उनके बीच

जहाँ निराला को आदर पाना था, वे चाहे गरीब हों, चाहे अमीर—कहने लायक न थी। निराला ने 'कुल्ली भाट' उस समय लिखा था, जब निम्नतम जनों से वह एकात्म-भाव स्थापित कर रहे थे। पर इस कृति में भी तनखाह बहुत थोड़ी थी, इतना लिखकर उन्होंने सन्तोष किया, ठीक-ठीक कितनी थी, वह यहाँ भी न लिखा। जितनी भी रही हो, मुख्य बात यह कि सास को तनखाह बताना उन्हें अपमानजनक लगा था। फिर भी पिता-चाचा फौजी अफसर, गण्यमान्य व्यक्ति थे।

जब वह स्वयं नौकर हुए, तब उन्हें क्या मिलता था, इसका उल्लेख भी उन्होंने नहीं किया। 'कुल्ली भाट' में इतना ही लिखा—"तब मैं उसी स्टेट में एक मामूली नौकर हुआ।" गैरमामूली नौकरों में रियासत के मैनेजर आदि थे, मामूली नौकरों में निराला।

निराला ने द्विवेदीजी को लिखा था, "महाराज महिषादल मुझ पर अत्यन्त कृपा करते हैं।" अत्यन्त कृपा करनेवाले राजा ने उन्हे मामूली नौकरी दी यह आश्चर्य की बात मानी जायेगी। राजा ने मन्दिर मे कसम खाने को कहा—इससे कृपा के बदले अविश्वास सूचित होता है। घटना का रूप जो भी रहा हो, निराला ने अपने को अपमानित महसूस किया और वह नौकरी छोड़कर चले आये।

सन् '२६ मे उन्होने जब 'कविता-कौमुदी' के लिए रामनरेश त्रिपाठी को अपना परिचय भेजा तब राजपरिवार से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाया। उस परिचय के आधार पर रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा कि स्कूल के अध्यापकों और राजासाहब के ये बड़े स्नेहपात्र थे। यहाँ तक पुरानी बात। नई बात यह कि महिषादल के राजा इनकी आर्थिक सहायता करते थे और दरबार मे इनका बड़ा सम्मान था। "यदि समय-समय पर महिषादल के कृपालु राजा श्रीमान् गोपालप्रसाद गर्ग बहादुर [राजा सतीप्रसाद गर्ग के छोटे भाई] इनकी आर्थिक सहायता न करते रहते तो इनको गृहस्थी मे बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता। इन्होंने दरबार में नौकरी कर ली। दरबार मे इनका सम्मान बहुत था। संगीत की शिक्षा इनको दरबार में ही मिली। राजाबहादुर इन्हें बहुत चाहते हैं।"

'मिश्रबन्धु-विनोद' के लिए सन् '३३ में उन्होने जो परिचय दिया, उसके आधार पर मिश्रबन्धुओं ने लिखा—"आपकी शिक्षा राजा सतीप्रसाद गर्ग बहादुर द्वारा बगाल ही मे हुई।"

वास्तव में यदि राजदरबार से उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी सहायता मिली होती तो वह एन्ट्रेन्स परीक्षा में फेल न होते, उनका अंग्रेजी-बँगला-संस्कृत का ज्ञान भी अधिक सुव्यवस्थित होता।

सन् '३३ मे उन्होंने 'स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं' नाम के लेख में महिषादल की नौकरी छोड़ने और फिर वहाँ जाने की चर्चा की। इस सिलसिले में उन्होंने लिखा कि "राजा, जोगी, अगिन, जल की उलटी रीतिवाली बात याद न रही।" यह बात उनकी वास्तविक स्थिति के अधिक अनुरूप थी। सन् '३४ में उन्होने कहानी लिखी—'राजा साहब को ठेंगा दिखाया'। इसमें महिषादल को पद्मदल बनाकर उन्होंने राजा का अत्याचारी रूप प्रकट किया।

'कुल्ली भाट' मे उन्होंने राजा के थियेटर खोलने की बात लिखी। "मुझे उसमे एक बहुत मामूली संस्कृत का गाना दिया गया।" राजा पर श्लोक-पाठ का "बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने मेरे लिए गाना सीखने का प्रबन्ध कर दिया।" यह घटना रामसहाय तेवारी के गुजरने के बाद की है, जब निराला नौकर हो गये थे। यदि बचपन से उनकी शिक्षा का प्रबन्ध राजा की ओर से होता तो अब तक वह एन्ट्रेन्स पास करने के अलावा कुशल गायक भी हो जाते, उन्हे एक बहुत मामूली सस्कृत का गाना न दिया जाता। उन्हे उस्तादो से शिक्षा न मिली थी; प्रबोधचन्द्र दत्त नाम के एक राज-कर्मचारी ने उन्हे संगीत की साधारण शिक्षा दी थी। निराला ने थोड़े ही दिन बाद नौकरी छोड़ दी; इससे पहले महामारी मे उनके परिवार के लोग न रहे। ऐसी स्थिति मे उनकी संगीत की शिक्षा साल-छह महीने से अधिक न चली होगी।

राहुल साकृत्यायन 'नये भारत के नेता' पुस्तक लिख रहे थे। पूरनचन्द जोशी, हाजरा बेगम आदि के साथ नये नेताओ मे उन्होने निराला को शामिल करने का विचार किया। सन् '४३ मे इलाहाबाद गये। निराला कर्वी की बीमारी के बाद धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे थे। राजपरिवार से अपने सम्बन्ध की कहानी में उन्होने इजाफा किया। "निराला महिषादल के राजकुमारो के साथ बढ़े और पढ़े थे।" संगीत की शिक्षा मे ऐसी निपुणता प्राप्त की कि पियानो बजाने में भी सिद्धहस्त हो गये! पढने में तो वह ऐसे तेज थे कि एक साल मे तीन-तीन क्लासे पास की। पिता के मरने पर एकाउट-विभाग मे नौकरी की, फिर प्रबन्ध-विभाग मे। महायुद्ध के दौरान जेल गये। महिषादल में नजरबन्द रहे।

उन्होंने अपनी माँ की मृत्यु के बारे मे एक रोमाचक कहानी गढी। किसी 'शोचनीय घटना' के कारण उनकी मृत्यु हुई। इसके लिए निराला के पिता जिम्मेदार थे। उनका असली नाम रामसहाय उपाध्याय था। किसी बडी मुसीबत में फँसनेवाले थे, राजा ने बचा लिया, "और वह उपाध्याय से त्रिपाठी बनकर निर्लेप बच गये।"

गढाकोला या महिषादल जाकर राहुलजी पता लगाते तो उपाध्याय से त्रिपाठी बननेवाली कहानी का तिलस्म बहुत जल्दी उनकी समझ मे आ जाता। पर निराला अपने बारे में जब कहानी गढते थे, तब इतने विश्वास से उसे सुनाते थे कि सुननेवाला बहुत सतर्क न हुआ तो चकमे मे आ जाता था। राहुलजी के साथ यही हुआ; निराला ने जो कुछ कहा, वह उसे सत्य समझते रहे। निराला ने यह भी जोडा कि राजा के भाई गोपालप्रसाद गर्ग उन्हे गोद लेना चाहते थे!

निराला की 'स्पष्टवादिता' से राहुलजी के अलावा उदयनारायण तिवारी भी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने निराला-राहुल संवाद के बारे मे लिखा, "अपने पिता अपनी विमाता तथा अपने वर्गादि के सम्बन्ध मे श्री निरालाजी निस्संकोच भाव से कहते जा रहे थे और श्री राहुलजी उसे लिख लेते थे। अपने सम्बन्ध मे जिन बातों को गोपनीय रखना ही लोग श्रेयस्कर मानते हैं उन्हे सहज भाव से श्री निरालाजी के मुख से सुनकर मैं आश्चर्यचकित था।"[1] विमाता की सूझ तिवारीजी की है, निराला ने विमाता के बारे मे कुछ न कहा था। राहुलजी ने मनोविज्ञान लड़ाया। निराला के

दुख, त्रास को उन्होंने उस शोचनीय घटना से जोड़ा। लिखा—"बालक निराला के दिल पर माता की शोचनीय मृत्यु की छाप सदा के लिए अमिट हो गयी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे निराला में जो एक तरह की उन्मनस्कता देखी जाती है, उसका सबसे बड़ा कारण वही घटना है। मुश्किल तो यह है कि निराला आज भी तीन वर्ष के सूर्यकान्त को उस दुर्घटना का भारी जिम्मेवार मानते हैं।"

पाँच-छह साल बाद जब गंगाप्रसाद पाण्डेय 'महाप्राण निराला' के लिए सामग्री बटोर रहे थे, तब निराला ने उन्हें भी "किसी रहस्यात्मक घटना के फलस्वरूप" माँ के स्वर्गवास होने की बात सुनाई। राहुलजी की तरह पाण्डेयजी ने भी मनोविज्ञान लड़ाया—"अब तक उनके मुख में विषादमयी कोमल-करुणा की अमिट छाप इसी आघात की सूचना देती है।"

माता के अभाव में दूध पिलाने के लिए धाय चाहिए। निराला ने पाण्डेयजी को बताया कि पिता 'सम्पन्न' थे, पर उन्होंने बेटे को "किसी धाय के पास अथवा स्कूल में छोड़ना उचित न समझा।" राजा के छोटे भाई 'उन्हें गोद भी लेना चाहते थे' पर निराला के बालिग होने से पहले ही उनका देहान्त हो गया। उन्होंने निराला को "कलकत्ते के किसी कान्वेन्ट में रखने की राय दी थी, पर उनके पिता ने इसे नहीं माना।" दसवीं कक्षा तक राजपुस्तकालय मे अंग्रेजी-बँगला-संस्कृत के बहुत-से काव्य पढ़ डाले, गीता और दर्शन का भी अध्ययन किया। फलतः क्लास का काम पिछड़ने लगा!

सन् '४९ तक निराला ने तै न किया था कि राजकुमारों की धाय ने उन्हें दूध पिलाया या नहीं। क्रमशः वह राजपरिवार से अपना सम्बन्ध और घनिष्ठ करते गये। उन्होंने पुत्र को बताया कि राजकुमारों की धाय ने ही उन्हें दूध पिलाया था। पिता से सुनी हुई बात रामकृष्ण त्रिपाठी ने लिखी, "शिशु सूर्यकुमार को उस धाय के सुपुर्द किया गया, जो राजा के दो राजपुत्रों का पालन कर रही थी।"

निराला के मन मे बड़ी साध थी कि उनका लालन-पालन, शिक्षा आदि का प्रबन्ध राजकुमारों-जैसा हो। बचपन की यह साध उनके मन से कभी मिटी नही। शुरू में वह इतना ही कहते थे कि राजा और उनके भाई उनपर कृपा करते थे। फिर उन्होंने जोड़ा कि उनकी शिक्षा का प्रबन्ध राजपरिवार की ओर से हुआ। क्रमशः राजा के भाई उन्हें गोद लेना चाहते थे, राजकुमारों की धाय ने उन्हें दूध पिलाया, वह वास्तव में राजकुमार थे, किसी शोचनीय घटना में उनकी माँ की मृत्यु हुई—इस तरह वह कहानी मे नित नया परिवर्धन-परिष्कार करते रहे। जिन दिनों उनका अंग्रेजी-प्रेम ज़ोरों पर था, उन्होंने यह भी जोड़ा कि राजा के छोटे भाई किसी कान्वेन्ट में उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करनेवाले थे; पिता ने रोक दिया वर्ना वह भी जवाहरलाल नेहरू की तरह फर्राटे से अंग्रेज़ी बोलते।

राजकुमारो के खेलकूद में घुड़दौड का विशेष महत्त्व था। निराला ने पाण्डेयजी को बताया कि पटा-बनैठी, बन्दूक से निशानेबाजी, घुड़दौड, कुश्ती में वह सबसे आगे थे, राजकुमार तक उनका लोहा मानते थे। निराला कुश्ती-कसरत के प्रेमी थे।

साहित्य में नोबेल प्राइज पानेवाले रवीन्द्रनाथ की तरह कुश्ती में उनका प्रतिद्वन्द्वी था विश्वजयी गामा ! उन्होंने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा कि गामा को उन्होंने "लखनऊ नुमायश में दो मिनट में पटका था ।"

बनारस में जब निराला की स्वर्ण-जयन्ती हो रही थी, तब किसी ने निराला से मजाक किया—आपसे किंगकांग कुश्ती लड़ना चाहता है । निराला ने पूछा—मुझसे क्यों लड़ना चाहता है ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—इसलिए कि उसने सुना है कि आप भारत के बहुत बड़े पहलवान हैं ।

निराला बोले—उससे कहो, पहले गामा से लड़े, गामा को हरा देगा, तब हम उससे लड़ेंगे ।

यह बात सन् '८७ की है । इसके दो साल बाद उन्होंने गंगाप्रसाद पाण्डेय को अपनी गामा-विजय की कहानी सुनाई । कुश्ती के साथ पटा-बनेठी, बन्दूक से निशानेबाजी और घुड़दौड़ की बातें जोड़ीं ।

'चकल्लस' के भावी-अंक में उन्होंने लिखा था कि माँ की मृत्यु के समय उनकी आयु ढाई वर्ष की थी । राहुलजी से उन्होंने कहा कि उनके जन्म लेते ही माँ शोचनीय घटना में मरी । यह बात मुझे राहुलजी से ही मालूम हुई थी । निराला के जन्मते ही उनकी माँ मरी, तब उन्हें दूध किसने पिलाया ? कहानी के प्लाट की यह कमी उन्होंने बाद को पूरी की; उन्हें दूध राजकुमारी की धाय ने पिलाया !

सन् '३६ में—'बनबेला' में उन्होंने लिखा—

> फिर लगा सोचने यथासूत्र—'मैं भी होता
> यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
> ये होते जितने विद्याधर—मेरे अनुचर,
> मेरे प्रसाद के लिये विनत-सिर उद्यत-कर,
> मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
> सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
> जीवन चरित्र,
> लिख अग्रलेख अथवा, छापते विशाल चित्र ।
> इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
> होता मैं, शिक्षा पाता, अरब समुद्र पार···

अभी एक विकल्प था । राजपुत्र न हुए तो लक्षपति के कुमार ही होते । सन् '४६ में विकल्प हटाकर उन्होंने राजपुत्र होने का फैसला किया । राजा के भाई उन्हें गोद लेना चाहते थे, यह तै किया । बच्चन के यहाँ जब उन्होंने सुमित्रानन्दन पन्त से कुश्ती लड़ने को कहा तब वह तुत्तनखाँ के बेटे मुत्तनखाँ बने । अन्तिम वर्षों में जब—'विद्या' कहानी लिखी, तब श्यामनाथ का सम्बन्ध ठाकुर खानदान से जोड़ा । उनके सपनों में एकसूत्रता न थी; इच्छानुसार नाम, वंश आदि बदल लेते थे । गंगाधर शास्त्री को डॉ० सैयदहुसेन बनकर सम्मति दी । इन सब सपनों में जो बात सामान्य थी, वह यह कि पिता की हीन सामाजिक स्थिति से वह अपने को मुक्त कर रहे थे ।

अपने सम्बन्ध में उनकी रची हुई गाथा का यह एक अध्याय हुआ।

गाथा का दूसरा अध्याय बँगला-संस्कृत ज्ञान के बारे में है।

सन् '२० में जब उन्होंने बंगभाषा के उच्चारण पर लेख लिखा, तब उनका विचार था कि बँगला भाषा गम्भीर भावों के प्रकाशन के अनुपयुक्त है; बँगला की छन्द-रचना, ह्रस्व-दीर्घ का भेद न होने से अथवा दीर्घस्वर को भी ह्रस्व की तरह पढ़ने मे दूषित है, "किसी पद्य मे यदि मात्राओं का मेल न रहे तो वह पद्य पद्य ही नहीं गिना जाता।" जिसके लिए बँगला मातृभाषा के समान हो, वह इस तरह का लेख कभी न लिखेगा। 'भावो की भिड़न्त' के प्रकाशन के बाद अपनी मौलिकता के प्रमाण मे उन्होंने नवजादिकलाल को बताया कि वह पन्द्रह साल की उम्र मे संस्कृत मे कविता करते थे। शुरू में बँगला में लिखते थे, बाद को बँगला से हिन्दी मे आये, यह बात उन्हे अभी न सूझी थी। यामिनीमोहन घोष के विवाह के अवसर पर बँगला मे कविता लिखी, जब वह कलकत्ते मे थे। मुन्शी नवजादिकलाल को उन्होंने समझाया कि "तब से यामिनी बाबू जैसे बंगभाषा के आचार्य जब कोई कविता लिखते है तो निरालाजी को अवश्य दिखाते है।" निराला जब हिन्दी में मार खाते थे, तब बँगला से सम्बन्ध दृढ करते थे। इस क्रम की शुरूआत 'भावों की भिडन्त' के समय हुई। द्विवेदीजी को उनकी बँगला कविता अधिक पसन्द थी, पर उन्होंने हिन्दी मे लिखते रहने की आज्ञा दी—यह सब उन्होने मुन्शीजी को समझाया। रामनरेश त्रिपाठी ने उनके परिचय मे लिखा कि "पहले ये सभाओं में संस्कृत और बँगला मे ही कविता पढ़ा करते थे।" सन् '३१ मे उन्होंने पन्तजी को अपने पद्य-पत्र मे लिखा—

"आमी एइ भाषाय प्रथम कविता लिखिया छिलाम।"

बंगला में दो-चार पद्य जरूर लिखे होंगे, किन्तु उन्होने पन्तजी को सूचित किया कि पहले वह बँगला में ही कविता करते थे।

सन् '३४ में जब ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल से विवाद हुआ, तब उन्होंने अपनी हिन्दी जातीयता को तिलाञ्जलि देने की धमकी दी। मेरी जन्मभूमि बंगाल है, युक्तप्रान्त की नाक की चिन्ता हो तो सचेष्ट हो जाइये।

'कुल्ली भाट' मे सात-आठ साल की उम्र से, बॅंगला मे कविता रचने की बात लिखी। सालभर बाद 'वन्दना' के बँगला लेख में उन्होंने जताया कि चवालिस साल की उम्र के बत्तीस साल उन्होंने बंगाल में बिताए है, बचपन में उन्होंने अ-आ इ-ई बँगला मे सीखी।

पर जब एन्ट्रेन्स मे गणित का पर्चा करने बैठे, तब कापी मे उन्होंने पद्माकर के कवित्त लिखे। जब स्वामी प्रेमानन्द महिषादल आये, तब बँगला कविता से रिझाने के बदले उन्हे रामायण पढ़कर सुनाई। बँगला की अपेक्षा हिन्दी पढ़ने, लिखने और बोलने में उन्हें ज्यादा सुविधा होती थी।

पिता की सामाजिक स्थिति प्रतिभाशाली पुत्र के लिए अपमानजनक थी; वैसे ही हिन्दी-भाषी होना, बंगालियों के बीच उनकी हिन्दी जातीयता भी, अपमान का कारण थी। जैसे वह पिता पर गर्व करते और उन्हे अस्वीकार भी करते, वैसे ही वह हिन्दी

का पक्ष लेकर बंगालियों से जूझते और अपनी हिन्दी जातीयता को अस्वीकार करते। इसीलिए उन्होंने कहानी गढी कि आरम्भ मे सस्कृत या बँगला मे कविता करते थे।

सन् '३४ मे वह तुलसीदास और रत्नावली की कहानी घोख रहे थे। उस वर्ष 'भक्त और भगवान्' कहानी लिखी; भक्त की पत्नी का नाम रखा सरस्वती। 'तुलसीदास' मे रत्नावली को शारदा बनाकर अपने चरितनायक के सामने उतारा। सन् '३६ मे जब उन्होंने 'गीतिका' का समर्पण लिखा, तब तक मनोहरादेवी पूरी तरह रत्नावली बन चुकी थी। उन्हे अपनी हिन्दी काव्य-साधना की मूल प्रेरणा मानकर निराला ने लिखा— 'जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आँखें नही मिला सका—लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हीन हिन्दी प्रान्त मे, बिना शिक्षक के, 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर, पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी", इत्यादि।

इस कथा-सूत्र को 'कुल्ली भाट' मे उन्होंने और पल्लवित किया। मनोहरादेवी की समझ में वह हिन्दी के पूरे गँवार थे, 'बिलकुल ठोस मूर्ख'। हिन्दी को लेकर पति-पत्नी की बातचीत इस प्रकार हुई :

पति—तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी मे क्या है ?

पत्नी—जब तुम्हे आती ही नही, तब कुछ नही है।

पति—हिन्दी मुझे नही आती ?

पत्नी—वह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढ़ी है, बस तुम खडीबोली का क्या जानते हो ?

संवाद के बाद बात पूरी करते हुए निराला ने लिखा कि उनकी पत्नी ने खडीबोली के बहुत-से महारथियो के नाम गिना दिये। पर जब मनोहरादेवी ने भजन गाया तो तुलसीदास का। कहानी मे निराला खडीबोली का ज्ञान पत्नी पर आरोपित कर रहे थे। तब प्रथम महायुद्ध शुरू न हुआ था; खड़ीबोली के बहुत कम कवि प्रसिद्ध हुए थे, गाँवो मे प्रसिद्ध होकर पहुँचनेवाले आधुनिक कवि और भी कम थे। मनोहरादेवी डलमऊ की साधारण शिक्षा-प्राप्त १३-१४ साल की बालिका थी। उन्होंने नई-पुरानी हिन्दी का भेद समझकर खड़ीबोली काव्य का समर्थन किया होगा, या सोलह साल के निराला ने, 'हिन्दी मे क्या है'—ऐसा प्रश्न किया होगा—इसकी सम्भावना कम है।

निराला के अनुसार मनोहरादेवी ने खड़ीबोली के दो गीत गाये।

पहला—अगर है चाह मिलने की तो हरदम लौ लगाता जा।
दूसरा—सासुजी का छोकड़ा, मेरी ठोड़ी पे रख दिया हाथ।
बहुत गम खा गई, नही चाँटे लगाती दो-चार।

यदि सच ही मनोहरादेवी ने ये गीत गाये तो इनसे भी उनके आधुनिक हिन्दी-काव्य-ज्ञान का परिचय नही मिलता।

निराला को जिस बात ने प्रभावित किया, वह था मनोहरादेवी का मधुर कण्ठ-स्वर। श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन—सुनकर पहली बार निराला के ज्ञान-नेत्र खुले; उन्हे संगीत के साथ काव्य के अमित प्रभाव का ज्ञान हुआ। यह भजन निराला जीवन-

-र गाते रहे; इससे अधिक उनके हृदय को प्रभावित करनेवाला दूसरा गीत संसार में न था। मनोहरादेवी गढाकोला में भी रामायण पढा करती थीं। निराला के चाचा दरवाजे पर बैठे सुनते थे। मनोहरादेवी ने निराला का परिचय खड़ीबोली से नहीं, तुलसीदास से कराया। तुलसीदास को ज्ञान मिला, पत्नी के उपदेश से; निराला को हिन्दीसेवा के लिए प्रवृत्त किया मनोहरादेवी ने !

गवहीं के बाद वह मनोहरादेवी को लेकर महिषादल गये थे। 'कुल्ली भाट' में उन्होंने लिखा कि वह पत्नी को छोड़कर ज्ञान-प्राप्ति के लिए पिता के पास अकेले बंगाल पहुँचे। तुलसीदास अपनी पत्नी को छोड़कर घर से निकले थे, तब निराला मनोहरादेवी को अपने साथ महिषादल कैसे ले जाते ? फेल होने पर पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया। यह घटना कथा का रस भंग करती थी; निराला ने उसका उल्लेख अनावश्यक समझा। 'सुकुल की बीवी' में उसकी ज़रा-सी झलक दी—फेल होने के समय जमींदारों के यहाँ ब्याह मे शामिल होने का बहाना करके स्वेच्छा से घर छोड़कर निकल पड़े।

मनोहरादेवी द्वारा पराजित होने पर, कहानी के अनुसार, वह बंगाल मे खडी-बोली की साधना करने लगे। 'सरस्वती', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाएँ मँगाकर पढने लगे। रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक 'सरस्वती' लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगे।

हिन्दी का व्याकरण संस्कृत और बँगला से भिन्न है। निराला ने कमाल किया कि उसकी वाक्य-रचना अंग्रेजी व्याकरण से भी सिद्ध कर ली। हिन्दी से असन्तुष्ट निराला यह दिखा रहे थे कि संस्कृत-बँगला-अंग्रेजी व्याकरण से अधिक परिचित थे; इनकी तुलना में हिन्दी उनके लिए विदेशी भाषा के समान थी ! इससे यदि कोई यह समझे कि खड़ीबोली का व्याकरण सीखने के बाद ही उन्होने हिन्दी लिखना शुरू किया, तो इस भ्रम का खण्डन भी उन्होने कर दिया। 'कुल्ली भाट' मे लिखा, "व्याकरण की शिक्षा पूरी करने से पहले 'जुही की कली' लिखी थी, जो व्याकरण की दृष्टि से बाद को पूरी उतरी।"

सोलह साल की उम्र में गवहीं हुई। इसके बाद उन्होने व्याकरण सीखी। पर सोलह साल की उम्र मे उन्होंने 'जुही की कली' भी लिखी थी; इसलिए 'जुही की कली' की रचना पहले व्याकरण की साधना बाद को।

अपनी गाथा में एक विशेष अध्याय उन्होने 'जुही की कली' और मुक्तछन्द पर रचा।

'पल्लव' में अपनी कविताओं का रचना-काल देकर पन्त ने सिद्ध किया था कि वह किशोरवय से ही सुन्दर कविताएँ लिखने लगे थे। उन्होंने भूमिका मे विशेष रूप से 'उच्छ्वास' के मुक्तछन्द की चर्चा की जिसकी रचना १९२१ में हुई थी। सन् '२१ तक निराला की जो दो-एक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं, उनमे मुक्तछन्द में एक भी न थी। पर यह कैसे हो सकता था कि मुक्तछन्द का आविष्कार पन्त करें या निराला से पहले छायावादी कविताएँ लिखकर युगप्रवर्तक बन जायँ ?

'पन्तजी और पल्लव' में उन्होंने हिन्दी-संसार को सूचित किया कि जब वह

१६-१७ साल के थे, तभी उन्होंने मुक्तछन्द की सृष्टि कर डाली थी। मुक्तछन्द की सृष्टि करने का कारण यह वताया कि कलकत्ते मे पारसी रंगमंच पर हिन्दी नाटको का भ्रष्ट उच्चारण देखकर उन्हें कष्ट होता था। पर 'जुही की कली' का रंगमंच से कोई सम्वन्ध नही है, 'पंचवटी प्रसंग' की तरह उसमें पात्रो का संवाद नही है। इसके अलावा जव वह सोलह साल के थे, तव कलकत्ते से उनका सम्पर्क नही के वरावर था। अभी तो पत्नी ने उन्हे खडीवोली सीखने का उपदेश दिया था, कलकत्ते जाकर पारसी थियेटर देखने का समय उन्हे कव मिल गया ?

सन् '२० मे जव उन्होंने वंगभाषा के उच्चारण पर लेख लिखा, तव वह मात्रिक छन्दों के पूर्ण भक्त थे। वह वँगला के मुक्त-अमुक्त सभी तरह के छन्दों को कविता के अयोग्य समझते थे। सन् '२२ मे वह कलकत्ते आकर जमे, तव उन्होंने हिन्दी-वँगला नाटक देखे। गिरीशचन्द्र घोष के मुक्तछन्द से वह विशेष प्रभावित हुए। तव उन्होंने एक छोटी-सी नाटिका 'पंचवटी प्रसंग' लिखी। 'जुही की कली' जव 'आदर्श' मे छपी, तव उसके शीर्षक के नीचे उन्होंने लिखा—

'वँगला छन्द'।

'समन्वय' मे जिसने भी 'अनामिका' की समालोचना की, वह निराला से जरूर परिचित था। उसने निराला के मुक्तछन्द के प्रेरणा-स्रोत की ओर सही संकेत किया, "वंगाल के नाट्य सम्राट् महाकवि गिरीशचन्द्र ने वड़ी खूवी से ऐसे छन्दों को अपनाया है, जिनमे भाव के अनुसार पंक्तियाँ तो छोटी-वडी होती है, पर पढने मे सभी सुन्दर होती हैं और इसी से छन्दो मे एक अनोखी स्वाभाविकता आ जाती है।"

पन्त को गिरीशचन्द्र घोष के मुक्तछन्द की जानकारी न थी। उन्होने निराला के मुक्तछन्द का सम्वन्ध रवीन्द्रनाथ की तुकान्त रचनाओ से जोड़ा और अक्षर-प्रधान सभी छन्दो को—मात्रिक वृत्तों की तुलना मे हेय ठहराते हुए—कवित्त को भी हिन्दी के लिए विजातीय घोषित कर दिया। निराला ने सिद्ध किया कि उनका वर्णिक मुक्त-छन्द कवित्तछन्द के आधार पर ही चलता है। कवित्त हिन्दीभाषियों को अत्यन्त प्रिय है, यह सिद्ध करना वहुत सरल था। स्वयं मैथिलीशरण गुप्त ने 'वीरांगना' काव्य का अनुवाद कवित्त की आधी पंक्ति को आधार मानकर किया था। निराला ने स्मरण किया कि कलकत्ते मे मिलने पर गुप्तजी ने उनसे कहा था—मेरा भी यही विश्वास है कि मुक्तकाव्य हिन्दी मे कवित्त-छन्द के आधार पर ही सफल हो सकता है।

गुप्तजी का छन्द अतुकान्त था; पंक्तियों मे अक्षरो की संख्या एक-सी थी, इसलिए वह मुक्तछन्द न था। पर कवित्त के आधार पर वह रचा गया था, यह तो स्पष्ट था ही। निराला का मुक्तछन्द उसी कवित्त के आधार पर चलता है और कवित्त की गति हिन्दी के स्वभाव के अनुकूल है—यह सिद्ध करने के लिए उन्होने मैथिलीशरण गुप्त की राय का हवाला दिया।

पर क्या यह सम्भव था कि अतुकान्त या मुक्तछन्द रचने के लिए निराला से पहले मैथिलीशरण गुप्त ने कवित्त का महत्त्व पहचाना हो ? नही, यह विलकुल सम्भव न था। निराला ने लिखा, "गुप्तजी द्वारा किया गया वीरांगना-काव्य का अनुवाद जिन दिनो

'सरस्वती' में निकल रहा था, उन दिनों इस अमित्र छन्द की सृष्टि मैं कर चुका था—मैं कर क्यों चुका था, भाव के आवेश में 'जुही की कली' उन दिनों मेरी कापी में खिल चुकी थी।"

तब वह सन् '२२ तक प्रकाशित क्यों न हुई? इसलिए कि महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उसे वापस कर दिया था। निराला का प्रवेश हिन्दी-संसार में और पहले न हुआ तो इसके लिए पितृतुल्य आचार्य द्विवेदी ही उत्तरदायी हो सकते थे। 'जुही की कली' वापस करते हुए उन्होंने लिखा—आपके भाव अच्छे हैं, पर छन्द अच्छा नहीं, इस छन्द को वदल सकें तो वदल दीजिए।

कल्पना कीजिए कि 'मसल दिये गोरे कपोल गोल' आदि पंक्तियो के भाव द्विवेदीजी को पसन्द थे, केवल छन्द पर आपत्ति थी। पर 'पंचवटी प्रसंग' पर द्विवेदीजी ने सम्मति भेजी थी कि "६० फीसदी हिन्दीवाले इस छन्द को अच्छी तरह पढ़ न सकेंगे, पर चीज़ नई है, अगर इसका आदर हो तो आगे भी इसी छन्द में कुछ लिखियेगा। मुझे तो रचना ललित और भावपूर्ण जान पड़ती है।" यदि द्विवेदीजी मुक्तछन्द के विरोधी होते तो निराला को यह सलाह न देते कि इस छन्द का आदर हो तो आगे भी उसमें लिखियेगा।

'पंतजी और पल्लव' में कुछ दूर आगे चलकर स्वयं निराला ने द्विवेदीजी को मुक्तछंद सुनकर प्रसन्न होते दिखाया। लिखा—"पूज्यपाद द्विवेदीजी महाराज ने भी इसे मेरे मुख से सुना है और उस समय की उनकी प्रसन्नता ने मुझे सफलता का ही विश्वास दिलाया।" इससे भी स्पष्ट है कि द्विवेदीजी ने मुक्तछन्द का विरोध—कम-से-कम '२२-२३ तक—न किया था।

पर निराला ने 'जुही की कली' उन्हे भेजी कब? अवश्य ही सन् '२० से पहले, क्योंकि निराला को यह याद था कि सन् '२० में उन्होंने साहित्यसेवा से अवकाश ग्रहण किया था। सन् '२१ में वह उनसे दौलतपुर में मिलने गये ही थे। पर सन् '२० में जव वंगभाषा के उच्चारण पर उन्होने अपना लेख द्विवेदीजी के पास भेजा, तभी उन्होंने उन्हें अपना पहला पत्र भी लिखा। आशा प्रकट की कि "वंगप्रवासी एक अपरिचित सन्तान के परिश्रम को आप सफल करेंगे।" २६ अगस्त सन् '२० से पहले वह द्विवेदीजी के लिए अपरिचित सन्तान थे। स्पष्ट है कि इससे पहले उन्होंने 'जुही की कली' उनके पास भेजी न थी। यदि सोलह साल की उम्र में वह कवि हो गये थे तो छह साल तक हिन्दी संसार मे उनका प्रवेश रोकनेवाले महावीरप्रसाद द्विवेदी नही थे।

निराला जिस समय 'पंतजी और पल्लव' में द्विवेदीजी द्वारा 'जुही की कली' के वापस किये जाने की कहानी लिख रहे थे, उस समय द्विवेदीजी जीवित थे। निराला को ज्ञान होता कि यह झूठी कहानी है तो अवश्य उसे न लिखते। पर वह अपनी कल्पना को सत्य मान रहे थे; इसलिए पूर्ण आत्मविश्वास से उन्होने कहानी लिख डाली थी।

निराला ने गाथा का चौथा अध्याय रचा 'मतवाला'-मंडल के वारे में। महादेव-प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिकलाल से शिवपूजन सहाय की अनवन, साल के भीतर ही

उनका 'मतवाला' छोड़ना, 'भावों की भिड़न्त' के बाद निराला से महादेवप्रसाद सेठ का मनमुटाव साल-भर तक उसमें उनकी रचनाओं का न छपना, 'मतवाला' में फिर शामिल होना, फिर छोड़ना, मुंशीजी द्वारा कमरे का किराया माँगा जाना, निराला का निकलना, महादेवप्रसाद सेठ का उग्र के वश होना, नवजादिकलाल श्रीवास्तव से महादेवप्रसाद सेठ की लड़ाई,—निराला ने इन सब बातों पर कभी न लिखा, न किसी से कुछ कहा। अपने साथ दुर्व्यवहार की जितनी भी घटनाएँ हुईं, उन सब पर उन्होंने पर्दा डाला। 'मतवाला'-मंडल से कुछ समय तक उन्हें अपूर्व स्नेह मिला। 'मतवाला' द्वारा उन्हें ख्याति का आनन्द मिला। 'मतवाला'-काल कलकत्ते में उनका रोमांसकाल भी था। इन सब कारणों से वह 'मतवाला' से अपना सम्पर्क रँग-चुनकर पेश करते थे; उनकी स्वप्नशील आँखों में वह समय उनके जीवन का स्वर्ण-युग था।

'पंतजी और पल्लव' में उन्होंने लिखा कि उन्हें हिन्दी-संसार के सामने लाने का सबसे अधिक श्रेय महादेवप्रसाद सेठ को है। वह उनकी कविता के हृदय से प्रशंसक हुए। निराला जब यह लिख रहे थे, तब 'मतवाला' से अलग थे, काम की तलाश में दर-दर भटक रहे थे, महादेवप्रसाद सेठ 'उग्र' की किताबें छापे जा रहे थे, निराला की गद्य-पद्य की कोई पुस्तक 'अनामिका' के बाद उन्होंने न छापी थी। निराला ने यह सब 'पंतजी और पल्लव' में न लिखा।

जब महादेवप्रसाद सेठ न रहे, तब निराला के कल्पनालोक में उनकी मूर्ति और भी भव्य हो उठी। उन्होंने उन पर कविता लिखने का विचार किया, पर सरस्वती-देवी ने कृपा न की। तब उन्होंने अपना कविता-संग्रह उनकी स्मृति को समर्पित करने का विचार किया। शिवपूजन सहाय से उन्होंने परिवर्धित 'अनामिका' के लिए महादेव-प्रसाद सेठ पर नोट लिखने को कहा। 'मतवाला' और निराला के सम्बन्ध पर वह क्या लिखें, यह भी अपनी तरफ़ से उन्होंने उन्हें बता दिया। "कवि निराला को सेठजी ने ही हिन्दी में रखा है, 'मतवाला' निकालने का एक उद्देश्य उनकी कविता निकालना भी था, उसके प्रति सेठजी के भाव-विचार आदि थोड़े में लिखिये।"[२]

शिवपूजन सहाय ने मतवाला और निराला के बारे में बहुत-कुछ लिखा, पर उन्होंने यह कहीं न लिखा कि महादेवप्रसाद सेठ ने 'मतवाला' इसलिए निकाला कि उसका एक उद्देश्य निराला की कविताएँ प्रकाशित करना था। यह उद्देश्य निराला ने महादेवप्रसाद सेठ पर आरोपित किया था। परिवर्धित 'अनामिका' के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा, "वे न होते तो 'निराला' भी न आया होता।"

'मतवाला' के साथ कलकत्ते का अभिन्न संबन्ध था। निराला के मन में 'मतवाला' जितना भव्य था, उतना ही कलकत्ता। कलकत्ते की गरिमा से अवध के दरिद्र हिन्दी-भाषियों में वह अपने को काफी गौरवान्वित करते थे। वास्तविकता यह है कि कलकत्ते में बार-बार उन्हें अपमानित होना पड़ा, उनके श्रम का सबसे भयंकर शोषण कलकत्ते में हुआ, वहाँ से कई बार भागकर उन्हें काशी, लखनऊ, गढ़ाकोला या डलमऊ आना पड़ा, उनके चरित्र की अनेक कमजोरियाँ भी सबसे ज्यादा उभरकर कलकत्ते में सामने आयीं।

निराला ने कलकत्ते से बहुत-कुछ पाया, महादेवप्रसाद सेठ उनकी ख्याति में सहायक हुए—यह बात अलग है। यहाँ प्रश्न है महादेवप्रसाद सेठ, 'मतवाला' और कलकत्ते के बारे में एक भव्य गाथा रचने का। इस गाथा में निराला ने जो चित्र आँका, वह अतिरंजित था।

निराला की इस गाथा के अन्तिम अध्याय का सम्बन्ध है उनके जन्म संवत् से।

किस सन्-संवत् में निराला का जन्म हुआ ?

११ जनवरी सन् '२१ को उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम अपने पत्र में उम्र लिखी थी—२२ साल। इस हिसाब से उनका जन्म हुआ १८९९ में।

सन् '२६ के अन्त में रामनरेश त्रिपाठी को अपने परिचय में उन्होंने जन्मतिथि बताई माघ सुदी ११, संवत् १९५५। उस दिन मंगल था; अंग्रेजी की २१ फरवरी, सन् १८९९।

सन् '३३ में उन्होंने मिश्रबन्धुओं को जन्म संवत् बताया १९५५।

ये तीनों उल्लेख उस समय के है, जब उनका मन अपेक्षाकृत संतुलित था। इन तीनों उल्लेखों में परस्पर कहीं विरोध नहीं है। इसलिए उनके जन्म का संवत् १९५५, सन् १८९९ ही सही है। जन्मतिथि—माघ सुदी ११, मंगलवार, २१ फरवरी।

महिषादल स्कूल के रजिस्टर में उनके भर्ती होने की तारीख है १३ सितम्बर १९०७, उस दिन उम्र —१० साल ८ महीने। इस हिसाब से उनका जन्म होना चाहिए सन् १८९६ या १८९७ में।

उपर्युक्त तीन उल्लेखों के मुकाबले स्कूल-रजिस्टर में लिखी आयु प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। रजिस्टर में उनके जन्म का साल, महीना या तारीख नहीं लिखी गई। जो भर्ती कराने गया था, उसने हिसाब लगाकर उम्र बता दी। या तो हिसाब लगाने में गलती हुई या रामसहाय तेवारी ने उम्र दो साल बढ़ाकर बताई। एक बात निश्चित है कि जनवरी सन् '२१ में, जब उन्होंने शरीर की ऊँचाई के आधे इंच का भी हिसाब रखा था, उनकी उम्र का खाता दुरुस्त था; और सन् '२६, सन् '३३ में वह अपना जन्म संवत् ५५ का ही मानते आये थे।

सन् '२७-'२८ में वह अपना रचना-काल पीछे ठेलने लगे थे। 'जुही की कली' का सृजन-काल सन् '२१ से पहले निश्चित किया था। यह सब वह कितने निर्दोष भाव से कर रहे थे, इसका एक प्रमाण यह है कि सन् '३३ में उन्होंने जब 'स्वामी सारदानन्दनजी महाराज और मैं' लिखा, तब 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने गद्य-लेख का रचनाकाल भी एक साल पीछे ठेल दिया—"जब १९१९ में हिन्दी और बँगला के व्याकरण पर लिखा हुआ मेरा लेख शुद्ध कर, सरस्वती में छापकर १९२० में उन्होंने साहित्यसेवा में अवसर ग्रहण किया।"

वास्तविकता यह कि लेख उन्होंने भेजा अगस्त १९२० में। कोई भी सरस्वती की फाइलें पलटकर देख सकता था कि लेख १९१९ में नहीं १९२० में छपा है। निराला जान-बूझकर कहानी गढ़ते तो झूठ के जाहिर होने से डरते और कम-से-कम इस तरह आसानी से पकड़ में आनेवाला झूठ न बोलते। पर उन्हें विश्वास हो गया

था कि गद्य-रचना १९१९ की थी; इसलिए वैसा लिख भी दिया।

रामशंकर शुक्ल निराला से ३-४ साल बड़े थे। उम्र की बात चलने पर निराला कहते—'बसि, सालु खांड़ बड़े हौ।' दूसरों की उम्र कम करके उन्हें बराबरी के स्तर पर खींच लाना, अपनी उम्र बढाकर दूसरों मे बड़े बनना—यह रुझान उनमे था। ३ मई १९२४ के 'मतवाला' मे सुमित्रानन्दन पंत पर उनका लेख निकला। इसमे उन्होंने लिखा था, "पंतजी की उम्र इस समय बाईस साल की है। आपका जन्म अल्मोड़ा प्रान्त मे, १९०२ मे हुआ था।"

पंतजी का जन्म हुआ था २० मई १९०० को।

निराला के हिसाब मे उन्हें दो साल छोटा कर दिया गया था।

'मुकुल की बीवी' कहानी-संग्रह की अंतिम कहानी 'क्या देखा' के नीचे एक नोट है: "यह मेरी पहली कहानी है। १९२२ ई० मे 'मतवाला' के कई अंकों मे निकली थी।"

पर 'मतवाला' का प्रकाशन शुरू हुआ था अगस्त सन् '२३ मे। यहाँ भी उन्होंने कहानी का रचनाकाल साल-भर पहले कर लिया था।

'कला की रूपरेखा' में—१९३६ के प्रारम्भ मे—उन्होने अपनी उम्र चालीस बताई, वाचस्पति पाठक की अट्ठाईस। यहाँ उन्होंने अपनी उम्र दो-तीन साल बढाकर बताई।

'कुल्ली भाट' लिखते समय—१९३८ मे—उन्होंने अपनी ४२ साल की उम्र का उल्लेख किया। सन् '४० मे 'वन्दना' वाले लेख मे अपने को ४४ का बताया।

सन् '३६ मे चालीस के, '३८ मे बयालिस के, '४० में चवालिस के। सन् '४७ मे स्वर्णजयन्ती के लिए पचास के!

उम्र बढ़ाने की सब कार्रवाई बाद के वर्षों की है; शुरू मे वह जितने साल के थे, उतने का ही उल्लेख करते थे। पर गाथा के इस अध्याय का सबसे दिलचस्प अंग सन्-संवत् से नही, तिथि से सम्बन्धित है। उन्होंने देखा कि दुलारेलाल भार्गव वसन्त-पंचमी को अपना जन्मदिवस मनाते हैं। उन्होने निश्चय किया कि वह भी वसन्त-पंचमी को ही पैदा हुए थे। वसन्तपंचमी सरस्वती-पूजा का दिन, निराला सरस्वती के वरद पुत्र; वसन्तपंचमी को न पैदा होते तो कब पैदा होते?

नामकरण-संस्कार से लेकर जन्मदिवस तक निराला ने अपना जन्मपत्र नये सिरे से लिख डाला।

बाद को उनके मन में जो असंतुलन पैदा हुआ, उससे इस गाथा-रचना-प्रक्रिया का सहज सम्बन्ध है।

१७

विक्षेप—अर्द्ध विक्षेप ?

प्रारम्भ मे निराला के व्यवहार मे जो असाधारणता थी, उस पर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया था। बातचीत में वह कभी-कभी उत्तेजित हो जाते थे; 'मतवाला'-कार्यालय में मुन्शी नवजादिकलाल उन्हें छेड़ते थे और महादेवप्रसाद सेठ उत्तेजित निराला की बातचीत का आनन्द लेते थे। इसके अलावा अपनी महत्ता के बारे मे अपने विचार वे छिपाते न थे, वरन् रवीन्द्रनाथ से स्पर्धा का भाव वह सबके सामने प्रकट कर देते थे। आचरण मे थोडी-सी उच्छृङ्खलता थी जो कलकत्ते में विशेष ध्यान देने की बात न थी। निराला के लिखने-बोलने में एक विशेषता यह थी कि वह बीच-बीच में कूट शैली का प्रयोग करने लगते थे जो लोगों की समझ मे न आती थी। सन् '२१ में महावीरप्रसाद द्विवेदी को—अक्षर हूँ, न साक्षर और न निरक्षर—लिखकर वह इस कूट शैली का परिचय दे चुके थे। भाग्य ने उनके साथ अन्याय किया है, यह भाव उस समय भी उनके मन में था। कल्पित या वास्तविक अन्याय के प्रति रोष के क्षणों में वह इस कूट शैली का प्रयोग करते थे। उस रोष के साथ शोक, भय, हास्य आदि अनेक भावो का मिश्रण होता था।

'मतवाला' मे नवजादिकलाल श्रीवास्तव के नाम से निराला की प्रशंसा मे जो लेख निकला, उसमे निराला के युगान्तरकारी रूप, उनके अखिल भारतीय महत्त्व का चित्र उनके संकेत पर ही मुन्शीजी ने खीचा था। 'भावों की भिड़न्त' के जवाब मे मुन्शीजी के नाम से जो दूसरा लेख 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ, उसमें निराला ने बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पर आवेश में आने का आरोप लगाया; तुम न लिखना चाहिए, आप लिखना चाहिए, इस बात का उन्हें ध्यान न रहा। लेख मुन्शीजी का लिखा होगा, पर उसमें दिए तर्क निराला के है और नवीन पर आवेश मे आने का आरोप निश्चय ही उनका है। इस लेख की तैयारी के समय निराला का मन विचलित था, वह स्वयं आवेश में थे, 'प्रभा' का लेख उन्हें घोर अन्यायपूर्ण लग रहा था, मुन्शीजी के लिखे उत्तर में भी उनके मन की झलक साफ है।

'मेरे गीत और कला' मे भिक्षुक के प्रति अपनी कविता से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत

करने के बाद उन्होंने उसके श-ण-व-ल-हीन सौन्दर्य पर प्रकाश डाला, फिर लिखा, "मुहावरा, अनुप्रास और चित्र देखिए, पर यह भी कला नहीं, पर देखिए। मुझे आवेग नहीं। यह मेरा सीधा ढंग है।"

आवेश में आने पर उस स्थिति को अस्वीकार करना उनके लिए बहुत स्वाभाविक था। यह क्रिया 'मतवाला' के लेख में भी सम्पन्न हुई थी।

आवेश में आने के अलावा विरोधियों के बारे में अद्भुत कल्पनाएँ करके वह मन-ही-मन—अथवा प्रकट—हँसते थे, यह 'पन्तजी और पल्लव' में महावीरप्रसाद द्विवेदी वाले प्रसंग से मालूम होता है। आचार्य के सोते समय छायावादी कवि "उनकी नासिका के रन्ध्र में लांगूल करके उन्हें जगा देते थे," इस तरह की कल्पनाओं से वह अन्याय का प्रतिशोध लेते थे।

जब वह काशी विश्वविद्यालय की हिन्दी सभा में भाषण कर रहे थे, तब वह सहसा उत्तेजित हो उठे थे और अयोध्यासिंह उपाध्याय सभा से चले गये थे। नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनका अचानक उत्तेजित हो उठना देखा था।

हेमचन्द्र जोशी ने अपने लेखों में उनकी उत्तेजना के लिए काफी सामग्री प्रस्तुत की। निराला ने पहले 'कला के विरह में जोशीबन्धु' लिखा। इसमें एक अद्भुत कल्पना उन्हें विशेष रूप से हँसानेवाली थी,—महमूद बकरे की पूँछ की तरफ़ से छुरा भोंकने लगे; लोगों के रोकने पर बोले—बकरा मेरा है, मैं इसे पूँछ की तरफ़ से जिबह करूँगा।

१९३१ में हेमचन्द्र जोशी ने जब छायावादी कवियों और विशेष रूप से निराला पर आक्रमण करते हुए 'माधुरी' में—कूप-मण्डूकों के फुदकने-टर्राने के रूपक वाला—लेख लिखा तब उससे निराला बहुत उत्तेजित हुए। इसका उत्तर उन्होंने 'वर्तमान धर्म' द्वारा दिया और इस लेख में उन्होंने अपनी कूट शैली का भरपूर प्रयोग किया: हेमा क्या है? हेम या गौरवर्ण गंगा यानी बड़े भाई साहिबा हेमचन्द्र। इला क्या है? श्यामा यमुना यानी छोटे भाई साहिबा इलाचन्द्र। बीच में क्या है? ज्ञान-राशि सरस्वती, जो न थी और होगी न होगी ऐसी। जैसे दिल्ली का भाड़ झोंकना, ज्ञान नहीं ज्ञान है। है-है और नहीं-नहीं। कहिए जनाब, हम लोग न छायावाद जानते हैं, न वमनवाद जानते हैं। एक दूसरा रूप कहता है, ऐसा नहीं भैसा जैसे। उसकी दो साँसें हों, एक निःश्वास और दूसरा प्रश्वास, दोनों के बीच में न 'बड़ास' और न 'फड़ास' अर्थात् न नविन्यास और न 'उपिन्यास'; बस गतश्वास—गतश्वास, मौत! वह मौत गधा भी जानता है, इसीलिए काँपता है यानी मानता है। और सुनियेगा?

निराला सुना रहे थे; कूट भाषा में अपना उग्र रोष प्रकट कर रहे थे। रोष के साथ हास्य उन्हें गुदगुदा रहा था, और वह मौत की बात भी सोच रहे थे, तमाम हास्य-रोष के नीचे कहीं गूढ़ वेदना उनके मन को मथ रही थी। बनारसीदास चतुर्वेदी ने आन्दोलन चलाया और इस बात का खूब प्रचार किया कि निराला को मस्तिष्क-विकार है।

इस समय उनकी पुत्री बहुत बीमार थी, कई महीने से रायबरेली के अस्पताल में

थी। निराला को नींद न आती थी, बाल कटवा दिये थे। बहुत परेशान थे। ऐसे में 'रँगीला' साप्ताहिक का सम्पादन करना पड़ा। उसमे उनकी अनियंत्रित शब्द-क्रीड़ा व्यक्त हुई—लेखकों के लिए हिदायत की कि शिष्ट पोषक मिष्ट इष्ट दिष्ट होकर हास्य-सृष्ट साहित्य भेजें। 'कृष्णजी का विवाह' कहानी में गूढ़ हास्य और कूट भाषा का प्रयोग किया।

सन् '३४ में ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' का लेख पढ़ने पर उन्होंने उत्तेजित होकर उन्हें चमरौधे से पीटने की धमकी दी थी। बातचीत में वह हिन्दीवालो के अन्याय की कल्पना से क्रुद्ध हो जाते थे। उन्होने हिन्दी जातीयता को त्यागने की धमकी भी दी थी। रात को टहलना, हँसी दबाना, फिर फू-फू करके हँसना, दूसरे उन पर हँस रहे हैं, यह सोचकर अकारण किसी पर शक करना, एक गुप्त त्रास की भावना, पुलिस उन्हें फँसाने को घर में बम न रख गयी हो, यह सोचकर सहमना—यह सब '३४-'३५ के निराला के व्यवहार में दिखाई देता था।

सन् '३५ में सरोज की मृत्यु से उनके मन को जीवन का सबसे बड़ा धक्का लगा। वह शरीर के जर्जर होने की बातें कहते। उन्होने शिवपूजन सहाय को लिखा था, "बिजली के धक्के लगते हैं।" मन के आघातों को वह शरीर पर झेले हुए बिजली के धक्के-जैसा महसूस करते थे।

उसके बाद 'कुल्ली भाट' और 'कुकुरमुत्ता' के दिन आये, जब उनके हास्य के नीचे उनकी वेदना, उनका रोष छिपा होता था। युद्धकालीन परिस्थितियों में उनका जीवन बहुत अस्त-व्यस्त रहा। वह राज लेने-देने की बातें करने लगे। कर्वी की बीमारी के बाद इम्पीरियल आनर, शेरों से लड़ाई, विदेश-यात्रा—यह सब शुरू हो गया।

जीवन के अभावों की पूर्ति निराला कल्पना से करते थे। सबसे बड़ा अभाव सम्पत्ति का। इसी से वह विश्वविद्यालय मे पढ़ न सके, विदेश-यात्रा के लिए न जा सके, विश्व-कवि के रूप में विख्यात न हुए। सब अभावों की जड़—सम्पत्ति का अभाव। सम्पत्ति का सबसे स्थूल रूप इमारतें और रुपया। इसलिए लाखों का हिसाब, करोड़ो की इमारतें। दिलचस्प बात है, किसी से उन्होंने यह नही कहा कि महिषादल के राज-भवन उन्हीं के हैं। उनकी निगाह लक्षपतियों की हवेलियों पर थी।

दूसरा अभाव ख्याति का। विख्यात लोगों में सबसे बड़े नाम—जवाहरलाल नेहरू और रवीन्द्रनाथ ठाकुर। इन्होने जितने काम किये, वे सब निराला को भी करने चाहिए।

तीसरा अभाव विद्या का। इसलिए डॉ० सैयद हुसेन डी०-लिट्०। विद्या में अंग्रेजी का महत्त्व सर्वोपरि—इसलिए वह डी० लिट्० अंग्रेजी के, लन्दन से। निराला अधिकतर अंग्रेजी बोलते, उसी अभाव की पूर्ति के लिए। प्रोफेसरों का सम्मान था। निराला विज्ञान में अपने अनुसंधान से विरोधियों का सामना कर रहे थे, विज्ञान के एक छात्र को शेक्सपियर पढ़ा रहे थे।

चौथा अभाव प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेने का। निराला उस हीन-स्थिति से निकलने के लिए अपना नाम बदलते, अपने जन्म और पिता के बारे मे नयी-नयी कल्पनाएँ करते।

पांचवां अभाव—वह गृहत्यागी संन्यासी न बन पाये। निराला संन्यासी वेश में, अथवा अपनी लुंगी लपेटे अपनी कल्पनाओं या आचरण से उस अभाव को भी पूरा करते।

इन सब सपनों के साथ त्रास की भावना जुड़ी हुई थी। त्रास से बचने के लिए वह अपनी महिमा के भव्य स्वप्न रचते थे और महिमा के भव्य स्वप्न पूरे न होने पर त्रास के दुःस्वप्न रचते थे। दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध था। लोग उनका पीछा कर रहे हैं, उन्हें अपमानित करते हैं, उन पर हँस रहे हैं, अपना बड़प्पन दिखाते हैं, उनका राज लेकर उन्हें षड्यन्त्र में फँसाना चाहते हैं, इस तरह का भय उन्हें सताता था।

साधारणतः निराला अपने दिवास्वप्नों की बातें अपने साहित्य मे न आने देते थे, पर सन् '३८ मे जहाँ-तहाँ साहित्य मे भी उनकी झलक आने लगी।

सन् '४१ में उन्होंने एक कहानी लिखी—'जानकी'। इसमें उन्होंने अपने को अखिल भारतीय कम्युनिस्ट-नेता के रूप में कल्पित किया। अधिकतर वह अपने को कांग्रेस नेताओं के पथदर्शक के रूप में देखते थे, ए० आई० सी० सी० में अपने भाषणों की बात करते थे। यह अकेली कहानी है जिसमें उन्होंने अपने को कम्युनिस्ट-नेता के रूप मे देखा है।

कहानी में उन्होंने साम्यवाद से अपना सम्बन्ध कलकत्ते के प्रारम्भिक जीवन से जोड़ा। वहाँ उनकी मुलाकात कम्युनिस्ट-नेता मुजफ्फर अहमद से हुई थी, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। कहानी मे उन्होंने एक महिला मिस रोज़ को अवतरित किया। वह कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता की एक सेकेंडहैंड किताबों की दुकान मे अनुवादित रूसी पुस्तकों की खपत देख रही थी। "उस रोज उनकी आँख पर चढ़नेवाला पहला आदमी मैं था। इतने से निश्चय बँध जायगा कि मैं इस साहित्य का प्राचीन सहोदर हूँ।" मतलब यह कि रूस और साम्यवाद का साथ वह कलकत्ते के दिनो से दे रहे हैं।

आगे लिखा कि साम्यवाद के लिए उन्होंने जो कुछ किया, उसे केवल सम्पूर्णानंद समझ सकते थे—वह समाजवादी लेखक-प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध हुए थे—पर निराला की कृति पर साहित्य का नकाब पड़ा था, इसलिए उन्होंने उसे देखा ही नहीं। कांग्रेस-सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों मे भेद करते हुए निराला ने अपने को सम्पूर्णानंद का समसामयिक घोषित किया और लिखा—"अभी उस रोज़ फैसला हुआ कि मैं उनका समसामयिक हूँ।" (किसने फैसला किया, कहाँ किया—इन प्रश्नों का उत्तर देना निराला ने अनावश्यक समझा। फ़ैसला हुआ—इतना काफ़ी है; और फ़ैसला यह कि जब से सम्पूर्णानन्द ने राजनीति के क्षेत्र मे काम शुरू किया, तभी से निराला ने।) "इधर, नौजवानों के साथ रहने के कारण, एक कदम और आगे बढ़ गया हूँ, यानी कम्युनिस्ट हूँ। कांग्रेस सोशलिस्ट के नाम से हमे झेंप आती है।" यह लड़ाई जनता की लड़ाई है, हमे हर हालत मे रूस का साथ देना है, यह बताने के बाद उन्होंने लिखा, "भारत सरकार हमसे सहमत है, हमारे खिलाफ जब तक हम इस उसूल पर हैं, उसकी कोई कार्रवाई न होगी।" स्पष्ट ही यहाँ त्रास की भावना काम कर रही थी; उन्हें भय था कि

सरकार उनके पिछले राजनीतिक जीवन के कारण उन्हें पकड़ लेगी। पर युद्ध को जनता की लड़ाई मानने और रूस का साथ देने से सरकार कुछ न करेगी।

देश में कम्युनिस्ट-कार्य-संगठन के बारे में लिखा, "बम्बई हमारे प्रचार का प्रधान केन्द्र है। हमारे कई अखबार भी निकलने लगे हैं। हिन्दुस्तान में हमने केन्द्र बनाये हैं। हर केन्द्र में आदमी रहेगा और उसकी परिधि में आनेवाले नगर और गाँवों में कम्युनिज़्म के सिद्धान्तों का प्रचार करेगा। मुझे दक्षिण प्रान्त के कुछ जिले मिले हैं।"

इस राजनीतिक भूमिका के बाद कहानी में एक महिला फिर अवतरित हुई। जहाँ वह ठहरे थे, वहाँ एक अध्यापिका आयी। जैसे एक युग बदल गया, जैसे निराला के मन की मूर्ति सामने आ गयी हो, जैसे निराला का कुल स्वत्व उसने खींच लिया हो। क्या यह वही लड़की है जिसे आरम्भ में उन्होंने मिस रोज़ कहा था? "अब यह जवान नहीं, अधेड़ है; आधे बाल पक चुके हैं; चेहरे पर कुछ झुर्रियाँ भी पड़ रही हैं; पर कितनी दृढ़ता! उसमें ऐसी दृढ़ता नहीं थी, सिर्फ चेहरा मिलता है। बीस साल हो गए। तब इसकी मुश्किल से बीस की उम्र थी लेकिन वह मर चुकी है, और यह जिन्दा है।"

कलकत्ते की कोई स्त्री जिसकी ओर उनका मन कभी खिंचा था, संसार में नहीं थी। उससे मिलती-जुलती शक्ल की स्त्री को देखकर उन्हें लगा—यह वही स्त्री है, मरकर भी मानो जिन्दा है। उनकी कल्पना स्मृति-पट के धुँधले चित्र उभारकर उन्हें दूसरों पर आरोपित कर रही थी। काम-भावनाएँ कल्पना को उकसा रही थीं। इच्छापूर्ति के साथ शोक का भाव जुड़ा था कि वह मर चुकी है और इसके आधे बाल पक चुके हैं। इसके साथ राजनीतिक त्रास—सरकार उन्हें पकड़ न ले; इच्छापूर्ति—वह अब युद्ध के समर्थक, कम्युनिस्ट प्रचारक हैं।

सन् '४३ में उन्होंने 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज और मैं' कविता लिखी। इसमें और बातें तो 'भक्त और भगवान' कहानी-जैसी थीं, अपनी हीनता और प्रेमानंद की दिव्यता की बातें उन्होने नई जोड़ीं।

प्रेमानन्द जब मैनेजर के यहाँ भोजन करने बैठे, तब ब्राह्मणों ने आपत्ति की कि वह संन्यासी होने से पहले कायस्थ थे; वे कायस्थों के साथ बैठकर न खायेंगे। इससे विकट बात यह हुई कि पश्चिमीय युवक की तरफ उँगली उठाकर एक ब्राह्मण ने कहा—

ऐसा भी आदमी पंक्ति में बैठाला गया
जिसके माँ-बाप का पता आज तक न लगा।

मामला शान्त होने पर स्वामीजी ने कहा कि पहले युवक को परोसा जाय, उसके बाद औरों को।

इसके बाद प्रेमानन्द कृष्ण-मन्दिर की ओर चले। उन्हें बताया गया कि—

पश्चिमीय के लिए सदा का निषेध रहा
मन्दिर-प्रवेश में।

इस पर स्वामीजी के शरीर से एक ज्वाला-सी निकली। जिस ब्राह्मण ने पश्चिमीय युवक का अपमान किया था, उसने देखा "श्रीकृष्णजी स्वामीजी में आ गये।" ब्राह्मण

को विश्वास न हुआ; आंखों को रगड़कर फिर से देखा--

कृष्णजी की नीलकान्ति
ज्योतिर्मयी घनीभूत स्वामीजी की देह में।
आनन्द के परमाणुओं का फव्वारा छूटा।

इसके वाद दूसरा चमत्कार यह हुआ कि

ज्योति की-सी रेखा से
स्वामीजी के साथ पश्चिमीय का शरीर वँधा।

निराला ने रामकृष्ण परमहंस की जीवनी मे जिन चमत्कारो का वृत्तान्त पढ़ा था, उन-जैसे चमत्कारो की कल्पना वह अपने जीवन को लेकर कर रहे थे। इन चमत्कारों का सम्वन्ध उनके लाञ्छित, अपमानित होने की भावना से था। उन्हें क्षुद्र जन समझकर मन्दिर मे जाने से रोका गया; स्वामीजी ने दिखा दिया कि उनके शरीर मे श्रीकृष्ण हैं और उस ज्योति से वह अपमानित पश्चिमीय युवक भी वँधा है।

जव स्वामीजी मन्दिर में गये, तव वह युवक वाहर खड़ा रहा। स्वामीजी ने चलते समय कहा कि "मैं वही हूँ वाहर खड़ा है जो।" इस तरह स्वामीजी के व्यक्तित्व से वँधकर निराला कल्पना के सहारे अपमान और तिरस्कार से ऊपर उठे।

'राम की शक्तिपूजा' में महाशक्ति राम के वदन मे लीन हुई थीं। वैसे ही यहाँ श्रीकृष्ण की ज्योति स्वामी प्रेमानन्द मे लीन हुई। कविता के काल्पनिक चित्रों और असन्तुलित मन के दिवास्वप्नों में थोड़ा ही फासला था। दोनों की प्रेरक-शक्ति एक थी—पराजित राम की ग्लानि, पश्चिमीय युवक के अपमानित होने की भावना। दोनों मे रंग भरे निराला के चमत्कार-सम्वन्धी विश्वासों ने।

'राम की शक्तिपूजा' से कुछ वर्ष पहले 'स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं' मे उन्होने लिखा था—"इसके वाद एक दिन स्वप्न देखा -- ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की वाँह पर मेरा मस्तक है, मैं लहरो मे हिल रहा हूँ।"

सन् '३३ मे इस तरह की चमत्कारी वातो को स्वप्न मे देखी कहकर वह पाठक के मन का सन्देह मिटा देते थे। स्वप्न और यथार्थ का यह भेद क्रमशः कम होता गया।

इससे साल-भर पहले 'सुधा' मे प्रकाशित 'अर्थ' नाम के लेख मे उन्ही स्वामी सारदानन्द के लिए लिखा था, "उनका शरीर रामकृष्णमय हो गया है, मैं उनका यंत्र हूँ।" वात साधारण मालूम होती है, पर इसी का पल्लवित-रूप सन् '४३ का वह दिवास्वप्न है जिसमे कृष्ण की ज्योति स्वामी प्रेमानन्द मे मिल गई और उस ज्योति से पश्चिमीय युवक भी वँध गया। निराला एक ही घटना का वर्णन जव दूसरी-तीसरी वार करते तो उसमे उस समय की अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार कुछ जोड़ देते। १९२७ मे उन्होने 'समन्वय' में स्वामी सारदानन्द पर लेख लिखा था। उसमे एक घटना का जिक्र किया था। सर मे दर्द था; स्वामीजी ने अँगूठे और उँगली के वीच माथा दवाकर आगे की ओर खींचा। दर्द चला गया। "उतनी प्रसन्नता मुझे जीवनभर कभी नही मिली।" सन् '३२ मे जव 'अर्थ' लिखा तव स्वामी सारदानन्द से अपना आध्यात्मिक सम्वन्ध और पुष्ट किया—किताव पढता था तो अक्षर दिखाई न देते थे,

"वह आँखें मूंद लेते थे।" उनकी सरस्वती निराला में परिणत होकर कहतीं—इस चिड़िया को पढ़ो। "आँखें खोलते ही चूँ-चूँ करके एक चिड़िया उड़ती हुई देखता था, उससे तरह-तरह के अर्थ निकलते थे।" सन् '३३ में—ज्योतिर्मय समुद्र, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक आदि जोड़ दिया। इस तरह चमत्कारों में वृद्धि होती गई।

मिशन के संन्यासी निराला से बड़ा स्नेह करते थे। फिर भी निराला उनसे डरते थे। 'समन्वय' वाले लेख में उन्होंने लिखा था कि स्वामी सारदानन्द को देखकर डर लगता था। सन् '३३ वाले लेख में उन्होंने और स्पष्ट किया—"स्वामी सारदानंदजी इतने स्थूल थे कि उन्हें देखकर डर लगता था।" स्थूलता के अलावा भय का एक कारण यह था कि साधु योगी थे, चमत्कारों से दूसरे को अपना यंत्र बना सकते थे, उसे सता भी सकते थे। 'कुल्ली भाट' में जो साधु महिपादल आया था, उसने चिमटा जोर से जमीन पर गाड़ दिया; "मुझे मालूम हुआ, वह चिमटा मेरे सिर में समा गया।" फिर दोनों में मानसिक युद्ध हुआ। साधु यह समझकर प्रहार करने लगा कि यह नौकर होकर राजा बनता है, लेकिन निराला राजा न बन रहे थे, "मेरी पकड़ मे नौकर नहीं था, साक्षात् महावीर थे।" साधु हारा और रोने लगा। "अब मैं भी समझा। मुझे ज्योति भी दिखी।" ज्ञान, चमत्कार, भय, श्रद्धा—सब एक साथ···निराला के कल्पना-लोक में।

निराला को त्रास देनेवालों में संन्यासियों, नेताओं के अलावा वन्य-पशु और हिंस्र जीव भी थे। इनमें प्रमुख था सिंह। निराला पशुराज से डरते थे, लडते थे; उन पर श्रद्धा करते थे, उनमे एकात्म-भाव स्थापित करते थे।

'जागो फिर एक बार' में सिंह वीरों का आदर्श है। भारतवासी अब गीदड हो गये हैं, पहले शेर थे। 'सिंहों की मांद में आया है आज स्यार'। और सिंहिनी की गोद से कोई उसका शिशु नही छीन सकता; गीता की उक्ति से सिंह की हिंसाभावना का सीधा सम्बन्ध है। शिवाजी के पत्र में उन्होंने सिंह और स्यार वाला भाव फिर स्पष्ट किया—

सिंह भी क्या स्वाँग कभी
करता है स्यार का?

इसलिए शिवाजी ने ललकारा—

आये होते कही
तुर्क इस समर में;
तो क्या शेर मर्दों के
वे शिकार आये होते।

'मतवाला' में 'चाबुक' स्तंभ के लिए निराला ने अपना एक छद्मनाम रखा था गरगज-सिंह वर्मा, साहित्यशार्दूल। सिंह और शार्दूल दोनो, गरगज अलग से। अवधी बोलने वाले के लिए 'गरगज'—यौन आक्रामक क्रिया के संकेत में—विशेष अभिव्यंजक है।

फरवरी १९३० की 'सुधा' में लाहौर कांग्रेस के सिलसिले में निराला ने लिखा, "बंगाल के जंगल में रहने वाले एक ही शेर सुभाष बाबू सभा मण्डप में फिर नहीं बैठ

सके। आप अपने कुछ साथियों के साथ छलाँग मारते हुए मंडप के बाहर निकल गये। शेर में गर्मी कुछ ज्यादा रहती ही है।" यहाँ निराला शेर पर हँस रहे थे। नेता, राजा, सेनापति, लेखक—जो भी वड़ा है, शेर है। वह अरक्षित न होकर आक्रामक है, पर दुम दवाकर भागता भी है। आदर के योग्य है, हास्यास्पद भी।

'वर्तमान धर्म' मे कार्तिक के साथ सिंह को जोड़कर निराला ने उनका त्रासद रूप दिखाया। वडे-वड़े असुर उनके तीरो से निष्प्राण हो जाते है। ये सव अपनी माँ के पास पहुँचे और वोले, "माता, आपका पुत्र—वह शेर या कार्तिक सिंहजी हम लोगो को वहुत सताते हैं, मारते है, वढ़ने नही देते।"

'कला के विरह मे जोशीवन्धु' में वह शेर का शिकार करने चले। "दिल ने कहा, शिकार ही करना है तो किसी शेर का करो, जंगल मे गीदड़ क्या उड़ाओगे ?" फिर शेर के साथ यौन-भावना का ससर्ग—

यारो शेरे-ववर से न डरना कभी
पर विधवा से शादी न करना कभी।

मतलव यह कि विधवा शेर की ही तरह आक्रामक है; जोशी वन्धुओं मे जो नारीरूप छिपा है, वह शेर से ज्यादा भयावह है, इसलिए उनका शिकार करना चाहिए। यहाँ निराला सिंह की आक्रामक-वृत्ति पर—उसे विधवा के समतुल्य करके—हँसते है।

'रँगीला' में उन्होने एक स्तम्भ का नाम रखा—'दहाड़'। ऊपर सिंह का चित्र छपाया। 'रँगीला' के पहले अंक मे 'दहाड़' के अन्तर्गत उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आलोचना की। वह स्वयं सिंह वनकर अपनी दहाड़ से जंगल के और सभी प्राणियों को त्रस्त कर देना चाहते थे।

'रँगीला' का एक नियम यह वताया कि उसमे "नाग और विच्छू लेख नही छपेंगे जिनमे जान का खतरा है।" इस तरह के विषैले जीव त्याज्य थे; निराला उनसे एकात्मभाव न स्थापित कर सकते थे, इसलिए वे उन्हे सताते भी न थे। अपनाने और लडने योग्य एक पशु है—सिंह।

'राम की शक्तिपूजा' की अमा निशा मे—
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्वुधि विशाल—

इस पंक्ति मे समुद्र का गरजना सिंह की याद दिलाता है। स्वभावतः वह राम के पीछे गरज रहा है, आगे नही। रावण के साथ मिलकर, अमावस के अँधेरे मे, वह भी राम को डरा रहा है। शक्ति-पूजा के समय राम पर्वत से पार्वती का सम्वन्ध जोड़-कर कहते है :

गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु।

यहाँ अम्वुधि के अप्रतिहत गर्जन की प्रच्छन्न प्रतीक-व्यंजना स्पष्ट हो गई।

'कुकुरमुत्ता' मे उन्होने जहाँ और सव पर व्यंग्य किया, वहाँ शेर को भी हास्या-स्पद वनाया :

काम मुझसे ही सधा है,
शेर भी मुझसे गधा है।

छाता, पैराशूट, सुदर्शन चक्र आदि से कुकुरमुत्ता का रूप-साम्य हो सकता है और इसलिए कविता में उनकी चर्चा प्रासंगिक मानी जा सकती है। पर गवे और शेर से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। फिर भी सम्बन्ध है और वह समझ में आ जाता है यदि शेर का सम्बन्ध राजा से मान लें। शेर का नाम लेने से पहले कुकुरमुत्ता कहता है :

तूने दुनियाँ को विगाड़ा,
मैंने दवते से उभाड़ा;
तूने रोटी छीन ली, जनखा वना,
एक की है तीन दी, मैंने, सुना ?

कुकुरमुत्ता राजा के खिलाफ़ दवी हुई रिआया को उभाड़ता है, इसलिए शेर को भी गधा वना लेता है।

कर्वी जाकर वीमार हुए, उसके वाद शेरों ने खास तौर से उन्हे सताया। कर्वी के जंगल देखकर उन्हें वंगाल के वन याद आये। आगरे में जमुना-किनारे घेउ-घेउ करनेवाले स्यार की नकल करते हुए वे वंगाल के शेरों को याद कर रहे थे। मन में शेरों से राजा का सम्बन्ध जुड़ा हुआ था, इसलिए वातचीत में शेर को हिज़ हाइनेस भी कह जाते थे।

कर्वी के जंगलों की याद जव काफी पुरानी हो गई तव इलाहावाद के परिवेश के अधिक अनुकूल उन्होने घड़ियालो की कल्पना की। ये पानी में रहते थे, निराला को दूर से ही डरा सकते थे, इसलिए निराला इन पर और भी हँसते थे।

'अर्चना' के गीतो में हिंस्र-पशुओं की क्षीण स्मृति ही रह गई और उसे कलात्मक ढंग से उन्होने कविता के मूर्ति-विधान में सजाया।

हिंस्र-पशुओं के चित्र जैसे-जैसे धुँधले हुए, वैसे-वैसे संन्यासियो और राजनीतिज्ञों के चित्र उभरकर सामने आये।

सन् '४६ में उन्होंने कविता लिखी—'कैलास मे शरत्'। इसमे स्वामी विवेकानंद के साथ घोड़ो पर उन्होने विदेश-यात्रा की। अफगानिस्तान की सीमा पार करके घोड़ों को छोड़ दिया, वकरों पर सवार हुए। अपने साथ संन्यासियों को वकरों पर चढ़ाकर वह उनका रुतवा घटाकर उन्हें सामान्य स्तर पर ला रहे थे। कैलास की ओर मुड़ने पर तातारी दर्शक ने केवल 'कैला' कहा, मानो कूट शब्दों के प्रयोग से राज छिपा रहा हो। कश्मीर गये; फिर "सारे देशो की हम लोगो ने यात्रा की।" मानसरोवर के कमलों की सुगन्ध से मन भर गया; नाव पर मेप-मांस खाया।

जनवरी '४७ में जव उनकी स्वर्णजयन्ती मनाई गई तव वह संन्यासीवाले भाव में थे। विवेकानन्द की तरह उन्होने साफ़ा वाँधा था। उन्नाव में चौधरी राजेन्द्रशंकर से झगडा होने पर वह कानपुर में सीधे रामकृष्ण मिशन पहुँचे। सन् '४६ में जव वह साहित्यकार-संसद् में थे, तव उन्होने गेरू से कपड़े रँगकर संन्यासी-वेश धारण किया। दारागंज की गली में घुटनों तक धोती या लंगी वाँधे वह उसी संन्यासी-वेश का निर्वाह करते थे। ऐजाज हुसेन से घोड़ों पर ईरान-यात्रा का वर्णन करते समय, लोग उनकी

जियारत के लिए आते थे, यह कहकर वह विवेकानन्द के कल्पना-चित्र से खेल रहे थे। उस समय उनका वही भाव था जो 'कैलाश मे शरत्' लिखते समय था।

फिर विवेकानंद भी पीछे छूट गये, उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस की मूर्ति उनके मन पर छाई रही। लोगों ने उनके दाढ़ी रखाने से यह निष्कर्ष निकाला कि वह रवीन्द्रनाथ बन रहे थे। दाढी रामकृष्ण परमहंस के भी थी। निराला की 'अर्चना'-'आराधना' वाली इस काल की रचनाओ मे रवीन्द्रनाथ के काव्य-जगत् की परछाईं भी नही है, न उनके रहस्यवाद की, न उनके शृंगार की। उनमें परछाईं है रामकृष्ण और तुलसीदास की। निराला ने रामकृष्ण परमहंस-संबन्धी साहित्य पढ़ा ही न था, 'रामकृष्ण वचनामृत' नाम के विशाल ग्रन्थ का अनुवाद भी किया था। एक बार पढ़ने से मन पर जितना प्रभाव होता, अनुवाद करने से बीस गुना अधिक हुआ। इस ग्रन्थ मे रामकृष्ण हँसते, बोलते, गाते, समाधि मे लीन होते, विचित्र आचरण करते अपने दैनिक जीवन मे बड़े सजीव होकर पाठक को दिखाई देते है। निराला के मन पर उनके आचार-व्यवहार का गहरा असर पड़ा और उन्होंने शिखासूत्र त्याग दिया, ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटा दिया, अपने लिए पूजापाठ, ऊपरी कर्मकाड अनावश्यक माना। यह सब रामकृष्ण परमहस के आचरण के अनुकूल था।

'रामकृष्णवचनामृत' मे उन्होने पढ़ा था, रामकृष्ण "उत्तरवाले लम्बे बरामदे मे आये है और एक छोर से दूसरे छोर तक जल्दी-जल्दी फेरी लगा रहे है। बीच-बीच मे जगन्माता के साथ क्या बातचीत कर रहे है। एकाएक उन्मत्त की भाँति बोल उठे, 'तू मेरा क्या बिगाडेगी' ?" निराला का व्यवहार उपर्युक्त आचरण से काफ़ी मिलता-जुलता था।

निराला अन्तिम दिनो मे कभी-कभी नंगे होकर कमरे मे पड़े रहते थे। उन्हे यह बात मालूम थी कि रामकृष्ण भी नंगे हो जाते थे। उसी दशा मे कमरे मे टहलते रहते थे। निराला की स्मृति मे रामकृष्ण का दिगंबर रूप गहराई से अंकित था, इसका प्रमाण यह है कि सन् '४३ में लिखी 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' कविता में उन्होने प्रेमानन्द से कहलाया था,

"परमहंस देव भी नगे हो जाते थे।"

व्यवहार मे अनेक बातो की समानता होने से यह मानना अनुचित न होगा कि जीवन के अन्तिम दशक मे वह अपने को रामकृष्णमय समझ रहे थे। उनका पुराना कविनाम अनावश्यक हो गया था, इसलिए कहते थे—निराला नाम का कोई आदमी यहाँ नही रहता। संन्यासी को धन से कोई मतलब नही, इसलिए रसीद पर दस्तखत क्यो करे ? संन्यासी के पास जूते, कबल, रजाई, कोट आदि का आडम्बर अनावश्यक है; इसलिए सब-कुछ दुखियो को दे दो। रामकृष्ण मिशन के साधु दरिद्रों की सेवा करने जाते थे, निराला अपने को दरिद्रो का सेवक और सहायक मानते थे। कोई आश्चर्य नही, निराला के अनेक प्रशंसक उन्हे ऋषि और सन्त मानने लगे।

निराला का मन यदि रामकृष्ण-तुलसीदास से ही बँधा होता तो मानसिक असं-तुलन की बात न होती। संपत्ति, रायल्टी, लाखो का हिसाब-किताब—इससे भी उनका

मन बँधा हुआ था। वह विलायत गये, क्वीन विक्टोरिया से मिले, ऐसी अंग्रेजी बोले कि सुननेवाले दंग रह गये। साधारण जीवन मे अंग्रेजी बोलना मानसिक असंतुलन की निशानी है ही। यह असंतुलन राष्ट्रीय पैमाने पर देश के बुद्धिजीवियों और विशेष रूप से राजनीतिज्ञों में फैला हुआ है। निराला अंग्रेजी बोलने में जवाहरलाल नेहरू का अभिनय करते थे। नेहरूजी जितना ही गरीब जनता की उन्नति, देशी भाषाओं के विकास और समाजवादी निर्माण की बातें करते, उतना ही राजभाषा के रूप में अंग्रेजी बनाये रखने पर जोर देते। निराला में जितना ही संन्यासी-भाव प्रबल हुआ, उतना ही उन पर अंग्रेज़ी बोलने की धुन भी सवार हुई।

अंग्रेजी के माध्यम से उच्चशिक्षा न पाने से निराला को आये दिन अपमानित होना पड़ा। लोग क्वालिफिकेशन पूछते थे; एन्ट्रेन्सफेल आदमी क्या क्वालिफ़िकेशन बताये? मान-अपमान के अलावा यह सीधा रोटी-रोजी का सवाल था और यह समस्या रामसहाय के मरने के बाद से निराला के मरने तक हल न हुई। सरकारी सहायता समस्या का हल न थी। वह अपने उपन्यासों और कहानियों में नायक-नायिकाओं को एम० ए० का छात्र बनाकर, एम० ए० पास कराके, डाक्टर बनाकर मन समझाते रहे। छतरपुर के राजा से मिलने गये तो प्रतिष्ठा के विचार से अंग्रेजी में वार्तालाप किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दिनों मे जब थानेदार गढ़ाकोला आया तब उन्होंने अंग्रेजी में बातें करके उस पर रोब डाला। अमरनाथ झा से लेकर रामविलास शर्मा तक को उन्होंने जब-तब अंग्रेज़ी में पत्र लिखे। ब्रजमोहन तिवारी ने 'टार्च बेयरर' निकाला तो निराला के मन में इच्छा हुई कि उसके लिए वह भी अंग्रेजी मे कुछ लिखें। अंग्रेज़ी का उच्चारण एकदम सही हो, इसके लिए डिक्शनरी की सहायता से, अपने ढँग से शब्द का सही उच्चारण जानकर औरों से बहस करते। फिर कल्पना मे विलायत-यात्रा की, इसी अंग्रेज़ी के माध्यम से मान-प्रतिष्ठा पाने के लिए। दारागंज की गली में अंग्रेजी बोलने के अलावा वे कभी-कभी सार्वजनिक सभाओं में भी अंग्रेज़ी बोलने लगे।

अंग्रेज़ी के बाद सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है या उर्दू का। आप्टे के शब्दकोष से काफी सहायता ली थी; जानकीवल्लभ शास्त्री को एक पत्र संस्कृत में लिखा था, 'विद्या' कहानी मे—'विद्या' की अंग्रेजी के समानान्तर—श्यामनाथ से संस्कृत बुलवाई। उर्दू शब्दों के 'सही उच्चारण' पर उनका ध्यान रहता—हम सखुन फहम है, हम सुखन फहम हैं, वह दो तरह से पढ़ते सखुन, सुखन—कौन-सा रूप ठीक है, विचारते। मुस्किराते, नव्वाब, तग्रज्जुब, तअल्लुकेदार आदि रूप उनके सही उच्चारण की दिशा में प्रयास थे। 'कुकुरमुत्ता' में उन्होने गुलाबी उर्दू लिखी। काफी गजलें लिखी। अबोहर सम्मेलन मे बोलने खड़े हुए तो उनकी उर्दू सुनकर लोगों ने शोर मचाया। उदयशकर भट्ट के अनुसार लोगों का विरोध देखकर वह हिन्दी बोलने को राजी हुए।

अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, हवेलियाँ, लाखो की संपत्ति—ये सब निराला की प्रतिष्ठा-कामना की प्रतीक थी। इनके साथ संन्यास का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व संभव न था;

इसीलिए मानसिक असंतुलन की अवस्था उत्पन्न हुई। असंतुलित मन के सपनों में यथार्थ का अतिरंजित चित्र दिखाई देता था, किन्तु वह चित्र यथार्थ से पूरी तरह विच्छिन्न नहीं था। निराला को उनके श्रम का उचित मूल्य मिला होता तो वह कोठी भी बनवा सकते थे और प्रकाशकों की तरह लखपति भी हो सकते थे। कोई लेखक जो लिखने की कमाई खाता हो, लेकिन जिसने अपनी किताबें खुद न छापी हो, आज तक—हिन्दी मे—लखपति बना है ? इन्ही लेखकों की किताबें छापनेवाले—किताबें न बिकने की शिकायत करनेवाले—प्रकाशक लाखों कमा रहे हैं—ये समाज के अभिजात-वर्गीय सदस्य हैं—यह हर कोई देख सकता है। निराला जी कोठियों और लाखो के हिसाब की बात करते थे, उसमे इसी यथार्थ का चित्र था—उन्होंने लाखो का काम किया, लाभ उठाया औरों ने।

निराला का मानसिक संतुलन बिगाड़ने में उनके साहित्यिक विरोधियों का बहुत बड़ा हाथ था। निराला इस विरोध को बढ़ा-चढ़ाकर देखते थे, किन्तु वह विरोध था वास्तविक। यदि विरोध तर्क-संगत हो, तो तर्क से उसका उत्तर दिया जा सकता है या लेखक उससे लाभ उठा सकता है। यदि वह एक संगठित कुटिल अभियान का रूप ले ले तो उससे लेखक के मन को चोट लगेगी ही। निराला के कल्पना-चित्रों मे इस विरोध का सीधा प्रतिबिंब दिखाई न देता था, पर उनसे था उसका गहरा संबन्ध। इस विरोध ने—उनकी दृष्टि मे—उनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा छीन ली थी; इसलिए अब वह दूसरों की पुस्तको का लेखक अपने को समझने या कहने लगे थे। विशेष रूप से असंतुलन की प्रारम्भिक अवस्था मे उनके दुःस्वप्नों के प्रेरक उनके साहित्यिक विरोधी भी थे।

साहित्य में उनका विरोध किस-किस ने किया, बनारसीदास चतुर्वेदी से उनकी मुलाकात कब हुई—मेरे इन प्रश्नों का जो उत्तर उन्होंने नरोत्तम नागर को लिखाया, उसमें और सब बातें संतुलित थी, बनारसीदास का प्रसंग आने पर उनकी भावदशा बदल गई थी। सारी स्थिति को नाटकीय रूप देते हुए उन्होने कहा, "बनारसीदास चतुर्वेदी अपने पत्र की प्रसिद्धि के लिए यद्यपि एक-एक आदमी और एक-एक विरोधी चुने रहते थे, फिर भी उन्होने मेरे संबन्ध में कुछ देर की और बड़ी समझ से काम लिया। पं० बनारसीदास से मेरी पहली मुलाकात शायद सन् १९२८ में हुई। उन्होंने मुझे बुलाया था। मैं उनसे मिलने उनके आफिस गया था। बड़ों का जैसा स्वभाव है, उन्होंने वैसा ही बरताव किया—एक, मैं आपका राज्य (राज़) लेना चाहता हूँ। दो, इन्हे आप क्या समझते है ? मेरा उत्तर—किन्हे ? बनारसीदासजी ने कहा, किसी का नाम लीजिए। मैने कहा—किसका नाम लूं ? उन्होने कहा—बस आप हार गये ! (हार के तर्क :)

१. मैंने आपको बुला लिया, मैं नहीं गया।

२. मैंने आपसे बातचीत करा ली।

३. और अब मैं आगे-आगे चलता हूँ, आप मेरे पीछे-पीछे आइए।

मैं उनके पीछे-पीछे चला। बस, यही मेरी-उनकी पहली मुलाकात और बात-

चीत है। मछुआ स्ट्रीट के पास मैंने कहा—मैं अब इधर जाऊँगा। उन्होंने कहा—

'Go coward ! Don't you know that I am always with the great men like Mahatma Gandhi and Rabindra Nath Tagore ? I can show you the way if you follow me and I am in the position to give you a superior place to which you are situated.'

मैं हक्के-बक्के उल्लू के पट्ठे की तरह उनका मुँह देखता हुआ मछुआ बाजार स्ट्रीट से मतवाला आफिस के लिए मुड़ा।"

इसके बाद 'विशाल भारत' द्वारा 'वर्तमान धर्म' के विरोध की कहानी वह शान्त-मन से कह गये। बनारसीदास-निराला संवाद उन्होंने गढ़ा; यथार्थ को अति-रंजित रूप दिया। पर उनके दुखद स्वप्नों से बनारसीदास चतुर्वेदी का गहरा संबन्ध था, यह स्पष्ट है।

यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि जिस लेखक का विरोध करना होता था, उसके साहित्य के बारे में चतुर्वेदीजी राय खुद कायम न करते थे। निराला का विरोध करना है, यह उनकी अपनी सूझ थी किन्तु उनके साहित्य के बारे में वह कहते थे—मैं तो कविता समझता नहीं, दूसरे लोग, जो साहित्य-मर्मज्ञ हैं, वे यह कहते हैं।

इन साहित्य-मर्मज्ञों के अग्रणी थे पद्मसिंह शर्मा। छायावाद के विरोधी थे, चतुर्वेदीजी उनकी राय की कद्र करते थे। पर एक बार पद्मसिंहजी ने किसी कवि की रचना अपनी सिफारिश के साथ 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ भेजी। चतुर्वेदीजी ने शर्माजी की राय को अमान्य ठहराकर कविता छापने से इन्कार किया। शर्माजी ने उन्हें नाराज़ होकर लिखा, "मालूम होता है अब आप पूरे संपादक बन गये हैं, तभी तो हमारी पसन्द की हुई कविता को नापसन्द करके छापने से इन्कार कर दिया ! यह संपादकीय मद प्रायः आ ही जाता है···आप भले ही उसे न छापें, इसके लिए हमें आग्रह नहीं, पर यह जरूर कहेंगे वह कविता अच्छी है, कविता-मर्मज्ञों ने उसे बहुत पसन्द किया है।"

स्वतंत्रचेता संपादक के रूप में चतुर्वेदीजी का कार्य अपने दायित्वबोध के अनुकूल था, उचित था। निराला के काव्य को न समझकर भी दूसरों की सम्मतियों के सहारे उसका विरोध करना अनुचित था।

अस्तु: इस बात को लेकर विवाद हुआ कि निराला पागल हैं या नहीं, यदि उनमें मानसिक असंतुलन है तो किस तरह का। कुछ लोग कहते थे, पागल है, दूसरे कहते थे, पागलपन का कोई भी लक्षण नहीं है, वह संत हैं।

निराला का विक्षेप उस कोटि का नहीं था जिसमें यथार्थ से नाता पूरी तरह टूट जाता है, जिसमे मनुष्य अपनी और परिवेश की स्थिति को एकदम उलटकर देखता है। निराला न कपड़े फाड़ते थे, न गाली देते थे, न चिल्लाते थे, न लोगों को मारने दौड़ते थे। मार-पीट की केवल एक घटना हुई, उन्नाव में। इसका कारण प्रकाशक के प्रति उनका रोष था, वैसा ही रोष जैसा कलकत्ते के प्रकाशक के व्यवहार से उनके मन में उत्पन्न हुआ था। सन् '४९ में मार खाकर जब वह रायबरेली के अस्पताल

गये, उसका कारण भी उनका विक्षेप न था। साधारण अर्थ में जिसे पागल कहते हैं, निराला वह न थे।

निराला के असंतुलन की यह विशेषता थी कि यथार्थ जगत् के प्रति अन्त तक वह असाधारण रूप से जागरूक रहे। सन् '४५ में उनका विक्षेप चरम सीमा पर था और उसी साल वह गृहस्थी की छोटी-से-छोटी बातों पर ध्यान दे रहे थे। वह अपने पत्रों में मन को साध लेते थे; बहुत कम अपने असंतुलन की झलक आने देते थे। सन् '४५ में उन्होंने मुझे जितने पत्र लिखे थे, उनमें उनके असंतुलन का चिह्न कठिनाई से मिलेगा। असंतुलन जब भी और जितना रहा, वह उनकी सामान्य अहम् वाली चेतना के स्तर पर रहा। उनका दूसरा अथक मन इस असंतुलन के चक्कर में कभी नहीं आया। ऐजाज हुसेन से पहला मिसरा कहने की बात—कह रहा हूँ जुनूँ में क्या-क्या कुछ—इसी मन की प्रेरणा थी। उनका यह मन अन्तिम दिनों तक उनकी रचनात्मक क्षमता को अकुंठित बनाये रहा। ऊर्जा में कमी हुई—बुढ़ापा आने से, शरीर पर साधारण प्राकृतिक नियमों के लागू होने से। पर उनकी सोचने, विचारने, गढ़ने-सँवारने की क्षमता आखिर तक बनी रही। यह भी देखने में आया कि आसपास मन को उत्तेजित करनेवाले उपकरण दिख जाते थे, तब उनका मन क्षुब्ध हो उठता था; जैसे रेडियो और सरकार के नाम से वह चिढ़ जाते थे। उत्तेजनावाली बात सामने न आये तो वह शान्त रहते थे। प्रियजनों के निकट होने पर वह काफ़ी देर के लिए सामान्य मानसिक स्थिति में हो जाते थे।

उनके सपने व्यवस्थित न थे, उन्हें त्रास देनेवाले प्राणी बदलते रहते थे, वैसे ही आत्मगरिमा के प्रतीक भी परिवर्तनशील थे। जिसे 'पैरानोइया' कहते हैं, उस रोग से पीडित मानस के सुखस्वप्न और दुःस्वप्न अधिक व्यवस्थित होते हैं। सौभाग्य से निराला पहलवान, संन्यासी, महाकवि, राजनीतिज्ञ, राजा, सब-कुछ एक साथ बनना चाहते थे; इसलिए उनकी ऊर्जा विभिन्न कल्पना-चित्रों में बिखर गई थी। उनके सपनों के अव्यवस्थित होने, उनके विक्षेप के उग्ररूप धारण न करने का एक कारण यह बिखराव था। पर निराला की ऊर्जा का अधिकांश इन कल्पना-चित्रों में न सिमटकर उनके दूसरे, न थकनेवाले मन के साथ जुड़ा रहा। उनकी विवेक-शक्ति शिथिल हुई, पर क्षीण होकर नष्ट नहीं हुई।

मनुष्य के मन में विक्षेप एक दिन में पैदा नहीं होता। जिनके शारीरिक विकास—या मस्तिष्क के भौतिक गठन—में कोई कमी है, यहाँ उनकी बात नहीं है। बात मानसिक असंतुलन की है। जैसे शरीर से बेहद काम लिया जाय, उसे उचित खुराक और आराम न मिले, तो वह टूट जायेगा, वैसे ही जब मन तनाव की हालत में होगा और यह हालत काफ़ी दिन तक बनी रहेगी, तो एक दिन उसका संतुलन बिगड़ जायगा।

गिरिधर कविराय ने लिखा था—

> चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय।
> प्रगट धुआँ नहिं सचरै, उर अन्तर धुँधुआय॥

सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की चिन्ताएँ बढ़ती गयीं। पूंजीवादी तन्त्र में फँसा हुआ वह चिन्तनशील कम, चिन्ताशील अधिक हो गया है। इन चिन्ताओं—ऐंग्जाइटीज़—को प्रकट करना सभ्यता के खिलाफ है। मनुष्य भीतर-भीतर घुटता है, फिर टूटता है। वर्तमान समाज-व्यवस्था में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे जो कह सकें कि वे निश्चिन्त हैं। जीवन की यह चिरंतन चिन्ताशीलता न्यूरोसिस की जननी है। इस पर यदि मनुष्य के मर्मस्थलों पर बार-बार प्रहार हों तो असंतुलित होने की क्रिया और जल्दी सम्पन्न होगी।

निराला स्वभावत: प्रसन्नचित्त, खेलकूद के प्रेमी, रूप-रस-गन्ध-स्पर्श, शब्द के माधुर्य के पारखी, मित्रों के साथ हँसने-बोलने में समय बितानेवाले अपनी असाधारण ऊर्जा के बल पर बहुत-से मार्मिक आघात झेल गए। सौभाग्य से वह कवि थे, इसलिए बहुत-सी बातें जो मित्रों से न कहते थे, उन्हें कविता में अपने अज्ञातनाम पाठकों से कह देते थे। इससे मन का भार बहुत-कुछ हल्का हो जाता था। सन् '१७ में पिता का स्वर्गवास वह सह गये। पत्नी के देहांत के बाद डलमऊ से जब गढ़ाकोला जाते उन्हें अपने भाई बदलू का शव मिला तब वह पछाड़ खाकर रास्ते में गिर गये। बीस वर्ष का युवक इस तरह गिरे, इसका अर्थ है, आघात असह्य था। निराला व्यथा का प्रदर्शन कम करते थे। 'कुल्ली भाट' के हास्य-विनोद की सतह के नीचे उनकी घोर वेदना छिपी है; जितना लिखा है, उससे बहुत ज्यादा सहा था। फिर सरोज की मृत्यु, प्रकाशकों का अमानुषिक व्यवहार, विद्वानों द्वारा पग-पग पर विरोध और अपमान—निराला का मन सन् '१७ के बाद सोते-जागते बराबर तनाव की हालत में रहा। जिसका जीवन सुरक्षित हो, जिसे आये दिन अपनी या अपने बच्चों की चिन्ता न करनी पड़ती हो, वह इस तनाव की हालत को नहीं समझ सकता। निराला का जीवन असुरक्षित था, कल क्या होगा, पता न था। उनकी मस्ती देखकर लोग समझते थे कि इन्हें साहित्य के अलावा दीन-दुनिया की चिन्ता नहीं है। पर उन्हें चिन्ता थी। इतनी चिन्ता थी कि एक बार महिषादल की नौकरी छोड़ने के बाद फिर उसी नौकरी पर आये थे, इतनी चिन्ता थी कि वह जो इतने अभिमानी थे, उन्होंने छतरपुर महाराज की प्रशंसा में पद्य रचा था। शिवपूजन सहाय के नाम लिखे पत्रों में बार-बार तकाजे हैं, कहीं काम तलाश कीजिए, कहीं से आर्डर दिलाइए। निराला को काम न मिले, इसके लिए उकसावा पैदा करनेवाले लेख छपे कि अमुक प्रकाशक निराला के उपन्यास निकालेंगे तो बदनाम हो जायेंगे। निराला का लिखना बन्द कराने के लिए, साहित्य-संसार से खेदकर उन्हें बाहर कर देने के लिए जितने दिनों तक, जिस तीखेपन से, जितने संगठित तरीके से आन्दोलन चला, वह साहित्य के इतिहास में अनुपम और अद्वितीय है। आश्चर्य यह नहीं कि उनका मानसिक संतुलन बिगड़ा, आश्चर्य यह कि वह इतने दिनों तक यह सब झेल कैसे गये, उस सबके बावजूद इतना लिख कैसे गये।

निराला यह सब झेल गये, उस सबके बावजूद इतना लिख गये अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति के कारण। उन पर प्रहार हुए, जिसे वह वज्रकठोर अन्तर कहते थे उसमें दरारें पड़ गई लेकिन वह टूटकर बिखरा नहीं। जिनमें प्रबल इच्छा-शक्ति होती है,

उदात्त की सृष्टि वही करते है, जिनकी वज्र-कठोर इच्छा-शक्ति पर बार-बार आघात होते है, ट्रैजेडी के नायको की गरिमा उन्ही के चरित्र मे होती है। निराला मे जैसी दृढ इच्छा-शक्ति थी, वैसी ही रचनात्मक प्रतिभा, मनुष्य और प्रकृति के सौन्दर्य को पहचानने, उसमे गहरे डूबने की शक्ति थी। 'पल्लव' से 'परिमल' का भेद बतलाते हुए उन्होने पत को लिखा था, " 'परिमल', कभी-कभी किसी वन्य झाड से जिस चटखारे से निकलता है, दिमाग ही फूंक देता है, अस्वस्थ भी कर देता है।" जैसे भवभूति के नाटक मालती-माधव मे मालती का सौन्दर्य माधव को आनन्द से विह्वल कर देता है, साथ ही उसके विवेक का नाश करके उसके अन्तर को जलाने लगता है, वैसा ही अपनी तीव्रता से विवेक को भस्म करनेवाला सौन्दर्यबोध निराला में था। अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से वह स्वयं को भस्म होने से बचाये रहे और सघन ऐन्द्रियता के सुख की एक झलक आखिरी दौर की रचनाओं मे भी दे गये।

निराला के मन मे अथाह भावात्मक गहराई थी। उन्होंने जिनसे प्रेम किया, उनके सौ कसूर माफ़ करके उन्हे अपना मानते रहे, उनकी मृत्यु के बाद भी उनके नाम की माला जपते रहे। उन्होने विरोध भी बहुतों का किया किन्तु विरोध अस्थायी था, स्नेह का ही भाव स्थायी था। उनके भावात्मक सम्बन्ध गंभीर और दीर्घकालीन थे। मानसिक संतुलन खोनेवालो में जो भावात्मक चंचलता दिखाई देती है, वह उनमे नही थी। शेक्सपियर के नाटको मे लियर और ओथेलो जैसे क्रोध और घृणा से बावले हो जाते है, भावो का भूचाल उनकी मनोभूमि को हिलाकर रख देता है, वैसा भावात्मक विस्फोट निराला मे नही होता। वह 'उत्तेजित' होते थे पर उनकी उत्तेजना विस्फोट न होकर क्रमशः तेज़ होती हुई लपट-जैसी होती थी जो देर तक उन्हे और दूसरों को झुलसाती थी।

निराला आरंभ से ही स्वप्नशील थे, निद्रित अवस्था के अलावा जाग्रत अवस्था मे भी सपने देखते थे। उनकी कल्पना दिवा-स्वप्नों द्वारा उनकी इच्छा-पूर्ति करती थी और कल्पना का यह खेल देखकर वह कभी खुश होते थे, कभी उस पर हँसते थे। "फाकेमस्ती मे भी मैं परियो के ख्वाब देखता रहा"—'देवी' कहानी में निराला ने कल्पना के खेल को तटस्थ दृष्टि से देखा। वह कल्पना के सहारे संघर्ष और वेदना का रूपान्तर करके उदात्त चित्रण भी करते थे। उनमे भवभूति की तरह परोक्ष को प्रत्यक्ष-वत् देखने की अद्भुत क्षमता थी। अन्तर्मन से उठती हुई भावधाराएँ उन्हे नये-नये कल्पना-चित्र रचने पर विवश करती थी।

निराला मेधावी चिन्तक और प्रतिभाशाली विचारक थे। वह व्यंग्य के उस्ताद, हाजिर-जवाब, वाक्पटु, तर्क-युद्ध मे नये-नये दाँव रवाँ करनेवाले खिलाडी थे। वह समझते थे कि वह इच्छानुसार उथले को गहरा और गहरे को उथला कर सकते है। डा० जानसन की तरह उनमे प्रतिकूलता-वृत्ति भी थी : तुम जो कहोगे, हम उसका विरोध करेंगे, इसलिए तर्क कही-न-कही से ढूंढ़ ही लायेंगे। किन्तु निराला ने अपने विवेक से सामयिक राजनीति, धार्मिक रूढियों और साहित्यिक परंपराओ की सीमाएँ पहचानी, उनकी सहज मानवीय सहानुभूति ने उनके विवेक को पुष्ट करके उनके

चिन्तन को क्रान्ति की दिशा में मोड़ा। निराला अनर्गल भाव-प्रवाह में वह जानेवाले कवि नहीं हैं, वह अनुभव को प्रतिमा का रूप देनेवाले शिल्पकार हैं। मेधा के बल पर उन्होंने अपने काव्य और गद्य में अनूठा रचना-सौन्दर्य उत्पन्न किया। विचार मूर्त इकाई की तरह उनके मन को आन्दोलित करते हैं, उनका भावबोध उनकी चिन्तन-प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। उनकी सामान्य चेतना के नीचे उनका उपचेतन—'राम की शक्तिपूजा' के आकाश की तरह—अत्यन्त सक्रिय है। अपने श्रेष्ठ रचनात्मक क्षणों मे निराला की मेधा तटस्थ दर्शक मात्र रह जाती है, वह न केवल उपचेतन के रचे हुए स्वप्नों को अन्तस्तल से ऊपर उठते हुए देखती है, वरन् वे ध्वनि-तरंगे भी सुनती है, छन्द की लय के साथ जहाँ से शब्द ऊपर उठते चले आते हैं और काव्य मे मन के गूढ़ स्वप्नों को मूर्त रूप देते हैं। विवेक का काम, जो देखा और सुना, उसे लिपिबद्ध करना मात्र रह जाता है। निराला के उपचेतन की सक्रियता निरतर बढ़ती गई, उपचेतन से अपने चेतन मन का तार जोड़ने की क्षमता उनमें निरंतर विकसित होती गई।

निराला का उपचेतन प्रशान्त महासागर न था कि समाधि लगाकर वह आनन्द से उसका अनहद नाद सुना करते। उसमें भावों की परस्पर-विरोधी दिशाओ मे बहनेवाली अन्तर्धाराएँ थीं, कहीं गहराई में बड़वानल था जिसकी आँच से उनकी चेतना के ऊपरी स्तर तप उठते थे। निराला का विवेक जिन आकांक्षाओं-भावनाओं को नैतिक दृष्टि से अनुचित समझता था, उन्हें सामान्य चेतना की सतह से नीचे ठेल देता था। वहाँ वे पुष्ट और संवर्धित होती रहती और मौका मिलते ही ऊपर उभरकर विवेक को झकझोर डालती थीं। निराला के उपचेतन में बहुत बड़ी रचनात्मक क्षमता थी, उसी परिमाण में उन्हे विचलित करने, उन्हें त्रास देने की अद्भुत क्षमता भी उसमें थी।

अपमान, आत्मग्लानि, अहंकार के भावों को उनका विवेक नीचे ठेल देता था, ऊपर से वह प्रयत्न करते थे कि वनबेला की तरह चुपचाप उपल-प्रहार सहते रहें, दूसरों को सुगन्ध ही दें किन्तु भीतर-ही-भीतर उनका मन आघात-पर-आघात सहता रहा, उनके वज्र-कठोर अन्तर मे दरारें पड़ती गयीं।

जो व्यक्ति निम्न सामाजिक स्थिति मे उत्पन्न होकर चुपचाप उसे स्वीकार कर लेता है, वह उच्च वर्गों द्वारा स्वयं को अपमानित अनुभव नहीं करता। निराला अपनी स्थिति से ऐसा कोई समझौता करने को तैयार न थे, वह औरों की अपेक्षा अपमान के प्रति अत्यधिक सजग थे। चालीस वर्ष तक उनके अन्तर में वास्तविक और कल्पित अपमान की आग सुलगती रही और जितना ही उन्होने उसे नियंत्रित किया, उतने ही वेग से पृथ्वीतल फोड़ती हुई वह ऊपर उठी।

उनकी विवेक-भूमि के नीचे ग्लानि के गहरे स्रोत छिपे हुए थे। पत्नी और पिता के प्रति अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप, कन्या के लिए उपचार के समुचित साधन न जुटा पाने की वेदना, जीवन में अनुकूल परिस्थितियों का अभाव, साहित्य मे लोकप्रियता की जगह अनवरत विरोध—आत्मग्लानि के अनेक कारण निराला के जीवन

में विद्यमान थे। निराला यह सब देखते थे और साहित्य मे उसकी उदात्त अभिव्यंजना द्वारा आत्मग्लानि की असह्य पीड़ा से मन को किसी हद तक मुक्त भी करते थे।

हीनभावना, आत्मग्लानि, अपमानित होने की पीड़ा—इन सबसे प्रबल था निराला का अहंकार। स्पर्द्धा का भाव उनके लिए सहज था, अपनी भाषा और उसके बाहर की भाषाओ के कवियों के प्रति यह स्पर्द्धाभाव था, जीवित कवियों के प्रति था, मरकर अमर होनेवालों के प्रति भी था। केवल संन्यासियो अथवा गृहत्यागी कवियो के प्रति यह भाव नही था, या बहुत कम था। जिसे कवि होने का दावा न था, शुद्ध संन्यासी था, उसके प्रति श्रद्धाभाव था। संन्यासियो से ही उन्होंने सीखा था कि अहं-कार को दबाकर रखना चाहिए और अपमान की ज्वाला की तरह अहंकार के दाह को भी उन्होंने भक्ति से बार-बार दबाकर रखा। वह चाहते थे कि इतना आत्म-विश्वास हो कि अहंकार के विस्फोट की नौबत न आये किन्तु साहित्य रचकर उन्हे अमर ही न होना था, जीते-जी उससे रोटी-कपडे भी जुटाने थे। उनके विरोधी उन्हे साहित्य के मैदान से ही खदेड देने पर तुले हुए थे, अपने साहित्य-सर्जन की सार्थकता सिद्ध करते हुए उन्हे इसी मैदान मे जूझना था। इसीलिए संन्यासीवाली नैतिकता का धरातल तोडकर उनके अहंकार की लपटें आकाश की ओर उठती हुई लोगो को दिखाई देती थीं।

भवभूति ने लिखा था कि यह उत्तर रामचरित नाटक उस कवि का रचा हुआ है जिसके पीछे सरस्वती दासी के समान चलती है। अहंकार मे निराला भवभूति के शिष्य थे, गुरु नही। वह सरस्वती को दासी नही, अपनी माँ समझते थे।

अकेलापन, समानधर्मा की तलाश, भवभूति की तरह निराला को थी। एक युग आयेगा जब लोग भवभूति का महत्व समझेंगे, निराला का महत्व समझेंगे—कालो-ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी। लेकिन जब तक वह समय नहीं आता, समानधर्मा नही मिलता, तब तक कवि अकेला है, अकेले अपने दुख का भार ढोता है, अकेले मृत्यु का सामना करता है :

मैं अकेला,
आ रही मेरे गमन की सान्ध्यवेला।

अकेलापन, थकान, मृत्यु की प्रतीक्षा, नरक-यात्रा के दुःस्वप्न—निराला का सधा हुआ मन अपने भीतर यह सब नाटक देखता है, उसे लिपिबद्ध करता है। निराला का व्यक्तित्व जितना आत्मकेन्द्रित है, उतना ही वस्तु-केन्द्रित, रूप-रस-गन्ध के संसार को सर्वांशतः ग्रहण करनेवाली जैसी उनके पास दृष्टि है, वैसी ही मनोजगत् की लीला देखनेवाली उनकी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि है। निराला का नैतिक मन कहता था—जीवन-द्रष्टा बनो, शाश्वत आनन्द के गीत गाओ। निराला का रचनाकारवाला मन कहता था—विष पियो, मृत्यु को देखो, अन्धकार के गीत गाओ।

धीरे-धीरे हँसकर आयी
प्राणो की जर्जर परछाईं।

अन्तर्दृष्टि मिलने पर प्रकाश तो बहुतों ने देखा है, आनंद-विह्वल होकर ज्योतिर्मय

जीवन के गीत अनेक रहस्यवादियों ने गाये हैं; आत्मग्लानि, अपमान, पश्चात्ताप, थकान, अकेलेपन, त्रास, दु:स्वप्नों और मृत्यु के साक्षात्कार से वज्र-कठोर अन्तर का टूटना, व्यक्तित्व का विघटन, अन्धकार का असीम प्रसार भवभूति ने देखा, शेक्सपियर ने देखा, इस युग मे निराला ने देखा।

शेक्सपियर अपने महा-नाटको के लिए ऐसे चरित-नायक चुनता है जो कर्मठ हैं और जिनकी इच्छाशक्ति अत्यन्त प्रबल है। मैकबेथ समर्थ सेनापति, विद्रोहियों का दमन करनेवाला वीर योद्धा है। ओथेलो भी सेनापति है जिसका स्वर सुनकर शान्ति भंग करनेवाले काँप उठते हैं। लियर बूढ़ा है किन्तु जवानी मे उसने वीरता के अनेक कार्य किये थे, और बुढ़ापे में भी वह अपनी कन्या को फाँसी देनेवाले का वध करता है। हैमलेट अध्ययन-प्रेमी है, कलाकार है, तलवार चलाने में सिद्धहस्त भी है। ये सब जानते हैं कि धैर्य न खोना चाहिए, विवेक से मन को साधना चाहिए, फिर भी बाह्य प्रहारों से मन टूटता है, आत्मग्लानि की ज्वाला से भीतर-भीतर झुलसता है, विरोधी भावों के संघर्ष से विवेक कुंठित हो जाता है, मनुष्य जीते-जी शोक और निराशा का असीम प्रसार देखता है, उसकी चेतना मूर्च्छित हो जाती है, केवल वेदना उसे सजग किये रहती है, जब मृत्यु आती है तब वह मनुष्य को जीवन के त्रास से मुक्ति देने-वाली जान पड़ती है।

मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में
आई हुई, न डरो।

शेक्सपियर ने अपने नाटको में जो कुछ लिखा था, वह सब निराला के जीवन में घटित हुआ। शेक्सपियर ने मनोविज्ञान की पोथी पढ़कर विक्षेप का चित्रण न किया था, बाह्य-आन्तरिक आघातों से मन को टूटते, दु:स्वप्नों की दुनिया में स्वयं को भटकते उसने भी देखा होगा, इसीलिए मनुष्य के अन्तर्जगत् को चित्रित करनेवाला वह अद्वितीय नाटककार है।

राजा और संन्यासी वाला द्वन्द्व कहीं शेक्सपियर के मन को भीतर से झटके देता है। हैमलेट राज्य पर अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, अपने 'प्रिंस' होने का भाव उसमें सजग है, साथ ही उसमें वैराग्य-भावना भी प्रबल है। मनुष्य क्या है? मुट्ठी-भर धूल है! हैमलेट कब्रिस्तान में नर-कपाल उठाकर सांसारिक मोह की नि:सारता पर भाषण करता है। लियर की आकांक्षा है कि राजपाट पुत्रियों को सौंप कर शान्ति से जीवन के अंतिम दिन बिताये। किन्तु राजा के अधिकार, राजा की गरिमा वह बनाये रखना चाहता है, अपनी विक्षिप्त अवस्था में भी उसका मन राजत्व का मोह नहीं छोड़ सकता :

I am a king,
My masters, know you that.

यही लियर भिखारी एडगर के प्रति अत्यन्त सहृदयता का परिचय देता है, बेघरबार गरीबों से एकात्मभाव स्थापित करने के लिए अपने राजसी वस्त्र उतार देता है। निर्धन और पीड़ित जनों के प्रति उसे गहरी सहानुभूति है क्योंकि न्याय-अन्याय की

भावना उसमें प्रखर है। ये विशेषताएँ निराला के चरित्र में है।

लियर और हैमलेट दोनों ही अपने मन को विक्षेप से ग्रस्त होते देखते है, उससे बचने का प्रयास करते है।

लियर कहता है,

O, let me not be mad, not mad, sweet heaven,
Keep me in temper : I would not be mad.

यह विक्षेप की पहली मंजिल है जब निराला कहते थे—माथा गरम हो गया था, क्षमा कीजिए, मेरा मतलब आपसे नही था। इसी तरह हैमलेट अपनी विक्षिप्त दशा को देखता है, लार्एटीज से उत्तेजना में किए हुए व्यवहार के लिए क्षमा-याचना करते हुए कहता है :

Was't Hamlet wrong'd Laertes ? Never Hamlet :
If Hamlet from himself be ta'en away,
And when he's not himself does wrong Laertes,
Then Hamlet does it not; Hamlet denies it.
Who does it then ? His madness.

हैमलेट और लियर के विक्षेप की विशेपता यह है कि उनका मन कल्पना-लोक से यथार्थ जगत् में बेरोकटोक आता-जाता रहता है। यथार्थ जगत् की पहचान कही धुँधली हो जाती है, पर मिटती नहीं है। उस धुँधले रूप मे उसकी विशेपताएँ ऐसी उभरकर दिखाई देती है, जैसी चेतना की सामान्य अवस्था मे दिखाई नही देती। हैमलेट, लियर, निराला—अपनी अर्द्ध-विक्षिप्त अवस्था में न केवल अन्तर्जगत् की लीला देखते हैं, वाह्य जगत् के प्रति भी उनकी दृष्टि पारदर्शी हो जाती है।

'किंग लियर' के विदूषक और हैमलेट मे प्रवल हास्यवृत्ति और व्यंग्य-कौशल है। आक्रोश को सीधे प्रकट न कर पाने पर ये दोनों कूट भापा का प्रयोग करते है जो उनके लिए सार्थक होती है, दूसरों के लिए निरर्थक—निराला के 'वर्तमान धर्म' की भापा की तरह।

मृत पुत्री कौर्डीलिया का शव लिये हुए, देवता और मनुष्य दोनों को कोसनेवाले लियर और 'सरोज-स्मृति' मे अपने गत कर्मो से कन्या का तर्पण करनेवाले, "हो इसी कर्म पर वज्रपात" कहकर स्वयं को कोसनेवाले निराला मे अद्‌भुत साम्य है।

लियर और निराला में एक अन्तर है। लियर अपने क्षोभ में सारी मानवता को कोसता है। मनुष्य में निराला की आस्था कभी खंडित नही हुई।

इटली के नवजागरण-काल के अप्रतिम चित्रकार और शिल्पकार थे माइकेल एन्जेलो। रैफेल के चित्रों का मार्दव उन्हें पसन्द न था, वह सुदृढ़ मांसपेशियोंवाले सुगठित शरीर का चित्रण करते है, उनके चित्रों में रंग से अधिक गठन का महत्व है, चित्रकला में प्रस्तर-शिल्प का सौन्दर्य है। माइकेल एन्जेलो स्थापत्यकार, शिल्पकार, चित्रकार, सैन्यकला-विशारद, अनेक संघर्षों में जूझनेवाले अभिशप्त प्रतिभा के धनी कलाकार थे। लिओनार्दो दा विन्ची की अभिजातवर्गीय सजधज, सुन्दर पोशाक,

उनके प्रशंसकों का काफिला देखकर वह उद्दंडता से व्यवहार कर बैठते थे। राजकुमार तुल्य लिओनार्दो की बगल में—पत्थर पर छेनी चलाते हुए, हल्के सफेद बुरादे से हाथ-मुँह साने हुए, पसीने में लथपथ गन्दे कपड़ों में माइकेल एन्जेलो, वैसे ही कोट, पेंट और सँवारे हुए केश लिये अपनी भद्रता में पंत, उनके साथ अपनी फटेहाल अभद्रता में निराला।

माइकेल एन्जेलो की सनक, उनकी झक, उनके मानसिक असंतुलन की बानगी देखिए :

"वह अपने से बातें करते हुए देहात में घूमते रहे। अपने खिलाफ नियति की दुरभिसंधि, हर तरह के षड्यंत्रों और दाँवघात की कल्पनाएँ उछालते रहे। अक्सर उन्हे ज्ञान न रहता कि वह कहाँ हैं।···वह अपने सतानेवालों को कोसते, उन्हें मारने के ख्वाब देखते। बेहद दुखी मन की असंतुलित कल्पनाएँ उन्हें झकझोरती। वह रात को सो न पाते, भोजन न कर पाते ··अन्याय और अपमान बर्दाश्त कर पाने में असमर्थ उनका मन झगड़ता, दूसरों के अपराध गिनाता, चीखता और प्रहार करता···माइकेल एन्जेलो ने चिल्लाकर कहा—हे ईश्वर, मैंने कौन-सा पाप किया है ? तूने मुझे क्यों त्याग दिया है ? मैं अगर मरा नही हूँ तो दान्ते के इस नरक की यात्रा क्यों कर रहा हूँ ?"[1]

यही नरक-यात्रा निराला ने की थी।

नगर पर शत्रु का आक्रमण हुआ। माइकेल एन्जेलो कुछ दिन तक एक पुरानी मीनार में छिपे रहे। जब पोप ने घोषणा कर दी कि उन्हें प्राणदंड न दिया जायगा, तब वह निकले। उनके एक मित्र ने मीनार की हालत देखकर पूछा—इस ठंढ में कौन-सी चीज आपको जिलाये थी ? माइकेल एन्जेलो ने उत्तर दिया—अपमान की ज्वाला।

लाञ्छना इन्धन हृदय-तल जले अनल !

शेक्सपियर और माइकेल एन्जेलो वाली परम्परा की एक कड़ी थे—अर्नेस्ट हेमिंगवे।

छह फुट से ऊँचा उनका बलिष्ठ शरीर, साधारण शिक्षा, साहित्यिक जीवन के आरंभ में कठिन संघर्ष, संपादकों के यहाँ से वापस आती हुई रचनाएँ देखकर उनका धैर्य टूटना, युद्ध में घायल होना, निरंतर परिश्रम से कला को सँवारने मे विश्वास, स्पेन के गृह-युद्ध में हेमिंगवे का फासिस्ट-विरोधी मोर्चे की ओर से लड़ना, फिर सम्पत्ति, कीर्ति, नोबेल पुरस्कार और अन्त में विक्षेप। हेमिंगवे और अमरीकी व्यवस्था के बीच कहीं गहरी टक्कर थी, उनके प्रसिद्ध उपन्यासों की कथाभूमि अमरीका से बाहर की है। उन्हे सबसे प्रिय स्पेन है जहाँ के नर-वृषभ-युद्ध उन्हे बेहद पसन्द थे, जहाँ उनके उस उपन्यास का अनुवाद प्रकाशित न हुआ जिसका संबन्ध स्पेन के गृह-युद्ध से था। अंतिम दौर में उनके मित्र उनकी कूटभाषा समझ न पाते थे। जब लोग उन्हें मानसिक चिकित्सालय ले जा रहे थे, तब उन्होंने हवाई जहाज से कूद पड़ने का प्रयत्न किया। जब हवाई जहाज से उतरे तब दौडकर उसके पंखे से कट जाने की कोशिश की। अमरीका के बड़े-बड़े विशेषज्ञ हेमिंगवे को पुनः मानसिक स्वास्थ्य-लाभ न करा

सके। जो लोग विलायत भेजकर निराला के उपचार की योजनाएँ बना रहे थे, उन्हें इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए।

हेमिंगवे के मित्र हौचनर ने पूछा—तुम क्यों मरना चाहते हो ?

हेमिंगवे ने उत्तर दिया—अब मैं लिख नहीं पाता, मेज के पास घंटों खड़ा रहता हूँ, लिखने की शक्ति भीतर से नष्ट हो गयी है; लिख न पाने के बाद जीना बेकार है।

निराला के जीवन में वह क्षण कभी न आया जब वह कहते—जी तो रहा हूँ लेकिन लिखने की शक्ति भीतर से नष्ट हो गई है।

हौचनर हेमिंगवे को अस्पताल से दूर शहर से बाहर ले गये। उन्होंने सोचा कि हेमिंगवे को वसंत बहुत प्रिय है, प्रकृति के संसर्ग से उनकी खोई हुई संज्ञा वापस आ जायगी। लेकिन हेमिंगवे का मन इनकम-टैक्सवालों, पुलिस के जासूसों, अपने सतानेवालों की दुनिया में कहाँ-कहाँ भटकता रहा ! हौचनर ने खीझकर हेमिंगवे का रास्ता रोकते हुए कहा—पापा, इट्स स्प्रिंग !

हेमिंगवे ने चश्मे के पीछे अपनी मिचमिचाती आँखों से इधर-उधर देखा और फिर अपनी दुनिया में लौट गये। वसंत की छवि उनकी संज्ञा को बाँध न सकी।

अपने अंतिम दौर में निराला वसन्त की छवि देख रहे थे और लिख रहे थे :

अट नहीं रही है,
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।

अस्पताल से छूटने के बाद हेमिंगवे ने आत्महत्या कर ली।

निराला ने आत्महत्या नहीं की।

निराला ने स्वयं को और परिस्थितियों को कहाँ तक ठीक-ठीक पहचाना ? उन्होंने अपने अन्तर को जितना वज्र-कठोर समझा था, उतना वह था नहीं। बाहरी आघातों से उसमें दरारें पड़ीं और गहरी हुईं। इस अन्तर के नीचे अपमान, ग्लानि और अहंकार के जिन भावों को वह ठेलते गये थे, वे इतने कमज़ोर साबित न हुए जितना वह उन्हें समझते थे। गुहा के द्वार पर संन्यासीवाली नैतिकता की जो शिला उन्होंने जमा कर रखी थी, वह भीतर से पोली और भुरभुरी निकली। संन्यासीवाली नैतिकता के साथ रवीन्द्रनाथ का जो भव्य चित्र—अपनी रवीन्द्र-विरोधी आलोचना के बावजूद—उन्होंने अपने मन में बनाया था, वह ज़रूरत से ज़्यादा भव्य था। इसी तरह राजनीति में जो लोग बहुत प्रभावशाली दीखते थे, वे ऐतिहासिक दृष्टि से उतने प्रभावशाली थे नहीं। निराला का विवेक स्वयं को, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझने में एक हद तक असमर्थ रहा।

किन्तु निराला एक मन से अर्द्ध-विक्षिप्त थे तो दूसरे से पूर्ण संज्ञावान्। उनका

वह दूसरा अथक अडिग मन धैर्य से मान-अपमान, ग्लानि और मृत्यु की लीला देखता रहा। विष की अग्नि से उनका शरीर दीर्घकाल तक जलता रहा और साक्षी-रूप आत्मा के समान निराला का यह दूसरा मन वह धीमी, कभी खत्म न होनेवाली ज्वाला देखता रहा, उसके चित्र आँकता रहा।

ज्वलयति तनूं अन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्—भवभूति की यह उक्ति उन पर पूर्णतः चरितार्थ होती है; अन्तर्दाह से और सब जल गया, केवल उनका यह द्रष्टा मन भस्म न हुआ। न एक विष था, न एक ज्वाला; अनेक विष, अनेक ज्वालाएँ अन्तरतम से उठती हुई निरन्तर उनके मन को घेर लेती थीं और निराला बरबस इनसे मन हटाकर वसन्त या वर्षा की झाँकी देख लेते थे। उनका यह अथक मन विक्षेप के अभिनय देखता था, दूसरे मन को दिवास्वप्नों में खो जाते देखकर उस पर हँसता था, उसके दुःस्वप्नों को सहानुभूति से देखकर उन्हें कविता मे चित्रित भी करता था। निराला अपने इस मन की शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे और उनकी वह पहचान बिलकुल सही थी।

निराला को विरोध बहुत सहना पड़ा किन्तु उन्हें समर्थन भी मिला। उन्होंने हिन्दीभाषी जनता को जितना स्नेह दिया, उससे ज्यादा स्नेह पाया। निराला कभी रीते नहीं, कभी चुके नहीं, स्नेह-निर्झर के बह जाने के बाद भी उन्हे अपने भीतर और बाहर स्नेह के नये स्रोत मिले। हिन्दीभाषी जनता की अजेय अप्रकट शक्ति से, उसके अगाध अव्यक्त स्नेह से कही निराला के मन का तार बराबर जुड़ा हुआ था।

यदि निराला के उपचेतन में बहुत बड़ी शक्ति थी तो एक उपचेतन जनता के पास भी था और उसमें निराला के लिए असीम प्यार था। इन दो उपचेतनों का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट नहीं था, न जनता के सामने, न निराला के सामने। उनके मरने पर जनता ने पहचाना, उसके हृदय में निराला के लिए कितना प्यार था। निराला कवि थे, उन्होंने अपने जीवनकाल में इस स्नेह की शक्ति का अनुभव किया था। तभी उन्होंने गर्व से इलाहाबाद की एक सभा मे कहा था—हम ढह-ढह गए हैं, टूट-टूट चुके हैं पर झुके नहीं हैं।

निराला की यह अपराजेय शक्ति हिन्दीभाषी जनता की शक्ति भी थी। हेमिंगवे अपने उपन्यासों में अमरीकी जनता से कटे हुए हैं; निराला तुलसीदास और हिन्दीभाषी जनता से सदा सम्बद्ध हैं, कहीं व्यक्त रूप से, कहीं अव्यक्त रूप मे। निराला और हेमिंगवे—विक्षिप्त दोनों हुए पर नोबेल पुरस्कार-विजेता अर्नेस्ट हेमिंगवे ने आत्महत्या की, दारागंज की गलियों में लुंगी बाँधे घूमनेवाले स्वतः संभाषण मे लीन सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने आत्महत्या नहीं की।

निराला ने अपने और परिवेश के बीच सन्तुलन यों कायम किया।

१८

मूल्याङ्कन

हिन्दीभाषी प्रदेश मे ओरछा के वीरसिंह जू देव बड़े प्रतापी नरेश हुए है। हिन्दी साहित्यकार उनकी ओर ऐसे खिचते थे जैसे चुवक की तरफ़ लोहा। जो लोग समझते थे कि अपने चरित्र और दुरूह लेखन से निराला हिन्दी का नाश कर रहे हैं, वे ओरछा-महाराज के हिन्दी-प्रेम के घोर प्रशंसक थे। उन्होंने देव-पुरस्कार देकर 'दुलारे दोहावली' आदि पुस्तकों को गौरवान्वित किया। वह कवि-सम्मेलनो के सहज अध्यक्ष थे; उनके रहते उस आसन पर किसी कवि का बैठना हिन्दी के हित में न होता। नागरी प्रचारिणी सभा ने वृद्ध आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का कार्य ओरछेश के कर-कमलो से सम्पन्न कराया। द्विवेदीजी ने कृतज्ञतापूर्वक ग्रन्थ स्वीकार करते हुए कहा, "यह मेरा परम सौभाग्य है जो पण्डितो के प्रेमी, विद्वानों के आश्रयस्थल और कवियो के कल्पवृक्ष ओरछा-नरेश ने मेरी सम्मान-वृद्धि की।"[1]

पाँच साल बाद उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी को पत्र में लिखा, "महाराजा साहब ने बहुत यश, बहुत कीर्ति कमाई। उनका हिन्दी-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। अनेक ग्रन्थकारो, कवियो और हिन्दी-हितैपियो के विपय में वे द्वितीय कर्ण हो रहे हैं।...मैं अब बहुत वृद्ध हो गया। कमजोरी बेहद बढ़ रही है..."[2]

मिश्रबन्धु अपने समय के यशस्वी आलोचक थे। बड़े परिश्रम से उन्होने कवियो के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र की थी। 'मिश्रबन्धु विनोद' का चतुर्थ भाग उन्होंने ओरछेश को समर्पित किया था :

"हिन्दी भाषा एवं कविता के अनन्य प्रेमी और सहायक, काव्य-मर्मज्ञ, सौजन्य-मूर्ति, सरल-स्वभाव, निरहंकार, रसिक-शिरोमणि, हिन्दी के सुलेखक, स्वदेश एवं स्वजाति के अद्वितीय भक्त, प्रजापालक, नरपाल-चूड़ामणि, हिज़ हाइनेस सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह देव बहादुर ओरछा-नरेश सरामद राजाहाय बुन्देलखंड के कर-कमलों में यह तुच्छ भेंट उनकी उदार स्वीकृति से, अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमपूर्वक, मिश्र-बन्धुओं द्वारा, सादर समर्पित है।"

मिश्रबन्धुओ ने ऐसी प्रशंसा देव और बिहारी की भी न की थी। तब क्या

आश्चर्य कि निराला के मन में वार-वार प्रश्न उठता था—मैं भी होता यदि राजपुत्र !

ओरछा-नरेश का महत्त्व इस वात से भी प्रकट होता है कि वनारसीदास चतुर्वेदी—प्रिंस क्रोपाटकिन के शिष्य, कैसी भी राज्यसत्ता मे विश्वास न करनेवाले पत्रकार—राजा वीरसिंह देव के प्रशंसक थे। जिन महापुरुषों के सत्संग का उन्हें लाभ हुआ, उनमें महात्मा गांधी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनवन्धु एण्ड्रूज के साथ ओरछा-नरेश भी थे। चतुर्वेदीजी के अनुसार "सहृदयता, दानशीलता और सुसंस्कृति में वह अग्रगण्य थे। इस विषय में उनकी श्रेणी या वर्ग का कोई व्यक्ति उनका मुकावला शायद ही कर सकता हो वल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि साधन-सम्पन्न तथा सुशिक्षित समाज में भी अपने गुणों के कारण उनकी पोजीशन काफी ऊँची थी।"[3]

ओरछा-नरेश वसन्तपंचमी को मदनोत्सव करते थे। इसमे वेश्याओं के नृत्य-गीत का आयोजन होता था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त-जैसे नैतिकता-प्रेमी भी पधारते थे। चतुर्वेदीजी को निराला का चरित्र नापसन्द था, पर ओरछेश के यहाँ वेश्याओं के जमघट पर उन्हें आपत्ति न थी। वह उत्सव देखने जाते और एक वार 'वही होगी कविता अनजान' की स्थिति में आ गये। उन्होंने घनाक्षरी के तीन चरण रच डाले; चौथा चरण पूरा किया मुंशी अजमेरी ने :[4]

साँची ही कहौंगो चाहे चुगल चवाव करैं,
हौंगो जग जाहिर नरेश ! सदा सच्चा मैं।
ऋषि मुनि चूके और चूके चतुरानन हू,
अचरज कहा जो सिद्ध भयो कछु कच्चा मैं।
चार छन माँहि अभिमान भयौ चूर-चूर,
चन्द्रमुखी नैन सैन खायौ एक दच्चा मैं।
प्रवल अनंग भयौ व्रह्मचर्य भंग भयौ,
डूवि गयौ चौवे रसरंग के चवच्चा में।

राजा—जो दूसरों की मेहनत का फल खाता है—समाज में आदर पाता है। वड़े-वड़े कवि और पत्रकार उसके दरवार की शोभा वढाते है, उसके आयोजित मदनोत्सवो में—नैतिकता की पोटली वगल में दवाये—शरीक होते हैं। लेखक जो अपनी मेहनत की रोटी खाता है, यदि लेखन-कार्य ही जीविका का साधन हुआ तो, समाज मे अनादर पाता है। जो प्रकाशक उसका भयंकर शोषण करते हैं, उनके कृत्यों पर नैतिकता के कर्णधार चुप रहते है।

शिकार-साहित्य के विशेषज्ञ, व्यायाम-प्रेमी, सहृदय पत्रकार श्रीराम शर्मा ने निराला से उनकी आमदनी के वारे में पूछा था; निराला ने उत्तर दिया : "आप मेरी आमदनी के सम्वन्ध में पूछते हैं। सच तो यह है कि मैने कभी आमदनी के विचार से काम नहीं किया। अनुवाद और सम्पादकों के लिए जो कुछ वैठा-विठाया लिखता था, वह किसी तरह खर्च चला लेने के लिए। फिर भी पूरा नहीं पडता था। लेख के लिए १५) से २०) तक अधिक-से-अधिक एक अंक में मुझे मिला है। ऐसे दो लेखों की आमदनी ज्यादा-से-ज्यादा महीनों में हुई। खर्च मौलिक पुस्तकों का कापीराइट वेचने

पर किसी तरह चला। २००)-२५०) मे कापीराइट वेचा।"

यह पत्र उन्होने ६ फरवरी '३७ को लिखा था। तब तक वह 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोजस्मृति', 'गीतिका', अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' आदि अपना अधिकाश साहित्य रच चुके थे। एक लेख से पन्द्रह-बीस रुपये मिल जाते थे, वह भी हर महीने नही क्योकि कोई भी पत्रिका निराला के—या अन्य किसी के—लेख प्रतिमास न छाप सकती थी। हिन्दी की अधिकाश पत्रिकाएँ—सन् '३७ तक —उनके लेख छापने को तैयार न थी।

सम्पादकीय नीति साधारणतः यह रहती है कि लेखको को कुछ दिये विना ही, हिन्दी-सेवा के नाम पर, उनसे लेख प्राप्त किये जायँ। यदि मजबूरी मे पारिश्रमिक देना स्वीकार किया तो भरसक उसे टालते रहते है, जब किसी तरह पीछा नही छूटता तभी मनीआर्डर करते है। 'सरस्वती' और 'माधुरी' हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिकाएँ थी और पद्मसिह शर्मा हिन्दी के अत्यन्त सम्मानित लेखक थे। उन्होने इन पत्रिकाओ के बारे में यह राय जाहिर की थी : "सरस्वती और माधुरी पूँजीपतियों की पत्रिकाएँ हैं, पर उनके सम्पादक अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए लेखकों को कोरा टरका देते है। फिर भी लेख लेना अपना हक समझते हैं।" यह तो हुई पत्रिकाओ में लेख लिखने की बात; पुस्तकें लिखने के पारिश्रमिक की दर बहुत अच्छी न थी, न वादे के अनुसार प्रकाशक रुपया दे देता था। पद्मसिह शर्मा ने प्रकाशको को अर्थपिशाच कहा था। अपने एक अनुभव के बारे मे वियोगी हरि को लिखा था, "एक प्रकाशक मेरे लेख-संग्रह के लिये बहुत लालायित थे, जब पुरस्कार की बात चली तो पहले ॥) पेज कहा, फिर १) पेज पर आकर ठहर गये और वह भी वाद को पुस्तक बिकने पर।"[५]

सन् '२८ मे हिन्दी-ससार के सर्व-सम्मानित आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को 'विशाल भारत' में उनके संस्मरण प्रकाशित करने के लिए बनारसीदास चतुर्वेदी पाँच रुपये प्रति पृष्ठ देने को तैयार थे। द्विवेदीजी ने लिखा कि इतना तो 'सरस्वती', 'माधुरी' और 'सुधा' वाले उनके साधारण नोटो के लिए देते हैं।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि 'सुधा' मे नोट लिखने के लिए निराला को पारिश्रमिक किस हिसाब से मिलता होगा। द्विवेदीजी चाहते थे कि उन्हे कोई पाँच रुपये कालम दे और पाँच हजार मे कापीराइट खरीद ले। हिन्दी प्रकाशकों की स्वार्थ-लिप्सा के कारण द्विवेदीजी के संस्मरण अलिखित ही रह गये। पाँच हजार रुपये वह अपने लिए नही, खैरात के लिए माँगते थे।

अठारह साल तक 'सरस्वती' का सम्पादन करने के बाद उसे छोड़ने के समय उनकी तनखाह डेढ सौ थी। तब क्या आश्चर्य कि दुलारेलाल भार्गव बदनाम निराला को अपने यहाँ सौ रुपये माहवार पर सम्पादक रखने को तैयार न थे!

निराला ने अपनी किताबो का कापीराइट दो सौ, ढाई सौ मे वेचा, तो इसका मतलब है, उन्हे रुपये बारह आने पेज के हिसाब से पारिश्रमिक दिया गया। यह प्रकाशक की उदारता थी कि उसने किताब बिकने का इन्तजार न करके पाण्डुलिपि मिलते ही पैसे दे दिये। आठ आने, रुपये प्रति पृष्ठ की बात उन लेखको के साथ होती

थी, जो प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित थे। तंगी में भटकनेवालों के लिए चार आने पेज वहुत थे।

दयाराम वेरी ने लिखा है कि निराला को वह ४) फार्म देते थे और "उन दिनों के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा भी इसी तरह ४) फार्म पर साहित्य लिखा करते थे।"[१] इससे भिन्न निहालचन्द वर्मा ने पारिश्रमिक की जो दर छह रुपये फार्म लिखी है वही सही नहीं है।[७] कलकत्ते में निराला चवन्नी पेज पर साहित्य लिखते थे और वह पारिश्रमिक भी उन्हें वक्त पर न मिलता था। तव उत्तेजित न होते ?

श्रीराम रोड पर रामविलास पाण्डेय ने कितावों की दूकान खोली थी। नाम था—सरस्वती पुस्तक भंडार। जव सरोज बीमार थी, तव निराला ने पाण्डेयजी के अनुसार सौ रुपये उधार लिये। उसके वाद उन्हें 'प्रभावती' उपन्यास और 'सखी' कहानी-संग्रह दिये। इन्हें देते वक्त उन्हें कुछ न मिला, न इनके छपने और विक जाने के वाद उन्हें कुछ मिला। पुस्तकें उन्होंने दीं उधार लिये हुए रुपये चुकाने के लिए। पाण्डेयजी ने निराला से अपनी मैत्री और अभिन्नता का उल्लेख करते हुए लिखा था : "मुझसे उनकी अभिन्नता लगभग दो वर्ष तक रही। वह अपने उपकारी के उपकारों को कभी भूलते न थे। एकवार जव उनकी लड़की को टी० वी० हो गई थी और रायवरेली से पत्र आने पर वह पत्र लेकर मेरे पास आए थे, रायवरेली जाकर उसे देखने की इच्छा प्रकट की। मैंने कहा था कि आप फौरन चले जाइये, खर्च के लिए मैं एक सौ रुपये दिए देता हूँ। अतः मुझसे एक सौ रुपये पाकर वह रायवरेली चले गए थे और वापसी पर यही कहा था कि अव लड़की मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही है, वचने की कोई आशा नही हैं। कुछ समय वाद लड़की स्वर्ग सिधार गयी, यह सूचना भी उन्होंने दी थी।"[८]

अपने उपकारी के उपकारों को न भूलनेवाले निराला ने ऋणशोध मे दो पुस्तकें दीं। उपकारी ने यह यथेष्ट समझा कि उधार चुकाने में कितावें ले ली जायँ, और पैसा न दिया जाय—अभिन्नता का दावा ऊपर से।

"उन्होंने जो कुछ मुझसे नकद रुपये लिये थे, उसके लिए उन्होने प्रभावती मुझे लिखकर दी थी और प्रेमस्वरूप 'सखी' (कहानियाँ) छापने का पूर्ण अधिकार दिया था। मैंने दोनों पुस्तकें छापी थीं। वाद मे निरालाजी ने एकवार मुझे प्रयाग से पत्र लिखा था कि मेरी आर्थिक दशा खराव हो गई थी। अतः मैंने आपकी दोनों पुस्तकें प्रयाग के पब्लिशरों को वेच दी हैं। यह मैंने अनुचित कार्य किया है। मित्र के नाते आप क्षमा करेंगे। मैंने उन्हें प्रयाग लिख दिया था कि आपने जो कुछ किया, सव ठीक है।"

रामविलास पाण्डेय धन्यवाद के पात्र हैं जो इतना विवरण लिख भेजा। अन्य प्रकाशक निराला को दिये हुए पैसों के वारे में चुप रहते हैं। एक पुस्तक उधार चुकाने में; दूसरी प्रेम-स्वरूप भेंट। जव निराला ने पुस्तकें दूसरे प्रकाशकों को दीं तो क्षमा-याचना की, और अभिन्न मित्र ने उदारता से लिखा, 'आपने जो कुछ किया, सव ठीक है।

निराला कापीराइट देने के वाद यदि पुस्तकें दूसरों को वेचते तो गंगा पुस्तकमाला और लीडर प्रेस को दी हुई कितावें भी दूसरो को वेच देते। ऐसा उन्होने नहीं किया।

उन्होने इस तरह के व्यवहार के लिए अपने अभिन्न मित्र को ही चुना, इस पर विश्वास नही होता। मेरा अनुमान है कि निराला ने 'सखी' और 'प्रभावती' का कापीराइट रामविलास पाण्डेय को न दिया था। निराला ने वे पुस्तकें दूसरे प्रकाशक को देते समय रामविलास पाण्डेय से क्षमा-याचना की, यह बात भी विश्वसनीय नहीं है।

प्रकाशको के और बहुत-से हथकंडे हैं। पुस्तक के बारे मे लेखक से कहेंगे, देखिए पाँच साल मे पहला ही संस्करण खत्म नही हुआ; हिन्दीवाले किताबें खरीदते नही; और आपकी किताबें तो विद्यार्थियों के काम की नही, इसलिए और भी नही बिकती। फिर भी इधर आपने नया कुछ लिखा हो तो दीजिए, हम छाप देंगे।

लेखक फटेहाल, सड़क पर; प्रकाशक हवेलियो मे मौज उड़ाते हुए। किताबें नही बिकती—इसका असर लेखक पर ज्यादा होता है—प्रकाशक की तिजोरी भरती जाती है।

निराला की दस वर्ष की काव्य-साधना का फल—'परिमल'। प्रकाशक ने कहा, पाँच साल मे अभी पहला एडीशन खत्म नही हुआ। निराला के मन को चोट लगी। वह समझे, यह हिन्दी वालों का अन्याय है जो उनकी किताबें खरीदते नही है। उन्होंने 'माधुरी' में प्रकाशित 'स्वकीया' शीर्षक लेख मे अपने दिल का दर्द एक वाक्य मे प्रकट किया : "एक दिन देखा, 'परिमल' पांच साल मे केवल आठ सौ खपा है और उसके प्रकाशक किसी व्यक्ति या सस्था को पुरस्कार देते है, तो किताबो मे 'परिमल' अवश्य होता है।"

यह भी देखने में आया है कि पहला संस्करण खत्म हो जाने पर प्रकाशक दूसरे संस्करण मे ढिलाई करते है, कभी-कभी तो जान-बूझ कर दूसरा संस्करण नही निकालते। सोचते हैं कागज़ और छपाई मे दाम उतने ही लगेंगे, नई किताब निकालें जिससे ज़्यादा मुनाफा हो।

'प्रबन्ध प्रतिमा' निराला का श्रेष्ठ निबन्ध-संग्रह है। १६४० मे भारती भंडार, लीडर प्रेस से प्रकाशित हुआ। सन् '६१ में निराला के मरने तक—बीस साल मे—इसका दूसरा संस्करण न हुआ!

कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी से भिन्न-भिन्न प्रकाशको के यहाँ अपनी पुस्तके छपाने से निराला को क्या लाभ था? जिन्दगी-भर वह एक प्रकाशक के यहाँ से दूसरे प्रकाशक के यहाँ भटकते रहे जैसे किरायेदार एक मकान-मालिक से झगड़ा होने पर दूसरा मकान ढूँढ़ता है, सोचता है यह मकान-मालिक अच्छा होगा। निराला इससे कर्ज लेते, पुस्तक देते, फिर कर्ज माँगते, न मिलता तो किसी और का दरवाजा खटखटाते। प्रकाशक लेखक को पैसा देते समय उसे कितना खिझाता है, कितना अपमानित करता है, इसे भुक्तभोगी ही जानता है। निराला ने कम-से-कम दो प्रकाशको से हाथापाई की, मनमुटाव सबसे हुआ।

श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उनका अर्थ-कष्ट देखकर इण्डियन प्रेस से उनके लिए अनुवाद-कार्य पर मासिक पेमेंट का प्रबन्ध करा दिया था। पर वह भी ज्यादा दिन न चला, इसके लिए दोषी जो भी हो। इस सम्बन्ध में चतुर्वेदीजी ने मुझे जो बातें

लिखी थीं वे इस प्रकार हैं : "इंडियन प्रेस से अनुवाद का प्रवन्ध मैंने ही किया था। निरालाजी की कोई बँधी आमदनी न थी और वे कभी-कभी बड़े आर्थिक-कष्ट में पड़ जाते थे। मैंने उनसे कहा कि आप कविता, उपन्यास आदि मौलिक चीजें अपनी रुचि और 'मूड' से लिखें, किन्तु कुछ लेखन-कार्य नियमित रूप से किया करें जिससे नियमित आय हो। मैंने ही बँगला उपन्यासों के अनुवादो का सुझाव दिया, क्योंकि मैं समझता था कि इस कार्य में उन्हें अधिक श्रम या कठिनाई न होगी। पटेल बाबू से मैंने उन्हें १००)मासिक देने को कहा और स्पष्ट कर दिया था कि मैं क्यो यह प्रस्ताव कर रहा हूँ। मैंने कह दिया था कि तीन-चार महीनों में एक अनुवाद मिलेगा। यह क्रम डेढ़ या दो वर्ष चला। इसके बाद जब उनमे persecution mania उत्पन्न हुआ और बढ़ा तब उनका अनुवाद-कार्य एकदम बन्द हो गया। पटेल बाबू ने जब देखा कि काम बिलकुल बन्द है और कई महीनों से अनुवाद नहीं मिला तो मासिक रुपया देना बन्द कर दिया।"

निराला के देहान्त के बाद उनके उत्तराधिकारी रामकृष्ण त्रिपाठी ने प्रकाशकों की धाँधली के खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू की। उन्होंने एक नोटिस दुलारेलाल भार्गव को दिया। ४ जुलाई '६३ को पेशी के दिन दोनों पक्षो में सुलहनामा हुआ। सुलहनामे के अनुसार अदालत से रामकृष्ण त्रिप्राठी को पचास हज़ार रुपये की डिक्री प्राप्त होगी, जिसका भुगतान वह एक हजार रुपये प्रतिवर्ष करते रहेंगे। रुपया निश्चित अवधि में प्राप्त न होने पर वह कुर्की इजराय करा सकेंगे।

स्पष्ट ही यह पचास हज़ार रुपये की रकम भविष्य में निराला की पुस्तकों की बिक्री से प्राप्त होनेवाली रायल्टी न थी। जो बिक्री हो चुकी थी, उसका हिसाब साफ करने के लिए प्रकाशक ने समझौते के तौर पर यह रकम स्वीकार की थी।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रकाशकों ने निराला का कैसा भयानक शोषण किया था। निराला जो कहते थे कि लाखों का हिसाब छोडा है, वह बात एकदम गलत नहीं थी।

निराला में जितना अहंकार था, उससे ज़्यादा स्वाभिमान था। वह न किसी मित्र के आसरे रह सकते थे, न सरकार के। कमलाशंकर सिंह ने लिखा है कि "मासिक वृत्ति के लिए जो सरकारी आज्ञा-पत्र उनके पास आया था उसे फाड़कर उन्होने फेंक दिया।"[१]

वह जब कमलाशंकर सिंह के यहाँ रहने आये तब उन्होने उमाशंकर सिंह से पूछा था—किताब छापोगे ? उमाशंकर सिंह ने कविताएँ छापना स्वीकार किया; वह इससे पहले 'चाबुक' छाप चुके थे। तब निराला उनके यहाँ रहने लगे। उन्हें इस बात का बराबर ध्यान रहता था कि वह कमलाशंकर सिंह पर भारस्वरूप न हों। कोई मेहमान आ जाय तो अपना भोजन वह उसे दे देते थे और स्वयं भूखे सो जाते थे। कमलाशंकर सिंह की पत्नी कलावती 'बच्ची' ने लिखा है, "भोजन करते समय जब कोई मित्र या अतिथि आ जाता तो अपने सामने की परसी थाली वह उनकी ओर बढ़ा देते और स्वयं जल पीकर रह जाते। बहुत कहने पर भी दूसरी परसी थाली वह स्वीकार

नही करते थे।"[१०]

'निरालाजी की वास्तविक स्थिति'—शीर्षक से जो वक्तव्य सन् '५४ के अन्त में कमलाशंकर सिंह ने पत्रों मे प्रकाशनार्थ भेजा था, उसमें उन्होने कहा था, "जिलाधीश द्वारा १२० रुपये पंडितजी के खाने-पीने तथा फलादि के प्रवन्ध के लिए मुझे नियमित रूप से मिलता है। विशेष आवश्यक वस्तुओं के लिए लिखते ही जिलाधीश महोदय उनकी तत्काल व्यवस्था कर देते है।"

रुपये-पैसे का अहसान लेना तो दूर की वात, कोई उनके समर्थन मे कुछ कह दे या लिख दे, तो भी वह उस अहसान को न भूलते थे। कही-न-कही उसकी तारीफ़ ज़रूर करते थे, उस पर लेख लिखते थे या अपनी पुस्तक की भूमिका लिखाकर उसे सम्मानित करते या उसे पुस्तक ही समर्पित कर देते थे।

महादेवप्रसाद सेठ को 'अनामिका' उन्होने इसी भाव से समर्पित की। श्रीनारायण चतुर्वेदी को अपनी श्रेष्ठ कृति 'तुलसीदास' अर्पित की। प्रसाद के निधन पर कविता लिखी। महादेवी वर्मा पर कविता लिखी। नंददुलारे वाजपेयी पर लेख लिखा, 'गीतिका' की भूमिका उनसे लिखाई, 'अलका' उन्हे समर्पित की। दयाशंकर वाजपेयी को 'निरुपमा', जानकीवल्लभ शास्त्री को 'वेला', गंगाप्रसाद पाण्डेय को 'नये पत्ते', पुरुषोत्तमदास टंडन को 'प्रवन्ध प्रतिमा', दुलारेलाल भार्गव को 'लिली', पंत को 'अप्सरा', अमृतलाल नागर को 'कुल्ली भाट' पुस्तकें समर्पित की। इनमें दो-एक को छोडकर सभी साहित्यकार उनसे उम्र मे छोटे थे। पुस्तक समर्पण करके लोग किसी तरह का लाभ उठाने की वातें सोचते है। निराला यह कार्य केवल स्नेह-प्रदर्शन के लिए करते थे। साथ ही किसी का रंच-मात्र अहसान उन पर न रह जाय, इसलिए भी। महादेवप्रसाद सेठ न रहे, पर निराला के मन मे उनकी स्मृति वनी रही। 'अनामिका'समर्पित करके उन्होने मन की कृतज्ञता प्रकट की। मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव न रहे, निराला ने उनकी पुण्यस्मृति को 'चावुक' भेंट की। अपने वालसखा-रामशंकर शुक्ल को भी वह न भूले; उन्हे 'महाभारत' समर्पित की।

इन समर्पणो से यह भी पता चलता है कि निराला के समर्थकों की सख्या कम नही रही। उनका विरोध वहुत हुआ, इसमे सन्देह नही पर अन्य कवियों की अपेक्षा उन्हें समर्थन अधिक ही मिला, कम नही। आरम्भ में 'पंचवटी प्रसंग' पर अनुकूल सम्मति देकर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनका उत्साह वढ़ाया।

आचार्य द्विवेदी और निराला मे अनेक चरित्रगत समानताएँ थीं। दोनो में वैसवाडे का अक्खडपन, दोनों महा स्वाभिमानी, दोनों एक-दूसरे से वढ़कर हठी, दोनो कुलीन कान्यकुब्जो की रूढिवादिता के कट्टर विरोधी, दोनो अपने आगे हिन्दी मे और सवको नगण्य समझनेवाले। द्विवेदीजी मे अंहकार की मात्रा निराला से कुछ कम न थी। ऐसा कौन-सा लेखक है जिसकी रचना सरस्वती में छपने आई हो और उसे चाहे उन्होने ही मँगवाया हो— पर जिसे उन्होंने सुधारा न हो? वालमुकुन्द गुप्त से लेकर मिश्रवन्धुओं तक किसी समसामयिक आचार्य से उनकी नही पटी। वह हिन्दी के एक-मात्र चक्रवर्ती आचार्य थे, जैसे निराला हिन्दी के एकमात्र महाकवि!

यह दुर्भाग्य की बात है कि वह निराला के बाह्य ग्राचरण ग्रौर 'वर्तमान धर्म' की शैली से रुष्ट हो गये। बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने पत्र के साथ 'वर्तमान धर्म' भेजकर जब उनकी सम्मति माँगी, तो उन्होने लिखा, "विक्षिप्त का वर्णना, पागल का प्रलाप या अँग्रेज़ी में Effusion of diseased mind जो चाहे, कहिए, जो दवा मुनासिब जान पड़े, कीजिए। मगर दवा कारगर होने की नहीं, क्योंकि 'मूर्खस्य नास्त्यौपधम्' अथवा 'ज्ञानलवविदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति'।

मूर्ख के चिह्न हैं—

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते ॥

जिन महाशय का नाम आपने लिखा उनकी तारीफ़ मैं कहाँ तक करूँ! बंगाल में जहाँ थे, बेचारे दुर्गतिपूर्वक निकाले गये। 'समन्वय' के एक ब्रह्मचारीजी से कहकर मैंने उन्हें वहाँ करा दिया। नही ठहरे। जहाँ-जहाँ गये निकले। मुझे बाबा कहकर बाप बनाते थे। दस कोस पैदल चलकर मेरे घर आते थे। सरस्वती छोडने के पहले मैंने ठाकुर गोपालशरणसिंह की कविता को अच्छी बता दिया। जुही पहुँचे। मेरी बेहद खबर ली। मैं तो मै दूसरा कवि बनने का मुस्तहक़ कौन? व्यंग्यपूर्ण कविताएँ भी मुझ पर लिखीं। छन्दः शास्त्र-विषयक मेरी एक गलती भी ढूंढ़ निकाली—थी वह भूतों की। क्या पूछते है आप? सज्जन मनुष्य की हरकत तो ऐसी होती नही 'यद्रोचते तत्कुरु'।"[११]

द्विवेदीजी ने अपना पत्र उद्धृत करने की मनाही कर दी थी। चतुर्वेदीजी के हाथ में ब्रह्मास्त्र था और निराला पर वह उसका प्रयोग न कर सके! बड़ा आत्म-संयम करना पड़ा होगा। निराला के लिए अच्छा हुआ कि 'विशाल भारत' में वह पत्र उद्धृत न हुआ। 'वर्तमान धर्म' के तमाम आलोचको की सम्मतियों से उन्हे उतनी पीडा न होती जितनी द्विवेदीजी के इस एक पत्र से।

निराला की मृत्यु के बाद वह पत्र उद्धृत करते हुए चतुर्वेदीजी ने लिखा, "द्विवेदीजी के इस पत्र पर टीका-टिप्पणी करने की जरूरत नही।"

मेरी समझ में थोडी जरूरत है। द्विवेदीजी की राय में निराला के मुकाबले गोपालशरण सिंह बड़े कवि थे। आज इस राय से कितने लोग सहमत होंगे? द्विवेदीजी ने यह राय सन् '३२ में दी थी। तब तक 'परिमल' प्रकाशित हो चुका था। द्विवेदीजी के काव्य-बोध से छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी—किसी धारा के कवि सहमत नही हैं। यदि द्विवेदीजी की राय सही होती तो हिन्दी कविता में न 'कामायनी' का महत्त्व होता, न 'राम की शक्तिपूजा' का। द्विवेदीजी की प्रसिद्धि भाषा-संस्कार के लिए रह गई है, काव्य-समालोचना के लिए नही। उन्होने रीतिवाद का विरोध करते हुए खड़ीबोली काव्य की प्रतिष्ठा बढाई, यह उनका महत्त्वपूर्ण कार्य है। पर उनके काव्य-बोध की सीमाएँ न समझकर निराला के विरुद्ध उनका पत्र वेद-वाक्य की तरह उद्धृत करना अपनी ही कमज़ोरी प्रकट करना है।

चतुर्वेदीजी ने निराला और छायावाद का विरोध वर्षों तक किया। वह विरोध

उनके जीवन-काल में व्यर्थ सिद्ध हो गया। किसी भी साहित्यकार के लिए यह स्वीकार करना आसान नहीं कि उसकी साहित्य-साधना व्यर्थ हुई। निराला का विरोध चतुर्वेदीजी की साहित्य-साधना का श्रेष्ठ अंश था; इसलिए महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम को ढाल बनाकर 'वर्तमान धर्म' के विरोध को सार्थक सिद्ध करने का प्रयास—निराला के मरने के बाद भी—उनके लिए बहुत स्वाभाविक है।

निराला ने 'वर्तमान धर्म' न लिखा होता तो भी द्विवेदीजी उन्हें गोपालशरण सिंह से बड़ा कवि न मानते, यह निश्चित है। निराला ने 'सरस्वती' के संपादकीय नोटों की भाषा की आलोचना की। द्विवेदीजी 'सरस्वती' के संपादक न थे, फिर भी उन्होंने बुरा माना; 'मतवाला' में भाषा की भूलें दिखाते हुए एक अंक सुधार कर भेजा। उनकी राय में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी या देवीदत्त शुक्ल निराला की तुलना में समर्थ गद्य-लेखक थे।

द्विवेदीजी को निराला बाबा कहते थे। बाबा बनने के बाद वह निराला को अपने बराबर जगह न दे सकते थे। पर निराला ने सन् '२१ में ही उन्हें सूचित कर दिया था कि सेवक-सेव्य संबन्ध में दोनों को लाभ होता है—एकतरफ़ा व्यापार नहीं है—सेवक की आत्मा पर शुद्धि की छाप लगती है, सेव्य की आत्मा तृप्त हो जाती है। द्विवेदीजी समझते थे, वह निराला की सहायता करके सेवक की आत्मा शुद्ध कर रहे हैं, स्वयं उन्हें उससे कोई लाभ नहीं है।

निराला तो हठी, दुर्वचनी थे ही, पर मैथिलीशरण गुप्त तो सात्त्विक वैष्णव संस्कृति के प्रतीक थे। द्विवेदीजी उनसे भी रुष्ट हो गये थे, इसलिए कि वह 'साकेत' पर द्विवेदीजी की राय से असहमत थे। "जो राय मैंने दी थी उनका सर्वांग में खंडन कर डाला। इसकी क्या जरूरत थी?"—द्विवेदीजी ने राष्ट्र-कवि को लिखा था।[१२] 'साकेत' में दोषदर्शन की शुरूआत बनारसीदास चतुर्वेदी ने की थी। सहारे के लिए एक आचार्य की ज़रूरत थी। वह सहारा द्विवेदीजी से मिला। "गुप्तजी ने मुझे पिता बनाया और आप पुत्र बने"—आचार्य ने 'विशाल भारत'-संपादक को सूचित किया। इसी तरह निराला ने भी उन्हें पिता बनाया था। पर जो राय मैंने दी थी, उसका सर्वांश में खंडन कर डाला; इसकी क्या ज़रूरत थी? फसाद की जड़ यह थी कि जो पुत्र बना, वह पिता की राय का खंडन करने लगा। नतीजा यह कि पिता-पुत्र में "पत्र-व्यवहार खत्म हो गया।" द्विवेदीजी ने निष्कर्ष निकाला: "समझाने से जो न समझे उसे कौन समझा सकता है?"

मूर्ख के लक्षणों में एक बात यह भी थी—परोक्तं नैव मन्यते! समझाने से समझे नहीं, न निराला, न मैथिलीशरण गुप्त! वैसे बालमुकुन्द गुप्त के समझाने से द्विवेदीजी भी न समझे थे। उल्टा उन पर व्यंग्य-कविता लिखी थी। निराला ने द्विवेदीजी पर व्यंग्य-कविता लिखी हो तो आश्चर्य नहीं! द्विवेदीजी जानते थे कि 'अनस्थिरता' शब्द का प्रयोग असावधानी से हो गया था, पर इज्जत का सवाल था; वह अपनी गलती मानने को तैयार न थे। उन्होंने किशोरीदास वाजपेयी से कहा था, "भैया, गलती से वह 'अनस्थिरता' शब्द निकल गया था। मैं उस समय भी उसे गलत समझता था

और आज भी गलत समझ रहा हूँ। गलत न सही, प्रवाह-प्राप्त तो वह है ही नहीं। प्रवाह ही भाषा में बड़ी चीज़ है। मैं तुरंत स्वीकार कर लेता, यदि उस तरह कोई पूछता-कहता। बात कुछ दूसरे ढंग से कही गई।...और भैया, मुझे भी अपनी शक्ति के अनुसार हिन्दी का कुछ काम करना था। वैसा काम करने के लिए साख की भी जरूरत है। प्रभाव उखड़ गया, तो सब गया। जिस ढंग से और जिस रूप में वह विवाद उठाया गया था, उसे मैंने उचित न समझा। उस समय मैं दब जाता, तो लोग मेरी खिल्ली उड़ाते और फिर उस रूप में कुछ कर न पाता।"[13]

यह भी संभव है कि द्विवेदीजी अपनी गलती मान लेते तो लोग उन पर और भी श्रद्धा करते। पर पुराने संयुक्त परिवारों के पुरिखा मरजाद कायम रखने मे विश्वास करते थे। बाहर भरम बना रहे, भीतर चाहे जो कुछ हो। ऐसा ही भरम द्विवेदीजी बना रहे थे, ऐसे ही कुछ भरम निराला ने बनाये थे।

द्विवेदीजी में जितना अहंकार था, उतनी ही विनम्रता थी। वह दूसरों को आशीर्वाद न देकर साधारणतः 'नमोनमः' कहते थे। यह कला निराला ने उन्ही से सीखी थी; पैर छूनेवाले या हाथ जोड़कर प्रणाम करनेवाले से नमोनमः। भाव यह कि आशीर्वाद देनेवाला मैं कौन! द्विवेदीजी नन्ददुलारे वाजपेयी के प्रणाम करने पर नमोनमः कहते थे। एक बार जब आशीष दी तब वाजपेयीजी ने जाना—आचार्य उन पर प्रसन्न हैं।

द्विवेदीजी से मिलने लक्ष्मीधर वाजपेयी आये। द्विवेदीजी हाथ में उनके जूते उठाकर भीतर ले आये थे। जानकीवल्लभ शास्त्री निराला से मिलने भूसामण्डीवाले घर में आये थे। निराला जीने पर चढ़ते हुए उनके जूते हाथ में लिये चले आये थे।

निराला का अहंकार अधिकतर अभिजातवर्गीय लोगों, अपनी सम्पत्ति पर अभिमान करनेवालों के सामने प्रकट होता था। यही हाल द्विवेदीजी का था। उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था, "लोकोक्तिकोश वाले श्री खत्रीजी को यह चिट्ठी दिखाइए और उनसे कहिए कि मैं उनसे, मुर्शिदाबाद वाले नवाबी जगत्सेठों से तथा कारनेगी और राकफेलर से भी अधिक अमीर हूँ। अमीर किसे कहते हैं, यह शायद वह नहीं जानते। शंकराचार्य जानते थे।...मैं तो दुनियाभर के अमीरों को, लक्षाधीशों ही को नहीं कोट्याधीशों को भी अपने सामने तृणवत् समझता हूँ।"

तृणवत्—या बैसवाड़ी मुहावरे के अनुसार किसी और वत्—निराला भी समझते थे। अपने व्यवहार से इसे वह प्रकट भी कर देते थे। ओरछा-नरेश को द्वितीय कर्ण कहने की ताब उनमें न थी।

अपना सुदीर्घ जीवन हिन्दी-सेवा मे अर्पित करने के बाद द्विवेदीजी हिन्दीवालों से कुछ ऊब-से गये थे। आत्मचरित न लिखने का एक कारण यह ऊब भी थी। उनके जीवन के तमाम तिक्त अनुभवों का निचोड़ चतुर्वेदीजी को लिखे हुए इन वाक्यो मे सिमट आया है: "हिन्दी लेखकों की दशा अच्छी नहीं। प्रकाशक उनसे भी बदतर हैं। रद्दी कहानियाँ ये लोग दौड़-दौड़ छापते हैं। मेरे फुटकर लेखो की कोई ३२ पुस्तकें हुई हैं। बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने सबकी नकल करा दी। उनमे से कोई १० पुस्तकें

पड़ी हुई है। कोई पूछता ही नहीं। ऐसे लोगों के लिए आत्मचरित लिखकर वेचने की इच्छा नही होती। हो भी तो लिखने की शक्ति नही।"

'कविवचन सुधा' में प्रकाशित भारतेन्दु के लेख असकलित रह गये। 'सरस्वती' में महावीरप्रसाद द्विवेदी के लिखे नोट संकलित होने पर भी छापे न गये। तव 'सुधा' मे निराला ने क्या लिखा, इसकी फ़िक्र किसे हो सकती है? पर इसमे दोष हिन्दी पाठकों और लेखको का नही है, दोप है प्रकाशको का, भारत मे शिक्षा और संस्कृति के सूत्रधारो का।

काग्रेसी मन्त्रिमण्डल वनने पर द्विवेदीजी की वन्दूक का लाइसेंस छीन लिया गया, मानो बुढापे मे उनकी वन्दूक से काग्रेसी पुलिस को खतरा हो! चतुर्वेदीजी ने इस पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है, "उत्तर प्रदेश मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के शासन-काल मे हिन्दी के युग-निर्माता आचार्य द्विवेदीजी के साथ जो अनाचार हुआ उसका वृत्तान्त पढ़कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है।"

सोचने की वात है, काग्रेसी सरकार की ओर से राज्य-सभा के मनोनीत सदस्य अराजकतावादी पत्रकार वनारसीदास चतुर्वेदी का सिर जव लज्जा से झुक जाता है, तव जवाहरलाल का नाम सुनते ही निराला का माथा गर्म हो जाता था तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी वात है?

चतुर्वेदीजी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी मे जहाँ निराला का विरोध देखा, उससे लाभ उठाया, जहाँ उन्होने निराला का समर्थन किया था, वह उसके वारे मे चुप रहे। पर द्विवेदीजी ने निराला के अभ्युदय-काल मे उन्हे सहारा दिया—अपने चरित्र से उन्हे प्रभावित किया, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

महादेवप्रसाद सेठ, नवजादिकलाल, शिवपूजन सहाय, सकलनारायण शर्मा, चन्द्रशेखर शास्त्री, राधामोहन गोकुलजी आदि का समर्थन उन्हे कलकत्ते मे मिला।

प्रसाद ने 'गीतिका' का प्राक्कथन लिखकर उनका समर्थन किया। विनोदशंकर व्यास, शान्तिप्रिय द्विवेदी, रायकृष्ण दास आदि वनारस के अनेक साहित्यकार निराला के समर्थक थे। निराला की सवसे वडी सहायता वे करते थे जो पत्रिकाओ मे उनके लेख छापते थे, उन्हे पारिश्रमिक देते थे। कृष्णविहारी मिश्र और रूपनारायण पाण्डेय ने इस प्रकार निराला की वडी सहायता की। इनके साथ प्रेमचन्द का नाम भी लेना चाहिए। 'माधुरी' मे निराला के लेखादि प्रकाशित करने में उनका हाथ भी था। इसके सिवा 'हंस' मे उन्होने निराला के लेख और कविताएँ छापी। 'अप्सरा' लिखने के वाद निराला उन्हे अपना विरोधी समझने लगे थे; 'हंस' मे अपने विरुद्ध लेख और 'जागरण' मे चरित्र पर टिप्पणी छापने से वह प्रेमचन्द पर सन्देह करने लगे थे। सौभाग्य से उनके संवन्ध फिर अच्छे हो गये। 'उग्र' से भी निराला की न पटती थी। 'उग्र' के मन मे निराला के प्रति किंचित् ईर्ष्याभाव था, पर वह पीठ पीछे निराला का वरावर समर्थन करते थे। कोई 'मतवाला'-मण्डल के किसी सदस्य की आलोचना करे और 'उग्र' की गाली खाये विना चला जाय, यह संभव न था। 'उग्र' से कई वार निराला को लेकर मेरी तेज़ वहस हुई; पर वह मुझसे वहुत स्नेह करते थे, इसलिए

कि मैं निराला का समर्थक था। उग्र ने '४८-४९ में निराला के व्यक्तित्व की गरिमा पर लेख लिखे।

मातादीन शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, नलिनविलोचन शर्मा, जानकीवल्लभ शास्त्री, गंगाप्रसाद पाण्डेय आदि ने अनेक प्रकार से निराला का समर्थन किया। निराला पर अनेक लेख और कविताएँ लिखी गयीं; इनके अलावा उनके जीवनकाल में उनपर बच्चनसिंह, गंगाप्रसाद पाण्डेय की और मेरी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनके सहधर्मियों में सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा ने उनका उल्लेखनीय समर्थन किया। श्रीनारायण चतुर्वेदी के व्यक्तिगत समर्थन के अलावा उनके प्रभाव से बीसियों साहित्यकार और लेखक उनके समर्थक हुए। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, वाचस्पति पाठक, अमृतलाल नागर, सर्वदानन्द वर्मा, सुमित्राकुमारी सिन्हा, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', शिवगोपाल मिश्र, कमलाशंकर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ अग्रवाल, गंगाप्रसाद मिश्र, दयानंद गुप्त (भूतपूर्व कहानी-लेखक, अब वकील), ब्रजमोहन तिवारी, उमाशंकर शुक्ल 'उमेश', देवीदत्त शुक्ल (सरस्वती-संपादक), रामरतन भटनागर हसरत, कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह, दिनकर, आदि—उनके सभी समर्थकों के नाम लिखे जायँ तो बहुत लम्बी सूची हो जायगी। उनका ज्यादा विरोध सन् '२४ से' ३४ के बीच में हुआ। इस बीच अपनी अप्रतिहत शक्ति से वह निरन्तर साहित्य-रचना में लगे रहे। सन् '४० के बाद विरोध नगण्य हो गया। वह साहित्य-सम्मेलन में साहित्य परिषद् के सभापति बनाये गये। सन् '४७ मे उनकी स्वर्णजयन्ती मनाई गई; कई पत्रो ने सन् '४७ में और बाद को उनके जन्म-दिवस पर विशेषांक निकाले। सन् '४७ के बाद उनकी ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। किसी भी दौर मे निराला अकेले नही रहे, भले ही वह कल्पना में खुद को सैकडों महारथियों के बीच अकेले घिरा हुआ देखते हों। उनके विरोधियों मे बड़े-बड़े आचार्य थे, पर उनके समर्थन मे वह समस्त उदीयमान शक्ति थी जो हिन्दी-साहित्य को नयी दिशाओं में विकसित कर रही थी।

निराला का विरोध साहित्य-क्षेत्र तक सीमित नही था। जातिप्रथा के समर्थक, रूढ़ियों के दास, घर में दारू बाहर विष्णु सहस्रनाम, भारतीय संस्कृति के नाम पर निराला नाम से घृणा करनेवाले—इन सबने मौखिक रूप से निराला के विरुद्ध प्रबल वातावरण बना रखा था। निराला के मन पर इस विरोध का घातक प्रभाव पड़ा, पर इस सामाजिक क्षेत्र में भी रूढ़िवादियों से लड़नेवालों और निराला का साथ देनेवालों की संख्या काफी बडी थी। इनमे कालेज-युनिवर्सिटियों मे पढ़नेवाले नई रोशनी के युवक ही न थे, इनमें अकुलीन, अब्राह्मण जन ही न थे, इनमें उच्च कुलीन ब्राह्मण, बलभद्र दीक्षित जैसे लोग भी थे, जिन्होने अपने लड़के बुद्धिभद्र को गायत्री मन्त्र देने के लिए निराला को अपने गाँव बुलाया था। जो लोग निराला के खान-पान, रहन-सहन से असहमत होते हुए भी उनसे स्नेह करते थे, उनकी संख्या कम नही थी।

प्रसन्नता उनकी सहज वृत्ति थी। उनके लिए मैत्री-भाव ही सहज था, वैर-भाव नही। पद्मसिंह शर्मा की आलोचना करने के बाद क्षमा माँगी; सुमित्रानंदन पंत पर लिखने के बाद पश्चाताप किया। "जोशी बन्धुओं के अज्ञान का इतना बड़ा आडम्बर मेरी

प्रसन्न प्रकृति को असह्य हो रहा था"—इसलिए लेख लिखा। फिर इलाचन्द्र जोशी से सहज मैत्री-भाव कायम किया।

"अभी तक मैं खूब प्रसन्न रहा। स्वास्थ्य भी बहुत कुछ सुधर चला था, इधर चार रोज़ से कुछ अस्वस्थ हूँ।"—उन्होंने सन् '२८ के वसन्त में गुलाबराय को लिखा था। जीवन मे साधारण सुविधाएँ हों, स्वास्थ्य ठीक हो, निराला प्रसन्न रह सकते थे।

वह बड़े परिश्रमी थे और बड़े आलसी भी थे। प्रसन्न-मन जब न कहता तब वे कविताएँ न लिखते, और काम चाहे जो करें।

वह कविता लिखने मे ही नही, पत्रो का उत्तर देने मे भी प्रसन्न-मन के आदेश की राह देखते थे।

प्रसाद को पत्र लिखने बैठे; "मंगलवार, तारीख याद नहीं—२७-२८ होगी।" कौन पूछने मे समय नष्ट करे! जानकीवल्लभ शास्त्री के पत्रो का उत्तर देना था। लिखा: "आपके पत्र और सब विषय भूल गये है; पत्र है तो, पर उठकर उन्हे खोज कर पढना मेरे लिये बडी मिनहत का काम है: ऐसा कष्ट मैंने कभी नही उठाया।"[१४]

मन मारकर जब उन्हे अनुवाद का कार्य या बाज़ार का काम करना होता था, तब उन्हें कितना कष्ट होता था, इसकी कल्पना की जा सकती है। गुलाबराय को वह 'ऐट दि फीट आफ गौड' पुस्तक का संस्कृत अनुवाद भेजनेवाले थे। न भेज पाने के दो कारण बताये थे, "अभी तक विशेप अवसर नही मिला, प्राणों की सम्पूर्ण स्वीकृति भी नही हुई थी।" यह दूसरा कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राणों की संपूर्ण स्वीकृति नही हुई, इसलिए महादेवप्रसाद सेठ पर वह कविता न लिख पाये। कई बार नाटक लिखने का विचार किया पर स्वीकृति का शुभ मुहूर्त न आया। 'उपा'-नाटिका विज्ञापित होकर भी अलिखित रही। यही हाल 'उच्छृङ्खल' उपन्यास का हुआ। 'नये पत्ते' के प्रकाशन के साथ 'हाथों लिया' उपन्यास का विज्ञापन हुआ; उसके लिखने की नौबत न आई। स्वदेशी आन्दोलन पर वह चार उपन्यास लिखनेवाले थे; 'चोटी की पकड' उनमे पहला था। शेप तीन लिखने का विचार उन्होंने छोड़ दिया। सूरदास पर कविता लिखने के विचार से दो बार आगरा आये पर प्राणों की स्वीकृति के अभाव मे वह कविता अरचित रही।

हिन्दी लेखको मे निराला को समाज के विविध वर्गो के जीवन का ज्ञान सबसे ज्यादा था। उन्होंने राजाओं और राजकुमारो के जीवन को नज़दीक से देखा था। युवाकाल से प्रौढावस्था तक वह गाँवो की दरिद्र जनता के निकट सपर्क मे रहे। महिषादल में रहते हुए वह दरिद्रो की सेवा के लिए गांव जाने लगे थे। वह स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव मे आये और सन् '३०-३१ मे उन्होंने अपने गाँव-जिले के राजनीतिक आन्दोलन मे सक्रिय भाग लिया। वह विचार-क्षेत्र मे मार्क्सवाद को पूरी तरह न स्वीकार करके भी व्यवहार में हिन्दी के हर मार्क्सवादी लेखक से आगे थे। देश की दरिद्रता की जानकारी, जनता के संगठन और उसकी कठिनाइयो का ज्ञान उनके साहित्य के लिए लाभदायी सिद्ध हुआ।

उनका जीवन-सम्बन्धी अनुभव विशद था; उन्होने रचनाकार की दृष्टि से

साहित्य का अध्ययन किया और उनका साहित्य-ज्ञान भी विशद था। तुलसीदास, पद्माकर, कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ, बंगाल के वैष्णव कवि, गोर्की— अनेक प्रकार के साहित्यकारों से उन्होंने बहुत-कुछ सीखा था। पर अनेक प्रभाव ग्रहण करने पर भी उनका साहित्यिक व्यक्तित्व मौलिक बना रहा, इसका कारण यह है कि हिन्दी-परंपरा का विरोध करने पर भी वह बहुत मजबूती से उससे जुड़े हुए थे। बसन्त और शरद्, ये ऋतुएँ उन्हें सबसे अधिक प्रिय थीं। वह पक्षियों के संगीत और फूलों की सुगन्ध के बीच रहने को पैदा हुए थे। जो लोग उनके कलकत्ते के दिनों की याद करते थे वे उन्हें ओठों, आँखों, भौंहों में हँसते हुए देखते थे। इस हँसी के पीछे मृत्यु का कैसा दारुण अनुभव उन्हें है, इसकी कल्पना करना आसान न था। सरोज की मृत्यु के बाद 'कुल्लीभाट' और 'कुकुरमुत्ता' में उनकी हँसी कायम रही पर यह पहलेवाला मुक्त हास्य न था, उसके पीछे मर्मवेदना छिपी थी। अपने विक्षेप की विकट घड़ियों में भी हास्य-विनोद की वृत्ति उभर आती थी। वह जीवन में हँसने, प्रकृति और नारी के सौन्दर्य और यौवन के उल्लास के गीत गाने को पैदा हुए थे; परिस्थितियों ने उन्हें सामाजिक वैषम्य का विरोधी, क्रान्तिकारी योद्धा और मानवीय करुणा का मर्मी कवि बना दिया। परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं तो वह अधिक जरूर लिखते पर अच्छा भी लिखते यह आवश्यक नहीं। प्रतिकूलता ने उनके स्वरों में ऐसा पराक्रम भर दिया जैसा अन्य कवियों की पहुँच से बाहर था।

साहित्यिक-सामाजिक विरोध से अधिक निराला के मन पर आर्थिक कष्टों की छाप थी। पिता की मृत्यु के बाद से उनका जीवन सदा असुरक्षित रहा। जहाँ कुछ दिन पैर टिकाने का मौका मिला, वहीं उनकी प्रतिभा अपनी सहज सर्जनशीलता सिद्ध कर देती थी। सन् '२३-२४ में उन्हें 'मतवाला'-मंडल में अनुकूल वातावरण मिला; उन्होंने ढेरों कविताएँ लिख डालीं। 'भावों की भिडन्त' के बाद साल-भर तक 'मतवाला' से अनबन रही, उनका कविताएँ लिखना बन्द रहा। '२९-३० में दुलारेलाल से पटरी बैठी, उन्होंने बहुत-से गीत और 'अप्सरा' लिखी। फिर कुछ दिन मन-मुटाव रहा। '३३ से '३७ तक दुलारेलाल भार्गव के यहाँ या लीडर प्रेस के कारण—सरोज की मृत्यु के बावजूद—उनके जीवन में बहुत-कुछ सुरक्षा का भाव रहा। यही अवधि उनके श्रेष्ठ कृतित्व का काल भी है। 'अनामिका' के प्रकाशन के बाद उनका जीवन फिर असुरक्षित हो गया। कभी इस प्रकाशक के यहाँ कभी उस प्रकाशक के यहाँ, वह निरंतर भटकते रहे। युद्ध-काल की कठिनाइयाँ ऊपर से। यही उनके मानसिक असन्तुलन का भी सबसे विकट काल है। सन् '४९-५० के बाद जब वह आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो गये, तब '४५ की अपेक्षा उनका मन अधिक संतुलित हो गया और अन्त तक वह कुछ-न-कुछ लिखते रहे। निराला की रचना-प्रक्रिया उनके जीवन में सुरक्षा के भाव से संबद्ध है, इसमें भ्रम की गुंजाइश नहीं है। इसी कारण निराला के मानसिक विक्षेप के लिए वे प्रकाशक सबसे अधिक जिम्मेदार हैं जिन्होंने उनके श्रम का शोषण किया और उसका समुचित पारिश्रमिक उन्हें न दिया।

कुछ लोगों ने निराला को संत, पहुँचा हुआ फकीर, देवता बनाकर पूजा।

उनके मानसिक असंतुलन को अस्वीकार करके उन्होने उनके स्वगतकथन को उनकी सिद्धि का लक्षण माना। यदि निराला संत और देवता होते तो पूज्य भले होते, इतने स्नेह और सहानुभूति के अधिकारी न होते। वह इस युग के प्रतिनिधि साहित्यकार थे, इसलिए कि हिन्दी लेखको की वेदना उनमे घनीभूत थी, परिस्थितियो की मार खाकर विरोधी भावो के निरन्तर तनाव से वह मानसिक सतुलन खो बैठे थे। उनमे महामानव के गुण थे तो मनुष्य की साधारण कमज़ोरियाँ भी थीं। मानसिक सतुलन खोने पर भी वह 'अर्चना' के गीत और 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' लिख सके, यह उनकी दृढ़ इच्छा-शक्ति की बहुत बड़ी विजय थी।

जिनके लिए वह देवता और संत न थे, उनके लिए वह एक कवि थे जिनमे ज़रूरत से ज्यादा अहंकार था, जो शराब और गोश्त के शौकीन थे और जो बाद को पागल हो गये। निराला की देवमूर्ति से घबड़ाकर कुछ लोगो ने अपने लेखों, संस्मरणों मे उनके अहंकार और मद्यपान की चर्चा बार-बार की है। मद्यपान और मांसाहार अब बहुत सामान्य हो गये हैं; निराला के यौवनकाल मे वे राजसी अथवा ठेठ निम्न-वर्गीय संस्कृति के अंग थे। कान्यकुब्जो मे बहुत-से लोग, विशेषकर लखनऊ मे, गोश्त खाते थे, शराब पीते थे। उनका सामाजिक विरोध समाप्त हो गया था क्योंकि वे धनी थे। निराला के चरित्र की बड़ी चर्चा थी, इसलिए कि निराला निर्धन थे और पुरानी समाज-व्यवस्था की नीव हिलानेवाले क्रान्तिकारी भी थे।

निराला सौन्दर्य-प्रेमी थे। अनेक स्त्रियो से उनका संपर्क हुआ। वह इन्द्रियजित महात्मा नही थे। पर उन्होंने जीवन मे एक ही स्त्री को प्यार किया—वह थी मनोहरादेवी। अपने काव्य के तुलसीदास और राम यदि वह स्वयं है तो रत्नावली और सीता मनोहरादेवी है। उन्ही की छवि का स्मरण करके अनेक रूपो और भंगिमाओं मे उन्होंने अपने भव्यतम नारी-पात्रो का चित्रण किया है।

निराला इतने बड़े है कि उन्हें देवता और सन्त कहकर और बड़ा नही बनाया जा सकता। उन्हे शराबी-कबाबी और पागल कहकर उनके बड़प्पन को खत्म भी नहीं किया जा सकता।

निराला को देखकर बहुत-से लोग यह समझते थे कि इन्हे दीन-दुनिया की चिन्ता नही, यह फक्कड़ हैं, जो मिला खाया-पिया-लुटाया, पैसो का हिसाब रखना वह जानते नही। पर निराला जितने फक्कड़ थे, उतने ही गृहस्थ थे। उनके फक्कड़पन से उनके घरवालो को कष्ट हुआ; गृहस्थ धर्म निबाहने से निराला को भी बहुत कष्ट सहने पड़े। वह अवढर दानी थे पर उन्हे ठगना आसान नही था। वह कब ठगे जाते हैं, इसका उन्हे ज्ञान रहता था। कानून के सामने मजबूरी थी। प्रचलित नियम यह था कि जिसे किताब का कापीराइट दे दिया, उसे हमेशा को दे दिया। लेकिन प्रकाशको ने उनकी किताबों से खूब धन कमाया है, उनका मेहनताना उन्हें नही मिला—यह बात वह बहुत अच्छी तरह जानते थे।

निराला की वास्तविकता उनके बारे मे गढी हुई कहानियों से बड़ी थी, फिर ये कहानियाँ चाहे उन्होंने गढी हो, चाहे दूसरो ने।

निराला समझते थे कि 'अप्सरा' उनका युगान्तरकारी उपन्यास है। पर हिन्दी-कथा-साहित्य—मुख्यतः प्रेमचन्द के प्रभाव से—यथार्थवाद की दिशा मे आगे बढ़ रहा था। निराला ने 'देवी', 'चतुरी चमार', 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' लिख कर हिन्दी कथा-साहित्य के विकास मे योग दिया।

निराला कल्पना करते थे कि वह बहुत बड़े अद्वैतवादी है। ज्ञान में शंकराचार्य से बढ़कर दूसरा नही। स्वामी विवेकानन्द भी अद्वैत मत के प्रचारक। इसलिए निराला को भी अद्वैतवादी होना चाहिए। पर उनके मूल संस्कार एक भक्त के थे, वे रामचरित मानस पढ़नेवाले महावीर के भक्त थे। जीवन में उन-जैसा द्वैतवाद-पीड़ित व्यक्ति दूसरा नही था। योग और भोग—दोनों की अतिशयता भारतीय संस्कृति का ही एक आन्तरिक द्वंद्व है। वह द्वंद्व अपने प्रखर रूप में निराला के व्यक्तित्व और रचनाओं में प्रकट हुआ। इस कारण भी वह देश की सांस्कृतिक अन्तर्धारा से बहुत गहरे बँधे हुए हैं।

निराला समझते थे कि वह बहुत बड़े दार्शनिक कवि हैं। पंत ने यह बात दोहराई है। निराला रवीन्द्रनाथ की तरह संसार को प्रकाश और आनन्द से भरा देखने का प्रयत्न करते थे किन्तु जीवन की परिस्थितियों ने भर दिया था चारों ओर अँधेरा। वह जरूर उच्चकोटि के दार्शनिक कवि थे पर तब नही जब प्रचलित रहस्यवादी मान्यताओ को वह दोहराते थे वरन् तब जब अपने अनुभव के बल पर उन्हे खंडित करते थे, जब नये-नये अनुभवों को काव्य में चित्रमय रूप देते थे। परिस्थितियो ने उनके बहुत-से दार्शनिक-धार्मिक भ्रम तोड़ दिये और निराला का मन जिस स्तर पर काव्य रचता था, उस स्तर पर यह भ्रम-ध्वंस-लीला भी वह साहस से देखता था।

निराला कल्पना करते थे कि उन्होने सोलह साल की उम्र में 'जुही की कली' लिखी। यदि ऐसा होता तो सचमुच दुख की बात होती क्योंकि तब यह सिद्ध होता कि ऐसी सुन्दर रचना के बाद उन्होने कई बहुत घटिया कविताएँ लिखी मानो कोई नौसिखिया कवि रास्ता पहचान रहा हो। भावावेश में उन्होने एक पूर्ण, सर्वांग-सुन्दर, सुगठित कविता रच डाली—यह उनकी एक रूमानी कल्पना थी जिसका सत्य से कोई सम्बन्ध न था। उनके अनेक महान् कार्य सोलह साल की उम्र मे हुए थे—जैसे मनोहरादेवी से प्रथम सम्पर्क; तब 'जुही की कली' जैसी अद्वितीय कविता ही वह सोलह साल की उम्र में क्यों न लिखते?

वह कल्पना करते थे कि छायावाद के प्रवर्तक वह हैं। प्रसाद अग्रज हैं पर युग-प्रवर्तक निराला हैं। पर उनकी महत्ता इस बात में न थी कि छायावाद के मैदान में वह प्रसाद और पंत से पहले आये। वह इनसे बाद में आये और सबसे आगे निकल गये—महत्ता इस बात मे थी। सोलह-अठारह साल की उम्र में कविताएँ लिखनेवाले साधारणतः जिस किशोर-कल्पना से प्रभावित होते हैं, वह निराला में न थी। वह अपने साथ जीवन के बड़े तिक्त-सुखद अनुभव लेकर काव्य-क्षेत्र में आये थे। उनकी बहुविध शक्ति-सम्पन्न कविता छायावाद की सीमाएँ तोडनेवाली थी, सीमाओं में बँधनेवाली नहीं।

निराला कल्पना करते थे कि मुक्तछन्द हिन्दी-काव्य को उनकी बहुत बड़ी देन है। उन्होने एक सिद्धान्त ईजाद किया था कि मुक्त भावों और विचारों की सहज

अभिव्यक्ति मुक्तछन्द में ही हो सकती है। पर 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' और 'सरोज-स्मृति' मुक्तछन्द में नही है; यद्यपि ये उनकी सबसे समर्थ रचनाएँ है। मुक्तछन्द भी छन्द है, इसलिए मुक्त होते हुए वन्धन मे है। निराला की यह महत्ता है कि मुक्तछन्द हो चाहे तुकान्त छन्द, वह चतुर शिल्पी की तरह भावप्रकाशन के लिए उसका पूर्ण उपयोग करते थे।

प्रतिकूल परिस्थितियो से परेशान होकर वह सोचने लगते थे कि यदि वह राजपुत्र होते या किसी लक्षपति के कुमार होते तो उन्हे अधिक कीर्ति मिलती, उनका जीवन अधिक सुखी होता। सम्भव है, उनका जीवन अधिक सुखी होता पर यह निश्चित है कि तब वह तुलसीदास के वाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि न होते।

हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ कौन है—इस प्रश्न से वह विचलित हो उठे थे। मैं हिन्दी का रवीन्द्रनाथ हूँ—यह भावना युवाकाल से उनके मन मे थी। वह रवीन्द्रनाथ से भिन्न कोटि के कवि हैं और बीस साल वाद रवीन्द्रनाथ का वही महत्त्व न रहेगा जो उनके समय मे था—यह सत्य वह न देख पाते थे। हिन्दी मे अपने विरोध से परेशान होकर उन्होने यह कहानी गढी थी कि वह पहले बँगला मे लिखते थे, किसी कारणवश वह हिन्दी मे लिखने लगे।

निराला-स्वर्ण-जयन्ती के प्रसंग मे शिवपूजन सहाय ने लिखा था, "यदि वह अपनी आरम्भिक प्रवृत्तियों और परिस्थितियो के वश होकर बँगला-साहित्य की सेवा मे प्रवृत्त हो गये होते, तो अब वंगीय साहित्य-सेवी हमसे कही अधिक उनका सम्मान करते।"[१५] निराला ने अपनी साहित्य-साधना की शुरूआत बँगला भाषा की आलोचना से की थी। वंगाल मे रहने के कारण उनमे हिन्दी जातीयता का भाव असाधारण प्रखरता से जाग्रत हुआ। उनके साहित्य की एक मूल प्रेरणा यह जातीयता की भावना थी। इसलिए परिस्थितियो के वश होकर बँगला साहित्य की सेवा मे प्रवृत्त होने का कोई खतरा न था।

कलकत्ते मे निराला-अभिनन्दन के अवसर पर महादेवी वर्मा ने कहा था, "यह हम लोगो का सौभाग्य ही था कि निरालाजी ने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया, नहीं तो वह बँगला मे लिखना आरम्भ कर सकते थे।"[१६] हम लोगो का सौभाग्य तो था ही जो वह हिन्दी मे लिखते रहे. थोड़ा सौभाग्य उनका भी था कि उन्होने बँगला मे कवि बनने का प्रयास न किया। बँगला में रवीन्द्रनाथ ऐसे विशाल वटवृक्ष थे कि उनके नीचे या आसपास किसी दूसरे महाकवि के पनपने की सम्भावना न थी। निराला ने जो कुछ बँगला से लिया, उसे बँगला में लिखकर वह अपनी मौलिकता सिद्ध न कर सकते थे। उनमे जो कुछ सबसे समर्थ, सबसे मौलिक है, उसका सम्वन्ध हिन्दी-भाषी प्रदेश और उसकी सांस्कृतिक परंपरा से है।

वंगाल में अपने विरोध से परेशान होकर—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के जीवनप्रसंग मे—रवीन्द्रनाथ ने लिखा था, "माझे-माझे विधातार नियमेर ए रूप आश्चर्य व्यतिक्रम हय केन, विश्वकर्मा जेखाने चार कोटि वांगालि निर्माण करिते छिलेन, सेखाने हठात् दुइ-एक जन मानुष गड़िया वलेन केन, ताहा वला कठिन।" पर वंगाल के आदमी

चाहे जैसे हों, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उन्हीं की देन थे। रवीन्द्रनाथ चाहे जितने बड़े विश्वकवि हों, बंगाल की साहित्यिक परम्परा से अलग करके उनकी कल्पना नहीं की जा सकती। हिन्दीभाषी प्रदेश, यहाँ का समाज, यहाँ की साहित्यिक परम्परा—अच्छी-बुरी जैसी भी हैं, निराला उन्हीं की देन हैं। हिन्दीभाषी प्रदेश में निराला को विरोध मिला तो जीने, लड़ने, लिखने की बहुत बड़ी शक्ति भी मिली। और यह शक्ति उन्हें हिन्दीभाषी प्रदेश से ही मिल सकती थी।

अठारह सौ सत्तावन का जैसे कोई वीर सेनानी युद्ध छोड़कर साहित्य के मैदान में चला आया हो, ऐसे थे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। बैसवाड़े के जिन लोगों के बीच वह पैदा हुए, पले और बढ़े थे, जिनमें रहकर उन्होंने जीवन के सबसे संघर्षमय दिन बिताये थे, जिनसे उनका सम्पर्क जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त रहा, उनके साम्राज्य-विरोधी प्रतिरोध, उनकी वीरता पर निराला को अतिशय गर्व था। अंग्रेजी राज के खिलाफ़ इस प्रतिरोध ने अठारह सौ सत्तावन के विकट संग्राम का रूप लिया। निराला के लिए इससे बड़ा स्वाधीनता-संग्राम दूसरा न था। 'कला के विरह में जोशी-बन्धु' में उन्होंने यहाँ की साधारण जनता और उसकी प्रतिरोध-भावना का मूल्यांकन करते हुए लिखा था, "यहीं के लोग, जो आठ-आठ रुपये की मासिक वृत्ति पर गुलामी करते हैं, जूता उठाने की आज्ञा देनेवाले साहब के, अपने पैरों से पँचसेरी चमरौधा उतारकर, भयबाधा रहित हो दनादन-दनादन जड़ सकते हैं। चमड़े के कारतूस को दाँतों से काटने से इनकार करनेवाले धर्म-जीवन यहीं के लोग सन् '५७ की ऐसी संगठन-शक्ति की करामात दिखाने का हौसला रख सकते हैं—वह संगठन कर सकते हैं, जितना बड़ा आज तक राजनीति के अन्धकार में उड़नेवालों से नहीं हो सका।"

निराला जब पैदा हुए थे तब बैसवाड़े में ऐसे सैकड़ों आदमी जीवित थे जिन्होंने अठारह सौ सत्तावन की लड़ाई में हिस्सा लिया था, या उसे अपनी आँखों देखा था। जिस जवार में निराला का घर था, उसके गाँव-गाँव में राना बेनीमाधव से लेकर साधारण स्थानीय वीरों तक के बारे में अनगिनत किस्से, कहानियाँ और लोकगीत प्रचलित थे। निराला इस लोक-संस्कृति में दीक्षित हुए थे; जोशी-बन्धुओं से युद्ध करते हुए उन्हें बैसवाड़े के सूरमा याद आ रहे थे। वही जीवट, वही उत्साह, वही अपराजेय वीरता निराला में थी।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में गढ़ाकोला-बीघापुर के आस-पास लम्बे तगड़े छह-फुटे पलटनिया जवानों और बूढ़ों की कमी न थी। जब फौज में खपत कम हुई, तब ये पुलिस में भरती होने लगे, पुलिस में जगह न मिलती तो कलकत्ते की कोठियों में दरबानगीरी करते। अपनी लाठी, कुश्ती-कसरत के लिए ये हर जगह विख्यात थे। जब तक मालिक से पटी, तब तक ठीक; नहीं तो चमरौधा उतारकर दे दनादन, दे दनादन। निराला ने जब ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' को चमरौधे से पीटने की धमकी दी थी तब उनके अन्दर वही बैसवाड़े का किसान बोल रहा था। लम्बे बाल कटा लेने पर मेड़ पर बैठे सुर्ती फाँकते हुए, वह बैसवाड़े के किसानों में बिलकुल खप जाते थे।

पिता की मृत्यु के बाद उनके जीवट की पहली परीक्षा हुई। उन्होंने गृहस्थी का

भार सँभाला, नौकरी की, अपनी शिक्षा की ओर ध्यान दिया। अगले साल उनकी पत्नी और परिवार के दूसरे लोग न रहे। निराला के मन को गहरी चोट लगी पर इस आघात को भी झेलकर सन् '१९-२० के दो वर्षों में भारी परिश्रम करके अपना शिक्षा-क्रम पूरा किया। यदि राज-परिवार की ओर से स्कूल में उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था होती तो प्रशंसा करने की ऐसी बड़ी बात न थी। पर वहाँ से नौकरी का सहारा था, इतना ही काफी था। निराला ने सुनकर, लोगों से मिलकर महिषादल-जैसी पिछड़ी जगह से जो कुछ मिला, उससे पूरा लाभ उठाया। भाषा-साहित्य आदि के बारे में उनकी मूल धारणाएँ सन् बीस तक बहुत-कुछ बन चुकी थीं। इनमें काफी मौलिकता थी। बैसवाड़े के लोग एक कहावत कहते हैं : घोखन ते विद्या खोदन ते पानी। निराला जितना पढ़ते थे उससे ज्यादा घोखते थे। इसीलिए इस कम उम्र में ही अपनी तीक्ष्ण मेधा के कारण उन्होंने अनेक मौलिक धारणाएँ बना ली थीं।

यदि बँगला उनके लिए मातृभाषा के समान होती तो बँगला का जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, उसके लिए उनकी प्रशंसा करना अनावश्यक होता। मातृभाषा उनकी एक ही थी– बैसवाड़ी—उनके माता-पिता की दी हुई वाग्विभूति, जिससे सभी रसों के स्रोत उनके जीवन में फूटकर बह निकले थे। बैसवाड़ी के साथ वह खड़ीबोली बोलते थे, अपनी जातीय भाषा के रूप में। अपनी साहित्य-साधना के आरम्भ में ही उन्होंने हिन्दी का पक्ष लेकर बँगला के समर्थकों से युद्ध शुरू किया। उन्होंने सन् '२० तक बँगला का जितना ज्ञान प्राप्त किया, वह प्रशंसनीय होने पर भी सीमित था। रवीन्द्रनाथ के काव्य-साहित्य से पूर्ण परिचय उन्हें कलकत्ता आने पर हुआ। तभी उन्होंने गिरीशचन्द्र घोष के नाटक पढ़े और देखे। मात्रिक छन्द से ही श्रेष्ठ कविता हो सकती है, यह मान्यता उन्होंने छोड़ी।

निराला को राजदरबार के उस्तादों ने शिक्षा दी होती तो उनका संगीतज्ञान प्रशंसनीय न होकर कुछ निन्दनीय ही होता। उन्होंने कुछ दिनों तक एक राजकर्मचारी से संगीत सीखा, उससे अधिक लोगों को गाते सुनकर सीखा। जितना वह गा सकते थे, उससे कहीं अधिक वह संगीत का मर्म पहचानते थे। वह अपनी अनेक कविताएँ—'भर देते हो बार-बार प्रिय करुणा की किरणों से' इत्यादि—और अपने प्रायः सभी गीत इस ढँग से गाते थे कि संगीत काव्य के भावोत्कर्ष को सहज ही निखार देता था। इस कला में वह अद्वितीय थे। कोई भी शास्त्रज्ञ संगीतकार अपने स्वरों से निराला के गीतों का मर्म वैसे उद्घाटित नहीं कर सकता जैसे वह करते थे। वह निसर्ग-सिद्ध गायक थे। और 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजुमन' तो वह इतने भाव-विह्वल होकर गाते थे कि जिसने एक बार सुना, वह कभी उनका स्वर भूल न सका।

महिषादल में अपने कच्चे घर से लेकर दारागंज की गली में पक्के मकान तक हर परिस्थिति में, जीवन की हर मंजिल में निराला पढ़ते रहे। उनमें ज्ञान की पिपासा असीम थी और वह साहित्य तक सीमित न थी। वह राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित के बारे में भी बहुत-कुछ जानते थे। जितना खुद पढ़कर सीखते थे, उससे ज्यादा दूसरों से सुनकर सीखते थे।

'मतवाला' में आकर उनके शिक्षण का दूसरा क्रम पूरा हुआ। यहाँ महादेवप्रसाद सेठ की कृपा से उनका परिचय गालिव से हुआ और वह अन्त तक गालिव के प्रेमी बने रहे। तुलसीदास के बाद—रवीन्द्रनाथ से भी अधिक—जो कवि उनके मन के सबसे ज्यादा नजदीक था, वह ग़ालिब था। उनके काव्य पर गालिब की अपेक्षा रवीन्द्रनाथ का प्रभाव अधिक है किन्तु जब उनका मन बहुत दुखी होता था, जब अपने विरोध को देखते हुए वह अपनी महत्ता पर विचार करते, तब वह रवीन्द्रनाथ की नहीं गालिब की ही पंक्तियाँ दोहराते थे।

'मतवाला'-मण्डल में १८५७ के संग्राम के प्रति श्रद्धा, राजनीति में वामपंथी झुकाव, तुलसीदास और गालिब से प्रेम, गरीबों को पैसों से लेकर कपड़े-लत्ते बाँटना, थियेटर और फुटबाल के मैच देखने का शौक, खाने-खिलाने, सत्कार करने की वृत्ति आम बातें थीं। 'मतवाला'-मण्डल में निराला के व्यक्तित्व का संस्कार हुआ। सन् '३३-३४ के निराला बहुत-कुछ '२३-२४ के निराला थे और उन्हें अपना यह रूप कलकत्ते में मिला था। उग्र, तुलसीदास और गालिब के प्रेमी, निराला से बहुत-सी बातों में मिलते थे; इसका कारण यह था कि 'मतवाला'-मण्डल में उनके व्यक्तित्व का भी संस्कार हुआ था।

निराला के सबसे अन्तरंग मित्र, वे जिन्हें निराला सबसे ज्यादा चाहते थे, 'मतवाला'-मण्डल से संबद्ध थे। निराला अपने व्यक्तित्व से वैर-भाव भी उत्पन्न करते थे पर उन्होंने अपने प्रति लोगों के हृदय में जो स्नेह उत्पन्न किया, वह अद्भुत है। शिवपूजन सहाय उनसे उम्र में बड़े थे पर निराला का उस समय आदर करने लगे थे जब उन्हें बहुत कम लोग जानते थे। महादेवप्रसाद सेठ से अधिक इन सीधे-सादे, कर्मठ पत्रकार ने आड़े समय निराला का मनोबल दृढ़ किया, उनकी जीविका के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। निराला को जब शिवपूजन सहाय या राधामोहन गोकुलजी मिलते तब उनकी निगाह, उनका स्वर, उनका चेहरा सब-कुछ बदल जाता। निराला का सबसे विनम्र, सबसे स्नेहशील, सबसे मधुर रूप तभी प्रकट होता था।

'मतवाला'-मण्डल के बाद काशी के मित्र उन्हें सबसे अधिक प्रिय थे। प्रसाद के मन में निराला के प्रति कहीं ईर्ष्या या प्रतिद्वन्द्विता के भाव की छाया भी न थी। छायावादी कवियों में यह अविचलचित्त मनीषी निन्दा और विरोध की चिन्ता किये बिना धैर्य से साहित्य-साधना में लगे रहे। उनका चरित्र निराला के मनोबल को परोक्षरूप से दृढ़ करनेवाला था। जब निराला कलकत्ते से बीमार होकर काशी आये, उस समय प्रसाद ने अपने व्यवहार से उनके मन को कुंठाग्रस्त होने से बचाया, औषध-उपचार का प्रबन्ध करके उनकी सहायता की। प्रसाद के प्रभाव से रूपनारायण पांडेय आदि का समर्थन निराला को मिला, वरना उन्हें शत्रु बनाने में निराला ने कुछ उठा न रखा था। काशी और बैसवाड़े से सम्बद्ध यहाँ नन्ददुलारे वाजपेयी का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने छात्र-जीवन से ही निराला का आदर करना सीखा था, जो निराला के लिए बहुत बार लड़े और जिन्हें निराला-समर्थन के कारण 'भारत' से नौकरी छोड़नी पड़ी। जो साहित्य में बहुत विख्यात न हो पाये पर जो वर्षों तक हाटबाट में

निराला के समर्थन मे, विरोधियो से मोर्चा लेते रहे, उनमे दयाशकर वाजपेयी और परमानन्द शर्मा सदा स्मरणीय हैं।

पुराने लोगो का स्नेह पाने मे निराला को विशेष सफलता मिली। भारतेन्दु-युग के लेखक नाथूराम शंकर शर्मा से उन्होने ऐसा ही स्नेह-सम्बन्ध कायम किया था। कलकत्ते मे संस्कृत के अध्यापक और हिन्दी लेखक सकलनारायण शर्मा निराला के प्रोत्साहनदाता थे। महावीरप्रसाद द्विवेदी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जैसे मतभेद रखने-वाले लोग भी कुछ समय के लिए निराला को अपना स्नेह दे सके। मैथिलीशरण गुप्त से उन्होने कलकत्ते मे भेट होने पर मैत्री-सबन्ध कायम किया; सियारामशरण से भी इसी प्रकार का संबन्ध था। ये कवि उस दल के थे जो छायावाद का विरोधी था। फिर भी निराला इन्हे शत्रु न समझकर उनसे मैत्री निबाहते थे।

निराला विरोध से उत्तेजित होते थे तो उनमे मतभेद बर्दाश्त करने की अपूर्व क्षमता थी। पद्मसिह शर्मा ने छायावादियो को खरी-खोटी सुनाई। निराला अपनी ओर से उनसे मिलने गये। नाथूराम शंकर शर्मा के पुत्र हरिशंकरजी बताया करते थे कि पद्मसिह शर्मा निराला की प्रतिभा की बडी प्रशसा करते थे। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'प्रभा' मे 'भावो की भिड़न्त' लेख छापा, निराला कानपुर जाकर उनसे मिले और उन्हे अपना मित्र बना लिया। बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनका घोर विरोध किया, फिर भी निराला उनसे मिलते, पत्र लिखते, उन्होने मुझे भी कलकत्ते मे उनसे मिलने की ताकीद की थी। ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल से घोर संग्राम के बाद लखनऊ मे मिलने पर उन्हे घर लाये, फलों मे उनका सत्कार किया और वह सदा को उनके मित्र हो गये। भुवनेश्वर ने अपने लेख से उनकी नीद हराम की पर उन्नाव में उन्होंने उन्हे मेहमान बनाकर रखा। सनेही से निराला का तीव्र मतभेद था पर निराला ने उन्हे भी स्नेह से जीत लिया। अज्ञेय ने लिखा था कि साहित्य-शक्ति के रूप मे निराला अब नही हैं, वह भी निराला के प्रशंसक हो गये। बच्चन, काव्य-रुचि मे निराला से भिन्न, निराला से दाद पाकर समझे कि कविता लिखना सार्थक हुआ। उपेन्द्रनाथ अश्क निराला के मुँह पर उनकी नकल सुनाते रहे, निराला ने उनकी पीठ भी ठोंकी। निराला ने नन्ददुलारे वाजपेयी, अंचल, प्रदीप, सुमित्राकुमारी सिन्हा आदि पर अनेक छोटे-बड़े लेख लिखे। उनकी पीढी मे अपनों से छोटो पर किसी ने इतने लेख नही लिखे जितने निराला ने। जिनको इनसे मौखिक प्रोत्साहन मिला, उनकी संख्या की गिनती नही।

श्रीनारायण चतुर्वेदी—वैष्णव संस्कारो के व्यक्ति, ब्रजभाषा के प्रेमी, सामाजिक संस्कारो मे यथेष्ट परम्परावादी—निराला से एकदम विरोधी स्वभाव और रुचि रखते हुए उन्हे अपने भाई की तरह प्यार करते थे। यह मात्र न हिन्दी के नाते प्यार था, न काव्य के नाते। निराला से उन्हे सहज स्नेह था, निराला उन्हें बड़े भाई की तरह मानते थे। निराला दूसरों का स्नेह पाने के लिए न अपने खान-पान और न रहन-सहन में कोई परिवर्तन करते थे, न अपने सिद्धान्तो को लेकर समझौता करते थे। फिर भी लोग उन्हे प्यार करते थे, उनके समस्त अहंकार, उनकी समस्त जुगुप्साकारी वृत्तियों के बावजूद। नि:सन्देह निराला के न रहने पर जिन व्यक्तियो को सबसे ज्यादा

सदमा पहुँचा था, उनमें पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी भी थे।

न जाने कितने लोगों ने निराला के संघर्ष को अपना संघर्ष समझा, साहित्य में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ते देखकर निश्छल हृदय से प्रसन्न हुए। निराला ने इलाचन्द्र जोशी और उनके भाई के विरुद्ध उत्तेजित होकर उग्र लेख लिखे थे। इन लोगों ने भी निराला की कटु आलोचना की थी। फिर भी कलकत्ते में निराला के अभिनन्दन के समय इलाचन्द्र जोशी भी उत्साह से लोगों के साथ महाप्राण निराला की जय बोल रहे थे और बच्चों की तरह, आनन्द में आपे से बाहर होकर, फूट-फूटकर रो रहे थे। अपने प्रति ऐसा स्नेह निराला ने लोगों के हृदय में उत्पन्न किया था। भारतेन्दु के बाद हिन्दी-भाषियों ने ऐसा अगाध स्नेह केवल निराला को दिया।

निराला ने जो कविताएँ लिखीं, वे परिमाण में उनके लिखित साहित्य का शतांश हैं। रामकृष्ण वचनामृत से लेकर बंकिमचन्द्र के उपन्यासों तक हजारों पृष्ठ उन्होंने अनुवाद किये। उनके बहुत-से लेख अब भी असंकलित पड़े हैं। 'मतवाला', 'सुधा' आदि में नाम दिये बिना सैकड़ों पृष्ठ उन्होंने लिखे। उनकी लिखी हुई कुछ किताबें विस्मृति के गर्भ में चली गईं, उनके प्रकाशित होने का मुहूर्त न आया। औरों के लिए, दूसरों के नाम से छपनेवाली किताबें जो उन्होंने लिखीं, उनका हिसाब नहीं है। विरोधियों को उत्तर देने में उनका यथेष्ट समय और काफी शक्ति खर्च हुई। जो नाटक, उपन्यास और कविताएँ वे लिखना चाहते थे, वे सब लिख न पाये। यदि जीवन में परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं, तो परिमाण में उनका साहित्य और भी विशाल होता। सन् '२२ से सन् '४६ तक लगभग पच्चीस वर्ष उन्होंने अनवरत परिश्रम किया। इतने वर्षों में कुल मिलाकर उन्होंने जितना लिखा, उतना बहुत कम साहित्यकारों ने उतने समय में लिखा होगा। जीवन के अन्तिम चरण में जब वह काफी थक गये थे, तब भी उनकी साहित्य-साधना जारी रही और मृत्यु से ही वह समाप्त हुई।

प्रतिकूल परिस्थितियों में अनेक कष्ट सहते हुए निराला ने अपने मन को साधना-केन्द्र से कभी हटने नहीं दिया। उनकी ऊर्ध्वगामी चेतना अपने साथ हिन्दी-साहित्य को रूढ़ियों और जर्जर परम्पराओं से ऊपर उठा ले गई। निराला की साधना से हिन्दी-साहित्य ने नया जीवन, नयी प्राण-शक्ति पाई।

उन्हें शिकायत थी कि उनके अभ्युदय-काल में 'सरस्वती' ने उनकी कविताएँ प्रकाशित न कीं। उनकी मृत्यु के बाद 'सरस्वती' ने लिखा :

"हमारा मत है कि तुलसीदासजी के बाद से अब तक हिन्दी काव्य-जगत् में निरालाजी की काव्य-प्रतिभा का कोई कवि नहीं हुआ।"

उनकी साहित्य-साधना का यह बहुत सही मूल्यांकन है।

तुलसीदास के बाद निराला की-सी काव्य-प्रतिभा का दूसरा कवि हिन्दी में नहीं हुआ, यह भी सही है कि तुलसीदास के बाद हिन्दी में ऐसी रचनात्मक क्षमता का दूसरा युग नहीं आया। निराला अपने युग के साथ महान् थे। भारतेन्दु ने जो आंशिक क्रान्ति की थी, उसे बहुत-कुछ पूरा किया निराला और उनके सहयोगियों ने। जब उन्होंने लिखना आरम्भ किया था, तब भारतेन्दु-युग का प्रकाश मन्द न हुआ था।

निरुपम सहाय, महादेवप्रसाद सेठ, नवजादिकलाल आदि लेखक भारतेन्दु और उनके समकालीनों की कहानियाँ सुनते हुए बड़े थे; 'मतवाला' भारतेन्दु-युग की पत्रकार-कला का मानो एक नया और बहुत ही लोकप्रिय संस्करण था। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने रीतिवादी रूढ़ियों का उच्छेद करने, नई सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप नया साहित्य रचने, ब्रजभाषा की जगह काव्य में खड़ीबोली को प्रतिष्ठित करने में अभूतपूर्व योग दिया था। प्रेमचन्द ने देवकीनन्दन खत्री की तिलस्मी परम्परा छोड़ कर भारतीय साहित्य मे किसान को प्रतिष्ठित किया था। किसान-जीवन के चित्रण में वह विश्व-साहित्य मे अप्रतिम हैं, उनकी कला मे और चाहे जितनी खामियाँ हों। वह रूढ़िविरोधी साहित्यिक मोर्चे मे प्रसाद और निराला के साथ थे। 'माधुरी' और 'हंस' ने छायावादियो से उनका सहयोग उल्लेखनीय है। छायावादियो मे प्रसाद सबसे बड़े चिन्तक और सुसंगत विचारक थे। उन्होंने सामन्ती दुःखवाद-मायावाद आदि का पर्याप्त विरोध किया; उसकी जगह संसार की ओर उन्मुख अपना आनन्दवादी दर्शन प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'कामायनी' के रूप में छायावाद का ही नहीं, हिन्दी के इस नवयुग का श्रेष्ठ काव्य प्रस्तुत किया। नाटक, उपन्यास, कहानियाँ लिखकर उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। सुमित्रानन्दन पन्त ने खड़ीबोली को वह काव्योचित रूप दिया जो उनसे पहले कोई कवि न दे पाया था। निराला ने सन् '२४ मे ही उनकी इस युगान्तरकारी भूमिका का सही मूल्यांकन किया था : "हिन्दी मे जब से खड़ीबोली की कविता का प्रचार हुआ तब से आज तक उसमे स्वाभाविक कवि का अभाव ही था...उसका स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है...खड़ीबोली मे प्रथम सफल कविता आप ही कर सके है।" कोई भी कवि केवल भाषा का साधक होकर उसमे माधुर्य उत्पन्न नही कर सकता। पंत का भाषा-सम्बन्धी चमत्कार उनकी नयी छायावादी जीवनदृष्टि की देन था।

रामचन्द्र शुक्ल उस युग के प्रमुख आलोचक थे। उन्होंने रीतिवादी रूढ़ियो का नाश करके काव्यालोचन मे नये प्रतिमान स्थापित किये। उन्होंने छायावादियों का विरोध किया, पर प्रसाद के और उनके दार्शनिक दृष्टिकोण मे साम्य अधिक था, वैषम्य कम। उन्होंने छायावाद के सम्बन्ध मे अपनी धारणाएँ बदलीं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच पर निराला के साथ बोले।

'सरस्वती,' 'माधुरी', 'सुधा', 'हंस'—उस युग की श्रेष्ठ पत्रिकाएँ थीं। आज की हिन्दी पत्रिकाओं से उनकी तुलना करने पर उस युग की संपादन-कला को सराहना पड़ता है।

प्रगाढ़ मैत्री, अदम्य साहित्य-साधना और विकट आन्तरिक संघर्षो का वह युग था। एक ओर छायावाद की टक्कर रीतिवादियो से थी जिनके—रत्नाकर और पद्मसिंह शर्मा जैसे—प्रतिनिधि साहित्य-सम्मेलन की बागडोर सँभाले थे। दूसरी ओर खड़ीबोली के सनेही, मैथिलीशरण गुप्त परंपरावाले कवि थे जिनका भावबोध नये कवियो से भिन्न स्तर का था, जो यह मानने को तैयार न थे कि छायावादियो ने काव्य मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। इनके अतिरिक्त छायावादी कवियो की

अपनी असंगतियाँ, अपने अन्तर्विरोध थे। निराला और पन्त की मैत्री, तथा परस्पर विरोध इस युग की एक रोचक कथा है। इन सब तरह की टक्करों और अन्तर्विरोधों का केन्द्र थे निराला। यह देखकर आश्चर्य होता है कि उन्होंने अपनी विचारभूमि छोड़े बिना इतने अधिक भिन्न रुचि और संस्कारों के साहित्यप्रेमियों का समर्थन प्राप्त किया। हिन्दी जातीयता की कड़ी उन्हें इन विभिन्न रुचि के लोगों से जोड़ती थी।

वह जबर्दस्त साम्राज्यविरोधी उभार का युग था। विशाल हिन्दी-भाषी जाति सबसे आगे बढ़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले रही थी, वह नयी शक्ति में अपनी एकता पहचानती हुई सांस्कृतिक क्षेत्र में आगे बढ़ रही थी। निराला इस सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे। बंगाल ने देश के सांस्कृतिक जागरण में पहल की। निराला ने उससे प्रेरणा पाई; उसकी शक्ति पहचानी और उसकी कमजोरियाँ भी देखी। दूसरी ओर वह अपने जनपद के लोकजीवन से बहुत गहराई से संबद्ध थे; महावीरप्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द की तरह वह किसानों में घुल-मिलकर रहे थे। उनके जीवन और साहित्य के बहुत-से क्रान्तिकारी स्रोत इस लोक-जीवन में फूटे थे।

तुलसीदास ने अकेले इस देश के लिए जो कुछ किया, वह संसार में किसी कवि ने किसी देश के लिए नहीं किया। फारसी और संस्कृत के दबाव से उन्होंने जन-जीवन को मुक्त किया; अपने कृतित्व से भाषा को नयी प्रतिष्ठा दी; हिन्दी-भाषी जनता के पास धर्म, नीति, साहित्य के नाम पर जो कुछ है, वह अस्सी प्रतिशत तुलसीदास की देन है। पर यह सही है कि वाल्मीकि और व्यास का उदात्त स्वर भक्तिकाल की विनम्र वाणी में खो गया था। वह स्वर भारतीय जनता ने फिर से इस युग में सुना—निराला के काव्य में।

निराला के साथ उनका युग महान् है।

स्वाधीनताप्राप्ति के बीस-इक्कीस वर्ष बाद आज देश दिग्भ्रान्त, पस्त और असहाय सा लगता है। राष्ट्रीय स्वाधीनता का आदर्श सबकी समझ में आता था, सभी देशभक्त उससे प्रेरणा पाते थे। आज समाजवाद का लक्ष्य उतना स्पष्ट नहीं है, राष्ट्रीय आन्दोलन में जितना मतभेद था, उससे कहीं ज्यादा विघटन समाजवादी दलों में है। पर इतिहास की गति रुक नहीं सकती और इस देश में चिन्तन, संगठन और कर्म की बहुत बड़ी सामर्थ्य है। निराला का जीवन और साहित्य भारतीय जनता के लिए बहुत बड़ा प्रेरणा-स्रोत है। एक नया युग आयेगा जब भारतीय जनता आर्थिक शोषण और रूढ़ियों-अन्धविश्वासों से मुक्त होगी। आशा है, उस युग के साहित्यकार अर्द्ध-विक्षेप से मुक्त होंगे, किसी मायकोव्स्की या फादएव के आत्महत्या करने की नौबत न आयेगी। संभव है वह युग निराला के युग-जैसा समृद्ध हो, उससे भी अधिक गौरव-शाली हो। पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में निराला के युग का अपना स्थान है। उसके प्रति हमारा स्नेह, हमारी सहानुभूति कभी नष्ट नहीं हो सकती। हर महान् साहित्यकार अपने में अप्रतिम होता है। हिन्दी-भाषी जाति की अतुल शक्ति और उसके अन्तर्विरोधों के प्रतीक निराला थे। उन-जैसा साहित्यकार इस प्रदेश में न पहले कभी हुआ था, न संभवतः आगे कभी होगा।

१९

पंत और निराला

पंत और निराला—ये दो व्यक्तित्व एक-दूसरे से कितने भिन्न मालूम होते हैं! और कोई दो साहित्यकार आसानी से कल्पना में न आयेंगे, जिनके बीच का फासला उतना ज्यादा हो जितना निराला और पंत के बीच में है। पंत—कोमल, सुकुमार, शालीनता की मूर्ति; निराला—क्षुब्ध, आक्रामक, ओज और पुरुषत्व के अवतार। फिर भी दोनों छायावादी कवि थे, मित्र थे, सूक्ष्म तन्तुओं से परस्पर यों बँधे हुए थे जैसे हिन्दी साहित्य में दूसरे दो साहित्यकार बँधे हुए दिखाई नहीं देते। इनमें एक को जाने बिना दूसरे का ज्ञान असम्भव है, यह ज्ञान चाहे उनके साहित्य का हो, चाहे उनके व्यक्तित्व का। बात केवल तुलनात्मक अध्ययन की नहीं है; मुख्य प्रश्न है, उनके परस्पर सम्बन्ध का, वशीकरण और उच्चाटन की विरोधी लहरों के संघर्ष का।

निराला ने सन् '२४ में जब पंत पर 'मतवाला' में लेख लिखा था, तब दोनों ने एक-दूसरे को देखा न था। निराला ने 'सरस्वती' में पंत की कविताएँ पढ़ी थीं और इतने से ही वह उनकी ओर खिंचे थे। सन् '२५ में निराला पहली बार पंत से इलाहाबाद में मिले। सिर घुटाये हुए थे। पंत को उन्होंने अपना संन्यासी वाला रूप दिखाया। अपने माथे पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा कि अधिक चिन्तन, मनन तथा ध्यान-धारणा से उन्हें अब सर्वत्र केवल शून्य ब्रह्म ही शून्य ब्रह्म दिखाई देता है। पंत की कविताएँ सुनकर बड़प्पन से उन्होंने उनकी पीठ थपथपाई। पंत कटरे के चौराहे तक उन्हें छोड़ने आये। निराला नमोनारायण कहकर विदा हुए। (शान्ति जोशी कृत 'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' में पंत-वक्तव्य)। दोनों में पत्रव्यवहार शुरू हुआ, फोटो की माँग हुई निराला की ओर से, निराला को लिखे पत्रों में पंत ने यथेष्ट स्नेह प्रदर्शित किया। अवश्य ही पंत ने निराला की काफी रचनाएँ पढ़ी होंगी, वरना केवल सौजन्य के कारण वह वैसे पत्र उन्हें न लिखते। दोनों की पहली भेंट हुई तब 'भावों की भिडन्त' से निराला को एक झटका लग चुका था। दूसरी भेंट हुई तब 'पल्लव' की भूमिका से दूसरा और कलकत्ते की बीमारी से तीसरा झटका वह खा चुके थे। इधर 'पल्लव' की आलोचना से पंत भी निराला का आक्रामक रूप देख चुके थे।

दो युवा कवियों की भावुकतापूर्ण रूमानी दोस्ती खत्म हो चुकी थी। दोनों ही एक-दूसरे को अब काफी अच्छी तरह जानने-पहचानने लगे थे।

पंत के पिताजी अस्वस्थ थे और पंत का मन बहुत उद्विग्न था। निराला उनसे मिलने प्रयाग आये, उन्हें सान्त्वना दी। कलकत्ते से पाई हुई बीमारी का हाल बताया। इससे पंत ने जुगुप्सा के कारण मुँह नहीं फेर लिया, वह निराला के और निकट आये। रवीन्द्रनाथ से किसने कितनी चोरी की, इसके बारे मे खुलकर बातें हुईं। पंत ने कहा, मैंने तो जहाँ-तहाँ कुछ भाव ही लिये हैं, आपने तो पूरी-की-पूरी कविताएँ उतार ली हैं। निराला ने कहा—परिस्थितियोंवश वैसा करना पड़ा।

फिर पंत के पिताजी का देहान्त हुआ। पंत के मन में उनके लिए अमित स्नेह और आदर था। वह उनके आदर्श पुरुष, ईश्वरतुल्य पूज्य थे। जीवन में यह उनके मन पर सबसे कठिन आघात हुआ था। निराला उन्हें ढाढ़स बँधाने आये। पंत ने काशी मे निराला के साथ रहने की इच्छा प्रकट की। पंत का स्वास्थ्य अच्छा न था। एक फेफड़े में रोग का प्रभाव था; तपेदिक का भय था। चिकित्सा से मालूम हुआ कि प्लूरिसी है; पंत अच्छे हुए। ये सब दुख-सुख की बातें वे निराला से करते रहे, पत्रों मे उन्हे बहुत-सी आन्तरिक व्यथा की बातें लिखते रहे। लखनऊ में इतनी आत्मीयता बढ़ी कि सायटिका दर्द से छटपटाने पर निराला पत से कमर चापने को कहते। पत अपनी सुन्दर वेशभूषा मे, कोमल चरण, लघुभार, लेटे हुए निराला की कमर चापते। निराला कहते, तुम राधा हो, मैं कृष्ण हूँ। पंत को लगता—निराला का चेहरा कृष्ण-जैसा नीला है।

निराला ने पंत को 'अप्सरा' समर्पित की। यह उनका पहला उपन्यास था, इसमें अपने व्यक्तित्व के ऊपर से उन्होने बहुत-से पर्दे उठाये थे। उनकी दृष्टि में हिन्दी कथा-साहित्य के सारे अभाव इस उपन्यास से दूर होनेवाले थे। समर्पण की भाषा असाधारण थी :

"अप्सरा को साहित्य में सबसे पहले मद गति से सुन्दर-सुकुमार कवि मित्र श्री सुमित्रानन्दन पंत की ओर बढ़ते हुए देख मैंने रोका नहीं। मैंने देखा, पंतजी की तरफ एक स्नेह कटाक्ष कर, सहज फिरकर उसने मुझसे कहा, इन्ही के पास बैठकर इन्ही से मैं अपना जीवन-रहस्य कहूँगी, फिर चली गई।"

निराला के लिए जो अनुभव सबसे अधिक आत्मीयतापूर्ण और मर्मस्पर्शी थे, जो कल्पनाएँ उनके लिए सबसे सुखद थीं, उनमें वह अपने प्रिय सखा पंत को साझीदार बना रहे थे।

पंत ने निराला को ब्रजभाषा में कविता लिखी। निराला ने बँगला पद्य में पंत को उत्तर दिया। इस कवित्वपूर्ण पत्रव्यवहार मे पहल पंत ने की।

पंत कालाकाँकर गये। निराला वहाँ उनसे मिलने आये। होली मे निराला लहँगा पहनकर नाचे। पंत ने साड़ी या उसी तरह की कोई दूसरी चीज पहनी।

पंत ने 'ज्योत्स्ना' लिखी, निराला ने भूमिका-रूप मे दो शब्द लिखे। फिर सरोज बीमार हुई और रायबरेली के अस्पताल में पंत—निराला के साथ—उसे देखने

गये। निराला के मन पर जिन्दगी की सबसे भयानक चोट पड़नेवाली थी; उस समय सुमित्रानन्दन पंत उनके साथ थे।

पंत ने 'रूपाभ' निकाला, निराला ने चमेली, बिल्लेसुर बकरिहा आदि रचनाएँ दी। पंत ने आग्रह करके निराला पर मुझसे लेख लिखाया और 'रूपाभ' में प्रकाशित किया। जिन दिनों निराला की मानसिक खिन्नता बढ़ने लगी थी, पंत ने उन पर कविता लिखी। उसे 'रूपाभ' में पढ़कर निराला को लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति हुई।

पंत को टायफायड हुआ, निराला उन्हें देखने दिल्ली गये। उनके सम्बन्ध में अशुभ समाचार सुनकर निराला रात-भर पार्क में, महादेवी के दिये हुए तार के जवाब की प्रतीक्षा करते रहे।

ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, विवाद—इन सबके साथ पंत-निराला सम्बन्धी ऊपर कही हुई बातें सच हैं। दोनों मित्रों के हृदय स्नेह के गूढ़ बन्धनों से जुड़े थे। वे एक-दूसरे की कमजोरियाँ जानते थे, एक-दूसरे के गुणों और प्रतिभा से परिचित थे। उनकी आँखों पर रूमानियत का पर्दा न था जो एक-दूसरे के बारे में मायावी संसार रच डालते। वे सतर्क होकर एक-दूसरे को जानने की कोशिश कर रहे थे। यह परिचय—'लव ऐट फर्स्ट साइट' की लपट न होकर—एक लम्बा सिलसिला था, देर तक सुलगने और दहकती रहनेवाली आग।

सन् '३१ में कवितामय पत्राचार के बाद पंत ने निराला को लिखा था, "अवश्य ही आपसे मिलने को मेरा जी लालायित है, फरवरी १५ तक लखनऊ पहुँच सकूँगा—आपसे अनेक प्रकार की बातें पूछनी भी मुझे है—एक प्रकार से मैं आपके जीवन से बिलकुल ही अनभिज्ञ हूँ, केवल अनुमान ही अनुमान आपके बारे में मेरे पास है—आपने भी कभी खुलकर नहीं लिखा—मैंने भी अनेक बातें अपने जीवन की आपको नहीं बतलाईं, अब मिलने पर कह सकूँगा—आज तक प्रयत्न करने पर भी नहीं कह सकता था—"

यह लिखने से पहले पंत निराला के जीवन की गुह्यतम बात जान चुके थे—जो उनके और बहुत-से मित्रों को न मालूम थी— कलकत्तेवाली बीमारी की बात। आत्मीयता और परस्पर विश्वास का भाव पैदा करने के लिए निराला यही सबसे बड़ा रहस्य पंत को बता सकते थे। फिर भी पंत जो यह कह रहे थे कि मैं आपके जीवन से बिल्कुल ही अनभिज्ञ हूँ, वह बहुत-कुछ सही था। महत्वपूर्ण बात यह कि वह निराला को और अधिक जानना चाहते थे, अपने बारे में जो कहने में झिझक रहे थे, वह सब बताना चाहते थे।

दो व्यक्तियों के स्वभाव और चरित्र में समानता हो, तभी उनमें प्रेम हो, यह आवश्यक नहीं है। कभी-कभी समानता से विरोध भी उत्पन्न हो सकता है। मोह न नारि नारि के रूपा; दोनों में अहकार हो, दोनों का व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो; दोनों में आत्मरति का भाव प्रबल हो तो इस तरह की समानता से विरोध ही अधिक उत्पन्न होगा, प्रेम नहीं।

पंत के लिए ससार में—स्त्रियों और पुरुषों दोनों में—सबसे आकर्षक आलंबन

वह स्वयं हैं। सर की छल्लेदार लटों से लेकर उँगलियों पर हीरे की अँगूठियों तक वह अपने वेश, विन्यास, परिधान आदि का बड़ा ध्यान रखते हैं। उनकी अनेक रचनाओं में स्वयं अपनी छवि पर मुग्ध होने के प्रमाण मिल जायेंगे। इस आत्मरति की विशेषता है, अपने ऊपर नारीत्व का आरोप अथवा अपने प्रच्छन्न नारीभाव का साक्षात्कार। निराला की तरह पंत भी अर्धनारीश्वर हैं; इसलिए

वरा है शिर पर मैंने देवि
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार।

नारी-सुलभ शृंगार के अलावा पंत मे एक ओर आत्मसमर्पण की भावना है—गाधी, अरविन्द, या अन्य किसी के आगे कुछ समय के लिए समर्पण; दूसरी ओर अपनी स्वतन्त्रता, व्यक्तित्व की मौलिकता, अपने कार्यों की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास भी है। निराला का परुष, उद्धत आक्रामक रूप आसानी से पहचान मे आ जाता था; पंत का यह रूप शालीनता से ढका रहता आया है। निराला समझते थे कि नयी-पुरानी हिन्दी में एकाध कहीं तुलसीदास-जैसा कवि छोड़कर उन-जैसी युगान्तकारी-प्रतिभा का धनी दूसरा नहीं है। 'पल्लव' की भूमिका में पंत की ऐसी ही भावना बड़े आक्रामक ढंग से प्रकट हुई। उन्होने रीतिवादियों को ही धूल नही चटाई, सूरदास-जैसे भक्तों को भी मैदान से हटा दिया। निराला ने किसी भी लेख में समस्त हिन्दी कविता के प्रति ऐसा हेकड़ी का भाव नही दिखाया, जैसा पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में। 'वीणा' की भूमिका में वह सिलसिला बना रहा, भूमिका का जितना अंश छपा है, उतने में भी शब्दावली का तीखापन साफ झलकता है। 'उत्तरा' की भूमिका मे—मेरी आलोचना से उत्तेजित होने के कारण—पंत ने मार्क्स और एंगेल्स के विचारो की तुलना झिल्ली-झींगुरों की झनकार से की।

इस आक्रामक रूप की विशेषता यह थी की पंत जिन पर हमला करते थे, उनसे कही प्रभावित भी होते थे; उनका लोहा मानते थे, उनसे खिचते भी थे। उन्होने रीतिवाद की आलोचना की और 'पल्लव' की रचनाओं मे रीतिकाव्य पर रीझने के बहुत से प्रमाण भी दिये—रतिश्रान्ता व्रजवनिता-सी; मदनराज के वीर बहादुर इत्यादि। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी की आलोचना की; आगे चलकर उनकी प्रशस्ति में कविता लिखी। उन्होने मार्क्स पर प्रशंसात्मक कविता लिखी और उसे झिल्ली-झीगुर बनाया। उन्होंने निराला के मुक्तछन्द को खोटा कहा और फिर उनकी प्रशंसा मे कविता लिखते-समय सबसे पहले उनके इस मुक्तछन्द को ही सराहा—"छन्द बन्द ध्रुव तोड़-फोड़कर पर्वत कारा" इत्यादि।

आक्रमण और समर्पण, स्नेह और दुराव, सम्मोहन और उच्चाटन—पंत के भाव-जगत् में बहुत-कुछ वैसी ही द्विविध क्रियाएँ होती हैं, जैसी निराला के भावजगत् मे।

सभ्य आदमी मन का अहंकार मन मे रखता है। निराला ने अपने कवि-जीवन के प्रारंभ में ही घोषित कर दिया था कि वह रवीन्द्रनाथ के समकक्ष हैं। पंत मे यह भाव कही—अजाने, अनचाहे ढंग से—छलक पड़ा है। 'वीणा' की भूमिका मे उन्होने लिखा कि उनका गीत—मम जीवन की प्रमुदित प्रात—रवीन्द्रनाथ के गीत—अन्तर-

मर्म विकसित कर है—से मिलता-जुलता है। बनारस मे उनके मित्र वह बँगला गीत गुनगुनाते थे। "और मेरा यह गीत रविबाबू की उस तुकबन्दी से शायद अच्छा बन पड़ा है कम-से-कम मुझे तो यही सोचना चाहिए।"

पंत और निराला दोनों ही अपने को युग का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे, यह भी जानते थे कि सर्वश्रेष्ठता की होड़ मे उन्हे जयशंकर प्रसाद का मोर्चा सर नहीं करना, मोर्चा सर करना है खुद एक-दूसरे का। इसलिए व्यक्तित्व की समानताएँ उन्हे नजदीक न लाकर एक-दूसरे से दूर ठेल रही थीं।

पंत और निराला—दोनों के मन पर बचपन से ही धार्मिक भावों ने गहरा असर किया था। पंत के पिताजी का घर बद्रीनाथ के रास्ते मे पड़ता था। साधु-संन्यासी आते-जाते रहते थे, उनके यहाँ ठहरते भी थे। पिता की धार्मिक वृत्ति का प्रभाव पंत के मन पर हुआ। आठ साल की उम्र में उन्होने एक साधु से कहा—मैं भी साधु बनूँगा। वह साधु देखने में बहुत सुन्दर भी था। प्रकृति के सौन्दर्य पर स्वय मुग्ध था। पेड़ की पत्तियाँ हिलते देखकर विह्वल हो जाता था और कहता था—ईश्वर का कैसा चमत्कार है!

साधु बनने के लिए पंत ने जीवन मे पहली और अंतिम बार धोती पहनना शुरू किया। घरवालों को हवा लगी; उन्होने साधु से अन्यत्र जाने को कहा। पंत साधु न हुए, पर रामकृष्ण मिशन के साधुओ से लेकर योगी अरविन्द तक वह अनेक योगियो, संन्यासियो से संपर्क बनाये रहे।

निराला और पंत के धार्मिक संस्कार काफी मिलते-जुलते थे। यह समानता उन्हे एक-दूसरे से दूर न ठेलकर उन्हें पास लाती थी। इसी तरह रवीन्द्रनाथ के काव्य के प्रति उनका मोह था। दोनो ही हिन्दी में कुछ वैसा करना चाहते थे, जैसा रवीन्द्रनाथ ने बँगला में किया था। दोनो ही रवीन्द्रनाथ की कला के प्रशंसक थे पर आध्यात्मिक स्तर पर उन्हें बहुत बड़ा साधक या सिद्ध पुरुष न मानते थे। दोनो ही सामयिक खड़ी-बोली की काव्य-स्थिति से असन्तुष्ट थे, उसे उन्नत और विकसित करने के लिए सचेष्ट थे, ब्रजभाषा-प्रेमी रूढिवादियों का घेरा तोड़ने को सन्नद्ध थे। उनका उद्देश्य एक था; सांस्कृतिक प्रभाव समान थे; उनके विरोध मे खड़ी हुई दीवाल एक थी।

एक बहुत बड़ा फर्क था। निराला राजकुमार होना चाहते थे, पंत निराला की दृष्टि में राजकुमार थे। पंत के पिता ने पैंसठ कमरोंवाला महल बनवाया था। पंत के भाई रघुवरदत्त प्रिन्स कहलाते थे। रहन-सहन ठाठ-बाट सब राजसी था। निराला ने इस तरह का जीवन ललचाई आँखों दूर से देखा था; पंत उसी में पले और बढ़े थे। पंत कालाकाँकर मे रहे—राजपरिवार के साथ। उनका संपर्क अमरनाथ झा जैसे आई० सी० एस० निर्माता प्रोफेसरो, युक्तप्रान्त के मंत्री होनेवाले गोविन्दवल्लभ पंत जैसे नेताओ और उदयशंकर जैसे विश्व-विख्यात कलाकारों से था। वह अलमोड़े में कुछ हफ्ते रवीन्द्रनाथ के भी निकट संपर्क मे आये। निराला के लिए वह प्रत्यक्ष अभिजात थे; इसीलिए वह उन पर मुग्ध थे और उन्हे देखकर भड़कते भी थे। अमरनाथ झा वाले जिस इलाहाबादी समाज मे पंत सहज भाव से खप जाते थे, उसके संपर्क

से निराला के मन में बहुत-से विरोधी भावस्रोत एक साथ फूट पड़ते थे।

इसका एक परिणाम यह होता था कि निराला कविरूप में ही पन्त से अपनी श्रेष्ठता घोषित करके संतुष्ट न हो सकते थे। उनके लिए आवश्यक था कि वह इस अभिजात-वर्गीय व्यक्ति पर हर तरह से हावी रहें, उसे अपना शिष्य बनाकर उसे अपनी बनाई राह पर चलायें। सन् '२४ में जब उन्होंने पन्त को देखे बिना उन पर लेख लिखा, तब भी यह गुरुत्व-भावना उनमें विद्यमान थी। इसके बाद उन्होंने पन्त की कविताओं में दोष दिखाये और पन्त ने उन्हें स्वीकार किया। सन् '४० के आस-पास पन्त निराला के नाम चिट्ठियों में उन्हें आचार्य लिखने लगे थे। इससे निराला को सन्तोष होता था और पन्त इस बात को जानते थे।

पन्त एक हद तक आत्मसमर्पण करते थे; उस हद तक पहुँचने के बाद वह बगावत करते थे। उन्हें लगता था, निराला उन्हें दबा रहे हैं। वह घुटते, छटपटाते और फिर सामने मैदान में आ खड़े होते। 'पल्लव' की भूमिका में निराला के मुक्तछन्द की आलोचना उस दबाव को उतारने का प्रयास थी। निराला पन्त से ज्यादा अच्छी बँगला जानते थे, बंगाल के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से अधिक परिचित थे। बँगला काव्य-चर्चा में—विशेषकर रवीन्द्रनाथ के प्रसंग में—निराला सहज ही गुरु का आसन ग्रहण कर लेते थे। इसके अलावा वह साधुओं के साथ रह चुके थे, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, सारदानन्द के जीवन की पचीसों कहानियाँ वह सुना सकते थे। ज्ञान के कुरुक्षेत्र में निराला बड़ों-बड़ों को धराशायी कर चुके थे; इसलिए यहाँ भी वह पन्त के सहज आचार्य थे। कौन-से फूल किस ऋतु में खिलते हैं, इसकी ठीक जानकारी न होने से पन्त बहुत जगह गलती कर चुके हैं, यह वे उन्हें समझा चुके थे। पन्त को निःसन्देह काफी मानसिक दबाव सहना पड़ा था।

पन्त जब कालाकाँकर में रहने लगे, तब निराला ने कहा—तुम राजाओं के यहाँ क्यों रहते हो?

उन्हें पन्त का राजाओं के यहाँ रहना पसन्द न था। साथ ही वह चाहते थे कि कुँअर सुरेशसिंह उन्हें कालाकाँकर में रहने का निमन्त्रण देते। पन्त ने पूछा—मैं उनसे आपको बुलाने के लिए कहूँ? निराला ने कहा—मुझे बुलाना हो तो वे खुद मुझसे कहें; तुम कहनेवाले कौन होते हो?

पन्त लखनऊ के होटल या रेस्तराँ में बैरे को बख्शीश देते; निराला को लगता, यह अपना आभिजात्य प्रदर्शित कर रहे हैं। और वह पन्त को डाँटते, अपमानित करते।

पन्त शान्तिनिकेतन गये। निराला ने कहा—बंगालियों के सामने हिन्दी का प्रतिनिधित्व करनेवाले तुम कौन?

पन्त इन्दौर जाना चाहते थे, उसी अधिवेशन के अवसर पर जिसमें गांधीजी सभापति थे। निराला ने मना किया और पन्त ने असहाय की तरह उनकी बात मान ली।

पन्त के मन में निराला की आक्रामक मूर्ति अपनी रूपरेखा में स्पष्ट होती गई। वाद-विवाद के प्रसंग में पुस्तकों और पत्रिकाओं में जो कुछ लिखा गया, उससे अधिक बातचीत और प्रत्यक्ष व्यवहार में निराला आक्रामक और उत्पीड़क प्रतीत हुए। पन्त

के मन में एक निराला-ग्रन्थि का निर्माण हुआ; उनको त्रास देनेवाले निराला प्रमुख उत्तेजक बने।

पंत लखनऊ में अपने भाई हरदत्त पंत के यहाँ ठहरे। निराला मुझे साथ लेकर मौडेल हाउसेज़ में उनके यहाँ पंत से मिलने गये। निराला ने हाथ मिलाया; उन्होंने हल्की उँगलियों से हाथ छू-भर लिया। पर मैंने—पत के अनुसार—उनका हाथ पूरी तरह अपने हाथ मे ले लिया। और उन्हे लगा, निराला मेरे द्वारा उन पर पूरी तरह हावी हो गये है।

मैंने उस समय तक पत के विरुद्ध कही कुछ लिखकर प्रकाशित न कराया था। केवल उनकी 'ज्योत्स्ना' पर शेली के प्रोमीथ्यूस अनबाउण्ड का प्रभाव दिखाते हुए एक लम्बी आलोचना लिखी थी। निराला ने आलोचना देखकर उसे 'सुधा' मे प्रकाशनार्थ दुलारेलाल भार्गव को देने की सलाह दी। मैंने लेख दुलारेलाल भार्गव को दिया; उन्होने उसे पंत के पास भेज दिया। दो-एक बार पूछने पर उन्होने कहा, लेख वापस नही आया। उस लेख में ऐसा विशेष आक्रामक कुछ न था। बात सन् '३४-३५ की है। उस समय तक मेरी ध्वसवादी शैली का विकास न हुआ था; उस समय के मेरे किसी लेख मे उसकी झलक भी नहीं है।

सन् '३८ में 'रूपाभ' निकाला। पंत से मेरा सम्बन्ध मधुरतर हुआ। 'रूपाभ' मे मेरे लेखों के अलावा उन्होंने मेरी बहुत-सी कविताएँ छापी। जब वह लखनऊ आते तब मैं उनसे बहुत-सी समस्याओ पर बहस करता था। बहस काफी लंबी हो जाती और पंत अपनी तर्कभूमि न छोडते, न मैं हार मानता। पंत समाजवादी व्यवस्था का समर्थन करते और मैं उसमे बहुत-से दोष दिखाता। विशेष रूप से पंत सोवियत संघ का समर्थन करते, उसकी सीमाओं को सहानुभूति से देखने की सलाह देते। मैं वहाँ लेखकों की आत्महत्या से लेकर भाषण-लेखन की स्वतन्त्रता तक के प्रश्न उनके सामने रखता।

पंत ने मुझे रूसी साहित्य और हिन्दी के प्रगतिशील साहित्य पर लिखने को कहा। मैंने उन्हे सूचित किया कि मैं इनके विरोध मे भी कुछ बातें कहूँगा। पंत ने उत्तर दिया : "रूसी साहित्य निर्माण तथा हिन्दी मे प्रगतिशील साहित्य दोनो विषयो पर लिखिये। अपने दृष्टिकोण से लिखकर विरोध पैदा न कीजिए। Imperson-ally—scientific st. point से लिखिए—तब विरोध के लिए स्थान ही नही रहता। ये केवल प्रयोग-भर है—संभ्व है सफल हों—संभव है असफल।—लिखिए अवश्य।"[१]

एक बार विवाह-प्रथा को लेकर बहस हुई। मैं कहता था—विवाह-प्रथा अप्राकृतिक है, इसे खत्म कर देना चाहिए, पंत कहते थे—मनुष्य के विकास के लिए वह आवश्यक है। मैं विवाहित था, पंत अविवाहित। बहुत देर तक बहस चली। अन्त मे मैंने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किया—विवाह-प्रथा इतनी सुन्दर है तो आप स्वयं अविवाहित क्यों हैं ?

इलाहाबाद से एक मित्र ने—जो पंत से परिचित थे—मुझे लिखा, तुम बहस करते हो या दूसरे की खोपड़ी चाट जाते हो ? पंतजी के सर मे अभी तक दर्द है।

पंत बम्बई में नरेन्द्र शर्मा के यहाँ थे। उन्होंने वे कुछ कविताएँ सुनाईं जो 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' नाम के संग्रहों में प्रकाशित हो रही थीं। मैंने कहा कि 'ग्राम्या' में आप जहाँ तक आये थे, उससे पीछे लौट रहे हैं।

पंत ने मेरी कविताओं के बारे में कहा कि नरेन्द्र की रचनाओं से वे उन्हें ज़्यादा अच्छी लगती हैं। मैंने कहा, आप इतना लिखकर दे दें तो मैं अपना कविता-संग्रह छपवा दूं। पंत ने कहा, इतना ही नहीं, मैं एक अच्छी-सी भूमिका लिख दूंगा।

आगरा आकर मैंने उन्हे कविता-संग्रह भेज दिया। फिर इलाहाबाद मे एक गोष्ठी हुई। उसमें इलाचन्द्र जोशी, स० ही० वात्स्यायन और पंत भी थे। मैंने तीनों की कटु आलोचना की। पंत ने प्रत्युत्तर दिया। वह बहुत उत्तेजित हो गये थे। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद को लेकर बहस हो रही थी। पंत ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए कहा—तुम मैटर की बात करते हो; मैटर—मैटर, मैटर तुम मटर बराबर भी नहीं समझते।

एक दूसरी बात उन्होने कही—यह सब तुम्हारे ईगो (अहं) का प्रदर्शन है।

ये सन् '४८ के उग्रवामपथी रुझानवाले दिन थे। मित्रों ने कहा, पंत को जवाब दो। मैंने कहा, जितना कह चुका हूँ, काफ़ी है, उन्होने कोई तर्क नही दिया, जवाब काहे का दूं?

गोष्ठी की समाप्ति पर पंत ने मेरे गले मे बाँहें डालकर बड़े प्यार से कहा—आप मेरी बात से नाराज तो नही हुए?

मैंने कहा—जब आप मेरी बातों से नाराज़ नही हुए तब आपकी बातों से मै क्या नाराज़ होता?

इसके बाद 'हंस' में 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' पर मेरा लेख निकाला।

मेरे कविता-संग्रह की भूमिका खटाई मे पड़ गयी। काफी प्रयत्न करने के बाद कुछ मित्रों ने उसे बरामद किया और मुझे वह सात-आठ साल बाद मिल गया। लेकिन पंत ने कहा—वह भूमिका लिखने को तैयार है।

मैंने वह संग्रह उनके अनन्य भक्त नरेन्द्र शर्मा को समर्पित किया।

पंत ने 'उत्तरा' की भूमिका में मेरी आलोचना का जवाब दिया। मुझे बता भी दिया कि मेरी बातों का जवाब उसमे दिया है।

इसके बाद जब-तब मुलाकात होती रही; कभी-कभी पत्र-व्यवहार।

इलाहाबाद की 'विवेचना' गोष्ठी मे पंत, अमृतराय, बालकृष्ण राव आदि सम्मिलित थे। विजयदेव नारायण साही ने 'लोकायतन' के बारे मे कहा, "मैंने लोकायतन पढ़ा नही है, और न पढ़ूंगा।" इस पर कुछ मनमुटाव हुआ; पत्रों मे चिट्ठियाँ छपीं। पत, अमृतराय विवेचना-गोष्ठी से अलग हो गये। बालकृष्ण राव ने 'विवेचना' मे भाग लेने के लिए मुझे आमंत्रित किया। मैंने कहा—आपसी झगड़े निपटा लीजिए, तब आऊँगा। साल-भर बाद बालकृष्ण राव ने कहा कि अब कोई झगड़ा नहीं है; आप आइए।

मैं इलाहाबाद गया, 'विवेचना' के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षता करने। वहाँ

पंत, अमृतराय, इलाचन्द्र जोशी आदि कोई न थे। वास्तव में जो लोग अलग हुए थे, वे फिर शामिल न हुए। दूसरे दिन एक चाय पार्टी में इलाचन्द्र जोशी और प्रकाशचन्द्र गुप्त से भेंट हुई। गुप्तजी ने वताया कि पंतजी अस्वस्थ है।

मेरे मित्र गगाप्रसाद मिश्र का आपरेशन हुआ था। उन्हें देखने के वाद मैं 'विवेचना' गोष्ठी मे कुछ देर रहा। फिर वीच में ही उसे छोडकर मैं उमाशंकर शुक्ल के घर आया जहाँ ठहरा था, सामान लेकर स्टेशन पहुँचा। पंत से मिलने का समय न मिला।

पंत ने लिखा, "वैसे प्रकाशचन्द्रजी ने कहा था कि आप 'विवेचना' के लिए जव आये थे तव मुझसे मिलने आएँगे, पर व्यस्तता के कारण वैसा सम्भव न हो सका हो। संकोच भी रहा हो। पर ऐसी कोई वात नहीं है।"[२]

पत ने महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ का संपादन किया। मुझसे लेख मांगा और मैंने भेजा।

इस वर्ष (१९६८) अप्रैल मे एक शोध छात्र की परीक्षा लेने इलाहावाद गया। संध्या समय पंत के यहाँ गया। वह थोड़ी देर मे किसी सभा मे जानेवाले थे। निराला के वारे मे कुछ देर वाते करते रहे। दुवारा मिलने के लिए कहा और विस्तार से निराला के वारे में वाते करने का वचन दिया।

मई मे एक अन्य परीक्षा-कार्य से मैं फिर इलाहावाद गया। २० मई को पहुँचा; उस दिन पंत ने ६८ वर्ष पूरे किये थे। परीक्षा-कार्य रात के साढ़े आठ वजे समाप्त हुआ। मै नौ वजे पहुँचा जव वधाई देनेवाले जा चुके थे; केवल अमृतराय अभी वैठे थे। मेरे आने से पंत प्रसन्न हुए। मै उनके लिए आगरे का पेठा ले गया था। नियति का व्यंग्य; पंत 'डायविटीज' के कारण मिठाई चखते भी न थे।

दूसरे दिन सवेरे लगभग तीन घंटे तक वह अपने और निराला के वारे मे वातें करते रहे। दूसरे दिन कुछ और वाते हुई; उन्हे अधिक वोलने से थकान न हो, इस उद्देश्य से मैं कुछ देर तक निराला का व्यक्तित्व-विश्लेपण करता रहा। फिर भापा-विज्ञान की चर्चा की। तीसरे दिन मैंने उन्हे और कम वोलने दिया; सौभाग्य से कुछ और लोग भी आ गये थे, इसलिए उनको वातें करने से कुछ अवकाश मिला। मैंने किसी वात पर वहस न छेडी, यह सोचकर कि वह थक जाएँगे। एक वात और, 'डायविटीज़' के कारण पंत प्रतिदिन मांस खाते है। २३ तारीख को उन्होंने मेरा साथ देने के लिए शाकाहार किया; मास न खाया।

पंत निराला को क्या समझते है? उनसे अपने सम्वन्धो के वारे मे क्या सोचते है? स्वयं अपने विपय में उनकी धारणा क्या है? जो लोग निराला के जीवन—उनके व्यक्तित्व—का अध्ययन करना चाहते हो, उनके लिए इन प्रश्नो का उत्तर निरर्थक न होगा।

पंत को निराला सता रहे थे; उनके व्यक्तित्व का आक्रामक रूप अव भी उनके मन पर हावी था।

सन् '२८-२९ के निराला को याद करते हुए पंत ने उनके व्यक्तित्व के लिए 'दवंग' शव्द का प्रयोग किया और कहा, "आई वाज़ माइटी अॅफ्रेड आफ हिम।"

५

निराला कालाकाँकर आये। पंत ने कहा : "वह बाथरूम से निकले; तौलिया लपेटे थे; वह नंगे हो गये। मुझसे पूछा, यहाँ क्यों रहते हो ? मुझे उन लोगों ने क्यों नहीं 'इनवाइट' किया। वह तीन दिन रहे और मुझे खा गये ('ही एट मी अप')। सन् '३४ से '३७ तक मैं पूरी तरह उनकी 'ग्रिप' में था। मैं उनके लिए बिल्कुल 'ओपन' हो गया था। जब चाहते थे, बुला लेते। मैं मिलना न चाहता था। उन्होंने जैसे सम्मोहन कर दिया था। वह कहते थे, 'मेरे गुरु ने मुझे दो लड्डू खिलाये है, एक नाश का, दूसरा निर्माण का। दूसरे को खाकर ही आदमी बड़ा होता है। मैं खप्पर में तुम्हारा खून पी जाऊँगा।' "

निराला ने पंत से हाथ मिलाया; फिर मैंने (रामविलास ने) उनका हाथ फुल ग्रिप में ले लिया। निराला की पर्सनैल्टी रामविलास के द्वारा आपरेट करने लगी। पंत भीतर से टूट गये। उनका मन बहुत दुखी था; बहुत मानसिक पीडा के दिन थे वे। तब अलमोड़ा में रामकृष्ण मिशन के साधु चिन्मयानन्द मिले। पत को देखकर बोले—आपको क्या हो गया है ? आप हमारे यहाँ आइये।

पंत साधु से मिलने गये। बाहर के फाटक से ही लगा, "कोई मुझे समेट रहा है।" पंत को लगा, वह स्वामी चिन्मयानन्द मे 'मर्ज' करते जा रहे हैं। स्वामीजी ने कहा—"यू आर ओपन टु ऑल फोर्सेज़; बी केयरफुल।"

इनके बाद मन स्वस्थ हो गया। सन् '३४ से '३७ तक जो पंत के मानसिक उत्पीड़न के दिन थे, वही निराला की श्रेष्ठ रचनाओ के दिन भी थे। "उन्हे मेरी चेतना का आधार मिल गया।" इसका यह अर्थ नही कि पंत के कारण उन्होंने अच्छी रचनाएँ की। उनके भीतर जो कुछ 'ईविल' था, वह सब उन्होंने पंत पर लाद दिया। सन् '३७ में पंत अन्धकार से निकलकर फिर प्रकाश मे आये; तब निराला को पंत की चेतना का जो आधार मिला था, वह छूट गया और उसके बाद वे अच्छी कविताएँ न लिख पाये।

पंत की ये सब बातें मैं ध्यान से सुनता रहा। उन पर मेरी टिप्पणी इस प्रकार है :

पंत के बड़े भाई हरदत्त अंग्रजी और संस्कृत के प्रेमी, अजमेर के मेयो कालेज में राजकुमारों के अध्यापक, हिन्दी और पहाडी में कविताएँ लिखते थे। इनके बाद रघुवरदत्त घर का कामकाज देखते थे, बड़े 'दबंग' आदमी थे, पंत उनसे डरते थे। तीसरे देवीदत्त बड़े ही कुशाग्रबुद्धि, वाक्पटु और देशभक्त थे। इनके लिए अमरीकी चित्रकार ब्रूस्टर ने कहा था कि उन-जैसा इन्टलेक्चुअल उन्हें जीवन मे दूसरा नहीं मिला। पन्त सबसे अधिक स्नेह इनसे करते थे। भाइयों में वह स्वयं सबसे छोटे थे। देवीदत्त छोटे भाई को प्यार करते थे; उनका छायावादी रूप देखकर उन्हें बनाते भी थे। उन्हीं के कहने से पंत ने कालेज की पढाई छोड़ दी थी। पैंसठ कमरोंवाले घर मे—पुराने ढंग के विशाल पितृसत्ताक संयुक्त परिवार मे—गोसाईंदत्त का अस्तित्व नगण्य था। विद्या में देवीदत्त और धन-सम्पदा के स्वामित्व मे रघुवरदत्त उनसे बड़े थे। गोसाईंदत्त इन दबंग भाइयों से पीड़ित थे; सुमित्रानन्दन बनकर वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने लगे। निराला उनसे उम्र में दो साल बड़े थे; यह

फासला बढाकर उन्होंने छह साल कर लिया था। पन्त के मन में उन्होने बड़े भाइयों की जगह ली। वह रघुवरदत्त की तरह 'दवंग' थे; देवीदत्त की तरह अपने बुद्धिवल से | बँगला और वेदान्तज्ञान से—उन पर हावी हो गये थे। हरदत्त की तरह कवि और विद्वान् थे।

जैसे निराला पन्त को प्यार करते थे और उनकी लोकप्रियता से कष्ट पाते थे, वैसे ही पंत निराला को प्यार करते थे और उनके बौद्धिक दवाव से त्रस्त होते थे। त्रास की भावना 'पंतजी और पल्लव', 'मेरे गीत और कला' आदि की मंजिलें पार करती हुई क्रमश: दृढ होती गई। मई सन् '६८ मे पन्त पुराने दृश्य फिर देख रहे थे, तव उन पर त्रास-भावना का गहरा रंग चढ़ा हुआ था।

सन् '२८-२९ मे वह निराला से विलकुल न डरते थे। अपने पत्रों में वह निराला के सामीप्य की माँग कर रहे थे। उन्हे दवंग निराला से सताये जाने मे आनन्द आता था, इसलिए डरने के साथ उनका सामीप्य चाहते थे,—यह सोचना ठीक न होगा। पिता की वीमारी और वाद को उनकी मृत्यु से उनका मन वहुत उद्विग्न था और निराला से वह सान्त्वना चाहते थे, जो उन्हे मिली। दोनो ने जीवन मे काफी दुख सहा था, उनकी मैत्री का एक प्रच्छन्न और दृढ आधार यह भी था।

लखनऊ मे पंत स्वेच्छा से निराला के यहाँ आते। भार्गव मैजेस्टिक होटल में उनकी कमरचप्पी करने के अलावा वह नारियलवाली गली मे भी आते थे। उस समय उनका व्यवहार अत्यन्त मैत्रीपूर्ण, किसी भी तरह के मानसिक दवाव के लक्षणो से मुक्त था। निराला से जव-जव उनकी वहस हुई --लिखित या मौखिक—पन्त ने डटकर अपने पक्ष का समर्थन किया। वह मन में घुटकर रह जानेवाले जीव न थे। लड़ाई-झगडा, फिर दोस्ती, जैसे दो-तीन साल के अन्तर से पैदा होनेवाले भाइयो मे होता है। एकतरफा असहनीय दवाव की वात न थी।

पंत के अनुसार सन् '३४-३७ में निराला उन पर सवसे ज़्यादा हावी थे। पर इस दवाव से मुक्त होते ही मानो निराला को धन्यवाद देने के लिए उन्होने 'रूपाभ' में उन पर कविता प्रकाशित की! यदि सन् '३४-३७ के निराला पंत के लिए वैसे ही थे, जैसे आज उन्हे दिखाई देते हैं, तो वे अवश्य ही उन पर वैसी सुन्दर कविता न लिख पाते।

सन् '४७ के वाद निराला सरकार के नाम से चिढ़ने लगे, पन्त शासनतंत्र के वहुत निकट आये, आकाशवाणी के एक कर्मचारी हो गये। 'आकाशवाणी' की ओर से जव पन्त निराला से मिलने गये तव उन्होने अंग्रेजी मे डाँटते हुए कहा—"आई एम नॉट निराला; आई एम नॉट ए पोएट।" उन्होने महादेवी वर्मा के साथ वैठकर फोटो खिचाया; पन्त के साथ वैठने से इन्कार किया। सरकार और जनता के वीच का फासला वढता गया। 'पल्लव' और 'ग्राम्या' के पन्त ने जितनी कीर्ति अर्जित की थी, वह सव 'स्वर्णधूलि' में खो गई। पन्त अपने युग के साथ आगे वढ़े थे, उनकी लोकप्रियता का कारण यह था। छायावादी कवियों मे भाषासौन्दर्य के वह अप्रतिम पारखी थे। व्रज-भाषा प्रेमियो से भी उन्होंने कवुलवा लिया था कि खडीवोली मे मधुर कविता हो सकती है। 'रूपाभ' निकालकर वड़े साहस से उन्होने छायावाद को विदाई दी थी

और 'ग्राम्या' में नयी काव्यभूमि पर अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया था। उसके बाद भारत स्वाधीन हुआ।

सन् '४५-४६ में कांग्रेसी नेताओं ने जबरदस्त कम्युनिस्ट-विरोधी अभियान चलाया। पंत के ढुलमुल होने का यही समय था। नवीन, दिनकर आदि जो समाजवाद के साथ थे, अब राष्ट्रवाद के साथ हो गये। भारतीय बुद्धिजीवियों के समाजवाद की परख सन् '४८ के बाद होनी थी, उसमे पहले मुख्य लड़ाई अंग्रेज से थी, भारतीय पूँजीपतियों से नहीं। पर हिन्दी के अनेक प्रगतिशील कवि और लेखक सन् '४७ से पहले ही उग्र समाजवादी थे, सन् '४७ के बाद जब समाजवाद के लिए संघर्ष करने का समय आया, तब वे सरकार या पूँजीपतियों के संस्थानों से चिपक गये। पंत की लोकप्रियता दिन पर दिन क्षीण होती गई। सन् '४८ में उनके विरुद्ध मेरा लेख बहुत कटु था; कटुता का कारण रूपाभ-ग्राम्या के पन्त का बदला हुआ अवसरवादी चोला था। पन्त को लगा—रामविलास के द्वारा निराला उन्हें सता रहे हैं।

मेरे लेख का काफी विरोध हुआ। पन्त के समर्थन में बहुत-कुछ लिखा गया। पंत नित नई काव्य-पुस्तकें भी प्रकाशित कराते रहे पर उन्हें वह खोई हुई लोकप्रियता न मिली। लोग उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। इसके विपरीत अर्द्ध-विक्षिप्त निराला का सम्मान दिन पर दिन बढ़ने लगा और मरने के बाद तो—दिनकर के शब्दों में—वह हिन्दी संसार पर छा गये। इसकी प्रतिक्रिया पन्त के मन पर हुई। आत्मपीडन की भावना के साथ आत्मरति के भाव का विस्तार हुआ। पन्त ने कल्पना-चित्र बनाया—निराला उन पर हावी हो गये थे, रामविलास के द्वारा—हाथ मिलाने पर—अपनी आक्रामक क्रिया से उन्हें त्रस्त किया था, साधु ने उन्हें उस त्रास से मुक्त किया। दूसरा कल्पना-चित्र यह कि सन् '३४-३७ मे जब निराला ने 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' आदि प्रसिद्ध कविताएँ लिखी, तब उन्हें पंत की चेतना का आधार मिल गया। पन्त को अंधकार मे ढकेलकर स्वयं उनके प्रकाश-स्थान पर वह बैठ गये। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निराला के श्रेष्ठ काव्य-सर्जन का श्रेय पंत को है।

इसी मुकाम् से एक कदम आगे बढ़कर निराला ने कहा था—शेली और रवीन्द्रनाथ की कविताएँ मेरी लिखी हुई है।

नियति का व्यंग्य कि ये मित्र जो जीवन में इतने दिन एक-दूसरे के साथ रहे, न्यूरोसिस की पहली मंजिल मे भी कुछ दूर साथ चले। कारण भिन्न थे। निराला का विरोध हुआ, पन्त का अपेक्षाकृत सम्मान। सन् '४७ के बाद निराला की लोकप्रियता बढ़ी, पन्त की घटी। आत्मरति और आत्मपीड़न के दृश्य दोनों के कल्पनालोक में झलक उठे।

निराला ने कहा, खप्पर में तुम्हारा खून पिऊँगा—वास्तविक दबाव के ये अनिरंजित चित्र थे। निराला ने प्रेमानन्द वाली कविता में अपने को कृष्णमय स्वामी मे बँधते कल्पित किया था; पन्त की कल्पना में स्वामी चिन्मयानन्द ने उन्हे इसी तरह अपने भीतर समेट लिया था। पन्त की यह 'आध्यात्मिक' अनुभूति स्वामी प्रेमानन्द और सारदानन्द के संपर्क से निराला को भी हुई थी।

पन्त ने दो बार मुझसे कहा कि निराला का चेहरा उन्हें कृष्ण के मुख जैसा नीला दिखाई दिया था। मैंने कहा—निराला को भी स्वामी प्रेमानन्द कृष्णमय दिखाई दिये थे।

दोनों कवियों के धार्मिक संस्कारों ने उनके स्वप्नों का रंग-रूप निश्चित किया।

पन्त का मन अब स्वीकार नही करता कि उन्हें निराला से स्नेह था। उन्होंने जो कुछ लिखा था वह 'कर्टिसी' के कारण। लोग 'कर्टिसी' का अर्थ लगा लेते हैं—प्रेम। निराला जब पहली बार इलाहाबाद में पन्त से मिले, तब भी उनकी बातचीत अव्यवस्थित थी। जब वह भार्गव मैंजेस्टिक होटल लखनऊ में मिले तब निराला ने थूक-थूककर सारा कमरा गंदा कर रखा था। पन्त ने फिनैल से कमरा धुलवाया।

ये दोनो बातें सच होंगी। निराला बातचीत मे उत्तेजित हो जाते थे; घर की सफ़ाई का ध्यान न रखते थे, यह मैंने देखा है। इसीलिए उन दिनो के पन्त के लिए मेरे मन में अपार श्रद्धा है। निराला मे उन-जैसे व्यक्ति को दूर ठेलनेवाली बहुत-सी बाते थी, फिर उन सबकी उपेक्षा करके वह निराला से मैत्री बनाये रहे, यह उनकी महत्ता का प्रमाण है।

अब पन्त को निराला अर्द्ध विक्षिप्त से अधिक कुछ नही लगते; जो कुछ अच्छा लिखा, वह सन् '३४-३७ मे, पन्त की चेतना का आधार मिलने के कारण।

पन्त के अन्दर एक बलवती इच्छा अपने व्यक्तित्व की मौलिकता सिद्ध करने की है। लोग उन पर अरविन्द के प्रभाव की बातें करते है, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनका कहना है कि अरविन्द ने केवल भारतीय दर्शन को व्यवस्थित किया है; जिसे अरविन्द का प्रभाव कहा जाता है, वह बीजरूप में, अरविन्द से मिलने से पहले ही, उनकी रचनाओं में था।

यही वृत्ति उनसे निराला का प्रभाव अस्वीकार कराती है। पर यह भाव उनमें हमेशा नहीं रहता। मैंने उनसे कहा—निराला की प्रतिभा को चाहे कोई जो कहे, उनसे जितना प्यार लोगो को मिला, उतना दूसरे कवियो से नहीं।

पन्त गंभीर होकर अपने भीतर कहीं डूब गये। उन्होने दो-तीन बार मानो अपने से कहा—हाँ, ज़रूर उनमे कोई बात थी, तभी तो आप, धर्मवीर भारती, इतने लोग···

मैंने कहा—लोग समझते हैं कि आपका हृदय भावशून्य है पर ऐसा है नही; सीमित ही सही, आपमे स्नेह-सम्बन्ध की क्षमता है, ऐसे स्नेह की जो बहुत दिन बना रहे।

पन्त फिर ध्यान में डूब गये; उन्होने मेरी बात का विरोध न किया।

मुझे विश्वास है कि पन्त के हृदय मे निराला के लिए अब भी बहुत स्नेह है। आत्मपीड़न की कहानियाँ उस स्नेह को छिपाने का एक साधन है, अपने व्यक्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने के लिए। मैं इस आत्मप्रवञ्चना के लिए भी पंत का आदर करता हूँ।

न्यूरौसिस की पहली मंजिल मे कुछ दूर तक पन्त-निराला साथ आये, फिर साथ छूट गया। इसका कारण क्या है ?

पत और निराला के व्यक्तित्व में मौलिक अन्तर यह है कि पंत की भावधाराएँ उतनी ऊर्जस्वित नही है जितनी निराला की। वसन्त बयार और साइक्लोन का-सा

अन्तर है दोनों में। निराला के मन में विरोधी भाव प्रबल वेग से टकराते थे, पंत के मन पर वे शरद के बादल जैसे उड़ जाते थे। पंत सौन्दर्यप्रेमी कारीगर अधिक रहे हैं; निराला जलते हुए मंत्र देखनेवाले, भावावेश में स्वयं भस्म होनेवाले द्रष्टा। मान, अपमान, घृणा, ग्लानि, अवसाद—सब-कुछ निराला में उदात्त था; पंत में सब-कुछ वातानुकूलित। निराला ने अपनी काव्य-गरिमा की कीमत चुकाई मानसिक संतुलन देकर; पंत अपना मानसिक संतुलन बनाये रहे, काव्य-गरिमा खोकर।

मानसिक संतुलन खोनेवाले बहुत हैं; काव्यगरिमा तक उन सबकी पहुँच नहीं होती। न जिनकी पहुँच होती है वे सब मानसिक संतुलन खो देते हैं। यहाँ बात है एक विशेष प्रकार के भावप्रवण आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व की। परिस्थितियों के थपेड़े खाकर यह व्यक्तित्व संतुलन खोता है। निराला के मन में राजकुमार बनने की चाह; जीवन में अभाव ही अभाव; उस पर अनर्गल विरोध। पंत के जीवन में राजकुमारों का-सा सुख—कम-से-कम प्रारंभिक जीवन में—फिर लोकप्रियता, ख्याति, धारा के विरोध में न चलकर उसके साथ चलने की प्रवृत्ति।

निराला जितने आत्मकेन्द्रित उतने ही वस्तुकेन्द्रित, जितने अंतर्मुख उतने ही बहिर्मुख, जितने कल्पनाशील उतने ही यथार्थदर्शी। पंत में इन विरोधी वृत्तियों का अनुपात एकदम भिन्न था। वह आत्मकेन्द्रित अधिक, वस्तुकेन्द्रित कम। देवी, चतुरी चमार, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा उनकी परिधि से बाहर हैं। निराला जितने धार्मिक थे उतने ही संशयवादी। पंत के मन में धार्मिक विश्वासों की जड़ खोदनेवाली वृत्तियाँ निर्जीव थीं। निराला मूलतः रूढ़ियों के ध्वंसक, जीवन में क्रान्तिकारी थे, पंत मूलतः मध्यमार्गी, समझौता-प्रेमी, जीवन में उच्च वर्गों के सहयोगी थे। निराला में कल्पनाशीलता, मेधा, ऐन्द्रिय विलासप्रियता, वैराग्यभावना—इन सबको प्रेरित करने वाली दुर्धर्ष ऊर्जा थी। पंत में कोमलता, माधुर्य, सुकुमारता सब-कुछ था; ऊर्जा की ही कमी थी जिसके बिना उदात्त की सृष्टि नहीं होती। पंत केवल मधुर, सुकुमार, कोमल नहीं हैं; उनमें—बौद्धिक स्तर पर—कठोरता भी है। मैं निराला की तुलना में केवल परिमाण-भेद की बात कर रहा हूँ। दोनों अर्द्धनारीश्वर; निराला में शिव अधिक, पंत में पार्वती।

पंत के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ मैंने कहा है, उसकी पुष्टि उनके महाकाव्य 'लोकायतन' से होती है। इसका रचनाकाल अक्तूबर सन् '५९ से लेकर अक्तूबर सन् '६३ तक है। निराला की मृत्यु से दो वर्ष पूर्व इसकी शुरुआत हुई और उनकी मृत्यु के दो वर्ष बाद उसकी समाप्ति हुई। यह समय ऐसा था जब महाकाव्यों में 'कामायनी' की सबसे ज्यादा पूछ थी, कवियों में सबसे ज्यादा चर्चा निराला की थी। पंत ने अवश्य ही सन् '५९ में शुरू करने से पहले 'लोकायतन' की विषयवस्तु पर काफी दिन चिन्तन किया होगा पर इसमें सन्देह नहीं कि उसमें प्रतिबिंबित मनोदशा उस काल की है जब 'कामायनी' की ख्याति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई थी, जब निराला की कीर्ति के आगे पंत की लोकप्रियता दब गई थी। इसके लिए जितना निराला उत्तर-दायी थे, उतना ही श्रद्धालु जनता जो निराला और उनके शिष्यों के प्रचार को विवेक-

हीनता से मान लेती थी।

एक ही था तम का जड तत्व
इधर माधो मे स्पर्धा वृत्ति,
उधर जन मन मे पुजीभूत
अहं कुठित कटु ईर्ष्या-भित्ति !

जनो को करते गुरु संकेत
न वशी को दें सूची-स्थान,
मुक्त वहुजन मुख चर्चित झूठ
स्वयं वन जाती सत्य प्रमाण ! (पृ० २४८)

माधो गुरु निराला है, वह कीर्ति छीन रहे है युगकवि वंशी की। माधो के भीतर स्पर्धा का अन्धकार; जनता के मन मे अज्ञान का अंधकार। माधो ने संकेत किया कि वंशी को साहित्य मे सुई वरावर जगह न मिले। शिष्यो के निरंतर प्रचार से माधो की महत्ता वाला झूठ सत्य वन गया।

यद्यपि निराला सरकार के नाम से चिढ़ते थे, फिर भी पंत ने माधो गुरु को राजकवि वनाया। राजकवि होने पर भी माधो गुरु द्वेष और स्पर्धा से दग्ध रहते थे और

देह प्राय:, रहती अस्वस्थ ! (पृ० ३३०)

अपनी अहंता ने जूझकर अव वे जीवन से हार गये थे। उनका दंभ क्रुद्ध अहिफण-सा उन्ही पर अत्याचार करता था। प्रथम वार जव अहं का विस्फोट हुआ तव वह मूर्च्छित-से हो गये। उनकी जीभ पर जो मंत्र लिखा गया था, साधना के अभाव से वह व्यर्थ हो गया। अहं को आत्मा मे तोलकर गुरु ने उसी को सर्व-समर्थ पाया। तीव्र यशलिप्सा से आक्रान्त होने के कारण वह कुठाओं से टूट गये। स्वजनो और शिष्यों के लिए वह उदार थे—

लुटा निज जीवन धन सर्वस्व
निरीहो का करते उपकार ! (पृ० ३३०)

सव-कुछ दान कर देने और अपने पास कुछ भी संचय न कर पाने से वह लोगो का सहज ही ध्यान आकर्पित करते। लोग व्यथा से आर्द्र होकर उन पर प्राण निछावर करते। साधारण जनों के लिए वह गूढ रहस्य वन गये, वे उनके वारे में नित नई कहानियाँ गढने लगे।

माधो गुरु सखा वंशी के चुने हुए गीत भी सुनाते। लोगो मे यह विश्वास फैल गया था कि माधो गुरु को वंशी से वड़ा स्नेह है। नये कवियों की अहंता को वलवान वनाकर, मर्मभूमि मे शूल उगाकर वह उन्हे प्रेरणा देते थे। इस प्रकार जन-सावारण के अलावा नये कवियो की पीढी भी माधो गुरु के साथ हो गई।

कूट आध्यात्मिकता से दीप्त
शिखर पर था तव गुरु का स्थान,

ओज रस शैली में उन्मुक्त
कलालंकृत स्वर-शिल्प विधान ! (पृ० ३३१)

माधो गुरु को घेरे हुए गुह्य परिवेष्टन मोहविभोर दर्शकों को प्रभावित करता था। जब वह अपना उग्र रूप दिखाते, तब मंत्रविमुग्ध जन स्तब्ध रह जाते।

इस विवरण से स्पष्ट है कि 'लोकायतन' में माधो गुरु के चित्रण का आधार सन् '५०-६० के निराला हैं। उनके दान की कथाएँ, नयी पीढ़ी पर उनका प्रभाव, उनकी कीर्ति के आगे वंशी का हतप्रभ होना—ये सब निराला-जीवन के अंतिम दशक की बातें हैं। पंत ने इस मन:स्थिति मे सन् '३४-३७ के निराला को देखना शुरू किया। जो त्रासभावना सन् '४७ के बाद उनमे बढी थी, उसे उन्होने '३४-३७ के पन्त पर आरोपित किया। इसी क्रम मे उन्होंने '५०-६० के निराला को '३४-३७ के निराला से मिला दिया।

माधो गुरु को लगता था—

छीन कर उनका कीर्ति-किरीट
घूमता वंशी वन सम्राट्। (पृ० ३३२)

यह स्थिति '३४-३७ की है। '५०-६० में तो 'शिखर पर था तब गुरु का स्थान'; उस समय यह कहना आवश्यक न था कि वंशी ने उनका कीर्ति-किरीट छीन लिया है।

पन्त के मन ने '३४-३७ के निराला को लेकर कहानियाँ गढना शुरू किया। माधो की प्रकृति में द्वेप था। योगियो के सहवास से उन्होने अन्तर्दृष्टि पाई थी, पर उनके दंभ से सन्मति हार जाती थी। वह छल से वंशी को मोहने लगे—

मोहते गुरु रख शत छल वेश
असत् का होता गूढ स्वभाव,
सरल था वंशी, सहृदय प्राण
न मन में था भय द्वेप दुराव !
आत्मतन्मयता कवि की शक्ति,
ध्यान छल कौशल से कर भंग
पिलाते उसे अचित् तम घूँट
कपट कर गुरु वंशी के संग ! (पृ० ३३४)

निराला ने पंत को जो स्नेह दिया, वह 'लोकायतन' लिखते समय उन्हे छल-कपट लग रहा था। उनका अवसादग्रस्त मन अपने सबसे स्नेही कवि-बन्धु को छली और कपटी कहने मे संतोप-लाभ करता था।

माधो गुरु सम्मोहन के नाना रूप रचकर वंशी की चेतना में रन्ध्र कर देते (वंशी में छेद तो पहले से ही थे)। अचेतन तम का आह्वान करके कवि—अर्थात् वंशी—के दृग बन्द कर देते। वंशी का भाव-शरीर बँट गया; प्रकाश और अन्धकार के संघर्ष से उसका चित्त क्षुब्ध और हताश हो जाता। कल्पना का सौन्दर्य बुझ जाता, भाव कुरूप आकार धारण करते, रस के प्यासे प्राण झुलस जाते, मन में हाहाकार गूँज उठता। वंशी को अन्धकार में ढकेलकर उसके प्रकाश से लाभ उठाया

माधो गुरु ने :

खींच सौन्दर्य-बोध, रस तत्व
सृजन करते माधो नव काव्य,
दग्ध निज मानस मरु को सींच
सँजोते हरीतिमा संभाव्य। (पृ० ३३५)

इस प्रकार 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' की रचना हुई। जैसे परजीवी नभवेल वृक्ष पर छा जाती है और उसके रसप्राण हर लेती है, वैसे ही—

छीन वंशी की अन्तस् ज्योति
छेड़ते गुरु नवयुग के गान! (उप०)

लोगों के सामने वह वंशी का सम्मान करते, अपना स्नेह दिखाते पर लोगों को सन्देह न होता था कि छल से वह वंशी का नाश कर रहे हैं :

तमक, सिर के ऊपर से बोल
शिराएँ कर देते सब ध्वस्त,
दर्प के अट्टहास से चूर्ण
प्राण मन हो उठते संत्रस्त! (उप०)

पंत जब यह लिख रहे थे तब साठ पार कर चुके थे। डायबिटीज़ से पीड़ित हुए दस वर्ष हो चुके थे। मन और शरीर दोनों शिथिल थे। निराला की बातचीत और हँसी —सन् '३४-३७ के निराला की मैत्री और स्नेह—अब उनके त्रास का कारण बन गई थी। '३४-३७ मे पंत की पुरानी आस्थाएँ टूट रही थीं; वह उनकी मानसिक व्यग्रता का समय था। पर वह ऐसे पराभूत न थे, जैसा अब सोच रहे थे। वह साहस के साथ छायावाद की कल्पना-भूमि छोड़कर नये जीवन-दर्शन की ओर बढ रहे थे। पर अब अपने दुःस्वप्न मे वह निःसहाय आक्रान्त थे, निराला केवल दुर्धर्ष आक्रामक। माधो गुरु—

चूस लेते वंशी का सत्व,
प्राण सीत्कार वेग से खींच,
प्रकृति तुम, मैं वृष-पुरुष अदम्य,—
ओंठ लेते वह कस कर भींच! (पृ० ३३५)

वह बुदबुदाते—तुम सबके शिखर पर न होते यदि मेरे हाथ पड़ जाते; अब मैं तुम्हारा साथ छोड़ नही सकता। विजय शक्तिपूजा से मिलती है, इस पूजा का अर्थ है विनाश। जो घोर पंक-गर्त मे गिर चुका है, उसे सद्भावों से क्या काम? इसलिए माधो गुरु कहते कि तुम्हे भी निर्मूल करके छोड़ूँगा, तभी माधो गुरु नाम सार्थक होगा। फिर खप्पर मे खून भरने की बात :

भरूँगा माँ का खप्पर रिक्त
तुम्हारा कर बलिदान घमंड,
स्वगत बकते, करने भयभीत
क्रूर, दांभिक माधो दद्दंड!

वंशी के स्वभाव में करुणा थी, माधो गुरु निर्मम स्वार्थान्ध थे। वह वंशी पर अपनी तीक्ष्ण दृप्त दृष्टि डालकर उसका ज्ञान हर लेते थे। उनकी आँखों की क्रूर चमक वंशी के हृदय में शूल-सी चुभ जाती। वंशी की दशा दयनीय हो गई। वह वधिक के सामने असहाय पशु-जैसा था।

माधो गुरु वंशी से मिलने गये। विदा होने का शिष्टाचार दिखाते हुए उन्होंने वंशी का हाथ थाम लिया। फिर—

किया प्रेरित गुरु ने कवि चित्त
शिष्य को भेंटे इसी प्रकार ! (पृ० ३५६)

हाथ शिष्य ने अपनी ओर से न मिलाया था; हाथ वंशी ने बढ़ाया, माधो गुरु की प्रेरणा से।

आत्म-विस्मृत कवि ने विधि मूढ़
मिलाया वाग्विलास से हाथ,
न्याय पर करता था जो शोध
जिसे लाए थे गुरु निज साथ !
साथ गुरु ने कुत्सित अभिचार
किया उर मे गोपन आघात
लगा कवि को उसका चैतन्य
ऋक्ष सा टूट, हुआ भू-सात् ! (उप०)

शिष्य रिसर्च स्कालर भी था, साहित्य का नहीं तो न्याय का। जब आत्म-विस्मृत कवि वंशी उससे हाथ मिला रहे थे, तभी किसी तांत्रिक की तरह गुरु ने कुत्सित अभिचार किया, गोपन आघात के द्वारा वंशी के चैतन्य को नष्ट कर दिया।

निराला को जैसे प्रेमानन्द कृष्णमय दिखाई दिये थे, वैसे ही पंत को मैं निराला-मय दिखाई दिया। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे (रामविलास के) अन्दर जो आक्रामक भाव था, वह निराला के कारण। मैंने उत्तर दिया—पचास फीसदी निराला के कारण, पचास फीसदी ज़्दानोव के कारण ! (ज़्दानोव '४८-४९ में उग्र वामपंथी रुझान के विशिष्ट प्रतिनिधि थे।)

पंत ने '४८-४९ वाले मेरे आक्रामक रूप को '३४-३५ के रामविलास पर आरोपित किया। उसके लिए उत्तरदायी ठहराया निराला को ! उनके दुःस्वप्नो मे निराला के साथ मैं भी जुड़ा हुआ हूँ, इसलिए ऊपर उनसे अपने सम्बन्ध का विवरण मैंने कुछ विस्तार से दिया है। माधव गुरु-वंशी की कथा में उन्होंने पन्त-निराला के सम्बन्धों का चित्रण किया है, यह मुझे उन्हीं से मालूम हुआ—तब तक मैंने लोकायतन पढ़ा न था—यद्यपि भूमिका में उन्होंने लिखा था, "गाँधीजी के अतिरिक्त इसके शेष पात्र कल्पित होने पर भी उनके द्वारा मेरे कवि जीवन की अनुभूति एवं सत्य को वाणी मिली है।"

माधव गुरु ने शिष्य को निमित्त बनाकर कवि वंशी का चैतन्य ध्वस्त कर दिया।

शिष्य को बना जघन्य निमित्त
किया गुरु ने कवि चेतन ध्वस्त,

तमस से आवृत हो तत्काल
हुआ प्रतिभा रविमंडल अस्त ! (पृ० ३५७)

लक्ष्मण को मानो शक्ति लगी हो, मंत्र ने जैसे मर्म वेध दिया हो, कवि को लगा कि उसकी ज्योति नष्ट हो गई है। कवि के विरुद्ध शिष्य को गुरु ने विमोहा; जिसे करने में उन्हे जग की लाज थी, उसे शिष्य से पूर्ण कराया।

मुखर कर स्वर विरोध का तीव्र
उगलता नाभिकीट अहमूर्ण ! (उप०)

विजय से दीप्त अग्निमय नेत्र लिये गुरु-शिष्य लौट गये। वंशी की कल्पना का सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया; मन अन्धे कुएँ-जैसा हो गया। उसमें तरह-तरह के जीव-जन्तु घूमने लगे :

केंचुए, अजगर, भैंस, वराह
घूमते मन में उठ अपरूप ! (उप०)

रात मे नींद खुल जाती; लगता कि अन्धकार के सर्प तन से लिपट गये है। चील-कौओं के बादल कवि पर मँडराते हुए उस पर टूट पड़ते। स्वप्न मे कंकाल खीसें काढकर डराते, वंशी को अपनी देह छिपकली-सी लगती। वंशी की इस सारी यातना से लाभ उठाया माधो गुरु ने; उसकी काव्य-प्रतिभा के बल पर वह महाकवि बन बैठे।

पटक कवि वंशी को पाताल
शिखर पर पहुँचे गुरु सोत्कर्ष,
श्रेष्ठतम कृतियों को दे जन्म
बिताए कुछ हेमन्त सहर्ष ! (पृ० ३५८)

गुरु ने कविताएँ ही न लिखीं, फोटो भी खिचवाया। फोटो अच्छा आया क्योंकि—

चुरा वंशी की मानस कान्ति
खिचाए गुरु ने युगप्रिय चित्र।

पंत निराला के उस रूप पर मुग्ध थे, '३४-३७ के कृतित्व पर मुग्ध थे। उस रूप और कृतित्व के सामने वह केंचुए, अजगर के साथी, अन्धकूप मे पड़े हुए क्षुद्र प्राणी-जैसे लगते थे। वह स्वयं पर मुग्ध रह चुके थे, इसलिए मन ने समझाया कि निराला का यह सारा कृतित्व, उनका समस्त सौन्दर्य पंत की ही कान्ति से दीप्त है।

दीर्घ नासिका, नयन, भुज वक्ष,—
मिटा कुण्ठित हिम-दैन्य तुरन्त,
खिली सूखी पतझर की डाल,
हँस उठा मासल रंग वसन्त ! (पृ० ३५८)

निराला के इस विराट् आकार को देखकर पंत का मन हीन-भावना से त्रस्त हो उठता, उन्हे अपनी देह छिपकली-जैसी लगती। इसका बदला उन्होंने जनता से लिया। जनता सुकवि उन्हे मानती है जो 'चिद् निधि चोर' है, दूसरो का मानसधन चुरा लेते है। इस संसार मे गिद्ध गरुडवत् पूजे जाते है। बेचारे वंशी के मन में आठ पहर पीडा रहती। उसकी ज्योति का सूर्य अस्त हो गया; हृदय अवसाद का अथाह समुद्र बन गया।

युग-कवि वंशी को खंडित-स्वप्न देखकर चिन्मयानन्द द्रवित हुए। उन्होने वंशी के हृदय का अंधकार खींच लिया, अन्तर में सोया हुआ छंद फिर जाग उठा।

दुनिया के सताये हुए निराला अनजान में इस तरह पंत को सता रहे थे। आत्मकेन्द्रित पंत निराला की व्यथा न देख पा रहे थे, न समझ पा रहे थे। निराला की मृत्यु से उनके मन पर कहीं आघात हुआ हो, इसका चिह्न भी 'लोकायतन' में नहीं है। फिर भी दोनो की व्यथा मे चमत्कारी समानता थी। दोनों ही अपने अतिरंजित दुःस्वप्नों में नरकयातना भोग रहे थे। निराला हिंस्र पशुओं से युद्ध कर रहे थे तो पंत अजगरों, वराहों, भैंसों से घिरे हुए थे। निराला बहुत-सी संपत्ति के स्वामी बनने के साथ शेली और रवीन्द्रनाथ की पुस्तकों के रचयिता बन गये थे तो पंत 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' के रचयिता को अपनी प्रतिभा का दान देनेवाले बन गये थे। निराला स्वामी सारदानन्द के यंत्र थे तो पंत निराला के। अन्तर यह था कि सारदानन्द ने निराला को प्रकाश दिया, निराला ने पंत को अंधकार दिया। तंत्र-मंत्र और योग से संबन्धित विश्वास दोनों के कल्पनाचित्र बनाने मे योग दे रहे थे। अंत में रामकृष्ण मिशन के ही एक साधु ने चमत्कार दिखाया और पंत के मन से अंधकार खींच लिया। दोनों की 'आध्यात्मिक अनुभूति' से साधुओ—विशेपकर रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों—का घनिष्ठ संबन्ध था। समान धार्मिक संस्कारों वाले दो आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व परिस्थितियों की ठेस लगने पर कैसे मिलते-जुलते स्वप्न बुनते है, यह 'लोकायतन' में पंत के दु:स्वप्नों के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

पंत ने निराला के व्यक्तित्व के संबंध में दो-एक महत्त्वपूर्ण बाते और कही हैं। मावो गुरु पूर्व-कवियो—संस्कृत के कवियों—के आख्यान सुनाकर अपनी पुस्तक का 'अनामिका' नाम सार्थक बताते।

न वैसा मिला महाकवि अन्य
पड़ा तब से अनामिका नाम! (पृ० ३३८)

'पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे' आदि पद निराला ने सन् '२३ में प्रकाशित अपने कविता-संग्रह के आरंभ मे उद्धृत किया था। पंत से तब उनकी भेंट न हुई थी। भेंट होने पर उन्होंने अपना वह प्रिय पद पंत को अवश्य सुनाया होगा। इनसे निष्कर्ष यह निकलता है कि उनकी स्पर्धा पंत से ही नहीं, संस्कृत के महाकवियो मे भी थी। उनका अहंकार-प्रदर्शन केवल पंत के प्रति नहीं, सभी महाकवियो के प्रति था—तुलसीदास-जैसे गृहत्यागियों को छोडकर—राजाओ द्वारा सम्मानित कवियो के प्रति था। पंत ने 'लोकायतन' में उन आख्यानो का जिक्र किया है जो निराला ने उन्हे सुनाये थे, जिनके अनुसार वन्दनीय सरस्वती-पुत्र कवि है, लक्ष्मी का प्रिय पात्र राजा नहीं। मन्दिर में जब राजा की बनाई गीतगोविन्द की नकली प्रति के साथ मूल प्रति रखी गई, तब मूर्ति ने झुककर मूल प्रति उठा ली, राजा की बनाई प्रति छोड़ दी। राजा को ज्ञान हुआ :

झुका कवि के चरणों पर भूप
भूल द्रुत कर अपनी स्वीकार। (पृ० ३४५)

निराला के मन मे यही प्रबल आकांक्षा थी कि राजा उनके सामने झुकें। महिपादल के राजा और राजकुमारों का सम्मान था, उदीयमान कवि सूर्यकांत को कोई न पूछता था। इसीलिए ओरछा के राजा को उन्होंने याद दिलाई थी कि भूपण की पालकी छत्रसाल ने उठाई थी। पंत राजकुमार-से लगते थे, कालाकाँकर मे राजकुमारो के साथ रहते थे। निराला के क्षोभ का यह भी एक कारण था। पंत ने राजाओ और कवियो से संबधित निराला के सुनाये आख्यान लिखकर महत्त्वपूर्ण तथ्य दिये हैं पर वे स्वयं निराला ने इतना पीड़ित अनुभव कर रहे थे कि राजाओ ने निराला को सताया है, इस ओर उनका ध्यान न गया।

'लोकायतन' के लगभग डेढ साल वाद पंत ने 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' वाले निबंध लिखे। 'लोकायतन' को देखते इन निबंधो मे उनकी भावदशा अधिक स्वस्थ है। इनमे उन्होंने उन वाह्य परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिनसे छायावादी कवियों के मन मे द्वंद्व उत्पन्न हुए। उन्होने लिखा है, "प्राय: सभी छायावादी कवि सपन्न घरो में पैदा हुए थे, किन्तु महादेवीजी को छोड़कर, शेप तीनो कवियों को विभिन्न कारणो से गृह-व्यवस्था का संतुलन खो जाने के कारण, प्राय: अपनी मध्य वयस तक आर्थिक संकटो से जूझना पड़ा।" (पृ० ३९) 'शेप तीनों कवियो' मे निराला संपन्न घर मे पैदा न हुए थे, पंत को उन्होंने अपनी संपन्नता की जो भी कहानियाँ सुनाई हो। उन्होने न केवल अपने और राजा के परिवारो का वैपम्य अच्छी तरह देखा था, वरन् महादेवप्रसाद सेठ, विनोदशंकर व्यास जैसे रईसो—या विगड़े रईसो—की सोहवत भी की थी। छायावादी कार्व्यक्षेत्र से जो सहयोगी मिले, वे भी रईस घरानो के। निराला के आत्सम्मान के लिए जरूरी हो गया कि वह रईसी ठाट मे हमेशा नहीं तो कभी-कभी उनकी वरावरी करे। इस पर आर्थिक संकट से जूझने का लवा सिलसिला। पंत भी आर्थिक सकट से जूझे पर निराला को देखते उनका जूझना नगण्य था। इस तरह निराला के मानसिक द्वन्द्व अन्य कवियों से अधिक तीव्र थे।

पंत ने आगे लिखा कि मनोनुकूल परिस्थितियो के अभाव मे "उनको अपनी शिक्षा-दीक्षा तथा आत्मसंस्कार के पथ में भी दुर्लंघ्य वाधाओं का सामाना करना पड़ा और वाहरी वौनी परिस्थितियों से समझौता करने की विवशता के कारण उनके व्यक्तित्व के यथोचित विकास मे भी पर्याप्त विलंव हुआ।" (पृ० ३९) पंत-प्रसाद-निराला में स्कूली शिक्षा सवसे ज़्यादा पंत को ही मिली थी—इंटर तक। वाद मे उन्हें शिवाधार पांडेय घर वुलाकर अंग्रेजी पढ़ाते रहे। तीनों में अंग्रेजी के सवसे अच्छे जानकार पंत थे। उचित शिक्षा का अभाव सवसे ज़्यादा खला निराला को क्योकि इसका सीधा सवंध उनकी रोज़ी से था। जहाँ तक वौनी परिस्थितियो का संवंध है, निराला ने सवसे कम समझौता किया, सवसे ज़्यादा कष्ट सहा। शायद पंत ने सवसे ज़्यादा समझौता किया।

छायावादियो को वाह्य परिस्थितियो के अलावा अपने मनोवेगों से लोहा लेना पड़ा; "उनमें से कुछ का अन्तःकरण समय-समय पर निर्मम रागद्वेप, स्पर्धा तथा महत्वाकांक्षा के आवेगों से भी मंथित रहा और आत्मवोध के क्षण मे उनकी आत्मा

को ग्लानि ने भी दंशित किया है।" (उप०) इन कुछ में निराला सबसे आगे हैं, रागद्वेष, स्पर्धा, महत्वाकाक्षा, ग्लानि के प्रतीक। पर दूसरे अछूते नहीं हैं, विशेषकर पंत। निराला विनम्रता, स्पर्धाहीन मैत्री, करुणा और अपराजेय शौर्य के भी प्रतीक थे। अन्य कवियों मे इन गुणों का अभाव न था पर निराला दुर्गुणों में उनमे आगे थे तो गुणो मे भी।

पंत ने हिन्दी लेखक की विशेष स्थिति पर बडी मार्मिक दृष्टि से लिखा है। जब छायावादियो ने लिखना शुरू किया था, तब समाज मे हिन्दी के प्रति आदर-भाव नही था; जब वे संसार से उठने लगे तब भी यह आदर-भाव उत्पन्न नही हुआ। किसी भी मध्यवर्गीय परिवार का पिता या संरक्षक इस बात पर प्रसन्नता प्रकट न कर सकता था कि उसका पुत्र पैसा कमाना छोडकर साहित्य-सेवा में लग जाय, वह भी हिन्दी की सेवा मे! खासकर पिता या संरक्षक ने अंग्रेजी राज की छत्रछाया में यदि लाखो कमाये हो और पैंसठ कमरोंवाला महल बनवाया हो तो वह पुत्र को काव्य-साधना के लिए क्षमा न कर सकता था। पंत अपने पिता का अतिशय आदर करते थे और उतना ही उनसे डरते भी थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके भव्य तैलचित्र पर वह तीन साल तक पर्दा डाले रहे; उसे निरावरण करके सीधे देखने का उन्हे साहस न होता था। एंट्रेन्स परीक्षा मे फेल होने पर रामसहाय तेवारी ने बेटे को बहू के साथ घर से निकाल ही दिया था।

नियमित उच्चशिक्षा न मिलने, धन कमाने मे पिछड़ने, हिन्दी मे लिखने—वह भी छायावादी कविता—से सामाजिक प्रतिष्ठा न मिली। पंत ने लिखा, "इस प्रकार सामाजिक परिवेश का समर्थन न मिल सकने के कारण उन्हे हीन-भावना का दंश भी झेलना पड़ा, तथा यथार्थ की दृष्टि से एक प्रभावहीन सामाजिक प्राणी का जीवन व्यतीत करने के कारण, पग-पग पर पैदा होनेवाली कुण्ठाओं मे भी, प्रारंभ मे, अपनी रक्षा करनी पडी एवं बौद्धिक मानसिक बल के अभाव मे कभी-कभी अतिरंजित भावुकता की छाया में अपने ध्येय को पोषित करना पड़ा।" (पृ० ४०) सामाजिक परिवेश का समर्थन न मिला; इसलिए हीन-भावना उत्पन्न हुई। मन में कुण्ठाएँ उत्पन्न हुईं; मानसिक बल के अभाव में अतिरंजित भावुकता उत्पन्न हुई। पंत ने यह केवल निराला के लिए नहीं लिखा, सभी छायावादी कवियो के लिए लिखा है, अपने लिए भी। निराला ने जो भोगा, वह सबने भोगा; उनका जीवन-चरित छायावादी कवियों, सभी ईमानदार हिन्दी कवियों और लेखकों के जीवन का आख्यान है। अन्तर है, भोगी हुई वेदना की तीव्रता में। निराला एक युग की कुंठा और संघर्ष के पुञ्जीभूत प्रतीक थे।

निराला के व्यक्तित्व के बारे में पंत ने लिखा है कि वे अत्यन्त हठी, अहम्मन्य और उद्धत थे; उनमें अहम्मन्यता, स्पर्धा और प्रचंडता थी, साथ ही वे अत्यन्त भावप्रवण और संवेदनशील थे। 'लोकायतन' में पंत ने निराला के तत्कालीन स्नेह को छल माना था; यहाँ उन्हें वास्तव में संवेदनशील माना है। यह उनकी बदली हुई भावदशा का प्रमाण है।

यदि किसी मे अहम्मन्यता हो, साथ ही प्रतिभा भी हो तो यह स्वाभाविक है कि हम प्रतिभा की प्रशंसा करें, अहम्मन्यता की निन्दा करें । पंत का निराला-संवन्धी विश्लेपण इस कोटि का नहीं है । निराला में जो महान् है, वह उन्हे आकर्पित करता है, वही उन्हे त्रस्त भी करता है । पंत की शब्दावली इसका प्रमाण है :

(१) निराला का दीर्घ, सशक्त, उन्मुक्त व्यक्तित्व; वैविध्यपूर्ण उन्नत कृतित्व । (पृ० ६०)

(२) उनका आविर्भाव एक तेजोमय धूमकेतु के समान, एक प्रखर धूमकेतु, जिसके पीछे ज्योतिवाष्पो की लंवी धूमिल पूंछ । (उप०)

(३) उन्होने कविता-कानन मे अपने समस्त प्रवेग के साथ सिंह की तरह प्रवेश किया । (उप०)

(४) उनकी सवल वौद्धिक रचनाओ मे उनकी अद्वैत दृष्टि का अखण्ड तेज, असीम सौन्दर्य, तथा निगूढ सांकेतिक कला-वैभव है । (पृ० ६१)

(५) वह अदम्य शक्ति दुर्ग थे, उन्होंने जो कुछ भी साहित्य को दिया उसे हिन्दी ने छायावादी युग की श्रेष्ठ उपलब्धि माना—यह उनके व्यक्तित्व के प्रति दुर्निवार आकर्पण का प्रमाण है । (पृ० ६२)

(६) गीतिका के कुछ गीत हिन्दी की अमूल्य संपत्ति है; भावमूल्य तथा ज्योतिस्पर्श की दृष्टि से अधिकाश गीत अपूर्व है । (पृ० ६२-६३)

(७) गीतों की दृष्टि से प्रतीक और विवयोजना सुवोध नही है, पर हम इन्हे महार्घ चैतन्य मणियो की तरह अपने काव्य रत्नागार मे सचित करना चाहेगे, ये सूर्य के प्रकाश के रंग-विरंगे टुकड़े है। (पृ० ६४)

(८) राम की शक्तिपूजा—अपनी अवाध शिल्पशक्ति के अदम्य वेग तथा पौरुप-सौन्दर्य-क्षमता के कारण वह हिन्दी मे अभूतपूर्व लंवी कविता है । (पृ० ६५)

(९) वे अत्यत प्रचण्ड, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त निर्मम, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त निर्भीक तथा साहसी और अत्यन्त आत्मभीरु तथा अत्यन्त विनम्र, उग्र तथा सौम्य—अपने ही से परिचालित एक निसर्ग जगत् थे—जिसे अग्रेज़ी मे फेनोमिना कहते हैं । (पृ० ६८)

(१०) निराला को हम दु.ख-दैन्यग्रस्त, पराजित व्यक्ति के रूप में नही, युगजीवन के अजेय सेनानी, शर-शय्या पर लेटे युग-भीष्म के रूप मे सम्मान करते है । (पृ० ६९)

(११) निरालाजी के मैं मित्र तथा सहकर्मी के नाते घनिष्ठ सम्पर्क मे आया हूँ । अपने युग के कवि की दृष्टि से मै उनके कृतित्व को वहुत अशों मे उस युग का अत्यन्त श्रेष्ठ कृतित्व मानता हूँ । (पृ० ७०)

(१२) भारतीय सास्कृतिक परंपरा मे कालिदास-से महाकवि हुए है, पर भारतीय दार्शनिक परम्परा मे ऐसा सौन्दर्य-मण्डित, ज्योति-संवृत हिन्दी कवि अभी तक एकमात्र निराला ही मिले है—यह उनके कृतित्व की पर्याप्त विजय है । (उप०)

किसी कवि, आलोचक, निराला के शिष्य या प्रशंसक ने ऐसे उदात्त स्वरों में

उनका जयघोष नहीं किया जैसे यहाँ पन्त ने। इसका कारण यह है कि किसी की आँखों ने निराला की प्रतिभा के प्रकाशपुंज को इतने निकट से नहीं देखा जितने पन्त ने। उन्होंने अपनी घनिष्ठता का उल्लेख उचित ही किया है। उसके स्मरण से उनके गद्य में अपूर्व ओज आ गया है, 'लोकायतन' के पद्य में जिसका एकदम अभाव है। जब उनका मन अवसादग्रस्त अहंकारभूमि से ऊपर उठता है तब वह निराला के योग्य मित्र की तरह अपनी सजग स्थिर दृष्टि और भावाविष्ट वाणी का चमत्कार ऐसे ही दिखाता है। निराला मे पत के लिए सब-कुछ आत्यन्तिक है, विनम्रता से लेकर उद्दण्डता तक। जो बात बार-बार उनके मन में उभरकर आती है, वह है निराला की शक्ति, उनका दुर्धर्ष अपराजेय व्यक्तित्व। पन्त ने सही देखा कि निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व उनकी ऊर्जा से दीप्त है। यह ऊर्जा अपने प्रकाश से आकर्षित करती है तो देखनेवाले की आँखों में चकाचौंध भी पैदा कर देती है। पन्त का मन निराला के विराट् कृतित्व और व्यक्तित्व पर मुग्ध है तो उससे आतंकित भी है। इसलिए आश्चर्य नही कि पंत को किसी समय लगा कि निराला ने उन्हे अन्धकार मे ढकेल दिया है, उनकी सारी शक्ति उनसे छीन ली है।

पन्त ने 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' मे संकेत किया है कि निराला को—अपने श्रेष्ठ रचनाकाल मे—एक नई आधारभूमि मिल गई थी। यह आधारभूमि उन्हे पंत से मिली, इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने यहाँ नही किया। उन्होंने लिखा कि अनेक कारणों से निराला के मन मे ज्योति-अन्धकार का ऐसा दुर्धर्ष उद्वेलन रहता था कि "अत्यन्त सशक्त सृजन-क्षमता होने पर भी उनके पास अपने भीतर अन्त.स्थिर होने को कोई ध्यान-बिन्दु या प्रत्यय-प्रबोध की भूमि स्थिर नही रह पाती थी।···निरालाजी अन्त.केन्द्रित होकर केवल सन् '३६ से '३८ तक ही रह सके।"

यदि निराला को पंत की चेतना का आधार मिला होता तो कुछ समय के लिए उन्हें 'भाव-उर्वर शान्ति' मिल जाती; उनका 'आवेगशील स्वभाव' शान्त हो जाता। पर निराला का मन 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' के रचनाकाल में काफी क्षुब्ध था। गाँधीजी से उनकी बातचीत, प्रेमचन्द की बीमारी के समय उन पर लेख, सरोज की मृत्यु, 'हो इसी कर्म पर वज्रपात' वाला भाव, उनके तत्कालीन पत्रों में उनकी मानसिक व्यथा का उल्लेख, बिजली के 'शॉक' लगने की बातें—ये सब उनके मन मे ज्योति-अन्धकार के दुर्धर्ष उद्वेलन का प्रमाण है। निराला किसी ध्यानबिंदु पर स्थित होकर शान्तिलाभ करने के बदले अपनी कविताओ मे उग्र उद्वेलन को ही चित्रित कर रहे थे। 'तुलसीदास' के चरित-नायक अपने आदर्श, कल्पित रूप मे वह स्वयं हैं। 'सरोज-स्मृति' मे हिंदी-सेवा से क्षुब्ध, असन्तुष्ट वह अपने यथार्थ रूप मे विद्यमान है 'राम की शक्तिपूजा' मे अपने को धिक्कारते हुए पराजित राम वह स्वयं है, शक्तिपूजा द्वारा रावण को परास्त करने की आशा भी उनके हृदय में है। 'गीतिका' में 'लाञ्छना इंधन हृदय तल जले अनल' आदि में मानसिक क्षोभ और उसे नियंत्रित रखने का वही प्रयास दिखाई देता है। तब वह ध्यानबिंदु कौन-सा था जिस पर स्थिर होने से उनका मानसिक उद्वेलन शान्त हो गया?

निराला पन्त से किसी हद तक प्रभावित रहे है, '२६ से '३२ तक। 'पल्लव' की लोकप्रियता से उनका आसन हिल गया था। 'परिमल' छपने के वाद उन्होंने संकेत किया था, "एक वार, इच्छा होती है, आपके स्वरो मे भी अपना सितार वाँधूँ। पर आपके फिर उतरने पर ही ऐसा करूँगा।" इस समय वह अपनी लिखावट मे भी जव-तव पंत का अनुकरण करते थे, टेढे, झुके हुए अक्षरों के वदले सीधे, खड़े, गोल अक्षर वनाते थे। पर सन् '२६ से पहले और वाद को जव भी उनका मन विपादग्रस्त होता था, वह पन्त और कालिदास से उल्टी दिशा मे चलते थे, माधुर्य के वदले परुपता की साधना करते थे। वह स्थिति सरोज की मृत्यु के वाद सन् '३५ से '३७ तक विशेष रूप से रही। पन्त जिस काल के लिए समझते है कि निराला को उनकी चेतना का आधार मिला था, उसी काल मे निराला उनकी काव्यभूमि से सर्वाधिक दूर थे।

पन्त ने ठीक लिखा है कि "निराला का कृतित्व उनके व्यक्तित्व का दर्पण-सा रहा है।" क्या यह व्यक्तित्व पंत के व्यक्तित्व-जैसा था ? दीर्घ, सशक्त, उन्मुक्त व्यक्तित्व, प्रखर धूमकेतु, अदम्य शक्ति-दुर्ग—इन शब्दों मे क्या पन्त के व्यक्तित्व का वर्णन सम्भव है ? यदि निराला का कृतित्व उनके व्यक्तित्व का दर्पण-सा है, और पन्त से उनका व्यक्तित्व—अत्यन्त प्रचण्ड, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त निर्मम, अत्यन्त कोमल होने से—भिन्न है, तो यह सिद्ध हुआ कि 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में निराला की काव्यचेतना पन्त की काव्यचेतना से वहुत काफी भिन्न है,। सन् '४७ के वाद पंत की लोकप्रियता मे जो ह्रास हुआ, उसके वस्तुगत कारण खोजने के वदले उन्होंने इस स्थिति के लिए सन् '४७ से पहले के निराला को दोपी ठहराया।

'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' मे पन्त ने '३६ से '३८ तक निराला का श्रेष्ठ रचना-काल मानकर यह कल्पना की है कि 'गीतिका' के सुन्दर गीत उसी समय लिखे गए थे। वास्तव मे 'गीतिका' के अधिकांश गीत सन् '२९ से '३६ के वीच लिखे गए थे। सन् '३६ मे तो पुस्तक प्रकाशित होकर वाजार में आ गई थी। निराला की 'ज्योति द्रवित दृष्टि का सौन्दर्य' पंत ने जिन गीतों मे देखा है, उनमे 'दृगों की कलियाँ नवल खुली' और 'स्पर्श से लाज लगी' फरवरी और जुलाई सन् '३० की 'सुधा' के अंकों में छपे थे। 'मेघ से घन केश' जून '३२ की 'सुधा' में, 'पावन करो नयन' जनवरी '३४ की 'सुधा' में प्रकाशित हुए थे। 'वहती निराधार' और 'जागा दिशाज्ञान' उन्होंने सरोज की मृत्यु के वाद सितम्वर '३५ में लिखे थे।

'तुलसीदास' कविता भी सन् '३५ मे प्रकाशित हुई थी, सन् '३६-३८ के वीच नही।

पन्त ने विखराव की वात की है। सन् '३८ के वाद आर्थिक परिस्थितियो की कठिनाइयो, स्वजनो के वियोग और मुख्यतः अपने "अत्यन्त स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी स्वभाव के कारण, उनके मन मे विखराव के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे।"

सन् '३८ मे पंत ने 'रूपाभ' निकाला था। इस समय उन्होंने 'पल्लव'-'गुञ्जन' की भाव-भूमि छोड़कर कविता के लिए जो नयी विचारभूमि चुनी थी, उसे देखकर वहुतो को लगा था कि पंत के मन मे विखराव आ गया है। निराला के काव्य मे सन् '३७

के बाद जो परिवर्तन आया, उसके मूल कारण वही हैं जिनसे पंत के काव्य में परिवर्तन आया था। स्वामी चिन्मयानन्द ने पंत को निराला के चंगुल से छुड़ा लिया, इसलिए पंत-चेतना का आधार खोने से निराला फिर बिखराव की दशा में आ गये, वस्तुस्थिति से इस कल्पना का कोई सम्बन्ध नहीं है।

पंत ने प्रगतिवादियों से निराला के सम्बन्ध के बारे में लिखा है, "चूंकि प्रगतिवाद के चरण उसी के आलोचकों के संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण डगमगाने लगे थे, उन्होंने गिरने से बचने के लिए उस समय निराला की बाँह पकड़ी जब वह प्रायः संघर्ष से टूटकर अपनी असंतुलित मन.स्थिति में युग के आन्दोलनों के प्रति विरक्त तथा तटस्थ हो चुके थे।"

पंत अवश्य स्वीकार करेंगे कि प्रगतिवादियों में सबसे संकीर्ण दृष्टिकोण मेरा रहा है। प्रगतिवादियों में—निराला के समर्थन में—सबसे ज्यादा लिखा भी मैंने है। सन् '३४ में उन पर मेरा पहला लेख छपा था; तब मैं प्रगतिवादी नहीं था। सन् '३८ में, जब 'रूपाभ' में, निराला पर मेरा लेख छपा, तब पंत मुझसे अधिक प्रगतिवादी थे। मैं उस समय प्रगतिवाद के समर्थन में लेख लिखने को तैयार न था। सन् '४६ में जब निराला पर मैंने पुस्तक लिखी, तब सन् '४८ का संकीर्णतावादी दौर शुरू न हुआ था। तब वे प्रगतिवादी आलोचक कौन हैं जिनके पैर संकीर्णतावाद के कारण डगमगाने लगे थे और जिन्होंने गिरने से बचने के लिए निराला की बाँह पकड़ी थी? अवश्य ही वस्तुस्थिति का वर्णन न करके पंत ने प्रगतिवाद-निराला के बारे में कहानी गढी है।

उन्होंने प्रकाशचन्द्र गुप्त और शिवदानसिंह चौहान के साथ अन्याय भी किया है। इन लोगों ने अनेक लेखों में पंत को प्रगतिवादी सिद्ध किया, उनकी भावशून्य विचार-भूमि को श्रेष्ठ प्रगतिवादी काव्य कहकर सराहा। ये लोग तो संकीर्णतावादी थे नहीं जो पैर डगमगाते। तब प्रगतिवाद के समर्थन के लिए इन्होंने पंत की बाँह क्यों पकड़ी थी?

इन सब बातों पर विचार करने से पंत के रचे हुए भ्रम दूर हो जाते है। ये भ्रम बहुत-कुछ उन्होंने वैसे ही रचे हैं जैसे निराला ने अपने बारे मे रचे थे। पंत का मन एक जगह अपनी अन्तःप्रेरणाओं से विवश हो जाता है और विवेक कुण्ठित हो जाता है। उनके संत्रस्त मन ने निराला को लेकर दुःस्वप्न रचे किन्तु वह मन निराला की प्रतिभा का प्रशंसक भी है। प्रशंसक होने के अतिरिक्त वह निराला को प्यार करता रहा है, अब भी प्यार से रीता नहीं है। पंत और निराला : छायावादी युग के दो प्रमुख कवि, व्यक्तित्व में समानता और बहुत बड़ा वैषम्य; दोनो में परस्पर आकर्षण और दुराव; दोनों के दु.स्वप्नों की प्रक्रिया काफी मिलती-जुलती-सी; एक की जानकारी के लिए दूसरे का अध्ययन आवश्यक।

२०

उपसंहार

निराला का जीवन-चरित लिखनेवाले के सामने अनेक कठिनाइयाँ है। सबसे बडी कठिनाई है—सही तथ्यो के पता लगाने की। निराला ने अपने बारे मे बहुत-कुछ लिखा है और दूसरो को बताया है। वह सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है पर सदा सत्य नही है। जो दूसरो ने लिखा है, वह भी काफी महत्त्वपूर्ण है पर उसमे सभी तथ्य प्रकाशित नही किये गये, कुछ बातें गढकर जोड़ी भी गई है।

सन् '४३ मे मैने शिवपूजन सहाय से निराला के संस्मरण लिखने की प्रार्थना की थी। उन्होने उत्तर दिया—"श्री निरालाजी के विषय मे मैं यदि लिखूँगा तो हिन्दी-संसार उसे पसन्द न करेगा। लोकरुचि के लिए वह रोचक न होगा, सह्य भी न होगा। मेरी धारणा उनके विषय मे अलौकिक ही है। दुर्भाग्य इतना ही मानता हूँ कि वे हिन्दी-जगत् मे पैदा हो गए। कही और होते तो कुछ और ही हो गये होते।···'उनके विरुद्ध प्रचार' और उनके 'जीवन-संघर्ष' ग्रादि पर आप जो उचित समझें, लिखे; पर उसमे मेरी सहायता न लें तो अच्छा होगा। कारण, कितने ही कठोरतम और कटुतम सत्य प्रकट करने पड़ेगे जिनसे बहुतो का आत्महनन होगा और कुछ लोगों की आत्मा मुझे शाप देगी तथा कई जीवित सज्जन मानहानि के लिए मुझे उजाड डालेंगे। मैं दुनिया मे बसने न पाऊँगा। 'कलकत्ता वाले साहित्यिक और असाहित्यिक जीवन' के विषय मे लिखते समय ज्वलंत सत्य को छिपाना कष्टकर प्रतीत होगा; पर उसे व्यक्त करना भी मौत बुलाना होगा।"[१]

मैंने उन्हे लिखा, "आपसे सविनय निवेदन है कि आप उनके बारे मे अपने सस्मरण अवश्य लिख भेजें—बिना किसी बात को छिपाये हुए। जो बाते अभी प्रकाशन योग्य न होगी, वे आगे प्रकाशित होगी। उनका लेखबद्ध हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी के लिए निरालाजी का जो महत्त्व है, उसे ध्यान में रखते हुए उनके संबन्ध की छोटी-छोटी बातों का भी महत्त्व बढ़ जाता है। फिर यदि वे कटु और कठोर सत्य है, तो उनका महत्त्व कम न होगा; उन्हे आप कभी न छिपाएँ। जहाँ तक उन बातों से दूसरो का सम्बन्ध है, मैं आपकी इच्छानुसार उन्हे प्रकाशित करूँगा।"[२]

मैंने यह प्रस्ताव भी किया कि मैं छपरा आ जाऊँ—उस समय वह राजेन्द्र कालेज, छपरा मे अध्यापक थे—और वे जो बताएँ, उसे लिख लूँ। पर उन्होंने लिखा—"आप इधर आने का कष्ट क्यों करेंगे। मैं ही सोच रहा हूँ। पूज्य निरालाजी से भी भेंट हो जायगी।" फिर संस्मरणों के बाबत लिखा, "बहुत-सी स्मृतियाँ धुंधली पड़ गईं। कितने ही नाम भूल गये। घटनाओं का क्रम भी अस्तव्यस्त होकर दिमाग में पडा है। सबकी कड़ियाँ जोडने का उपक्रम कर रहा हूँ। मैं आपकी सेवा में लिख-लिखकर भेजता जाऊँगा। जब जो याद पड जाय, लिखता जाऊँगा। आपकी पुस्तक के स्वरूप का परिचय मिल गया। आपकी सहृदयता पर पूर्ण विश्वास है। भला-बुरा जो कुछ सूझ पड़ेगा, आपको अर्पित करता जाऊँगा। नीरक्षीर-विवेक आपसे अधिक किस साहित्य-सेवी में है जो मैं अविश्वास करूँ। आप छिपाने योग्य बात काट देंगे, प्रकाशित करने योग्य रहने देंगे। फालतू बात भरसक लिखूँगा भी नही। कठिनता यहीं है कि कुछ स्वर्गीय मित्रों की आत्मा को भी कष्ट पहुँचाना पडेगा, तभी कटु सत्य प्रकट हो सकेगा। जीवितों से अधिक उन्हीं की चिन्ता है। अच्छा, अब जो भी हो।"[3]

सन् '४३ बीत गया। मैं समय-समय पर उन्हें याद दिलाता रहा। सन् '४४ के आरम्भ में उन्होंने सूचित किया कि संस्मरण लिखना शुरू कर दिया था, पर काम अधूरा पड़ा है। "मैंने पूज्य निरालाजी के संस्मरण लिखना शुरू कर दिया था; पर अभी तक वह पूरा नहीं हुआ, अधूरा ही पड़ा है। कुछ तो अवकाश के अभाव से ऐसा हुआ और कुछ कठिनाई यह पड़ी कि कितने ही नाम और स्थान ध्यान में नही आते, जिनसे जहाँ की तहाँ गाड़ी रुकी पड़ी है। किन्तु अब जैसा कुछ बन पड़ेगा, आपको लिखकर भेज ही देने का निश्चय किया है।"[4]

जयपुर मे साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसमें उनसे भेंट हुई। मैंने छपरा आकर उनके संस्मरण लिख लेने और निराला के पत्रों की नकल करने का प्रस्ताव किया। उन्होंने बड़े स्नेह से कहा कि इतने-से काम के लिए इतनी दूर छपरा आने का कष्ट क्यो करेंगे। पत्रों की प्रतिलिपि करा देंगे, संस्मरण भी लिख डालेंगे। मैं उन्हें याद दिलाता रहा। २५ फरवरी '४५ को उन्होंने लिखा कि कुछ घरेलू झंझट है और वह कालेज से एक साल की छुट्टी ले रहे हैं; "घर जाकर आपको संस्मरण भी भेज दूँगा, यहाँ तो अधूरे अंग को पूरा न कर सका और न कर ही सकूँगा। मैं अपनी घरेलू स्थिति से इतना विवश हो गया हूँ कि मन की बात मन ही में रह जाती है। संस्मरण के लिए जयपुर में वादा कर आया था, पर वह पूरा न हो सका, क्षमा कीजिएगा। मेरे संस्मरणों में व्यक्तिगत बातें और मतवाला-मंडल मे निरालाजी की प्रतिष्ठा और कलकत्ता तथा काशी के प्रवास की कुछ कठिनाइयो के वर्णन ही मिलेंगे, समालोचना नहीं; घर ही से उसे भेज सकूँगा।"

उनके सामने घरेलू झंझट थे, बाद मे वह बहुत अस्वस्थ हो गये। उनको व्यक्तियों और स्थानों के नाम याद करने में कठिनाई भी हुई होगी। पर मुख्य बात यह थी कि वह कटु और कठोर सत्य प्रकट करने में हिचक रहे थे। दुनिया में उन्होने बड़ी ठोकरें खाई थी, दर-दर भटके थे, मन के अलावा तन से भी बहुत कष्ट सहा था। अब उन्होंने

अपनी तिक्तता पर सौजन्य की स्वच्छ चादर डाल दी थी। सबके भले बनकर अजातशत्रु की तरह रहना चाहते थे। इसलिए वह निराला से संबन्धित व्यक्तियो के बारे मे कटु सत्य प्रकट न करना चाहते थे।

सन् '४५ के बाद—अगले दस-बारह साल में—जब भी उनके दर्शन हुए और उनसे पत्रव्यवहार हुआ, मै निराला-सम्बन्धी संस्मरण लिखने के लिए उनसे प्रार्थना करता रहा। सन् '५३ मे उन्होने बरुआ-संपादित निराला-अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए संस्मरणात्मक लेख लिखा; दो वर्ष बाद—गणतन्त्र दिवस के अवसर पर—एक और लेख लिखा। पर इन लेखो मे कटु सत्य की छाया तक न थी। आगरे से 'समालोचक' पत्र निकला। इसके 'यथार्थवाद' विशेषांक को उन्होने बहुत पसन्द किया। मैंने प्रस्ताव किया कि एक 'छायावाद' विशेषांक निकाला जाय और उसमें वह अपने संस्मरण लिखें। उन्होंने फिर वादा किया, "मैं निरालाजी पर 'मतवाला' के आरम्भिक युग के संस्मरण मात्र लिख दूंगा, मै उन पर आलोचनात्मक कुछ नही लिख सकता; क्योंकि मैं उनका श्रद्धालु पुजारी हूँ। वह मेरा लेख आपकी पसन्द का और 'समालोचक' की प्रतिष्ठा के योग्य नही होगा।"

यह पत्र उन्होने २६ मार्च '५६ को लिखा था। इस तरह सोलह-सत्रह साल तक मै निरन्तर प्रयत्न करता रहा कि शिवपूजन सहाय 'मतवाला'-काल के निराला सम्बन्धी सही तथ्य लिख डालें पर वे बराबर टालते रहे। सन् '६१ में निराला के देहान्त के बाद उन्होने अनेक संस्मरणात्मक लेख लिखे; इनमे बहुत-सी बातें दोहराई गईं। जो बातें वे छिपाना चाहते थे, उन पर पर्दा डाले रहे। सन् '६२ मे कलकत्ते से लौटते हुए मैं पटना रुक गया। उस समय उन्होने बड़े संकोच से कुछ बातें बताईं जिनका उपयोग मै इस पुस्तक मे यथास्थान कर चुका हूँ।

सबसे अधिक सहायता उन्होने यह की कि अपना पत्र-संग्रह देखने की अनुमति दी। ईश्वरीप्रसाद शर्मा, उग्र, नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि के पत्रो से मुझे 'मतवाला'-मण्डल के भीतरी तनाव और अन्तर्विरोधो की जानकारी हुई।

'मतवाला'-मण्डल के लोगो मे विचित्र भाईचारा था। वे आपस में लडते थे लेकिन बाहरवालो के सामने एक-दूसरे के गले मे बाँहे डालकर मुस्कराते थे। अपनी कमजोरियों का बखान भले कर दें पर जिनके साथ काम किया था, उनकी या तो तारीफ़ करते या चुप रहते। उग्र मे इस तरह की निषेध भावना का अभाव होना चाहिए था। पर 'अपनी खबर' मे उन्होने शिवपूजन सहाय-उग्र की 'डायलौग' इस प्रकार दी है:

शिवपूजन सहाय—उग्र, अब तुम अपने संस्मरण लिख डालो।

उग्र—लिख तो डालूं, लेकिन जीवित महाशयों की बिरादरी—अन्ध-भक्त बिरादरी—का बडा भय है। बहुतो के बारे मे सत्य प्रकट हो जाए तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप-लुप करने लगे। कुछ तो मरने-मारने पर भी आमदा हो सकते हैं।

यह बिल्कुल वही तर्क है—उग्र की भाषा मे—जो शिवपूजन सहाय ने अपने पहले पत्र मे मुझे लिखा था। उग्र निराला के बारे में बहुत-सी बातें कहते थे पर उन्हे लिखते न थे। सन् '४८ मे उन्होने जब निराला पर कुछ लिखा तब वह निराला के समर्थन

मे। 'अपनी खबर' में निराला और कलकत्ते के प्रकाशक से झगड़े का उल्लेख मात्र किया। कलकत्ते की वाकी वातें गोल कर गये।

निराला के वारे में सत्य कहना आसान था, महादेवप्रसाद सेठ के वारे मे सत्य कहना वहुत कठिन था। उग्र, निराला, नवजादिकलाल, शिवपूजन सहाय—सभी का साहित्यिक उत्कर्ष 'मतवाला' से सम्बद्ध था। अपना अभ्युदय-काल सभी को अच्छा लगता है। 'मतवाला'-काल के चित्र सुनहले-सुहावने रंगों मे रँगे हुए दिखायी देते थे। 'मतवाला'-मंडल के सूत्रधार थे, महादेवप्रसाद सेठ। उनसे अपने सम्वन्धो के चित्र सही-सही पेश किये जाएँ तो उस युग के इतिहास का मोहक आकर्षण खत्म हो जाय या काफी कम हो जाय। महादेवप्रसाद सेठ देशभक्त, ओजस्वी पत्रकार और साहित्य-कारो के प्रेमी थे। उन्होने 'मतवाला' निकालकर हिन्दी की वड़ी सेवा की। वे अवश्य गुणियों का आदर करना जानते थे; तभी शिवपूजन सहाय, निराला, नवजादिकलाल, उग्र जैसे लोगों को वटोर सके थे। पर महादेवप्रसाद सेठ व्यापारी भी थे। उन्होंने 'मतवाला' निकालने से पहले 'अनामिका' छापी; उसके वाद उन्होंने निराला की एक भी पुस्तक नही छापी, उग्र की किताबें खूब बिकती थी, उन्हे वे वरावर छापते रहे। उनकी व्यापारी वृत्ति के कारण 'मतवाला'-मंडल से—साल पूरा किये विना—शिवपूजन सहाय सवसे पहले अलग हुए। वाद को मुशी नवजादिकलाल से उनका झगडा हुआ। वह दूसरों से दोस्ती और भाईचारे में काम लेते थे। खर्च को रुपये देते थे लेकिन अनियमित, वाज़ार की दर से कम, जिससे सहयोगियो मे असन्तोष था—सवसे ज्यादा शिवपूजन सहाय में। इसमें दोष उन्ही का नही था। उन्होने शिवपूजन सहाय से जव-जव नियमित वेतन या पारिश्रमिक की शर्तो के वारे मे पूछा, वह टालते रहे। ३ दिसम्वर '२९ को महादेवप्रसाद सेठ ने उन्हें लिखा था, "शर्तें यदि आप एक वार वतला देते तो वड़ी सहूलियत होती। आखिर हर्ज ही क्या है ?"

सन् '२३ से '२९ तक 'मतवाला' से निराला और शिवपूजन सहाय का सम्वन्ध वार-वार टूटा और जुड़ा। इसका मूल कारण महादेवप्रसाद सेठ की व्यापारी वृत्ति थी। इस व्यापार मे नवजादिकलाल श्रीवास्तव भी शामिल थे; इसलिए 'मतवाला' से निराला-शिवपूजन-सम्वन्धों की अस्थिरता के लिए अंशत' वह भी जिम्मेदार थे। वफादार मुनीम की तरह वह मालिक का सारा काम ईमानदारी से करने मे आसा-मियो को कसते थे। शिवपूजन सहाय जव सन् '२४ मे कलकत्ते से चले तो महादेव-प्रसाद सेठ के अलावा उन्होने मुशी नवजादिकलाल के व्यवहार की शिकायत भी की।

महादेवप्रसाद और नवजादिकलाल—दोनों का ही काव्य-ज्ञान वहुत सीमित था। वह निराला के व्यक्तित्व और प्रदर्शन-कौशल से अधिक प्रभावित थे, अपनी ओर से उनके साहित्य का मूल्यांकन कम कर पाये थे। 'भावो की भिड़न्त' के वाद उन्होंने स्थिति को भरसक सँभाला—'मतवाला' की इज्जत का सवाल था—पर उस लेख के वाद निराला के प्रति दोनो का व्यवहार वदल गया। फल यह हुआ कि निराला ने 'मतवाला' मे लिखना वन्द कर दिया। वाद में टूटे सम्वन्ध फिर जुडे पर दरार वनी रही। अन्त में मुंशी नवजादिकलाल को भी 'मतवाला' से अलग होना पड़ा। उनके

कहानी गढ़ी उन्होंने महादेवप्रसाद सेठ के वारे मे कि उन्होंने निराला के लिए ही 'मतवाला' निकाला, उन्हें राजकुमार की तरह रखा। जितना ही वह हिन्दी में अपने विरोध मे—सन् '२९ के वाद—परेशान हुए, उतना ही उन्हें महादेवप्रसाद सेठ राजकुमारो के संरक्षक—महिपादल राजा के भाई—जैसे नजर आये। नागार्जुन ने एकदम जीनियस का काम किया है जो महिपादल राजा और महादेवप्रसाद सेठ का एक साथ उल्लेख किया है। "क्या अव भी किसी सूर्यकान्त को महिपादल का राजघराना मिलेगा? क्या अव भी किसी युवक को सेठ महादेवप्रसाद मिलेंगे?"

दोनो में सामान्य सूत्र है—निराला का राजकुमारवाला भाव। उन्होंने दूसरों को जो सुझाया, उसे और रँग-चुनकर उन मित्रो ने पेश किया। महिपादल का राजघराना उन्हे न मिला होता—महल की चारदीवारी से वाहर पोखर के किनारे कच्चे घर में उन्हे रहना न पडा होता—तो उनका मन अधिक स्वस्थ रहता, इसमें संदेह नहीं। उन्होने और उनसे अधिक दूसरों ने महादेवप्रसाद और 'मतवाला'-मंडल के वारे मे मोहक स्वप्नजाल न वुना होता तो निराला के विकट संघर्ष का ज्यादा सही चित्र लोगों के सामने आता। सन् '२३ से '२९ तक, जो 'मतवाला' का प्रकाशन-काल है, निराला के मन मे अनेक ग्रंथियो का निर्माण हुआ जिनसे वाद को अर्ध-विक्षेप की स्थिति उत्पन्न हुई।

निराला के मन मे स्पर्धा की भावना थी ही। वह महादेवप्रसाद सेठ पर अपना एकाधिकार मानते थे। उन्हें अपदस्थ किया उग्र ने। निराला के मर्म पर आघात करनेवाली यह साधारण वात न थी। उग्र निराला की कमजोरी खूव समझते थे और उन्हे छेडने-सताने मे उन्हे मजा आता था। "महादेव वावू 'निरालाजी' पर ऐसे मुग्ध थे कि उन्हे गुलाव के फूल की तरह हृदय के निकट वटनहोल में सजाकर रखते थे।···महादेवप्रसाद सेठ के सहृदय वटनहोल में 'निराला' मुझे ऐसे आकर्पक लगे कि देखते-ही-देखते उसमे मैं-ही-मैं दिखाई पड़ने लगा।"[८] उग्र के इन दो वाक्यो में निराला के जीवन की ट्रैजेडी छिपी हुई है।

लेकिन उग्र वहुत अच्छी तरह जानते थे कि 'मतवाला' को हिन्दी का सवसे लोकप्रिय पत्र वनाने का श्रेय निराला को था। निराला और उनके साथ शिवपूजन सहाय तथा मुन्शी नवजादिकलाल ने पहले साल उस पत्र को रचने-संवारने मे अपनी ओर से कुछ उठा न रखा। उग्र ने सन् '२८ के जिस पत्र मे शिवपूजन सहाय को मुन्शी-सेठ विवाद की सूचना दी थी, उसी मे एक सुन्दर वाक्य लिखा था, "अव मंडल में मुन्शीजी वह मुन्शीजी नही रह गये जो तुम्हारे जमाने में या निराला-युग में थे।" निराला-युग! पर महादेवप्रसाद सेठ के वटनहोल में उग्र!

सन् '४८ मे—महादेवप्रसाद के निधन के अनेक वर्ष वाद—जव उग्र ने फिर 'मतवाला' निकालने का विचार किया, तव शिवपूजन सहाय को लिखा, "'मतवाला' असिल मे महादेव वावू, मुन्शी नवजादिकलाल, निरालाजी, शिवपूजन और अन्त में उग्र का है।"[९] इस क्रम मे उग्र ने अपना नाम सवके अन्त में वहुत सही रखा है। औरो के साथ उसे चमकाने का श्रेय उग्र को भी है, उसे डुवाने का मुख्य दायित्व

महादेवप्रसाद सेठ और उग्र का है।

महादेवप्रसाद सेठ की भूमिका को अतिरंजित करके दिखाने से 'मतवाला' का वह इतिहास समझ में नहीं आता जिसे उग्र ने 'निराला-युग' की संज्ञा दी थी।

शिवपूजन सहाय, उग्र, नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि निराला के सहयोगियों और मित्रों ने उनके बारे में महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। सावधानी के साथ उसका अध्ययन करने से निराला का जीवन-चरित लिखनेवाले को उपयोगी सहायता मिल सकती है। निराला के सम्बन्ध में इलाचन्द्र जोशी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, परमानन्द शर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, रामकृष्ण त्रिपाठी, कमलाशंकरसिंह, उनकी पत्नी कलावती, गंगाप्रसाद पाण्डेय, महादेवी वर्मा, जानकीवल्लभ शास्त्री, गुलाबराय, शिवचन्द्र नागर, अमृतलाल नागर, शिवगोपाल मिश्र, रामप्रताप त्रिपाठी, पद्मसिंह शर्मा कमलेश, रामेश्वर शुक्ल अंचल, सुमित्राकुमारी सिन्हा, ब्रजकिशोर मिश्र, गंगाप्रसाद मिश्र राहुल सांकृत्यायन आदि ने अपनी पुस्तकों और लेखों में काफी विश्वसनीय और उपयोगी सामग्री दी है। इस सामग्री को भी सर्वत्र प्रामाणिक न मानकर उसकी उचित परीक्षा के बाद ही उसका उपयोग करना चाहिए।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त विराट् परिमाण में निराला-संबंधी संस्मरण-साहित्य है जो काफी अविश्वसनीय है। हमारा सांस्कृतिक स्तर, हमारे जातीय चरित्र की विशेषताएँ जानने के लिए इस सामग्री का अध्ययन भी उपयोगी है। हम इतिहास के प्रति उदासीन, इतिहास के बदले पौराणिक गाथाओं, किंवदन्तियों और दंतकथाओं में विश्वास करने के आदी हैं। यही दृष्टिकोण किसी व्यक्ति के जीवनचरित के प्रति रहता है। तथ्य-संग्रह के बदले मनगढन्त में विश्वास करने की प्रवृत्ति अधिक बलवती होती है।

निराला-संबंधी संस्मरण लिखने के लिए भिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ लेखकों के मन में उठती रही हैं। बहुतों ने विशुद्ध-साहित्य-सेवा के भाव से संस्मरण लिखे हे जिससे निराला का वास्तविक रूप जनता के सामने आ जाय। कुछ लोगो ने इसलिए लिखे हैं कि निराला के संपर्क में आना गौरव की बात थी; संस्मरण-लेखन आत्म-विज्ञापन का साधन था। कुछ ने श्रद्धा और भक्ति से प्रेरित होकर लिखे। प्रेरणा जो भी हो, बहुतों के साथ उनकी स्मृति ने छल किया है। उनके न चाहते हुए बात बदलकर कुछ-से-कुछ हो गयी है। कुछ ने जान-बूझकर अपनी मनगढन्त यों पेश की है मानो आँखों-देखी, कानोंसुनी कह रहे हों। इस तरह की भ्रान्तियो के कुछ नमूने यहाँ दे रहा हूँ।

मेरे आदरणीय मित्र कल्याणमल लोढा, कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हिन्दी के प्राध्यापक, मेरे और शिवनारायण शर्मा के साथ महिपादल गये थे। उनसे बातचीत के आधार पर प्रोफेसर निर्मल तलवार (अब श्रीमती निर्मल) ने 'जनभारती' के निराला-अंक (भाग २) में एक लेख प्रकाशित किया। इसमे कहा गया है कि निराला जब १९०८ में स्कूल की आठवीं कक्षा में भर्ती कराये गये, तब रजिस्टर मे उनका नाम सर्जुकुमार तिवारी लिखाया गया। उनकी अवस्था बारह वर्ष लिखाई गई थी। विद्यालय मे वे आठवीं कक्षा में सर्वप्रथम आये। "प्रचलित परम्परा के अनुसार निरालाजी का मूल नाम सर्जु या सरजू था, और इसी तरह से नामकरण उस समय

प्राय: गाँवों में किया जाता था। महिषादल के वर्तमान राजकुमार श्री देवप्रसाद गर्ग, उनके कामदार और निराला के गाँव की महिषादल में रहनेवाली एक वृद्धा से प्राप्त समाचारों के अनुसार उनके पिता उनको 'सरजुआ' कहते थे, और विद्यालय मे भर्ती करवाते समय सर्जु के साथ कुमार जोड दिया गया, जो स्वाभाविक ही था।"

निराला १६०८ मे नहीं १६०७ मे भर्ती किए गये थे। सम्भवत. आठवी कक्षा के संसर्ग से लोढाजी की स्मृति मे सात का आठ हो गया।

भर्ती कराने के समय उनकी आयु बारह साल नहीं, दस साल आठ महीने लिखाई गई थी। लोढाजी ने हिसाब लगाया, १८९६ मे जन्म; १६०८ मे भर्ती हुए। भर्ती होते समय उम्र बारह साल!

रजिस्टर मे उनका नाम बहुत स्पष्ट अक्षरो मे Surya Kumar Tewari लिखा था। भाषाशास्त्र के मुख-सुख वाले नियम के अनुसार 'उ' और 'अ' मे स्थान-परिवर्तन हो गया; Surja हो गये Sarju! किसी मनोवैज्ञानिक कारण से सर्जु या सरजू नाम लोढाजी को इतना पसन्द आया कि उन्होने तीन गवाह भी पेश कर दिये। 'उनके पिता उन्हे सरजुआ कहते थे'—यह सूचना उन्होने प्रोफेसर निर्मल तलवार को दी। ऐसी कोई सूचना उन्हे वहाँ किसी व्यक्ति से न मिली थी।

'निराला के गाँव की महिषादल मे रहनेवाली एक वृद्धा' के उल्लेख से बात मे और भी वजन आ जाता है। यह वृद्धा निराला के गाँव की नही, सलेथू जिला उन्नाव की थी। वह मुझसे पहले बँगला मे बोली, फिर बैसवाडी मे मेरा उत्तर सुनकर बैसवाडी मे बोलने लगी। सम्भव है, बैसवाडी मे उनके बोलने से लोढ़ाजी उनकी बात समझ न पाये हों।

विद्यालय मे वे आठवी कक्षा मे सर्वप्रथम आये—यह बात लोढ़ाजी ने निराला के प्रति विशुद्ध भक्ति-भाव के कारण कही है।

श्रीनाथसिंह ने 'सरस्वती' मे कविता छापने के लिए माँगी। निराला ने कहा, "सोच लो, मेरी कविता छापोगे तो नौकरी से निकाल दिये जाओगे। साले सब हिन्दी-वाले मेरे खिलाफ़ है। मेरा तो कुछ बिगाड न सकेंगे पर तुमको चोंथ डालेंगे।" ठाकुर साहब ने कहा—"कोई बात नही। आप दीजिए।"

"और उन्होने देनी शुरू की। सरस्वती मे उनकी कविताएँ छपनी शुरू हुई। तुलसीदास नामक उनकी कविता सरस्वती मे ही पहले-पहल छपी। आज इस कविता के गुण गाते जो लोग अघाते नही हैं वे उन दिनो इस कविता को लेकर सरस्वती-संपादको को इस तरह दबाने दौडे थे जैसे इसको छापकर, उन बेचारो ने कोई भारी पाप कर डाला हो।"[१०]

'तुलसीदास' सन् '३५ मे 'सुधा' के कई अंको मे प्रकाशित हुई थी। अवश्य ही यह कविता श्रीनाथसिंह को बहुत अच्छी लगी होगी जिससे उनके अन्तर्मन ने कहा—इसे प्रकाशित करने का श्रेय तो तुम्ही को मिलना चाहिए।

लोग उस कविता को लेकर सरस्वती-संपादकों को दबाने दौडे—यह कथा गढ़ी मन की स्वत.स्फूर्त इच्छा की पुष्टि के लिए।

जिस वर्ष 'सुधा' मे निराला की 'तुलसीदास' कविता छपी, उसी वर्ष उन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ 'सुमित्रानन्दन पन्त' पर एक लम्बा लेख भेजा था। 'सरस्वती'-संपादकों ने वह लेख—उसे प्रकाशित करने में असमर्थता दिखाते हुए—वापस कर दिया। निराला ने क्षुब्ध होकर उसे फाड़कर नष्ट कर दिया।

अवोहर मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ। वहाँ निराला अपने परम मित्र वनारसीदास चतुर्वेदी से मिले। निराला ने प्रसन्नमन से कविताएँ सुनाईं। फरवरी १९६९ के 'आजकल' में प्रकाशित अपने एक लेख मे चतुर्वेदीजी ने लिखा, "महाकवि निरालाजी के श्रीमुख से गुरुदेव की एक कविता 'जुही की कली' सुनी और एक बँगला कविता भी उन्होंने सुनाई।"

चतुर्वेदीजी को 'जुही की कली' जरूर अच्छी लगी होगी। इतनी अच्छी कविता गुरुदेव के अलावा और कौन लिख सकता था! सम्भवत: उनके मन ने उस कविता का श्रेय रवीन्द्रनाथ को ही देना उचित समझा। फिर निराला ने बँगला की एक कविता सुनाई। संसर्ग-दोष से हिन्दी कविता भी उन्हें बँगला की लगी हो तो क्या आश्चर्य!

मुद्राराक्षस ने लिखा है कि निराला अमृतलाल नागर और रामविलास शर्मा को कुश्ती लड़ना सिखाते थे, वह भी अखाड़े में नहीं कमरे मे![११]

इस कहानी की जड़ यह है। सन् '३४ में मैं एक उपन्यास लिख रहा था—'चार दिन'। उसमें एक जगह दंगल का वर्णन आता है। मैंने निराला से दो-चार दाँवों के नाम वता देने को कहा। वे कमरे मे मुझे दाँव सिखाने लगे। मैंने उन्हें रोक दिया और कहा—इस तरह समझ में न आयेगा; आप कुश्ती का वर्णन लिखा दीजिए। निराला ने यही किया।

यह वात मुद्राराक्षस ने कही पढ़ी या सुनी होगी। उसे पल्लवित करके उन्होंने निराला को कुश्ती-शिक्षक वना दिया। अखाड़े से मुद्राराक्षस का कोई सम्पर्क नहीं रहा, इसलिए कुश्ती-कला सिखाने के लिए कमरा उन्हे ठीक लगा। नागरजी मेरे अभिन्न मित्र हैं। इसलिए मेरे साथ उन्हे भी निराला का शिष्य होना ही था!

कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा ने लिखा है, "स्वस्थ निद्रा मे उनके नेत्र तीन-चौथाई खुले रहते थे।"[१२]

सम्भव है, एक-चौथाई का तीन-चौथाई हो गया हो।

जहूरवख्श निराला से मिलने आये। जून '३५ की वात है। उन्होने देखा निराला के वाल कटि-प्रदेश पर झूलते है। उन्होने सर पर जवाकुसुम तेल की शीशी लुढका ली तो "तमाम तेल सिर पर वह निकला और केशों को तर करता हुआ कुरते तथा तहमद में जा समाया।" फिर निराला ने सर पर दोनो हाथ घुमाते-फिराते कहा, "वाह वाह! यह कहलाता है सिर में तेल डालना। वताइये, अव हम किस तरह लाट साहव से कम है! देखनेवाले भी क्या कहेगे कि निरालाजी तेल केशो में ही नहीं कपड़ों मे भी डालते हैं!"

निराला को रुपयों की जरूरत थी। वह दूकान के भीतर जाकर चेकवुक उठा लाये, उस पर सवा सौ अपने हाथ से लिख दिये, फिर चेक पर दुलारेलाल भार्गव से

हस्ताक्षर भी करा लिये ! 'आप बड़े जबर्दस्त हैं निरालाजी'—यह कहकर 'मुसकराते हुए' भार्गवजी ने चेक पर दस्तखत कर दिये ।"[१३]

जहूरबख्श कहानी-लेखक थे । कमर तक झूलते बाल उन्हें जरूर पसन्द होंगे । तेल की शीशी लुढकाने से कपडे खराब होंगे—यह सहज बुद्धि से हिसाब लगाया । वह चाहते थे, प्रकाशक लेखको को खूब रुपये दें; न दें तो लेखक उनसे जबर्दस्ती लें । निराला से जबर्दस्त और कौन ? इसलिए चेक पर खुद अपनी लिखी रकम पर उन्होंने दुलारेलाल भार्गव से हस्ताक्षर करा लिये !

उमाशंकर सिंह ने लिखा है कि "दुलारेलाल भार्गव निराला का नाम सुधा के प्रधान संपादक के रूप मे देना चाहते थे पर निराला ने स्वीकार न किया ।"[१४]

कमलाशंकर सिंह ने लिखा है कि "सुधा के संपादन के लिए ३०० रुपया मासिक लेना निरालाजी ने अस्वीकार कर दिया और 'कला' का संपादन अवैतनिक रूप से करते रहे ।"[१५]

'कला' का प्रकाशन कमलाशंकर सिंह करते थे । इसलिए निराला द्वारा उसके अवैतनिक संपादन की बात सही है । पर दुलारेलाल भार्गव उन्हे सौ रुपये देने को तैयार न थे, तीन सौ तो बहुत होते हैं । प्रधान संपादक का स्थान दुलारेलाल भार्गव के लिए सुरक्षित था; निराला के लिए वह उसे खाली करने को क्यों तैयार होते ?—विशेषकर देवपुरस्कार जीतने के बाद ! वास्तव में जब कमलाशंकर सिंह ने 'कला' निकाली, तब दुलारेलाल भार्गव से निराला का तनाव बढा हुआ था ।

खाने-पीने और रुपये-पैसे की चर्चा मे लेखको की भावुकता जाग उठती है । इसलिए वर्णन का अतिरंजित होना समझ मे आता है ।

निराला भूसामंडी, लखनऊ मे रहते थे । "प्रारंभ मे चाय का विज्ञापन हो रहा था ।" चाय के प्रचारक निराला के लोटे मे ढाई सेर चाय डाल जाते थे और "उसी चाय को पीकर निरालाजी पूरा-दिन बिता देते थे और उनके घर में भोजन कभी दो दिन बाद और कभी तीन दिन बाद बनता था ।"[१६]

चाय का प्रचार इससे बहुत पहले हो चुका था । निराला ढाई सेर चाय न पीते थे । उन दिनो उनकी आर्थिक स्थिति इतनी कठिन न थी कि दो-दो तीन-तीन दिन भोजन की नौबत न आये ।

निराला आठ बजे दारागंज मे घूमने निकलते थे । हलवाई से सिर्फ "आध सेर रसगुल्ला लेकर खा लिया करते थे ।"[१७]

निराला ने आध सेर मलाई अपने लिये ली, आध सेर संस्मरण-लेखक को दी । दोनो खाने लगे । इतने में एक कुत्ता आया । निराला "अपने हिस्से की बाकी मलाई उस बे-सहारे कुत्ते को बड़े प्रेम से अपने हाथ में ले-लेकर खिलाने लगे ।"[१८]

निराला को जब भारती भंडार से रायल्टी मिलती, "एक बड़े से लिफाफे में नोट भरे रहते । एक-एक के, दो-दो के, छोटे-बडे, सभी तरह के । निराला दारागंज के एक छोर से चलते, और दूसरे छोर पर जाकर खाली लिफाफा गंगा मे फेंक देते ।"[१९]

निराला सवारी के लिए मामूली-सा इक्का ढूँढते, "फिर इक्केवाले को पीछे

बठाकर खुद आगे वैठकर इक्का चलाते।" इस सुख के लिए वह इक्केवाले को इतने रुपये देते कि "किसी के घोडे का नया साज आ गया। किसी के पहियो पर नया रवड़ चढ़ गया। दो-एक इक्केवालों के तन पर नया कपड़ा भी नजर आने लगा।"[२०]

उनकी गली के सामने से कोई गरीब विद्यार्थी निकलता तो निराला उसे रोक लेते, "फिर तकिये के नीचे, या सामने कार्निस पर रखे दो-चार नोट विद्यार्थी की जेब मे ठूँस देते।"[२१]

उन्होने किसी को जूते दिये, किसी को रेशमी रजाई, किसी को ऊनी कोट, न जाने कितने रुपये का कपडा फकीरों मे वाँट दिया, सैकड़ों रुपये बुढियों, भिखारियों को दिये, उन सवका हिसाव लगाया जाय तो निराला के लाखों कमाने की वात सार्थक हो जाय। वैसे "द्वितीय महायुद्ध के दिनों अंग्रेजी सरकार ने उन्हें एक लाख रुपये देकर नगर-नगर में रेडक्रास के लिये कवि-सम्मेलन करने को आमंत्रित किया···उन्होंने उस एक लाख रुपये की धनराशि का मोह न करके इस कार्य में भाग लेने से साफ इन्कार कर दिया।"[२२]

निराला-सम्वन्धी अधिकाश संस्मरण उनके जीवन के अन्तिम दस-वारह साल के वारे में है। इन दिनों निराला ने मानसिक असंतुलन की दशा में जो कुछ दूसरों से कहा, उसे उन्होंने सत्य मानकर उद्धृत कर दिया। सरकार उन्हें एक लाख रुपये दे रही थी—यह वात उन्होने किसी श्रद्धालु श्रोता को सुना दी होगी। उसे सच मानकर कई लेखकों ने दोहराया। पर वह दक्षिणेश्वर के मंदिर मे स्वामी विवेकानन्द से मिले,[२३] इसकी जाँच आसानी से हो सकती थी। स्वामी विवेकानन्द का देहान्त हुआ, तव निराला वहुत छोटे थे; स्वामी विवेकानन्द से मिलने की कोई संभावना न थी।

"'परिमल' की प्रथम कविता जुही की कली है।"[२४] 'परिमल' के पन्ने उलटने से यह भ्रम आसानी से दूर हो सकता था।

अवोहर साहित्य-सम्मेलन में "निरालाजी स्वयं खड़े हुए और विश्वास मानिये, 'राम की शक्तिपूजा' जैसी कविता···उन्होने सुनाई जिसमें संगीत नही, कंठ का कौशल नही। लोग मंत्रमुग्ध-से वह लम्बी अतुकान्त कविता सुनते रहे।"[२५] 'अनामिका' के पन्ने उलटने से 'अतुकान्त' वाली भ्रान्ति दूर हो सकती थी।

अंग्रेजी के एक प्रोफेसर ने—वह हिन्दीप्रेमी भी है—लिखा कि निराला का जन्म वंगाल के महिपादल राज्य के मेदिनीपुर गाँव में हुआ।[२६] मेदिनीपुर जिला गाँव हो गया।

"निरालाजी के सुपुत्र उन दिनो लखनऊ विश्वविद्यालय में संगीतकला के आचार्य थे।"[२७] रामकृष्ण से पूछने पर यह भ्रम दूर हो जाता।

कृष्णाचार्य ने 'जनभारती' के निराला अंक (२) में निराला के अप्रकाशित नाटक का नाम लिखा, 'उपा-अनिरुद्ध'। सम्मेलन पत्रिका के श्रद्धाञ्जलि अंक में भी अप्रकाशित साहित्य के अंतर्गत छपा—'उषा-अनिरुद्ध नाटक'।

निराला की 'उपा'-नाटिका 'सुधा' में विज्ञापित हुई थी, लिखी न गई थी। किसी अन्य नाटक में उपा के साथ अनिरुद्ध नाम देखकर लेखकों ने यहाँ भी उसे जोड दिया।

कृष्णाचार्य की सूची मे छपा :

"और गीत—गोविन्ददास की बँगला कृति (अनुवाद)
उच्छृंखल (व्रजभाषा मे)।"

'सम्मेलन पत्रिका' मे यह सूचना इस प्रकार छपी :

"गीत गोविन्ददास—की बँगला कृति (अनुवाद)
उच्छृंखल—(व्रजभाषा मे) अनुवाद।"

कृष्णाचार्य ने लिखा था 'और गीत', अर्थात् उपन्यासो के अलावा गीत। 'सम्मेलन पत्रिका' के लेखक को 'और' खटका। 'गीत गोविन्द' नाम परिचित लगा। उसने मिलाकर किया 'गीत गोविन्ददास'! कृष्णाचार्य ने 'उच्छृंखल' के आगे लिखा—'व्रजभाषा में'; 'सम्मेलन पत्रिका' के लेखक ने 'अनुवाद' अपनी ओर से जोड़ दिया!

निराला ने गोविन्ददास के कुछ पदो का अनुवाद किया था। इस तरह की कोई अप्रकाशित पुस्तक नहीं है। निराला 'उच्छृंखल' नाम का उपन्यास खड़ी बोली मे लिखना चाहते थे। व्रजभाषा मे इस नाम की मौलिक या अनुवादित उनकी कोई कृति नहीं है।

कृष्णाचार्य ने 'प्रभावती' के समर्पण मे 'प्रिय बीबी' देखकर निष्कर्ष निकाला कि "लेखक ने अपनी दिवंगता पत्नी को सश्रद्धा समर्पित किया।" यदि समर्पण 'दिवंगता' पत्नी के प्रति था, तो निराला ने उसके अन्त मे यह कैसे लिखा—"तुम तब से आज तक शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला हो" ?

निराला ने 'प्रभावती' अपनी सलहज को समर्पित की थी। समर्पण १ मार्च १९३६ को लिखा था। इससे अठारह साल पहले मनोहरादेवी का स्वर्गवास हुआ था। उनके दो बच्चो को नवविवाहिता वधू ने आकर सँभाला था। तब से 'आज तक' वह शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला है। निराला ने ऐसा स्नेहपूर्ण समर्पण या तो 'गीतिका' का लिखा या 'प्रभावती' का। दोनो से उनके गृहस्थ-हृदय की कोमलता का पता चलता है।

"बहुत दिन हुए—अठारह वर्ष—पन्द्रह वर्ष की तुम नववधू होकर घर आई हुई थी, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हे शृंगार की साधना का समय नही मिला; तुम्हारे ऐसे हस्त संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नही किये जा सकते; मै केवल अपनी प्रीति के लिए यहाँ यह पुस्तक न्यस्त करता हूँ; जानता हूँ, कालिदास भी तुम्हे वीणा-पुस्तक-रंजित-हस्ते नही कर सकते, क्योकि तुम तब से आज तक शिशु-कर-कृत-कपोल-कज्जला हो।"

'प्रभावती' लिखते समय निराला का मन डलमऊ से बँधा था। कथाभूमि डलमऊ, मनोहरादेवी और 'प्रिय बीबी' दोनो का सम्बन्ध डलमऊ से। घर की काम-काजी स्त्री के लिए निराला के मन मे अगाध ममता—कालिदास भी तुम्हे वीणा-पुस्तक-रंजित-हस्ते नही कर सकते!

डा० रामरतन भटनागर—लखनऊ मे अपने अध्ययन-काल के सबके प्रिय 'हसरत'—निराला के स्नेहपात्र, उनके निकट सम्पर्क में आनेवाले लोगों में हैं। उन्होंने

'निराला' नाम की एक सुन्दर कविता-पुस्तक लिखी है। इसकी भूमिका में उनकी स्मृति ने कई जगह उन्हें धोखा दिया है; कई जगह उनकी कल्पना ने अद्भुत चित्र गढ़े हैं।

उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' का नाम परिवर्तित होकर उमेश शुक्ल हो गया है; लखनऊ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक दयामय मित्र (या मैत्र) वदलकर दीनमय मैत्र हो गये हैं। 'स्वर्गेर विदाय' जैसे शीर्षको में बँगला कविताओं के नाम वदल गये हैं। मनोहरादेवी का देहान्त १६१८ के वदले १६२२ मे हुआ; "१६२२ में तरुण वय मे पत्नी के विछोह की वेदना तो वेदान्तगर्भित होकर 'परिमल' की अनेक रचनाओं में आई।" निराला के नाम-स्मरण से ही मन में अद्भुत रस का संचार होने लगता है। प्रमाण : "प्रत्येक गीत रचना, कविता की कड़ी या गद्य के दो-चार पृष्ठो के वाद वह सीधे फर्श पर लम्बायमान होकर दण्ड पेलने लगते थे।" निराला का हर कार्य विस्मयकारी था। "निराला को बँगला का श्रेष्ठ पद्य ही नही, श्रेष्ठ गद्य भी कण्ठस्थ था!" "वे श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के सम्पूर्ण साहित्य का अनुवाद कर चुके थे।" अनुवाद में 'वंकिम का पूरा साहित्य' भी शामिल है!

डा० रामरतन भटनागर की तरह आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री निराला के स्नेह-पात्र, उनके निकट सम्पर्क में आनेवाले लोगों में हैं। उन्होने 'महाकवि निराला' ग्रन्थ में रामकृष्ण त्रिपाठी के प्रथम विवाह के वारे मे लिखा है, "इस विवाह मे निराला पितृहीन फूल के पिता वने थे।" ऐसी कोई आवश्यकता न थी क्योंकि फूलदुलारी के काका—निराला के मित्र—रामशंकर शुक्ल वहाँ विद्यमान थे।

निराला ने लिखा था, 'जुही की कली' उन्होने सोलह साल की उम्र मे लिखी। जानकीवल्लभ शास्त्री की स्मृति में उम्र के सोलह हो गये सन् १६१६!

निराला के जीवन में आकर्षक नाटकीय घटनाओं की कमी नही। संस्मरण या जीवनी लिखनेवाले को वडा लोभ होता है कि वह सारी परिस्थिति को सजीव रूप में प्रस्तुत करे।

इन्दौर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन; मंच पर महात्मा गांधी आसीन; मंच के वायी ओर साहित्यरत्नोत्तीर्ण स्नातकगण; रंगस्थल श्रोताओं तथा साहित्यिक विभूतियों से भरा हुआ। "आदित्य के समान दीप्तिवाले श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी गुरु द्रोणाचार्य के सामान दायी ओर साहित्यिकों के समूह मे सुस्थिर विराजमान थे।"

जव निराला मंच पर आये, तव गांधीजी ने पूछा—"ये कौन निराला हैं? इनका परिचय वतलाइये।" हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अध्यक्ष निराला का नाम न जाने, इस पर वह कव मौन रहनेवाले थे? निराला ने गम्भीर ध्वनि में कहा, "यदि आप निराला से परिचित नही तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के इस वरिष्ठ सिंहासन पर कैसे आसीन हो गये?"[२८]

इस रोचक वर्णन मे एक ही कमी है; उसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नही है। निराला न इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन मे स्वयं गये थे, न अपने मित्रों के वहाँ जाने के पक्ष में थे। लेखक ने निराला-गांधी वार्तालाप के वारे में जो पढ़ा या सुना

था, उसे बदलकर—लखनऊ की जगह इन्दौर को कथाभूमि बनाकर—उसने एक नया गाधी-निराला संवाद रच डाला।

निराला के सम्बन्ध मे जो गाथाएँ रची गयी है, उनमें लेखकों का यह भाव है कि निराला को महामानव के रूप मे चित्रित किया जाय। महामानव की मूर्ति गढ़ते हुए लेखक अपने धार्मिक संस्कारो से प्रेरित होकर ऋषियो-सन्तो-सम्बन्धी कल्पना से उस मूर्ति को मिलाते है। कुछ दूसरे लोग इस सन्त-निर्माण प्रक्रिया से परेशान होकर उन्हें शराबी, अहंकारी और विक्षिप्त रूप मे ही देखते है। कुछ लोगों ने केवल आत्म-विज्ञापन की प्रेरणा से उनके बारे मे गप्पे मारी है। कुछ ने केवल असावधानी के कारण उनके बारे में गलत बातें लिखी है।

निराला के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन करनेवाले के लिए आवश्यक है कि वह मनगढ़न्त कहानियो में व्यक्त की हुई महामानव-कल्पना से निराला को मुक्त करे, उन्हे श्रद्धा और रागद्वेष के दलदल मे धँस जाने से बचाये। निराला को मस्तमौला अवढरदानी बनाकर बहुत-से लेखक जान या अनजान में उनके संघर्ष और व्यथा को ढँक देते है। सन्तों और फकीरों को रुपये-पैसे की क्या चिन्ता? प्रकाशकों ने उनका शोषण किया—इस निरर्थक वाक्य से उनके व्यक्तित्व का क्या सम्बन्ध? निराला को अपने अन्तर्द्वन्द्व से जो कष्ट हुआ, इस अन्तर्द्वन्द्व का सामाजिक परिवेश से जो सम्बन्ध है, उस सब पर पर्दा गिर जाता है। निराला के प्रति बहुतो के मन मे द्वेष उनके जीवन-काल में था, उनके निधन के बाद भी है। इसलिए निराला के मद्यपान-अहंकार-विक्षेपवाले रूप को वे अतरंजित करके प्रस्तुत करते है। अन्धश्रद्धा की प्रतिक्रिया में कुछ विद्वानों का 'आधुनिकता-बोध' जाग्रत होने लगा है। सम्भावना यह है कि निराला को महामानव से मानव बनाने में वे अपने ही मूर्तियाँ गढ़कर प्रस्तुत करेंगे। यह राग-द्वेप की ही अभिव्यक्ति होगी।

रागद्वेप और श्रद्धा दरकिनार, निराला के जीवन के बारे मे सही तथ्य-संग्रह बहुत कठिन कार्य है। पग-पग पर जीवनीलेखक को कठिनाइयों का सामना करना होता है। कब पैदा हुए थे, उनका नाम क्या था—यहाँ से लेकर दारागंज की गली में उन्होंने जो दानलीला की—वहाँ तक तथ्य-संग्रहकर्ता के लिए समस्याएँ ही समस्याएँ हैं।

निराला का जीवन-वृतान्त लिखने का विचार मेरे मन में बहुत दिन से था। सन् '८३ से इस दिशा मे मैंने प्रयास आरम्भ कर दिया था। मेरी समझ में निराला के पत्रो का संग्रह करना सबसे पहले आवश्यक था। शिवपूजन सहाय के पास उनके बहुत-से पत्र थे। उनके पास आकर उन पत्रों की नकल करने के प्रस्ताव पर वह यही कहते रहे कि वह उनकी प्रतिलिपि करके भेज देगे। अन्त में २८ फरवरी '६२ को—उन्होने लिखा, "आपको शायद पता नही कि मेरे गाँव के घर मे कई साल पहले चोरी हो गई थी, जिसमे चिट्ठियो से भरा एक बक्स गुम हो गया था। उसे चोरो ने कुएँ में डाल दिया था, सुबह निकाला गया तो सब चिट्ठियाँ नष्ट हो चुकी थी। चोरी गई हुई चिट्ठियो में अनेक प्रमुख साहित्यकारो के महत्त्वपूर्ण पत्र छाँटकर रखे गये थे जिनमे उनसे साहित्यिक समस्याओ पर लिखा-पढी हुई थी। उनमें निरालाजी के कई

अच्छे पत्र थे। उस चोरी का प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर पड़ा था। यह १९५१-५२ ई० की बात है।"

इस तरह निराला-सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री सदा के लिए नष्ट हो गई। नन्द-दुलारे वाजपेयी से निराला का पत्रव्यवहार कई साल तक चला था। निराला-स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर उन्होंने लिखा था, "निरालाजी के पत्र मेरे पास काफी संख्या में हैं, जब आप मिलेंगे, देखेंगे।"[३९] मैं उनसे मिला, एक बार, अनेक बार पर उन पत्रों को देखने का सौभाग्य न मिला। २१ नवम्बर '६१ को उन्होंने लिखा, "इधर अनेक वर्षों से निरालाजी से पत्रव्यवहार नहीं हुआ। प्रायः मिलकर ही बातें होती थीं। जब मैं काशी और प्रयाग में था, तब उनके पत्र अवश्य आते थे, पर अनेक बार अपनी गृहस्थी को स्थानान्तरित करने में वे पत्र सुरक्षित नहीं रह सके। यदि कुछ थोड़े पत्र होंगे तो उन्हें ढूंढ़ निकालना भी परिश्रमसाध्य है। फिर भी प्रयत्न करूंगा।" वाजपेयीजी को इस प्रयत्न में सफलता न मिली।

निराला ने बहुत-से पत्र दयाशंकर वाजपेयी को लिखे थे। उनके बारे में खोज करने पर उनके भाई उमाशंकर वाजपेयी से मालूम हुआ, "भाईजी के पास निरालाजी के करीब ५०-६० पत्र थे, उनका निजी साहित्य था और थी पुस्तकें। यह सारा सामान मैं बड़ा बाजार लाइब्रेरी की एक आलमारी में रखकर और चार्ज सधऊ सुकुल को देकर घर चला आया। लौटने में काफी विलम्ब हुई। परिणाम यह हुआ कि सधऊ ने सारा सामान उसका महत्त्व न जानकर रद्दी कागजों में बेच दिया। जाने पर देखा तो क्रोध और दुःख दोनों हुए, पर बेकार।"[४०]

दुलारेलाल भार्गव बड़े पत्रसंग्रही रहे हैं। उनके घर में ऊपर के एक छोटे-से कमरे में बीसियों बस्ते देखने को मिले। पंत, प्रसाद, मिश्रबन्धु, आदि से लेकर रामविलास शर्मा तक के पत्र फाइलों में अलग-अलग रखे थे। मैंने बस्तों की धूल बहुत झाड़ी, फाइलों को कई बार पलटा, निराला के पत्रों की फाइल वहाँ नहीं थी। मुझे विश्वास है कि वह पत्रों की फाइल कहीं है अवश्य, उस कमरे से बाहर किसी के पास है। उसे जो प्रकाशित करेगा, वह हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों का बड़ा उपकार करेगा।

पंत और महादेवी वर्मा से मालूम हुआ कि उनके पास निराला के पत्र नहीं हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री से मालूम हुआ कि उनके पास निराला के सौ से ऊपर पत्र हैं। वह भी इनकी प्रतिलिपि करा रहे हैं—कई साल से।

विनोदशंकर व्यास के पास निराला के कुछ पत्र थे। शायद वे सभी उन्होंने छपा दिये थे—उनके कुछ महत्त्वपूर्ण अंश निकालकर। यद्यपि वह स्वयं निराला की बीमारी का खुले ढंग से वर्णन करते थे, पर पत्रों में निराला ने जहाँ इसके बारे में लिखा था, वह दूसरों को दिखाना न चाहते थे। सम्भव है, पत्रों में उनके अपने जीवन के बारे में भी कुछ गोपनीय बातें रही हों यद्यपि वे स्वयं अपने बारे में बहुत-सी बातें साफ-साफ लिख गये हैं। अन्तिम बार जब मैं उनसे मिला—सन् '६२ की गर्मियों में—तब उन्होंने कहा कि जीवनी पूरी कर लो, उसके बाद चिट्ठियाँ भेज देंगे। मैंने जीवनी समाप्त किये बिना ही उन्हें सूचना दी कि कार्य समाप्त हो गया। चिट्ठियाँ भेजिए या मैं आऊँ।

एक दिन अचानक उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई।

इस प्रकार निराला के सैकड़ों पत्र नष्ट हो गये या मुझे अप्राप्य रहे; जो सामग्री है पर अप्राप्य है, उसकी तुलना मे नष्ट हो जानेवाली सामग्री बहुत अधिक है। यह सामग्री अधिकतर सन् '२३ से '३३ तक की है; 'मतवाला'-काल, निराला के इधर-उधर भटकने के दिन, दुलारेलाल भार्गव के यहाँ पैर जमाने के प्रयत्न—यह सारा इतिहास उन पत्रों में था। निराला के जीवन की पूरी जानकारी, जीवनी के लिए पूर्ण तथ्य-संग्रह की आशा करना व्यर्थ है। उसकी कोई सम्भावना नही है। पूरी जानकारी किसी के बारे में सुलभ नही होती किन्तु हिन्दी-साहित्यकारों ने पत्रो की रक्षा करने के बारे मे बनारसीदास चतुर्वेदी से कुछ भी सीखा होता तो निराला-सम्बन्धी जानकारी आज की अपेक्षा बहुत ज्यादा होती। जीवनी के अतिरिक्त पत्रों का स्वतन्त्र महत्त्व है वह अलग बात है।

फिर भी जो सामग्री बच रही और मुझे देखने को मिली, वह सम्पूर्ण न होते हुए भी पर्याप्त है। सबसे बड़े पत्रसंग्रही स्वयं निराला थे। लखनऊ छोड़ने से पहले वह मुझे अपना पत्र-संग्रह दे गये थे। इसमे स्वभावतः निराला के पत्र तो दो-चार ही थे; शेष पत्र वे थे जो दूसरों ने उन्हें लिखे थे। नन्ददुलारे वाजपेयी निराला के पत्रों की रक्षा न कर सके पर निराला उनके बहुत-से पत्रों को बचाये रहे थे। ये पत्र अधिकतर सन् '२६ से '३० तक के है। सन् '३६ से '४६ तक बहुत-से पत्र उन्होने मुझे लिखे थे, जो मेरे पास है। केदारनाथ अग्रवाल, गंगाप्रसाद मिश्र आदि के पास जो पत्र थे, वे उन्होंने मुझे भेज दिये थे।

मैं समय-समय पर निराला की स्थिति के बारे में मित्रो को लिखा करता था। केदारनाथ अग्रवाल और अमृतलाल नागर के पास मेरे जितने पत्र थे, उन्होंने मुझे देखने को दिये। शिवमंगलसिंह 'सुमन' के पास मेरे बहुत-से पत्र है। वे पत्र बहुत प्रयत्न करने पर—अनेक बार उज्जैन की यात्रा करने के बाद भी—मुझे देखने को न मिले। 'सुमन' ने बताया कि वह 'लस्ट फॉर लाइफ़' जैसा उपन्यास निराला के जीवन पर लिखना चाहते हैं। शुभाः सन्तु ते पन्थानः।

सन् '३४-'३५ में अपने बड़े भाई भगवानदीन शर्मा को लिखे पत्रों मे मैंने निराला से मिलने, उनके व्यवहार, वार्तालाप आदि का वर्णन किया था। वे अंश उन्होंने मुझे नकल करके भेज दिये थे। मेरे मित्रों ने जो पत्र मुझे लिखे, उनमे बहुत जगह निराला-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें है। इन्ही मे 'सुमन' का वह पत्र है जिसके अनुसार निराला ने उन्हे घर मे न घुसने दिया था। मेरे छोटे भाई रामस्वरूप शर्मा ('चौबे') के कई पत्रों मे निराला के अर्धविक्षेप के दिनो की दशा का बड़ा सजीव वर्णन है।

इस तरह निराला-सम्बन्धी काफी पत्र-सामग्री मुझे सुलभ हुई है और उसका उपयोग मैंने इस जीवनी मे किया है। निराला के अधिकांश मित्र और परिचित मुझ पर कृपालु रहे है। उनसे मुझे बहुत-सी बातें मालूम हुई हैं। जब-तब मैं किसी कापी-किताब या सामने जो कागज आया, उस पर निराला के व्यवहार, बातचीत वगैरह के बारे में लिख लेता था। यह कार्य मैंने बहुत ही अव्यवस्थित ढंग से किया, फिर भी जो किया और सुरक्षित रहा, वह मूल्यवान सिद्ध हुआ।

गढ़ाकोला मेरे गाँव—ऊँचगाँव सानी—से कोस डेढ़-कोस पर है। गढ़ाकोला में मैं चतुरी से मिला हूँ; सन् '३५ के मेरे एक निबन्ध में इस मुलाकात का उल्लेख है। बैसवाड़े मे निराला के परिवेश से काफ़ी परिचित हूँ। लखनऊ में उनके साथ रहा हूँ, डेड़-दो महीने कलकत्ते में दयाशंकर वाजपेयी के साथ रहा था। कलकत्ता अनेक वार गया और वहाँ निराला के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश से परिचित हुआ। सौभाग्य से सन् '३७ की गर्मियों में जब पहली वार कलकत्ता गया था, तब दयाशंकर वाजपेयी ने उग्र से मेरा परिचय कराया और प्राय: नित्य शाम को वह मेरे साथ घूमने जाते थे। उनके उन सम्पर्क से मैं 'मतवाला'-मंडल की संस्कृति को वहुत-कुछ जान सका। सन् '३७ के वाद उग्र काफी दिन लखनऊ रहे, कुछ दिन उसी ११२ मकवूलगंजवाले घर मे रहे जिसमें पहले निराला रहे थे, मैं रहा था। मैं पड़ोस में था और नित्य उनसे मिलता था। इलाहावाद में प्राय: प्रतिवर्ष, कभी वर्ष में एक से अधिक वार, निराला से मिलता रहा था।

निराला के परिवेश, उनके परिवार के लोगों और मित्रों से परिचित होने के कारण मुझे तथ्य-संग्रह में ही सहूलियत नही हुई; तथ्यों में क्या सही है, क्या गलत—यह जानने की सुविधा भी मिली।

निराला के वारे में सवसे अधिक जानकारी मुझे उन्ही से हुई, उन्होने जो वताया, जो सामग्री दी—एक जानकारी वह। जो वातें उनके साथ रहते हुए मैंने देखी, सुनीं, समझी—दूसरी जानकारी वह।

जीवनी को आधार वनाकर उपन्यास लिखने में कुछ साहित्यकारों ने वड़ी सफलता प्राप्त की है। वे जीवनी लिखने का दावा नहीं करते, रोचक कथा गढ़ते हैं, परिवेश और व्यक्तित्व का सजीव चित्र खींचते है। मैं उनके इस साहित्यिक कृतित्व का आदर करता हूँ। पर अनेक जीवनी-लेखक जो उपन्यास लिखने का दावा नही करते, फिर भी उपन्यास लिखने लगते हैं, उनके कार्य की प्रशंसा नही की जा सकती। मुझे उन लेखकों से ईर्ष्या होती है जो संस्मरण या जीवनी में नायक के वार्तालाप से पन्ने के पन्ने रँगते चले जाते हैं। जिस चरितनायक से उनका प्रत्यक्ष परिचय नही, जिसकी मृत्यु से पहले उनका जन्म न हुआ था, जो उनके देश का नहीं, युग का नहीं, उसकी वातचीत जव वे—उपन्यास में नही—जीवनी में धाराप्रवाह लिखते चले जाते हैं, तव उनके साहस पर वुद्धि चकित रह जाती है। जिनसे प्रत्यक्ष परिचय है, जो अपने देश और युग के हैं, उनकी वातचीत भी तुरत न लिख ली जाय, तो स्मृति के सहारे उसे ज्यो-का-त्यों उद्धृत नहीं किया जा सकता।

चरितनायक की वातचीत उद्धृत करने में वौसवेल विश्वसाहित्य मे लासानी है। जानसन से एक वार वहस हुई कि आदमी वोलता जाय तो उसकी वातचीत दूसरा ज्यो-की-त्यो लिख सकता है या नहीं। वौसवेल कहता था. लिख सकता है, जानसन कहते थे, नही लिख सकता। परीक्षा हुई। जानसन ने एक किताव से कुछ अंश पढा, वौसवेल ने लिखा। जव मिलाया तो अपूर्ण, अधूरा!

जानसन से मुलाकात होने के वाद कुछ समय तक वौसवेल की समझ मे न

आया कि उनके वार्तालाप को घर जाकर हूबहू कैसे लिखे। जानसन के बातचीत करते समय उसे लिखने का सवाल न था। फिर उसने एक तरीका निकाला। तरीका था, बातचीत के खास नुक्ते याद रखना और फिर जानसन की शैली मे उन्हें विस्तार से रच लेना। बौसवेल ने लिखा है :

'Let me here apologize for the imperfect manner in which I am obliged to exhibit Johnson's conversation at this period. In the early part of my acquaintance with him, I was so wrapt in admiration of his extraordinary colloquial talents, and so little accustomed to his peculiar mode of expression that I found it extremely difficult to recollect and record his conversation with its genuine vigour and vivacity. In progress of time, when my mind was, as it were, 'strongly impregnated with the Johnsonian Oether', I could with much more facility and exactness, carry in my memory and commit to paper the exuberant variety of his wisdom and wit."[11]

("इन दिनों के जानसन के वार्तालाप मैंने मजबूरन अधूरे ढँग से प्रस्तुत किये हैं। इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। जान-पहचान के आरंभिक काल मे मैं उनकी वार्तालापवाली असाधारण प्रतिभा से ऐसा चमत्कृत हो जाता था और उनके बातचीत के विचित्र ढँग से इतना कम परिचित था कि मुझे उनका वार्तालाप स्मरण करने और उसे यों लिखने मे बेहद कठिनाई होती थी कि उसका वास्तविक ओज और सजीवता सनी रहे। कुछ समय बीतने पर, कहना चाहिए, जब मुझमे जानसन की रूह उतर आई, तब मैं ज्यादा आसानी से और सही-सही उनकी बातें याद रखने लगा और उनकी वाक्पटुता और बुद्धिमत्ता का बहुविध चमत्कार कागज पर उतारने लगा।")

बौसवेल की स्मरण-शक्ति पहले से अच्छी न हो गई थी जो बाद को वार्तालाप लिख लेने मे उसे अधिक सफलता मिली। असली बात यह थी कि वह जानसन के दाँव-पेंच अच्छी तरह जान गया; मुख्य बात याद रहने पर वह उनकी शैली की नकल करता हुआ उसे शब्दों का जामा पहना सकता था। उसमे जानसन की रूह उतर आती थी, ठीक वैसे ही जैसे सेठ बाँकेमल की रूह अमृतलाल नागर मे उतर आई थी। बौसवेल कलाकार था, मूल बातें जानसन से ही पाता था, उन्हें सजीव नाटकीय शैली मे ढालता था स्वयं।

एक बार उसने गलती की और जानसन से डींग हाँकी कि दूसरा बोले तो उसकी बात वह ज्यों-की-त्यों लिख सकता है। जानसन ने तुरन्त उसकी परीक्षा ली और वह फेल हो गया। उसने लिखा है :

"I this evening boasted that although I did not write what is called stenography or short-hand, in appropriated characters devised for the purpose, I had a method of my own of writing half words, and leaving out some altogeher, so as yet to keep the substance and language of any discourse which I had heard so much in view, that I could give it very completely soon after I had taken it down. He

defied me, as he had once defied an actual short-hand writer; and he made the experiment by reading slowly and distinctly a part of Robertson's 'History of America', while I endeavoured to write it in way of taking notes. It was found that I had it very imperfectly; the conclusion from which was, that its excellence was principally owing to a studied arrangement of words, which could not be varied or abridged without an essential injury."[३२]

("आज शाम मैं शेखी बघारने लगा कि मैं स्टनोग्राफी या शार्ट-हैण्ड की लिपि का व्यवहार नही करता, फिर भी मैंने अपना एक तरीका ईजाद कर लिया है—कुछ शब्द आधे लिखता हूँ, कुछ एकदम छोड़ जाता हूँ—और इससे सुनी हुई बातचीत की भाषा और भाव मेरे मन के सामने यों उपस्थित हो जाते हैं कि नोट लेने के बाद उसे मैं ज्यों-का-त्यों लिख सकता हूँ। जानसन ने एक बार शौर्टहैण्ड लिखनेवाले को ही चुनौती दी थी; इस बार मुझे दी। वह रौबर्टसन की पुस्तक 'अमरीका का इतिहास' का एक अंश धीरे-धीरे और स्पष्ट आवाज़ में पढने लगे और मैं अपने तरीके से इसके भी नोट लेने लगा। परीक्षा से पता यह चला कि मैं उसे बहुत अधूरे रूप में दोहरा सका। निष्कर्ष यह निकला कि उस गद्य के सौष्ठव का कारण यह था कि उसमें शब्द बड़ी सावधानी से यथास्थान जड़े गये थे और भारी हानि पहुँचाये बिना उस गद्य को न बदला जा सकता था, न संक्षिप्त किया जा सकता था।")

बौसवेल तो घर जाकर जो याद रहा लिख लेता था। हफ्तों, महीनों, अक्सर वर्षों बाद जो लोग निराला के वार्तालाप से पन्ने भर देते हैं, वे सत्य का कितना अंश प्रस्तुत कर रहे हैं, इसकी कल्पना की जा सकती है।

मैंने निराला के वार्तालाप गढ़े नहीं हैं। डायरी के पृष्ठों और चिट्ठियो के आधार पर—उन्ही से ज्यों-के-त्यों उठाकर—मैंने जहाँ-तहाँ उनके वाक्य दे दिये हैं। एक-आध जगह दूसरों की रचनाओं से दो-चार बातें—जो मुझे प्रामाणिक लगी—मैंने उद्धृत की हैं। जहाँ निराला को सोचते-विचारते दिखाया है, वहाँ अधिकतर उन्ही की रचनाओं का सहारा लिया है। मेरा उद्देश्य निराला को हीरो बनाकर कल्पित वार्तालाप से यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करना नहीं रहा। मैंने भरसक उनका वस्तुपरक जीवनचित्र दिया है जिसका उद्देश्य पाठक को मुग्ध करना नही, विवेक से निराला के व्यक्तित्व को समझने में सहायक होना है। अधिकांश जीवनचरित हीरो की मृत्यु से समाप्त हो जाते हैं। इस पुस्तक मे कई अध्याय व्यक्तित्व-विश्लेषण पर हैं। मूल उद्देश्य निराला के व्यक्तित्व को समझना ही है।

साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके कृतित्व से अलग नहीं किया जा सकता। उसका कृतित्व उसके व्यक्तित्व की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उसका आन्तरिक मानसिक जीवन और बहुत हद तक उसका बाह्य सामाजिक जीवन उसके रचनाकारत्व मे संबद्ध रहता है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अपूर्ण है। यहाँ निराला के कृतित्व की झलक-भर है, उसका विशद चित्र नही, न उसका विश्लेषण। यह कार्य 'निराला की साहित्य-साधना' के दूसरे खंड में करने की योजना है। जिन्हें यहाँ कृतित्व के विवरण का अभाव खले, वे धैर्य धारण करें।

२१

कृतज्ञता-ज्ञापन

हावड़ा-खड़गपुर, मेछेदा, तामलुक, फिर महिपादल। उर्वर धरती, वृक्ष, लताएँ, घास, फूल और काँटे, नदी-नाले, असंख्य छोटे-बड़े ताल। धान के खेतों को बीच से चीरती हुई काली सड़क। रूपनारायण नद, महिपादल के किनारे नहर। कस्वे मे क्षेत्रीय विकास का दफ्तर, स्कूल, अस्पताल, एक सिनेमाघर, ऊँघता हुआ-सा बाज़ार, गरीबों के फूस छाये कच्चे घर। सन् '४२ के आन्दोलन के सिलसिले मे महिपादल के कुमारवहादुर को राज्य से बाहर रहने की आज्ञा मिली थी।

प्रासाद के जिस भाग में कल्याणमल लोढ़ा, शिवनारायण शर्मा और मैं ठहराये गये थे, वह विधानराय सूट कहलाता है। विधानचन्द्र राय राजा सतीप्रसाद गर्ग के घनिष्ठ मित्र थे। हमारे कमरे की खिड़की के नीचे एक खेत मे गुलाव ही गुलाव लगे थे। मैदान मे स्वर्गीय राजा सतीप्रसाद गर्ग की तलवार बाँधे मूर्ति खडी थी।

कुमारवहादुर देवप्रसाद गर्ग गौरवर्ण के है, आँखें भूरी, क़द निराला से काफी छोटा, शरीर का ढाँचा इकहरा, स्कंधभाग को देखते कटि प्रदेश अधिक विस्तृत। उन्होंने वताया कि वह अपनी माँ को पड़े हैं; उनके पिता का क़द साधारण और रंग साँवला था। कुमारवहादुर सुलेखक, संगीत में प्रवीण, शिकारप्रेमी, अत्यन्त शालीन और सुसंस्कृत रुचि के व्यक्ति लगे। उन्होंने वड़े यत्न से वह फोटो ढूँढ़ निकाला जिसमें गवर्नर और राजासाहव के पीछे रामसहाय खड़े हैं। उन्होने रामसहाय तेवारी की हार्निया के आपरेशन, मंदिर मे गहनो की चोरी और निराला के पकड़े जाने आदि के बारे मे अनेक वातें वताईं, मेरे प्रश्नो का उत्तर दिया, हम लोग जो देखना चाहते थे, वह सव देखने की व्यवस्था कर दी। मैंने कहा कि निराला एक ठुमरी गाते थे—जाने दे मोको सुनो सजनवा। कुमारवहादुर ने तुरत गाना शुरू कर दिया। निराला के कंठ में वसा हुआ वह गीत, जिसे उन्होने महिपादल में सीखा था, जिसे ५८ नवर नारियल वाली गली मे मैंने वीसियो वार सुना था, महिपादल मे फिर सुनने को मिला। वही वंदिश, वही अलंकरण, केवल स्वर और भी मधुर, गायकी पर उच्च शास्त्रीयता की छाप।

कुमारवहादुर देवप्रसाद गर्ग ने इस पुस्तक के सन्दर्भ में मेरी जो सहायता की,

उसके अतिरिक्त अपने परिचय और सहृदय संपर्क से मुझे जो सुख दिया, उसके लिए मैं हृदय से उनके प्रति आभारी हूँ।

राजा के बाद संन्यासी।

बेलूड़ मठ के अनेक वृद्ध संन्यासी सूर्यकान्त त्रिपाठी को स्नेह से याद करते है। उनका सादा जीवन, स्नेहशील वाणी, आगन्तुकों से मधुर व्यवहार मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। एक साथ पत्तलों में भोजन, फिर स्वयं जूठी पत्तलें उठाकर फेंकना जातिवर्ण से परे उनकी साम्यभावना का परिचायक है। स्वामी माधवानन्द अपनी वास्तविक अवस्था से प्रायः बीस वर्ष कम लगते थे। चेहरे पर कहीं झुरियाँ न थी। दीप्तिमान मुख और वैसे ही ललाट के साथ दीप्तिमान खल्वाट कपालभाग। अन्य संन्यासियों की अपेक्षा वह अधिक आधुनिक। आँखों पर चश्मा; मेज पर 'टाइम' मैगज़ीन। वह महावीर-प्रसाद द्विवेदी के लेखन-कार्य और 'सरस्वती' से परिचित थे। उनसे कानपुर में मिले थे; वहीं 'समन्वय' के लिए द्विवेदीजी ने सूर्यकान्त का नाम सुझाया था। उन्हे कितने वेतन पर बुलाया था ? कुछ आश्चर्य की मुद्रा में उन्होंने कहा—"We treated him as one of us—a brother." (हम उन्हें अपने लोगों में, एक भाई-जैसा, समझते थे।)

हाँ, निराला उस समय कविता करते थे।

"He used to say, if I were the son of Prince Dwarka Nath Tagore and rich, people would have thought me great."

("वह कहा करते थे, मैं प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर का नाती होता और अमीर होता तो लोग मुझे भी महान् समझते।" स्वामीजी ने नाती के अर्थ में 'सन' शब्द का ही प्रयोग किया था।) तब स्वामी माधवानन्द रवीन्द्रनाथ से अपनी तुलना करने के कारण सूर्यकान्त पर हँसते थे। उन दिनों की याद करके वह फिर हँसने लगे—सरल, मुक्त हास्य, बालकों जैसा। फिर गभीर होकर उन्होंने कहा—"But he has proved that he was right." (लेकिन उन्होंने साबित कर दिया कि उनकी बात सही थी।)

बेलूड़ मठ के संन्यासियों ने 'समन्वय' के पुराने अंक देखने की व्यवस्था कर दी। वहाँ जो देखना चाहता था, जिनसे मिलने की इच्छा की, उन्होंने सहायता की। इन संन्यासियों ने निराला पर क्या जादू किया होगा, मैं कुछ-कुछ समझ सका। जो निराला से परिचित थे, वे अब भी बड़ी आत्मीयता से उन्हें याद करते थे। मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पटना में तख्त पर लेटे जर्जर-शरीर शिवपूजन सहाय संन्यासी-जैसे लगते थे। नंगे बदन, ताड़ के पंखे से हवा करते हुए, 'चूस लिया है उसका सार'—की प्रतिमूर्ति थे। आँखों की ज्योति क्षीण हो रही थी। वह अब भी साहित्य-सम्मेलन के भवन में किसी पुस्तक का संपादन करने या प्रूफ पढ़ने जाते थे। उनकी वाणी में अब भी ओज था। गद्दी के लिए कशमकश करनेवाले राजनीतिज्ञों से उन्हें घृणा हो गई थी। हिन्दी के बारे में वह सरकारी नीति की तीखी आलोचना कर रहे थे। साहित्य-सम्मेलन का पुराना वैभव समाप्त हो गया था। साहित्यिक संस्थाओं में जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं, इस सब पर उन्हें क्षोभ था।

निराला के बारे में उन्होंने कहा, "महादेव बाबू से उन्हें नियमित आय न होती थी। जब मतवाला प्रतिष्ठित हो गया और उसे प्रतिष्ठित करने में सबसे ज्यादा हाथ निरालाजी का था, तब महादेव बाबू बदल गये। मुंशीजी के प्रति, हमारे प्रति, सभी के प्रति उनका व्यवहार बदल गया।"

मैंने कहा—निरालाजी की जीवनी मैं आपको समर्पित करूँगा।

उन्होंने क्षीण मुस्कान और सलज्ज आँखों से अपनी विनम्रता प्रकट की।

पुरानी स्मृतियों में डूबे हुए, निराला के सहृदय मित्र, क्षीणदृष्टि, जर्जरतन शिवपूजन सहाय : "आँखों ने ज्ञान के द्वार बंद कर दिये। किसी तरह स्मरणशक्ति के सहारे 'साहित्य' की टिप्पणियाँ लिख लेता हूँ, नहीं तो सारा काम मेरे आदरणीय मित्र नलिनजी ही करते हैं। अन्धी आँखों में कभी-कभी आवश्यकतावश कुछ लिखना भी पड़ता है तो सन्तोष नहीं होता। आँखों को उत्पीड़ित करके अन्दाज़ पर पत्र लिख जाता हूँ; पर पता नहीं क्या-क्या लिख गया।···

"आपने उनके द्वारा 'रामचन्द्र कृपालु भजु मन' के गाये जाने की याद करा दी। वही पद उन्होंने काशीतलवाहिनी गंगा में बजड़े पर गाकर सुनाया था। महाकवि प्रसादजी भी थे। हारमोनियम पर अजन्ता-गुफा की-सी अँगुलियाँ थिरकने लगीं और अजन्ता के चित्रों-जैसे मदिर नेत्र मँडलाने लगे। प्रसादजी साश्रु नेत्रों से उन्हें निहारते ही रहे। वे उन्मुक्त कंठ से उन्हें हिन्दी की विभूति कहते थे। खेद है कि उस विभूति का कण-कण-संचय हम न कर सके।"[१]

और निराला के सहयोगी, परिस्थितियों से असंतुष्ट, विद्रोही शिवपूजन सहाय : "मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। दिन-दिन उसमें ह्रास ही होता जा रहा है। आप लोगों के आशीर्वाद से किसी तरह दिन गिनता हुआ समय बिता रहा हूँ। भगवत्कृपा का भरोसा है।

"साहित्य-सम्मेलन में राजनीतिक प्रपंच का अखाड़ा खुल गया है। 'साहित्य' छपकर प्रकाशित हो गया है, पर डाक-टिकट के अभाव में बाहर नहीं भेजा जा रहा है।··

'हिन्दी की साहित्यिक संस्थाओं में चुनाव और अधिकार-लिप्सा के कारण अकर्मण्यता व्याप्त हो रही है। यह बड़ी चिन्ता और ग्लानि का विषय है। मैं तो त्याग-पत्र देकर उस प्रपंच से अलग हो गया हूँ, केवल 'साहित्य' का काम हाथ में रह गया है। बारहवाँ वर्ष पूरा करके उसे भी छोड़ने का विचार है। अब शक्ति ही नहीं है।"[२]

शिवपूजन सहाय अब नहीं हैं। हिन्दी पत्रकारिता की देहरी पर शहीद हो गये। नयी पीढ़ी के लेखक—जिन्हें परंपरा का ज्ञान है—आदर से उन्हें आचार्य शिवपूजन सहाय कहकर याद करते हैं।

उग्र! चौरंगी के पास पार्क में टहलते हुए जा रहे थे। कुछ लोगों में झगड़ा हुआ। भीड़ इकट्ठी हुई। एक क्षण को मैं भी खड़ा हो गया। दूसरे क्षण घूमकर देखा, दोनों हाथों से लुंगी थामे उग्र एक ओर भागे जा रहे हैं। मैं पास पहुँचकर हँसने लगा तो वह नाराज़ होकर बोले—आप निराला के साथ रहकर अपने को बड़ा जोधा समझते होंगे, मैं लड़ाई-झगड़े से दूर रहता हूँ।

उग्र बनारस में। निराला के आर्थिक कष्ट के दिन। मैंने 'हंस' में लिखने का आग्रह किया। उन्होंने 'हंस' के दमन-विरोधी अंक के लिए लेख दिया। श्रीकृष्णदत्त पालीवाल की आलोचना की।

अन्तिम बार दिल्ली में मिलने पर उन्होंने पहला वाक्य कहा—"देखिये शर्माजी, मैं अभी मरा नहीं हूँ।"

वह मृत्यु से जूझ रहे थे, वीर की तरह, हृदय में वैसा ही स्नेह, वही जिन्दादिली, बनारसी छाप लिये हिन्दी की वही लाजवाब शैली।

अब उग्र नहीं हैं।

'मतवाला'-मण्डल के प्रायः सभी सदस्य एक-एक करके उठ गये। वह युग महान् था, साहस, संघर्ष, वेदना, विजय का युग। पर बाद को जो युग आया, वह भी ऐसा बुरा नहीं। अमृतलाल नागर ने अपनी श्रेष्ठ कृति 'बूंद और समुद्र' निराला को समर्पित की। ज्ञानचन्द्र जैन से पुस्तक मिलने पर निराला ने प्रसन्न होकर कहा—"काम करना तो बस हमारे साथ के लोग जानते हैं।"

कॉस्मिक सोशलिस्ट्स की ओर से निराला का अभिनन्दन करनेवाले, 'चकल्लस' संचालक अमृतलाल नागर ने निराला पर मेरी पहली पुस्तक आदि से अन्त तक नापास कर दी थी। "मेरा खयाल है जल्द-से-जल्द एक किताब खतम करने के जोश में तुमने अपने ईमान के विरुद्ध बेगार टाली है। पत्रों का जाल सारी किताब मे इस बुरी तरह से फैलाया गया है कि वे अपना charm खोकर सस्ती टैकनीक के शिकार बन गये हैं। कहीं-कहीं तो गाली देने को जी चाहता है। हाँ, कुछेक स्थान ऐसे भी हैं जहाँ पत्र कमाल कर जाते हैं। मैं जल्द ही किसी दिन किताब पढकर हर चैप्टर पर अपनी राय लिखूंगा।"[१] वह पूरी किताब मैंने फिर से लिखी।

उन्हें इस नई किताब से बहुत उम्मीदें थी। इलाहाबाद में पन्तजी से कहने लगे—"रामविलास निरालाजी और उनके काल की फिलम बना रहे हैं।" पंतजी चौंके। नागरजी ने कहा—"कागज और किताब के रूप में!"

किताब का एक अध्याय सुना। फिर से लिखने को कहा। मैंने लगभग २०० पृष्ठ लिख डाले थे। उतना भाग नये सिरे से लिखा। उन्होने सावधान किया, " 'अमृत और विष' में जो कमजोरियाँ हैं, वे तुम्हारी किताब में न हों।"

वैसे पत्रों का जाल यहाँ भी है।

'चकल्लस' में अमृतलाल नागर के सहयोगी नरोत्तम नागर यह पुस्तक देखकर प्रसन्न होते। 'चकल्लस' के लिए निराला से उन्होंने कई इंटरव्यू प्राप्त किये थे। मेरी सहायता के लिए इलाहाबाद में निराला के पास मेरे प्रश्न लेकर गये; वह उत्तर बोलते गये, नरोत्तम नागर लिखते गये। वह निराला के लिए हर मंच पर संघर्ष करनेवाले पत्रकार थे।

"सोवियत दूतावास के कल्चरल विभाग में निराला के बारे मे सभा थी। दिनकरजी सभापति थे। वक्ताओं में तुम्हारा नाम भी था, लेकिन तुम गैरहाजिर थे। बनारसीदासजी चतुर्वेदी भी गैरहाजिर थे। हाँ मधुबाला के कवि बच्चन ने 'राम की

शक्तिपूजा' के कवि निराला पर ऊँचे सिंहासन से प्रवचन झाड़ा,—मानो निराला की स्मृति और अमरता उनकी मोहताज हो। प्रभाकर माचवे, चौहान (शिवदानसिंह) और दिनकर—सभी ने बच्चन को जवाब दिया। लगता था जैसे बच्चन ने मधुबाला की चोली में नही, भिड़ के छत्ते मे हाथ डाल दिया हो।"[४]

मृत्यु से पहले अपने अन्तिम पत्र मे उन्होंने लिखा, "पहली जनवरी को, नये साल के तोहफे के रूप मे हार्ट अटैक हुआ,—अटैक माइल्ड था, लेकिन उसी ने चलना-फिरना बन्द करा दिया है। वैसे अब तबियत काफी ठीक है। दस-पन्द्रह रोज बाद चलना-फिरना शुरू करूँगा।...

"मेरे जीवन मे अगर कोई चीज़ निश्चित रही है तो वह अनिश्चितता। निश्चित होकर कायदे से कैसे काम लिया जाता है, यह मै नही जानता। मेरे लिखने-पढ़ने को भी यही अनिश्चितता निश्चित करती है। जिस तरह जीवन में यह पता नही रहता कि कल क्या होगा, वैसे ही मुझे पहले से पता नही होता कि एक पैरा के बाद दूसरे पैरा मे क्या होगा और अन्त मे किस जगह जा पहुँचूंगा। यह लेखन-यात्रा खुद मेरे लिए एक चमत्कार होती है।"[५]

पूँजीवादी समाज मे स्वाधीनचेता पत्रकारिता के प्रतीक नरोत्तम नागर।

"अब मौत हम लोगो की तरफ बढ रही है। जुझारू दोस्त को अचानक ले गई। वह शायद बेकार होते ही दिल तोड बैठे थे। वैसे दमदार आदमी थे और अभी जीने की इच्छा रखते थे।...वह बड़ा अक्खड और फक्कड़ था। पुरानी यादें ताज़ा हो गई हैं। एक-एक बात याद कर रहा हूँ और उनका चलचित्र देख रहा हूँ। अन्त मे वह टिटिहरी शरीर टूट ही तो गया। कोई भी दिल्ली मे उस टूट रहे शरीर को टूटने से न बचा सका।"—केदारनाथ अग्रवाल ने नरोत्तम नागर की मृत्यु का समाचार सुनकर लिखा था।

जुझारु दोस्त, अक्खड और फक्कड़—ऐसे ही लोग निराला के लिए लड़े थे।

निराला के बालसखा, उनके समधी रामशंकर शुक्ल : "७२ की उमर है, निराला जी से तीन साल बडे है और महिपादल मे दोनों का जन्म हुआ और लड़कपन साथ ही खेला-कुदा और साथी रहे और हमारे खास कोई नही है, अब बुढ़ापा है और शरीर से काफी तकलीफ रहती है। ईस गरज से आप सरकार से पैसे का मासीक प्रबन्ध कुछ करा देते तो ठीक है।"[६]

"अब ईधर या लखनऊ कब तक आना होगा, आपसे मीलने की इच्छा है। आगे निरालाजी का कुछ किताब और कोई चिज आप निकाली है की नही, मेरा स्वस्थ खराब ही रहता है।"[७]

भतीजे बिहारीलाल : "निरालाजी हम लोगो को चक्कि पिसकर खिलाया है जब बरसात के समय जब नदि कि बाढ़ होति तब चक्कि चलायकर जिलाया है जनेव विवाह किया है आभि तक करते आये हैं।"[८]

भतीजे केशवलाल : "इधर आसा ही आसा मे महाकवि निरालाजी हम लोगो को दुखियो को दुख बटानेवाले महाप्राण मेरे काका दुखियों का दुख सहते-सहते दुखी परिवार को छोड़ के चले गए। आज परिवार उस दशा मे है। वह तोड़ती पत्थर, देखा उसे

मैंने इलाहावाद के पथ पर। आपका लेख हिन्दुस्तान निराला अंक में पढ़ा था। और भी वहुत-से लेख पढ़े। हम लोगों को काका मूर्ख ही रख गये। भला हम लोग क्या कर सकते हैं। आज महाकवि निरालाजी के नाम से तमाम तने के हिसाव वनाते रहते हैं। लेखको का काम वहुत अद्भुत है। निरालाजी को कोई कुछ लिखते हैं व कोई कुछ लिखते हैं। इधर सोचा है निराला वंशावली पत्र-संग्रह निकाला जाय। आपकी क्या राय है।"[९]

भतीजों के वाद की पीढ़ी। विहारीलाल के पुत्र लक्ष्मीनारायण: "आप लोग निरालाजी के परिवार व भवन के वारे मे सहारा दे सकते हो भवन सुदामाजी की झोंपड़ी के सँमान परा है परिवार दु:ख में है की पेट को न दाना है न वत्र ही है। मेरा जीवन के पालनहार मेरे वावा देवलोक चले गये वावा के न रहने से मेरा दिल वड़ा दु:खी है···

"मैंने सुना है एक लाख रु० निकला है सो सही है या झुठ है कीसको मिलेगा सो आप लिखना।"[१०]

निराला का पारिवारिक परिवेश। पुस्तक के अन्त में उसे याद कर लेना आवश्यक है।

उससे वड़ा निराला का साहित्यिक परिवार। जिससे जो सहायता वन पडी, उसने की। उदयशंकर शास्त्री का घर दूसरा 'कलाभवन' है। वहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ, पुराने लेखों की कतरनें उन्होंने सँजो रखी थीं। मैंने इनसे लाभ उठाया। मौखिक रूप से भी अपनी विस्तृत जानकारी से उन्होंने मेरी वड़ी सहायता की। परमानन्द शर्मा ने 'रँगीला' के दो अंक देखने को दिये, कलकत्ते के पत्रों में प्रकाशित निराला की कुछ रचनाओं की प्रतिलिपि करके भेजी। स्वर्गीय उदयशंकर भट्ट ने अवोहर सम्वन्धी संस्मरण लिख भेजा। प्रवोधचन्द्र मजुमदार ने 'वन्दना' में प्रकाशित निराला का लेख ढूँढ़ निकाला। दयाशंकर वाजपेयी के पुत्र शान्तिस्वरूप वाजपेयी, कुमुद शर्मा (श्रीमती नलिनविलोचन शर्मा), रामप्रसाद यादव (लल्लू), रत्नशंकरप्रसाद, गंगाप्रसाद मिश्र, चन्द्रप्रकाश सिंह, वनारसीदास चतुर्वेदी, केदारनाथ अग्रवाल, उग्र आदि साहित्य-प्रेमियों ने निराला के अनेक पत्र मेरे लिए सुलभ किये। भगवानदास माहौर ने सन्-संवत् तिथि-तारीख के मसले हल किये। शिवनारायण शर्मा कलकत्ते और महिपादल मे मेरे अनुसन्धान कार्य में वरावर सहायक रहे। वह मुझे वहुत-से लोगों से मिलाने ले गये। 'मतवाला' के लेखक सम्मान्य पत्रकार रामशंकर त्रिपाठी ने निराला के जीवन से सम्वन्धित कई महत्त्वपूर्ण वातें वताईं। निराला के दामाद—शिवशेखर द्विवेदी—ने मेरे लिए अपने विवाह तथा सरोज की वीमारी का विवरण लिख भेजा। रामकृष्ण त्रिपाठी से अनेक आवश्यक वातो की जानकारी हुई। गंगाप्रसाद पाण्डेय, शिवचन्द्र नागर, इलाचन्द्र जोशी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि अनेक लेखकों के प्रकाशित लेखों और पुस्तकों से मुझे सहायता मिली है। श्रीनारायण चतुर्वेदीजी से पुस्तक लिखने के लिए विशेष प्रोत्साहन मिला।

इन सवके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक का एक अध्याय वस्तुतः पंतजी की देन है। सामग्री उनकी है; विश्लेषण और निष्कर्ष मेरे हैं। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

घनश्याम अस्थाना, नामवर सिंह, गंगाधर शास्त्री, चन्द्रवली सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, निर्मल तलवार (शर्मा), कल्याणमल लोढ़ा, रमेशचन्द्र द्विवेदी आदि मित्रों ने अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है। इन्हे तथा उन सबको जिनके नाम याद नहीं आ रहे है, मैं धन्यवाद देता हूँ।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के अधिकारियों ने महावीरप्रसाद द्विवेदी का पत्र-सग्रह देखने और उसका उपयोग करने की अनुमति दी, इसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

२२

टिप्पणी

१. सुर्जकुमार तेवारी

१. 'कविता-कौमुदी' में प्रकाशनार्थ अपने परिचय में निराला ने यह जन्मतिथि रामनरेश त्रिपाठी को लिखकर भेजी थी।
२. महावीरप्रसाद द्विवेदी को सूर्यकान्त त्रिपाठी, ११-१-२१

२. साधना-प्रारम्भ

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी को शिवप्रसाद गुप्त, मिती ९-८-१९७८
२. शिवप्रसाद गुप्त के उपर्युक्त पत्र पर महावीरप्रसाद द्विवेदी का नोट, २८-११-२१
३. सूर्यकान्त त्रिपाठी को महावीरप्रसाद द्विवेदी, १७-१२-२१
४. महावीरप्रसाद द्विवेदी को सूर्यकान्त, २७-१०-२३
५. उप०
६. महावीरप्रसाद द्विवेदी को सूर्यकान्त, ६-११-२३
७. महावीरप्रसाद द्विवेदी को सूर्यकान्त, १०-११-२३

३. 'मतवाला'-मंडल

१. शिवपूजन सहाय को रूपनारायण पाण्डेय, ४-१०-२४
२. शिवपूजन सहाय को ईश्वरीप्रसाद शर्मा, २५-११-२४
३. 'मतवाला', १० मई '२४
४. 'मनोरमा', जून '२४
५. 'मनोरमा', अगस्त '२४
६. 'मतवाला', ९ अगस्त '२४
७. 'मतवाला', ३० अगस्त '२४
८. 'मतवाला', १३ सितम्बर '२४
९. 'मनोरमा', अक्तूबर '२४
१०. शिवपूजन सहाय को महादेवप्रसाद सेठ, २४ सितम्बर '२४

४. नये संघर्ष

१. शिवपूजन सहाय को दुलारेलाल भार्गव, ५-२-२५
२. शिवपूजन सहाय को महादेवप्रसाद सेठ, २३-३-२५
३. मतवाला, १७ जनवरी '२५
४. शिवपूजन सहाय को महादेवप्रसाद सेठ, १४-८-२५
५. शिवपूजन सहाय को निराला, १-१०-२७
६. शिवपूजन सहाय को निराला, २१-५-१९२६
७. निराला को शान्तिप्रिय द्विवेदी, ३०-११-२६
८. उप०, १०-१२-२६
९. उप०, १-१-२७
१०. निराला को रामनरेश त्रिपाठी, २८-९-२६
११. उप० अक्तूबर या नवम्बर सन् '२६ में लिखा हुआ; पत्र में तारीख नही है।
१२. निराला को वाचस्पति पाठक, १०-५-२७
१३. निराला को जयशंकर प्रसाद, १९-५-२७
१४. निराला को विनोदशंकर व्यास, १५-७-२७
१५. विनोदशंकर व्यास को निराला—आषाढ़ सुदी १०मी (सन् १९२७)

५. आलोचना-प्रत्यालोचना

१. निराला को शान्तिप्रिय द्विवेदी, १-४-२६
२. उप०, १९-५-२३
३. उप०, सम्भवतः जून '२७ में लिखा हुआ पत्र
४. निराला को विनोदशंकर व्यास, १४-१०-२७
५. निराला को शिवपूजन सहाय, १५-१०-२७
६. 'सरस्वती', मई १९२७
७. निराला को शिवपूजन सहाय, २०-९-२७
८. निराला को प्रसाद, ३-१२-२७
९. शिवपूजन सहाय को निराला, १५-१२-२७
१०. निराला को शिवपूजन सहाय, १८-१२-२७
११. प्रसाद को निराला, दिसम्बर '२७ का अन्तिम सप्ताह
१२. शिवपूजन सहाय को निराला, जनवरी '२८
१३. उप०, २९-१-२८
१४. निराला को शिवपूजन सहाय, १६-२-२८
१५. शिवपूजन सहाय को निराला, २२-२-२८
१६. निराला को रामसेवक त्रिपाठी, ३-१-२८
१७. उप०, १-२-२८
१८. सुधा, अगस्त '२७
१९. उप०, फरवरी '२८
२०. उप०, मार्च '२८
२१. उप०, जुलाई '२८
२२. उप०, दिसम्बर '२७
२३. उप०, फरवरी '२८

२४. पद्मसिंह शर्मा, माधुरी, अगस्त-सितम्बर '२८
२५. निराला को शान्तिप्रिय द्विवेदी, २५-३-२८
२६. सुधा, अप्रैल '२८
२७. निराला को कृष्णविहारी मिश्र, २४-३-२७
२८. निराला को नन्ददुलारे वाजपेयी, २४-८-२८
२९. निराला को सुमित्रानन्दन पन्त, १६-१२-२८
३०. शिवपूजन सहाय को महादेवप्रसाद सेठ, २०-१०-२८
३१. शिवपूजन सहाय को उग्र, ६-४-२८
३२. शिवपूजन सहाय को नवजादिकलाल श्रीवास्तव, ४-७-२८
३३. नन्ददुलारे वाजपेयी को निराला, १०-४-२६
३४. ७ मई १९२९ के आसपास का पत्र

८. 'परिमल' और 'वर्तमान धर्म'

१. निराला को नन्ददुलारे वाजपेयी, २५-८-२९
२. सुमित्रानन्दन पन्त को निराला, सितम्बर '२९
३. शिवशेखर द्विवेदी को निराला, ३०-६-२८
४. शिवपूजन सहाय को निराला, १०-४-३३
५. उप०, १९-६-३२
६. जयशंकर प्रसाद को निराला, १९-६-३२

९. गंगा पुस्तकमाला और 'सुधा'

१. जयशंकर प्रसाद को निराला, २४-४-३३

१०. जीवन की सार्थकता का प्रश्न

१. जानकीवल्लभ शास्त्री को निराला, २६-१०-३५
२. जयशंकर प्रसाद को निराला, १८-२-३६
३. जानकीवल्लभ शास्त्री को निराला, १७-४-३६

११. राजनीति और साहित्य

१. रामविलास शर्मा को निराला, ६-११-३६
२. उप०, २०-११-३६
३. उप०, ६-११-३६
४. उप०, २३-१२-३६
५. सरस्वती, फरवरी '३८; सामयिक साहित्य स्तम्भ से
६. वाचस्पति पाठक को निराला, १०-१०-३८
७. शिवपूजन सहाय को निराला, १२-६-३६
८. उप०, १५-३-३८
९. वाचस्पति पाठक को निराला, १०-१०-३८
१०. उप०, १८-१२-३८
११. बच्चन : नये-पुराने झरोखे, पृ० १५८
१२. बच्चन : निराला की वर्षगाँठ पर; संगम, इलाहाबाद, २३ जनवरी १९५०
१३. सम्मेलन-पत्रिका, श्रद्धाञ्जलि विशेषांक, पृ० ३३३

१२. यथार्थ-दर्शन

१. चौवे—मेरे छोटे भाई रामस्वरूप का घर का नाम
२. वनारसीदास चतुर्वेदी को निराला, १७-१२-३९
३. निराला को वनारसीदास चतुर्वेदी, २३-१-४०
४. वनारसीदास चतुर्वेदी को निराला, २४-१-४०
५. निराला को वनारसीदास चतुर्वेदी, २७-१-४०
६. राजाबख्श सिंह को निराला, ३-५-३९
७. दयाशंकर वाजपेयी को निराला, ८-२-४०
८. उप०, १४-२-४०
९. उप०, १४-३-४०
१०. निराला को भगवतीचरण वर्मा, २४-६-४०

१३. नरक-यात्रा

१. चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' : निरालाजी : निकट से; निराला-अभिनन्दन-ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ० ३०-३१
२. किशोरीदास वाजपेयी : कवि-सम्मेलन और उसकी अध्यक्षता; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ५-७-६४
३. उदयशंकर भट्ट द्वारा भेजे हुए संस्मरण
४. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० २२१
५. उप०, पृ० २१०
६. रामविलास शर्मा को निराला, २-२-४३
७. उप०, २२-२-४३
८. उप०, १५-३-४३
९. उप०, २-२-४३
१०. उप०, २२-२-४३
११. उप०, १८-६-४३
१२. उप०, २-१२-४३
१३. उप०, २-१२-४३
१४. उप०, १५-३-४३
१५. रामप्रसाद यादव (लल्लू) को निराला, २७-१२-४३
१६. रामविलास शर्मा को निराला, १८-६-४३
१७. उप०, ११-१२-४३
१८. उप०, ११-५-४३
१९. उप०, १७-५-४३
२०. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, २-९-४३
२१. गंगाप्रसाद मिश्र को निराला, २-१२-४३
२२. रामविलास शर्मा को निराला, १८-६-४३
२३. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० २३८
२४. 'अवस्थी' : स्मृतिचिह्न; जनभारती, निराला अंक-२
२५. रामानुजलाल श्रीवास्तव : महाकवि निराला और जबलपुर; रसवंती, फरवरी '६२
२६. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, १३-२-४१

२७. रामविलास शर्मा को निराला, १४-६-४४
२८. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला; महादेवी वर्मा की भूमिका
२९. रामविलास शर्मा को निराला, १९-११-४४
३०. उप०, ८-१२-४४
३१. उप०, ३०-१२-४४
३२. हंस, नवम्बर '४४
३३ रामविलास शर्मा को निराला, ३०-१२-४४
३४. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, २-४-४५
३५. उप०, ७-४-४५
३६. रामविलास शर्मा को केदारनाथ अग्रवाल, ८-३-४५
३७. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, ८-७-४५
३८. उप०, १०-७-४५
३९. रामविलास शर्मा को निराला, ६-७-४५
४०. उप०, ८-७-४५
४१. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, २०-८-४५
४२. रामविलास शर्मा को निराला, ४-७-४५
४३. उप०, २५-७-४५
४४. उप०, १६-२-४५
४५. रामविलास शर्मा को महादेवी वर्मा, १२-२-४५
४६. केदारनाथ अग्रवाल को निराला, १५-५-४५
४७. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० २५१
४८. रामविलास शर्मा को निराला, ६-७-४५
४९. उप०, कार्तिकी पूर्णिमा, १९४५
५०. उप०, ५-५-४५
५१. उप०, २६-५-४५
५२. रामविलास शर्मा को रामकृष्ण त्रिपाठी, १६-२-४६
५३. उप०, २२-८-४६

१४. स्वाधीन भारत में

१. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० १०१
२. उप०, पृ० २६६
३. उप०, पृ० २७२
४. रामविलास शर्मा को नन्ददुलारे वाजपेयी, २१-१०-४६
५. गंगाप्रसाद पाण्डेय : निराला-समाचार; रक्ताभ, लखनऊ, मार्च '४८
६. गंगाप्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० २७२
७. शिवचन्द्र नागर : महादेवी, विचार और व्यक्तित्व; इलाहाबाद, पृ० ५१
८. महाप्राण निराला, पृ० २७६-७८
९. रामविलास शर्मा को गंगाधर शास्त्री, ९-२-२७, इसी में बलदेवप्रसाद मेहरोत्रा का नोट
१०. हंस जनवरी-फरवरी '४७
११. शिवचन्द्र नागर : महादेवी, पृ० २१८
१२. उप०

१३. महाप्राण निराला, पृ० ३६०
१४. हंस, जून '४८
१५. महाप्राण निराला, पृ० ३६८-९
१६. गंगाप्रसाद पाण्डेय : निराला-समाचार; रवताभ, मार्च '४८
१७. महाप्राण निराला, पृ० ३६७
१८. उप०, पृ० ३६९
१९. उप०, पृ० ३७०-१
२०. शिवचन्द्र नागर : महादेवी, पृ० ३२९
२१. गंगाप्रसाद पाण्डेय : निरालाजी आजकल; संगम १३ जनवरी '५०
२२. उप०
२३. ओकार शरद : नरनाहर निराला; सम्मेलन पत्रिका, श्रद्धा० विशेपांक
२४. महाप्राण निराला, भूमिका
२५. केशवलाल त्रिपाठी को निराला, ४-१०-४९
२६. रामगोपाल त्रिपाठी को निराला, ४-१०-४९
२७. गंगाप्रसाद पाण्डेय : निरालाजी आजकल, संगम, २३-१-५०
२८. उप०
२९. उमाशंकर सिंह : निराला का निरालापन, पृ० ६५
३०. भारत, १८-९-५०
३१. सुमित्रानन्दन पंत · निरालाजी के जन्मदिवस पर; संगम, २३-१-५०
३२. स० ही० वात्स्यायन : मानवीय प्रतिभा के सामर्थ्य-गौरव, उप०
३३. डॉ० एजाज़ हुसेन : ऐसे हैं निरालाजी; संगम, २३-१-५०
३४. नई धारा, मई '५०
३५. उप०, अगस्त '५०
३६. वच्चन : नये-पुराने झरोखे, पृ० ६१
३७. त्रिपथगा, निराला अंक-२, पृ० २८
३८. शिवगोपाल मिश्र; उप०, पृ० २७
३९. इलाचन्द्र जोशी : निराला के स्वयंसिद्ध संरक्षक; नई धारा, जून '५४
४०. गंगाप्रसाद पाण्डेय : निरालाजी आजकल; 'नये पत्ते', इलाहावाद, जनवरी-फरवरी '५३

१५. मृत्यु से संघर्ष

१. केदारनाथ अग्रवाल को रामविलास शर्मा, जनवरी (सम्भवतः १६), १९५९
२. 'आज', ४ फरवरी '६०
३. रामविलास शर्मा को अमृतलाल नागर, १३-२-६०
४. कमलाशंकर सिंह : निराला की विदा के क्षण; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११-२-६२
५. केदारनाथ अग्रवाल : निरालाजी; 'कृति', दिल्ली, फरवरी '६१
६. कलावतीदेवी 'वच्ची' : जव वह देवपुरुष मेरे आँगन मे आया; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८-२-६२
७. रामप्रताप त्रिपाठी : महाकवि निराला के अन्तिम दर्शन; साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १९-११-६१
८. सरस्वती, नवम्वर '६१

९. रामविलास शर्मा को रामकृष्ण त्रिपाठी, ३-१२-६१
१०. रामविलास शर्मा को शिवमंगलसिंह सुमन, २०-२-६२
११. हिन्दी टाइम्स, दिल्ली, २१-७-६२
१२. उप०

१६. व्यक्तित्व और परिवेश

१. सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, श्रद्धांजलि विशेषांक, पृ० ३६२
२. शिवपूजन सहाय को निराला, १५-३-३८

१७. विक्षेप—अर्द्ध-विक्षेप

१. अरविंग स्टोन : दि ऐगनी ऐण्ड दि एक्सटैसी; कौलिन्स, लंदन, पृ० ५७०

१८. मूल्याङ्कन

१. सरस्वती, मई १६३३
२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ मई '६४
३. उप०, ७-११-६२
४. बनारसीदास चतुर्वेदी : वह चरित्र-विघातक तुकवन्दी, धर्मयुग, ८-११-६४
५. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, पृ० २६
६. निराला अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५७
७. अन्तरदेव, वसन्त पंचमी, १६६२, फतेहपुर, पृ० २६
८. रामविलास शर्मा को रामविलास पाण्डेय, २६-६-६४
९. सम्मेलन पत्रिका, श्रद्धा० विशे०, पृ० ४४८
१०. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८-२-६२
११. उप०, १५-५-६४
१२. उप०
१३. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ० ४५०
१४. जानकीवल्लभ शास्त्री को निराला, ११-२-३६
१५. हिमालय, अगस्त, १६४६
१६. इलाचन्द्र जोशी : विद्रोही सन्तों की परम्परा में निराला; धर्मयुग, २१-१०-६२

१९. पंत और निराला

१. रामविलास शर्मा को सुमित्रानन्दन पंत, २७-५-३८
२. उप०, २६-११-६६

२०. उपसंहार

१. रामविलास शर्मा को शिवपूजन सहाय, महाशिवरात्रि, १९९९
२. शिवपूजन सहाय को रामविलास शर्मा, ५-३-४३
३. रामविलास शर्मा को शिवपूजन सहाय, रंगभरी एकादशी, १९९९
४. उप०, २७-१-४४
५. विनोदशंकर व्यास : दिन-रात; पुस्तक मंदिर, काशी, पृ० ९४
६. साहित्य, पटना, जनवरी १९६४

७. नागार्जुन : एक व्यक्ति, एक युग; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० २०
८. उग्र : अपनी खबर; राजकमल, दिल्ली, पृ० १३
९. शिवपूजन सहाय को उग्र, ११-४-४८
१०. रसवन्ती, लखनऊ, फरवरी '६२, पृ० ४३
११. आज, २६-१०-६१
१२. नवजीवन, लखनऊ, २६-१०-६१
१३. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २१ अक्तूबर १९६२
१४. उमाशंकर सिंह : महाकवि निराला का निरालापन, पृ० १३
१५. सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग, श्रद्धांजलि विशेषांक, पृ० ४३९
१६. त्रिपथगा, लखनऊ, निराला संस्मरण अंक, खंड २, पृ० ६६
१७. रसवन्ती, फरवरी '६२, पृ० १००
१८. त्रिपथगा, निराला संस्मरण अंक, खंड २, पृ० ७१
१९. लहर, अजमेर, फरवरी '६५, पृ० ४२
२०. उप०
२१. उप०
२२. विविधा, लखनऊ, नवम्बर '६१, पृ० ४२
२३. उप०, पृ० ४३
२४. सम्मेलन-पत्रिका, श्रद्धा० विशे०, पृ० ४७७
२५. आज, २६-१०-६१
२६. उप०
२७. रसवन्ती, फरवरी '६२, पृ० ८१
२८. आज, २६-१०-६८
१९. रामविलास शर्मा को नन्ददुलारे वाजपेयी, २८-१२-४६
३०. रामविलास शर्मा को उमाशंकर वाजपेयी, १२-४-६२
३१. बौसवेल : दि लाइफ ऑफ जॉनसन; दि मॉडर्न लाइब्रेरी, न्यूयौर्क, पृ० २५५
३२. उप० पृ० ७९२

२१. कृतज्ञता-ज्ञापन

१. रामविलास शर्मा को शिवपूजन सहाय, २९-३-५९
२. उप०, १-५-६२
३. रामविलास शर्मा को अमृतलाल नागर, १५-६-४५
४. रामविलास शर्मा को नरोत्तम नागर, २१-११-६१
५. उप०, १८-१-६८
६. रामविलास शर्मा को रामशंकर शुक्ल, २१-२-६४
७. उप०, २५-३-६४
८. रामविलास शर्मा को बिहारीलाल त्रिपाठी, २४-२-६२
९. रामविलास शर्मा को केशवलाल त्रिपाठी, ५-३-६२
१०. रामविलास शर्मा को लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, ४-४-६२